ISSN 2455-1171

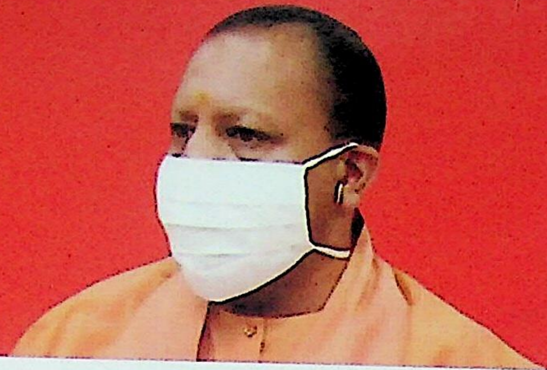
₹ 100/-

साहित्य अमृत

मई २०२० से सितंबर 2020 (संयुक्तांक) • साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक • मासिक







एक
मास्क लगाए हर एक

दो
दो गज़ की दूरी हो

तीन
धोकर बार-बार हाथ रखें क्लीन

चार
इम्युनिटी बढ़ाकर करें वार

कोरोना की होगी हार!



निःशुल्क एम्बुलेंस के लिए **108** पर कॉल करें



चिकित्सकीय सहायता के लिए कॉल करें हेल्पलाइन **1800-180-5145**





आरोग्य सेतु एवं आयुष सुरक्षा कवच एप का प्रयोग करें



सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश



साहित्य अमृत

वैशाख-आश्विन, संवत्-२०७७ ❖ मई २०२० से सितंबर २०२० (संयुक्तांक) **मासिक**

र्ष-२५-२६ अंक-१०-१४ ❖ पृष्ठ २९२ यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित ISSN 2455-1171



इस अंक में

✍ संपादकीय

✍ प्रतिस्मृति

✍ कहानी

संस्थापक संपादक
स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र
~•~
पूर्व संपादक
स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
स्व. श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी
~•~
संस्थापक प्रबंध संपादक
स्व. श्री श्यामसुंदर
~•~
प्रबंध संपादक
पीयूष कुमार
~•~

संपादक
लक्ष्मी शंकर वाजपेयी
~•~
संयुक्त संपादक
डॉ. हेमंत कुकरेती
~•~
उप संपादक
उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'
~•~
कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : ०११-२३२८९७७७
०८४४८६१२२६९
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com
~•~

शुल्क
इस अंक का मूल्य—₹ १००
सामान्य अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)
~•~
प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV. गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।
~•~

गौरवपूर्ण साहित्यिक शब्द-यात्रा

साहित्य अमृत के रजत जयंती अंक का संपादकीय लिखते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह प्रसन्नता तब और भी बढ़ जाती है, जब इतने लंबे लॉकडाउन के बाद यह अंक आपके समक्ष आ रहा है। किसी साहित्यिक पत्रिका का पच्चीस वर्ष तक नियमित-निर्बाध प्रकाशन निश्चय ही एक गौरवमयी उपलब्धि है। अत्यंत समृद्ध प्रतिष्ठानों द्वारा लोकप्रिय पत्रिकाओं के अचानक बंद कर देने के आघातों से साहित्यप्रेमी भलीभाँति परिचित हैं। अनेक पत्रिकाओं को हमने सीमित साधनों तथा अर्थाभाव के कारण भी बंद होते देखा है हालाँकि उनमें स्तरीय सामग्री का प्रकाशन होता था तथा उनके संकल्प भी नेक थे।

हर माह सही समय पर पाठकों को नियमित पत्रिका पहुँचाने के साथ-साथ 'साहित्य अमृत' के विशेषांकों की गौरवशाली परंपरा रही है। विभिन्न अवसरों पर साहित्य अमृत ने यादगार विशेषांक निकाले हैं, जिनमें—'प्रवेशांक' (अगस्त, १९९५), 'राजभाषा विशेषांक' (सितंबर, १९९९), 'शतांक' (नवंबर, २००३), 'विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक' (जून २००३), 'जनाकांक्षा अंक' (अगस्त, २००४), 'पं. विद्यानिवास स्मृति अंक' (मार्च-अप्रैल, २००५), 'दशकांक' (१०वाँ वर्ष) (अगस्त, २००५), 'विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक' (जुलाई, २००७), 'भारतीय भाषा अंक' (१५०वाँ) (जनवरी, २००८), 'विष्णु प्रभाकर स्मृति अंक' (जून, २००९), 'कविता विशेषांक' (अगस्त, २०१०), 'अज्ञेय जन्मशती अंक' (अक्तूबर, २०१०), 'जन्मशती—बाबा नागार्जुन, गोपाल सिंह नेपाली, केदारनाथ अग्रवाल, उपेंद्र नाथ 'अश्क'' (फरवरी, २०११), 'कहानी विशेषांक' (फरवरी, २०१४), 'मीडिया विशेषांक' (२०वाँ वर्ष) (अगस्त, २०१५), 'डॉ. कलाम पर विशेष विशेषांक' (अक्तूबर, २०१५), 'युवा हिंदी कहानी विशेषांक' (दिसंबर, २०१५), 'स्वाधीनता विशेषांक' (अगस्त, २०१६), 'लघु-कथा विशेषांक' (जनवरी, २०१७), 'लोक-संस्कृति विशेषांक' (अगस्त, २०१७), 'वैश्विक हिंदी विशेषांक' (अगस्त, २०१८), 'अटल स्मृति विशेषांक' (दिसंबर, २०१८), 'शौर्य विशेषांक' (अगस्त, २०१९), 'गांधी विशेषांक' (जनवरी, २०२०) प्रमुख हैं।

पच्चीस वर्ष के दीर्घकाल में तरुणाई के सृजनात्मक कृतित्व एवं अभ्यर्थना के लिए 'साहित्य अमृत' ने समय-समय पर विभिन्न विधाओं में लेखन-प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं, जिनमें वर्ष २००६ में आयोजित 'युवा हिंदी कहानी प्रतियोगिता' में १६५ कहानीकारों ने भाग लिया। जनवरी-२००८ में 'युवा हिंदी कविता प्रतियोगिता' का आयोजन हुआ, जिसमें शताधिक कवियों ने अपनी कविताएँ भेजीं। अगस्त-२००९ में 'युवा हिंदी व्यंग्य लेखन प्रतियोगिता' में ४५ व्यंग्य लेखकों ने भाग लिया तथा दिसंबर-२०१५ की 'युवा हिंदी कहानी प्रतियोगिता' में कुल २०२ कहानीकारों ने भाग लिया।

यशस्वी पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयीजी की प्रेरणा तथा विद्यानिवास मिश्रजी जैसे विद्वान् संपादक के मार्गदर्शन में श्यामसुंदरजी द्वारा प्रारंभ की गई इस पत्रिका ने कभी भी व्यावसायिक दृष्टिकोण न रखते हुए साहित्य-सेवा का ही लक्ष्य रखा है। देश के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित विद्वानों, साहित्यकारों का भरपूर स्नेह तथा सहयोग इस पत्रिका को मिला है और पाठकों का अपार समर्थन न होता तो फिर पच्चीस वर्षों की यात्रा क्या संभव हो पाती! प्रस्तुत अंक में पिछले २५ वर्षों में प्रकाशित स्मृतिशेष महान् विद्वान् साहित्यकारों की रचनाएँ आपको पढ़ने को मिलेंगी। चाहे वे विद्यानिवास मिश्र, विष्णुकांत शास्त्री, लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, शंकरदयाल सिंह, कुबेरनाथ राय, कृष्णदत्त पालीवाल, विवेकी राय जैसे विद्वान् हों अथवा विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, महीप सिंह जैसे कथाकार अथवा कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, कैलाश वाजपेयी, इंदु जैन, बालकवि बैरागी जैसे कवि। स्मृतिशेष रचनाकारों के अतिरिक्त वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में हर विधा के श्रेष्ठतम रचनाकारों की रचनाएँ भी इस 'रजत जयंती विशेषांक' में सँजोई गई हैं। देश के अत्यंत लोकप्रिय रचनाकारों की रचनाएँ भी इस अंक में मिलेंगी। यह भी प्रयास किया गया है कि इस अंक में साहित्य की प्राय: सभी विधाओं का समावेश हो सके।

आशा है कि प्रस्तुत अंक को आप सभी पाठकों का प्यार मिलेगा।

विश्व का सबसे बड़ा सर्वप्रभुता संपन्न गणराज्य, फिर भी...

तब मैं नया-नया दिल्ली आया था। लक्ष्मीनगर की सब्जीमंडी में जिस ठेले से मैं सब्जी खरीद रहा था, उसी ठेले से वह सज्जन भी, जिनकी गोद में एक बेहद प्यारा मासूम सा बच्चा था। अचानक एक हृदय विदारक चाँटा मासूम बच्चे के गाल पर पड़ा था—बच्चे का अपराध? उसने पिता से हिंदी में 'आम' की माँग कर दी थी...पिता का कर्कश स्वर गूँजा था, 'मैंगो' नहीं बोल सकता! हिंदी का एक शब्द बोलने से पिता के लिए बच्चे

का भविष्य खतरे में पड़ गया था। याद रहे कि बच्चे ने उसी दिल्ली में हिंदी बोल दी थी, जो उस भारत की राजधानी है, जिसकी राजभाषा हिंदी है।

बत्तीस वर्ष पहले घटी यह घटना क्या अपवाद थी···नहीं, अभी कुछ दिनों पहले ही एक कॉन्वेंट स्कूल में एक बच्चे से आठ पेज, जी हाँ, आठ पेज, में एक ही वाक्य लिखने की सजा दी गई थी 'आई विल नॉट स्पीक इन हिंदी'! बच्चे का अपराध? वह कक्षा में अपने मित्र से हिंदी में बात करते 'पकड़ा गया' था। भारत में जैसे ही बच्चे में जरा सी चेतना आती है, हर माँ सिखाती है 'बेटा तुम्हारी नोज कहाँ है', 'आइज कहाँ है?' आदि। यह कौन सी मानसिकता है? ऐसा किस देश में होता है कि अपने आत्मीय रिश्तों का भी नाम हिंदी में लेने की बजाय मेरी मदर, मेरे फादर, मेरी वाइफ, मेरी सिस्टर आदि बोलते हैं! जहाँ अंग्रेजी की सचमुच आवश्यकता है, वहाँ तो बात समझ में आती है किंतु पुत्र या पुत्री के विवाह जैसे नितांत पारिवारिक एवं मांगलिक अवसर पर अंग्रेजी में निमंत्रण-पत्र छपवाना आपको शुद्ध मानसिक दासता का फूहड़ प्रदर्शन नहीं लगता? जो हिंदी की रोजी-रोटी खाता है, वह भी अपना विजिटिंग कार्ड अंग्रेजी में पेश करता है; यह कौन सी मानसिकता है? घर के बाहर नाम की तख्ती हो या दुकान का साइन बोर्ड! आजादी के ७५ वर्ष पूर्ण होने की ओर बढ़ रहे इस देश में मानसिक गुलामी से मुक्ति का कोई मार्ग दिख सकता है क्या?

एक सितंबर से ही हिंदी सप्ताह/पखवाड़ा/माह मनाने की धूम शुरू हो जाएगी। उन सरकारी कार्यालयों में भी, जहाँ वर्षभर सारे काम अंग्रेजी में ही होते हैं। हर कार्यालय में ७-८ लोग विभिन्न प्रतियोगिताओं में हर वर्ष पुरस्कार जीतते हैं! कुछ संस्थान अवश्य हैं, जहाँ हिंदी पखवाड़ा अत्यंत भव्य रूप में मनाया जाता है। खैर, इस बहाने ही सही हिंदी की ओर ध्यान तो जाता है। लेकिन उस मानसिकता की ओर विचार करने की अधिक आवश्यकता है कि दुनिया के सबसे बड़े सर्वप्रभुता-संपन्न गणराज्य में हम अंग्रेजी की मानसिक गुलामी से निकलकर अपनी भाषा के प्रति सम्मान का भाव कैसे जाग्रत् करें?

हिंदी की अपनी शक्ति

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर को नोबल पुरस्कार मिलने के बाद उन्हें गुजरात में व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। गुरुदेव ने महात्मा गांधी को पत्र लिखा कि उन्हें गुजराती आती नहीं, अंग्रेजी में थोड़े लोग समझ पाएँगे, हिंदी आती है लेकिन ज्यादा नहीं, और स्त्रीलिंग-पुल्लिंग की गड़बड़ियाँ हो जाती हैं! महात्मा गांधी ने सुझाया—आप हिंदी में ही व्याख्यान दें, तभी बात बनेगी। गुरुदेव ने ऐसा ही किया, उन्हें ऐसी शानदार सराहना मिली कि वे स्वयं चकित थे और फिर कई जगह उन्होंने हिंदी में व्याख्यान दिए।

स्वामी दयानंदजी जिन दिनों आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में लगे थे, उन्हीं दिनों उनके एक करीबी शुभचिंतक ने सुझाया कि यदि आपको आर्यसमाज को गाँव-गाँव तक पहुँचाना है तो संस्कृत के स्थान पर हिंदी में प्रवचन दें। स्वामीजी ने सुझाव माना और हिंदी के जादू से आर्यसमाज सचमुच गाँव-गाँव तक पहुँच गया।

जिन दिनों ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में अपने पाँव जमा रही थी, ब्रिटिश सरकार ने 'एडवर्ड टेरी' नामक विद्वान् को भारत भर का दौरा करके यह बताने को कहा कि शासन के लिए कौन सी भाषा उपयुक्त रहेगी और टेरी ने देशभर में घूमकर हिंदी को सर्वाधिक उपयुक्त भाषा बताया था। हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने भी हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने का स्वप्न देखा था, जबकि उनकी स्वयं की मातृभाषा हिंदी नहीं थी—लोकमान्य तिलक की मातृभाषा मराठी, लाला लाजपतराय की पंजाबी, महात्मा गांधी की गुजराती, सुभाषचंद्र बोस की बांग्ला, पं. नेहरू की कश्मीरी, सरकार पटेल की गुजराती, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की तमिल···आदि। यही हिंदी का जादू है, हिंदी की शक्ति है।

आधुनिक समय को देखें तो भारत में अपने को विश्व का मीडिया-सम्राट् माननेवाला एक अंग्रेजी चैनल शुरू करता है, कोई पहचान नहीं बनती, फिर वह हिंदी के कार्यक्रम शुरू करता है तो पहचान बनती है और फिर २४ घंटे का अंग्रेजी चैनल २४ घंटे के हिंदी चैनल में बदल जाता है।

हमारे पड़ोसी देश में एक विचित्र घटना होती है—वह पड़ोसी, जो हमेशा शत्रुता रखता रहा है—उस देश के केबल ऑपरेटर देशव्यापी हड़ताल कर देते हैं; कारण—हिंदी चैनलों पर से प्रतिबंध हटाने की माँग करते हैं—यह है हिंदी का जादू!

आज विश्व में हिंदी निरंतर विकास के नए आयाम छू रही है। विभिन्न देशों के नगरों में हिंदी के एफ.एम. चैनल चल रहे हैं। अमेरिका के कुछ मैनेजमेंट संस्थान, हिंदी पढ़ा रहे हैं। भारत में मध्यवर्ग की जितनी बड़ी आबादी है, उतनी तो देशों की भी आबादी नहीं है। इसलिए इतने बड़े बाजार पर नजर है, जो बिना हिंदी के संभव नहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि देश के लगभग सत्तर करोड़ हिंदीवासी उसे शक्ति प्रदान करें। हिंदी में समाचार-पत्रों की करोड़ों प्रतियाँ बिकें, हिंदी की किताबें बिकें, हिंदी में रोजगार के अवसर बढ़ें, हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की सामग्री बढ़े, अनुवाद कार्य बढ़े। हम हिंदी में बोलकर-लिखकर गर्व का अनुभव करें। अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय संपर्क की भाषा रहे तथा विकल्प न होने तक उच्च शिक्षा एवं विज्ञान-प्रौद्योगिकी की भाषा रहे। वह एक भाषा की तरह ही रहे, रुतबे की भाषा न बने। सौभाग्य से नई शिक्षा नीति में मातृभाषा में शिक्षा देने तथा भारतीय भाषाओं को सुदृढ़ करने का संकल्प उल्लेखनीय है। उसके लिए शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' साधुवाद के पात्र हैं, जिनकी कविताएँ प्रस्तुत अंक में दी जा रही हैं।

□

'साहित्य अमृत' का अप्रैल-२०२० अंक समय पर प्रकाशित हो गया था, परंतु लॉकडाउन के चलते यह अगस्त-२०२० में प्रसारित हो सका। कोविड-१९ के चलते प्रकाशकीय गतिविधियाँ बाधित रहीं और अंक प्रकाशित नहीं हो पाए। अस्तु, मई-२०२० से सितंबर-२०२० का संयुक्तांक प्रकाशित कर रहे हैं।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

ठेस

• फणीश्वरनाथ रेणु



(१४ मार्च, १९२१—११ अप्रैल, १९७७)

खेती-बारी के समय गाँव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग उसको बेकार ही नहीं, 'बेगार' समझते हैं। इसलिए खेत-खलिहान की मजदूरी के लिए कोई नहीं बुलाने जाता है सिरचन को। क्या होगा, उसको बुलाकर? दूसरे मजदूर खेत पहुँचकर एक-तिहाई काम कर चुकेंगे, तब कहीं सिरचन राय हाथ में खुरपी डुलाता दिखाई पड़ेगा—पगडंडी पर तौल-तौलकर पाँव रखता हुआ, धीरे-धीरे। मुफ्त में मजदूरी देनी हो तो और बात है।

···आज सिरचन को मुफ्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जबकि उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियाँ बँधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे। "···अरे, सिरचन भाई! अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गई है सारे इलाके में। एक दिन भी समय निकालकर चलो। कल बड़े भैया की चिट्ठी आई है शहर से—सिरचन से एक जोड़ा चिक बनवाकर भेज दो।"

मुझे याद है···मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिए कहती, मैं पहले ही पूछ लेता, "भोग क्या-क्या लगेगा?"

माँ हँसकर कहती, "जा-जा, बेचारा मेरे काम में पूजा-भोग की बात नहीं उठाता कभी।"

ब्राह्मणटोली के पंचानंद चौधरी के छोटे लड़के को एक बार मेरे सामने ही बेपानी कर दिया था सिरचन ने, "तुम्हारी भाभी नाखून से खाँटकर तरकारी परोसती है। और इमली का रस सालकर कढ़ी, तो हम कहार-कुम्हारों की घरवाली बनाती हैं। तुम्हारी भाभी ने कहाँ से बनाई!"

इसलिए सिरचन को बुलाने से पहले मैं माँ को पूछ लेता···

सिरचन को देखते ही माँ हुलसकर कहती, "आओ सिरचन! आज नेनू मथ रही थी, तो तुम्हारी याद आई। घी की डाड़ी (खखोरन) के साथ चूड़ा तुमको बहुत पसंद है न···और बड़ी बेटी ने ससुराल से संवाद भेजा है, उसकी ननद रूठी हुई है, मोथी के शीतलपाटी के लिए।"

सिरचन अपनी पनियाई जीभ को सँभालकर हँसता, "घी की सुगंध सूँघकर आ रहा हूँ, काकी! नहीं तो इस शादी-ब्याह के मौसम में दम मारने की भी छुट्टी कहाँ मिलती है?"

सिरचन जाति का कारीगर है।

मैंने घंटों बैठकर उसके काम करने के ढंग को देखा है। एक-एक मोथी और पटेर को हाथ में लेकर बड़े जातां से उसकी कुच्ची बनाता। फिर, कुच्चियों को रँगने से लेकर सुतली सुलझाने में पूरा दिन समाप्त··· काम करते समय उसकी तन्मयता में जरा भी बाधा पड़ी कि गेंहुअन साँप की तरह फुफकार उठता, "फिर किसी दूसरे से करवा लीजिए काम। सिरचन मुँहजोर है, कामचोर नहीं।" बिना मजदूरी के पेटभर भात पर काम करनेवाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले तो कोई बात नहीं, किंतु बात में जरा भी झाल, वह नहीं बरदाश्त कर सकता।

सिरचन को लोग चटोर भी समझते हैं···तली-बघारी हुई तरकारी, दही की कढ़ी, मलाईवाला दूध, इन सबका प्रबंध पहले कर लो, तब सिरचन को बुलाओ; दुम हिलाता हुआ हाजिर हो जाएगा। खाने-पीने में चिकनाई की कमी हुई कि काम की सारी चिकनाई खत्म! काम अधूरा रखकर उठ खड़ा होगा, "आज तो अब अधकपाली दर्द से माथा टनटना रहा है। थोड़ा सा रह गया है, किसी दिन आकर पूरा कर दूँगा···" 'किसी दिन' माने कभी नहीं!

मोथी घास और पटरे की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंगे डोर के मोढ़े, भूसी-चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े-बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी-टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गाँव में और कोई नहीं जानता। यह दूसरी बात है कि अब गाँव में ऐसे कामों को बेकाम का काम समझते हैं लोग—बेकाम का काम, जिसकी मजदूरी में अनाज या पैसे देने की कोई जरूरत नहीं। पेट भर खिला दो, काम पूरा होने पर एकाध पुराना-धुराना कपड़ा देकर विदा करो। वह कुछ भी नहीं बोलेगा···

कुछ भी नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं। सिरचन को बुलानेवाले जानते हैं, सिरचन बात करने में भी कारीगर है···महाजन टोले के भज्जू महाजन की बेटी सिरचन की बात सुनकर तिलमिला उठी थी, "ठहरो! मैं माँ से

जाकर कहती हूँ। इतनी बड़ी बात!"

"बड़ी बात ही है, बिटिया! बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो-दो पटेर की पटियों का काम सिर्फ खेसारी का सत्तू खिलाकर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है बबुनी!" सिरचन ने मुसकराकर जवाब दिया था।

उस बार मेरी सबसे छोटी बहन की विदाई होनेवाली थी। पहली बार ससुराल जा रही थी, मानू। मानू के दूल्हे ने पहले ही बड़ी भाभी को खत लिखकर चेतावनी दे दी है, "मानू के साथ मिठाई की पतीली न आए, कोई बात नहीं। तीन जोड़ी फैशनेबल चिक और पटेर की दो शीतलपाटियों के बिना आएगी मानू तो···" भाभी ने हँसकर कहा, "बैरंग वापस!" इसलिए, एक सप्ताह से पहले से ही सिरचन को बुलाकर काम पर तैनात करवा दिया था माँ ने, "देख सिरचन! इस बार नई धोती दूँगी, असली मोहर छापवाली धोती। मन लगाकर ऐसा काम करो कि देखनेवाले देखकर देखते ही रह जाएँ।"



पान जैसी पतली छुरी से बाँस की तीलियों और कमानियों को चिकनाता हुआ सिरचन अपने काम में लग गया। रंगीन सुतलियों से झब्बे डालकर वह चिक बुनने बैठा। डेढ़ हाथ की बिनाई देखकर ही लोग समझ गए कि इस बार एकदम नए फैशन की चीज बन रही है, जो पहले कभी नहीं बनी।

मँझली भाभी से नहीं रहा गया, परदे की आड़ से बोली, "पहले ऐसा जानती कि मोहर छापवाली धोती देने से ही अच्छी चीज बनती है तो भैया को खबर भेज देती।"

काम में व्यस्त सिरचन के कानों में बात पड़ गई। बोला, "मोहर छापवाली धोती के साथ रेशमी कुरता देने पर भी ऐसी चीज नहीं बनती बहुरिया। मानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है···मानू दीदी का दूल्हा अफसर आदमी है।"

मँझली भाभी का मुँह लटक गया। मेरी चाची ने फुसफुसाकर कहा, "किससे बात करती है बहू? मोहर छापवाली धोती नहीं, मूँगिया-लड्डू। बेटी की विदाई के समय रोज मिठाई जो खाने को मिलेगी। देखती है न।"

दूसरे दिन चिक की पहली पाँति में सात तारे जगमगा उठे, सात रंग के। सतभैया तारा! सिरचन जब काम में मगन होता है तो उसकी जीभ जरा बाहर निकल आती है, होंठ पर। अपने काम में मगन सिरचन को खाने-पीने की सुध नहीं रहती। चिक में सुतली के फंदे डालकर अपने पास पड़े सूप पर निगाह डाली—चिउरा और गुड़ का एक सूखा ढेला। मैंने लक्ष्य किया, सिरचन की नाक के पास दो रेखाएँ उभर आईं। मैं दौड़कर माँ के पास गया, "माँ, आज सिरचन को कलेवा किसने दिया है, सिर्फ चिउरा और गुड़?"

माँ रसोईघर में अंदर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली, "मैं अकेली कहाँ-कहाँ, क्या-क्या देखूँ!···अरी मँझली, सिरचन को बुँदिया क्यों नहीं देती?"

"बुँदिया मैं नहीं खाता, काकी!" सिरचन के मुँह में चिउरा भरा हुआ था। गुड़ का ढेला सूप के किनारे पर पड़ा रहा, अछूता।

माँ की बोली सुनते ही मँझली भाभी की भौंहें तन गईं। मुट्ठी भर बुँदिया सूप में फेंककर चली गई।

सिरचन ने पानी पीकर कहा, "मँझली बहूरानी अपने मैके से आई हुई मिठाई भी इसी तरह हाथ खोलकर बाँटती है क्या?"

बस, मँझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जाकर लगाया, "छोटी जाति के आदमी का मुँह भी छोटा होता है। मुँह लगाने से सिर पर चढ़ेगा ही···किसी के नैहर-ससुराल की बात क्यों करेगा वह?"

मँझली भाभी माँ की दुलारी बहू है। माँ तमककर बाहर आई, "सिरचन, तुम काम करने आए हो, अपना काम करो। बहुओं से बतकुट्टी करने की क्या जरूरत? जिस चीज की जरूरत हो, मुझसे कहो।"

सिरचन का मुँह लाल हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाँस में टँगे हुए अधूरे चिक में फंदे डालने लगा।

मानू पान सजाकर बाहर बैठकखाने में भेज रही थी। चुपके से पान का एक बीड़ा सिरचन को देती हुई बोली और इधर-उधर देखकर कहा, "सिरचन दादा, कामकाज का घर! पाँच तरह के लोग पाँच किस्म की बात करेंगे। तुम किसी की बात पर कान मत दो।"

सिरचन ने मुसकराकर पान का बीड़ा मुँह में ले लिया। चाची अपने कमरे से निकल रही थी। सिरचन को पान खाते देखकर अवाक् हो गई। सिरचन ने चाची को अपनी ओर अचरज से घूरते देखकर कहा, "छोटी चाची, जरा अपनी डिबिया का गमकौआ जर्दा तो खिलाना। बहुत दिन हुए···।"

चाची कई कारणों से जली-भुनी रहती थी, सिरचन से। गुस्सा उतारने का ऐसा मौका फिर नहीं मिल सकता। झनकती हुई बोली, "मसखरी करता है? तुम्हारी चढ़ी हुई जीभ में आग लगे। घर में भी पान और गमकौआ जर्दा खाते हो?···चटोर कहीं के!" मेरा कलेजा धड़क उठा··· यत्परो नास्ति!

बस, सिरचन की उँगलियों में सुतली के फंदे पड़ गए। मानो कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा पान को मुँह में घुलाता रहा। फिर, अचानक उठकर पिछवाड़े पीक थूक आया। अपनी छुरी, हँसियाँ वगैरह समेट सँभालकर झोले में रखे। टँगी हुई अधूरी चिक पर एक निगाह डाली और हनहनाता हुआ आँगन के बाहर निकल गया।

चाची बड़बड़ाई, "अरे, बाप रे बाप! इतनी तेजी! कोई मुफ्त में तो

काम नहीं करता। आठ रुपए में मोहरछाप वाली धोती आती है··· इस मुँहझौंसे के मुँह में लगाम है, न आँख में शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिक मिलेंगी। बांतर टोली की औरतें सिर पर गट्ठर लेकर गली-गली मारी फिरती हैं।"

मानू कुछ नहीं बोली। चुपचाप अधूरी चिक को देखती रही···सातों तारे मंद पड़ गए।

माँ बोली, "जाने दे बेटी! जी छोटा मत कर, मानू। मेले से खरीदकर भेज दूँगी।"

मानू को याद आया, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतलपाटी दी थी माँ ने। ससुरालवालों ने न जाने कितनी बार खोलकर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को। वह उठकर बड़ी भाभी के कमरे में चली गई।

मैं सिरचन को मनाने गया। देखा, एक फटी शीतलपाटी पर लेटकर वह कुछ सोच रहा है।

मुझे देखते ही बोला, "बबुआजी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं···मोहर छापवाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा?···ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गई अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिंदा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी उसी की बुनी हुई है। इस शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा···गाँव भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी···अब क्या?" मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह अब नहीं आ सकता।

मुझे देखते ही बोला, "बबुआजी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं··· मोहर छापवाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा?···ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गई अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिंदा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी उसी की बुनी हुई है। इस शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा···गाँव भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी···अब क्या?" मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह अब नहीं आ सकता।

बड़ी भाभी अधूरी चिक में रंगीन छींट की झालर लगाने लगी, "यह भी बेजा नहीं दिखलाई पड़ता, क्यों मानू?"

मानू कुछ नहीं बोली···बेचारी! किंतु, मैं चुप नहीं रह सका, "चाची और मँझली भाभी की नजर न लग जाए इसमें भी।"

मानू को ससुराल पहुँचाने मैं ही जा रहा था।

स्टेशन पर सामान मिलाते समय देखा, मानू बड़े जतन से अधूरी चिक को मोड़कर लिये जा रही है अपने साथ। मन-ही-मन सिरचन पर गुस्सा हो आया। चाची के सुर-में-सुर मिलाकर कोसने को जी हुआ···कामचोर, चटोर···!

गाड़ी आई। सामान चढ़ाकर मैं दरवाजा बंद कर रहा था कि प्लेटफॉर्म पर दौड़ते हुए सिरचन पर नजर पड़ी, "बबुआजी!" उसने दरवाजे के पास आकर पुकारा।

"क्या है?" मैंने खिड़की से गरदन निकालकर झिड़की के स्वर में कहा। सिरचन ने पीठ पर लादे हुए बोझ को उतारकर मेरी ओर देखा, "दौड़ता आया हूँ···दरवाजा खोलिए। मानू दीदी कहाँ हैं? एक बार देखूँ!"

मैंने दरवाजा खोल दिया।

"सिरचन दादा!" मानू इतना ही बोल सकी।

खिड़की के पास खड़े होकर सिरचन ने हकलाते हुए कहा, "यह मेरी ओर से है। सब चीज है दीदी! शीतलपाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी, कुश की।"

गाड़ी चल पड़ी।

मानू मोहर छापवाली धोती का दाम निकालकर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दाँत से काटकर दोनों हाथ जोड़ दिए।

मानू फूट-फूट रो रही थी। मैं बंडल को खोलकर देखने लगा—ऐसी कारीगरी, ऐसी बारीकी, रंगीन सुतलियों के फंदों का ऐसा काम, पहली बार देख रहा था।

सा
अ

बुढ़िया की कहानी

● दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

एक बुढ़िया एक गाँव से दूसरे गाँव जा रही थी। उसके पास एक भारी पोटली थी। उसने एक घुड़सवार को जाते हुए देखा। उसने उसको रोका और कहा कि "यह पोटली भारी है, मुझसे चला नहीं जाता। तुम इसे अगले गाँव ले जाओ। मैं आ रही हूँ।" घुड़सवार ने कहा, "तुम पैदल चल रही हो, मैं घोड़े पर हूँ। पता नहीं तुम कब पहुँचोगी! मैं इसे नहीं लेता।" फिर वह आगे निकल गया। थोड़ा आगे जाने पर उसने सोचा कि मुझे पोटली ले लेनी चाहिए। क्या पता उसमें कुछ महँगा सामान हो! वह वापस लौटा और बुढ़िया को कहा, "लाओ पोटली दे दो।" लेकिन बुढ़िया ने पोटली नहीं दी। उसने कहा, "अभी तो तुम पोटली दे रही थी, अब क्या हो गया।" बुढ़िया ने कहा, "जिसने तुमको पोटली लेने को कहा, उसी ने मुझे मना कर दिया।"

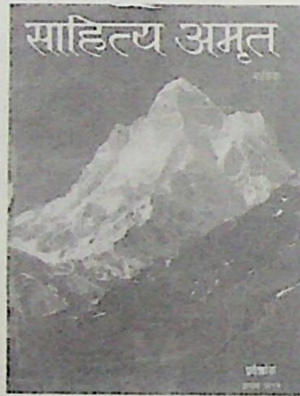
सा
अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

'साहित्य अमृत' के पच्चीसवें वर्ष पर

मृदुला सिन्हा





पच्चीस वर्ष की यात्रा पूर्ण कर
आगे ही आगे बढ़ती जाओ
जिस उद्देश्य से जन्म रचाया
पहला कदम था लक्ष्य-पूर्ति में
नाम मिला 'साहित्य अमृत'
दो-दो अमृत साथ हुए
सत्साहित्य भी अमृत है
संपूर्ण विश्व की जीवनीशक्ति
न पग रुका, न लक्ष्य हुआ ओझल
हर अंक विशेष, हर माह पाठक प्रतीक्षा
साहित्यकार, साहित्य का स्तर, हर अंक सँजोए अपने अंदर
देश-विदेश में पहुँच गई तुम, पाठकों की अंतरंग बनकर
सौ वर्षीय मानव जीवन में, इस आश्रम का है बड़ा महत्त्व
पढ़ना-लिखना, जीवन जीने की कला सीखना ध्येय
गृहस्थाश्रम के पच्चीस वर्षों तक परिवार पोषण
पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ का, उससे आगे संन्यास पच्चीस का
पत्रिका जीवन के लिए, बना नहीं कोई ऐसा विधान
इसलिए तेरे प्रवेशांक में ही, भरा साहित्य भंडार
मानव जीवन के चारों आश्रमों के जीवन-दर्शन
हर अंक में मानव-जीवन का रखकर पूरा ध्यान
बढ़े कदम आगे ही आगे, पाते पाठक प्रशंसा-सम्मान
अपने इस मुकाम पर, भर लो आशीष झोली भरपूर
कभी रिक्त न होवे झोली, तुम लक्ष्य की सीमा न लाँघो
बनी रहो लेखक की चहेती तुम, पाठक की सहेली बनी रहो
संपादक बदले, लेखक बदले, तेरा लक्ष्य कभी न उलझे
मेरा भी आशीष तुम ले लो
करनी पड़े न कभी प्रतीक्षा
समयानुकूल, अपने संस्कारवश
पहुँचो हर माह, समय से सब दूर।

पी.टी.-६२/२०
कालकाजी, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' क्यों?

साहित्यिक पत्रिका दुस्साहस ही है, घाटे का सौदा है, पाठकों की संख्या विद्युच्चालित संचार-माध्यमों की कृपा से सिकुड़ती जा रही है। साहित्य स्वयं चर्चा के बाहर निकलता जा रहा है, जो पत्रिकाएँ चल भी रही हैं, वे सरकारी-अर्द्धसरकारी हैं या फिर मुखर पक्षधरता के कारण इतरों का प्रवेश वर्जित करती हैं। इन सब निराशाओं के बीच पत्रिका निकालने की बात हमने और हमारे मित्रों ने सोची तो सफाई तो देनी ही होगी। पहली बात तो यह है कि साहित्यिक पत्रिका अपने आप में रचनात्मक व्यापार है और इसलिए वह सब विघ्न-बाधाओं की चिंता नहीं करता, वह दुर्निवार है। दूसरे, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने जो गूँजें-अनुगूँजें हमारे खुले आकाश को दी हैं, उन्हें अनसुनी कैसे किया जा सकता है! तीसरा कारण है, व्यावसायिक दृष्टि से कुछ जोखिम उठाकर भी ऐसे पाठकों की अपेक्षाओं की पूर्ति का दायित्व, जो साहित्य की रचना में अपनी पाठकीय सहभागिता रखते हैं।

वे साहित्य चाहते हैं; साहित्य की समीक्षा से, विशेषत: अनपढ़ समीक्षा से, ऊब चुके हैं। विचारों की पक्षधरता तो मनुष्य की स्वतंत्रता का शुभ लक्षण है, परंतु विकल्प की अनुमति न देनेवाली पक्षधरता स्वतंत्रता पर आघात है। साहित्य विचारहीन नहीं होता, वह विचारों के आग्रह को संवेदना की गुहार का रूप देता है, इसी से वह बुद्धिग्राही से अधिक हृदयग्राही होता है। असंतुलित समीक्षा के आतंक में हृदयग्राही साहित्य दुबका हुआ-सा है। आज एक ऐसी साहित्यिक पत्रिका की इसीलिए, इस सबकुछ के बावजूद, एक जबरदस्त माँग है, जो हृदयग्राही साहित्य का क्षितिज खोल सके और रचनाकार को आतंक से मुक्त कर सके; साथ ही पाठक और रचनाकार के बीच ऐसा पुल बन सके जो धार को छूता हुआ हो। जब पानी का जोरदार ढाल आए, पुल डूब जाए, रसधार बन जाए; पानी उतर जाए तो फिर पुल बन जाए। इसलिए यह 'साहित्य अमृत' परसने का संकल्प हुआ।

साहित्य के साथ अमृत जोड़ना दयावश या अभिमानवश नहीं है। जिस अमृत के लिए देवता और असुर इतने व्याकुल हुए, वह मनुष्यों का अमृत नहीं है, वह मरों को जिलानेवाला नहीं, मरणधर्मा जीवन को मरण से निरपेक्ष बनानेवाला है। साहित्य ही यह संभव बनाता है कि शरीर भस्म हो जाता है, शरीर से हुए कार्य कुछ समय तक ही स्मरण किए जाते हैं, उस शरीर से जुड़े हुए लोग कुछ समय तक ही रोते-बिलखते हैं, धीरे-धीरे यह सब निश्शेष हो जाता है, पर बचती है उस शरीर की वीणा से बजे कुछ अनछुए रागों की गूँज। वही साहित्य है। वही अमृत है। वह गूँज हमें इस योग्य बनाती है कि मानुष देहवल्ली को वीणा न भी बना सकें पर वीणा की लहर पकड़नेवाली जीवंत तंत्री तो बना ही सकते हैं। मृत्यु के अंतराल को नकारकर, काल को निचोड़कर हम संवेदनाओं की अमर ध्वनि जो बहा पाते हैं, वह साहित्य की भगीरथ साधना का प्रताप है। कैसे कहें, यह साहित्य अमृत नहीं है।

विष और वारुणी तो विपुल मात्रा में हाट-बाट बह रहे हैं, इनके लिए अब किसी मंथन की आवश्यकता नहीं। हमारा निरंतर प्रयास होगा कि हम अपने जातीय जीवन के भीतर के मनुष्य को मथें; और प्रतिस्पर्धा के भाव से, लोभ के भाव से न मथें। मथें कि हम सबकी मुमूर्षु संवेदना को एक बूँद अमृत दे सकें—संवेदना जो सबकी है, अकेली मेरी-तुम्हारी-उसकी एक की नहीं। साथ ही, हम विचारों के क्षेत्र में कितने भी उन्मुक्त रहें (और उन्मुक्त होना चाहिए), अपने साहित्य-आचार के क्षेत्र में कुछ अपेक्षाएँ रखें। पहली अपेक्षा देश-काल का स्मरण और देश-काल लाँघने की विधि का स्मरण। देश-काल वही लाँघ सकता है, जो सीस उतारने के लिए तैयार हो। दूसरी अपेक्षा है अपने लोक का ध्यान। साहित्यिक अलौकिक आलंबन को भी लेकर चलता है सही, पर वह संप्रेषित लोक को होता है। देवता और असुर न साहित्य रचते हैं, न साहित्य पढ़ते हैं। मनुष्यों में जो योग और मद से ग्रस्त हैं, वे साहित्य से निरपेक्ष ही रहते हैं। लोक का अर्थ मनुष्य तक सीमित नहीं, वह मनुष्य के सभी दृश्य और अनुभाव्य संसार तक फैला हुआ है। हम ऐसी रचनाओं को सादर आमंत्रित करते हैं जो विचारों के आकाश में उन्मुक्त विचरण करते हुए भी इस उदार रमणीया वसुधा से, एक तिनके का ही सही, भरोसा रखती हैं, भरोसे के नाते ही अटूट रिश्ता रखती हैं।

'साहित्य अमृत' में रचनात्मक पक्ष पर ही ध्यान रहेगा। रचना की हर विधा—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, व्यंग्य-विनोद, यात्रावृत्त, संस्मरण ही प्रमुख रहेंगे। भाषा रचना का माध्यम ही नहीं, रचना के संदेश का भी अविभाज्य अंग है, इसलिए भाषा के उचित विन्यास पर चर्चा अवश्य देंगे। विश्व को उन्मथित करनेवाले नए विचारों के लिए एक स्तंभ देंगे। साहित्य के हृदयपक्ष को केंद्र में रखकर कोई-न-कोई आस्वादपरक चर्चा भी बीच-बीच में देने का प्रयास करेंगे। साहित्य की निरंतरता को रेखांकित करने के लिए एक-न-एक ऐसी रचना देंगे जो आज से चालीस-पचास वर्ष पहले रची गई, जिससे उसकी याद जगाने से रचनाकार को अपनी अस्मिता का भरापूरा रूप पहचान में आ सकेगा। इस अंक में हम स्वर्गीय नवीनजी की 'क्वासि' पुस्तक की भूमिका दे रहे हैं। यथासंभव बालकों और तरुणों को संबोधित रचनाएँ भी देंगे, क्योंकि साहित्य की सबसे अधिक सक्रियता उन्हीं में होती है।

संक्षेप में, 'साहित्य अमृत' एक बड़े साहित्य-परिवार की पत्रिका होगी, वह जीवन को सकारने की पत्रिका होगी और हार-हारकर उठनेवाले, मर-मरकर जीनेवाले मनुष्य की प्रतिष्ठा की पत्रिका होगी।

(विद्यानिवास मिश्र)

संस्कृति

• विद्यानिवास मिश्र



हिंदी और संस्कृत के अग्रणी विद्वान्, प्रख्यात निबंधकार, भाषाविद् और चिंतक। कैलीफोर्निया और वाशिंगटन विश्वविद्यालयों में भी अतिथि प्रोफेसर रहे। 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक, 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिंदुइज्म' के प्रधान संपादक (भारत), 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संस्थापक संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली तथा वेद, पुराण शोध संस्थान, नैमिषारण्य के मानद सलाहकार रहे। २००३ में राज्यसभा के सांसद। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत। स्मृतिशेष : १४ फरवरी, २००५।

यह शब्द इस रूप में प्रयोग में बहुत कम आता था। अब यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' के अर्थ को इंगित करने के लिए प्रयोग में बहुत और बहुधा आने लगा है। शब्द मूलतः 'संस्कार' है, जिसका अर्थ है—दोष का निराकरण, गुण का आधान। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में इसी अर्थ में इसकी व्युत्पत्ति दी गई है। 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु का अर्थ यदि दोष हटाकर गुण जोड़ना अभीप्सित हो तो 'सम्' और 'कृ' के बीच 'स्' का आगम होता है। इसलिए अनाज फटकने को भी संस्कार कहते हैं, पानी छानने को पानी का संस्कार कहते हैं, मंत्र प्रयोग द्वारा जन्म के बाद कई मांगलिक अनुष्ठान होते हैं, जिनसे नवजात शिशु अभिमंत्रित होकर नया संस्कार पाता है, उसका नामकरण होता है, यह भी संस्कार है; पहला क्षौर-कर्म होता है, जन्म के बाल उतार लिये जाते हैं, यह भी संस्कार है; गुरु के पास अध्ययन के लिए जाने के पूर्व ब्रह्म-सूत्र या यज्ञोपवीत धारण संस्कार होता है; अध्ययनशाला से निकलने पर समावर्तन संस्कार होता है, गृहस्थी में प्रवेश के लिए विवाह-संस्कार होता है और अंत में इहलीला समाप्त होने पर इस प्राण शरीर का अंत्येष्टि-संस्कार होता है। एक तरह से ये सभी संस्कार नए-नए कर्तव्य के लिए दीक्षा हैं और इस प्रक्रिया द्वारा मनुष्य में नई-नई शक्तियों की उद्भावना की जाती है। संस्कार के ये अर्थ कल्चर के वाचक शब्द 'संस्कृति' में समाहित हैं। संस्कार जहाँ एक कारक व्यापार है, वहीं संस्कृति क्रिया है। आधुनिक संदर्भ में संस्कृति की एक परिभाषा आचार्य नरेंद्र देव ने दी। संस्कृति मानव चित्त की खेती है। खेत की उर्वरता को बार-बार सुनिश्चित करने के लिए जोता जाता है; नीचे की मिट्टी ऊपर, ऊपर की मिट्टी नीचे लाई जाती है। इसी तरह चित्त को मथा जाता है और उसमें से सुषुप्त ऊर्जा निकाली जाती है तो उसे संस्कृति कहते हैं। डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने संस्कृति के वर्तमान अर्थ के लिए पुराने 'कृष्टि' शब्द का प्रयोग किया, जो एक तरह से 'कल्चर' का ध्वन्यात्मक दृष्टि से संवादी शब्द है। इस 'कृष्टि' शब्द का अर्थ खेती के विविध प्रकारों—बागवानी, रेशम के कीड़ों का पालन आदि अर्थों में विस्तृत हुआ, साथ ही किसी भी पदार्थ को संशोधित करके उसके स्वरूप को उत्तम बनाने के अर्थ में परिवर्धित हुआ। इन सभी अर्थों का आधान 'संस्कृति' शब्द में करके इसे मनुष्य की सर्जनात्मक ऊर्जा के अनुसंधान के अर्थ में किया जाता है। संस्कृति इसीलिए एक सिद्ध पदार्थ नहीं है, बना-बनाया या पका-पकाया पदार्थ नहीं है। यह साध्य है, निरंतर कुछ-से-कुछ बन रहा पदार्थ है। यह निष्पन्न न होकर निष्पाद्य है। अपने को नए-नए रूप में उत्पन्न करने का भाव है। यह उसके सहज स्वभाव को ऊपर लाना है, यह उसके धर्म को उभारना है। संस्कृति के ये सारे संदर्भ हमारी परंपरा में धर्म से द्योतित होते थे। वह अधिक व्यापक शब्द था। आजकल 'धर्म' शब्द को संकुचित कर दिया गया है और वह विश्वास या मत का वाचक हो गया है तथा बहुत कुछ पहले से दी गई कुछ विधियों के पालन तक सीमित हो गया है। कहने को तो संस्कृति के बारे में यह कहा जा सकता है। संस्कृति भी जब कभी अपनी सर्जनात्मकता खोती है तो वह स्वभाव न रहकर केवल आदत बन जाती है या सुविधा की लीक बन जाती है। लीक से बाहर गाड़ी चलाते हैं तो बैलों को असुविधा होती है। लेकिन लीक कभी-कभी मिट भी जाती है। उसपर गाड़ी न चले तो लीक दिखाई नहीं देती। उस समय नई लीक बनानी होती है। तब संस्कृति का मूल धर्म जगाया जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गतिशीलता ही संस्कृति है, ठहराव इसी संस्कृति के अनुसार चलने पर बनी हुई कुछ राहें हैं, आचरण के कुछ बने हुए साँचे हैं। उन साँचों के प्रतिदर्श के रूप में रहन-सहन के ढंग हैं—उन्हीं को हम सभ्यता कहते हैं। स्मरणीय है कि 'सभ्यता' शब्द जिस 'सभ्य' शब्द से निकलता है, उसका अर्थ है—सभा में रहने के योग्य। और सभा का अर्थ है—एक ऐसा समुदाय, जो एक-दूसरे को

भली-भाँति समझता है और एक-दूसरे के साथ अच्छा निर्वाह करता है, साथ-साथ प्रकाशित होता है (सह भाति), साथ-साथ चमकता है। अंग्रेजी के सिविलाइजेशन का अर्थ है—नगर में रहनेवालों का रहन-सहन। इन्हीं दो शब्दों में दो प्रकार की सभ्यताओं का अलग-अलग आधार इंगित होता है। एक का आधार शहर है, दूसरे का आधार केवल शहर नहीं, गाँव भी है, वन भी है। कालांतर में 'सिविलाइजेशन' शब्द तो नगर तक केंद्रित रहा, पर 'कल्चर' शब्द नृतत्त्वशास्त्र की कृपा से वन में रहनेवाले सभ्यता के पैमाने पर पूरे न उतरनेवाले लोगों के साथ भी जुड़ा। इसीलिए घुमंतू संस्कृति (नोबेडिक कल्चर), चरागाही संस्कृति (पैस्टोरल कल्चर), आदिम संस्कृति (प्रिमिटिव कल्चर),सामंती संस्कृति (फ्यूडल कल्चर)—जाने कितने शब्दों का जन्म हुआ। पर इन सब में एक सूत्र है—संस्कृति अपने को बेहतर बनाने का संकल्प है। इस 'अपने को' में एक समुदाय भी, जो अपना है, सम्मिलित है। इसे दूसरी तरह से कहना चाहें तो कह सकते हैं कि संस्कृति किसी-न-किसी उच्चतर जीवन-उद्देश्य या मूल्य से प्रेरित है। अपने लिए जीना सार्थक जीना नहीं है। सामुदायिक जीवन व्यतीत करनेवाले विकसित चैतन्यवाले प्राणी के लिए कुछ सदुद्देश्य ही जीवन की गति के कारक होते हैं। उद्देश्यों की उपलब्धि संस्कृति नहीं, उस उपलब्धि में क्या कुछ घटता है, कैसे कुछ घटता है और कैसे कुछ अघटित घटने पर प्रतिरोध आता है, उस प्रतिरोध को हटाने में कितना बल लगता है, प्रतिरोध हटने पर गति कितनी तीव्र हो जाती है—यह सब मिलकर संस्कृति कही जाती है। केवल रूपांतर या परिवर्तन संस्कृति नहीं है। रूपांतर जब तक प्रतिमानों को पाने के लिए न हो तब तक रूपांतर उसी प्रकार के अभ्यास हैं जिस प्रकार के अभ्यास बच्चे जमीन या कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचकर करते हैं।

संस्कृति के बारे में उपर्युक्त विचार-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में जब हम भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विचार करते हैं तब बार-बार हमारी स्मृति में 'धर्म' शब्द आता है। धर्म सार्थक जीवन की विधि है। पुरुषार्थ साधन है और मनुष्य का शरीर इस धर्म का साधन है। वह शरीर उपेक्षणीय नहीं है। शरीर के भीतर ही धर्म का वास्तविक प्रयोजन सधता है; क्योंकि यह शरीर ब्रह्मांड का एक प्रतिरूप है। इसलिए शरीर के साधने का प्रत्येक दैनंदिन व्यापार भी धर्म है। जब यह मानकर शरीर-व्यापार होता है कि संपूर्ण जीवन इस शरीर के जीवन में सूक्ष्म रूप में वर्तमान है तो संपूर्ण सृष्टि के भीतर समरसता या संगति स्थापित करना ही शरीर का धर्म हो जाता है। यही संस्कृति है। सब में अपने को देखो, अपने में सबको देखो। सबको देखोगे तो किसी के प्रति उपेक्षा नहीं रखोगे। क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणी भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। सब में अपने को देखोगे तो सबके लिए प्रिय कार्य करोगे। सबका प्रिय देखोगे, अपना अलग से कोई प्रिय होगा तो उसकी भी कसौटी यही होगी कि सबको वह प्रिय है कि नहीं। जो निरंतर देखेगा वह अपने आप स्वतंत्र विवेक से देखनेवाला बन जाएगा। वह अपने आप मनुष्य के चरम मूल्य स्वाधीनता का आराधक हो जाएगा और जो आराधक होगा वह सत्य का अन्वेषक भी होगा। पहले के प्रकाशित सत्य का भी परीक्षक होगा। वह आत्मदीप होगा, अपने लिए स्वयं प्रकाश होगा।

यह तो भारतीय संस्कृति का एक पक्ष हुआ, उसका दूसरा पक्ष है—देश-काल में रहते हुए देश-काल का अतिक्रमण करते रहने का सामर्थ्य। यह सामर्थ्य देश-काल में पूरी तरह संपृक्त हुए बिना, दूसरे शब्दों में देश-काल को साधे बिना नहीं आता। जहाँ रहें, जब रहें, उसके साथ संगति बिठाकर रहें, उसकी अपेक्षाओं को पूरा करें, पर उस देश-काल के आगे की संभावनाओं का भी ध्यान रखें और जहाँ कहीं असंगति या कुछ असंतुलन आ रहा है वहाँ देश-काल के आगे चले जाने का साहस करें। जब किसी सोने के संपुट में सत्य ढक जाए तो सोने का लोभ छोड़कर, उस ढक्कन को जोर लगाकर अलग फेंक दें कि सत्य दिख जाए। यह साहस कोई समुदाय नहीं दिखाता, समुदाय को जीनेवाला कोई साधक दिखाता है, तपस्वी दिखाता है; कोई अवतार दिखाता है, कोई बोधिसत्त्व दिखाता है, कोई जिन दिखाता है; कोई ऋषि दिखाता है, कोई कवि दिखाता है; कोई कलावंत दिखाता है, कोई शिल्पी दिखाता है, कोई चितेरा दिखाता है। मनुष्य का धर्म या आज की शब्दावली प्रयुक्त करें तो उसकी संस्कृति ऐसे निराले लोगों की चर्या से नवनिर्मित होती चलती है। इसलिए यहाँ कोई अंतिम उद्धारकर्ता नहीं है। उद्धारकर्ताओं की नई-नई संभावना रहती है तो देश-काल का विस्मरण भी नहीं होता और देश-काल में बँधना भी नहीं होता है। बगीचे में घूमते हुए भी यदि एक छोर से दूसरे छोर तक भरा कटोरा लेकर जाना हो और यह ध्यान रखना हो कि एक बूँद जल छलके नहीं तो देश-काल रहते हुए भी स्थगित हो जाते हैं। उत्तम कविता पढ़ते हैं, वह किसी निश्चित देश-काल को संबोधित है, उसमें रचित है; लेकिन जब पढ़नेवाला अपने देश-काल और कविता में वर्णित देश-काल से भी अलग हो जाए तब वह कविता उत्तम होती है। संस्कृति का यह अभिलक्षण चित्त के गहरे मंथन का ही एक ऐसा प्रकार है जिसमें चित्त का विचित्तीकरण हो जाता है। मन का उन्मनीकरण हो जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चित्तवृत्ति की गंभीर-से-गंभीरतर साधना के बिना संस्कृति का उच्चतर प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

यह तो भारतीय संस्कृति का एक पक्ष हुआ, उसका दूसरा पक्ष है—देश-काल में रहते हुए देश-काल का अतिक्रमण करते रहने का सामर्थ्य। यह सामर्थ्य देश-काल में पूरी तरह संपृक्त हुए बिना, दूसरे शब्दों में देश-काल को साधे बिना नहीं आता। जहाँ रहें, जब रहें, उसके साथ संगति बिठाकर रहें, उसकी अपेक्षाओं को पूरा करें, पर उस देश-काल के आगे की संभावनाओं का भी ध्यान रखें और जहाँ कहीं असंगति या कुछ असंतुलन आ रहा है वहाँ देश-काल के आगे चले जाने का साहस करें।

भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता है अलग-अलग वस्तुओं में निरंतरता और परस्पर अवलंबिता देखना। अलग-अलग रहते हुए भी वस्तुएँ एक-दूसरे से असंबद्ध नहीं हैं। उनमें कोई आश्रयदाता, कोई आश्रित नहीं है, सभी परस्पर आश्रित हैं। विराट् व व्यक्त सूक्ष्म अव्यक्त पर आश्रित है। इस प्रकार के भाव में प्रभुता और दासता, ऊँच और नीच की कोटियाँ नहीं आने पातीं। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि ऐसा है तो जातिभेद का वैषम्य क्यों, मनुष्य-मनुष्य एक क्यों नहीं ? इसके समाधान में कहा जा सकता है कि मनुष्य-मनुष्य में एकता की बात छोटी समझते हुए प्राणिमात्र या जीवमात्र की एकता की बात जब सोची जाती है, जैसा कि भारतीय संस्कृति की स्थापना है तो यह पकड़ में नहीं आती और ऐक्य भावना पाखंड बनने लगती है। पर यदि ऐक्य भावना न होती तो बार-बार पाखंड को तोड़ने के लिए नए-नए सिद्धांत प्रतिपादित न हुए होते और नए-नए आक्रामक विचार न आए होते। यह उल्लेखनीय है कि भेद पदार्थों के बीच नहीं है, पदार्थों की भूमिका के बीच है। हरेक की भूमिका अलग है, पर हर एक तमाम एकों से मिलकर एकत्व का साधक है 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म'। इसीलिए यह स्पष्ट देखते हुए भी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का भोग करता है, यदि कुछ अधिक सुख में रहनेवाला मनुष्य किसी दु:ख में पड़े विपन्न व्यक्ति के बारे में यह सोचे कि वह अपने कर्मों का भोग भोग रहा है तो यह सर्वभाववाले धर्म के प्रतिकूल बात होगी। ऐसे व्यक्ति के लिए करुणा ही हो, क्योंकि उस व्यक्ति में भी वह संभावना है जो मुझमें है, उसके पास भी कुछ सृष्टि को देने की संपत्ति है, शायद दु:ख ही उसकी संपत्ति हो, या उससे भी अधिक दु:ख की अनुभूति ही उसकी संपत्ति हो, उसे भी आदमी अपनाता है तो पूर्णतर होता है। इसीलिए दूसरे के दु:ख की निवृत्ति अपने सुख की प्राप्ति से बड़ा धर्म है। इसी के साथ दूसरे के सुख में सुख पाना भी अपने सुख की अपेक्षा बड़ा धर्म है। यह बड़ा धर्म ही संस्कृति का एक उत्कृष्ट परिमापक है। सा अ

दो नवगीत

• यश मालवीय



जाने-माने नवगीतकार। तीन नवगीत-संग्रह, एक दोहा-संग्रह, दो व्यंग्य-संग्रह, दो बालगीत-संग्रह; एक नाटक 'मैं कठपुतली अलबेली' भारत रंग महोत्सव, नई दिल्ली में मंचित। उ.प्र. हिंदी संस्थान से दो बार 'निराला सम्मान' सहित 'सर्जना सम्मान', 'उमाकांत मालवीय बाल साहित्य पुरस्कार'; मुंबई का 'मोदी कला भारती युवा कविता सम्मान'।

पर यहाँ बच्चे नहीं हैं

शाम है औ' पार्क भी है
पर यहाँ बच्चे नहीं हैं
लौट जाएँ, आप भी,
हालात कुछ अच्छे नहीं हैं

फिसलपट्टी पर उदासी डोलती,
सुनसान झूले
दिख रहे हैं एक-दो चेहरे
कि जैसे राह भूले

बादलों में सनसनी है,
धूप के लच्छे नहीं हैं

डूबता सूरज निहारें
खिड़कियों से बड़े-बूढ़े
हर कहीं संवाद के हैं
दर्द से दु:खते मसूड़े

बात भी अब क्या करें,
जो बात के कच्चे नहीं हैं

सुबह हो या शाम,
पत्ते शाख पर हिलते नहीं हैं
रास्ते भी अनमने हैं,
मोड़ पर मिलते नहीं हैं

है हवा भी डरी-सहमी
फूल के गुच्छे नहीं हैं

मास्क पहनकर हवा घूमती

बतियाहट भी लगती है
अब बंद किवाड़ों जैसी
मैदानों की रातें भी
हो गईं पहाड़ों जैसी

मास्क पहनकर हवा घूमती
चुप-चुप आए-जाए
दिन की धूप चमकती,
मन की धूप मगर सँवलाए

रिश्ते-नातों की गरमी भी
लगती जाड़ों जैसी

दीया जलाने लेकिन
जलता सा अँधियार टटोलो
शीशे के आगे जाओ
खुद से बतियाओ-बोलो

सारी दुनिया सिमटी है
अपने में, बाड़ों जैसी

समय हुआ है रुकी रेल सा
ठहरे पानी जैसा
बाजारों को भूल गया है
फटी जेब का पैसा

कठिन जिंदगी पिरा रही है,
दुखती दाढ़ों जैसी

सा अ

'रामेश्वरम्'
ए-१११, मेंहदौरी कॉलोनी
इलाहाबाद-२११००४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९७८३९७९२४०२

दो कविताएँ

● बालकवि बैरागी



प्रसिद्ध कवि, साहित्यकार, समाजधर्मी व राजनीतिज्ञ। सोलह कविता-संग्रह, दो काव्यानुवाद, दो मालवी गीत-संग्रह, एक उपन्यास, एक यात्रा-वृत्तांत, दो कहानी-संग्रह के अलावा सैकड़ों संस्मरण एवं आलेख प्रकाशित। देश के कवि सम्मेलनों, कविता-पाठ, आमंत्रित, आकाशवाणी और दूरदर्शन से सतत, प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, छोटी-बड़ी २५-२६ फिल्मों के लिए गीत-लेखन। लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्य रहे। स्मृतिशेष : १३ मई, २०१८।

विश्व की शुभकामना—माँ

मैं धरा का धैर्य हूँ
ज्योति हूँ मैं ही गगन की
अग्नि की मैं ही लपट हूँ
तीव्र गति हूँ मैं पवन की
नीर का गंभीर स्वर हूँ
वत्सला हूँ—वंदना हूँ
मैं जननि हूँ—जन्मदात्री
विश्व की शुभकामना हूँ।

लोरियाँ गाकर सुलाया
अब जगाती हूँ तुम्हें,
भैरवी गाओ—उठो!
रस्ता दिखाती हूँ तुम्हें
मत मुझे टालो—सम्हालो,
होश से कुछ काम लो,
जब कभी आए मुसीबत
सिर्फ माँ का नाम लो।

करके देखो

घर-घर देहरी-देहरी
छज्जे-छज्जे, आले-आले
सुहागनों ने रख दिए
अपने दीये
बरसा दिए अपने
आँचलों से
आसमान भर उजाले।

जगमग हो गया जगत्
हर मुँड़ेर हो गई सुहागन
तब भी तुम्हारी
उदासी नहीं गई।
शर्तें लगाते हो
रोज नई-नई
'ऐसा हो तो वैसा करूँ
वैसा हो तो ऐसा करूँ'
ऐसे में कौन आएगा
दीया रखने
तुम्हारे सुनसान बियाबान में
शोकसभा करते रहो
जिंदगी भर
अपने मसान में।
फुरसत नहीं है दुनिया को
जो तुम्हारे सुख की सोचे
अपनापन देकर
तुम्हारे आँसू पोंछे।
अपना दीया खुद बनाओ
उसे नेह से भरो
बाती रखो संघर्षवती
संकल्पशील तीली की
जुगत करो।
दोस्ती करो उजाले से
बात करो
अपने गुमसुम आले से
देहरी लीपो
माँडो एकाध माँडणा
टेढ़ा-मेढ़ा।
और सुरे-बेसुरे ही सही
अगर तुमने 'हीड़'
का कोई सुर छेड़ा
तो जुट जाएँगे लोग
कट जाएँगे सारे मनोरोग
अपने आप सज जाएगी
लक्ष्मी-पूजा की छोटी-बड़ी थाली
भाग खड़ी होगी
अमावस काली
कहेगी—
'अरे! अरे!!
ये तो मनाने लगा
अच्छी-खासी दीवाली'

मरी उदासी को
कूड़े पर फेंको
और कुछ नहीं
कर पा रहे हो तो
ऐसा ही करके देखो।

सा
अ

तुम मेरी माँ हो

● विष्णु प्रभाकर



हिंदी के मूर्धन्य लेखक। कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबंध, एकांकी, यात्रा-वृत्तांत आदि प्रमुख विधाओं में लगभग सौ कृतियाँ प्रकाशित। 'आवारा मसीहा' सर्वाधिक चर्चित जीवनी रही; जिसपर 'पाब्लो नेरुदा सम्मान', 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' सदृश अनेक देशी-विदेशी पुरस्कार मिले। प्रसिद्ध नाटक 'सत्ता के आर-पार' पर भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'मूर्तिदेवी पुरस्कार'। हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'शलाका सम्मान' तथा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'गांधी पुरस्कार' से अलंकृत। स्मृतिशेष : ११ अप्रैल, २००९।

वायुयान निरंतर तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। ऊपर नीलगगन है। बीच में नाना रूप धारण किए मेघ-मालाएँ कहीं शुभ्र-श्वेत रंग के हिमखंड जैसी फैली हुई हैं। उनके ऊपर पड़ती धूप उन्हें और भी उज्ज्वल बना देती है। कहीं तीव्र गति से आक्रामक रूप धारण किए काली घटाएँ पास और पास—आती दिखाई देती हैं।

तभी एकाएक तीव्र झटका लगता है। वायुयान ऊपर उठ जाता है। सघन मेघ-मालाएँ तरल वायु में परिवर्तित होकर नीचे रह जाती हैं।

यह सब देखते हुए अन्नापाउला न जाने कब इनसे मुक्त होकर मस्तिष्क में उठते नाना रूप विचारों में खो गई। नाना रूप मानव-मूर्तियाँ तेजी से उसके सामने उभरती हैं और उतनी ही तेजी से पीछे छूटती चली जाती हैं। इस प्रक्रिया में न जाने वह कब सुदूर भूतकाल में भटक गई, जहाँ रह-रहकर अनेक स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर उभरतीं और उसे बेचैन कर जातीं।

वह अपनी माँ से मिलने जा रही है—उस माँ से, जिसके शरीर के अंश से उसका शरीर निर्मित हुआ है, जिसकी धमनियों में बहनेवाला रक्त उसकी धमनियों में बह रहा है। उसने कहीं पढ़ा था—'माँ तो आकाश है। आकाश, जहाँ सूर्य है, चंद्र है और है नक्षत्र मंडल। जीवनदायी जल है, और···और···'

कुछ क्षणों के लिए सहसा वह कहीं खो गई। उसे माँ के बारे में बहुत कुछ पता था। माँ जो हमें गिर-गिरकर उठना सिखाती है, चलना सिखाती है। उसी माँ के पास तो वह रहती थी; पर अचानक एक दिन जब वह सात-आठ साल की थी, उसके पिता ने उसे बताया, ''बेटी, तू जिसे अपनी माँ मानकर इतना प्यार करती है और बदले में वह भी तुझे माँ का प्यार देती है, वह तेरी 'जन्मदात्री माँ' नहीं है। तेरी जन्मदात्री माँ सुदूर भारत के एक प्रांत गोवा के एक गाँव के छोटे से घर में रहती है।''

उसने सुन लिया, पर उसे सहसा विश्वास नहीं आया। वह फिर अपने खेल में लग गई, लेकिन वह बात तो उसके मस्तिष्क में अपना स्थान बना चुकी थी। बीच-बीच में जैसे बिजली कौंधती हो, उसके मन में प्रश्न उभरता, विशेषकर जब उसकी यह माँ उसे प्यार कर रही होती तो उसके अंतर में सहसा एक आवाज उभरती, 'यदि यह मेरी माँ नहीं है तो मुझे इतना प्यार कैसे करती है और जो मेरी जन्मदात्री है, वह कहाँ है, कैसी है, उसने मुझे अपने पास क्यों नहीं रखा?'

सहसा वह मौन हो गई। इस प्रश्न का उत्तर तो अब वह जान चुकी है और उसपर उसे विश्वास भी हो गया है। पता नहीं इस 'माँ' शब्द में क्या आकर्षण है। वह धीरे-धीरे पागल हो उठी अपनी उस जन्मदात्री माँ को देखने के लिए। उसे याद है, आज भी जब वह कुछ बड़ी हुई तो उसे इस बारे में पूछते हुए बहुत गुस्सा आया था। उसने अपने पिता को पीट दिया था। उन्होंने उससे यह बात क्यों छिपाए रखी अब तक?

और इसी प्रक्रिया में उन्होंने एक दिन मुझे सबकुछ विस्तार से बताया था। बताया था कि मेरी जन्मदात्री गोवा की रहनेवाली भी नहीं थी। वह श्रीलंका में रहनेवाले एक गरीब डच परिवार की बेटी थी। उस समय श्रीलंका पर डच लोगों का अधिकार था। उसका परिवार बहुत गरीब था, लेकिन वह बहुत सुंदर थी। उसके पड़ोस में ही गोवा का एक दंपती रहता था। वह जानता था कि यह परिवार इस सुंदर कन्या का लालन-पालन नहीं कर सकता। इसलिए उन्होंने उसे गोद ले लिया और जब वह परिवार गोवा लौटा तो वह भी उनके साथ गोवा आ गई।

लंबी कहानी है। बालिका किशोर हुई, किशोर कन्या ने यौवन की दहलीज पर पैर रखा। उसी के साथ निखर उठा उसका रूप। यौवन के साथ-साथ वह भी अँगड़ाई लेने लगा था। उस समय गोवा पर पुर्तगाल का शासन था। वह छोटा सा समुद्र तटीय प्रांत पुर्तगाल के सैनिकों से भरा हुआ था। यौवन और सौंदर्य यदि मुक्त हो जाए तो क्या नहीं हो सकता है। वह सैनिकों के चक्रव्यूह में फँस गई और एक दिन उसके और मेरे पिता के बीच के संबंध बहुत सघन हो उठे। उसी प्रक्रिया में मेरा जन्म हुआ।'···

सोचते-सोचते सहसा अन्ना ने बाहर की ओर देखा। बादल अब

नहीं थे। निपट नीला आकाश। कितना सुंदर लग रहा था। विमान में सहसा चाय आ जाने से हलचल मच उठी थी। वह सहज हो पाती कि उसके पति ने धीरे से उससे कहा, ''उठो, चाय आ गई है।''

उसने अचरज से उन्हें देखा और बस मुसकराती रही। कुछ भूलने का प्रयत्न करती रही और धीरे-धीरे चाय का घूँट भी भरती रही।

उसके मस्तिष्क में फिर कुछ घटनाएँ तेजी से घूमने लगीं। उसे कुछ याद नहीं। तब वह कुछ भी तो नहीं समझती थी। सबकुछ सुना है उसने। उसकी वह स्वच्छंद वृत्तिवाली माँ उसकी देखभाल नहीं कर सकती थी। वह अपने भारतीय दादा-दादी की गोद में पलकर ही बड़ी हुई थी।

जब वह दो वर्ष की भी नहीं थी कि भारतवासियों ने गोवा को पुर्तगाल के चंगुल से मुक्त करा लिया। वह अब भारत का स्वतंत्र प्रांत था।

तब अपने देश जाते हुए उसके पिता ने सोचा कि मेरी जन्मदात्री मेरा पालन-पोषण नहीं कर पाएगी। मैं इसे अपने साथ पुर्तगाल ले जाऊँगा।

और उसके लिए उन्होंने बाकायदा कानूनी काररवाई करते हुए अंततः मुझे अपने साथ ले जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। माँ को इन बातों की बहुत चिंता नहीं थी। दादा-दादी अशक्त हो चुके थे, इसलिए एक दिन उसने अपने को पुर्तगाल में पाया और फिर वह पुर्तगाल की होकर ही रह गई।

वायुयान तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। कभी शुभ्र-श्वेत मेघों के बीच से गुजरता है, कभी तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए भूरी घटनाएँ उसे घेरने की चेष्टा करती हैं, पर चालक तो ऊपर—और ऊपर उठ जाता है। वहाँ वही नीला आकाश, नीचे चारों ओर फैली धूप। वह देर तक इस वातावरण में आगे बढ़ता है। इस सारी प्रक्रिया में विचारों का एक तुमुल-नाद निरंतर उसके अंतर में गूँजता रहता है।

सहसा वह वर्तमान में लौट आती है, यह सोचते हुए—मैं माँ के पास जा रही हूँ। वह माँ जिसने मुझे जन्म दिया था। बहुत-बहुत सुंदर थी वह। मेरे परिवारवाले कहते हैं, मैं भी सुंदर हूँ। क्या मैं अब अपनी जन्मदात्री माँ के उसी सुंदर रूप को देख पाऊँगी? कैसा है यह 'माँ' शब्द। जिसको मैंने देखा नहीं, जिसकी ममता का स्पर्श मैंने पाया नहीं, उसी को देखने के लिए मैं कब से भारत आने के सपने देख रही थी। पर पिता के घर में रहते हुए यह संभव नहीं हो सका। हो नहीं सकता था, लेकिन शादी हो जाने के बाद मैंने अपने पति को सबकुछ बता दिया। कुछ भी तो नहीं छिपाया। सारी कहानी सुनकर वह मुसकराए। बोले, ''सचमुच तुम्हारी कहानी बहुत करुणाजनक है। हम प्रयत्न करेंगे उस माँ से मिलने का।''

और उन्होंने बड़ी ईमानदारी और बड़ी तन्मयता से प्रयत्न किया। तब हम लोग फिनलैंड की राजधानी हेल्सिंकी में आ बसे थे। मेरे पति को वहीं काम मिल गया था और कुछ दिन बाद मुझे भी किंडर गार्टन में काम करने का अवसर मिल गया। तब एक दिन मैंने दृढ़ स्वर में अपने पति से कहा, ''अब हम गोवा जाएँगे।''

और मेरे पति, जो सचमुच मेरे जीवनसाथी थे, मुसकराए, ''सब प्रबंध हो गया है, बस टिकट आने बाकी हैं।''

और सचमुच अब मैं भारत पहुँच गई हूँ तथा गोवा जा रही हूँ। वहाँ मेरी जन्मदात्री माँ रहती है। ...ओह, जन्मदात्री माँ! कैसा है यह तेरा आकर्षण, तेरी ममता! तूने ही तो मनुष्य को सभ्यता के शिखर पर पहुँचाया है, इसलिए तो मैंने और मेरे पति ने अनथक परिश्रम करके साल्वेशन आर्मी के द्वारा तेरा पता लगाया। तुझे पत्र लिखा। उत्तर भी मिला, 'तुम आ सकती हो।'

अन्ना जैसे-जैसे अपने गंतव्य की ओर बढ़ रही है वैसे-वैसे उसकी बेचैनी भी बढ़ रही है। कैसी होगी मेरी जन्मदात्री माँ? कैसे प्यार करेगी? रोते-रोते आतुर हो उठेगी मुझे अपने में समाने के लिए, जैसे मैं आतुर हूँ उसे देखने के लिए।

जिस दिन उसने अपनी सौतेली बहन सैंडरीना के साथ अपनी माँ और सौतेले पिता से विदा ली, उस दिन उसके अंतर में गर्व की लहरें उठ रही थीं। यद्यपि वह माँ के लिए वह कुछ नहीं कर पाई थी, जो वह करना चाहती थी, पर माँ के बच्चों के लिए उसने वह कुछ किया जिसकी कल्पना वहाँ के लोग भी नहीं कर सकते थे।

किसी कवि ने कहा है, जैसे गंगा-स्नान करने के बाद पवित्र हो जाता है आदमी वैसे ही माँ के स्पर्श मात्र से भर उठता है तन-मन प्यार से।

सोचते-सोचते अन्ना पाउला बहुत दूर चली जाती है। बीच-बीच में उसके पति उससे बातें करते हैं। चूँकि अब खाना भी तो आने वाला है, इसलिए वह अचानक सबकुछ भूल जाती है और एक सहज पत्नी की तरह पति के साथ खाना खाती है, बातें करती है। उनके अभी कोई अपना बच्चा नहीं हुआ है, इसलिए अन्ना का सारा आकर्षण 'जन्मदात्री माँ' में केंद्रित हो गया है। भगवान् हर समय पृथ्वी पर नहीं आ सकते, इसलिए तो उन्होंने माँ को अपना स्थानापन्न बनाकर भेजा है। तभी तो इतना आकर्षण है इस 'माँ' शब्द में। माँ स्वयं भगवान् है।

वह फिर विचारों में खोने लगती है। उसके पति उसे झकझोरते हैं, ''अब तैयार हो जाओ। हम पहुँचने वाले हैं।''

''कहाँ?''

''गोवा, तुम्हारी माँ के पास।''

''माँ के पास!'' गद्गद हो उठती है वह यंत्रवत्।

पर दूसरे ही क्षण वह फिर विचारों में डुबकी लगाने को होती है, लेकिन अब समय नहीं है। उसके पति गोवा की प्रकृति को देखकर मुग्ध हो रहे हैं। कैसा सुंदर है यह देश, ऊपर निरभ्र नीला गगन, नीचे नीला सागर, कभी लहरें तीव्र होकर तटों से टकराती हैं। शोर उठता है, लेकिन दूसरे ही क्षण वे सब उसकी तरफ लौट जाती हैं। यहीं से तो वैज्ञानिक और खोजी लोग दक्षिणी धुव्र की ओर जाते हैं। फिनलैंड उत्तरी धुव्र के पास है और गोवा दक्षिण धुव्र को जानेवाला मार्ग है। दो विभिन्न संसार, दो विभिन्न संस्कृतियाँ, लेकिन मनुष्य तो एक ही है। संसार बदले, संस्कृति बदले पर मनुष्य और उसके पारिवारिक संबंध कभी नहीं बदलते। सारे संसार में माँ का एक ही अर्थ है। वही अर्थ तो उसे खींच लाया है यहाँ तक।

तभी सहसा परिचारिका की आवाज गूँजती है, ''कुछ ही क्षणों में हम गोवा पहुँच जाएँगे। कृपया पेटियाँ बाँध लीजिए।''

गद्‌गद हो उठी अन्ना पाउला।...अब मैं माँ के पास पहुँच जाऊँगी, वही माँ, जिसकी मुझे कुछ याद नहीं, लेकिन जिसका निर्विकार आकर्षण मुझे पागल किए हुए है; क्योंकि मेरी रगों में इसी माँ का रक्त बह रहा है। मैं उससे प्राकृतिक रूप से जुड़ी हूँ। कितनी भी दूर चली जाए, सदा जुड़ी रहेगी। उसी माँ को मैं अपनी आँखों से देखूँगी। उसे प्यार करूँगी, उसे छू सकूँगी और वह भी मुझे अपनी छाती से चिपटाकर कितना रोएगी। आँसू प्यार का प्रतीक ही तो है।

उनका वायुयान तीव्र गति से नीचे उतरता हुआ धरती पर दौड़ रहा है। गति धीरे-धीरे कम होती जाती है और अंततः वायुयान रुक जाता है। उसके अधिकारी हमें अलविदा कहते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। वे भी मुसकराते हैं। उन्हें धन्यवाद देते हैं और नीचे उतरते हुए चले जाते हैं।

सारी औपचारिकताएँ पूरी होने में कोई परेशानी नहीं हुई; क्योंकि उनके पास कुछ भी आपत्तिजनक नहीं था।

बाहर आकर वे टैक्सी लेते हैं। कोई परेशानी नहीं होती। कैसी शांति है! कैसा वातावरण है!

...यही सब देखते-देखते वे अंततः कुछ देर बाद अपने गंतव्य पर पहुँच जाते हैं। एक छोटा सा सुंदर गाँव, नाम है 'बारदेज'। प्राकृतिक दृश्य बहुत सुंदर हैं। यहाँ के नाना रूप स्त्री-पुरुष उनमें संपन्न भी हैं, असहाय भी। अन्ना सबको गहरी दृष्टि से देखती है। वह ढूँढ़ना चाहती है अपने अस्तित्व को। इसी वातावरण में तो उसने अपने प्रारंभिक जीवन के दो साल बिताए थे। दो साल का वैसे क्या अर्थ होता है, पर उसके पूरे जीवन के लिए एक अर्थ है उनका; क्योंकि उसकी जड़ें तो यहीं पर हैं। कोई कभी अपनी जड़ों से मुक्त हो सकता है क्या?

...लो, अब वह उस घर के सामने है, जिसमें उसकी माँ रहती है, जहाँ उसका शैशव मुसकराता था; लेकिन...लेकिन इस समय उसके अंतर में तो विचित्र तूफान उठा है। वह पागलों की तरह टैक्सी से उतरकर द्वार की ओर लपकती है। तभी उसके सामने समय से पहले वृद्धा हुई एक जर्जर, एक एल्कोहलिक महिला आ खड़ी होती है और लड़खड़ाती हुई आवाज में पूछती है, ''तुम अन्ना हो, अन्ना पाउला...मेरी बेटी...''

अन्ना हतप्रभ टकटकी लगाए उसे देखती है—यह है मेरी माँ, यह...।

उस एक क्षण में न जाने कितने युग बीत जाते हैं। दूसरे ही क्षण वह दौड़ती हुई जाकर जर्जर वृद्धा से लिपट जाती है, ''हाँ-हाँ, मैं हूँ अन्ना, तुम्हारी अपनी बेटी। मेरे शरीर की धमनियों में तुम्हारा ही रक्त बह रहा है। मेरा शरीर तुम्हारे शरीर का ही अंग है।''

अन्ना शायद इतना कुछ नहीं कह सकी थी। वह तो केवल भाव-विह्वल थी, लेकिन उसकी जन्मदात्री उतनी ही अलिप्त है। वह यंत्रवत् उसके शरीर पर हाथ फेरती है, ''तुम मेरी बेटी हो, मेरी बड़ी बेटी! तुम्हें तुम्हारा बाप मुझसे छीनकर ले गया था।''

''हाँ-हाँ, माँ! मैं वही तुम्हारी बड़ी बेटी हूँ, तुम्हारी जाया, तुम्हारा रक्त। मैं तुमसे मिलने, तुम्हें लेने आई हूँ।''

उसकी माँ के दूसरे पति भी तब तक वहाँ आ गए थे। वह उतने ही एल्कोहलिक हैं, पर संज्ञाहीन नहीं हैं। उसे समझाते हैं...तभी माँ पर जैसे दौरा पड़ता है। वह रोते-रोते विह्वल होकर उसे छाती से चिपटा लेती है, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे अलग भी कर देती है। तभी एक किशोर और एक किशोरी वहाँ आते हैं। वे अन्ना के सौतेले भाई-बहन हैं। वह बड़े प्यार से उनसे बातें करती है। वे चकित भी हैं और खुश भी, उनसे मिलने उनकी बहन आई है।...

तब तक और भी स्त्री-पुरुष वहाँ घिर आते हैं। उनमें वे भी हैं, जिन्होंने अन्ना को दो वर्ष की आयु में खिलाया था। उनके साथ वह किलकारी मारती थी। वे उसे देखकर बहुत खुश हुए। वह इतनी बड़ी हो गई। माँ जैसी सुंदर है। कैसे सुंदर कपड़े पहने हैं! उसका पति कैसा गबरू जवान है और कैसा प्यारा! जरूर उनके पास बहुत पैसा होगा। लाए भी होंगे अपने साथ।

और अंततः उनकी सारी उत्सुकता पैसे पर केंद्रित होकर रह जाती है। अन्ना उनके प्रश्नों का बड़े प्रेम से उत्तर देती है। वे पूछते हैं, ''तुम दोनों तो अच्छी नौकरी करते होगे। खूब कमाते होगे। तुम्हारी माँ तो सबकुछ पीने में खर्च कर देती है।''

अन्ना पाउला के भीतर तो एक आग प्रज्वलित हो उठी है। उस वातावरण में उसका दम घुटने लगता है, पर वह आश्चर्यजनक रूप से अपने पर काबू पा लेती है। सब लोग अंदर आते हैं और फिर नाना रूप बातें, सुख-दुःख की बातें, परिवार से परिचय की बातें।

इसी तरह तीन दिन लोगों से मिलने-जुलने और उन स्थानों को देखने में बीत गए, जहाँ उसके पिता का परिवार रहता था। वह उस अस्पताल में भी गई, जहाँ उसका जन्म हुआ था, लेकिन इस प्रक्रिया में निरंतर उसके अंतर में एक प्रश्न घुमड़ता रहता कि मेरी माँ का क्या होगा? क्या इसे मैं अपने साथ ले जा सकती हूँ? उसके सौतेले पिता भाई-बहन! क्या करूँ मैं इन सबके लिए?...

इन तीन दिनों में वह निरंतर यही सोचती रहती थी, विशेषकर रात में, जब वह सोने के लिए अपने होटल में आती तब अपने पति से बराबर यही कहती कि मैं माँ को अपने साथ नहीं ले जा सकती, लेकिन इस हालत में उसे छोड़ भी नहीं सकती। मैं उसे दोष नहीं देती, लेकिन...लेकिन...

वह सहसा चुप हो जाती है, क्योंकि उसका अंतर उमड़ आया है और आँखों से बहने लगा है। उसके पति ने उसका कंधा थपथपाते हुए दृढ़ स्वर में कहा, ''देखो अन्ना, यह निश्चित है कि तुम अपनी माँ को अपने साथ नहीं ले जा सकतीं। उसके पति हैं उसकी देखभाल करने के लिए; लेकिन अपने भाई-बहन के लिए तुम अवश्य व्यवस्था कर सकती हो।''

अन्ना ने सहसा एक अनचीन्हे आह्लाद से भरते हुए पूछा, ''कैसे?''

उसके पति मक्कू ने उत्तर दिया, ''तुम अपनी बहन सैंडरीना को अपने साथ ले जा सकती हो। वह तुम्हारे साथ रहेगी, पढ़ेगी और अपने भाई रॉय को तुम किसी बोर्डिंग स्कूल में दाखिला करवा सकती हो तथा

पढ़ने-लिखने का खर्च भेज सकती हो।''

उसका पति अपनी बात पूरी कर पाता कि अन्ना ने उत्फुल्ल होकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया। उसके मुँह पर चुंबनों की बौछार कर दी, ''ओह मक्कू, तुम कितने महान् हो! तुम मेरे मन की बात कैसे जानते हो?''

उसके पति ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, ''जैसे तुम्हें जानता हूँ।''

अगले दिन सबकुछ भूलकर एक निश्चित भाव से वे सबसे पहले चर्च गए, उस देवी के सामने जहाँ उसके पिता ने उसके सकुशल जन्म लेने के लिए प्रार्थना की थी। वे उस अस्पताल में भी गए, जहाँ उसने पहली बार प्रकाश किरणों का स्पर्श पाया था। वह उस वकील से मिलने भी गई, जिसकी सहायता से उसे उसके पिता अपने साथ ले जा सके थे। वह उस घर को देखना भी नहीं भूली, जहाँ वह अपने पिता के साथ पुर्तगाल जाने से पहले रही थी। उसने ढूँढ़-ढूँढ़कर उन सभी व्यक्तियों को अपना परिचय दिया, जो उसके पिता को जानते थे, उनके मित्र थे।

कितनी खुशियाँ बटोरी अन्ना ने। उसने अपनी बारह वर्ष की सौतेली बहन सैंडरीना को साथ ले जाने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ी। कितनी बाधाएँ आईं उसके रास्ते में, लेकिन वह अंततः उस नाबालिग लड़की की अभिभावक बन ही गई। उसके लिए पासपोर्ट बनवाने के लिए उसने क्या कुछ नहीं किया। हेल्सिंकी से अपने बैंक से पैसा मँगवाया टिकट खरीदने के लिए।

वास्तव में अब तक यहाँ के लोगों में उसके प्रति ममता पैदा हो गई थी और उन्होंने सारी बाधाओं को पार करने में उसकी पूरी मदद की तथा अंततः सैंडरीना को साथ ले जाने के सारे रास्ते सुलभ हो गए।

लेकिन उसकी समस्याओं का अंत नहीं हुआ। रॉय? वह अपने सौतेले भाई रॉय का क्या करे? अंततः सबकी सलाह से उसने निश्चित किया कि जब तक वह उसे अपने साथ हेल्सिंकी नहीं ले जाती तब तक वह उसे 'डान बोस्को हाई स्कूल' में दाखिल करवा देगी।

और उसने वही किया और इसी के साथ उसकी तात्कालिक समस्याओं का अंत हो गया। माँ की देखभाल के लिए अपने सभी शुभचिंतकों को कह दिया। वह और कुछ कर भी नहीं सकती थी। उसका मन बार-बार भर आता था।

जिस दिन उसने अपनी सौतेली बहन सैंडरीना के साथ अपनी माँ और सौतेले पिता से विदा ली, उस दिन उसके अंतर में गर्व की लहरें उठ रही थीं। यद्यपि वह माँ के लिए वह कुछ नहीं कर पाई थी, जो वह करना चाहती थी, पर माँ के बच्चों के लिए उसने वह कुछ किया जिसकी कल्पना वहाँ के लोग भी नहीं कर सकते थे।

एक भीड़ उमड़ आई थी उसे विदा देने के लिए और वह भाव-विह्वल रोती हुई हवाई अड्डे के अंदर भागती हुई चली गई थी। मक्कू ने उसे अकेला छोड़ दिया था। वह जानता था कि हेल्सिंकी पहुँचते-पहुँचते अन्ना का अंतर्मन अद्भुत सुगंध से भर उठेगा और वह सुगंध उसके जीवन की पहचान बन जाएगी।

सा अ

सत्य, शील और विद्या

• शिवकुमार गोयल

एक बार आचार्य चाणक्य से किसी ने प्रश्न किया, 'मानव को स्वर्ग प्राप्ति के लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए?'

चाणक्य ने संक्षेप में उत्तर दिया, 'जिसकी पत्नी और पुत्र आज्ञाकारी हों, सद्गुणी हों तथा अपनी उपलब्ध संपत्ति पर संतोष करते हों, वह स्वर्ग में नहीं, तो और कहाँ वास करता है!'

आचार्य चाणक्य सत्य, शील और विद्या को लोक-परलोक के कल्याण का साधन बताते हुए नीति वाक्य में लिखते हैं, 'यदि कोई सत्यरूपी तपस्या से समृद्ध है, तो उसे अन्य तपस्या की क्या आवश्यकता है? यदि मन पवित्र और निश्छल है, तो तीर्थाटन करने की क्या आवश्यकता है? यदि कोई उत्तम विद्या से संपन्न है, तो उसे अन्य धन की क्या आवश्यकता है?'

वे कहते हैं, 'विद्या, तप, दान, चरित्र एवं धर्म (कर्तव्य) से विहीन व्यक्ति पृथ्वी पर भार है। संसार में विद्यावान की सर्वत्र पूजा होती है। विद्यया लभते सर्व विद्या सर्वत्र पूज्यते। यानी विद्यारूपी धन से सबकुछ प्राप्त होता है।'

आचार्य सदाचार व शुद्ध भावों का महत्त्व बताते हुए लिखते हैं, 'भावना से ही शील का निर्माण होता है। शुद्ध भावों से युक्त मनुष्य घर बैठे ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर का निवास न तो प्रतिमा में होता है और न मंदिरों में। भाव की प्रधानता के कारण ही पत्थर, मिट्टी और लकड़ी से बनी प्रतिमाएँ भी देवत्व को प्राप्त करती हैं, अतः भाव की शुद्धता जरूरी है।'

आचार्य चाणक्य का यह भी कहना है कि यदि मुक्ति की इच्छा रखते हो, तो विषय वासनारूपी विद्या को त्याग दो। सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाई का अमृतपान करो।

सा अ

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

राम का नाम ही नहीं, राम का काम भी

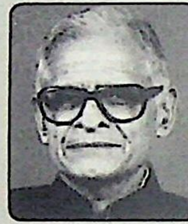
• विष्णुकांत शास्त्री

परशुराम की प्रतीक्षा' में दिनकर ने भारतीय जनता की भक्तिजनित अकर्मण्यता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है, 'दो उन्हें राम तो मात्र नाम वे लेंगी'।[१] वास्तव में यह क्षोभ बहुत पुराना है। भक्ति का आवरण डालकर तमोगुणी आलस्य बहुत बार सतोगुणी स्थैर्य के रूप में अपने को प्रचारित करता है और इस प्रकार धर्मग्लानि को मिटाने के स्थान पर बढ़ाता है। विष्णुपुराणकार ने इसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा था—

अपहाय निजं कर्म कृष्णकृष्णेतिवादिनः।
तेहरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थजन्म यद्धरेः॥[२]

अर्थात् अपने कर्म को त्यागकर केवल कृष्ण-कृष्ण रटनेवाले तो हरि के द्वेषी और पापी हैं, क्योंकि हरि का जन्म ही धर्म (की स्थापना) के लिए होता है। सामाजिक कर्तव्य को भक्ति के साथ जोड़नेवाली यह परंपरा मध्यकाल में बहुत दुर्बल हो गई थी। कुछ दूर तक इसके लिए सामयिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थीं, पर ऐसा लगता है कि संसार-विमुख होकर वैयक्तिक भाव-साधना में निरत रहने की विधि पर आचार्यों द्वारा अधिक जोर दिए जाने के फलस्वरूप भी सामाजिक कर्तव्यों के प्रति अवहेलना बुद्धि दृढ़ हुई थी। 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'[३] अर्थात् कलियुग में हरिनाम को छोड़कर और कोई दूसरी गति है ही नहीं, मध्य युग में यह प्रायः सर्वमान्य सिद्धांत बन गया था। भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ मानने के कारण[४] बहुत से भावुक भक्त उनका तिरस्कार करने लगे थे। इस एकांगदर्शिता से सामाजिक समग्रता को क्षति पहुँच रही थी। इसी पृष्ठभूमि में तुलसी का उदय हुआ था।

तुलसी ने इस परिस्थिति को पहचाना था। राम का नाम उनका भी सबसे बड़ा संबल था, किंतु वे राम के काम को भी नहीं भूले थे। मध्यकालीन भक्तों में उनके सदृश बहुत कम विचारक थे जिन्होंने राम के नाम और काम दोनों पर जोर दिया हो। इसका सर्वप्रथम कारण उनका यह विश्वास था कि 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि'[५] जहाँ



प्रख्यात साहित्यकार, समाजधर्मी व राजनीतिज्ञ। देशभर के विश्वविद्यालयों एवं साहित्यिक संस्थानों की व्याख्यान मालाओं में भागीदारी। हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रहे। अनेक देशों की यात्राएँ तथा कई प्रसिद्ध सम्मानों से अलंकृत। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन; अनेक पुस्तकें प्रकाशित। स्मृतिशेष : १७ अप्रैल, २००५।

ज्ञान, योग एवं शांत भाव की साधनाओं में निर्वैयक्तिकता पर बल दिया जाता है वहीं सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की साधनाएँ बहुत अधिक वैयक्तिक हैं। इन दोनों स्थितियों में जगत् को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से जगत् को मिथ्या या सत्य मानना अलग बात है, व्यावहारिक दृष्टि से उसकी उपेक्षा ज्ञानियों और वैयक्तिक साधना पर बल देनेवाले भक्तों ने समान रूप से की है। तुलसीदास ने तात्त्विक दृष्टि से जगत् को सत्य माना था या मिथ्या, इसपर विवाद हो सकता है; किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि वे जगत् को 'सीयराम मय' मानते थे। फलतः व्यवहार में वे उसकी सेवा करना अपना धर्म समझते थे। इसीलिए उन्होंने श्रीराम से कहलाया था कि मुझे सेवक प्रिय हैं और उनमें भी अनन्यगति सेवक। अपने अनन्य सेवक का लक्षण बताते हुए तुलसी के राम कहते हैं—

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥[६]

अर्थात् जो दृढ़तापूर्वक इस चराचर जगत् को प्रभु का व्यक्त रूप मानकर इसकी सेवा में रत रहता है, वही (श्रीराम का) अनन्य भक्त है। सेव्य के रूप में समस्त व्यक्त जगत् रूपी राम को स्वीकारने का अर्थ ही है कर्मठतापूर्वक 'हेतु रहित परहित निरत' रहना। यह व्याख्या श्रीराम ने ही की है। जटायु ने तो राम के लिए ही प्राण दिए थे, किंतु प्रभु ने उसकी सराहना करते हुए कहा था, 'परहित बस जिन्हके मन माहीं, तिन्ह कहँ जग

दुर्लभ कछु नाहीं।'[७] इसका सीधा-सादा अर्थ यही है कि तुलसी ने श्रीराम के सगुण साकार अवतारी रूप को स्वीकार करते हुए भी उन्हें इतिहास और भूगोल से नहीं बाँधा है। 'देस काल दिसि बिदिसहु माहीं, कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।'[८] कहनेवाले तुलसीदास की मान्यता है कि राम की सेवा अर्थात् राम का काम करने का अवसर 'सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा'। फिर भी यह सच है कि कोई विरला भाग्यवान् ही राम का काम कर पाता है, अधिकतर लोग तो राम के काम का बहाना करके रावण का ही काम करते रहते हैं; क्योंकि उनके हृदय में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह का अँधेरा छाया रहता है। इसीलिए तुलसी केवल कर्म पर जोर नहीं देते, बाहर-भीतर उजाला करनेवाले राम नाम के जप पर भी जोर देते हैं—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जो चाहसि उजिआर॥[९]

इसका अर्थ यही है कि तुलसीदास के लिए कर्म-चेतना स्वतंत्र न होकर भक्ति का अनिवार्य अंग है। कर्म विपथगामी न हो जाए, इसके लिए आवश्यक है कि वह भक्ति द्वारा (जिसका आधार नाम जप है)[१०] अनुशासित हो और भक्ति नितांत वैयक्तिक भाव-साधना (जिसकी विकृति बहुत आसान है) के कारण निष्क्रिय न हो जाए, इसके लिए उसे चराचर जगत् के रूप में अभिव्यक्त प्रभु की सेवा में नियोजित कर दिया जाए, यही तुलसीदास का अभिप्राय ज्ञात होता है।

तुलसी ने राम नाम की अमित महिमा का बार-बार गान किया है—केवल मानस में ही नहीं, अपनी समस्त कृतियों में। मानस के बालकांड में नाम-वंदना के दोहों में उन्होंने भाव भरी युक्तियों से सिद्ध किया है कि राम का नाम उनके निर्गुण-सगुण दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। प्रभु के ये दोनों रूप 'अगम' हैं, किंतु नाम-जप से दोनों 'सुगम' हो जाते हैं; अत: स्पष्ट है कि नाम ने इन दोनों को अपने बलबूते से अपने वश में कर रखा है। सच्चिदानंद ब्रह्म तो सभी जीवों के हृदय में विद्यमान हैं, फिर भी जग के सभी जीव दीन-दु:खी हैं। नाम के निरूपण एवं नाम के यत्न से या यों कहें, नाम के अर्थ पर मनन करते हुए उसके निरंतर जप से अंत:स्थित ब्रह्म प्रत्यक्ष होकर जीव के दु:ख-कष्ट दूर कर उसे उसी प्रकार परमानंदमय बना देते हैं जिस प्रकार रत्न से उसका मूल्य प्रकट होकर व्यक्ति के अभावों को दूर कर उसे इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने में समर्थ है। प्रभु श्रीराम ने अवतार ग्रहण कर ताड़का, खर-दूषण, कुंभकर्ण, रावण आदि कुछ निशाचरों का वध किया और अहल्या, शबरी, गीध, सुग्रीव, विभीषण आदि कुछ भक्तों को निवाजा; किंतु उनके नाम ने तो कलि के समस्त कलुषों को नष्ट कर असंख्य भक्तों को निवाजा है। घोर कलिकाल में तो राम का नाम ही एकमात्र कल्पवृक्ष है। अत: तुलसीदास का निष्कर्ष है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
रामनाम अवलंबन एकू॥[११]

तुलसी ने राम नाम की ओट लेते समय विनयपूर्वक यह कहकर कि कलि में कर्म, भक्ति और विवेक (ज्ञान) रह ही नहीं जाते, अत: एकमात्र राम का नाम ही अवलंब है—उन साधनों का न तिरस्कार किया है, न निषेध। वे जानते हैं कि जैसे भूमि में ही सब बीज अंकुरित हो सकते हैं, आकाश में ही सब नक्षत्रों का निवास है, वैसे ही राम नाम समस्त धर्मों का आकर है—

जथा भूमि सब बीज मै नखत निवास अकास।
रामनाम सब धरम मै जानत तुलसीदास॥[१२]

अत: वे निश्चित हैं कि रामनाम ही जापक के अंत:करण में समयोचित आवश्यक धर्मों की प्रेरणा देता रहेगा।

इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धा सहित नाम-जप करते रहनेवाले भक्त के मन में उस मनोवैज्ञानिक रक्षा-कवच के प्रभाव से अद्भुत सात्त्विक गुणों का उत्कर्ष होता है और वह क्रमश: नामी के गुण, कर्म, शील, स्वभाव की ओर आकृष्ट होता जाता है, जिसके फलस्वरूप वह पहले से अच्छा मनुष्य बनता है। फिर भी रामनाम की इस महिमा को आधुनिक विचारक अपने-अपने संस्कारों के अनुरूप स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। प्रश्न अभी उसकी सत्यता या असत्यता का नहीं है, वह अलग विचार्य विषय हो सकता है। अभी प्रश्न तो यह है कि मध्यकाल के अन्य संतों-भक्तों की तरह नाम-महिमा का गान करने के बाद तुलसी भी क्या उन्हीं की तरह केवल निर्वैयक्तिक या अतिशय वैयक्तिक साधनाओं में लीन हो गए? रामनाम नींव सही, उसपर उन्होंने अपनी साधना का भवन कैसा उठाया? यहीं अपनी समाजोन्मुखी वैयक्तिक साधना के कारण तुलसी अन्य संतों, भक्तों से पृथक् हो जाते हैं। उसका एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने राम के नाम पर जितना बल दिया है, राम के काम पर भी उतना ही बल दिया है। उनके आदर्श भक्त चरित्र एकांत में साधना ही नहीं करते, राम का काम सिद्ध हो, इसके साधन भी बनते हैं।

तुलसी ने राम के काम पर कितना जोर दिया है, यह इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाएगा। निषादराज को जब यह लगता है कि भरत संभवत: श्रीराम पर आक्रमण करने की योजना बनाकर चित्रकूट जा रहे हैं तब वे राम के काम आने की भावना से भरत से युद्ध कर मृत्यु तक का वरण करने के लिए तैयार होकर कह उठते हैं, 'समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा, रामकाजु छनभंगु सरीरा।'[१३] सुग्रीव सीता की खोज के लिए वानरों को भेजते समय 'रामकाजु अरु मोर निहोरा'[१४] कहकर उत्साहित करते हैं। किसी भी सत्कार्य के लिए दूसरे को प्रवृत्त करते समय हिंदीभाषी जन इस कथन को आज लोकोक्ति की तरह व्यवहृत करते हैं। श्रीराम के कार्य के लिए शरीर-त्याग करनेवाले जन तुलसी की दृष्टि में अनन्य रूप से धन्य, बड़भागी और हरिपुर के अधिकारी हैं, तभी उन्होंने अंगद से कहलवाया था, 'कह अंगद बिचारि मन माहीं, धन्य जटायू सम कोउ नाहीं। राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयउ परम बड़भागी।'[१५] हनुमान को सागर लाँघने के लिए अभिप्रेरित करते हुए जामवंत ने कहा था, 'राम काज

लगि तव अवतारा।'[१६] प्रभु का कार्य संपन्न किए बिना सच्चे प्रभुभक्त विश्राम कैसे कर सकते हैं! हनुमान की यह उक्ति उनकी भावना की निश्छल अभिव्यक्ति है, 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।'[१७] राम का कार्य जिससे सधे, भक्त वही करता है, व्यक्तिगत मान-अपमान का विचार उसे नहीं रहता। हनुमान मेघनाद के हाथों बंदी बनकर रावण की सभा में इसीलिए उपस्थित हुए थे कि शायद उनके समझाने से रावण को सद्बुद्धि आ जाए। उन्होंने द्विधाहीन शब्दों में कहा था, 'मोहि न कछु बाँधे कर लाजा, कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।'[१८] कार्य सिद्ध होने पर भक्त उसका श्रेय स्वयं नहीं लेता, प्रभु की कृपा को देता है और साधन बन पाने के कारण अपने जन्म को सफल मानता है। उसकी मान्यता है, 'प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू, जन्म हमार सुफल भा आजू।'[१९] राम के काम आ जाना ही भक्त के जीवन की चरितार्थता है, इसे तुलसी ने लक्ष्मण को शक्तिबाण लगने के प्रसंग के माध्यम से 'गीतावली' में बहुत खूबी से उभारा है। हनुमान से लक्ष्मण के घायल होने का संवाद सुनकर सुमित्रा माता की जो मन:स्थिति हुई उसे तुलसी ने इन शब्दों में अंकित किया है—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं॥[२०]

स्वामी राम के लिए प्रतिपक्षी सुभट से संग्राम में ललकारकर भिड़ने और लोहा लेने के कारण लक्ष्मण गंभीर रूप से घायल हो गए हैं, यह सुनकर सुमित्रा माता को शोक और संतोष दोनों हुए। पुत्र मुमूर्षु है, जब यह विचार मन में आता तो उनका शरीर सूख जाता, किंतु जब उनके मन में यह भाव आता कि प्राणों को संकट में डालकर आज लक्ष्मण राम की भक्ति में खरा सिद्ध हुआ तो उनका शरीर उल्लसित हो हरा हो उठता। इसी पद में तुलसी ने सुमित्रा माता से शत्रुघ्न को यह आज्ञा दिलाई है कि अब वे जाकर लक्ष्मण का स्थान लें। सुमित्रा माता के दिव्य चरित्र का किंचित् आभास दे पाने के कारण यह पद तो महिम्न है ही, इस दृष्टि से भी मैं इसका महत्त्व मानता हूँ कि इससे यह बिलकुल साफ हो जाता है कि लक्ष्मण की तरह श्रीराम के कार्य के लिए प्राणों को संकट में डालनेवालों के लिए ही यह कहा जा सकता है कि वे 'रघुपति भगति बरे हैं।'

प्रश्न उठ सकता है कि मानस के अनुसार क्या है राम का काम और आज का मनुष्य उसे कैसे संपन्न कर सकता है? यह स्मरण रखना चाहिए कि मानस जीवन के प्रति एक विशिष्ट मूलभूत दृष्टि निरूपित करनेवाला काव्य ग्रंथ है, किसी सरकार या राजनीतिक दल के कार्यक्रम को शब्दबद्ध करनेवाला दस्तावेज नहीं। कार्यक्रम बदली हुई परिस्थितियों में बदले जा सकते हैं या पुराने पड़ जा सकते हैं। मानस की दृष्टि धर्मपरायण (अर्थात् कर्तव्यपरायण), मर्यादावादी (अर्थात् सामाजिक चेतना-संपन्न), आस्तिक (अर्थात् सत्, चित् और आनंद के चरम मूल्यों के प्रति आस्थायुक्त), दास्य भाव के भक्त (अर्थात् चराचर जगत् रूपी प्रभु की परम प्रेमपूर्वक सेवा करनेवाले अनन्य सेवक) की दृष्टि है, जिसका लक्ष्य है ऐसे विषमता-रहित समाज की सृष्टि करना जिसमें सब सुंदर हों, सब नीरोग हों, सब निर्दंभ और धर्मरत हों, चतुर और गुणी हों, गुणज्ञ और पंडित हों, ज्ञानी और कृतज्ञ हों, जिसमें कोई भी दरिद्र-दु:खी-दीन न हो; अबुध, लक्षणहीन और कपटी न हो। इसीलिए यह मानते हुए कि राम के जन्म के अनेकानेक हेतु हो सकते हैं। तुलसी ने गीतोक्त हेतुओं को दुहराते हुए कहा है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, अभिमानी, अधम, असुर अवर्णनीय अनीति करने लगते हैं; विप्र, धेनु, देवता और धरती को कष्ट देने लगते हैं, तब-तब प्रभु विविध शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं, असुरों को मारकर देवताओं और श्रुतियों की मर्यादा की रक्षा करते हैं। यह ठीक है कि वैयक्तिक साधना पर बल देनेवाले आचार्यों की यह स्थापना भी उन्हें स्वीकार है कि भक्तों के साथ लीला करने के लिए उन्हें सुख देने के लिए प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं, पर सामाजिक मंगल विधान को भी वे अवतार के प्रमुख कारणों में से एक मानते हैं। इसीलिए निशाचरों द्वारा भक्षित ऋषियों की अस्थियों का समूह देखकर करुणार्द्र हो उनके राम भुजा उठाकर अपना यह वज्र संकल्प घोषित करते हैं कि मैं पृथ्वी को निशाचर-विहीन कर दूँगा, 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।'[२१] इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि निशाचर से तुलसी का अभिप्राय काल्पनिक योनि विशेष से न होकर समाज के अत्याचारी व्यक्तियों से था। तुलसी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

बरनि न जाई अनीति घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवन मिति॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिनके यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥[२२]

श्रीराम के कार्य के लिए शरीर-त्याग करनेवाले जन तुलसी की दृष्टि में अनन्य रूप से धन्य, बड़भागी और हरिपुर के अधिकारी हैं, तभी उन्होंने अंगद से कहलवाया था, 'कह अंगद बिचारि मन माहीं, धन्य जटायू सम कोउ नाहीं। राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयउ परम बड़भागी।' हनुमान को सागर लाँघने के लिए अभिप्रेरित करते हुए जामवंत ने कहा था, 'राम काज लगि तव अवतारा।' प्रभु का कार्य संपन्न किए बिना सच्चे प्रभुभक्त विश्राम कैसे कर सकते हैं! हनुमान की यह उक्ति उनकी भावना की निश्छल अभिव्यक्ति है, 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।' राम का कार्य जिससे सधे, भक्त वही करता है, व्यक्तिगत मान-अपमान का विचार उसे नहीं रहता।

ऐसे निशाचरी अन्याय का प्रतिरोध कर रामराज्य (सामाजिक न्याय पर आधारित राज्य) की स्थापना के कार्य से जो जुड़ता है वह किसी भी देश या किसी भी काल में क्यों न हो, राम का काम करता है। राम का काम केवल ध्वंस-मूलक नहीं है, इसे बराबर याद रखना चाहिए। अन्याय के विध्वंस के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तरों पर उन्नयन का कार्य भी राम का काम है। मेघनाद से युद्ध करते हुए लक्ष्मण भी राम का काम कर रहे थे और अयोध्या में बैठे न्याययुक्त राज्य संचालन कर भरत भी राम का ही काम कर रहे थे। कभी-कभी मन में यह भावना जागती है कि लंका के मोरचे पर लड़नेवाले ही राम के सच्चे सेवक थे। औरों की बात तो जाने दीजिए, लक्ष्मण के घायल होने का समाचार पाकर स्वयं भरत ने यह परिताप व्यक्त किया था, 'अहह दैव मैं कत जग जायउँ, प्रभु के एकहु काज न आयउँ।'[२३] इस भावपूर्ण उक्ति का यह अर्थ नहीं है कि भरत प्रभु के किसी काम नहीं आए थे। यह तो प्रभु के अधिकाधिक काम में आने की लालसा की अभिव्यक्ति मात्र है। कुछ लोग अपने भोलेपन के कारण पूछ बैठते हैं कि भरत के मन में यदि इतना ही परिताप था तो वे तत्काल युद्ध में भाग लेने के लिए लंका चले क्यों नहीं गए? वे भरत रघुवर के 'अगम सनेह' को नहीं जानने के कारण ही ऐसा कहते हैं। 'सब तें सेवक धरमु कठोरा'[२४] माननेवाले भरत उस समय भी 'अग्यासम न सुसाहिब सेवा'[२५] के सिद्धांत का पालन करने के कारण ही अयोध्या में अपने कर्तव्य पर अडिग रहे। तुलसीदास ने 'गीतावली' में इस प्रसंग में भरत के अंतर्द्वंद्व का मार्मिक चित्रण इस प्रकार किया है—

फिर सच बात तो यह है कि मोरचा कहाँ नहीं है! हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में काम करते समय मोरचे पर ही तो खड़ा है। यहाँ तक कि हर एक के मन में भी राम-रावण युद्ध चल रहा है। यदि व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह का शिकार होकर विषय-वासना की तृप्ति को ही अपना परम ध्येय मान बैठता है तो मुँह से वह चाहे कुछ भी कहे, वास्तव में वह रावण के पक्ष में लड़ता है। तुलसीदास ने प्रत्येक व्यक्ति के वपुष ब्रह्मांड में चलनेवाले राम-रावण युद्ध का चित्रण करते हुए स्पष्ट कहा है, 'मोह दसमौलि तद्भ्रांत अहंकार पाकारिजित काम विश्रामहारी। लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ठ बिबुधांतकारी॥'[२८] अपना मोह (अज्ञान) ही रावण है, अहंकार ही कुंभकर्ण है, काम ही इंद्रजेता मेघनाद है; लोभ, मत्सर और क्रोध ही रावण के सेनानायक अतिकाय, महोदर और बिबुधांतक हैं।

आयसु इतहि स्वामि-संकट उत परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्‌यो अकास सो कैसे के जात सियो है॥[२६]

भरत ऊहापोह में पड़े सोच रहे हैं कि इधर स्वामी की आज्ञा है चौदह वर्षों तक अयोध्या में रहकर राज्य-संचालन करने की, उधर स्वयं स्वामी संकटग्रस्त हैं, कुछ करते नहीं बनता, मानो आकाश फट गया हो, वह कैसे सिया जाय! फिर भी, अपनी भावनाओं पर पत्थर रखकर भी वे आज्ञापालन में ही रत रहते हैं, युद्ध के मोरचे पर नहीं चढ़ दौड़ते। उनके इस सूक्ष्म कर्तव्य-ज्ञान को समझकर ही हनुमान की यह दशा हो गई थी, 'धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है।'[२७] भरत अपने इस आचरण से यही दरशाते हैं कि महत् कार्य की सिद्धि उस कार्य में रत व्यक्तियों द्वारा उसके बड़े-छोटे, आकर्षण-अनाकर्षण सभी अंगों को महत्त्व देकर गुरुजनों द्वारा प्रदत्त, सहज प्राप्त या स्वयं स्वीकृत कार्यांश को अनुशासनपूर्वक करते रहने से ही हो सकती है। अतः पताका के दंड की भाँति स्वयं प्रसिद्धिपराङ्मुख रहकर भी अपने कर्तव्य का पालन करते रहना राम के सेवकों का सहज लक्षण होना चाहिए। अग्रिम मोरचे पर रहकर यश प्राप्त करने की दुर्बलता उनमें नहीं होनी चाहिए।

फिर सच बात तो यह है कि मोरचा कहाँ नहीं है! हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में काम करते समय मोरचे पर ही तो खड़ा है। यहाँ तक कि हर एक के मन में भी राम-रावण युद्ध चल रहा है। यदि व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह का शिकार होकर विषय-वासना की तृप्ति को ही अपना परम ध्येय मान बैठता है तो मुँह से वह चाहे कुछ भी कहे, वास्तव में वह रावण के पक्ष में लड़ता है। तुलसीदास ने प्रत्येक व्यक्ति के वपुष ब्रह्मांड में चलनेवाले राम-रावण युद्ध का चित्रण करते हुए स्पष्ट कहा है, 'मोह दसमौलि तद्भ्रांत अहंकार पाकारिजित काम विश्रामहारी। लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ठ बिबुधांतकारी॥'[२८] अपना मोह (अज्ञान) ही रावण है, अहंकार ही कुंभकर्ण है, काम ही इंद्रजेता मेघनाद है; लोभ, मत्सर और क्रोध ही रावण के सेनानायक अतिकाय, महोदर और बिबुधांतक हैं। इसी तरह उसी पद में आगे कहा गया है कि यम-नियम आदि ही देवता हैं, मोक्ष के साधन ही राम की सेना के भालू-बंदर हैं, ज्ञान ही सुग्रीव हैं, वैराग्य ही हनुमान हैं। मोहग्रस्त व्यक्ति जब अपने भीतर के मोरचे पर ही हार जाता है तब वह राम का काम कैसे कर सकता है। राम का काम तो अपने सद्‌गुणों को जगाकर अपने कर्तव्य कर्म में सेवा भाव से रत रहना ही है। अपने मोरचे पर सफलता पानेवाले को प्रभु जो काम उचित समझेंगे, सौंपते चले जाएँगे। लक्ष्मण को भक्तियोग का उपदेश देते समय प्रभु ने उसका प्रथम साधन ही इसी भाव को बताया था—'प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती, निज-निज धरम-निरत स्रुति रीती।'[२९] अपनी स्वस्थ परंपरा के प्रति श्रद्धावान् रहकर जो व्यक्ति अपना कर्तव्य कर्म करता रहता है, उसी के मन में विषयों के प्रति विराग होता है और तभी श्रीराम के धर्म के प्रति अनुराग संभव हो सकता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास नामजप के प्रति श्रद्धालु होते हुए भी निष्क्रियता के नहीं, कर्म को अपने में समेट लेनेवाली भक्ति के प्रचारक थे। तभी उन्होंने जंगमतीर्थराज संत समाज के संगम में यदि राम-भक्ति को गंगा और ब्रह्म-विचार को सरस्वती कहा था तो विधि-निषेधमय कर्म की कथा

को यमुना बताकर उसे ही कलिकाल का मल दूर करने में समर्थ बताया था।[३०] इसी प्रकार 'सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग'[३१] कहकर तुलसीदास ने गृहस्थों को तो अनिवार्यतः कर्म करते रहने का अर्थात् श्रीराम के अनुकूल कर्म करते रहने का निर्देश दिया है।

तुलसी के उपास्य श्रीराम स्वयं सैकड़ों संकट झेलकर भी अपने कठिन कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते रहे। तुलसीदास ने बहुत उत्साह के साथ उनके दिव्य कर्मों का—मर्यादापूर्ण चरित का गुणगान किया है और बार-बार उनकी इस महिमा की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। राजतिलक के बाद वंदना करते हुए चारों वेदों के माध्यम से तुलसी ने दंडकारण्य के कंटकों से छिदे श्रीराम के चरण-युगल का भजन करने की प्रेरणा दी है—

ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।[३२]

श्रीराम के चरण अपने कर्तव्य कर्म की पूर्ति में काँटों से छिदें और उनके भक्त निष्क्रिय रहें, यह कैसे संभव है। कर्मरत उपास्य की यह बाँकी छवि भक्तों को भी राम के काम के लिए केवल पैरों में नहीं, रोम-रोम में काँटे छिद जाएँ तो भी कर्तव्य पथ पर बढ़ते जाने के लिए अभिप्रेरित करती रहेगी। इसी स्तुति में वेदों ने यदि एक ओर 'जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भवनाथ सो समरामहे' कहकर नामजप के महत्त्व को स्वीकारा है तो 'मन, वचन, कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं' कहकर मन-वाणी और कर्म की एकता एवं निर्विकारता पर भी जोर दिया है। तुलसीदास ने यदि 'विनयपत्रिका' में कहा है—

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो।[३३]

तो 'गीतावली' में यह भी कहा है—

मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधिनिषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥
(मानस, १।२।७-९)

नित नए मंगल मोद अवध सब सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभुतें प्रभु-चरित पियारे।[३४]

एक ओर राम से भी अधिक प्रिय राम का नाम हो, दूसरी तरफ प्रभु से भी अधिक प्रिय प्रभु चरित हो, तभी भक्त की भावना में पूर्णता आती है। राम नाम जपते हुए राम के चरित्र से प्रेरणा प्राप्त कर राम के काम में जुटे हुए भक्तों का निर्माण करना ही तुलसी का उद्देश्य है। इसीलिए उनका संदेश है—

राम सुमिरि साहसु करिय मानिय हियैं न हारि।[३५]

संदर्भ संकेत

१. परशुराम की प्रतीक्षा (प्र.सं.), पृ. २४
२. लो. तिलक कृत 'गीता रहस्य' के दशम मुद्रण के पृ. ५२५ पर उद्धृत
३. देवर्षि नारद द्वारा कथित एवं चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित
४. सातुकर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।—नारदीय भक्ति-सूत्र, सं. २५
५. मानस, ७।११९ क
६. वही, ४।३
७. वही, ३।३१।९
८. मानस, १।१८५।६
९. वही, १।२१
१०. वही, १।२२।६
११. मानस, १।२७।७
१२. दोहावली, २९
१३. मानस, २।१९०।३
१४. वही, ४।२२।६
१५. वही, ४।२७।७-८
१६. वही, ४।३०।६
१७. वही, ५।१
१८. वही, ५।२१।६
१९. वही, ५।३०।४
२०. गीतावली, ६।१३।१-४
२१. मानस, ३।९
२२. वही, १।१८३-१८४।१-३
२३. मानस, ६।६०।३
२४. वही, २।२०३।७
२५. वही, २।३०१।४
२६. गीतावली, ६।१०।७-८
२७. वही, ६।११।८
२८. विनयपत्रिका, ५७।७-८
२९. मानस, ३।१६।६
३०. मानस, १।२।७-९
३१. मानस, २।१७२
३२. मानस, ६।१३।४।३-४
३३. विनयपत्रिका, २२८।१२
३४. गीतावली, १।४४।९-१०
३५. रामाज्ञा प्रश्न, ५।१।३

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : जीवन यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ाव

जन्म : २ मई, १९२९ को कलकत्ता में।

पिता : पं. गांगेय नरोत्तम शास्त्री।

माता : श्रीमती रूपेश्वरी देवी।

पूर्वज : जम्मू के। चार पीढ़ी पूर्व वाराणसी में आकर बसे। बाद में पिता कलकत्ता आकर बस गए। कलकत्ते में ही विष्णुकांतजी का जन्म।

प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण (१९४५)।

बी.एस-सी. परीक्षा पास की (१९४९)।

बी.ए. की उपाधि प्राप्त (१९५०)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम.ए. (प्रथम श्रेणी में प्रथम) (१९५२)।

श्रीमती इंदिरा देवी के साथ जम्मू में विवाह (२६ जनवरी, १९५३)।

एल-एल.बी. की उपाधि (१९५३)।

सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज में लेक्चरर के रूप में नियुक्त (जुलाई १९५३)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति (अक्तूबर १९५३)।

श्री बड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय के मंत्री (१९५८-५९)।

श्री बड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय के अध्यक्ष (१९६४-६५)।

कलकत्ते की प्रख्यात नाट्य संस्था 'अनामिका' के अध्यक्ष (१९६८-७४)।

'संकल्प, संत्रास, संकल्प' (बँगलादेश की संग्रामी कविताएँ नागरी लिपि में और उनका काव्यानुवाद) प्रकाशित (१९७२)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य निर्वाचित (१९७२)।

'कुछ चंदन की कुछ कपूर की' पुस्तक को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार' (१९७३)।

'बँगलादेश के संदर्भ में' कृति उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा सम्मानित (मार्च १९७५)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रीडर पद पर पदोन्नति (५ अप्रैल, १९७५)।

सूरीनाम, गुयाना, ट्रिनिडाड, यू.एस.ए., इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली की यात्रा (२९ जनवरी से ७ मार्च, १९७८)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्थानापन्न हिंदी विभागाध्यक्ष (५ जुलाई, १९७९ से ९ जुलाई, १९८० तक)।

'स्मरण को पाथेय बनने दो' कृति उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा सम्मानित (१९७९)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष (१९८१ से १९८३)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर पद पर नियुक्ति (जुलाई १९८३ से)।

'रस-वृंदावन' मासिक पत्र का संपादन (१९७७-८३)।

'तुलसी के हिय हेरि' (गोस्वामी तुलसीदास पर आलोचनापरक निबंध) प्रकाशित (१९९०)।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'साहित्यभूषण पुरस्कार' प्राप्त (१९९१)।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त (मई १९९४)।

'ज्ञान और कर्म' (ईशावास्य अनुवचन) प्रकाशित (१९९८)।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सुप्रतिष्ठित 'डॉ. राममनोहर लोहिया सम्मान' प्राप्त (१९९८)।

हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल पद पर नियुक्ति (२ दिसंबर, १९९९)।

कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा मानद डी.लिट. उपाधि (३१ जनवरी, २०००)।

पंजाब के राज्यपाल एवं चंडीगढ़ के प्रशासक का अतिरिक्त कार्यभार (१ से १८ मई, २०००)।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद पर नियुक्ति (२४ नवंबर, २०००)।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा मानद डी.लिट. की उपाधि (६ दिसंबर, २०००)।

प्रयाण : १७ अप्रैल, २००५।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : विरचित साहित्य

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का रचना-संसार अत्यंत व्यापक है। निबंध, संस्मरण, कविता, रिपोर्ताज एवं यात्रावृत्त के लेखन में उन्होंने अपने कौशल का परिचय दिया है। साहित्य की इन तमाम विधाओं में अपने मौलिक लेखन द्वारा उन्होंने सारे देश में यश अर्जित किया है। आध्यात्मिक विषयों पर भी उनका लेखन प्रशंसित हुआ है। उन्होंने पंद्रह मौलिक, तीन अनूदित एवं सात संपादित कृतियों का सृजन किया है। सन् १९६३ से लेकर आज तक प्रकाशित कृतियों की सूची इस प्रकार है—

मौलिक

१. कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध (१९६३)
२. कुछ चंदन की कुछ कपूर की (१९७३)
३. बँगलादेश के संदर्भ में (१९७३)
४. चिंतन मुद्रा (१९७७)
५. स्मरण को पाथेय बनने दो (१९७७)
६. अनुचिंतन (१९८६)
७. तुलसी के हिय हेरि (१९९०)
८. भक्ति और शरणागति (१९९१)
९. सुधियाँ उस चंदन के वन की (१९९२)
१०. ज्ञान और कर्म (१९९८)
११. अनंत पथ के यात्री : धर्मवीर भारती (१९९९)
१२. जीवन पथ पर चलते-चलते (१९९९)
१३. विष्णुकांत शास्त्री : चुनी हुई रचनाएँ (२००३)
१४. ...पर साथ-साथ चल रही याद (२००४)
१५. आधुनिक हिंदी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष (२००४)

अनूदित

१. उपमा कालिदासस्य
२. संकल्प, संत्रास, संकल्प (१९७३)
३. महात्मा गांधी का समाज-दर्शन (१९७३)

संपादित

१. बालमुकुंद गुप्त : एक मूल्यांकन (१९६५)
२. दर्शक और आज का हिंदी रंगमंच (१९६८)
३. बँगलादेश : संस्कृति और साहित्य (१९७३)
४. तुलसीदास : आधुनिक संदर्भ में (१९७६)
५. कलकत्ता-१९८६ (१९८७)
६. कलकत्ता-१९९३ (१९९३)
७. अमर आग है (१९९४)

सा अ

कालजयी महाभारत : वैश्विक एक धरोहर

• लक्ष्मीमल्ल सिंघवी



संविधान विशेषज्ञ, लेखक, कवि, संपादक, भाषाविद् और साहित्यकार। लगभग ७० पुस्तकों की रचना या संपादन। प्रतिष्ठित साहित्यिक मासिक 'साहित्य अमृत' के संपादक रहे। १९९८ में 'पद्म विभूषण' से सम्मानित। सन् १९९१ से १९९८ तक यूनाइटेड किंगडम में भारत के उच्चायुक्त तथा राज्यसभा के सांसद तथा १२०० से अधिक राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय, सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के संरक्षक-संस्थापक रहे। स्मृतिशेष : ६ अक्तूबर, २००७।

कालजयी जीवंत ग्रंथ 'जय'* वैश्विक एक धरोहर।
देशकाल में धर्मदृष्टि का निर्मल मानसरोवर॥

भारत स्वयं महाभारत में कृति वह सदा सनातन।
पुरातत्त्व में अधुनातन का अनुपम चिंतन-मंथन॥

यह जाति का इतिहास है भूगोल भारतवर्ष का।
है यह कथानक मनुज के अपकर्ष का उत्कर्ष का॥

विश्व-दर्पण यह जगत् का बिंब है, प्रत्येक विविधा का।
विश्वकोष है मनस्तत्व का यह सारी वसुधा का॥

रस-रूप-रंग में रची-बसी अद्भुत काव्य कथाएँ।
उनमें संचित हैं द्वापर की व्याकुल सघन व्यथाएँ॥

मोहग्रस्त अंधी सत्ता थी पूरी स्वेच्छाचारी।
भीष्म विदुर क्यों रहे विवश, क्यों मौन रही गांधारी॥

दुर्योधन धृतराष्ट्र शकुनि केवल सत्ता के उपक्रम।
षड्यंत्रों का जाल बिछाते थे शासन के अनुक्रम॥

सत्ता के अनुचारी थे सब चाटुकार दरबारी।
धर्म-विरोधी राज्य अराजक, मर्यादाएँ हारीं॥

भीष्म पितामह राजसभा में बैठे एक किनारे।
भूल गए युगपुरुष अस्मिता, निज कर्तव्य बिसारे॥

दुर्विनीत अन्यायी शासन, धर्म-विमुख अधिकारी
पांचाली के चीर-हरण में सत्ता की अँधियारी॥

महासमर को रोक न पाए कृष्ण, भीष्म, द्वैपायन।
द्वापर ने पाया कृष्णायन त्रेता ने रामायण॥

हर युग में यह यक्ष-प्रश्न मानव समाज ने झेला।
क्यों विकल्प है युद्ध न्याय का, माध्यम वही अकेला॥

शोषण लिप्सा आधिपत्य में न्याय-धर्म क्यों सोया।
वसुधा ही कुटुंब है, फिर यह मूल मंत्र क्यों खोया॥

ध्वंस हो गया द्वापर का युग अपने ही अनर्थ में।
भारत को दी स्वयं कृष्ण ने गीता नए अर्थ में॥

वाल्मीकि ने वेदव्यास ने, दी अनमोल धरोहर।
सत्य अहिंसा शांति अभय में भारत होता सस्वर॥

बोले उस युगांत में ऋषिवर दोनों बाहु उठाकर।
धर्मरहित पुरुषार्थ व्यर्थ ज्यों दिन में अस्त दिवाकर॥

पंचम वेद उपनिषद् गीता, मुखरित दृष्टि देश की।
वेदव्यास की सृष्टि और लेखनी श्रीगणेश की॥

भारत और महाभारत में शंखनाद सुनता हूँ।
मैं गीता में सदा कृष्ण को निर्विवाद गुनता हूँ॥

महासमर की नहीं शांति की और न्याय की शिक्षा।
है गीता में कर्मयोग की सद्विवेक की दीक्षा॥

वेदव्यास ने कहा अहिंसा शाश्वत परम धर्म है।
मानवता से श्रेष्ठ नहीं कुछ 'जय' का यही मर्म है॥

द्वापर से कलियुग ने पाया यही नया संबोधन।
तिलक और गांधी का जीवन, गीता का उद्बोधन॥

चार कविताएँ

● कुँवर नारायण



हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार। नई कविता आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर; अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' (१९५९) के प्रमुख कवियों में से एक रहे। कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी प्रचुर लेखन। उनकी कविताओं-कहानियों का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद। विभिन्न विधाओं की बीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से अलंकृत। स्मृतिशेष : १५ नवंबर, २०१७।

खाली बातें

कई बातें निकलती थीं उस बात से।
कई बातें थीं
और बात से बात निकालनेवालों की
दुनिया में कमी न थी।

सारी किताबें एक ओर रख दीं
और एक बाल की खाल निकालने लगा,
खाल न निकली
तो नाखूनों से सिर खुजाने लगा...

कुछ आराम सा मिला,
तो आँख लग गई

नींद में चल पड़ी सपनों की बात
कि जिसे देखते हुए सो गए
या जिसे सोते हुए देख रहे
एक ही बात है।

खाली खोज

चीजें रखी रहती हैं अपनी-अपनी जगह
मैं ही खो जाता हूँ अकसर
किसी खास चीज को खोजते-खोजते...

फिर हारकर एक दिन खोजने निकलता
कि कहाँ हूँ मैं
तो मिलने लग जातीं
एक के बाद एक ऐसी-ऐसी चीजें
कि परेशान हो जाता
कैसे इनसे जान छुड़ाऊँ,
जिसे सचमुच खोज रहा
कैसे उसे पाऊँ!



खाली अस्तबल

खाली अस्तबल?
कहाँ गए घोड़े?
सवारों की तलाश में।

कहाँ गए सवार?
घोड़ों की तलाश में।

आजकल कम ही दिखाई देते हैं
अच्छे घुड़सवार।

वैसे
जिधर देखो घुड़दौड़-ही-घुड़दौड़,
जिससे मिलो
उसके सिर पर
एक भूत सवार...

खाली पीछा

एक बार धोखा हुआ
कि तितलियों के देश में पहुँच गया हूँ
और एक तितली मेरा पीछा कर रही...

मैं ठहर गया
तो वह भी ठहर गई,
मैंने अपने पीछे मुड़कर देखा
तो अपने पीछे मुड़कर उसने भी देखा,
फिर जब मैं उसके पीछे भागने लगा
वह भी अपने पीछे की ओर भागने लगी।

दरअसल वह भी
मेरी ही तरह धोखे में थी
कि वह तितलियों के देश में है
और कोई उसका पीछा कर रहा है।

स्वामी विवेकानंद : एक अप्रतिम विभूति

जैसे उन्नीसवीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण नवचेतना या जागृति का बहुआयामी युग था, उसी प्रकार का था स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व और चिंतन। वे स्वयं पुनर्जागरण की अपेक्षाओं के अवतार थे, जिसके क्षितिज में धर्म, दर्शन समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था तथा राज्यतंत्र पूर्णतया अंतर्संबंधित थे। वे एक प्रकार से उन्नीसवीं सदी के पुनर्जागरण की उत्पत्ति भी थे, किंतु उसको उन्होंने नई गति और दिशा भी प्रदान की। विलक्षण बात यह है कि उनके विचार और उनका व्यक्तित्व आज भी भारत एवं अन्य देशों के लोगों को प्रभावित करता है। विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोग उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि वे कुल ३९ वर्ष जिए, जिसमें उनका सार्वजनिक जीवन केवल ९ वर्ष (१८९३-१९०२) का ही था। वे एक उल्कापिंड के समान थे, जिसकी चमक वर्षों पूर्व ओझल हो जाने के बाद आज भी हमें आलोकित कर रही है। उनके विचार और आदर्श पूरे ओज के साथ आज भी प्रासंगिक एवं समयानुकूल हैं। स्वामी विवेकानंद न केवल अपने युग की आत्मा को प्रतिबिंबित करते हैं वरन् उनकी दृष्टि भारत के भविष्य और सारी मानवता के सार्वकालिक कल्याण की खोज करती है।

भारतीय पुनर्जागरण को व्यक्तिगत व वैचारिक अभिरुचि के अनुसार अलग-अलग नामों से संबोधित किया गया है। कुछ ने इसे 'प्रतिक्रिया और पुनरुत्थान' कहा है, जबकि औरों ने इसे 'भारतीय जागरण', 'नूतन युग', 'नया विचार', 'नए युग का भोर' इत्यादि। एक बात पर सभी विचारक एक मत हैं और वह है इस आंदोलन अथवा फेनोमेनन की विशालता व विविधता। उसका आभास हम पाते हैं स्वामी विवेकानंद के वैचारिक क्षितिज और समग्रता की सोच में। इतना हम अवश्य कहना चाहेंगे कि इस युग की मुख्यत: दो वैचारिक धाराएँ थीं—एक थी पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के टकराव की प्रतिक्रिया से जनित और दूसरी धारा थी भारतीय आध्यात्मिक अनुभव और सांस्कृतिक धरोहर एवं समवेत राष्ट्रीय स्मृति से प्रेरित तथा प्रभावित। स्वामी दयानंद और रामकृष्ण परमहंस इसके प्रतीक हैं। अपनी संस्कृति के प्रति आशावान तथा पाश्चात्य शिक्षा में पारंगत और सभ्यता से भिज्ञ स्वामी विवेकानंद में एक सुखद समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जो भारतीय पुनर्जागरण के विरोधाभासों और जटिलताओं को सफलतापूर्वक अपने में आत्मसात् कर लेता है।

स्वामी विवेकानंद के विचारों और व्यक्तित्व को ढालने में उनके पिता का लोकोपकारी स्वभाव, अत्यंत उदार सामाजिक व धार्मिक दृष्टिकोण तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त उनकी प्रिय माता का धार्मिक रुझान, संगीत-प्रेम, मधुर एवं स्नेहिल व्यवहार का भरपूर प्रभाव पड़ा।



भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी, भारत सरकार के गृह सचिव तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक रहे। 'पद्म विभूषण' तथा अनेक सम्मानों से अलंकृत। केरल तथा कर्नाटक के राज्यपाल रहे। अनेक सांस्कृतिक-सामाजिक-प्रशासनिक संस्थाओं से संबद्ध रहे। विभिन्न विषयों की पुस्तकों के गंभीर अध्येता, चिंतक व विचारक। लंबे समय तक 'साहित्य अमृत' के संपादक के रूप में योगदान। स्मृतिशेष : ५ जनवरी, २०२०।

उदारमना पिता के देहांत के उपरांत की परिस्थितियों ने उन पर न केवल परिवार-पालन का दायित्व डाला और जीवन तथा समाज के दैनिक व्यवहार के कटु यथार्थ से परिचय कराया, बल्कि उन अनुचित पक्षों से कराया, जो रोजमर्रा की जिंदगी का कटु यथार्थ थे। नरेंद्रनाथ (स्वामी विवेकानंद कहलाने से पूर्व का नाम) बहुपाठी थे। उनकी स्मरण-शक्ति असाधारण थी। उनकी बौद्धिक चेतना विशाल थी। उनकी जिज्ञासा असीम थी। उनका स्वभाव मिलनसार था और उनमें सोचे-समझे जोखिम उठाने की क्षमता के साथ-साथ प्रसन्नचित्त एवं सभी के प्रति सखा-भाव था। संगीत से प्रारंभ से ही प्रेम था, इन्हीं सब गुणों ने उन्हें एक सहज, किंतु विशेष नेतृत्व-कुशलता प्रदान की। विभिन्न विषयों, जैसे इतिहास, दर्शन-शास्त्र, अर्थशास्त्र, अंतरराष्ट्रीय राजनीति, वैज्ञानिक प्रगति तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों पर उनकी पकड़ से उनके संपर्क में आनेवाले बुद्धिजीवी भी हतप्रभ हो जाते थे। उनकी व्यापक अध्ययन की आदत सारी उम्र बनी रही। सत्य को जानने की उनकी अतृप्त प्यास तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा उन्हें महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोर एवं ब्राह्मसमाज के पास खींच ले गई। लेकिन यहाँ भी उनकी आध्यात्मिक पिपासा तृप्त न हो सकी। नियति उन्हें अंतत: श्रीरामकृष्ण के पास ले आई। पहले तो उनकी तर्कसंगत कृति ने उन्हें रामकृष्ण को अपना गुरु मानने से रोका, क्योंकि रामकृष्ण का आचार-व्यवहार उन्हें अजीब लगता था; लेकिन धीरे-धीरे परमहंस के युक्ति-युक्त उत्तरों और तर्कों से विवेकानंद को अपने लिए एक मार्ग दिखाई पड़ने लगा।

रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में नरेंद्र को जो आध्यात्मिक अनुभव हुए, उनका उनके विचारों पर अमिट प्रभाव पड़ा। विवेकानंद ने रामकृष्ण परमहंस से ही सीखा कि व्यक्तिगत मुक्ति की तलाश तथा आध्यात्मिक उपलब्धि का सामाजिक कल्याण और सामाजिक पुनर्निर्माण के साथ कोई विरोध या टकराव नहीं है। एक और बड़ा सत्य, जो उन्होंने अपने गुरु से सीखा, जिसे विवेकानंद ने सबसे महत्त्वपूर्ण माना, वह यह था कि संसार

के सभी मत-मतांतर प्रतिद्वंद्वी अथवा विरोधी न होकर एक ही शाश्वत धर्म की अनेक अवस्थाएँ या रूप हैं। उन्होंने यह जाना कि आध्यात्मिकता धर्म का आधार है। उन्होंने अपने गुरु की शिक्षा का उपसंहार यों किया—''धर्म केवल मौखिक वार्त्ता अथवा सिद्धांत नहीं है। धर्म संप्रदायों तथा संकुचित समाजों में नहीं समा सकता है। वह पुस्तकों, शब्दों या प्रवचनों अथवा संस्थाओं में नहीं मिलता। धर्म एक उपलब्धि है।'' श्रीरामकृष्ण का संदेश है कि जीव और शिव एक हैं; वेदांत की धारणा है कि एक ही आत्मा पूरे में समाई है। अतएव मानव जाति की एकता, समानता, धर्मों में सामंजस्य—ये सब विवेकानंद की मान्यताओं तथा कालांतर में भारत व विदेशों में भी उनके शिक्षण का आधार बने। व्यर्थ में कुछ आलोचक भ्रम फैलाने की चेष्टा करते हैं कि स्वामी विवेकानंद ने जो कुछ कहा और किया, वह अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की मान्यताओं के विपरीत है।

एक तरह से स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं और उनके विविध कार्यों को श्रीरामकृष्ण के जीवन और उनकी मान्यताओं तथा प्रवचनों की एक व्याख्या या एक टिप्पणी माना जा सकता है। उनके भारत-भ्रमण (जब उन्होंने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक महत्त्व के विभिन्न स्थानों की यात्रा की) के दौरान स्वामीजी के विचार और भी संपुष्ट तथा स्पष्ट हुए। पर्यटन में वे उस युग के अनेक प्रसिद्ध साधुओं और संतों से मिले। भिक्षा का पात्र लिये परिव्राजक के रूप में वे पैदल अथवा जो भी आवागमन का साधन उन्हें मिल पाया, उन्होंने भ्रमण किया। वे राजकुमारों तथा दीन-दरिद्रों से लेकर विद्वानों तथा जन-नेताओं के साथ-साथ तत्कालीन औपनिवेशिक भारत की विभिन्न रियासतों में रुके। वे अलग-अलग धर्म व संप्रदायों के महत्त्वपूर्ण स्थानों में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों से मिले। उन्होंने गरीबों और तथाकथित निम्न जाति के लोगों के दु:ख, उन पर अत्याचार और उनका शोषण, उत्पीड़न प्रत्यक्ष देखा। उन्होंने देखा, धार्मिक मान्यताओं का अधोपतन, अंधविश्वास, स्त्रियों की दयनीय स्थिति तथा उनका दमन, दलित तथा अछूत कहे जानेवाले समाज के बड़े हिस्से में अधिकतर दीन-हीन लोगों का जीवन तथा जनजातियों की सामाजिक उपेक्षा। उन्होंने अत्यधिक संपन्नता, विलासिता तथा अपव्ययता भी देखी, जिसने उनकी सामाजिक संवेदनशीलता तथा व्यक्तिगत वेदना को बढ़ाया ही। भारत का एक सही चित्र उनके मस्तिष्क में उभरने लगा और उन्हें अपने भविष्य के कार्यक्रम का आभास होने लगा।

राजस्थान में माउंट आबू में रुके स्वामी विवेकानंद ने अपने एक शिष्य को ३० अप्रैल, १८९१ को पत्र में लिखा—''मेरे बच्चो, धर्म का रहस्य सिद्धांतों में नहीं, बल्कि व्यवहार में है। अच्छा बनना और अच्छा कार्य करना, यही धर्म की समग्रता है।'' अपने आध्यात्मिक प्रशिक्षण में स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु से यही सब आत्मसात् किया था। दिसंबर १८९२ में कन्याकुमारी में माँ के मंदिर में दर्शन करने के बाद एक चट्टान पर बैठकर उन्होंने ध्यान-मनन किया था (इस स्थान को आजकल 'विवेकानंद रॉक' के नाम से जाना जाता है)। एकाकी ध्यानावस्था में यहाँ स्वामीजी के मानस-पटल पर भारतीय इतिहास का सारा परिदृश्य ही उतर आया था। यशस्वी अतीत, कारुणिक वर्तमान के साथ आनेवाले महान् भविष्य की महिमा और संभावनाओं का दर्शन उन्होंने किया। इसलिए उन्होंने भारत की कमजोरियों, असफलताओं और भविष्य की संभावनाओं तथा अंत:शक्ति एवं उस अंत:शक्ति को प्राप्त करने के लिए क्या करना आवश्यक है, इस पर चिंतन किया।

उन्होंने जाना कि भारत की नियति को पूरा करने के लिए भारतीय आध्यात्मिक धरोहर के दो आदर्श 'त्याग और सेवा' ही मार्गदर्शक बन सकते हैं। भारत के सुदूरतम बिंदु पर ध्यान-मनन के दौरान स्वामीजी के मस्तिष्क में भारत के संपूर्ण और व्यापक पुनर्निर्माण की योजना ने आकार लेना शुरू कर दिया था। बाद में उन्होंने इस बारे में लिखा—''हमने एक राष्ट्र के रूप में अपनी वैयक्तिकता खो दी है और यही सारी हानि का मूल कारण है। हमें अपने राष्ट्र की खोई हुई वैयक्तिकता पुन: दिलानी है और जन-जन को जाग्रत् करना है। उनमें फिर से जागने की शक्ति भी भीतर से ही आनी चाहिए।''

कन्याकुमारी जाने के पूर्व त्रिवेंद्रम में स्वामीजी ने अपने एक भक्त को बताया—''व्यावहारिक रूप में देशभक्ति का अर्थ केवल राष्ट्र के प्रति प्रेम ही नहीं, बल्कि देशवासियों की सेवा करने की उमंग है। मैं पैदल सारे भारत में घूमा हूँ और मैंने अपनी आँखों से भारतीयों का अज्ञान, दु:ख और गरीबी देखी है। मेरी आत्मा सुलग रही है और देश की दयनीय स्थिति को बदलने की तीव्र इच्छा मुझे भीतर-ही-भीतर जला रही है। नारायण तक पहुँचने के लिए 'दरिद्र नारायण' अर्थात् भारत के लाखों भूखे लोगों की सेवा जरूरी है।''

स्वामीजी के जीवन में एक और मोड़ तब आया, जब वे 'विश्व सर्वधर्म संसद्' में भाग लेने अमेरिका गए। यहाँ फिर ऐसा लगता है कि यह यात्रा भी भारत के भविष्य के लिए विधि के विधान का अंश थी। स्वामीजी के भारत-भ्रमण के दौरान कई स्थानों पर कई सज्जनों ने स्वामीजी को सुझाया था कि उन्हें शिकागो में होनेवाली धर्म संसद् में भाग लेना चाहिए, यद्यपि उनमें से किसी को इसकी तिथि तथा इसके नियम आदि के बारे में कोई अधिकृत जानकारी नहीं थी। पर उन सबका दृढ़ विश्वास था कि हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्वामी विवेकानंद ही सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं।

जब कि भारत के अन्य धर्मों, मतों और संप्रदायों को इसका आधिकारिक निमंत्रण मिला, यह विस्मयकारी है कि भारत के सबसे बड़े धर्म सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी को भी आमंत्रित नहीं किया गया था। इस यात्रा की बात उन्होंने अपने मन ही में रखी और यात्रा के लिए साधन जुटाने की बात उन्होंने केवल मद्रास में रहनेवाले अपने अनुयायियों से कही। मद्रास प्रवास के दौरान उन्होंने एक प्रतीकात्मक स्वप्न देखा, जिसमें स्वामी रामकृष्ण समुद्र-तट से समुद्र के जल पर चलते हुए उन्हें पीछे-पीछे आने को कह रहे हैं। उनके लिए यह उनके गुरु की स्वीकारोक्ति थी पाश्चात्य देशों की यात्रा की। माँ शारदा ने भी अनुमति प्रदान की। मद्रास के अनुयायियों के अतिरिक्त कई राजाओं और राजकुमारों से अलग-अलग प्रकार की सामग्री एवं सहायता उन्हें मिली।

अपने विदेश प्रवास के दौरान स्वामीजी ने अपने मित्रों और अनुयायियों से संपर्क बनाए रखा। उनके पत्रों में (विशेष रूप से आलासिंगा को भेजे पत्रों में) उन्होंने विदेश में होनेवाली कठिनाइयों के बारे में बताया। कैसे उन्हें सहायता मिली, कैसे उन्हें 'विश्व सर्वधर्म संसद्' में भाग लेने की मान्यता मिली, कैसे उनके वहाँ रुकने की व्यवस्था हुई, क्योंकि स्वामीजी धर्म संसद् के उद्घाटन से बहुत पहले ही वहाँ पहुँच गए थे। स्वामीजी के ज्ञान और व्यक्तित्व से प्रभावित अमेरिका में अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों ने यकायक किस प्रकार उनकी सहायता की, इन सब नाटकीय घटनाओं

को यहाँ दोहराना आवश्यक नहीं है। क्या यह सब केवल संयोग न होकर दैवी विधान नहीं था? उनके श्रोताओं पर उनके भाषण का जो सम्मोहक तथा विद्युन्मय प्रभाव पड़ा, यह तो तब घर-घर की चर्चा का विषय था। यहाँ यह कहना पर्याप्त होगा कि 'विश्व सर्वधर्म संसद्' में स्वामीजी की यशस्वी उपस्थिति से अमेरिका चमत्कृत रह गया और जब देश के सम्मान को बढ़ानेवाला यह समाचार भारत पहुँचा तो प्रत्येक भारतीय को गर्व की प्रतीत स्वाभाविक थी।

उस धर्म संसद् में उनके तात्कालिक भाषण के कुछ छोटे उद्धरण यहाँ देना प्रासंगिक होगा। ११ सितंबर, १८९३ को उद्घाटन भाषण में उन्होंने श्रोताओं को संबोधित करते हुए कहा, ''अमेरिका में रहनेवाले भाइयो और बहनो! आपने मेरा जो जोशीला और मैत्रीपूर्ण स्वागत किया है, उससे मेरा हृदय अव्यक्त हर्ष से भर गया है। हमारे देश में चली आ रही साधुओं की पुरातन परंपरा की ओर से इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं धन्यवाद देता हूँ सभी धर्मों की जननी की ओर से; धन्यवाद देता हूँ लाखों-लाख हिंदुओं के सभी वर्गों और संप्रदायों की ओर से। मुझे गर्व है कि मैं उस धर्म का अनुयायी हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौमिक प्रतिग्रहणता प्रदान की। हम केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि सभी धर्मों को सच्चा मानते हैं।''

उन्होंने आगे कहा, ''मुझे गर्व है कि मैं उस देश से हूँ, जिसने पृथ्वी के सभी देशों और धर्मों के उत्पीड़ित शरणार्थियों को पनाह दी। मैं पूरे उत्साह से यह आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन के सम्मान में सुबह जो घंटियाँ बजाई गई थीं, वे धर्मांधता, तलवार या कलम से जनित सभी उत्पीड़नों और एक ही लक्ष्य की ओर बढ़नेवाले लोगों के बीच द्वेष की भावना के अंत की सूचक होंगी।'' इन शब्दों ने धर्म संसद् में होनेवाली चर्चा को न केवल एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान किया, बल्कि भारत की इस छवि को भी बदला कि भारत बर्बर और वहशियों की भूमि है, जहाँ सभ्यता का संचार पश्चिमी पादरियों द्वारा होना अभी बाकी है।

कई स्थानों पर स्वामीजी ने इस बात की चर्चा की है कि किस बात से प्रेरित होकर वे अमेरिका की यात्रा पर आए। इन्हें बिखरे हुए कई संदर्भों से चुनकर फिर जोड़ा गया है। ऐसा लगता है कि सबसे पहले तो स्वामी विवेकानंद अपने गुरु का संदेश दुनिया के सामने रखना चाहते थे। यह संदेश था विश्व शांति, सभी धर्मों में सामंजस्य, मानव जाति की समानता तथा मानव जाति के ऐक्य का, वेदांत को एकमात्र अनादिकाल से आनेवाले मूल धर्म मानने का। दूसरे, वे जानना चाहते थे कि अमेरिका के आर्थिक और वैज्ञानिक विकास द्वारा संसार की बड़ी शक्ति के रूप में उभरकर आने का रहस्य क्या है? स्वाभाविक है कि वे विद्वानों, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों तथा उन अन्य लोगों से मिलना चाहते थे, जिनका चिंतन अमेरिका की प्रगति के पीछे था। तीसरे, उनको यह अपेक्षा थी कि अमेरिका के तीव्र विकास के बारे में जानकर वे अपने देशवासियों को यथार्थ रूप में यह सिखाने में समर्थ हो जाएँगे कि कैसे भारतीय भी इस क्षेत्र में अमेरिका की बराबरी कर सकेंगे। उन्हें यह भी आशा थी कि इस प्रकार अपने देश के 'दरिद्र नारायण' के उद्धार के लिए आर्थिक साधन जुटा पाएँगे। लेकिन इस मामले में उन्हें अधिकतर निराशा ही हाथ लगी। फिर भी, भारत की आध्यात्मिक व धर्मनिरपेक्षता की थाती का बोध तथा शोषण और दमनकारी विदेशी शासन के कारण भारत देश की आर्थिक व राजनैतिक दुर्दशा की जानकारी बहुत कुछ पूरे विश्व को मिली। अंत में वे अपने आपको पश्चिमी देशों के सामाजिक स्वभाव, संघटनात्मक तथा प्रबंधकीय कार्य-प्रणाली तथा वैज्ञानिक और तकनीकी के बारे में पूर्णतया अवगत होना चाहते थे।

उनके पत्रों में उनकी टीका-टिप्पणियाँ एवं अपेक्षाएँ, अपने युवा मित्रों को सूचित करने की और उनको शिक्षित करने के उद्देश्य से अनुशासन की महत्ता, समय की पाबंदी, अपने कर्तव्य के प्रतिबद्धता, समाज के प्रति लगाव, सहकारिता की भावना, टीम में काम करने की मनोवृत्ति आदि गुण, जो उन्होंने पश्चिम में पाए, उनकी चर्चा करते हैं। अपने देश में संघटनात्मक पटुता का अभाव सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रति उदासीनता की बात करते हैं। अपने अनुयायियों को प्रेरित करते हैं कि जनता से इकट्ठा किए गए प्रत्येक पैसे का पूरा हिसाब रखा जाए और जनता के लिए वे पूरी तरह से उत्तरदायी हों। स्वामी विवेकानंद ने सभी लोगों में नेता बनने की प्रवृत्ति और आपसी ईर्ष्या-द्वेष की भी बड़ी निंदा की। उन्होंने अपने युवा मित्रों को यह परामर्श दिया कि नेता बनने के योग्य होने के लिए पहले अनुयायी बनो। महात्मा गांधी ने स्वामी विवेकानंद द्वारा सबसे पहले 'दरिद्र नारायण' का प्रयोग किए गए शब्द को न केवल लोकप्रिय बनाया, बल्कि तदनुसार अनुसरण करने का प्रयास किया।

स्वामी विवेकानंद ने वेदांत के सिद्धांतों का अनुमोदन किया है और उनका प्रचार-प्रसार किया। जो उन्होंने अपने गुरु से सीखा था, उन सबका युगानुकूल समावेशी विश्लेषण करके उन्हें 'व्यावहारिक वेदांत' के रूप में विकसित किया। स्वामी विवेकानंद ने अपने समय में अपने तरीके से देश के लिए लक्ष्य निर्धारित किया और वहाँ तक पहुँचने का मार्ग भी दरशाया।

स्वामीजी के बहुपक्षीय विचार उनके भाषणों, साक्षात्कारों, पत्रों, उनके वार्तालापों तथा बँगला और अंग्रेजी में लिखी पुस्तिकाओं में बिखरे पड़े हैं। उन्होंने व्यक्ति और समाज का समग्र तथा जैविक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने तीक्ष्ण प्रेक्षण तथा भारतीय आध्यात्मिक धरोहर पर आधारित प्राचीन साहित्य एवं पाश्चात्य विद्वानों की लिखी पुस्तकों के विशद अध्ययन के बाद ही अनेक समस्याओं और विषयों पर अपना मत व्यक्त किया।

स्वामीजी ने एक बार अपने बारे में कहा था कि वे 'एक घनीभूत भारत हैं।' जैसा कि उनकी सबसे बड़ी शिष्याओं में से एक सिस्टर निवेदिता ने अपने संस्मरणों में लिखा है—''उन सभी वर्षों में, जब मैं उनसे लगभग रोज मिलती थी, भारत के बारे में विचार तो ऐसा लगता था मानो उनकी साँस हो। उन्होंने कभी 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रयोग नहीं किया, न ही 'भारत-निर्माण' के युग की घोषणा की। उनके अनुसार 'मानव-निर्माण' उनका कार्य था। वे जन्म से प्रेमी थे और उनकी आराधना की महारानी थी उनकी मातृभूमि।''

स्वामीजी ने अपने दिल और दिमाग से भारत में प्रचलित बुराइयों का एक निदान खोजा। उनके अनुसार, इन समस्याओं का मूल हल है—अद्वैत अथवा व्यावहारिक वेदांत और उसके आधार पर आचरण। स्वामी विवेकानंद कोरे सिद्धांत या वाद-निर्माता नहीं थे। वे एक जगह टिककर दर्शनशास्त्र, आध्यात्मिकता, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक

विषयों पर एक ही बार में कोई शोध-प्रबंध अथवा थीसिस नहीं लिख रहे थे। उन्होंने हमारे समाज, अर्थव्यवस्था तथा राज्यतंत्र की आधारभूत बुराइयों और कमजोरियों को बारीकी से जाना तथा उनका उपयुक्त इलाज सुझाया। उनके सुझाए उपचार को हम आज उपलब्ध वैज्ञानिक विकास, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी ज्ञान के माध्यम से और परिष्कृत कर सकते हैं। स्वामीजी भारत के साधनों, समर्थता और संभावनाओं से भलीभाँति परिचित थे। स्वामीजी मानते थे और कहा करते थे कि देश के युवाओं—युवक और युवतियों—की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक पुनरुद्धार में महती भूमिका होगी। आज इस तथ्य को सब स्वीकार करते हैं।

स्वामीजी को प्रतीत हुआ कि लंबी दासता तथा अंधविश्वासों के कारण भारत संसार से अलग-थलग पड़ गया है। सब प्रकार के मूर्खतापूर्ण विश्वासों ने भारतीयों के दिमाग को जकड़ रखा है, जैसे कि विदेश यात्रा करना निषिद्ध है; यद्यपि सब जानते थे कि हमारे विद्वानों ने भारत के ज्ञान को सिखाने के लिए सुदूर देशों की यात्राएँ की थीं। स्वामी विवेकानंद ने कहा, ''मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का सबसे मुख्य कारण यह है कि हम अन्य देशों से मेल-जोल नहीं बढ़ाते। हमें उनसे विचारों के आदान-प्रदान का मौका नहीं मिलता। हम कूप-मंडूक हैं।''

एक स्वागत भाषण के उत्तर में कलकत्ता में उन्होंने कहा, ''क्या हमें हमेशा पाश्चात्यों के चरणों में बैठकर हर चीज उनसे सीखनी होगी, यहाँ तक कि धर्म भी? हम उनसे क्रिया-विधि सीख सकते हैं। हम उनसे और कई चीजें सीख सकते हैं। लेकिन हमें भी उन्हें कुछ पढ़ाना होगा और वह है हमारा धर्म, वह है हमारी आध्यात्मिकता। अत: बाहर जाना चाहिए। समानता के बिना मैत्री नहीं हो सकती और हमारा एक पक्ष सदा अध्यापक की तरह रहे और दूसरा सदैव शिष्य की तरह चरणों में बैठे तो समानता नहीं हो सकती। यदि तुम अंग्रेजों अथवा अमेरिकनों से बराबरी चाहते हो तो तुम्हें पढ़ाना और उनसे सीखना होगा और तुम्हारे पास उनको सदियों तक पढ़ाने के लिए बहुत कुछ है।'' ऐसा था स्वामीजी का यथार्थवाद तथा राष्ट्र-गौरव। हम इन्हें स्वामीजी की सम्माननीय 'व्यापार की शर्तों' (terms of trade) के रूप में भी देख सकते हैं।

सौभाग्यवश आज हमारी योग्यता तथा क्षमताएँ और भी विकसित हो गई हैं। हममें गर्व की भावना बढ़ाने और भारत व अन्य देशों के बीच विनिमय बढ़ाने के अतिरिक्त स्वामीजी ने निजी परिश्रम, उद्योग, आत्मबल, आत्मविश्वास और प्रयास पर सदैव बल दिया।

स्वामीजी का दृढ़ विश्वास था कि हर देश की अपनी विशेषता होती है, एक सहज गुण होता है, जो उसमें अभिलक्षित होता है। भारत के बारे में उन्होंने दृढ़ता से कहा कि धर्म उसकी मूल विशेषता है। कोलंबो में उन्होंने कहा, ''भारत ने संसार को आध्यात्मिक प्रकाश उपहार के रूप में दिया।''

वे भारत के पतन के लिए धर्म को दोष नहीं देते थे। उनके लिए धर्म भारत की शक्ति था। रामनद में उन्होंने कहा, ''यह (भारत) दर्शनशास्त्र की मातृभूमि है, मधुरता की, सौम्यता की और प्रेम की...भारत अब भी इस दृष्टि से विश्व के सभी देशों से आगे है।'' स्वामीजी को गर्व था भारत की धार्मिक सहिष्णुता पर और सब धर्मों के आदर तथा स्वीकारोक्ति पर। जिन्होंने अपने धर्म में सत्य का एकाधिकार जताने की कोशिश की, स्वामीजी उनसे कभी सहमत नहीं हुए। वे प्राय: इस वेदोक्ति को दुहराते थे—सत्य एक है, ज्ञानी उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।

अपने व्यावहारिक वेदांत के दृष्टिकोण के साथ स्वामीजी ने कहा, ''प्रत्येक व्यक्ति में वही शक्ति है, किसी में कम, किसी में कुछ अधिक; प्रत्येक की क्षमता भी असमान है। फिर विशेषाधिकार का दावा कैसा? प्रत्येक आत्मा में सभी प्रकार का ज्ञान है, यहाँ तक कि अनभिज्ञ में भी; उसने इसका प्रयोग नहीं किया, संभवत: उसे अवसर नहीं मिला या शायद वातावरण उसके अनुकूल नहीं था। जब उसे मौका मिलेगा तो वह इसे प्रकट करेगा। इस विचार का—एक व्यक्ति जन्म से दूसरे से उत्तम है—वेदांत में कोई स्थान नहीं है। दो देशों के बीच कि एक दूसरे से उत्तम है, इसका वेदांत में कोई अर्थ नहीं है।'' इस टिप्पणी का दूरगामी मंतव्य था। उन्नीसवीं सदी में जब जातिगत श्रेष्ठता के आधार पर गोरी चमड़ीवाले उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद को बढ़ावा दे रहे थे, अतएव स्वामीजी ने बिलकुल स्पष्ट शब्दों में कहा कि इसका कोई औचित्य नहीं है। उसी प्रकार यह बात देश के आंतरिक मामलों में भी लागू होती है, चाहे वह भारत की जाति-प्रथा, छुआछूत, महिलाओं का उत्पीड़न हो अथवा अमेरिका या अन्यत्र नीग्रो लोगों के दासत्व और भेदभाव का प्रश्न हो। विविधता अनेकत्व और एकता बनाम विविधता एवं विभिन्नता की समस्या के बारे में भारतीय संस्कृति में सदैव से सहिष्णुता, सदाशय और सामंजस्य का दृष्टिकोण रहा है। यह सत्य सदैव सोचने के लिए बाध्य करता है। अनेकता और एकता दोनों का साथ रहना अनिवार्य है।

'जियो और जीने दो' भारत का सार्वकालिक, सार्वजनीन संदेश रहा है। धर्मांतरण को स्वामीजी अनावश्यक समझते थे। स्वामी विवेकानंद का कथन था कि हर कोई अपने धर्म में रहकर अपने प्रयास और आचरण से आत्मसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

स्वामी विवेकानंद ने अपनी लाहौर यात्रा में कहा, ''संप्रदाय रह सकते हैं, लेकिन सांप्रदायिकता नहीं रहनी चाहिए।'' आज की भाषा में यही राष्ट्रीय एकीकरण का आधार है। स्वामीजी ने हमें भारतीय धारणा के प्रति सचेत किया। आज की वैश्वीकरण की सनक में, जबकि पाश्चात्य मूल्यों तथा जीवनशैली को अंगीकार करने एवं सूक्ष्म रूप से प्रचार कर, उसे आधुनिकता के पर्याय के रूप में देखा जा रहा है। अनेकत्व, विविधता को बनाए रखने के लिए आज के वैश्वीकरण और बाजारवाद के वातावरण में स्वामीजी की चेतावनी पर ध्यान देना आवश्यक है।

जातिप्रथा की बुराइयों की निंदा करते हुए स्वामीजी ने समाज के सभी वर्गों में सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता का समर्थन किया। निरर्थक धार्मिक अनुष्ठानों, रिवाजों, दस्तूरों और अपनी पवित्रता एवं दूसरों की अपवित्रता के झूठे विचारों की कठोर निंदा करते हुए इसे 'रसोई धर्म' तथा 'पतीले में भगवान्' कहा करते थे। इसी तरह नारियों के बारे में उनके द्वारा शुद्धता तथा पतिव्रत धर्म के आदर्शों को मानने के साथ-साथ उनके प्रति अनेक प्रकार के भेदभाव और उत्पीड़न से वे काफी विक्षुब्ध थे। उन्होंने इसका कई स्थानों पर सविस्तार वर्णन किया और उन्हें समानता तथा प्रतिष्ठा देने का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने युवक और युवतियों का आह्वान किया कि सारे देश में घूमकर सामाजिक उत्थान और समानता का प्रचार करें। स्वामी विवेकानंद ने कहा, ''जो दूसरों को स्वतंत्रता नहीं दे सकता, उसे स्वतंत्रता पाने का अधिकार नहीं है।'' निश्चय ही बड़े कठोर शब्द हैं।

लेकिन उस समय इनकी ही आवश्यकता थी और आज के स्वतंत्र भारत में भी इन्हीं की आवश्यकता है, क्योंकि सारी संवैधानिक गारंटियों, सशक्तीकरण के कर्णकटु राजनीतिक संवादों के बावजूद हम रोज वही उत्पीड़न के किस्से सुनते हैं। स्वामीजी को महिलाओं की क्षमता में बहुत आस्था थी। वे उस समय के समाज-सुधारकों के कार्यों के आलोचक थे, लेकिन समाज-सुधार के पक्षधर थे। वे समूल समाजसुधार चाहते थे—मानवीय एकता के विचारों और आदर्शों का प्रचार करके समाज की चेतना को बदलना, ताकि ये सुधार स्थायी हो सकें। आवश्यकता है स्त्री-पुरुषों में इनके प्रति विश्वास जगाने की।

फरवरी १८९९ में 'मद्रास टाइम्स' के एक संवाददाता के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा था, ''मैं जनता की उपेक्षा को बड़ा राष्ट्रीय पाप मानता हूँ और यह हमारे पतन के कारणों में से एक है। कितनी भी राजनीति करने का कोई लाभ नहीं होगा, जब तक भारत की जनता पुन: सुशिक्षित नहीं होगी, उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलेगा तथा उनका अच्छी तरह से ध्यान नहीं रखा जाएगा। वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं, वे हमारे मंदिर बनाते हैं, लेकिन बदले में मिलता है उन्हें पादप्रहार। व्यावहारिक रूप में वे हमारे दास हैं। यदि हम भारत का पुनरुद्धार करना चाहते हैं तो हमें उनके लिए काम करना होगा।'' स्वामीजी चाहते थे कि समाज के पढ़े-लिखे, संपन्न, अग्रवर्ती, प्राधिकृत व्यक्ति अपने कर्तव्य को निबाहें तथा समाज के पिछड़े, दलित, सामाजिक और आर्थिक रूप से अक्षम—वे जिनका अभी तक शोषण हुआ है और जिन्हें पददलित किया गया है और जिन्हें सम्मान का अच्छा जीवन जीने का मौका ही नहीं दिया गया है—उनके प्रति अपने दायित्व निभाएँ।

शिकागो में रहते हुए उन्होंने अपने एक प्रशंसक को लिखा—''जब तक लाखों लोग भूख और अज्ञानता का जीवन जीते रहेंगे, मैं उन सबको देशद्रोही मानूँगा, जिन्हें उनके पैसे से शिक्षा मिली है, फिर भी उनकी बात नहीं सुनते!'' स्वामीजी चाहते थे कि धनिकों को संवेदनशील बनाया जाए, जिससे वे समाज के प्रति और उत्तरदायी बनें। यही आज कॉरपोरेट्स का सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate Responsibility) कहा जाता है।

स्वामीजी जनता के उत्थान के लिए शिक्षा को ही सबसे सक्षम उपाय मानते थे। उनके लिए यह असली विकास की कुंजी थी। स्वामीजी के अनुसार, ''दुनिया का सारा ज्ञान मस्तिष्क से ही आता है; तुम्हारा दिमाग ही संसार का असीम पुस्तकालय है। शिक्षा मनुष्य में पहले से निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। अत: अध्यापक का कर्तव्य केवल यह है कि वह मार्ग के सभी अवरोध हटा दे।'' उनके लिए शिक्षा का निचोड़ है मस्तिष्क की एकाग्रचित्तता। यह मात्र तथ्यों तथा सूचना के संग्रह को याद रखना नहीं है। स्वामीजी का बल ऐसी शिक्षा पर है, जिससे चरित्र-निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और जिसमे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। उन्होंने बार-बार बल दिया कि धर्म ही भारत की आत्मा है और कहा, ''मैं धर्म को शिक्षा का सबसे आंतरिक सारतत्त्व मानता हूँ।'' उनकी धर्म की व्याख्या उदार और विस्तृत है और किसी भी प्रकार की संकुचितता से परे है। स्वामीजी ने हमारी शिक्षा व्यवस्था की कई कमियों और कमजोरियों पर भी विचार प्रकट किए हैं। उन्होंने शिक्षा के तरीकों में तब उपलब्ध वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग पर चर्चा की, ताकि यह गाँवों और आम जनता तक पहुँच सके। उन्होंने यह अनुभव किया कि मात्र जन-जन तक शिक्षा को पहुँचाने की समस्या के समाधान के द्वारा ही आम जनता को अकिंचनता और वंचन से बचाया जा सकता है।

स्वामीजी का देश के भविष्य के बारे में एक स्वप्न था, एक मानचित्र था। समय-समय पर की गई टिप्पणियाँ उस स्वप्न की अभिव्यक्ति हैं। जब हम उनकी जीवनी, लेखन और भाषणों या उनसे चयनित सामग्री पढ़ते हैं तो हमें अपने विचारों और कार्यों के लिए प्रेरणा व निर्देशन मिलता है। स्वामी विवेका-नंद ने भविष्य के लिए जिन आधारभूत मुद्दों को बताया, उनकी प्रासंगिकता केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि अन्य विकासशील देशों, यहाँ तक कि आज के तथाकथित विकसित विश्व के लिए भी है। अत्यधिक विकास की भी समस्या है, जब मनुष्य धनसंचय और सब भौतिक सुख-साधनों के बावजूद जीवन में शांति, संतोष और आनंद नहीं पाता है।

स्वामीजी का देश के भविष्य के बारे में एक स्वप्न था, एक मानचित्र था। समय-समय पर की गई टिप्पणियाँ उस स्वप्न की अभिव्यक्ति हैं। जब हम उनकी जीवनी, लेखन और भाषणों या उनसे चयनित सामग्री पढ़ते हैं तो हमें अपने विचारों और कार्यों के लिए प्रेरणा व निर्देशन मिलता है। स्वामी विवेकानंद ने भविष्य के लिए जिन आधारभूत मुद्दों को बताया, उनकी प्रासंगिकता केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि अन्य विकासशील देशों, यहाँ तक कि आज के तथाकथित विकसित विश्व के लिए भी है। अत्यधिक विकास की भी समस्या है, जब मनुष्य धनसंचय और सब भौतिक सुख-साधनों के बावजूद जीवन में शांति, संतोष और आनंद नहीं पाता है। स्वामीजी ने देखा कि पश्चिम के समृद्ध देश के निवासी कुछ ऐसी वस्तु पाने के लिए लालायित हैं, जिससे वे अपने जीवन की रिक्तता को भर सकें और वह भारत की आध्यात्मिकता में ही प्राप्त हो सकता है। स्वामी विवेकानंद के संदेश का आकर्षण है उनके दृष्टिकोण की समग्रता, विशालता, वैश्विकता और सर्वव्यापकता, सर्वजनीनता, मानवतावाद तथा मानव आत्मा में उनकी गहन अंतर्दृष्टि। स्वामीजी ने पूर्व और पश्चिम के मिलन का बिंदु, आध्यात्मिक और भौतिक ज्ञान के परस्पर आदान-प्रदान में देखा।

स्वामीजी को उस समय के वैश्विक राजनीतिक वातावरण तथा राजनीतिक प्रवाह और विचारधाराओं का पूरा ध्यान था। भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा शोषण और दमन तथा उसके नस्ली अहंकार के वे सशक्त आलोचक थे। उन्होंने इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना का संभवत: एक राष्ट्र के निर्माण की पूर्वसूचना अथवा शकुन के रूप में स्वागत किया। वे देश की स्वतंत्रता चाहते थे और इसके बारे में पूरी तरह आश्वस्त भी थे। लेकिन फिर भी वे सक्रिय राजनीति से दूर रहे, क्योंकि वे स्वतंत्रता की 'आधारशिला' या आधारभूत आवश्यकताओं की उपलब्धि के साधनों के लिए क्रियाशील थे। उसके लिए जनता के सुषुप्त पुरुषत्व और पुरुषार्थ

को जगाना था। इससे पहले वे कहते थे कि मत, चुनाव, दलों, संसद् आदि का कोई अर्थ नहीं था। व्यक्ति और समाज में मानसिक दासता और निर्जीवता से वे नफरत करते थे। वे भिक्षावृत्ति अथवा प्रार्थना और याचना के आलोचक थे। किंतु स्वामीजी के व्यक्तित्व और विचारों का प्रभाव बड़ा सशक्त तथा सर्वव्यापक हुआ। इसे केवल सरकारी अभिलेखों ने ही सत्यापित नहीं किया, बल्कि उनके समकालीन जननेताओं का अभिमत भी साक्षी है। प्राय: स्वामीजी के भाषणों का प्रभाव क्रांतिकारी आंदोलन के संदर्भ में भी दिया जाता है। उनके छोटे भाई भूपेंद्रनाथ दत्त ने स्वामीजी के बारे में रचित अपनी पुस्तक में लिखा है—''क्रांतिकारियों के एक समूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, 'अनुकरण करो अन्य देशों की अच्छाइयों का, उनके तकनीकी हुनर का, जीवन की विशेषता...और उसके बाद आधुनिक स्तर के मनोबल तथा सक्षमता के साथ विदेशियों को—जो तुम्हारे देश में राज्य कर रहे हैं—उन्हीं की भाषा में जवाब दो, जिससे पूर्वी सभ्यता के अपने किले पर उनकी पकड़ समाप्त हो जाए'।''

स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन तथा मठ की स्थापना की, ताकि उनके गुरु की शिक्षा को मूर्त रूप दिया जा सके और जिसको विवेकानंद ने समयानुकूल परिभाषित किया। उन्होंने महिलाओं के लिए भी ऐसी संस्था स्थापित करना चाहा था किंतु वे बाद में ही बन सकी। रामकृष्ण मिशन का आदर्श वाक्य है—'निजी मुक्ति के लिए और संसार के कल्याण के लिए' (आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च:)। भारत के इतिहास में पहली बार संन्यासियों के एक समूह ने अपने आध्यात्मिक मोक्ष के बजाय आम आदमी के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के साथ उनकी आध्यात्मिक वृद्धि विकास के प्रयास का लक्ष्य सामने प्रस्तुत किया, उसका उद्देश्य था लोगों में विश्वास और मूल्यों के साथ अपने पाँवों पर खड़े होने की क्षमता, आत्मनिर्भरता की प्रकट भावना उत्पन्न करना। स्वामीजी ने मठवाद या साधु परंपरा को एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया।

स्वामीजी आशावादिता, सकारात्मकता और क्रियाशीलता की प्रतिमूर्ति एवं संदेशवाहक हैं। उनके संदेश का आधार था शक्ति, निर्भयता, साहसिक कार्य और कर्तव्यनिष्ठा। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि विवेकानंद में सबकुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं। स्वामीजी का देशवासियों को आह्वान था—''आओ भाइयो, हम कड़ी मेहनत करें, अब सोने का समय नहीं है। हमारे काम पर ही भारत का भविष्य आधारित है। देश प्रतीक्षा में है...जागो और उठो, और अपनी मातृभूमि को उसके शाश्वत सिंहासन पर बैठाओ, ताकि वह तरुण और पहले से अधिक यशस्वी हो सके।''

श्रीअरविंद, जिनकी जयंती प्रतिवर्ष १५ अगस्त को मनाई जाती है, (जो भारत का स्वतंत्रता दिवस भी है) लिखा है कि किस प्रकार स्वामी विवेकानंद की वाणी ब्रिटिश कारागार में उन्हें सुनाई देती थी और उनके निशंचिता और भविष्य के प्रति अश्वस्त होने का स्रोत थी। स्वामी विवेकानंद के निरंतर प्रभाव के बारे में श्रीअरविंद ने अपने आलेख 'बंकिम, तिलक, दयानंद' में कहा है—''Vivekanand was a soul of puissance if there was one, a very lion among men xxx we perceive his influence still working gigantically, we know not well how, we know not well where, in something that is not yet formed, something leonine, grand, intuitive, upheaving, that has entered the would of India and we say, behold, Vivekanand his Mother and in the souls of her children". ''वे शक्ति की आत्मा यदि कभी कहीं हुई हो, मनुष्यों में सिंह थे।...हम आज भी उनके विशद प्रभाव की क्रियाशीलता का अनुभव कर सकते हैं।'' हम यह भलीभाँति नहीं जानते हैं कि कैसे और कहाँ, ऐसा प्रभाव जिसके मूर्तरूप की अभिव्यक्ति होनी है अभी उभरना है, कुछ-कुछ केसरी जैसा शक्तिमान, भव्य, अंतर्ज्ञानी, उफनता हुआ, जो भारत की आत्मा में प्रविष्ट हो गया है और हम कहते हैं—''देखो विवेकानंद आज भी (भारत) माता की आत्मा में और उसकी संतानों की आत्माओं में जीवित हैं।''

'साहित्य अमृत' का यह विशेषांक स्वामी विवेकानंद को १५०वीं जयंती या सार्धशती के अवसर पर उनकी पावन स्मृति में समर्पित है। इस समय विशेषतया बँगला भाषा में बहुत प्रकाशन सामने आए हैं और आ रहे हैं। अनेक विद्वानों के आलेख या अन्य रचनाएँ उनके बहुमुखी व्यक्तित्व और बहुविषयक विचारों के कुछ महत्त्वपूर्व पक्षों को खँगालने और आकलन करने का प्रयास कर रहे हैं। यह विशेषांक उसका एक लघु उदाहरण है। निरंतर आकलन से अन्य नए-नए प्रश्न उठना स्वाभाविक है, नए आयाम उजागर होने हैं। बहुत से पक्ष हैं, जिनपर पर्याप्त चर्चा नहीं हो सकी है। स्वामी विवेकानंद की इतिहास-दृष्टि अपने में विचारणीय है। स्वामी विवेकानंद के विचारों में अनेक विद्वानों ने प्रबंधन शास्त्र, नेतृत्व के गुणों, सार्वजनिक जीवन में नैतिकता और मानव मूल्यों तथा मर्यादाओं को खोजने की कोशिश की है। शोधकर्ताओं ने स्वामी विवेकानंद के लेखन, कविताओं और भाषाओं का साहित्यिक दृष्टि से भी विश्लेषण किया है। यह तो निर्विवाद है ही कि स्वामी विवेकानंद ने न केवल भारतीय समाज के चिंतन को प्रभावित किया है, वरन् भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों को प्रभावित किया है। यही नहीं कई उल्लेखनीय अमेरिकी साहित्यकारों, जैसे कवयित्री विलकाक्स आइशरवुड, एल. लडस हक्स्ले, जे.डी. सालिजर आदि की सोच पर भी अपने व्यक्तित्व और विचारों की छाप छोड़ी है। इस प्रकार के शोध के प्रयास भारत के अलावा अन्य देशों में भी निरंतर जारी रहेंगे। ऐसी है स्वामी विवेकानंद की व्यापकता, विविधता, सार्वकालिकता एवं सामयिकता। आलोचकों की भी कुछ कमी नहीं है, पर उनकी कोशिशें चंद्रमा पर कीचड़ फेंकने जैसी ही हैं। वास्तव में न आकाश को मुट्ठी में लिया जा सकता है और न समुद्र को एक गागर में। विवेकानंद सबके हैं, विद्वत्वर्ग तथा अभिजात वर्ग और जनसाधारण के भी। सरकार भी जयंती मनाती है, विपक्षी दल भी, सच कहें तो विवेकानंद तो हर एक के अपने-अपने हैं। हर एक अपनी दृष्टि और समझ से उनको पहचानने की कोशिश करता है। हमें आशा है कि 'साहित्य अमृत' के सुधी पाठकों के लिए स्वामी विवेकानंद को समग्रता में देखने और समझने में यह विशेषांक भी एक सीमा तक सहायक हो सकता है।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

हूरों, हवाओं का नगर

• निर्मल वर्मा



सुप्रसिद्ध कथा-लेखक निर्मल वर्मा (सन् १९२९-२००५) भारतीय मनीषा की उस उज्ज्वल परंपरा के प्रतीक-पुरुष हैं, जिनके जीवन में कर्म, चिंतन और आस्था के बीच कोई फाँक नहीं रह जाती। अपने जीवन-काल में वर्माजी साहित्य के लगभग सभी श्रेष्ठ सम्मानों से समादृत हुए; 'पद्मभूषण' से भी उन्हें सम्मानित किया गया। स्मृतिशेष : २५ अक्तूबर, २००५।

"कोई भी शहर अपना अतीत नहीं बताता। वह हथेली की रेखाओं की तरह गुँथा रहता है; वह गलियों के नुक्कड़ पर, खिड़कियों की झँझरी, सीढ़ियों के बेनिस्टर पर, शलाकाओं के एंतेना पर, पताकाओं के बाँसों पर लिखा रहता है। वह शहर के हर भाग पर खरोंचों, खाँचों, नक्काशियों के भीतर बसा रहता है।''

ये शब्द इतालवी लेखक इतालो काल्विनो के हैं, जो उन्होंने अपनी अप्रतिम पुस्तक 'अदृश्य नगर' में लिखे थे। कैसे हर शहर अपनी दूरियों, ऐतिहासिक सीमाओं को लाँघकर एक-दूसरे से घुल-मिल जाते हैं, इसका अनुभव कुछ दिन पहले हुआ जब लैनोये की पुस्तक 'Benaras seen from within' को पढ़ते हुए मेरे सामने इतालो काल्विनो के कुछ उद्धरण चले आए, जो उन्होंने मार्को पोलो के मुँह से वेनिस के बारे में कहलवाए थे और जिन्हें पढ़कर मुझे सहसा एक अन्य शहर तेहरान की याद हो आई, जहाँ से मैं अभी लौटा था। बनारस, वेनिस, तेहरान…क्या ये शहर नहीं, स्वप्न हैं, जिनकी स्मृतियों में चलते हुए हम कहीं अपने भीतर की गलियों में चलने लगते हैं, जिन्हें हम बरसों पहले छोड़ आए थे? देखा हुआ तेहरान क्या वही शहर है, जिसे मैं दिल्ली के बागों में याद करता हूँ?

यह कुछ अजीब संयोग ही रहा होगा कि जो ईरानी युवक मुझे एयरपोर्ट पर लेने आए, उनका नाम दरवेश था; दरवेश यानी एक मस्त मौला साँईं भगत, अपनी ही दुनिया में खोया हुआ कोई फक्कड़ फकीर—उनके डील-डौल, हील-हुलिया से भी पहली नजर में भी यही भ्रम होता था—शेव बढ़ी हुई, जो बाद में पता चला, वह इसमें अपवाद नहीं थे। यहाँ लोग पूरी दाढ़ी नहीं रखते, तो पूरी तरह शेव भी नहीं करते; वह मुझे कुछ आश्चर्य से देख रहे थे, जैसे उन्हें भी मुझ पर विश्वास नहीं हो पा रहा था कि मैं वहाँ कैसे चला आया। कुछ देर बाद पता चला, वह अंग्रेजी से उतना ही अनजान हैं जितना मैं फारसी से। पता नहीं, आनेवाले दिनों में हम अपने गूँगे इशारों से कब तक एक-दूसरे को नचाते रहेंगे?

मैं थोड़ा भारी मन लिये एयरपोर्ट से बाहर आया तो शहर से पहला साक्षात् करते ही लगा, यह वही 'पहली नजर का प्रेम' तो नहीं है। नए शहर में प्रवेश करते समय हमेशा कुछ अनिश्चित सा संशय बना रहता है, पर एयरपोर्ट के बाहर आते ही मुझे लगा, जैसे हम किसी नॉवेल के पहले पन्ने को खोलते हैं और पाते हैं कि अजनबी लिपि के अक्षर इतने सुंदर हैं कि हम जो चाहें, वे अर्थ उससे निकाल सकते हैं; उजली वासंती धूप में चमकती सड़कें, सड़क के दोनों ओर लंबे पेड़ों की लहराती फुनगियाँ, क्या वे वही प्रसिद्ध 'पर्शियन पॉपलर' हैं, जिनके बारे में इतना कुछ सुनता आया था?

मेरे मन पर से यात्रा का बोझ, दरवेश साहब का 'गूँगापन', मन की अनजान विह्वलता धीरे-धीरे झरने लगे।

क्या हम किसी शहर में पहली बार आते हैं? हाँ भी, नहीं भी। हाँ, सिर्फ तथ्यात्मक रूप में—जब हम किसी दूसरे से कहते हैं, वह तेहरान में मेरी पहली यात्रा थी, पर जब हम सचमुच उस शहर से गुजर रहे होते हैं, किनारे पर झुकते पेड़, आकाश में तिरते बादल, भीगी कोमल धूप की चमकीली परतें, तो लगता है, कोई वर्षों पहले की स्मृति आँखें खोलती है। क्या यह वही सड़क तो नहीं है, वही पेड़, वही धूप, जब मैं पहली बार श्रीनगर से गुलमर्ग गया था? एक शहर के बीच कितने शहरों के खंडहर ढले रहते हैं; और वे पहाड़, जिन पर बर्फ के चकले हैं। क्या मैंने अनुमान किया था कि वे वसंत के दिनों में हिमालय से अवतरित होकर तेहरान में प्रगट होंगे? दिल्ली की झुलसती गरमियों से निकलकर मैं शायद किसी 'स्वप्न नगरी' में चला आया था। और तब मुझे काल्विनो की बात याद हो आई, 'तुम्हारे पैर कहीं बाहर नहीं चलते, जहाँ तुम्हारी आँखें देखती

हैं; बल्कि वहाँ, जो भीतर है, दबा हुआ, मिटा हुआ...'

पर वह स्वप्न जल्दी ही ढह गया, ज्यों ही हम अपने होटल के सामने आए। एक भीमकाय इमारत, सफेद कंक्रीट का पंचसितारा दैत्याकार, जिसके ऊपर 'आजादी' के अक्षर चमक रहे थे। इस कारागृह का नाम 'आजादी'? यह सोचकर ही दिल दहल उठा कि आनेवाले दिनों में यह हमारा आवास स्थल रहेगा।

पर भीतर आकर मन कुछ हलका हुआ। एक हॉलनुमा लॉबी, रेस्तराँ के रिसेप्शन पर बैठे कृपालु मेजबान...दरवेश साहब ने मुझे कमरे का कार्ड दिया, जो चाबी का काम करता था। ग्यारहवीं मंजिल पर मुझे जाना था। भारतीय दूतावास के अधिकारी हसन साहब से विदा ली। उन्होंने ही बताया कि उस दिन कोई प्रोग्राम नहीं है और मैं आराम से अपना दिन गुजार सकता हूँ।

☐

मेरा कमरा सचमुच रोशनी से भरा है—बड़ा, खुला हुआ, चौड़ा पलंग और सामने सुंदर काँच की खिड़की, जिसके पीछे दो आकाशचुंबी इमारतें दिखाई देती हैं। नीचे एक खाली प्लॉट पड़ा है, कुछ भद्दे बैरकनुमा कंकाल खड़े हैं और पीछे सारा शहर फैला है। हमारा होटल शहर में नहीं है, हवाई अड्डे और पुराने तेहरान की बस्तियों के बीच कहीं अधर में खड़ा है। कुछ ही दूर शहर के पीछे वह पहाड़ दिखाई देता है, जिसे रास्ते में देखा था। हलकी सी खुशी होती है कि कमरे की खिड़की से वह हर सुबह मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ करेगा!

मैं चाय पीने लॉबी में ही बैठ गया...। फर्श से थोड़ा ऊपर वह एक विशालकाय मंच जान पड़ता था। भारतीय होटलों की तरह वह सिर्फ लॉबी ही नहीं थी, रेस्तराँ भी था, जहाँ अलग-अलग मेजों पर लोग कॉफी, चाय पी रहे थे। मेरा ध्यान बरबस ईरानी लड़कियों की तरफ चला जाता था...वे अलग-अलग मेजों पर अपनी सहेलियों के साथ बैठी बातों में मगन दिखाई देती थीं। परंपरागत इसलामी पहरावा से ढकी थीं, काली लंबी स्कर्ट, सिर पर ओढ़नी, सिर्फ चेहरे के अलावा शरीर का कोई भाग काली पोशाक के बाहर नहीं दिखाई देता था। लंबी, छरहरी, गोरा, सफेद संगमरमरी चेहरा, जो यूरोपीय लड़कियों की 'सफेदी' से बहुत अलग था—उनमें एक स्निग्ध किस्म की 'ओरियंटल' सौम्यता थी। यद्यपि मजहबी नियमों के कारण पहनावे में बहुत स्वतंत्र नहीं थीं, किंतु अपनी बातचीत, आचार-व्यवहार में बिलकुल मुक्त और कुंठाहीन दिखाई देती थीं। बिना किसी संकोच के सिगरेट पी रही थीं, शायद शहर से दूर पंचसितारा होटल में वे अपने को कुछ ज्यादा ही मुक्त महसूस कर रही थीं। सोचने लगा, कुरान में बहिश्त की हूरों के बारे में जो परिकल्पना की गई है, वह ऐसी लड़कियों को देखकर ही की गई होगी। मैं आस-पास की दुनिया को आँक ही रहा था कि मुझे दरवेश मियाँ दिखाई दिए। वह एक युवक साथी के साथ थे। मुझे देखकर मुसकराए और दोनों मेरी मेज पर ही आकर बैठ गए। अंग्रेजी से दोनों ही इतने कोरे थे जितना मैं फारसी से। इसलिए बातचीत मुसकराहट से आगे ज्यादा नहीं बढ़ पाई।

चाय पीने के बाद मैं होटल के बाहर निकल आया। कुछ ही दूर गया था कि पीछे आवाज सुनाई दी। मुड़कर देखा, दरवेश के मित्र हवा में हाथ हिलाते हुए मुझे बुला रहे थे।

उन्होंने दो-चार शब्दों में बताने की कोशिश की कि हम शहर जा रहे हैं। मैंने राहत की साँस ली। अब शाम अकेले नहीं बीतेगी। वह अब अप्रत्याशित विस्मयों को लिये हमारी प्रतीक्षा कर रही थी...

☐

मेरी राहत का एक दूसरा कारण भी था। मुझे अब दरवेश मियाँ और उनके दोस्त के साथ पैंटोमिम नहीं करना पड़ेगा...हमारे गिरोह में कुवैत के दो अरब डेलीगेट शामिल हो गए थे, जिन्हें अंग्रेजी आती थी। एक लंबे डील-डौल के विद्वान् थे, जिन्होंने सफेद लंबा चोगा और सिर पर अरब शेख की तरह स्कार्फ बाँध रखा था, जिसके इर्द-गिर्द काली रस्सीनुमा बेल्ट लिपटी थी। वह बहुत ही शांत, सौम्य स्वभाव के व्यक्ति थे, जिनके होंठों पर हमेशा एक व्यंग्य भरी मुसकराहट थिरकती रहती थी। वह किसी कुवैती पत्र में राजनीतिक-सांस्कृतिक मसलों पर लिखते थे। बोलचाल में बहुत संभ्रांत और विचारों में संतुलित जान पड़ते थे। लगता था, वह खुमेनी के कहर, अतिवादी दृष्टिकोण से बिलकुल सहमत नहीं थे। दो दिनों बाद जब हम होटल की लॉबी में एक साथ बैठे थे, तो उन्होंने लॉबी की दीवार पर लिखे फारसी के दो वाक्य दिखाए, 'देखिए, क्या लिखा है—'अमेरिका हमेशा ही हमारा दुश्मन रहेगा, यह बात हमें समझनी होगी।' यह खुमेनी के भाषण का एक उद्धरण था। उनकी व्यंग्यात्मक मुसकान से मुझसे छिपा नहीं रह सका, वह इसके बारे में क्या सोचते हैं!

चारों ओर लोगों का बवंडर था, जैसे कोई मेला लगा हो। यह तेहरान से मेरी 'पहली पहचान' थी और तब मुझे लगा, वह शहर मेरी स्मृति में पहली बार आया था, क्योंकि वह मुझे न किसी यूरोपियन नगर की, न किसी भारतीय शहर की याद दिलाता था।

दूसरी एक लेखिका थीं। वह भी कुवैत से थीं, अरबी भाषा में कहानियाँ लिखती थीं। उनका गोल-मटोल चेहरा पाउडर, पेंट, लिपस्टिक से लिपा-पुता था, सिर की 'चद्दर' बार-बार उनके भूरे बालों पर फिसल जाती थी, जिससे पता चलता था, वह उसकी आदी नहीं हैं, जो शायद स्वाभाविक था। वह भी मेरी तरह ईरान पहली बार आई थीं और इसलामी पहनावे के कड़े नियमों से काफी अनभिज्ञ जान पड़ती थीं। स्वभाव से बहुत खुली, भोली और बातूनी जान पड़ती थीं। उन्हें देखकर न जाने क्यों मुझे इस्मत चुगताई की याद आती रही थी, जैसा मैंने उनके बारे में दूसरों से सुना था, हालाँकि देखा कभी नहीं था।

कुछ ही देर में हम गाड़ी से शहर के 'हृत्स्थल' में आ गए—भीड़

भरे चौक के बीचोबीच। चारों ओर लोगों का बवंडर था, जैसे कोई मेला लगा हो। यह तेहरान से मेरी 'पहली पहचान' थी और तब मुझे लगा, वह शहर मेरी स्मृति में पहली बार आया था, क्योंकि वह मुझे न किसी यूरोपियन नगर की, न किसी भारतीय शहर की याद दिलाता था।

किसी शहर को पहली बार देखना विचित्र अनुभव है, वह किसी अज्ञात दुनिया के नक्षत्रमंडल से एकाएक छिटककर एक चमकते हुए तारे की तरह सामने आ जाता है। किसी परी-कथा के जादुई आलोक मंडल-सा, जिसमें हम स्वयं अपने को अजनबी सा पाने लगते हैं। लगता है, हमारे साथ वहाँ कुछ भी हो सकता है—मदारी की तरह डमरू बजाकर वह हमें पास बुलाएगा और सिर्फ एक इशारे से हमें किसी भेड़, बकरी या पत्थर की चट्टान में बदल देगा!

सहसा सामने एक विराट् नीले गुंबदवाली मसजिद दिखाई दी। पता चला, वह किसी सुविख्यात संत का समाधि स्थल है, सही अर्थों में 'मसजिद' नहीं। कुवैती लेखिका फोटो लेने में मुस्तैद थीं। ज्यों ही उन्होंने उसके सामने अपना कैमरा बंदूक की तरह दागा, दरवेश साहब ने उनका हाथ रोक लिया। वहाँ फोटो लेने पर कड़ी मनाही थी।

हम चौक से निकलकर छोटी सँकरी गलियों में चले आए; 'धँसे आए' कहना बेहतर होगा, क्योंकि भीड़ वहाँ इतनी घनी थी कि पता नहीं चलता था कि ग्राहकों के बहते रेले में कहाँ पैर जमाकर टिका जाए...किसिम-किसिम के फल, सब्जियाँ, मसालों और मेवों से ठसाठस भरी दुकानें, इससे पहले कि उन्हें पल भर देखने की इच्छा पूरी कर सकें, पीछे भीड़ की लहरें हमें आगे धकेल देती थीं। एक गली दूसरी गली में खो जाती थी और तभी वहाँ कोई दूसरा ही नजारा दिखाई देने लगता था। कुछ ही देर में जब हम उस मध्यकालीन दुनिया की भूलभुलैया से बाहर आए तो कुछ आश्चर्य हुआ, कि हम लोग अब भी साबुत-के-साबुत एक-दूसरे के साथ थे।

लौटकर वापस चौक में आए तो गाड़ी में बैठकर चैन की साँस ली। मुझे मालूम नहीं था, हम किधर जा रहे हैं; पर कुछ ही देर में पता चला कि हमारी कार शहर की चढ़ाई पर अलबोजे पहाड़ की तरफ रुख कर रही है। यह वही पहाड़ था, जो मुझे अपने होटल की खिड़की से इतना दूर जान पड़ता था और अब बिलकुल सामने खड़ा था। ऊपर चढ़ती हुई सड़क के दोनों ओर कहवा घर, रेस्तराँ और ढाबानुमा दुकानें थीं। हमारे साथ आनेवाले कुवैती पत्रकार ने सुझाव दिया कि यहाँ तो गाड़ी से उतरकर पैदल चलना ही बेहतर होगा।

बाहर आए तो एक अजीब दृश्य था, जैसे अभी शहर के हृत्स्थल की गरम उसाँसों से निकलकर अचानक उसके शीर्ष स्थल की हवाओं में चले आए हैं। एक ही शहर का दूसरा चेहरा...सामने पहाड़, दोनों तरफ चट्टानों की दीवारें, जिनके झरोखों के नीचे तीव्र गति में गड़गड़ करता पहाड़ी नाला; नाले के ऊपर कश्मीरी हाउस बोटों और बजरों की तरह बने हुए आरामगाह, जिनमें कुरसियों के बजाय कालीन बिछे हुए, गाव-तकिए और कुशन, सामने रखी चौकोर चौकियाँ, सुंदर नक्काशी के बने हुक्के—जैसे हम इक्कीसवीं शती के तेहरान में नहीं, अलिफ लैला की जादुई परी-कथा में चले आए हों।

कोई शहर भी कैसे एक विदेशी के लिए स्वप्न में बदल जाता है और उसे बार-बार अपने को याद दिलाना पड़ता है कि नहीं, यह असली है, कोई स्वप्न नहीं; पर अजीब बात यह है कि वह स्वप्न ही असली है, नकली वह दुनिया है जो हम पीछे छोड़ आए हैं। वह इस 'स्वप्न' के सामने फीकी पड़ती है। बिलकुल वैसे ही जैसे हम किसी उपन्यास को पढ़ने के बाद अपने यथार्थ में लौटते हैं और वह हमें यथार्थ नहीं, उसकी 'पैरोडी' जान पड़ता है।

□

हम कालीन पर बजरेनुमा ढाबे में बैठे हैं। सामने सुंदर चौकियाँ रखी हैं। लोगों का शोर नीचे था, यहाँ सिर्फ बहते पानी का मदमाता पागलपन है, जो बीहड़ गति में पत्थरों, चट्टानों से टकराता हुआ नीचे बह रहा है। दुकान के मालिक सुंदर सलवार और लंबी कमीज पहने हैं, ऊपर पगड़ी है, जिसके नीचे सिर्फ उनकी हलकी खुशी में चमकती आँखें दिखाई देती हैं। उन्होंने हमें छोटे-छोटे प्यालों में (जिन्हें गुड्डा-गुड्डी के खेल में बच्चे एक-दूसरे को पिलाते हैं) चाय दी है। यहाँ चाय बिना दूध के ही दी जाती है, किंतु होती इतनी 'कोमल' है कि जरा भी कड़वी नहीं लगती। शराब का अभाव शायद यह चाय ही पूरा करती है, जिसे लोग एक के बाद दूसरे प्यालों में गटकते जाते हैं। हमारे मेजबान ने हमें चाय के साथ हुक्का भी पेश किया है। मैं कोई अर्धशती के बाद लोगों को हुक्का पीते देख रहा हूँ...वर्षों पहले शिमला में हमारे पड़ोसी कुमाऊँ 'पैट्रियार्क' जानकी बाबू बरामदे में हुक्का पिया करते थे और हम उनकी गोद में बैठकर उसके धुएँ का आनंद लेते थे। मैं इस बार अपना लोभ संवरण नहीं कर सका। हुक्के की नली को मुँह में लगाया, तो कड़वे तमाखू की जगह एक बहुत मनोरम सी सुवास मेरे हलक के भीतर तक तिरती गई। संभवतः तमाखू में अजीब सुगंधित मसालों का सम्मिश्रण रहा होगा। हुक्के के भीतर हलकी गड़गड़ाहट के साथ राख में दबे कोयले सुलगने लगे और भीना सा धुआँ ऊपर उठने लगा।

चौकी पर स्वादिष्ट मसाले में तर खजूरें भी रखी थीं, जो मुँह में जाते ही घुल जाती थीं। ढाबे के मालिक एक तश्तरी में छोटे-छोटे लाल बेरों से भरी तश्तरी भी छोड़ गए। मुँह में डालते ही पता चला, वे बेर नहीं, फालसे हैं और फालसे भी कैसे, जैसे कभी नहीं खाए...आज भी उनके बारे में सोचते हुए मुँह में उनका 'स्वाद' याद करने की कोशिश करता हूँ, पर स्वाद की जगह सिर्फ पानी भर आता है!

हम काफी देर वहाँ बैठे रहे। ड्राइवर, दरवेश साहब, कुवैती पत्रकार अरबी-फारसी एक साथ बोल रहे थे। कुवैती लेखिका हुक्का पीने में मस्त थीं, जो अच्छा था, इससे उनका बोलना काफी कम हो गया था। मैं चुप था, अजनबी व्यंजनों के बीच अजनबी आवाजों को सुन रहा था।

जब हम ढाबे से बाहर निकले तो तेहरान के आकाश में चाँद निकल आया था; बुद्ध पूर्णिमा के एक दिन पहले का चाँद। सड़क के दोनों ओर बहते नाले की आवाज सुनाई दे जाती थी; भ्रम होता था, हम सड़क पर नहीं, किसी पुल पर चल रहे हैं।

□

बाद के दिनों में कई बार तेहरान के पुराने हिस्से में जाना हुआ। शायद शहर में उससे ज्यादा आकर्षक जगह भी नहीं थी, जहाँ पहाड़ से बहता हुआ पानी का नाला शहर की तरफ आता था। ऊपर से नीचे नाले के ऊपर एक ढलान जाती थी। दोनों तरफ पेड़ों के झुरमुट और उनके बीच चायघर और रेस्तराँ। बाहर चौड़े तख्त बिछे थे, सुंदर रंग-बिरंगी कालीनों से ढके हुए। लगता था, शहर के युवक-युवतियाँ, सरकारी अफसरों के परिवार, कॉलेज के विद्यार्थी अपनी शामें बिताने वहीं आते हैं। शाम के सात बजे के बाद ही अचानक गहमागहमी बढ़ जाती थी। बाहर बावर्चीखाने से सिंकती हुई रूमाली रोटियों और पकते हुए गोश्त की गंध हवा में तैरने लगती थी। स्कूली लड़कों-से दीखनेवाले 'वेटर' हाथ में खाने की थालियाँ लिये इधर से उधर भागते दिखाई दे जाते थे।

मैं कोई अर्धशती के बाद लोगों को हुक्का पीते देख रहा हूँ...वर्षों पहले शिमला में हमारे पड़ोसी कुमाऊँ 'पैट्रियार्क' जानकी बाबू बरामदे में हुक्का पिया करते थे और हम उनकी गोद में बैठकर उसके धुएँ का आनंद लेते थे। मैं इस बार अपना लोभ संवरण नहीं कर सका। हुक्के की नली को...

हम भी जूते उतारकर एक तख्त पर बैठ गए। लगता था, हम किसी खुली, हवाघर-सी दिखाई देनेवाली हाउस बोट पर बैठे हैं, ऊपर पहाड़, पास में पानी का झरना, लंबी भीमकाय चट्टानें। कुवैत के पत्रकार ने कुछ उदासी भरी मुसकराहट में कहा, 'काश! यहाँ चाय की बजाय ठंडी बियर मिल सकती!' कितना अजीब है कि हाफिज, सादी और उमर खय्याम के देश में शराब पर कड़ी पाबंदी लगी थी। कुछ मुसलिम राज्य अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण किस तरह अपनी साहित्यिक परंपराओं को विकृत कर देते हैं और उन्हें मुल्लाओं की संकीर्ण और असहिष्णु नीतियों के तहत विस्मृत कर देते हैं। तब उन क्षणों में मुझे मिर्जा गालिब का तंज और रंज दोनों ही याद आने लगा।

किंतु एक 'नशे' के अभाव की क्षतिपूर्ति दूसरे नशे ने कर दी, जो परिवेश से आती है। वह पीने से नहीं, जीने के उल्लास से आती है। ऊपर से नीचे जाते हुए लड़के-लड़कियों के जोड़े बिलकुल स्वच्छंद, हँसते-बतियाते हुए, जिनमें कोई कुंठा, वर्जना नहीं दिखाई देती थी। इस दृष्टि से ईरान भारत से भी कहीं आगे दिखाई देता है। आनेवाले दिनों में शहर की गलियों, रेस्तराँओं, पुस्तक मेले में जितनी बड़ी संख्या में महिलाएँ दिखाई देती हैं उतनी अपने देश में नहीं। पहनावे पर जरूर बंदिशें लगी हैं; पर अपने आचार-व्यवहार में वे बिलकुल खुली, हँसमुख और मुक्त दिखाई देती हैं। दुकानों, दफ्तरों और कारखानों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से कम नहीं। इसका कारण शायद राजनीतिक वातावरण में वह उदारवादी सहनशीलता का प्रादुर्भाव है, जिसके लक्षण खुमेनी अयातुल्ला की मृत्यु के बाद दिखाई देने लगे थे और जो वर्तमान प्रेजीडेंट मुहम्मद खातमी की नीतियों द्वारा और अधिक प्रखर तथा व्यापक हुए हैं।

रात के साथ सर्दी बढ़ने लगी। तेहरान आते समय मैंने नहीं सोचा था कि इन दिनों भी वहाँ जाते हुए जाड़े के आसार बचे रहेंगे, इसलिए अपने साथ बहुत कम—लगभग नहीं के बराबर—गरम कपड़े लाया था। बाहर तख्त पर बैठे हुए शरीर ठिठुरने लगा। दरवेश साहब ने इशारे से सामने शीशे के केबिनों की ओर संकेत किया, जो रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले थे। जो लोग बाहर सर्दी में न बैठना चाहें, वहाँ जाकर भोजन या चाय मँगवा सकते थे। मैंने देखा, वहाँ अधिकांश परिवार के लोग या युगल प्रेमी अपनी प्राइवेसी के सुरक्षित घेरे में बैठे हैं। सौभाग्य से एक केबिन खाली दिखाई दिया और मैं भी वहाँ जाकर बैठ गया। वहाँ सफेद चादरें, कालीन और कुशन रखे थे।

मेरे आस-पास पड़ोस में लोगों के गुच्छे गप्पों में या खाने में व्यस्त थे, और किसी ने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया।

मुझे लगा, मैं ट्रेन में बैठा हूँ और बाहर प्लेटफॉर्म पर चलते-फिरते लोगों का रेला है। मेरे अरबी-ईरानी मित्र तख्त पर बैठे हुए हुक्का और चाय पी रहे हैं। पीछे कहीं अँधेरे में गिरते हुए पानी के झरने की कल-कल सुनाई देती है। पहाड़ की चोटी यहाँ से दिखाई नहीं देती। तेहरान की रात शुरू हुई है। आनेवाले दिनों में मैं अखबार के संपादकों से मिलूँगा, पुस्तक मेले के उत्सवी वातावरण में पहली बार उस विशाल मैदान के जन-सागर को देखूँगा, जहाँ दिल्ली के प्रगति मैदान की तरह प्रदर्शनियाँ लगती हैं—और फिर उस स्वप्न-नगर जाना होगा, जिसका सुंदर काव्यात्मक नाम शीराज है, जहाँ हाफिज और सादी जैसे कवि रहते थे, और अब वहाँ उनके मकबरे हैं...।

पर यह सब बाद में। यह सब फिर कभी...अभी, इस क्षण यह सुख है, पलकों पर झुकी आती नींद, निर्झर पर बहती हवा, काली चादरों के बीच झाँकती हूरों-सी आँखें—और तब मुझे उसी अपने प्रिय मृत लेखक के शब्द याद आने लगे, जिससे यह यात्रा-विवरण शुरू हुआ था—

शहरों के साथ कुछ ऐसा होता है जैसा सपनों के साथ। हर कोई कल्पना स्वप्न में देखी जा सकती है; पर कोई भी स्वप्न, वह चाहे कितना ही अप्रत्याशित क्यों न हो, एक रेखाचित्र है, जो अपनी चित्रमयी भाषा में कोई आकांक्षा छिपाए रहता है या कोई डर।...तुम शहर की सात या सत्तर विस्मयकारी चीजों को देखकर उतना आनंद नहीं प्राप्त करते जितना सवालों के उन उत्तर से, जो एक शहर तुम्हें देता है।

सा अ

इनसान और भगवान्

• कमलेश्वर

यह एक अजीब विस्मयकारी और चौंकानेवाला दृश्य था। भादों का महीना और कृष्ण जन्माष्टमी का अवसर। निर्जला व्रत किए लाखों लोगों का हुजूम, जो कृष्ण जन्माष्टमी के महोत्सव में शामिल होने आए थे। कृष्ण मंदिरों के सामने हजारों श्रद्धालुओं की भीड़। जगह-जगह कीर्तन और कृष्ण-लीलाओं की झाँकियाँ। कृष्ण की लीला तो अपरंपार है, तभी तो उन्हें एकमात्र पूर्णावतार माना गया, शेष सारे अवतार अधूरे हैं। यही कृष्ण की विशेषता है, कोई कह नहीं सकता कि वे कब क्या कर बैठेंगे। भौतिकता को कब और कैसे आध्यात्मिकता में बदल देंगे और कब कर्म को जीवन-सिद्धांत का केंद्र बना देंगे और वे कब साधारण मनुष्य बन जाएँगे, यह कहा नहीं जा सकता।

इस भीड़-भाड़ से अलग एक पंडाल में कृष्ण की अनन्य भक्त मीराबाई पर प्रवचन हो रहा था। प्रवचनकार कुछ बड़ी ही सूक्ष्म और चौंकानेवाली बातें कह रहे थे—भाइयो और बहनो! मीराबाई ने कृष्ण को अपना पति माना था...इसलिए मीरा राधा के गाँव बरसाना के ऊँचा गाँव पीठ स्थित ब्रजाचार्य के पास दीक्षा लेने पहुँची थीं, लेकिन ब्रजाचार्य मीरा को कैसे दीक्षा दे सकते थे। वे तो राधा के गाँव बरसाना के निवासी और पूरे ब्रज के आचार्य थे। राधा-भक्त ब्रजाचार्य मीरा को कृष्ण की पत्नी कैसे स्वीकार कर सकते थे? लेकिन मीरा जैसी कृष्ण-भक्त की अवहेलना भी वे नहीं कर सकते थे, इसलिए ब्रजाचार्य ने राजस्थान के तिजारा पीठाधीश को आदेश दिया था कि वे ब्रज प्रदेश के बाहर अपने क्षेत्र में मीरा को दीक्षा दें। इसीलिए मीरा की दीक्षा तिजारा में हुई थी। यह तिजारा ही महाभारतकालीन त्रिगर्त है। उत्तर भारत में यही तिजारा दक्षिण के आध्यात्मिक दर्शनशास्त्री माधवाचार्य की अकेली गद्दी है, जहाँ से द्वैत और अद्वैत का भेद मिटाया गया था...तभी तो कृष्ण साधारण जन के प्रतिनिधि बने थे...नहीं तो कृष्ण भी अलौकिक अवतारों की तरह मनुष्य के प्रतिनिधि नहीं बन पाते। मीराबाई ने ही अपने कृष्ण को मनुष्य बनाया था।

और खुद मीराबाई ने सामंती परदा-प्रथा से विद्रोह करके साधु-संतों-कृष्ण भक्तों का संग अपनाया था। अपने पति की मृत्यु पर सती होने से इनकार किया था! और एक विशेष बात सुनिए, भक्तजनो!



सुप्रसिद्ध लेखक। दस उपन्यास, दस कहानी संग्रह, विविध विषयों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित। 'नई कहानी की भूमिका' चर्चित आलोचनात्मक पुस्तक। भारतीय भाषाओं का संपादित कहानी-संग्रह 'शिखर कथा-कोश' शीर्षक से आठ खंडों में प्रकाशित। लगभग सौ फिल्में, वृत्तचित्र, धारावाहिक लिखे। शलाका सम्मान (हिंदी अकादमी), शिवपूजन सहाय शिखर सम्मान (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), भारत-भारती सम्मान (उ.प्र. हिंदी संस्थान), साहित्य अकादेमी सम्मान से विभूषित। स्मृतिशेष : २७ जनवरी, २००७।

मीराबाई ने दलित कवि रैदास को अपना गुरु स्वीकारा था, जो जाति से मोची थे...ऐसी विद्रोही कवि के भगवान् स्वयं विद्रोही ही हो सकते थे!

□

और हुआ भी वही। वह सचमुच अजीब विस्मयकारी और चौंकानेवाला दृश्य था...ऐसा तो कभी हुआ नहीं था...

जैसे ही कृष्ण-जन्म का शंख बजा और मंदिरों में घंटा और घड़ियाल बजने लगे, तभी वह विलक्षण घटना घटी! जब भक्तजन अपने आराध्य कृष्ण के जन्म का जश्न मनाने को तैयार हुए, तभी आसन पर खड़ी त्रिभंगी कृष्ण की मूर्ति में हलचल हुई और आश्चर्य यह कि अपने आसन से उतरकर वह मूर्ति अपने भक्तजनों के बीच मनुष्य-रूप में आ खड़ी हुई!

भक्तजन भौंचक्के रह गए...वे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सके कि यह भी कभी हो सकता है कि कृष्ण भगवान् जीवित मनुष्य के रूप में उनके सामने और साथ आकर उन्हीं के बीच खड़े हो जाएँ! हाड़-मांस के मनुष्य के रूप में! यह तो अलौकिक आश्चर्य की घटना थी, लेकिन यह घटना घटित हो गई थी।

और पूर्णावतार कृष्ण अपने आसन से उतरकर मनुष्य रूप में उन्हीं भक्तजनों के सामने खड़े थे। और तब अपने भक्तजनों से मनुष्य रूपी श्रीकृष्ण बोले, 'भारत की धर्मप्राण जनता और कृष्ण-भक्त संप्रदाय के मेरे भक्तो! मैं त्रिभंगी मुद्रा में पिछले तीन हजार वर्षों से खड़े-खड़े बेहद थक गया हूँ...मेरे पैर जवाब दे चुके हैं, इसलिए मैं अब कुछ दिनों का आराम चाहता हूँ और आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप

सारे भक्तों में से कोई भी एक भक्त मेरा स्थान ले ले और भगवान् के रूप में इस दुनिया के धार्मिक कारोबार को सुचारु रूप से जारी रखे। आप भक्तजनों में से कोई भी एक जन मेरी जगह लेकर भगवान् बन जाए और थोड़े दिनों के लिए मुझे मुक्त करके आराम करने का अवसर दे दे!'



तमाम भक्तजन अभी भी इस आश्चर्यजनक दृश्य को हैरत और अविश्वास से देख रहे थे! उनकी सोचने की क्षमता लुप्त हो गई थे वे उत्तर दे सकने की स्थिति में ही नहीं थे!

और तब कृष्ण ने अपने महाभक्त पं. किशोरीदास को पुकारा, 'किशोरीदासजी, आपने तो मेरी वर्षों तक पूजा-आराधना की है, मैं चाहता हूँ कि आप कुछ समय के लिए मेरे भगवान् होने के पद और पदवी को सँभाल लें...मैं सदियों से खड़ा-खड़ा बेहद थक गया हूँ...आप मेरी मदद करें!'

तो पं. किशोरीदास ने हाथ जोड़कर नम्र निवेदन किया कि 'हे भगवन्! मैं आपका अनन्य भक्त हूँ...लेकिन हे अंतरयामी! आपको तो पता ही होगा कि हार्निया के ऑपरेशन के लिए सुबह ही अस्पताल जाना है, इसलिए मैं असमर्थ हूँ! मुझे क्षमा कर दीजिए!'

तब पूर्णावतार कृष्ण ने देखा, उनके सभी भक्तजन एक अजीब से ऊहापोह में फँसे हुए थे। कुछेक तो आँख बचाकर चुपचाप वहाँ से खिसक भी लिये थे। भगवान् श्रीकृष्ण को यह देखकर बहुत आश्चर्य और दुःख भी हो रहा था। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि रोज उनकी पूजा-अर्चना क़रनेवाले लोग उनकी तकलीफ से इतने वीतराग होंगे।

और तब भगवान् श्रीकृष्ण ने सामने बैठे, पर निकल भागने के लिए आतुर एक नौजवान को संबोधित किया, 'हे नौजवान! धर्म और मुझमें आस्था रखनेवाले तुम क्या कुछ दिनों के लिए भगवान् के रूप में मेरी जगह ले सकते हो?'

'भगवन्! मुझे क्षमा करें...एक तो मैं भगवान् बनने योग्य नहीं हूँ, दूसरे यह कि कल सुबह मेरी नौकरी का इंटरव्यू है। यदि वहाँ नहीं पहुँचा तो मेरी नौकरी खतरे में पड़ जाएगी। भगवन्! मैं भगवान् बनने नहीं, अपनी नौकरी के लिए आशीर्वाद लेने आया था...मेरे पास भगवान् बनने का वक्त ही नहीं है। यदि मैं भगवान् बन गया तो मेरे हाथ से नौकरी पाने का सुनहरा अवसर निकल जाएगा। इसलिए भगवन्, आप मुझे क्षमा करें, मैं भगवान् नहीं बनना चाहूँगा!'

अपने आसन से उतरे, मनुष्य रूप में प्रकट हुए त्रिभंगी कृष्ण की मानुष-मूर्ति ने देखा कि उनके सारे भक्तजन मंदिर परिसर से भाग सकने की कोशिश में थे या भाग गए थे। यह दृश्य देखकर तीन हजार वर्षों से अपने आसन पर खड़े त्रिभंगी कृष्ण हतप्रभ और निराश हो गए थे, क्योंकि कोई भी नश्वर व्यक्ति भगवान् की जगह लेने और भगवान् बनने के लिए तैयार नहीं था!

सा अ

नर से नारायण

• शिवकुमार गोयल

हमारे ऋषि-मुनियों तथा धर्मशास्त्रों ने संकल्प को ऐसा अमोघ साधन बताया है, जिसके बल पर हर क्षेत्र में सफलता पाई जा सकती है। स्वामी विवेकानंद ने कहा था, 'दृढ़ संकल्पशील व्यक्ति के शब्दकोश में असंभव शब्द नहीं होता। लक्ष्य की प्राप्ति में साधना का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। संकल्प जितना दृढ़ होगा, साधना उतनी ही गहरी और फलदायक होती जाएगी।'

शास्त्रों में कहा गया है, 'अमंत्रमक्षरं नास्ति-नास्ति मूलमनौसधम्। अयोग्य: पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ:।'

यानी ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मंत्र न हो। ऐसी कोई वनस्पति नहीं, जो औषधि नहीं हो। ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो योग्य न हो। प्रत्येक शब्द में मंत्र विद्यमान है, उसे जागृत करने की कोई योग्यता होनी चाहिए। प्रत्येक वनस्पति में अमृत तुल्य रसायन विद्यमान है, उसे पहचानने का विवेक चाहिए। व्यक्ति में योग्यता स्वभावत: होती है, किंतु उस योग्यता का सदुपयोग करने का विवेक होना चाहिए।

साधना को लक्ष्य से जोड़कर मानव अपनी योग्यता का उपयुक्त लाभ उठा सकता है। दृढ़ संकल्प और साधना के बल पर मानव नर से नारायण भी बन सकता है। प्रमाद, अहंकार, असीमित आकांक्षाएँ मनुष्य को दानव बना सकती हैं और इस तरह वे उसके पतन का कारण हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में सत्संग, सात्त्विकता, सरलता, संयम, सत्य जैसे दैवीय गुणों को जीवन में ढालकर निरंतर अभ्यास-साधना करते रहने का उपदेश दिया है। संयम का पालन करते हुए साधना में रत रहनेवाला व्यक्ति निश्चय ही अपने सर्वांगीण विकास में सफल होता है।

सा अ

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

दो प्रधानमंत्रियों की एक कथा

• मनोहर श्याम जोशी



सुप्रसिद्ध लेखक। अनेक विधाओं में प्रचुर लेखन। प्रमुख कृतियाँ 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'कसप', 'हरिया हरक्युलिस की हैरानी', 'हमजाद', 'टा-टा प्रोफेसर', 'कयाप', 'कौन हूँ मैं', 'कपीशजी', 'वधस्थल' तथा 'उत्तराधिकारिणी'। 'हमलोग', 'बुनियाद', 'कक्का जी कहिन' तथा 'मुँगेरीलाल के हसीन सपने' जैसे अनेक लोकप्रिय धारावाहिकों की पटकथा का लेखन। कई विशिष्ट पुरस्कारों से विभूषित। स्मृतिशेष : ३० मार्च, २००६।

राजनेता भी निर्वाचन वेला पर जिसे साष्टांग प्रणाम करता है उस साधनहीन, किंतु सिद्धिदायक मतदाता को नमस्कार है।

सत्ता सुंदरी के दृढ़ आलिंगन में बद्ध होने पर भी स्वयं प्रधानमंत्री तक जिससे काँपते हैं उस लटकंत संसद् की जय हो।

किसी समय पाटलीपुत्र नामक एक नगरी में पंचभोगी नामक एक वयोवृद्ध अनुभवी नेता रहा करता था। पंचभोगी पाँच अलग-अलग संयुक्त सरकारों में मंत्री रहा था और दो बार अलग-अलग और एक-दूसरे के घोर विरोधी दलों की सरकारों में उसने प्रधानमंत्री का पद पाया था। दुर्भाग्य कि सरकारी खर्चे पर पाँच बार विदेश में अपने रुग्ण हृदय और रुग्णतर गुरदे का उपचार करा लेने के बावजूद वह सक्रिय राजनीति के योग्य नहीं रहा। सच है कि भाग्य के समक्ष शक्तिशाली भी असहाय होता है।

उस पंचभोगी को इस प्रकार सक्रिय राजनीति से निर्वासित कर दिए जाने से जितनी पीड़ा हुई उससे भी अधिक पीड़ा इस बात से हुई कि जो छोटे-बड़े नेता जोड़-तोड़ की राजनीति के गुर सीखने और जानने के लिए पहले उससे वैसे ही चिपके रहते थे जैसे गुड़ से चींटियाँ, वे अब उससे वैसे ही दूर भागने लगे हैं जैसे डी.डी.टी. से मच्छर। अर्थात् उस पंचभोगी का उन कृतघ्नों ने सक्रिय के साथ-साथ निष्क्रिय राजनीति से भी निष्कासन कर दिया था। अर्थात् पंचभोगी की यह हार्दिक इच्छा पूरी नहीं हो पा रही थी कि सरकारी खर्चे से मँगाई गई गुरदा मशीन से अपना रक्त शुद्ध कराते हुए मैं अपने अपार अनुभव से शिष्य मंडली को लाभान्वित करा सकूँ और सरकारों को बनाने और गिराने के काम में यथोचित योगदान कर सकूँ।

सरकार की दया से उस पंचभोगी के पास गुरदा मशीन से लेकर बुलेट-अभेध वाहन तक, भव्य कोठी से लेकर भयंकर कमांडो तक, लाखों रुपयों का बिल चढ़ जाने पर भी न कटनेवाले फोन से लेकर रेल और हवाई जहाज के पास तक—ऐसी अनेकानेक सुविधाएँ उपलब्ध थीं जो किसी सम्मानित राजनेता को उपलब्ध होनी चाहिए। इसी प्रकार भ्रष्टाचार की कृपा से उस रुग्ण वृद्ध की सात पीढ़ियाँ उसीकी तरह सदा लेटे अथवा पहियेदार कुरसी पर बैठे-बैठे ही संसार के समस्त सुख प्राप्त कर सकती थीं। किंतु राजनेता के लिए तो राजनीतिक जोड़-तोड़ के बिना जीवन वैसा ही होता है जैसा मीन के लिए जल के अभाव में। उस पंचभोगी की अगली दो पीढ़ियों के अनेक सदस्य राजनीति में सक्रिय थे; किंतु वे भी उससे राजनीतिक चर्चा करने के लिए तैयार न होते। वे कुल कलंक यह कह देते कि डॉक्टर ने कहा है कि ज्यादा बोलना या सोचना-समझना आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। पंचभोगी चिल्लाता कि अरे हृदयहीनो, बोलती बंद कर दिया जाना तो राजनेता के लिए साँस बंद कर दिए जाने से भी अधिक कष्टप्रद होता है। अरे मूर्खो! मेरे स्वास्थ्य की इस मिथ्या चिंता में तुम तो मेरे प्राण ही ले लोगे। जब वह पंचभोगी इस प्रकार क्रंदन करता है तब वे कुल कलंक सरकार की ओर से मुफ्त मिले हुए डॉक्टर को बुलवाकर मुफ्त मिली हुई नर्स से उसे निद्राकर सूई लगवा जाते।

मरता राजनेता राजनीतिक चर्चा के लिए क्या नहीं करता। तो उस पंचभोगी ने संकल्प किया कि अपने एकमात्र कमांडो को ही राजनीति की दीक्षा दूँगा और इसे क्रमशः विधायक, मंत्री और मुख्यमंत्री बनाकर सबको दिखा दूँगा कि भले ही मेरा हृदय और मेरे गुरदे जवाब दे चुके हों, मेरी अद्‍भुत राजनीतिक खोपड़ी को खरोंच तक नहीं आई।

इसपर पार्वतीजी ने शिवजी से जिज्ञासा की, ''इतने बड़े राजनेता के लिए अंगरक्षक के रूप में केवल एक कमांडो ही कैसे नियुक्त था? हे स्वामिन्! बड़े नेताओं के साथ तो कमांडो नामधारी सशक्त अंगरक्षकों की पूरी बारात ही रहती है। इसीलिए वधू पक्षवाले वर पक्ष से पूछ लेते हैं कि बारात में कितने मंत्री आएँगे? और मंत्रियों की जो भी संख्या हो उसमें एक जोड़कर जो अंक आए उसके बराबर की बारातों के लिए भोजन की व्यवस्था कराते हैं।''

यह सुनकर शिवजी ने कहा, ''प्रिये! यह तब की बात है जब प्रतिवर्ष आम चुनाव कराने की नौबत आ गई और हर चुनाव के बाद लटकंत संसद् बनी। वर्तमान, भूतपूर्व और अभूतपूर्व प्रधानमंत्रियों और नेताओं की संख्या अनगिनत हो चली, जिन्हें भले ही विधि-विधान, लोकनिंदा आदि के भय से पूर्ण मुक्ति मिल गई हो, मृत्यु भय से मुक्ति नहीं मिल पाई थी। तो अंगरक्षकों की संख्या में उत्तरोतर कटौती करनी पड़ी। उस पंचभोगी जैसे शारीरिक ही नहीं, राजनीतिक दृष्टि से भी मृतप्राय राजनेता को कुल एक कमांडो देने का सर्वदल सम्मत निर्णय संसद् में लिया गया।''

जिज्ञासा का इस प्रकार समाधान कर दिए जाने पर पार्वती बोलीं, ''हे स्वामिन्! उस पंचभोगी ने उस कमांडो को क्या राजनीतिक दीक्षा दी, यह जानने के लिए मैं बहुत उत्कंठित हूँ।''

शिवजी बोले, ''हे प्रिये! तुम जितनी उत्कंठा दिखा रही हो उस कमांडो ने उस पंचभोगी से राजनीतिक दीक्षा लेने के विषय में उतनी ही उदासीनता प्रदर्शित की। इसपर पंचभोगी ने क्रुद्ध होकर कहा कि मूढ़मते! मैं तुझे पते की बातें बताना चाहता हूँ और तू जम्हाइयाँ ले-लेकर इस बात का प्रमाण दे रहा है कि किसी सशक्त मुखदुर्गंध नाशक के अभाव में तू किसी काम का न रह पाएगा।''

कमांडो ने पंचभोगी को पीठ दिखाते हुए कहा, ''स्वामिन्! इस दुर्गंध की कृपा से ही मैं दंतमंजन और मुखदुर्गंध नाशकों के विज्ञापन बनानेवालों और हत्या के भय से काँपते रहनेवालों के बहुत काम का सिद्ध हुआ हूँ।''

इस प्रकार कहे जाने पर पंचभोगी ने आश्चर्यपूर्वक जिज्ञासा की, ''सो कैसे?''

कमांडो बोला, ''सो ऐसे राजन्! कि किसी कस्बे के सार्वजनिक बस अड्डे के शौचालय की दुर्गंध को लजाती मेरी श्वास के भय से संभावित हत्यारे निकट नहीं आते और विज्ञापनों की शूटिंग के लिए बुलाई गई सुंदरियों की घ्राणेंद्रिय को मेरी श्वास का पहला स्पर्श मिलते ही उनके चेहरे का पोर-पोर घिना उठता है तथा दिग्दर्शक महोदय को वांछित क्लोजअप मिल जाता है। हे राजनेताओं में श्रेष्ठ! आपसे राजनीतिक शिक्षा-दीक्षा लेने में मैंने उदासीनता प्रदर्शित की है तो इसलिए कि आप ग्रेट होते हुए भी आउट ऑफ डेट हैं। आप आदेश दें तो मैं इस संबंध में आपको टल बिहारी और अटल बिहारी कथा सुनाऊँ।''

ऐसा सुनकर वह पंचभोगी पिनपिनाकर बोला, ''मुझे किसी टल या अटल की कथा नहीं सुननी है। पहले यह बता कि मैं आउट ऑफ डेट कैसे हूँ?''

उस कमांडो ने करबद्ध निवेदन किया, ''पहले आप मुझे कोई पते की बात बताएँ तो मैं आपको बताऊँ कि आप क्यों राजनीतिक परदे से लापता कर दिए गए हैं।''

पंचभोगी ने गुरु मंत्र देते हुए कहा, ''एक पते की बात तो यही है कि जब लटकंत संसद् बने तो सबको साथ लेकर चलना चाहिए।''

कमांडो बोला, ''हे ग्रेट किंतु आउट ऑफ डेट! आपको ज्ञात होना चाहिए कि सबको साथ लेकर चलने का मंत्र कई वर्ष पहले प्रभावहीन हो चुका है। सबको साथ लेकर चलना चलने के सतत टलने का पर्याय बन चुका है। सबको साथ लेकर तो सत्ता पर बैठा ही जा सकता है, सो भी बड़ी मुश्किल से। इस संदर्भ में संयुक्त मोरचा की पाँचवीं सरकार के तीसरे प्रधानमंत्री की कथा सुनाता हूँ, सुनिए।''

''संयुक्त मोरचा की पाँचवीं सरकार के गठन के समय वही संकल्प लिये गए जो पिछली चार सरकारों के गठन के समय लिये गए थे। सच है कि इतिहास अपने को दोहराता है, क्योंकि इतिहास से कोई कुछ नहीं ले पाता है। तो पुराने संकल्पों को दोहराते हुए यह निर्णय हुआ कि मंत्रिमंडल में साझा सरकार में सम्मिलित सभी दलों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाएगा और संयुक्त मोरचे में सम्मिलित तीनों दलों के नेता बारी-बारी से छह-छह महीने के लिए प्रधानमंत्री बनते रहेंगे। सभी घटकों में सौहार्द बनाए रखने के लिए एक समन्वय समिति बनाई जाएगी। पहले दो घटकों के नेता जो मित्र ही नहीं, समधी भी थे, बारी-बारी से प्रधानमंत्री बन गए और उन दोनों की संयुक्त शक्ति का लोहा मान उनके प्रधानमंत्रित्व काल में तीसरे घटक के नेता ने किसी प्रकार की कोई अड़चन न डाली। किंतु जिस दिन तीसरे नेता के प्रधानमंत्री बनने की बारी आई उसी दिन प्रथम दोनों घटकों के नेताओं ने बगावत का बिगुल बजा दिया और प्रतिपक्ष के नेता ने पहले दो घटकों के नेताओं के साथ मिलकर सरकार बनाने की पहल शुरू कर दी।

''तब तीसरे घटक के नेता ने सबको साथ लेकर चलने की नीति अपनाई। उसने दोनों घटकों के सभी सदस्यों को और प्रतिपक्ष के कुछ सदस्यों को प्रलोभन दिया कि मेरा साथ दो और मंत्री पद लो। इस प्रकार वह सरकार बनाने में सफल हुआ। इस सरकार के कार्यकाल के शुरू के तीन महीने मंत्री पदों का समुचित वितरण करने और हर मंत्री को सचिवालय तथा संसद् में बैठने का उपयुक्त स्थान दिलाने और राजधानी में रहने के लिए कोठी दिलवाने में चला गया। सबको साथ लेकर चलनेवाले उस नेता की वह सरकार सचिवालय और संसद् में बैठ तो गई, किंतु आपसी मतभेदों के कारण न शासन चला सकी, न कोई नया विधेयक ला सकी और न अपनी कोई नीति निर्धारित अथवा कार्यान्वित करवा सकी। सबको संतोष देने के उपक्रम में वह सरकार किसीको भी संतोष नहीं दे पाई थी; अस्तु असंतुष्टों की संख्या घटने की बजाय बढ़ती चली गई। उन अपने-पराए असंतुष्टों ने कुरसी खिसकाकर उस मिलकर बैठी हुई सरकार को मिलकर गिरा दिया।''

इसपर उस पंचभोगी ने कहा, ''मूढ़मते! तू यह क्यों नहीं सोचता कि यदि वह नेता उस समय अपने उन सब मित्रों-शत्रुओं को साथ लेकर न

सबको साथ लेकर चलनेवाले उस नेता की वह सरकार सचिवालय और संसद् में बैठ तो गई, किंतु आपसी मतभेदों के कारण न शासन चला सकी, न कोई नया विधेयक ला सकी और न अपनी कोई नीति निर्धारित अथवा कार्यान्वित करवा सकी। सबको संतोष देने के उपक्रम में वह सरकार किसीको भी संतोष नहीं दे पाई थी; अस्तु असंतुष्टों की संख्या घटने की बजाय बढ़ती चली गई।

चलता तो उसकी सरकार बैठ तक न पाती।''

उस पंचभोगी का यह वचन सुनकर उस कमांडो ने इस प्रकार कहा, ''हे ग्रेट आउट ऑफ डेट नेताओं में श्रेष्ठ! अब तो सबको साथ लेकर चलने में सरकार का बैठ सकना भी संदिग्ध हो चला है। इस प्रसंग में मुझे प्रधानमंत्री चतुर्मुख की कथा याद आ रही है, ध्यानपूर्वक सुनें। किसी समय देश के समस्त राजनीतिक दल तीन संयुक्त मोरचों में विभाजित हो चुके थे। एक वाममुखी मोरचा, दूसरा दक्षिणमुखी मोरचा और तीसरा ऐसा मध्यमुखी मोरचा जो ग्रीवा वाममुख की ओर मोड़े हुए था। इन तीन संयुक्त मोरचों के आपस में संयुक्त और विभक्त होते रहने से सरकारें जल्दी-जल्दी बनती रहीं और उतनी ही जल्दी-जल्दी गिरती भी रहीं। सारी परिस्थिति को देखते हुए चतुर्मुख नामक एक उभरते हुए नेता ने चौथा संयुक्त मोरचा बना दिया, जो मध्यमुखी तो था किंतु जिसकी ग्रीवा दक्षिण की ओर मुड़ी हुई थी। आम चुनाव के पश्चात् फिर लटकंत संसद् का गठन हुआ, तब चतुर चतुर्मुख ने शेष तीनों मोरचों के नेताओं को आपस में लड़वाकर प्रधानमंत्री पद के लिए दावा कर दिया; यद्यपि उसका संयुक्त मोरचा संसद् में अल्पसंख्यक था। सबको साथ लेने की नीति अपनाते हुए उसने राष्ट्रीय सरकार बनाई और अन्य तीनों संयुक्त मोरचे के नेताओं को उप प्रधानमंत्री का पद दिया।

''जब उन तीनों में महत्त्वपूर्ण विभाग पाने के लिए खींचातानी होने लगी तब उस चतुर चतुर्मुख ने समाचार पत्रों और दूरदर्शन में मुखारविंद दिखाते रहने और स्विस बैंकों में खाते खुलवाते रहने की दृष्टि से सर्वाधिक छह विभागों के नामों की परचियाँ बनाकर अपनी टोपी में डालीं और उन्हें अच्छी तरह मिलाकर उन तीन संयुक्त मोरचाओं के नेताओं से कहा कि इनमें से दो-दो पर्चियाँ आप उठा लें। प्रभु की दया से इस पद्धति से विभागों का वितरण कुछ ऐसे हुआ कि कोई भी बहुत अधिक असंतोष व्यक्त नहीं कर पाया। जो थोड़ा-बहुत असंतोष था भी वह चतुर चतुर्मुख के इस तर्क के आगे नतमस्तक हो गया कि मैंने एक भी महत्त्वपूर्ण विभाग स्वयं नहीं लिया है और विभागों का आप लोगों में वितरण स्वयं न करके भाग्य देवता से करवाया है। इस प्रकार उनका असंतोष दूर करने के पश्चात् स्वयं चतुर्मुख ने विदेश विभाग सँभाला और विदेश मंत्री की हैसियत से 'भ्रष्टाचार और विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ' विषय पर आयोजित एक अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी में हिस्सा लेने अपने प्रिय कुटुंबीजनों, प्रिय सरकारी अधिकारियों और प्रिय पत्रकारों तथा मित्रों के साथ स्विट्जरलैंड नामक सुरम्य देश के लिए निकल पड़ा।

''उस बारात को अपने साथ ले जाने के लिए उस चतुर्मुख ने देश की विमान सेवा के छह में से तीन जहाज ले लिये और चौथा किसी भी आपात् स्थिति का सामना करने के लिए अलग रखवा दिया। अर्थव्यवस्था पर भ्रष्टाचार के अनिष्टकारी प्रभाव पर अपने प्रिय उच्चाधिकारी द्वारा भ्रष्ट अंग्रेजी में लिखे गए एक भाषण को अटक-अटककर अटपटे उच्चारण के साथ उस चतुर चतुर्मुख ने उस नीरस अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी में किसी तरह पूरा पढ़ डाला। उस औपचारिक करतल ध्वनि को हार्दिक साधुवाद का पर्याय मानते हुए वह चतुर चतुर्मुख प्रसन्नचित्त उस पाँच सितारा होटल को लौटा जिसकी पूरी एक मंजिल उसके और उसके कुटुंबीजनों के ठहरने के लिए ले ली गई थी। वहाँ उस चतुर चतुर्मुख को वह स्वदेशी उद्यमी प्रतीक्षारत मिला जिसने उस चतुर चतुर्मुख के कुटुंबीजनों के होटल प्रवास, सैर-सपाटे और खरीदारी का सारा व्ययभार अपने सशक्त कंधों पर सहर्ष ले लिया था।

''उस समय वह उदार उद्यमी चतुर चतुर्मुख के लिए यह शुभ समाचार लाया था कि आपने पिछली पाँच सरकारों में मंत्री पद पर आसीन होकर जनता की निःस्वार्थ और निःशुल्क सेवा करते हुए जो मेवा कमाकर मुझसे स्विट्जरलैंड के बैंकों में रखवाया था उसका एक अंश अंतरराष्ट्रीय बैंक व्यवस्था की आड़ी-तिरछी गलियों से आपकी राजधानी तक पहुँचा देने की व्यवस्था मैंने कर दी है। यह समाचार पाकर उस चतुर चतुर्मुख की प्रसन्नता चौगुनी हो गई; क्योंकि सरकार के स्थायित्व के लिए सांसदों की भक्ति खरीदते रहना आवश्यक था और भक्ति खरीदने के लिए दो नंबर के नोटों की पेटियों का भंडार आवश्यक था।

''दुर्भाग्य कि तभी उसका निजी सचिव भरोसेलाल नामक व्यक्ति सेल्यूलर फोन नामक उपकरण को अपने कान से लगाए हुए और चेहरे पर चिंता की रेखाएँ खींचे हुए प्रकट हुआ। चतुर चतुर्मुख के मुख पर दमकते आनंद-सूर्य की कांति उस चिंतामग्न भरोसेलाल को देखकर निस्तेज होने लगी और तब तो विलुप्त ही हो गई जब फोन कान से लगाने पर उसे पता चला कि दिल्ली में उसकी दुकान उखड़ चली है। अर्थात् उसकी सरकार सबको साथ लेकर चलने के बावजूद बैठने से पहले ही गिरने वाली है।''

इसपर उस पंचभोगी ने शंका की, ''जब सभी सरकार में शामिल कर लिये गए थे तब उसके गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता था?''

इस प्रकार कहे जाने पर उस कमांडो ने चिढ़कर कहा, ''कृपया बीच में न टोकें और ध्यान से सुनें। आपके ज्ञानचक्षु खुल जाएँगे और आपकी शंकाओं का समाधान स्वत: हो जाएगा। बात यह थी कि चतुर चतुर्मुख के दाहिने हाथ दक्षिणाशापति ने, जिसके प्रभाव में आकर वह दक्षिणमुखी संयुक्त मोरचे की ओर झुका था और जो उप प्रधानमंत्री न बनाए जाने से थोड़ा निराश लग रहा था, अपने ही नेता के प्रति विद्रोह करा दिया था। इसके लिए उसने बहुत ही सरल युक्ति अपनाई। सचिवालय में उप प्रधानमंत्री के नाम का एक ही बड़ा दफ्तर था, जिसमें वामोन्मुख मध्यमुख का नेता मध्यमक इस नाते बैठा हुआ था कि पिछली संयुक्त सरकार में भी वह उप प्रधानमंत्री था और उसे वही कमरा मिला हुआ था। चतुर चतुर्मुख ने स्विट्जरलैंड रवाना होते ही उप प्रधानमंत्री न बनाए जाने से रुष्ट दक्षिणाशापति ने दक्षिणमुखी संयुक्त मोरचे के नेता और अपने नए गुरु दक्षिणाचारी से इस प्रकार नम्र निवेदन किया—'हे मेरे नव गुरु! मेरे पूर्व गुरु स्विट्जरलैंड के लिए प्रस्थान करते समय आदेश कर गए हैं कि उप प्रधानमंत्री का कार्यालय और कुरसी आपको दी जाए; क्योंकि आप अन्य दो उप प्रधानमंत्रियों से वयोवृद्ध हैं। मध्यमक मेरे अनुरोध करने पर भी कार्यालय खाली नहीं कर रहा है, अत: आप अपने स्वयंसेवकों की सहायता से रातोरात उस कार्यालय से उस अधम का ताला तुड़वाकर, उसका सारा सामान गलियारे में फेंकवा कर वहाँ स्वयं विराजमान हो जाने की महती कृपा करें। ऐसा सुनकर उस दक्षिणाचारी ने वैसा ही किया। अगले दिन उस कमरे को लेकर दक्षिणाचारी के स्वयंसेवकों और मध्यमक के

चमचों में जमकर युद्ध हुआ। दक्षिणाशापति इस युद्धाग्नि को अपनी दोमुखी उक्तियों से भड़काने का काम करता रहा। उप प्रधानमंत्री कार्यालय के लिए इस प्रथम युद्ध में दक्षिणाचारी के स्वयंसेवकों की विजय हुई।

''तब पराजित मध्यमक को दक्षिणाशापति ने वाममुखी संयुक्त मोरचे के नेता वामशील की कोठी के द्वार पर खड़े होकर सेल्यूलर फोन से यह सलाह दी कि अपना कार्यालय पुन: प्राप्त करने के लिए वामशील से सहायता की प्रार्थना करे। वामशील के पास कर्मठ काडर है, जबकि आपके पास केवल कायर चमचे हैं। इस प्रकार मध्यमक को प्रेरित करके दक्षिणाशापति तुरंत वामशील की बैठक में घुसा और उसने उस वामशील को अलग ले जाकर उसके कान में यह बात डाली कि दक्षिणाचारी ने मध्यमक से उप प्रधानमंत्री का कार्यालय छीन लिया है और मध्यमक आपके पास सहायता के लिए आ रहा है। मेरा परामर्श यह है कि आप अपनी काडर को भेजकर उस कार्यालय से दक्षिणाचारी को खदेड़ें अवश्य, किंतु अनंतर वहाँ स्वयं विराजमान हों, मध्यमक को न बैठने दें। उप प्रधानमंत्री का वह कार्यालय आपने पूर्व शासन के प्रधानमंत्री की हैसियत से उस मध्यमक को प्रदान किया था। अस्तु, वह उसका नहीं, आपका ही कहा जाएगा।

''वामशील को दक्षिणाशापति की बात नीतिसम्मत लगी और उस प्रकार परामर्श पाए हुए उस वामशील ने सहायता की प्रार्थना करने के लिए आए हुए मध्यमक को युद्ध के लिए अपनी काडर तो दिलवाई, किंतु युद्ध से पुन: प्राप्त हुआ कार्यालय उससे छीन लिया। इस प्रकार तीनों ही संयुक्त मोरचों में आपस में घमासान युद्ध छिड़ गया। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए दक्षिणाशापति ने दोनों मध्यमार्गीय संयुक्त मोरचों को मिलाकर मध्यमक और चतुर्मुख, दोनों से नेतृत्व छीन लिया और दक्षिणाचारी के सहयोग से एक नई सरकार का गठन किया, जिसमें दक्षिणाचारी प्रधानमंत्री और वह स्वयं उप प्रधानमंत्री बना। चतुर चतुर्मुख द्वारा स्विट्ज़रलैंड के बैंकों से लाया हुआ धन भी निष्फल सिद्ध हुआ। सांसदों ने उसे ग्रहण तो किया किंतु मत चतुर्मुख के विरुद्ध दिया; क्योंकि उन्होंने जान लिया था कि इस मूर्ख की सबको साथ लेकर चलनेवाली सरकार चलने वाली नहीं है।''

उस समय वह उदार उद्यमी चतुर चतुर्मुख के लिए यह शुभ समाचार लाया था कि आपने पिछली पाँच सरकारों में मंत्री पद पर आसीन होकर जनता की नि:स्वार्थ और नि:शुल्क सेवा करते हुए जो मेवा कमाकर मुझसे स्विट्ज़रलैंड के बैंकों में रखवाया था उसका एक अंश अंतरराष्ट्रीय बैंक व्यवस्था की आड़ी-तिरछी गलियों से आपकी राजधानी तक पहुँचा देने की व्यवस्था मैंने कर दी है।

कुछ इस कथा के प्रभाव से, कुछ गुरदा मशीन में कुछ गड़बड़ हो जाने से पंचभोगी के प्राण छूट गए। प्राणरक्षक कमांडो ने परिचारिका को बुला लिया। परिचारिका ने कहा कि मरणासन्न राजनेता को राजनीतिक कथाएँ नहीं सुनानी चाहिए। क्या तुमने निन्यानबे के फेर में आए प्रधानमंत्री की कथा नहीं सुनी है? कमांडो यह कहते हुए कमरे से बाहर चला गया कि 'न मैंने सुनी है और न सुनने की स्थिति में हूँ। मेरे स्वस्थ गुरदे मुझे लघुशंका के लिए जाने को बाध्य कर रहे हैं।

सा/अ

विवेक के साथ कर्म

● शिवकुमार गोयल

तीर्थंकर महावीर ने कहा, 'कर्म करने में तो सभी स्वतंत्र हैं, किंतु उसका फल भोगने में परतंत्र हैं। सत्कर्म का सुफल स्वत: मिलता है और दुष्कर्म की सजा प्रत्येक को भोगनी पड़ती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को विवेक के साथ ही कर्मों की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अशुभ कर्मों से बचते हुए सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले को मोक्ष मिलता है।'

अहिंसा को एक नया आयाम देते हुए भगवान् महावीर ने कहा, 'वैचारिक हिंसा शारीरिक हिंसा से कम नहीं। अत: व्यक्ति को मन-वचन से अहिंसा व्रत का पालन करना चाहिए।' अपनी बात स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'यदि किसी को कटुवचन बोला या अपनी आँखें लाल करके क्रोध का प्रदर्शन किया, तो समझ लो कि हिंसा के पाप के भागी बन गए। शारीरिक क्षति पहुँचाने की अपेक्षा कई बार कटु वचन कहीं अधिक गहरा घाव कर देते हैं, जो कभी नहीं मिटते।'

इसीलिए सभी संप्रदायों के धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि वाणी का उपयोग मीठे वचन बोलने में करना चाहिए। किसी के विचारों से असहमत हैं, तब भी प्रेमपूर्वक अपनी बात कहें। संयम व धैर्य खोकर वाक् युद्ध करनेवालों को कभी-कभी भयंकर दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। स्वभाव से शांत-अहिंसक व्यक्ति भी भावावेश में आकर जब क्रूरता और हिंसा का प्रदर्शन कर बैठता है, तो वह अपने जीवन-भर के पुण्यों को खत्म कर डालता है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, 'धर्मानुसार किया गया कर्म ही सुपरिणामदायक होता है। मोहमाया में अंधे होकर किया गया कर्म दुष्कर्म बनकर विनाशकारी हो जाता है।'

सा/अ

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

तीन कविताएँ

• केदारनाथ सिंह



हिंदी के प्रसिद्ध कवि व रचनाकार। एक दर्जन से अधिक मौलिक पुस्तकें व चार अन्य संपादित पुस्तकें प्रकाशित तथा कई पत्रिकाओं का संपादन। साहित्य अकादेमी पुरस्कार, व्यास सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, भारत-भारती सम्मान, दिनकर सम्मान, कुमार आशान सम्मान तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। स्मृतिशेष : १९ मार्च, २०१८।

[कुछ पंक्तियाँ, जो एक पाठशाला के सुलेख से उतारी गईं।]

बापू

बापू महान् थे
वे महान् थे क्योंकि उनके दो खूब तेज आँखें थीं
और दो खूब बड़े-बड़े कान।
उनके हाथ भी
खूब बड़े-बड़े थे
इतने कि चलते समय
धरती को छूते-छूते रह जाते थे।

बापू अहिंसा के पुजारी थे
चूँकि वे अहिंसा के पुजारी थे
इसलिए अपने शहर की सबसे शांत सड़क पर भी
लाठी लेकर टहलने जाते थे।

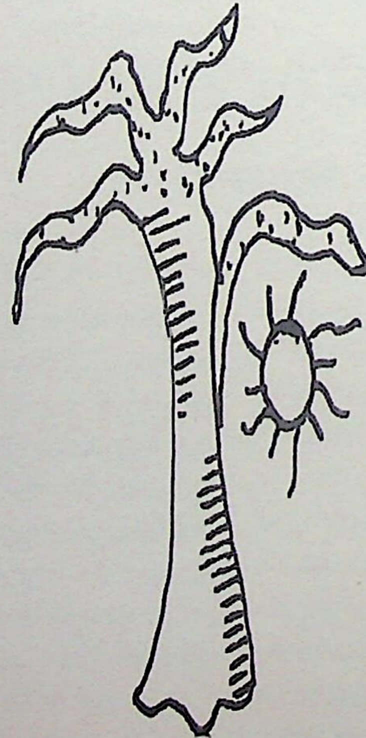
'बापू'—यह शब्द
दो अक्षरों से मिलकर बना है—
'बा' और 'पू'
'बा' चलो ठीक है
पर 'पू' हमें ज्यादा आनंद देता है।
पता नहीं क्यों?

हाथी

उसे देखकर
ईश्वर के होने का आभास होता है।

यदि वह होगा
तो जरूर हाथी की तरह
विशालकाय होगा।

यदि वह हाथी की तरह विशालकाय होगा
तो जरूर-जरूर
उसे भी चींटी से डर लगता होगा।



गाय

गाय एक पशु है।
चौपाया या चौपायी
क्या कहना चाहिए मैं नहीं जानता।

वह खली-भूसी खाती है
लेकिन कभी-कभी जंगल में
चरने भी जाती है।
कहते हैं जंगल में
शेर रहता है
पर वह दूध नहीं पीता।

आश्चर्य कि गाय
उसे फिर भी अच्छी लगती है।
गाय के सींग भी होते हैं
जिन्हें वह हमेशा फूल की तरह
बचाकर रखती है
न जाने किसके लिए?

दोपहर में गाय
खूँटे से बँधी हुई पागुर करती है।
यह दृश्य मुझे बेहद उदास कर देता है
इस उदासी का खूँटे से
कुछ-न-कुछ संबंध जरूर होना चाहिए ।

यह कितना भयानक है
कि जब खूँटा भी चमकता है धूप में
सुंदर लगता है।

गाय में बहुत से गुण हैं
बस उसमें एक ही दोष है
उसे हँसना नहीं आता।

सा
अ

तीन कविताएँ

● कैलाश वाजपेयी



हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार। कविता संग्रह 'हवा में हस्ताक्षर' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित। पंद्रह कृतियाँ प्रकाशित। उन्होंने दिल्ली दूरदर्शन के लिए कबीर, सूरदास, जे. कृष्णमूर्ति, रामकृष्ण परमहंस के जीवन पर फिल्में भी बनाई। लंबे समय तक दूरदर्शन की हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य रहे। अनेक देशों की यात्राएँ तथा अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत। स्मृतिशेष : १ अप्रैल, २०१५।

चित्रगुप्त के लिए

सबकुछ, सबकुछ से घुल-मिलकर

चलता तो चलता
अब सब विरुद्ध हो गया है
सबकुछ के।

पृथ्वी की कोख में मरोड़ और
बाहर
धब्बे-ही-धब्बे
हवा के दरख्त के पत्ते-पत्ते पर

आकाश
जैसे गिरी अभी झरी
कोयले की छत दरारदार।

कहाँ खड़े हों?
दलदल में धँसी
मानवता के पक्ष में
बर्राते
कवि कलाकार।

बताओ चित्रगुप्त!

अपने किए का आकलन
किसी लिपि में करें
परदे पर नाचती अधनंगी
परियों के जहरिल कोहराम में।

क्या करें हम रचनाकार?

छाया से लड़ना बेमानी है।

आँखें/घूमता आईना

बोतल में बंद
आँखों का जोड़ा जिस
युवती का है वह
अभी सुबह बस पर चढ़ने की कोशिश में
कुचलकर मरी थी,
नेत्रदान की क्योंकि कर चुकी थी
वह घोषणा
आँखें अब बंद हैं बोतल में।

'इन आँखों ने क्या-क्या देखा-
अनदेखा किया होगा'
यह न बता पाएगा शहर में घूमता आईना
कितना सोई होंगी, जाग जाने से पहले
ये आँखें
कभी भूख, कभी ब्याह हो, न हो पाने की
पीड़ा से
रोई भी होंगी।
आँखों को बड़ी सजा मिलती है
आँख होने की।
क्या-क्या नहीं देखतीं आँखें दिखातीं
दृष्टा को
अनदिखे के लिए तरसतीं
खुली रहकर भी
बंद कभी जागरूक होकर भी
चोरी हो जाती हैं
हो सकता है ये आँखें
रही हों फंदवार
अमिय, हलाहल भरी
अकारण रतनार
जहाँ टँकी थीं सुबह
असंग उस जल-फुँकी देह से
इन आँखों को कैसा लगेगा?
अब नए चेहरे पर
रोपे जाने के बाद का नजारा
कितना मायावी/दुर्निवार
सारा-का-सारा—दृश्य जगत्
जो देखे जाने को तरस रहा
खिड़कियों पर पड़े
पारदर्श परदे से।

हार जा

एक भी सही वजह नहीं गुनगुनाने की
नहीं वजह होने की वजह से ही गा
लोग नहीं सुनते
हैं फँसे माया के चक्कर में
पेड़ों से, लता दूर्वा से बतिया
चिड़िया आँगन में आई है
सब घरों में नहीं बनाती
चिड़िया घोंसला
न्योता तो दे
क्या पता मान जाए
चंपा खिली है
एक जुगलबंदी चल रही
तितली के फूलों के बीच नहीं जा
खेल चल रहा है
साँप और चंद्रमा
मोक्ष और छाया के बीच
तू इस खेल में
हो, न हो शामिल था
न सही अक्षर उदयमान कविता का
बाँस था
किए को अनकिया करने के वास्ते
खेल के अंत के पहले ही
हार जा।

सवाल का जवाब

• हरिकृष्ण देवसरे



हिंदी के प्रतिष्ठित बाल-साहित्यकार और संपादक थे। कविता, कहानी, नाटक, आलोचना आदि विधाओं में उनकी लगभग २५० पुस्तकें प्रकाशित। बच्चों की लोकप्रिय पत्रिका 'पराग' के संपादक रहे। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत। स्मृतिशेष : १४ नवंबर, २०१३।

तिस दिन रविवार था। मैं कॉलोनी के मार्केट में जाने के लिए तैयार हुआ तो तन्मय भी साथ चलने की जिद करने लगा। उसकी दादी बोलीं, ''ले जाइए न! आजकल दीवाली आने की खुशी में बाजार खूब सज रहे हैं। बच्चा है, देखकर खुश होगा।''

''हाँ, लेकिन इससे ये वादा ले लो कि किसी चीज की जिद नहीं करेगा।'' मैंने कहा।

''आप भी कैसे दादा हैं। अरे, पोता अपने दादा से जिद न करेगा तो किससे करेगा? ले जाइए और जो कहे वो खरीद दीजिए।''

दादी की इस फटकार पर मेरी क्या हिम्मत थी जो पोते तन्मय को बाजार साथ न ले जाता।

कुछ रविवार की छुट्टी के कारण और कुछ पास आ रही दीवाली के कारण बाजार में कुछ ज्यादा ही गहमागहमी थी। मैंने तन्मय को सावधान कर दिया था कि मेरा हाथ छुड़ाकर न जाना। मुझे एक दुकान से कुछ सामान लेना था। मेरे हाथ में लंबी लिस्ट थी और दुकान में भीड़ भी कुछ ज्यादा ही थी। सो इंतजार करना ही था। उस दुकान के सामने सड़क के किनारे पटाखों की दुकान लगी थी। उसके सामने बच्चों और बड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग बड़े-बड़े बंडलों में पटाखे बँधवाकर ले जा रहे थे। कुछ बच्चे हाथ में सीमित पैसे लिये, महँगे सामान को देखकर यह तय नहीं कर पा रहे थे कि बम लें या अनार लें या बड़ी फुलझड़ी लें। जितनी बार विचार बदलता उतनी बार वे किसी-न-किसी आइटम का दाम पूछते और हाथ के पैसों से जब वो मेल न खाता तो चुप होकर दुकान के दूसरे आइटम देखने लगते और सोचते कि क्या लें, क्या न लें! ऐसे बच्चों की भीड़ भी कुछ ज्यादा थी, तभी तो दुकानदार झुँझलाकर चीजों के दाम उन्हें कुछ ज्यादा ही बता देता था। एक-दो बार तो वह झुँझला भी गया कि 'लेना-वेना कुछ है नहीं, बस दाम पूछ रहे हैं। जाओ, घर से ढेर से पैसे ले आओ, तब खरीदना पटाखे। हुँह! आ जाते हैं टाइम बरबाद करने।' दुकानदार की यह बात मुट्ठी में अपनी इच्छाओं को बंद किए बच्चों को चुभी तो जरूर होगी, लेकिन उनकी मजबूरी ने इस चुभन को बरदाश्त कर लेने के सिवा कुछ न कहने दिया। वे बस चुप होकर दुकान में रखे तरह-तरह के पटाखों को देखकर ऐसा भाव प्रकट करते रहे जैसे कुछ नहीं हुआ है। बच्चों की इस भीड़ में कुछ ऐसे बच्चे भी थे जो गरीब थे, मैले-कुचैले कपड़े पहने थे और उनके हाथ में एक रुपया तक न था। दुकानदार बीच-बीच में ऐसे बच्चों को भी फटकारकर भगा रहा था। पर वे तो बस 'विंडो शॉपिंग' करने आए थे सो हर दुकान पर खड़े होकर एक-से-एक अच्छे पटाखों को देख रहे थे और ग्राहक से उसका गुणगान और खास बातें बतानेवाले दुकानदार को सुनकर खुश हो रहे थे। कम-से-कम इस जानकारी को लेकर वे अपने दोस्तों के बीच बैठकर इस चर्चा का आनंद तो ले ही सकेंगे कि इस बार दीवाली पर किस-किस तरह के कमालवाले पटाखे आए हैं।



पटाखे की दुकान का यह सारा दृश्य देखने के लिए तन्मय कब मेरे पास से चला गया, यह अहसास मुझे तब हुआ जब मैं सामान की लिस्ट देकर वहाँ रखे एक स्टूल पर बैठ गया। तन्मय का खयाल आते ही मैंने घबराकर इधर-उधर नजर घुमाई तो देखा कि वह सामने की ही दुकान पर खड़ा है और पटाखे देख रहा है। मुझे तसल्ली हुई कि वह कहीं दूर नहीं गया है। वह जिस तन्मयता से दुकान का दृश्य देख रहा था उसे मैंने भंग करना उचित नहीं समझा। बाजार में शोर भी बहुत था। उधर मेरा सामान पैक हो रहा था, सो मेरा उस ओर

कुछ ज्यादा ही ध्यान था। फिर दस-ग्यारह साल का तन्मय समझदार बच्चा जो है।

अचानक तन्मय ने जोर से मुझे पुकारा, ''दादाजी!''

और मैंने मुड़कर देखा तो हैरान रह गया। तन्मय ने दुकानदार का हाथ पकड़ रखा था और दुकानदार घबराकर हाथ छुड़ाना चाहता था। मैं लपककर वहाँ पहुँचा तो तन्मय गुस्से से चीखा, ''ये झूठा दुकानदार है! इसने गरीब बच्चों को चोर कहकर उन्हें थप्पड़ मारे हैं। गरीब बच्चों पर हाथ उठाने का इसे क्या हक है? मैं इसे थाने ले जाऊँगा और इसके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाऊँगा।''

उधर दुकानदार ने मुझे देखा तो और घबरा गया। वह जानता है कि इस कॉलोनी में मेरी कितनी इज्जत है और फिर मैं ठहरा पुराना अफसर।

''लेकिन इसने उन बच्चों को क्यों मारा?'' मैंने पूछा और देखा कि चार गरीब बच्चे एक ओर खड़े रो रहे हैं। अब तो भीड़ भी तमाशा देखने लगी थी।

तन्मय ने कहा, ''दादा जी! ये गरीब बच्चे अगर पटाखे नहीं खरीद सकते तो क्या इन्हें देख भी नहीं सकते? बस इनका यही जुर्म है। इस दुकानदार ने बस आव देखा न ताव, दुकान से बड़बड़ाता हुआ उतरा कि 'ये साले चोर, बार-बार दुकान पर आकर खड़े हो जाते हैं और कुछ चुराने का मौका देख रहे हैं।' और तड़ातड़ इन बच्चों पर थप्पड़ बरसाने लगा। मैंने देखा तो दौड़कर इसका हाथ पकड़ लिया और कहा, 'कौन कहता है, ये चोर हैं? कहाँ हैं इनके पास चोरी के पटाखे? खबरदार, अगर इन्हें अब एक थप्पड़ भी मारा।' बताइए दादाजी! क्या पटाखे की दुकान पर खड़े होकर उन्हें देखना जुर्म है? और अगर ऐसा है तो मैं भी तो पटाखे देख ही रहा था। लो, मुझे भी मारो—मुझे भी चोर कहो।''

मेरे प्रश्न के उत्तर में तन्मय ने कहा, ''दादा जी! ये गरीब बच्चे अगर पटाखे नहीं खरीद सकते तो क्या इन्हें देख भी नहीं सकते? बस इनका यही जुर्म है। इस दुकानदार ने बस आव देखा न ताव, दुकान से बड़बड़ाता हुआ उतरा कि 'ये साले चोर, बार-बार दुकान पर आकर खड़े हो जाते हैं और कुछ चुराने का मौका देख रहे हैं।' और तड़ातड़ इन बच्चों पर थप्पड़ बरसाने लगा। मैंने देखा तो दौड़कर इसका हाथ पकड़ लिया और कहा, 'कौन कहता है, ये चोर हैं? कहाँ हैं इनके पास चोरी के पटाखे? खबरदार, अगर इन्हें अब एक थप्पड़ भी मारा।' बताइए दादाजी! क्या पटाखे की दुकान पर खड़े होकर उन्हें देखना जुर्म है? और अगर ऐसा है तो मैं भी तो पटाखे देख ही रहा था। लो, मुझे भी मारो—मुझे भी चोर कहो।''

तन्मय जिस साहस और सच्चाई के साथ अपनी बात कह रहा था, उसे सुनने के लिए वहाँ इकट्ठा हुई भीड़ जैसे मौन हो गई थी। तन्मय के तर्क के सामने दुकानदार भी शर्मिंदा हो रहा था। शायद उसे यही ठीक लगा और उसने तत्काल कहा, ''अच्छा भाई! मुझसे भूल हुई। मैं माफी माँगता हूँ।'' दुकानदार ने उनकी तरफ जुड़े हुए हाथ उठाकर कहा, ''आओ! तुम लोगों को मैं कुछ पटाखे-फुलझड़ी मुफ्त देता हूँ।'' और उसने चारों बच्चों को एक-एक पैकेट फुलझड़ी और थोड़े-थोड़े पटाखे दिए।

भीड़ में किसी ने कहा, ''देखा राजू! उस लड़के ने किस सच्चाई और साहस से इस दुकानदार को सबक सिखा दिया।'' और कोई कह रहा था, ''बनिया बड़ा चालाक है। सोचा, माफी माँग लो और दस-पाँच रुपए के पटाखे देकर इस मुसीबत से छुटकारा पा लो, वरना उलझ गए तो त्योहार की सारी दुकानदारी धरी रह जाएगी।''

मैं तन्मय को लेकर अपना सामान लेने पीछेवाली दुकान पर आया। सारा सामान चेक करके रखवाया और चलने लगा तो तन्मय उन चारों लड़कों से बातें कर रहा था। मुझे नजदीक आते देखकर वे सब तन्मय के पास से मुसकराते हुए चले गए। मैं तन्मय के साथ घर लौट आया।

शाम को लगभग चार बजे मैं बैठा चाय पी रहा था कि तन्मय मेरे पास आया। बोला, ''दादाजी! एक सौ पचास रुपयों में कितने रुपए मिलाने चाहिए कि वे दो सौ हो जाएँ?''

मैंने बनावटी गुस्से से कहा, ''तन्मय! तुम ये सवाल मुझसे पूछ रहे हो?''

''हाँ! क्योंकि इसका सही उत्तर आपको मालूम है, मुझे नहीं।''

''क्या मतलब?'' मैंने आश्चर्य से कहा।

''वही जो मैंने कहा। बताइए, बताइए, मेरे सवाल का जवाब जल्दी बताइए।'' तन्मय मेरी परीक्षा ले रहा था।

''अरे भाई! उसमें पचास रुपए मिलाने होंगे।'' मैंने कहा।

तन्मय ने मुझे डेढ़ सौ रुपए देते हुए कहा, ''तो इन रुपयों में पचास रुपए मिलाकर इन्हें दो सौ रुपए बनाने का जादू आप ही दिखाइए।''

''लेकिन क्यों?''

''दादाजी! इस समय कोई सवाल नहीं। केवल उत्तर दीजिए।''

और मैंने तन्मय को पचास रुपए दे दिए। तन्मय रुपए लेकर चला गया। उत्सुकतावश मैं भी पीछे-पीछे दबे पाँव गया। फिर दरवाजे पर ठिठक गया। मैंने छिपकर देखा—तन्मय बाहर गया। वे चारों गरीब बच्चे गेट के बाहर खड़े थे। तन्मय ने उन्हें पचास-पचास रुपए दिए। एक बच्चा जोर से बोला, ''अरे तनी भैया! पचास रुपए में तो ढेर सारे पटाखे आएँगे।''

''शी!'' तन्मय ने उसे चुप कराया और उन सबको इशारे से जाने के लिए कहा।

तन्मय लौटा तो मैं जल्दी से अपने कमरे की तरफ लपका। तभी मैंने देखा कि एक कोने में तन्मय का मिट्टी का गुल्लक टूटा पड़ा है। तन्मय मेरे कमरे में आया। बोला, ''हाँ, दादाजी! अब पूछिए कि मैंने पचास रुपए क्यों माँगे थे? आपके सवाल का जवाब···''

मैंने तन्मय के मुँह पर हाथ रखकर कहा, ''सवाल का जवाब मुझे मिल गया है।'' और मैंने तन्मय को सीने से लगा लिया।

सा अ

दाह

• हिमांशु जोशी

'तिनका-तिनका जोड़कर कभी घोंसला बनता था, पर बेटे आज तो घोंसलों को मिलाकर भी तिनका नहीं बन पाता। यह कैसा अंधेर है?' वे आसमान की ओर देखने लगते हैं, जैसे शून्य में कुछ टटोल रहे हों।

मैं देख रहा हूँ, इन कुछ ही वर्षों में उनका दमकता चेहरा अब कैसा हो गया है, बुझा-बुझा-सा। आड़ी-तिरछी, गहरी रेखाओं का मकड़जाल। बुझी हुई आँखों के नीचे काली-काली झाँइयाँ। बोलते समय गले की नसों के तार खिंच आते हैं। तब अनायास उनकी बढ़ी उम्र का अहसास हो जाता है।

रिश्ते में वे पिताजी के भाई लगते हैं, चचेरे बड़े भाई—यानी मेरे ताऊजी; परंतु पिता से भी बढ़कर स्नेह दिया उन्होंने।

'हमारा अखिल गाँव में नहीं रहेगा, जशोधर! इसे लोहाघाट, खेतीखान के इसकूल में भेजो। वहीं रहेगा। दो-चार आँखर सीखकर आदमी बनेगा! हम तो ऐसे ही रह गए यार निरच्छर, भुस्स! पर यह तो कुछ बने! अरे, खर्चे-पानी से मत डर। जो भी कमी-बेसी रहेगी, मैं पूरी करूँगा।'

सच कहूँ तो उन्हींकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से मैं दो शब्द सीख पाया, नहीं तो गाँव में ही पड़ा-पड़ा कहीं ढोर-डंगर चरा रहा होता। हद-से-हद क्या बनता? प्राइमरी पाठशाला का शिक्षक, जमीन की पैमाइश करनेवाला अमीन या तहसील के आगे दरी बिछाकर बैठनेवाला अर्जीनिमेस या जंगल के किसी ठेकेदार माफिया का मुंशी। कान में कलम खोंसे, समय से पहले ही, बुढ़ा गया होता।

'तूने अच्छा किया रे, जो यहाँ से बाहर चला गया···' वे एकाएक इस तरह घूरकर देखते हैं कि भय लगने लगता है, 'नहीं तो सबकी तरह तू भी आत्महत्या करता या लुटेरा बन जाता। अपना ही घर लूटकर खाक कर डालता। अरे, कभी देखे हैं, तुमने लुटेरे!' वे इस तरह कहते हैं कि मैं विस्मित सा देखता रह जाता हूँ।

'नशे में झूमते हुए रात में आते हैं—आधी रात में—झुंड की शक्ल में जलती मशालें लिये और गाँव-के-गाँव छिन भर में भसम कर डालते हैं। मैं रात भर सोता नहीं। बाहर आँगन की मेड़ पर बैठा ऊँघता हुआ जागता रहता हूँ, तभी तो यह गाँव अभी तक बचा है। नहीं तो यहाँ आने पर तुझे जले खंडहरों के अलावा और क्या मिलता?'

ताऊजी की धुँधली आँखों में एकाएक लाल डोरे झलक आते हैं। माथे पर चढ़ी आँखें देखकर दहशत सी होती है। विश्वास नहीं होता, अभी कुछ क्षण पहले शांत भाव से बातें करनेवाले व्यक्ति यही हैं।



जाने-माने साहित्यकार। अंततः, रथचक्र, मनुष्य-चिह्न, जलते हुए डैने, हिमांशु जोशी की इक्यावन कहानियाँ, तपस्या तथा अन्य कहानियाँ (कहानी-संग्रह); अरण्य, महासागर, छाया मत छूना मन, कगार की आग, तुम्हारे लिए, समय साक्षी है, सुराज (उपन्यास); अग्निसंभव (कविता-संग्रह) एवं यात्रा-वृत्तांत। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कुछ रचनाएँ अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनूदित। कुछ कृतियाँ रंगमंच एवं चित्रपट पर भी प्रदर्शित। स्मृतिशेष : २३ नवंबर, २०१८।

'मैंने कई लड़ाइयाँ लड़ी हैं रे! क्या तू भी कभी फौज में रहा?' वे एकाएक उचककर मुझसे पूछते हैं।

मैं ठगा-ठगा सा देखता रहता हूँ। कुछ पल का सन्नाटा तोड़ते हुए मात्र सिर हिलाकर कहता हूँ, 'नहीं!'

'तो तू क्या समझ सकता है मौत को? नहीं, तू नहीं जानता, जान भी नहीं सकता! कभी मौत देखी है तूने?'

'···।'

'मौत के चार नहीं, पाँच पाँव होते हैं, पूरे पाँच—छोटे-छोटे! काली जंगली बिल्ली के जैसे। वैसी ही झबरीली पूँछ। आँखें काली कुतिया जैसी गोल! चमकीली! पंजे कभी देखे हैं तूने, उसके पैने पंजे?'

मैं मात्र सिर हिलाता हूँ—'नहीं!'

वे बच्चों की तरह चहककर कहते हैं, 'इतने लंबे-लंबे नुकीले पंजे! बालिश्त भर से भी बड़े! पिछली बार, दबे पाँव, पीछे से जाकर मैंने एक खूनी बिल्ली धर पकड़ी, तो उसने झटपट बघनखे जैसे पैने नाखून बाहर निकाल लिये! यद्यपि मैंने पूरी ताकत से उसे दबोचा, फिर भी मुँहजरी फिसलकर निकल भागी! पर हाँ, तभी एक नाखून मैंने अवश्य तोड़ लिया था, जल्दी में। वह आले में रखा है। देखना चाहेगा तू? देखेगा मौत के पंजे?' वे अट्टहास कर हँस पड़ते हैं, 'अरे, तू तो मौत का नाम सुनकर ही डर गया! कैसा पढ़ा-लिखा है?'

कुछ रुककर, किंचित् शांत स्वर में कहते हैं, 'कश्मीर की लड़ाई में भी एक बार ऐसी ही बघनखेवाली काली बिल्लियाँ दीखी थीं, बर्फीली

खाइयों में। तुम्हारे शहरों में तो बिल्लियाँ नहीं होती न! हाँ, सुना है, 'जोगी बाघ' होते हैं। बच्चों को उठाकर ले जाते हैं। पर, यहाँ तो खूनी बिल्लियाँ, रात घिरते ही गाँव की अँधेरी गलियों में झुंड-की-झुंड घूमने लगती हैं। हमारा उर्बादत्त जब मरा था, उस रात भी ऐसी ही खूँखार बिल्लियाँ गाँववालों को रोती हुई घूमती दीखी थीं। लोग कहते हैं—मसान तक वे उर्बादत्त के शव के साथ-साथ चली थीं। उसकी चिता की आग के चारों ओर शैतान घेरा बनाए बैठी रहीं, जब तक कि आग पूरी तरह ठंडी नहीं पड़ गई।'

झुकी कमर, घुटा हुआ सिर, सफेद बालों के कहीं-कहीं खूँटे! फटे हुए कपड़े तार-तार।

इतना घोर वज्रपात!

जर्जर बूढ़ी देह काँपती हुई।

उनकी दशा देखी नहीं जाती। एक-एक क्षण भारी हो आता है।

कैसे इस यंत्रणा से त्राण प्राप्त करूँ, सोच ही रहा था कि तभी तल्ले घर से नंदकिशोर की आवाज आती है, 'कका, चा ठंडी हो रही है। धूनाघाट से गाड़ी के आने का वक्त भी हो गया है! इजा सोर जाने से पहले आपसे भेंट करने के लिए रुकी है।'

मैं घुटन भरी अँधेरी सुरंग से निकलकर जैसे बाहर आता हूँ, तो साँस में साँस आती है!

ताऊजी का यह कैसा रूप हो गया?

'हाँ, जवान इकलौते पोते का सदमा सह नहीं पाए बेचारे! दिमाग फिर गया है। पूरी तरह पगला गए हैं। कभी-कभी तो शरीर के कपड़े उतारकर फेंक डालते हैं। परसों रात चीड़ का जलता छिलका हाथ में लिये, पंजों के बल दुबक-दुबककर झाड़ियों में न जाने क्या खोज रहे थे?' नरबल्लभ प्रधान कहते हैं, 'हे परमेसर, न देना ऐसा दुःख किसीको! तिनके जैसा एक सहारा था, वह भी भरपूर जवानी में धोखा देकर चला गया। यह दुर्दिन देखने से तो अच्छा था, बुढ़ऊ की पहले ही आँखें मुँद जातीं! पता नहीं, किस पाप के पहाड़ के ढोने के लिए इस चौथी अवस्था में जिंदा हैं?'

□

शाम को मल्ले घर गंगानंद'का के यहाँ जाता हूँ तो अनेक बुजुर्ग आसपास के घरों से घिर आते हैं, उनके बरामदे में घेरा बनाकर बैठे।

'क्या कहें खिला, बेचारा नर'दा तो तराई की सड़ी गरमी में मिट्टी-पसीने में घुल-घुलकर मर गया अभागा! घरवाली छिछली चट्टान से गिरकर पहले ही चल बसी थी। अब जैसे-तैसे बुढ़ऊ ने, खा, न खाकर झूस जैसे तिनाड़ को पाला-पोसा, मिडिल तक पढ़ाया, दो आँखवाला बनाया; पर लकड़ी के चोर ठेकेदारों की बुरी सोहबत में पड़कर पूरी तरह बिगड़ गया, यार! दारू की बुरी लत ने कहीं का भी नहीं रख छोड़ा। अंत में घर के भांडे-बरतन भी नहीं रहने दिए शैतान ने—जो हाथ आया, एक-एक कर बेचता चला गया। सबको भिखनंगा कर पापी खुद ही चल बसा! बुढ़ऊ की गत तुम देख ही रहे हो···।'

इन कुछ ही वर्षों में कितना कुछ नहीं बदल गया! सामने के जिन घने जंगलों में कभी हम बाघ-भालू के भय से इक्के-दुक्के या अकेले जाने से भी घबराते थे, अब वहाँ एक भी खूँटा नहीं दीखता कहीं। कहाँ लोप हो गए वे आकाश को छूते बाँज, देवदार के हरे-भरे वृक्ष! केवल नंगे डाँडे रह गए हैं, सिर मुड़ाए। नीचे छलछलाती नदी में स्कूल से भागकर दोपहर में मछलियाँ पकड़ने जाते थे, पर अब जल की वे धाराएँ रूखे खेत में क्यों बदल गई हैं? चारों ओर की हरियाली कहाँ विरा गई है?

हाँ, मोटर मार्ग से लगे कस्बों में रौनक अवश्य अधिक दीखती है। सामान से दुकानें अटी पड़ी हैं। पर समृद्धि के साथ-साथ यह क्या है? यह कैसी मृत्यु-छाया है? मसान की-सी असह्य उदासी। जो प्रायः हर रोज किसी-न-किसीको लीलती चली जा रही है—महामारी की तरह!

'कई अच्छे खाते-पीते खुशहाल घर उजड़ गए हैं! लोघाट, चंपावत से झोलों में भर-भरकर 'पोच' रोज रात को गाँव-घरों में बिकते हैं। एक-एक थैली के पीछे तीन-तीन रुपए नकद! यह भी अब कुछ लोगों का खाने-कमाने का एक धंधा हो गया है। हमारा बिशनदत्त आजकल इसीमें लगा है।' बिशनदत्त के ताऊ धनानंद उदास स्वर में मेरी ओर देखते हुए कहते हैं, 'क्या कहें, खिला, भले-बुरे का भेद ही खतम हो गया है।'

घर में मायूसी है।



कोई पुरानी सी टूटी चिमनीवाली अंधी लालटेन जलाकर लाता है और सबके बीच में रख देता है।

'गाँव में सूतक है, तू भी बाल उतार ले, खिला! परदेश में रहता है तो क्या हुआ। अपनी बिरादरी के नेम-नियम तो यार, मानने ही होते हैं।' उस्तरा लिये भोल्य'का आते हैं, 'चल, बाहर! भीड़े में बैठ। हमारा हँसिया तो अभी आया नहीं। मैं भी अब आँख कम देखता हूँ। फिर भी चल, कोशिश करके देखता हूँ।'

तभी भीतर की अँधियारी कोठरी से खाँसती हुई वृद्धा का कुछ तेज स्वर टकराता है, 'अरे भोलिया, तेरी मति मारी गई क्या? दस-पंद्रह साल बाद गाँव आया है बिचारा! आते ही मुंडन करावेगा? अरे, बाहर रहनेवालों के लिए क्या नातक; क्या सूतक?'

'हाँ रे, ठीक ही तो कह रही है कानि आमा! यहाँ तो आए दिन किसी-न-किसीकी मौत होती रहती है। इस बिचारे का सिर कब तक घुटवाओगे? नौकरीवाला है। दस जगह जानेवाला ठैरा।' पीछे अँधियारे में बैठे कोई मेहमान-से लगनेवाले अपरिचित सज्जन कह उठते हैं।

□

चार-छह दिन में ही मन उचट आता है। कहाँ आ गया हूँ मैं? जहाँ बीड़ी पीना, पान-तंबाकू खाना तक पाप समझा जाता था कभी, वहाँ बाप-बेटे दोनों कच्ची पीकर अगल-बगल लुढ़के रहते हैं। जो गाँव मेरा अपना था, वह ऐसा तो नहीं था! लोग कहते हैं, पहाड़ों में तरक्की हो गई। घर-घर तक सड़कें बन गईं। बड़ी खुशहाली आ गई। पर इन सड़कों से होकर ऐसी विनाशकारी महामारियाँ भी आएँगी, ऐसा कब सोचा था?

□

इस घुटन से मुक्त होना चाहता हूँ। कुछ ही दिनों में कितना कुछ नहीं देख लिया।

सुबह-सुबह, मोटर के आने से पहले अंतिम बार ताऊजी से मिलने जाता हूँ। पता नहीं, फिर कब आना हो इधर!

देखता हूँ गोबर-मिट्टी से लिपे बरामदे में फटा-पुराना, वही नाम मात्र का चीथड़ा कंधे पर डाले बैठे हैं।

मैं कुछ शब्द कहता हूँ तो लगता है, उनपर जैसे कोई प्रतिक्रिया

नहीं। वे वैसे ही सामने देखते रहते हैं।

दो-तीन लोग मेरे साथ हैं।

चलते समय मैं पाँव छूता हूँ, तब भी वे वैसे ही मूर्तिवत दीखते हैं।

मोटर की घरघराहट शुरू हो गई है।

मैं मुड़कर चलने लगता हूँ। सीढ़ियाँ उतरता हूँ। आँगन पार करता हुआ जल्दी-जल्दी आगे बढ़ता हूँ, तो देखता हूँ—ताऊजी कंबल घिसटते हुए लड़खड़ाते, पीछे-पीछे आ रहे हैं।

मैं मुड़ता हूँ, अचरज से। उनसे कुछ कहूँ इससे पहले वे गंभीर भाव से, निर्निमेष देखते हैं। अपने जर्जर हाथों में मेरे दोनों हाथ बड़े स्नेह से थामते हैं। चुपके से पास ही कुछ एकांत में ले जाते हैं।

'खिला, तेरे पास कुछ है?'

'क्या ताऊजी?'

'कुछ ढेबुए रे!'

'कित्ते?'

'दे दे, तीस-चालीस।'

मैं बटुवे में से कुछ नोट निकालता हूँ। उनकी ओर बढ़ाते हुए पूछता हूँ, 'कुछ और रख लीजिए न! इतने से क्या बनेगा?'

अपने पोले मुँह से वे यों ही फीकी दर्द भरी हँसी में हँस पड़ते हैं, 'इत्ते ही बहुत हैं रे! कफन का इंतजाम तो हो ही जाएगा न! मरते समय औरों का अहसान लेने से तो अच्छा है, अपनों का ही कफन पड़े!' कहते-कहते वे अटक से आते हैं।

पगलाए-से ताऊजी यह क्या कह रहे हैं, समझ में नहीं आता।

चलते-चलते एक ही प्रश्न बार-बार मथता है। मथता चला जाता है—

उनके किस पुण्य की सजा है यह, जिसे इस उमर में, इस तरह से झेलने के लिए अभिशप्त हैं वे? आखिर क्यों?

सा
अ

तू आपकर्मी या बापकर्मी?

● दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

एक राजा की दो पुत्रियाँ थीं। बड़ी का नाम था मैनासुंदरी और छोटी का नाम था सुरसुंदरी। दोनों ही सुंदर और सुशील थीं। राजा ने उनको गुरु के पास अध्ययन करने को भेजा। जब उनका अध्ययन समाप्त हो गया तो गुरु ने आकर कहा, "आपकी पुत्रियों का अध्ययन पूर्ण हो गया है, आप उनकी परीक्षा लें।" राजा ने कहा, "आप उनको राजसभा में लेकर आएँ, हम वहीं उनकी परीक्षा लेंगे।"

वे दोनों राजकुमारियाँ सभा में आईं। राजा ने पहले सुरसुंदरी से कई प्रश्न पूछे। उसने सबके सही उत्तर दिए। फिर पूछा, "तुम आपकर्मी हो या बापकर्मी?" उसने उत्तर दिया, "बापकर्मी।" राजा बड़ा खुश हुआ। फिर उसने मैनासुंदरी से भी कई प्रश्न पूछे। उसने भी सबके सही उत्तर दिए। अंत में राजा ने उससे भी पूछा, "तुम आपकर्मी हो या बापकर्मी?" उसने कहा, "आपकर्मी। आपकर्मी का अर्थ है—मेरे जो कर्म हैं, वे मेरे ही पुरुषार्थ से प्राप्त हुए हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का स्वयं कर्ता है।"

राजा उससे बहुत नाराज हुआ। उसने कहा कि मेरे कारण ही तुमको सभी सुख एवं सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं और तुम कहती हो कि मैं आपकर्मी हूँ! मैं भी देखता हूँ कि तुम कैसी आपकर्मी हो? उसने गुस्से में मंत्री से कहा, "इस लड़की को कल सुबह शहर के बाहर ले जाओ और जो भी व्यक्ति सामने आए, चाहे वह अंधा, गूँगा, लँगड़ा कैसा भी हो, उसके साथ इसकी शादी कर दो।" मंत्री दुःखी होकर दूसरे दिन सुबह मैनासुंदरी को एक रथ में बिठाकर ले गया। उसको वहाँ कुछ व्यक्तियों की टोली मिली, जिसमें दो व्यक्ति घोड़े पर बैठे थे, बाकी पैदल चल रहे थे। उसने उनको रोका और पूछा, "आप लोग कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं?" उन्होने कहा, "हम लोग कोढ़ी हैं, आप हमें छूए नहीं। घोड़े पर हमारे राजा और उनकी माँ बैठे हुए हैं।" मंत्री ने कहा, "हमारे साथ हमारी राजकुमारी है, उसकी शादी हम तुम्हारे राजा से करेंगे, ऐसी हमारे राजा की आज्ञा है।" उन्होंने मना किया और कहा कि तुम्हारी राजकुमारी को भी कोढ़ लग जाएगा, क्योंकि यह छूत की बीमारी है। पर मंत्री नहीं माना और उसने शहर में लाकर उसकी शादी कर दी।

कोढ़ियों के राजा का नाम श्रीपाल था और वह पड़ोस के राजा का पुत्र था। उसके पिता के राज्य पर अचानक एक अन्य राजा ने आक्रमण किया तथा उसे मार दिया। श्रीपाल अपनी माँ के साथ किसी तरह बचकर निकल गया। उसको जंगल में कोढ़ियों की टोली मिली और वह उनके साथ रहने लगा। एक दिन उद्यान में एक तपस्वी मुनि का आगमन हुआ। श्रीपाल और मैनासुंदरी उनके दर्शन को गए और उनको अपनी व्यथा बताई। मुनि ने उनको नवपद की आराधना करने को कहा। उन्होंने काँसी की थाली में सिद्धचक्र महामंत्र की विधि बताई और दोनों ने श्रद्धा पूर्वक नवपद की आराधना प्रारंभ कर दी। नौवें दिन सिद्धचक्र का प्रक्षेपित जल दोनों ने अपने ऊपर तथा अपनी माँ, अपने अनुयायियों पर छिड़का। सबका कोढ़ दूर हो गया।

श्रीपाल एक प्रतापी राजकुमार थे। उन्होंने अपने परिश्रम से कई देशों के साथ व्यापार किया तथा धन, संपत्ति एवं समृद्धि प्राप्त की। मैनासुंदरी ने भी शील का उत्कृष्ट पालन किया। आज भी उनको लाखों लोग स्मरण करते हैं।

सा
अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)



मध्यप्रदेश शासन

मध्यप्रदेश सरकार की पहल

नये हितग्राहियों को मिलेगी खाद्यान्न सुरक्षा



नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री



शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

25 श्रेणियों के सभी पात्र परिवारों को जारी होगी राशन पात्रता पर्ची, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत जुड़ेंगे

37 लाख नये हितग्राही









सितम्बर माह से आरंभ होगा खाद्यान्न वितरण

प्रत्येक सदस्य को मिलेगा
एक रुपये प्रति किलो की दर से 5 किलो नियमित राशन एवं प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के अंतर्गत निर्धारित मात्रा में निःशुल्क खाद्यान्न।



- राशन की दुकान पर जाकर अथवा ''एम-राशन मित्र'' एप पर आधार नम्बर दर्ज करने की सुविधा।
- परिवार के सभी सदस्यों को पूरे देश में कहीं भी राशन प्राप्त करने की पात्रता।

सबके लिए खाद्यान्न सुरक्षा
मध्यप्रदेश सरकार की प्राथमिकता

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

सारे जहाँ से अच्छा
हिन्दुस्तान हमारा

74वां स्वतंत्रता दिवस

हिमाचलवासियों को
स्वतंत्रता दिवस के पावन अवसर पर

हार्दिक शुभकामनाएं

असंख्य शहीदों के सर्वोच्च बलिदान को
हिमाचलवासियों का नमन!
आईए हम स्वाधीनता सेनानियों के अथक प्रयासों से
हासिल आज़ादी का मूल्य समझें
देश की आन-बान और शान बनाएं रखें

- जय राम ठाकुर
मुख्यमंत्री, हिमाचल प्रदेश



सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हि.प्र. द्वारा जारी

स्वयं पढ़ें, औरों को भी पढ़ाएँ।



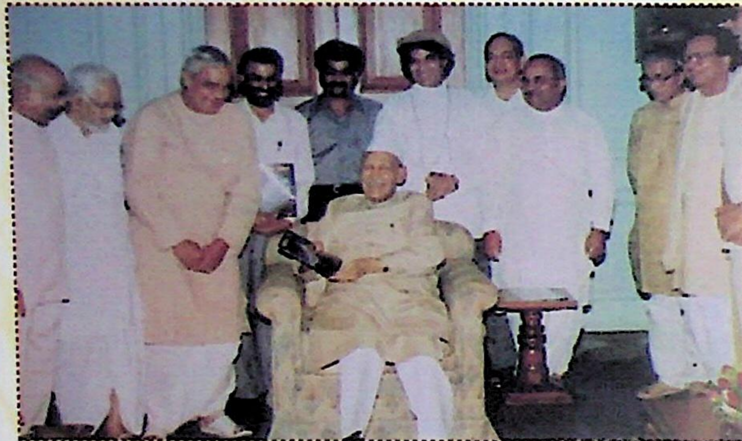
साहित्य अमृत

(मासिक)

साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक

हिंदी की सबसे प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका

रजत जयंती : कुछ स्मृतियाँ



प्रवेशांक के लोकार्पण का क्षण



शतांक के लोकार्पण का क्षण

विभिन्न आयोजनों की स्मृतियाँ

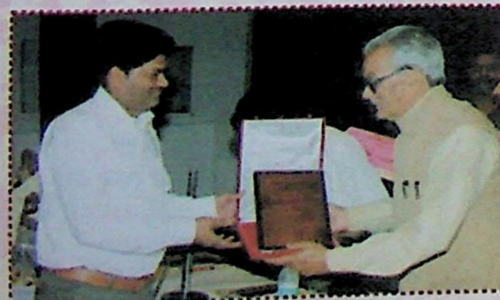












4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2 ❖ ☎ 011-23289777

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com • वेबसाइट : www.sahityaamrit.in

दो कविताएँ

जगदीश गुप्त



प्रसिद्ध शिक्षाविद् तथा हिंदी के आधुनिक कवि थे। हिंदी की नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त। लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। स्मृतिशेष : २६ मई, २००१।

देश भाव

मेरी बेटी की तरह
इस कमनीय देश में
ऊपर से नीचे तक
जैसे देवी निकल आई हो।
फूट-फूटकर
रिसने लगे हैं
बड़े-बड़े छाले
चित्रकूट यात्रा में
भरत के पाँवों की
याद दिलाते हैं झलके।
किंतु भरत-मिलाप
नहीं हो रहा कहीं भी।
अनीति-दुनीति से
टूट रहा है मेरा यह देश!
देवी का प्रकोप है
जगह-जगह दंगों के रूप में
फूट रहा है लावा
प्रज्वलित ज्वालामुखी
बन रही है धरती यह।
हाथ में नीम का बौर लिये
माली की तरह कौन बिदा दे
रूठी हुई देवी को!
बेटी को तो बचा नहीं सका,
पर इस देश को तो बचाना ही होगा
मेरे भीतर के कवि को।

गांधी के देश में, नया रामराज्य

राम ने
सीता को निष्कासन दिया
तो उनके मन में पीड़ा भी हुई,

पर इस शासन ने
अंग्रेजी को स्थायी बनाकर
हिंदी के साथ
जैसा सलूक किया
उसमें किसीको, कहीं भी
दर्द का अहसास नहीं हुआ।

राजसूय यज्ञ के लिए
राम ने सोने की सीता बना ली
तो उसे सीता नहीं कहा गया।
पर इस शासन ने उर्दू को
जो दर्जा दिया
वह तो सौतिया डाह से ही संभव था।
बहन भी सौत बने
तो उसका स्वागत नहीं होता।

लगता है, आज की सरकार
छिपे-छिपे
अपने मन में
राजमहल बनाने लगी है
जहाँ हजार-हजार रानियाँ
राजा की शान समझी जाती थीं;
दो राजभाषाओं की तो बात ही क्या
वे हजार भी हो सकती हैं।
लोकतंत्र है, लोकतंत्र!
इसमें हर एक को हक है
अपनी-अपनी भाषा को
राजभाषा कहने का,
फरियादी होकर
या संघर्ष से
उसे मनवाने का!

अच्छा ही हुआ कि
रामराज्य का नारा उछालनेवाला
वह बूढ़ा, नहीं रहा।
'गांधी' शब्द का ऐसा दुरुपयोग देखता
तो इस बार
किसी गोली से नहीं
अपनी शर्म से मर जाता।
लेकिन आज
'गांधी' शब्द,
बेशर्मी का पर्याय हो गया है!
वह भी, इस अद्वैतवादी देश में—
जहाँ गांधी जन्मा था।

गांधी-युग में भी
दो लिपियोंवाला समाधान
इस देश को खंडित होने से बचा नहीं सका।
प्रेमचंद ने इसीलिए,
हिंदी-उर्दू दोनों के लिए
एक ही लिपि की वकालत की थी।
आश्चर्य है, वाममार्गी ही उसे भूल गए!
और उन्हें, बासी भात में
खुदा का साझा भी याद नहीं रहा।

आज दो राजभाषाएँ हुईं
तो कल दो झंडे होंगे
(जैसा हो चुका है)
और आगे दो दिल्लियाँ भी।
क्योंकि कुत्सित राजनीति ने
उर्दू को अलगाव की भाषा बना दिया है

भला हो महाभारत सीरियल का
उर्दूवाले भी अब
हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ का नाम
बखूबी जान गए हैं।
राष्ट्रकवि ने ठीक ही तो कहा था—
'भारत न दुर्दिन देखता, होता महाभारत न जो।'

सा
अ

जातीय स्मृति का आलोक–'रामचरितमानस'

• कृष्णदत्त पालीवाल

आज के युग में तुलसीदास जैसे रचनाकार के रचनाकर्म का क्या महत्त्व है? यह प्रश्न केवल हमारी संस्कृति की मौजूदा हालत से ही संबंध नहीं रखता बल्कि गहरे स्तर पर हमें विचलित भी करता है। स्थिति यह हो गई है कि रचनाकर्म मात्र की उपयोगिता पर हमें सशंकित होना पड़ता है। शायद इस समाज में ऐसी भयावह स्थिति पहले कभी नहीं थो कि रचनाकर्म इतनी संदिग्ध स्थिति में हो। हर चीज की लय या धुन देखते-देखते टूट गई है। आखिर समाज के जिस विशाल जनसमुदाय को पीत पत्रकारिता, सस्ती कामुकता को बढ़ावा देनेवाली पत्रिकाओं, सनसनीखेज विज्ञापनों, दूरदर्शन के घटिया सीरियलों ने अपने जाल में जकड़ रखा है, उसके पास अवकाश ही कहाँ रह गया कि उसे सोचने-पढ़ने का एकांत मिल सके, एक सामान्य मनुष्य को एक कविता के रचना-संसार में प्रवेश करने का आमंत्रण मिल सके। रचनाकर्म के प्रति निरंतर बढ़ती हुई उपेक्षा क्या यह ध्वनित नहीं करती है कि हम कहीं-न-कहीं बाहरी बंजरता का शिकार होते जा रहे हैं? हमारे भीतर एक मरुस्थल जन्म ले रहा है, जो सृजनात्मकता का अवरोधक है।

यह सच है कि हमारी भाषा में सशक्त रचनाकर्म पहले भी किया जाता था और आज भी सशक्त रचनाएँ लिखी जा रही हैं। आज भी हम लिखित शब्दों को महत्त्व देना नहीं भूले हैं और स्मृति में झटका खाती पुरानी-नई रचनाओं को जब-तब याद करते ही हैं। लेकिन कहीं यह शंका बराबर भीतर से उठती रहती है कि समाज में अराजक राजनीति के पागलपन ने 'रचनात्मक शब्द' की या शब्द की ही गरिमा पर आघात किया है। 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'कामायनी' जैसी रचनाओं की भूमिका कहीं बहुत संदिग्ध, अनिश्चित और डाँवाँडोल स्थिति में पड़ी दिखाई देती है। कभी-कभार कोई-कोई व्यक्ति यह पूछ बैठता है कि 'रामचरितमानस' हम क्यों पढ़ें? इसके पढ़ने का लाभ क्या है? क्या यह हमें भक्ति ज्ञान के चक्कर में डालकर कुंद नहीं बनाना है या गुमराह नहीं करना है? कष्टों, अभावों, तनावों, हाड़तोड़ होड़ के इस जीवन में 'रचनाकर्म' को समय देना क्या समय की बरबादी नहीं है? इस मूर्खता का क्या अर्थ?

ऊपर के प्रश्न में 'लाभ' पर बल कुछ ज्यादा ही दिया गया है।



प्रख्यात आलोचक एवं लेखक। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष रहे। जापान के तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में विजिटिंग प्रोफेसर तथा सस्ता साहित्य मंडल के सचिव रहे। पंद्रह कृतियाँ प्रकाशित। राममनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान; सुब्रह्मण्यम भारती सम्मान; साहित्यकार सम्मान; आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का विश्व हिंदी सम्मान २००७; राइटर इन रेजीडेंसी फैलोशिप; साहित्य अकादेमी; माखनलाल चतुर्वेदी सम्मान; प्रमोद वर्मा आलोचना सम्मान से अलंकृत। स्मृतिशेष : ८ फरवरी, २०१५।

यह 'लाभ' शब्द हमारी आज की बाजारवादी मानसिकता को पूरी तरह सामने लाता है—तात्कालिक लाभ प्राप्त करने की आधुनिक प्रवृत्ति। हमारे समाज का बनिया मन कितना बड़ा हो गया है कि वह हर कर्म को लाभ-हानि की तुला पर तौलने लगा है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने 'लाभ' को एक बड़ा अर्थ संदर्भ दे दिया है। विश्वव्यापी नव सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के बादलों से चिंतन-सृजन का आसमान घिर गया है। दुनिया की उत्पादित वस्तुएँ, चाहे वह रेडियो. टेलीविजन, कंप्यूटर हों, हमारी तात्कालिक इच्छाओं और जरूरतों की पूर्ति करती हैं। पर एक रचना ऐसा करने का दावा कभी नहीं करती। कोई काव्य या नाटक किसी तात्कालिक उद्देश्य को पूर्ति करने का 'साधन' नहीं है; जबकि बाकी चीजों का महत्त्व उनकी तात्कालिक उपयोगिता से जुड़ा है। रचनाकर्म शब्द से जुड़ा माध्यम है। एक विज्ञापन या राजनीतिक मैनिफेस्टो में शब्दों का प्रयोग एक खास लाभ के उद्देश्य से होता है। वे शब्द उपभोक्ता को ललचाते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या रचनाकर्म शब्दों से एक वैसा ही रिश्ता बनाता है, जैसा एक विज्ञापनदाता या राजनीतिज्ञ? सरसरी तौर पर थोड़ी समानता का अहसास अवश्य होता है। आखिर एक रचनाकार भी तो शब्दों के माध्यम से ही निर्मिति करता है। शब्द ही उसके 'साधन' हैं। पर क्या रचनाकार और विज्ञापनदाता के शब्द में कोई बुनियादी फर्क नहीं है? अजीब बात है कि एक पाठक के नाते (यदि सहृदय शब्द पर आपत्ति हो तो) मैं उस 'शाब्दिक निर्मिति' से साक्षात्कार सिर्फ कविता

या उपन्यास के भीतर ही कर सकता हूँ, उसके बाहर नहीं। एक विज्ञापन को पढ़कर मैं 'फ्रिज' या 'कमीज' खरीदने जाता हूँ; किंतु जिस दुनिया को मैंने 'रामचरितमानस' या 'कामायनी' में पढ़कर पाया है, वह दुनिया बाहर मिल सकती है? शायद कभी नहीं। हम 'रामचरितमानस' की दुनिया की उसके भीतर ही पा सकते हैं, बाहर नहीं। बाहर तो बाजारवाद का बखेड़ा है—जेब का मामला है; जबकि रचना या 'रामचरितमानस' जेब का मामला नहीं है, भाव, संस्कार का मामला है।

रचना में मौजूद यही चीज उसे बाहर से अलग कर देती है। अगर बाहर की दुनिया से उसका कोई लेना-देना नहीं है तो बाहर की दुनिया का ही उससे क्या लेना-देना हो सकता है?

इस अर्थ में तो 'रामचरितमानस' या कोई रचनाकर्म एक प्रयोजनहीन, असामाजिक कर्म जान पड़ता है। राम की भक्ति से क्या लाभ, केवल वक्त की बरबादी, दिमाग में राग-विराग न्याय-अन्याय, सद्-असद् का अंधड़? जबकि अब सब चलता है। कौन साधनों की शुद्धता पर विचार करता है। अच की आँखों में धूल झोंककर गरदन मरोड़कर, मारकर भी यदि हम धन प्राप्त कर सकें तो इसमें पाप क्या है, अन्याय क्या है! समाज में यदि दुःख, दैन्य, गरीबी शोषण, अकाल, भुखमरी है तो हम क्या करें! डार्विन ने क्या भाँग खाकर यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि प्रकृति का नियम है—शक्तिशाली जिएगा कमजोर मरेगा ही। अब जब हमें डार्विन को वैज्ञानिक दृष्टि से ठोस लाभ मिल रहा है तो हम 'तुलसीदास' के त्याग के मार्ग को अपनाकर क्या भूखों मरें? हम सभी को याद है कि 'भूखे भजन न होए गोपाला' या 'लेउ अपनी कंठीमाला' की बात 'प्रैक्टिकल' आदमी ने ही कही थी। दूर क्यों जाएँ, उन्नीसवीं शताब्दी में एक क्रांतिकारी आलोचक ने कहा था कि हमारे लिए शेक्सपियर से ज्यादा एक उपयोगी जूता बनानेवाला है। कबीर ने कहा था कि पत्थर पूजने से क्या लाभ? चक्की की पूजा करो, जिससे पीसकर खाते हैं। उपयोगितावाद की यह सोच क्या गलत है? स्वयं हिंदी के एक कवि नाथूराम शर्मा शंकर ने अपनी कृतियों से निराश होकर जीवन के अंतिम वर्षों में काली नदी में उन्हें फेंक दिया था। मेरे एक अद्भुत ज्ञानी-ध्यानी अध्यापक, बौद्ध साहित्य चिंतन के आचार्य डॉ. भरतसिंह उपाध्याय अपने लेखन से उदास हो गए थे। उन्हें अपनी पुस्तकें तालाब में फेंकने का मन करता था। फेंक तो वे न सके, पर उनकी सार्थकता पर शंका तो उठाते ही रहे। रचना की सार्थकता या लेखन की सार्थकता पर शंका प्रकट करने का क्या अर्थ? मेरे मन में भी यह प्रश्न उठता है कि क्या 'रामचरितमानस' के शब्दों में निहित सत्य भूख से व्याकुल आदमी को सांत्वना दे सकता है? लेकिन एक बड़ा प्रश्न फिर बचा रहता है कि क्यों इस देश में चार सौ वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोग 'रामचरितमानस' को अपना 'मानस' सौंप रहे हैं? अंधकार और निराशा में ठिठुरते आदमी ने 'रामचरितमानस' अवश्य साथ ले गए। आज भी अभाव, कष्ट में वे राम की शरण में जाते हैं। अवध अभी उनके साथ है। सीता साथ हैं और हनुमान पर उन्हें भरोसा है। पूरी रामकथा उनके लिए अतीत नहीं है, वर्तमान है, रोज-रोज का साक्षात्कार है। यही हालत इस देश की जनता की है। वे आज भी रामकथा में जीते हैं। सड़कों पर पत्थर तोड़ते हैं, शहरों में मरते-खपते हैं; पर तुलसीदास की चौपाइयों का साथ नहीं छोड़ते। शायद 'मॉडर्न' या पश्चिमी मानसिकता का गुलाम आधुनिक ही इधर की पश्चिमी हवा में इधर-उधर उड़ रहा है। प्रश्न फिर उठता है कि आज की शिक्षा-दीक्षा में तैयार हम लोगों में से कितने हैं, जो पश्चिमी मानसिकता के गुलाम आधुनिक नहीं हैं? समय मिलने पर 'रामचरितमानस' पढ़ने में हमें संकोच होता है, पर पश्चिमी 'बेस्ट सेलर' बढ़ने में हमारी छाती फूलती है। अंग्रेजी में पढ़ रहे हैं—यह क्या कम बड़ी बात है। शिक्षित का अर्थ ही हो गया है अंग्रेजी पढ़ा-लिखा और इस जीवन पद्धति का अनुवाक या नकलची आदमी—बाकी सब गँवार, जाहिल, पिछड़े, मध्ययुगीन, यथास्थितिवादी जड़, जुते हुए बैल।

दरअसल, मेरे जैसे गँवारों के लिए एक सरल सत्य यह है कि 'रामचरितमानस' जैसी हर कलाकृति मन का बोझ हलका करती है। अंधकार में प्रकाश देती है, जिससे कठिन-से-कठिन स्थिति-परिस्थिति में जीवन जीने की राह निकलती है। एक खास तरह का मनोरंजन भी करती है। हम अनास्था, विद्रूपता भरे जीवन की निराशा छाँटने के लिए 'मानस' का अवगाहन करते हैं। हमें पता है कि दुनिया के महान् रचनाकार शेक्सपियर, मिल्टन, गेटे, कालिदास से लेकर निराला, अज्ञेय तक लगातार अलग-अलग संस्कारों और रुचियों के श्रोता-पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करते रहे हैं। यह बात इसलिए भी आश्चर्यजनक लगती है कि इन किताबों में न तो 'सीरियलों' का मसालेदार मनोरंजन होता है, न काम-केलि का विस्तार। फिर भी उन्हें घंटों क्या, महीनों तक पढ़ते रहते हैं, रमते रहते हैं। क्या आज के माहौल में यह आश्चर्यजनक बात नहीं है? यह बात अलग है कि दो पाठकों की मनस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं और उनपर भिन्न ढंग का प्रभाव भी पड़ सकता है। हर महान् कृति अलग तरह की संवेदना और सौंदर्य दृष्टि की सृष्टि करती है; किंतु इससे उसकी निरर्थकता सिद्ध नहीं होती। यह सच है कि तुलसीदास के रचनाकर्म और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के रचनाकर्म को पढ़ते हुए हम उस प्रकार का प्रभाव ग्रहण नहीं करते हैं, जिस प्रकार का प्रभाव हम एक जासूसी उपन्यास पढ़ते हुए या टी.वी. सीरियल देखते हुए ग्रहण करते हैं। प्रश्न उठता है कि दोनों प्रकार के मनोरंजनों में कहाँ अंतर है? इस प्रश्न का महत्त्व आज और अतिरिक्त महत्त्व प्राप्त करता है; क्योंकि आज तो मनोरंजन के लिए एक विराट् पैमाने पर चैनल शुरू किए जा रहे हैं—रात-दिन 'इंटरटेनमेंट इंडस्ट्री' का 'शो बिजनेस' चलता है। 'रामचरितमानस' या 'राम की शक्ति-पूजा' का साध्य है हमारी चेतना के सीमांतों का विस्तार करना, परत-दर-परत नए अर्थों को खोलते चले जाना, अकेले, निजी आत्मीय क्षणों में चेतना से एक नया रिश्ता जोड़ना। पर 'इंटरनेट इंडस्ट्री' का साधन क्या है—उपयोग्य वस्तुओं के लिए तड़प पैदा करना, नए ग्राहकों का निर्माण करना, दिमाग की चिंतन प्रक्रिया की मुक्तता को नष्ट करना, कामुक प्रवृत्तियों को भड़काना, औरत को क्रय-विक्रय के बाजार में प्रदर्शन में बदल देना। कलात्मक मनोरंजन और सस्ते मनोरजन में हम पहले भी फर्क करते थे और आज भी करते

हैं। फिल्मी 'आर्टिस्ट' की आज कद्र क्यों गिरी है—कलाविहीन विकृत अंग-संचालन, अंग-प्रदर्शन के कारण ही न! तुलसीदास में जो लीला नाट्य की तन्मयता है, वह इन सस्ते मनोरंजनों में कहाँ है? कलात्मक मनोरंजन की परिभाषा को आप कितना ही व्यापक या लचीला कर लें, 'रामचरितमानस' में राम, लक्ष्मण, सीता की पीड़ा-यातना से हजारों ग्रामवासी आज भी आँसू बहाते हैं। हर साल बार-बार राम-सीता की लीला को देखकर रोने में ही हमें आनंद को प्राप्ति होती है। रावण को रथ पर सवार देखकर और राम को रथविहीन देखकर हम बेचैन हो जाते हैं। सीता-हरण के अवसर पर हम कैसे असहाय, विवश, तड़फड़ाते हैं। क्यों तड़फड़ाते हैं? 'क्यों हमारा क्रोध रावण पर फूट पड़ता है?' रावण हमारी स्त्री तो नहीं ले जा रहा है, राम की पत्नी ले जा रहा है, फिर भी हम हैं कि सीता के दु:ख में रोते हैं और रावण की मौत पर हँसते हैं। इसका अर्थ है कि हमारा 'मैं' 'रामचरितमानस' पढ़ते-देखते 'मैं' नहीं रहता, 'हम' में बदल जाता है। इसे ही काव्यशास्त्र में 'साधारणीकरण' नाम दिया गया है। 'कलाकृति' हमें बदलती है। खुद वह जैसी है, वैसी ही रहती है। हमें अपने-पराए की भेद-बुद्धि से मुक्त कर विशालता की ओर बढ़ा देती है। क्षुद्रताओं की ग्रंथियाँ काटकर एक व्यापक 'मानुष भाव' की सृष्टि करती है। कलाकृति ही यह काम कर सकती है। यह काम 'पॉप म्यूजिक' नहीं कर सकता। समय बिताने के लिए साधन रूप में मनोरंजन और कलाकृति के मनोरंजन में कितना बड़ा अंतर है। प्रश्न उठता है कि 'रामचरितमानस' को बार-बार पढ़ने के बाद जो हमारा बदलता हुआ मन है, भाव-संस्कार है, वह अंततः क्या है? यही प्रश्न हमें सही उत्तर की ओर मोड़ देता है उस कलात्मक प्रभाव को ओर संकेत कर देता है, जिसमें आत्म विश्रांति का मर्म और सत्य छिपा हुआ है। सस्ते मनोरंजन तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करने के बाद अपनी उपयोगिता खो देते हैं या अपनी व्यर्थता का अहसास करा देते हैं, लेकिन 'रामचरितमानस' अपनी प्रभाव प्रक्रिया में मन के भीतर 'कोल्हू में पीर' देता है, मथता है, तेल निकाल देता है। उस चिकनाई में मन की रुक्षता हर जाती है। चित्त दमकने लगता है। जीवन एक नया अर्थ पा जाता है। हम पूरी उदासी झाड़कर भरत की तरह राम-सीता से भेंटते हैं। हमारे राम हमसे अलग न हों, हमारी सीता हममें अग्नि धधकाती रहे, हमें उनकी अग्नि परीक्षा की पीड़ा न झेलनी पड़े। न हमें कभी सुमंत बनकर रथ हाँकना पड़े कि बेचैन उदास होकर अँधेरे में अयोध्या में प्रवेश करना पड़े, न किसी निषादराज की विकलता-विवशता झेलनी पड़े। हम बार-बार अपने से पूछते हैं—यह कैसा मन है, जो राममय हो जाता है, 'रामहि केवल प्रेम पियारा' का प्रेम 'जानने' में जीवन को 'जानना' है। जिसने जानकीनाथ को नहीं जाना, उसने जीवन को ही नहीं जाना है।

'रामचरितमानस' का कोई एक प्रयोजन नहीं है। न जाने कितने प्रयोजन हैं, कितने भाव प्रवाह हैं, कितने चिंतन घाट हैं, कितनी नदियाँ हैं, जो इस राम-सागर कथा-सागर की ओर जा रही हैं। 'जिनके श्रवण समुद्र सयाना' वे ही इस कथा प्रवाह को अपने मन में भर पाते हैं; लेकिन जिनके कान सड़ती तलैया हैं, उनसे इनका क्या मतलब! मुझे पता है, किताब के भीतर (रामचरितमानस) रामकथा हमेशा रहेगी। हर युग का पाठक इस कलाकृति मैं अपना अर्थ खोजता रहेगा। हर बार इस 'टैक्स' का नया भाष्य किया जाएगा और हर बार कथा नए सिरे से पाठक के द्वारा लिखी जाएगी। 'रामचरितमानस' के जीवनानुभव में पाठक अपना सत्य पाते रहेंगे; किंतु 'कलाकृति' वही रहेगी, जंसा तुलसी ने उसे सृजित किया है। इस महान् कलाकृति की प्रासंगिकता हर युग में बदल सकती है, कम-ज्यादा हो सकती है; किंतु 'कलाकृति' पाठकों के संस्कारों, आकांक्षाओं के अनुसार अनुभव सत्य देती रहेगी। इसीलिए हम बार-बार कालिदास, तुलसीदास की ओर मुड़ते रहेंगे। कलाकृति का यह कैसा अमरत्व है कि समय उसे कभी पुराना नहीं बना पाता है। हर बार विचारों की बाढ़ आने पर वह डूब जाती है। बाढ़ उतर जाने पर उसकी अर्थभूमि और उर्वरा हो जाती है। हम जमीन की तरह उसे जितना ज्यादा 'कमाते' हैं, खोदते-गोड़ते हैं, नई अर्थ की फसल भरभराकर फूट-फट पड़ती है। इसका अर्थ हुआ कि जो कुछ हम कहते रहते हैं वह 'रामचरितमानस' कलाकृति का भीतरी अनुभव सत्य नहीं है, केवल बाहर से की गई हमारी व्याख्या का सत्य है, हमारी धारणाओं, अपेक्षाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं का सत्य है। इसलिए उसकी कोई भी व्याख्या अंतिम व्याख्या नहीं हो सकती और कोई भी सत्य उसका अंतिम सत्य नहीं हो सकता। कलाकृति की व्याख्या मेरे अनुभव पर आधारित होगी। मेरे शब्द होंगे, मेरे विमर्श, जबकि 'रामचरितमानस' के काव्यत्व का सत्य उसके शब्दों में ही अँटा हुआ है। कलाकृति का सत्य उसके अपने शब्दों का सत्य है और मेरा सत्य मेरे शब्दों का, भाव्य का सत्य। दोनों सत्य एक से प्रतीत हो सकते हैं, पर एक नहीं हैं। पाठक को समानुभूति नहीं हो सकती—कलानुभूति बनाम निर्वैयक्तिक अनुभूति ही हो सकती है। 'रामचरितमानस' जैसी महान् कलाकृति एक नंदिनी गाय है, जिसपर वसिष्ठ-विश्वामित्र संग्राम तो किया जा सकता है, लेकिन उस गाय को अपनी इच्छाओं से घुमाया, बहकाया, धमकाया नहीं जा सकता है। जो आलोचक 'रामचरितमानस' को लेकर बराबर यह धमकी देते रहे हैं कि हम इसे एक धार्मिक कृति, भाववादी कृति मानते हैं, वे इसका क्या बिगाड़ पाए? न मार्क्सवादी इस वृत्ति का बाल बाँका कर पाए, न अंबेडकरवादी कुछ कर पाने की स्थिति में हैं।

अगर मैंने 'रामचरितमानस' जैसी कालजयी कृति की नंदिनी के

'रामचरितमानस' जैसी महान् कलाकृति एक नंदिनी गाय है, जिसपर वसिष्ठ-विश्वामित्र संग्राम तो किया जा सकता है, लेकिन उस गाय को अपनी इच्छाओं से घुमाया, बहकाया, धमकाया नहीं जा सकता है। जो आलोचक 'रामचरितमानस' को लेकर बराबर यह धमकी देते रहे हैं कि हम इसे एक धार्मिक कृति, भाववादी कृति मानते हैं, वे इसका क्या बिगाड़ पाए? न मार्क्सवादी इस वृत्ति का बाल बांका कर पाए न अंबेडकरवादी कुछ कर पाने की स्थिति में हैं।

तेज से तुलना की है तो महज यह एक संयोगवश दी गई उपमा नहीं है। इस कथन के पीछे मेरी आकांक्षा का आरोपण है मेरा अपना अनुभव। प्रमद भाव से पागलों ने 'मानस' को 'ब्राह्मणवादी', 'वर्णाश्रम धर्म के वर्चस्ववाद की तरकीब', 'प्रतिक्रियावादी', 'अध्यात्मवादी', 'हिंदूवादी', 'हिंदुत्व और सांप्रदायिकतावादी', 'बुद्धि विरोधी भक्ति के जहरवाद से भरी' और न जाने क्या-क्या कहा। कुछ दिन हुए, मेरे एक मित्र ने 'रामचरितमानस' के 'शुक्लीय', 'मिश्रीय', 'वाजपेयीय', 'शर्मीय' अर्थ के विरुद्ध 'जिहाद' छेड़ने की घोषणा की थी। उनका यह भी विचार था कि 'रामचरितमानस' की आलोचना करनेवालों में ब्राह्मण जाति के लोग ही हैं। क्यों किसी निम्न जाति के विद्वान् ने इसपर कार्य नहीं किया? क्यों रामकाव्य ने एक भी शूद्र कवि पैदा नहीं किया, क्यों निर्गुणवादियों की क्रांतिकारी विचारधारा को सगुण मतवादी तुलसीदास ने उच्च कुलीनों का वर्चस्ववाद स्थापित करके चौपट कर दिया। रूढ़िवाद, पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद को हिंदीभाषी प्रदेशों में तुलसीदास ने क्या पुष्ट नहीं किया और कर रहे हैं। ऐसे मेरे मित्र यह भूल जाते हैं कि आज जिस जातिवाद संप्रदायवाद, धर्मवाद से हमारी राजनीति पूरी तरह प्रदूषित हो गई है, उसे किसने बढ़ाया है, क्या इसके लिए किसी कबीरवादी किसी जायसीवादी को दोषी करार दिया जा सकता है? क्या यह सच नहीं है कि अगले-पिछड़े का यह विभाजन ही गलत है? आरक्षण को संरक्षण कभी बाबासाहेब अंबेडकर ने नहीं दिया, पर अंबेडकरवादी आरक्षण के लाभों के पीछे पड़े हैं।

'रामचरितमानस' में जातिवाद को बढ़ावा नहीं दिया है। तुलसी जाति, धर्म, कुल, वण, वर्ण, प्रदेश, भाषा की राजनीति से बहुत ऊपर हैं। रामानंद से उन्होंने यही सीखा है कि जातिवाद व्यर्थ की चीज है, काम की चीज है राम की अनन्य भक्ति। इस भक्ति का मार्ग सभी के लिए खुला है। आज 'रामचरितमानस' के भीतरी सत्य को उससे अलग करके रखने की वे चालाक कोशिशें चल रही हैं, वे घातक हैं। बिना सही समझ, सही समग्र दृष्टि के हम किसी भी 'कलाकृति' के जीवन सौंदर्य को नहीं देख पाते। हमारा अपना आरोपण कलाकृति के पूरे अर्थ मर्म को बदल देता है। कलाकृति की जड़ें युग संवेदना भूमि में गहरे, बहुत गहरे तक गई होती हैं। वे परंपरा और संस्कृति के रस को चूसकर कृति को संपन्न करती हैं। पूरे-के-पूरे सृजन प्रेरणा के विस्तार को समझ पाना कठिन होता है, इसलिए कलाकृति का 'समग्र सत्य' कृति में ही रहता है। पाठक या आलोचक उसके एक अंश भाग का अनुभव भागी ही होता है।

'रामचरितमानस' का कलात्मक सत्य न धर्मशास्त्र का सत्य है, न काव्यशास्त्र के सिद्धांतों से नापा जानेवाला सत्य। न सौंदर्यशास्त्र इसकी थाह पा सकता है, न समाजशास्त्र। नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविश्लेषण शास्त्र, मार्क्सवाद, आधुनिकतावाद आदि हजार-हजार वाद मिलकर इसके सत्य की मूल जड़ नहीं खोज सकते हैं। वह सभी सत्यों से बहुत भिन्न सत्य है—व्यापक मानव अनुभव का अनंतता को स्पर्श करता सत्य। पूरा सत्य इसके कथाप्रवाह में है। हम उसे पदाचार्य, अभिनवगत या भक्तिशास्त्र के आचार्य रूप गोस्वामी की अवधारणाओं में व्यक्त नहीं कर सकते। समाजशास्त्र या दर्शनशास्त्र की पुस्तकों में मनुष्य की एक विशिष्ट अवधारणा होती है, जिसके आधार पर कुछ मानक निष्कर्ष निकाले जाते हैं; पर वहाँ 'समग्र मनुष्य' परिभाषित नहीं हो पाता। 'रामचरितमानस' जैसे सर्जन में मनुष्य की एक नहीं, हजारों छवियाँ एक-दूसरे को चीरती हुई निकल जाती हैं। हम राम या भरत को पकड़कर यह कहने का दावा नहीं कर सकते कि यही मनुष्य की समग्र छवि है। सत्य कहाँ है—शिव के पास, राम के पास, भरत के पास, हनुमान के पास, विभीषण के पास, सीता के पास, किसके पास है? सबके पास तो एक अथाह व्यथा ही है। राम सबकुछ जानते हैं, फिर सीता पर संदेह क्यों? स्वर्ण मृग की छलना का छल क्यों? इसलिए कि जीवन में 'जानना' सबकुछ नहीं है, जाने हुए को अनुभव में प्रवाहित करना ही मुक्ति है। इसी में रचनाकार की भी मुक्ति है। राम एक ऐसी संस्कृति के प्रतीक हैं, जिसमें जानने की कोई सीमा नहीं है। हालाँकि 'जानना' जहाँ 'पाप' नहीं है, केवल यातना है, भीतर-ही-भीतर मीठे दर्द में घुलना है। इस घुलावट में ही रस है। यही पाठक को 'श्रेय' और 'प्रेम' है। राम की भाव रचना 'रामचरितमानस' एक ऐसी सांस्कृतिक भाषा में करता है, जिसमें 'सीता' के तप की पवित्रता को 'ज्ञान' प्रमाणित नहीं करता, भक्ति भाव की अनन्यता ही प्रमाणित करती है, दास्य भक्ति ही प्रमाणित करती है।

क्या यह भारतीय मन की एक विशेषता नहीं है कि वह राम को एक साथ लीलानायक, मर्यादानायक, सुरनायक, जननायक, मिथकनायक, इतिहासनायक, भावनायक, अवतारीनायक आदि मानता है। सभी भाव, सभी रस, सभी गतियाँ, ध्वनियाँ, संस्कृतियाँ, परंपराएँ राम से ही आकार ग्रहण करती हैं। एक सस्कारसंपन्न भारतीय एक ही समय में राम को विष्णु का अवतार भी मानता है और मानव भी, जो साधारण मानव की तरह सीता जैसी पत्नी पर संदेह भी करता है। फिर इन दो छवियों में पाठक को कोई अंतर्विरोध नजर नहीं आता है। हर भारतीय माँ अपने बच्चों में राम-सीता की छवि देखती है। राम-सीता की यातना भूलकर हम विवाह के अवसर पर भी दूल्हा-दुलहन में राम-सीता की छवि का ही दर्शन करते हैं। पूरी-की-पूरी भारतीय लोक-संस्कृति राममय है। हमारे जातीय संस्कार में राम जिस ढंग से रचे हैं, उस ढंग से पश्चिम के मन में एक भी नायक बसा हुआ नहीं दिखाई देता। हेडियस और अपोलो, मिनर्वा और डायना—कोई भी ऐसा नहीं है, जिसमें पूरी संस्कृति का मन बोल रहा हो। राम हमारे अवचेतन मन में भाषा के इस रिश्ते के साथ मौजूद हैं कि निरंतर रचनाकर्म की दिशा निर्धारित करते रहते हैं।

'रामचरितमानस' को बाहर से, बाहर की मनमानी धारणाओं से उधेड़ने की जरूरत नहीं है। इस महान् रचना का सत्य इसके समूचे कथ्य के विस्तार और बुनावट उसके टेक्चर में निहित है। आप इसे एक नाटक, कहानी या जासूसी उपन्यास की तरह उद्घाटित नहीं कर सकते। 'युद्ध और शांति' या 'गोरा' और 'गोदान' को परखने के जो 'टूल्स' हैं, वे रामचरितमानस' पर लागू नहीं किए जा सकते हैं।

'रामचरितमानस' को 'मानस' से ही ग्रहण किया जा सकता है, बाहर से नहीं—'अस मानस मानस चरु चाही' कहकर तुलसीदास ने यही

संकेत दिया है। हम इसे 'इंटेशनल फैलेसी', अभिप्रायपरक हेत्वाभास कहकर चलता नहीं कर सकते। क्योंकि मानस एक हृदय से दूसरे, दूसरे से तीसरे-चौथे अनगिनत हृदयों की यात्रा है।

सत्य की निरंतर खोज ही रामकथा है। 'मानस' के भीतर अवगाहन करने पर पता चलता है कि जीव अपने जीवन में न जाने कितने भ्रमों को सत्य समझकर पकड़े रहता है। इसलिए इस कलाकृति का मर्म खुलता ही तब है, जब हम पाते हैं कि जानने की एक नई अंतर्यात्रा शुरू हुई है। कई बार लगता है कि 'मानस' अंततः एक विराट् दार्शनिक और एक व्यापक आध्यात्मिक अनुभव है।

एक पूरी वाचिक और लिखित परंपरा का तुलसी दूसरा नया पाठ उठाते हैं। एक ऐसा नया पाठ, जो चकित करता है। कथा का यह पाठ हमारी सभी परिभाषाओं को भ्रामक सिद्ध कर देता है। काव्यशास्त्र की अपर्याप्तता को मानस पहली बार सिद्ध करता है। काव्यशास्त्र की महाकाव्य कसौटी पर आप 'मानस' को महाकाव्य सिद्ध नहीं कर पाते हैं; जबकि आप इस अनुभव से बराबर गुजरते हैं कि यदि इसे महाकाव्य न मानें तो हिंदी की किस कृति को महाकाव्य कहें। तुलसी की स्वच्छंद प्रतिभा की सृजन दृष्टि शास्त्र के घेरे को तोड़कर बाहर निकल पड़ी है। 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' की असीमता का बोध और तमाम मर्यादाएँ यहाँ टूट जाती हैं और एक चीज रह जाती है अखिन्न मन से प्रेम, 'रामहि केवल प्रेम पियारा' प्रेमकथा का प्रेम दर्शन।

तुलसीदास जैसा महान् रचनाकार अपने सृजन ग्रंथों में एक व्यापक और विराट् युग सत्य को रचनाकर्म में ढालता है। एक निरक्षर लगभग अशिक्षित समाज में तुलसीदास प्रवेश कैसे कर गए, यह प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आगम-निगम परंपराओं का छना ज्ञान तुलसी ने जनता को परोस दिया। जिस ज्ञान को छककर जनता ने संपन्नता का अनुभव किया।

आज भी 'मानस' का कोई विकल्प नहीं है। इसीलिए 'मानस' हमारी जातीय अस्मिता की सबसे बड़ी पहचान है। हमारी संस्कृति की सरस्वती का सबसे पवित्र स्वर, लय, गति, ताल, छंद। इसलिए जो लोग 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाते हैं, वे एक प्रकार से भारतीय परपरा, संस्कृति, दशन, चिंतन की 'प्रासंगिकता' का प्रश्न उठा रहे होते हैं। यदि भारतीय जीवन-पद्धति, जीवन-दृष्टि अप्रासंगिक हो गई है तो 'मानस' भी अप्रासंगिक हो गया है। यदि तमाम अवस्थाओं अभावों, अंधकारों, बाहरी वैचारिक आक्रमणों के बावजूद भारतीय जीवन-दृष्टि प्रासंगिक है तो 'मानस' को अप्रासंगिक कैसे कहा जा सकता है? तमाम अनास्थाओं, तापों, तनावों को शांत करनेवाला 'मानस' आस्था का अमृत-कलश है।

प्रायः यह बात मंचों-गोष्ठियों से उठाई जा रही है कि आज का समाज उस साहित्य से कट गया है, जिसे हम भक्ति काल का साहित्य कहते हैं। उस सांस्कृतिक नवजागरण के साहित्य को 'मध्ययुगीन बोध' (पिछलेपन) से ग्रस्त कहकर उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। 'मध्ययुगीन बोध' पश्चिम के अधकारयुगीन साहित्य से उपजी अवधारण का वाची है। लेकिन हमारे यहाँ 'अंधकार युग' कभी रहा ही नहीं। न धर्म का वह तांडव हुआ, जो पश्चिम में रहा। इसलिए भूलवश उनके मध्य काल के दोषों को हमारे मध्यकाल पर थोपना अज्ञान है। हमारे भक्ति काव्य के पीछे एक अखंड समग्र और समर्थ चिंतन-सृजन की परंपरा है। ऐसी अखंड समग्र परंपरा का दावा पश्चिम का कोई देश नहीं कर सकता है। जो परंपरा टी.एस. इलियट को मिली है, वह खपच्चियों को जोड़कर बनी परंपरा है। लेकिन जो परंपरा तुलसीदास, जयशंकर प्रसाद, निराला, अज्ञेय को मिली, वह एक समग्र परंपरा है। पश्चिमी प्रहारों ने आधुनिक काल में इस परंपरा को क्षत-विक्षत किया, पर यह परंपरा मरी नहीं, अपनी जीवट में अटूट प्रहारों को झेलती हुई हम तक आई।

उपजी परंपरा की ताकत के कारण ही 'मानस' हो या 'कामायनी', ये कृतियाँ अपने समय और समाज के भीतर चलनेवाले असंख्य अंतर्द्वंद्वों, तनावों, प्रश्नाकुलताओं, विभ्रमों, विभीषिकाओं, निराशाओं, आकांक्षाओं का 'साक्षी' बनकर आती रही हैं। आज मूल प्रश्न यह है कि क्या उपभोक्तावादी संस्कृति की मार से बेचैन मन 'मानस' या 'कामायनी' के साक्षात्कार के काबिल रह गया है। हम तो इनका स्थान साहित्य में निर्धारित भी नहीं कर सकते हैं; क्योंकि इन महान् कृतियों ने स्वयं अपना स्थान साहित्य में बना लिया है, लगभग अविस्मरणीय स्थान। जब भी हम इनके पास जाते हैं, खाली हाथ नहीं लौटते। कुछ-न-कुछ सरस्वती का प्रसाद पाते ही हैं। इसीलिए ये कलाकृतियाँ हम तक चलकर नहीं आएँगी, हमें ही उनके पास चलकर जाना होगा। एक अतिथि भाव से नहीं, एक सखा भाव से जाना होगा। जरूरी नहीं है कि इन कृतियों के पास जानेवाला हर पाठक दृष्टिसंपन्न, कला विदग्ध ही हो। ऐसी स्थिति में हम इनमें इतना ही देख सकते हैं, जितनी हमारी दृष्टि सामर्थ्य है। 'मानस' के संदर्भ में आचार्य शुक्ल की संजय शक्ति का हम आज भी लोहा मानते हैं। तुलसी के सृजनकर्म से गुजरते हुए कोई तथ्य, कोई घटना, कोई दृश्य, अतीत-वर्तमान का ब्योरा उनकी आँखों से ओझल नहीं रहता। आचार्य शुक्ल हजार आँखों से सूर, जायसी, तुलसी, कबीर को देखते हैं और तार्किक भाष्य व विमर्श करते हैं। जायसी के 'पद्मावत' का तो एकदम नया भाष्य आचार्य शुक्ल ने ही किया और इसी परंपरा को विजय देवनारायण साही ने 'जायसी' पुस्तक में नए सिरे से आगे बढ़ाया।

तुलसीदास जैसा महान् रचनाकार अपने सृजन-ग्रंथों में एक व्यापक और विराट् युग सत्य को रचनाकर्म में ढालता है। एक निरक्षर लगभग अशिक्षित समाज में तुलसीदास प्रवेश कैसे कर गए, यह प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आगम-निगम परंपराओं का छना ज्ञान तुलसी ने जनता को परोस दिया। जिस ज्ञान को छककर जनता ने संपन्नता का अनुभव किया।

तुलसीदास ने शब्दों का आविष्कार नहीं किया, मौजूद शब्दों में स्मृति को नया अर्थ संदर्भ दे दिया। यह जाना-माना सच है कि एक तानाशाही व्यवस्था में जातीय स्मृति को नष्ट करने के लिए भाषा को नष्ट किया जाता

है; ताकि जाति को आसानी से गुलाम बनाया जा सके। अंग्रेजों ने पहला हमला भक्ति-आंदोलन पर किया और कहा कि हिंदी भक्ति ईसाइयों की देन है। ग्रियर्सन ने 'तुलसीदास' पर किताब लिखी और ईसाई प्रतिमानों से घेरने की कोशिश की। यह अलग बात है कि ग्रियर्सन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके। तुलसीदास तक हिंदी कविता पूरी तरह एक संपन्न परिदृश्य प्राप्त कर चुकी थी। संवेदना, काव्य भाषा, रचना विधान और शैली मँज चुकी थी। उसे और आगे बढ़ाने की जरूरत थी। यही कार्य तुलसी की कलम से हुआ। भक्ति से कविता बनाने की जो प्रेरणा प्रक्रिया कबीर से आरंभ हुई थी, उसकी सशक्त निष्पत्ति तुलसी के सृजनकर्म में हुई। तुलसी के सामने समस्या थी कि संस्कृत को छोड़कर संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा का ज्ञान-ध्यान जनभाषा हिंदी में कैसे लाया जा सकता है। शास्त्रीयता को लोकग्राह्य कैसे बनाया जाए, यह तुलसी की रचना समस्या थी, जिसे उन्होंने सहज भाव से हल किया। लोकभाषाओं को लेकर रामानंद की सृजन प्रेरणा दृष्टि तुलसी की रचना का आधार बनी। प्रबंध, मुक्तक, अवधी, ब्रजभाषा और संस्कृत में श्लोक रचना सब 'भावों' की ताकत बनी। निर्गुण-सगुण, वैष्णव-शैव के सांस्कृतिक संकट को उन्होंने विवेक से हल किया। वे भाव उच्छलन के नहीं, विचार संयम के रचनाकार बने। तुलसी कहते रहे 'कवित विवेक एक नहिं मोरे', पर पाठक ने पाया कि उस युग में उनसे ज्यादा काव्य विवेक किसी के पास नहीं दिखाई देता। 'अरथ अमित अति आखर थोरे' का मर्म समझाया। तुलसी के सृजन संघर्ष में उनका आत्मसंघर्ष समझने लायक है—'बारे ते लाल विललात द्वार-द्वार दीन' का अनुभव क्या कहता है? अपनी स्थिति-परिस्थिति से संघर्ष, अपन अहं से संघर्ष का ही नतीजा है कि तुलसीदास आत्मदान, आत्मसमर्पण की ओर मुड़ गए। स्वांतः सुखाय 'बहुजन हिताय बहुजन हिताय' की खुली पुकार बन गया। इस भक्त कवि ने एक ही उपदेश दिया—'राम भक्ति पर भरोसा करो।' 'सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥'

'रामचरितमानस' को लेकर असली प्रश्न यह नहीं है, इस रचना को कौन लोग पढ़ते हैं या कितने लोग पढ़े हैं या समाज-परिवर्तन में उसकी भूमिका क्या रही है। असली प्रश्न यह है कि क्या यह रचना अपनी भाषा के उस संवाद में दखल दे सकी है, जो यह समाज अपनी माया में करता आया है? यदि यह कृति यह कार्य कर सकती है तो इसकी रचना सार्थक है। वह समाज, भाषा सार्थक है। वह संस्कृति सार्थक है, जिसमें मनुष्य की एक नई छवि उभरती है, एक नया सौंदर्य-बोध विकसित होता है। जो रचना धीरे-धीरे देश और काल में धँसती है, वह खून बनकर जाति की धमनियों में दौड़ने लगती है। शायद ही तुलसीदास के रचनाकर्म पर रीतिकाल का कोई कवि रीझा हो। पर समय की दूरी होने पर तुलसीदास पर आधुनिक काल के अधिकांश कवि रीझे। उन्होंने कालिदास, भवभूति को भी तुलसी की तरह बहुत निकट, बहुत आत्मीय पाया। महान् रचना तृप्ति को अतृप्ति में बदलने के कारण ही याद की जाती है, तृप्ति देने के कारण नहीं। साहित्य का यह कितना अपना, पर अजीब तर्क है।

इस तथ्य को 'रामचरितमानस' के तर्क के ऊपर अपने तर्क आरोपित करनेवाले नहीं समझ सकते। विचारधारावादी अपने तर्कों से 'मानस' का गूदा फेंकते रहे हैं और छिलका खाते रहे हैं। रचना की स्वायत्तता में विश्वास न रखने के कारण वे रचना की पूँछ मरोड़ते रह गए हैं। कभी-कभार तो 'मानस' की गला काट आलोचना की गई है और खूब की गई है। विचारधारा की रस्सी में बँधे गुलाम 'मानम' की स्वतंत्रता को बरदाश्त नहीं कर सके और उन्होंने इसे 'प्रतिक्रियावादी' करार दे दिया। वे इसकी 'भक्ति' को अफीम और 'लीला' को जहर तथा 'अवतारवाद' का पागलपन का छलावा तक कहने को तैयार रहे हैं।

विचारधारा 'रचना' नहीं है। यदि ऐसा हाता तो विचारधारा का फार्मूलाबद्ध प्रचारवादी लेखन ही महान् लेखन कहलाता। पार्टियों को लेकर न प्रेमचंद ने लिखा है, न निराला ने और न अज्ञेय ने। हाँ, यह जरूर है कि पार्टियाँ उन्हें अपनी विचारधाराओं की जंजीरों में बाँधना चाहती हैं। आज तुलसीदास, निराला, प्रेमचंद मुक्तिबोध पर कब्जा करने की कोशिशें इसलिए की जा रही हैं, ताकि उनका उपयोग किया जा सके। लेकिन लोग भूल जाते हैं कि कलाकृति परंपरा से प्राप्त विचार संवेदना का हिस्सा होते हुए भी विशिष्ट अद्वितीय संश्लिष्ट अनुभव होती है। कलाकृति अपने मूल बिंब और रूपक अपनी परंपरा के मूल संस्कारों, आधारों, विश्वासों से ही प्राप्त करती है। वस्तुतः सृजन एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। सांस्कृतिक प्रक्रिया है तो हम अलग से अपनी विचारधारा को आरोपित करने का दुस्साहस क्यों करते हैं? अपनी समझ को रचना की समझ पर क्यों थोपते हैं? 'रामचरितमानस' में 'रचना का सत्य' कोई बाहर की सच्चाई नहीं है—रचना के भीतर का सच है। रचना सत्य देती नहीं है, सत्य का केवल अनुभव कराती है। यह सच उसके स्वरूप मैं स्पंदित है, संचरित है। 'रामचरितमानस' के सच का साक्षात्कार हम उसके भीतर उसकी भाषा में करते हैं। उससे बाहर आने पर तो हम अपना ही भाष्य बघार रहे होते हैं। 'मानस' का सच न तुलसीदास में है, न पाठक में है। उस समूची पीड़ा, यातना, संघर्ष में है, जो उसकी अर्थ लय में समाया हुआ है, जिसे न खिसकाया जा सकता है, न झुठलाया जा सकता है। क्योंकि 'रामचरितमानस' के बाहर तो कवि की अनुभूति है। पाठक की प्रभाव चेतना है, आलोचना का कोलाहल है।

यह पीड़ा और आश्चर्य की बात है कि 'रामचरितमानस' जैसी महान् कलाकृति को लेकर भी हिंदी आलोचना इस सच को झुठलाती रही है। पता नहीं हम 'मानस' से क्या चाहते हैं? आज हम एक ऐसी हास्यास्पद स्थिति में पहुँच गए हैं कि अपनी विचारधारा की धुरी से तुलसी के रचनाकर्म को हलाल करने में लगे हुए हैं। हमें यह ध्यान तक नहीं रहता है कि यह रचना पूरी हिंदी जाति को विस्मृति के अँधेरे से निकालकर स्मृति के आलोक में लाती है। 'रामचरितमानस' को लेकर मेरे मन में और भी त्रासद प्रश्न हैं। पर इन प्रश्नों की ओर मुड़ते ही मुझे टॉलस्टाय का यह कथन जकड़ लेता है कि कितना अच्छा हो, अगर आदमी हमेशा फैसला लेने की जल्दबाजी न करे, उन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश न करे, जो हमेशा प्रश्न बने रहते हैं।

सा अ



दो कविताएँ

अवधनारायण मुद्गल



प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार व संपादक। लंबे समय तक लोकप्रिय कथा पत्रिका 'सारिका' से संबद्ध रहे। दस कृतियाँ प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'साहित्य भूषण', हिंदी अकादमी दिल्ली के 'साहित्यकार सम्मान' एवं राजभाषा विभाग बिहार के सम्मान से सम्मानित। स्मृतिशेष : १५ अप्रैल, २०१५।

'आशा' और 'विश्वास'

आशा,
एक भूखे
गरीब भिखारी के
फटे कुरते की जेब में पड़ा
सौ रुपए का
असली चेक
जो,
अभी भुना नहीं
यदि उसे
चोरी के झूठे अपराध में
जेल न जाना पड़ा
तो भुन जाएगा...

विश्वास,
रूढ़ियों की तरह
किसी देहाती परिवार का
एक मोटा गरम कोट
जिसे अभी तक
कई पीढ़ियों ने पहना है
और आगे भी
कई पीढ़ियाँ पहनेंगी।

प्रमथ्यु : एक विकेंद्रित आग

सुनो देवताओ, सुनो
आग की जरूरत सिर्फ तुम्हें ही नहीं
हम मानवों को भी है
शायद तुमसे भी ज्यादा
हम आग पर—
तुम्हारा एकाधिकार नहीं रहने देंगे।

हर उस चीज पर
जो हमारे लिए जरूरत है
तुम एकाधिकार जमाकर बैठ जाते हो
ताकि हम
हमेशा तुम्हारे मुहताज बने रहें
अपने हर दुःख-दर्द में
तुम्हें पुकारते रहें
हमारे हाथ
हमेशा तुम्हारी ओर उठे रहें—
भीख माँगने की मुद्रा में

भीख
चाहे वह किसी जिन्स की हो
या किसी मुक्ति की
या कृपा की
कृपा—
जिसे तुम एक मंद स्मित के साथ
आत्मतुष्टि के लिए
सशर्त हमारी ओर फेंक देते हो
तुम्हारा एकाधिकार तोड़े बिना
न तुम्हारी कृपा-मुद्रा टूटेगी
और न हमारी भीख-मुद्रा
हम अपनी जरूरत को
तुम्हारी कृपा-तुष्टि का साधन नहीं बनने देंगे।

सुनो देवताओ, सुनो
आग तुम्हारे लिए अय्याशी है
और हमारे लिए जरूरत
तुम
मेरी जान लेकर भी
उस आग को नहीं पा सकते
जिसको मैंने
समस्त मानव समुदाय के हित के लिए
तुम्हारे सुरक्षित केंद्र से चुराया है
तुम्हारी केंद्रीकृत आग से
हमारी विकेंद्रीकृत आग ज्यादा सुरक्षित है
अब तुम उसे
हमसे नहीं छीन सकते
हम आग पर
तुम्हारा एकाधिकार नहीं रहने देंगे।

सुनो देवताओ, सुनो
मैंने इसे सुरक्षा के नाम पर
किसी एक जगह कैद नहीं किया
हर जगह बाँट दिया है
धरती के ऊपर
धरती के गर्भ में
पेड़-पौधों-वनस्पतियों में
आदमी के प्राणों में
शरीर के हर हिस्से में
सिर, आँख, नाक, कान और मुँह से लेकर
हाथ, हृदय, पेट, जंघा और पैर के तलवों तक
विशेष रूप से
औरत के गर्भ में
एक नई आग पैदा करने के लिए

सुनो देवताओ, सुनो
अब तुम कहाँ-कहाँ से आग चुनोगे
कहाँ-कहाँ बुझाओगे ?
इसके लिए तुम्हें
सारी सृष्टि को ही नष्ट करना होगा
और आत्मतुष्टि पर जीनेवाले तुम
ऐसा कभी नहीं कर सकते
क्योंकि हमीं से
तुम्हारी आत्मतुष्टि की सुरक्षा है

सूनो देवताओ, सुनो

सा
अ

कड़वी रोटी

● अभिमन्यु अनत



हिंदी के सशक्त लेखक। पच्चीस उपन्यास, छह कहानी-संग्रह, पाँच काव्य-संग्रह, चार नाटक, इतिहास की दो पुस्तकें व दो जीवनियाँ प्रकाशित। इसके अतिरिक्त एक प्रतिनिधि संकलन, एक अनुवादित पुस्तक तथा दो संपादित ग्रंथ प्रकाशित। मॉरीशस स्थित रवींद्रनाथ टैगोर संस्थान के निदेशक रहे। स्मृतिशेष : ४ जून, २०१८।

कल रात दोनों भानू की एक सहेली की सालगिरह में गए हुए थे। घर देर से लौटे थे और सुबह दोनों देर से जागे। दर्शन ने घर के दोनों कमरों और रसोई के भीतर तक जाकर दूसरी बार लौटते हुए सोनेवाले कमरे में मेज पर से चीजों को इधर से उधर किया। भानू से पूछा, ''मोटरसाईकिल की चाभी दिखाई नहीं पड़ रही।''

''अभी कुछ ही देर पहले तो राकेश उससे खेल रहा था। तुम्हीं ने तो उसे चुप करने के लिए दी थी।''

''कहाँ है राकेश?''

''शर्मिला उसे लेकर चली गई।''

''तुम जरा उसके यहाँ जाकर···।''

''मैं उसके यहाँ जाऊँ तो नौकरी पर कब पहुँचूँगी? नौ बजने को हैं। ठीक नौ बजे मुख्य अध्यापक के साथ मीटिंग है।''

दोनों दो अलग रास्ते से दो अलग शहर में काम पर जाते थे। भानू को अपने दफ्तर जाने के लिए बस पकड़नी पड़ती थी जबकि दर्शन अपने होंडा से बिना किसी आपाधापी के अपने काम पर जाता था। भानू को शीशे के सामने से उठते न पाकर दर्शन भुनभुनाता हुआ बगल के घर की ओर लपका।

शर्मिला की नजर तो चाभी पर पड़ी होगी। बच्चे के हाथ से लेकर मेज पर रख तो जाती।

शर्मिला दर्शन की छोटी चचेरी बहन थी। साल भर के राकेश की देखभाल के लिए दर्शन उसे हर महीने आठ सौ रुपए देता था। पति-पत्नी ने आपस में तय करके ही ऐसा किया था। शहर के हेयडी नर्सरी में बच्चे को छोड़ने पर तो पंद्रह सौ रुपए महीने देने पड़ते। फायदे की बात दोनों को जँच गई थी।

दोनों के जीवन में आपाधापी तो शुरू से ही थी। इसका कारण शायद भौगोलिक भी रहा हो, क्योंकि वे रोजहील शहर में रहते थे। जिस शहर में भानू काम करती थी वह वहाँ से कठिनाई से पाँच-छह किलोमीटर के फासले पर था। उनका घर मुख्य सड़क से एकदम भीतर न होता तो यह फासला और भी कम होता। जिस शहर में दर्शन काम करता था वह देश की राजधानी थी। पोर्ट-लुई! और लगभग वही भानू के शहरवाला फासला लिये हुए।

आपाधापी की तरह फासला भी दोनों के तीन वर्षीय विवाहित जीवन में अपनी अहमियत बनाए हुए था। जब दर्शन राकेश को फुसला पाने में सफल होकर, उसके हाथ से चाभी लेकर घर के भीतर लौटा तो भानू को इधर से उधर आते-जाते पाकर समझ गया कि कोई-न-कोई बात जरूर है। पर इससे पहले कि वह कुछ पूछता, भानू चिल्ला उठी, ''मेरी घड़ी दिखाई नहीं पड़ रही, मुझे देर हो रही है।''

''बिना घड़ी देखे तुम्हें कैसे मालूम हो गया?''

''क्या?''

''कि तुम्हें देर हो रही है।''

''मुझे देर हो रही है और तुम्हें मजाक सूझा है? मेयर महोदय का भाषण लिखकर दस बजे से पहले देना है उन्हें।''

''पहले ही क्यों नहीं लिख लिया।''

''यहाँ?''

''हाँ, यहाँ।''

''तुम भी उस साजिश में शामिल हो क्या?''

''किस साजिश में?''

''नगरपालिकावाले ये दुआएँ करते रहते हैं कि मैं कोई एक ऐसा गलत भाषण तो लिख ही डालूँ जिससे मेयर के पी.एस. से क्लर्क बन जाऊँ।''

''अपने फायदे में होता।''

''क्या?''

''तुम जब नहाने गई थीं तो कलाई में घड़ी थी। हो सकता है कि···'' पूरी बात सुनने से पहले भानू स्नानागार को झपट पड़ी।

दर्शन मेज पर से रोटीवाले तौलिए में लिपटी अपनी रोटी उठाकर

अपने बैग में डालने ही वाला था कि भानू सामने आ गई। पहले अपने दाएँ हाथ की घड़ी को दर्शन के आगे बढ़ाया फिर अपनी बाईं कलाई को उसके सामने करके कहा, ''देर हुई है, जल्दी से बाँध दो।''

''देर तो मुझे भी हुई है।''

''इसीलिए तो कह रही हूँ जल्दी करो।''

भानू के हाथ में घड़ी बाँध जब दर्शन अपनी सिगरेट का पैकेट टोकरी में रखकर घर से निकलने को हुआ तो उसकी ओर देख भानू बोली, ''तरक्की पाकर डिप्टी हेड टीचर बने हो न?''

''पाँच महीने बाद यह सवाल?''

''क्योंकि पाँच महीने बाद आज तुम टाई बाँधना भूल गए हो। जब डिप्टी हेड टीचर ही प्रोपर ड्रेस के बिना काम पर जाएगा तो साधारण टीचर क्या करेंगे?''

''देर में देर करा रही हो।''

''तुम्हें अंधेर करने से बचा रही हूँ।''

''ठीक है, ले आओ फाँसी का वह फंदा।''

''इज्जत और पर्सनैलिटी देनेवाली टाई को तुम फाँसी का फंदा कहते हो?''

''हाय! गलती हो गई, फाँसी का फंदा तो तीन साल पहले ही मेरे गले में…''

''मुझे फाँसी का फंदा कह रहे हो?''

''मैं चलता हूँ।''

''बिना टाई के तुम नहीं जा सकते।''

सामने की कुरसी पर से टाई उठाकर उसने अपने पति के सामने बढ़ा दी।

''मैं अपने हाथों से बाँधूँगा तो तीन बार तुम गाँठ को सीधा करोगी और हम दोनों को और भी देर हो जाएगी। बेहतर है कि तुम ही बाँध दो।''

बिन कुछ कहे भानू उसके गले में टाई बाँधने लगी। जब कसने की बारी आई तो दर्शन चिल्ला उठा, ''सूली चढ़ा रही हो या टाई बाँध रही हो?''

''अब देखो, कितने स्मार्ट लग रहे हो।''

''थोड़ा और कस देतीं तो और भी स्मार्ट हो जाता।''

बाहर से दौड़ती हुई शर्मिला आ गई। हाँफती हुई दर्शन से बोली, ''चाभी।''

''कैसी चाभी?''

''अलमारी की। वह जो चाभी तुम राकेश की मुट्ठी से छीन लाए हो वह मेरी अलमारी की चाभी है। तुम्हारी मोटरसाईकिल की चाभी बच्चे से लेना आसान नहीं था। वह रोने लगा था। मैंने अपनी चाभी उसे देकर तुम्हारी चाभी उससे ले पाई थी। यह है तुम्हारी चाभी।''

दर्शन ने अपने हाथ की चाभी की ओर देखा और जल्दी से अपने हाथ की चाभी शर्मिला को लौटाकर उसके हाथ से अपनी चाभी ले ली। भानू माथा धुनती हुई बोली, ''तुम्हें सही और गलत की पहचान कभी रही ही नहीं।''

''तुम फिर से तीन वर्ष पुराने डायलॉग बोलने लगीं। इसीलिए तो मैं तुम्हारी प्रशंसा करता रहा हूँ और तुम्हारी पसंद की दाद देता हूँ।''

''चलो हटो, देर हो रही है।''

दोनों दो तरफ से मेज पर से छोटी तौलियों में लिपटी अपनी-अपनी रोटी उठाकर एक-दूसरे को देखने लगे।

''भानू, तुमने आज फिर दोनों की रोटियों को एक ही रंग के कपड़े में लपेट दिया?''

''हाँ, ताकि तुम फिर से यह न कहो कि मेरावाला तौलिया अधिक साफ और सुंदर है।''

''तो फिर यह पता कैसे चले कि इन दोनों में कौन सी वेज और कौन सी नॉन-वेज है?''

''तुमने दाईं ओर वाली ली है न?''

''हाँ।''

''तो साईं बाबा के नए जनमे भक्त श्रीमान वेजीटेरियन, आपकी रोटी में बटर, चीज और आलू है। और जो मेरे हाथ में है उसमें तामसी भोजन चिकन है।''

दोनों ने अपने-अपने बैग में रोटियाँ रखीं और घर से निकलने की जल्दी में शर्मिला से टकराकर दर्शन ने उसे दाएँ-बाएँ को झुला दिया। शर्मिला अपने को किसी तरह सँभालकर दोनों को देखती रही।

''तुम भी उस साजिश में शामिल हो क्या?''

''किस साजिश में?''

''नगरपालिकावाले ये दुआएँ करते रहते हैं कि मैं कोई एक ऐसा गलत भाषण तो लिख ही डालूँ जिससे मेयर के पी.एस. से क्लर्क बन जाऊँ।''

''अपने फायदे में होता।''

''क्या?''

''तुम जब नहाने गई थीं तो कलाई में घड़ी थी। हो सकता है कि…'' पूरी बात सुनने से पहले भानू स्नानागार को झपट पड़ी।

□

शाम को शर्मिला अपनी माँ के घर से राकेश को लिये अपने चचेरे भाई के घर पहुँचकर अपने भाई और भाभी के लिए चाय तैयार करने में लगी हुई थी। बाहर से मोटरसाईकिल के रुकने की आवाज आई। वह अपने काम में लगी रही और जब किसी के रसोई में प्रवेश करने की आहट पाई तो बिना देखे बोली, ''भैया, आज तो तुम भाभी से पहले पहुँच गए।''

और जब मुड़कर देखा तो सामने भानू के भाई अजीत को खड़े पाया।

''तुम? अभी आ रहे हो?''

''हाँ, मैं तुम्हारी भाभी और भाई दोनों से पहले पहुँच गया।''

''इसे पहले पहुँचना कहते हो?''

''क्यों? वे दोनों आ गए? ऐसा हो ही नहीं सकता।''

''नहीं आए पर मिनट-दो मिनट में आ ही जाएँगे।''

''वे पहुँच गए होते तो यह घर इतना शांत थोड़े ही होता।''

कोने में खिलौनों के साथ बैठा राकेश अपने हाथ के झुनझुने को जोर से बजाने लगा। उसकी ओर देखकर अजीत ने कहा, ''अच्छा तो महाराज, आपने अपने माँ-बाप की कमी की पूर्ति कर ली।'' बच्चा और

भी जोर से झुनझुने को बजाने लगा।

''अच्छा तो वह पहली आवाज तुम्हारे बाप की थी और यह तुम्हारी माँ की ?''

''नहीं, तुम्हारी बहन की···यानी···कि मेरी भाभी की।''

''वैसे तुम्हारा भाई भी कम ऊँचा नहीं बोलता।''

''खैर, क्या लाए हो मेरे लिए ?''

''वही जो तुमने लाने को कहा था।''

''पर तुम खाली हाथ आए हो।''

''तुमने भी तो यही कहा था कि कनटकी चिकन लाऊँ और न मिला तो खाली हाथ आऊँ। नहीं मिला।''

''यह क्या बात हुई कि नहीं मिला। कनटकी चिकन की दुकान बंद है क्या ?''

''बंद तो नहीं है, पर तुम तो जानती ही हो कि आज प्लाजा के सामने इलेक्ट्रीसिटी विभाग के लोगों की भूख हड़ताल थी।''

''तो सी.ई.बी. की हड़ताल और कनटकी चिकन का क्या वास्ता।''

''वैसे तो वास्ता कोई भी नहीं। लेकिन दोपहर में ठीक दो बजे मंत्री महोदय ने वहाँ पहुँचकर सभी कामगारों को यह गारंटी दी कि उन सभी की सभी शिकायतों को दूर करके रहेंगे। कहाँ लोग मंत्रीजी को धन्यवाद देते! सभी उस खुशखबरी को सुनते ही कनटकी फ्राइड चिकन की दुकान की ओर दौड़ गए।''

''अपनी भूख हड़ताल को समाप्त करने।''

''हाँ।''

''और तुम्हारे वहाँ पहुँचते-पहुँचते इलाके के कुत्ते हड्डियों के लिए लड़ रहे थे।''

''कमाल है, तुम तो एकदम सही ज्ञात बता रही हो।''

''क्यों नहीं, जब दाल-पूरी लाने के दिन रोजहील के सभी दाल-पूरी बेचनेवालों को तीन बसों से उतरे सैलानी घेर सकते हैं तो कनटकी की यह दशा क्यों नहीं हो सकती।''

बच्चे ने खिलौने को फेंककर ताली बजाना शुरू कर दिया। इतने में अपने नाखुश चेहरे के साथ दर्शन भीतर आ गया। सामने अजीत को पाकर बरस पड़ा—

''साले, तुम बिन बदली की बरसात की तरह आना कब छोड़ोगे ?'' शर्मिला के करीब जाकर अजीत ने धीरे से कहा, ''कबाब में हड्डी।''

''क्या कहा ?''

''आप प्यासे हैं, चाय देने को कह रहा हूँ।''

''प्यासा नहीं, भूखा हूँ। कहाँ है वह ?''

बच्चे की ओर संकेत करके—''वह रहा।''

''मैं बच्चे को नहीं, उसको ढूँढ़ रहा हूँ जो मुझसे पहले पहुँच जाने की आदी है।''

''मैं तो आपके सामने हूँ।''

''साले, मैं तुम्हारी बहन की बात कर रहा हूँ।''

तभी बाहर से भीतर आती हुई भानू बोली, ''अच्छा तो तुम मुझसे पहले आ गए ?''

''तो तुम जान-बूझकर देर से पहुँच रही हो ?''

अजीत दोनों के बीच आ जाता है।

''ये आप दोनों तू-तू, मैं-मैं क्यों कर रहे हैं ?''

उसे अलग ढकेलते हुए दर्शन ने कहा, ''दाँतों के बीच जीभ की तरह मत आओ।''

अपने पति के सामने तनकर भानू ने अपने बैग से रोटी बाहर करके उसे थमाते हुए कहा ''तुमने मेरी रोटी लेकर अपनी आलू वाली रोटी मुझे क्यों दी। तुम जानते हो, मैं आलू नहीं खाती।''

अजीत ने शर्मिला को देखकर धीरे से कहा, ''फिर भी मोटी होती जा रही है।''

अपने हाथ की रोटी को जबरदस्ती अजीत के हाथों में रखकर दर्शन ने अपने बैग से रोटी निकाली। भानू के हाथों में रखकर कहा, ''तुमने मेरी वेजीटेरियन रोटी अपने पास रखकर मुझे यह नॉन-वेजीटेरियन रोटी क्यों दी ? मुझे अधर्मी बनाना चाहती हो ?''

''मैंने रोटी तुम्हें अपने हाथों नहीं दी, तुमने खुद उसे उठाया था।''

''मैंने भी तुम्हें नहीं दी थी।''

अजीत फिर से बीच में आ गया।

''न तुमने दी, न उसने दी। बात खतम।''

''नहीं, बात खतम नहीं। इसने दोनों रोटियों को एक जैसे कपड़े में क्यों बाँधा ? दिन भर भूखा रहना पड़ा।''

बच्चा जोर से रो उठा। शर्मिला ने बच्चे को उठाकर उसे भानू को थमाना चाहा। भानू चिल्ला उठी, ''मैं दिन भर भूखी रही।''

''अपनी ही वजह से।''

''नहीं, तुम्हारी वजह से।''

अजीत फिर से दोनों के बीच आ गया।

''देखो, बच्चे को जोरों की भूख लगी है। अपनी तू-तू, मैं-मैं बंद करो।''

भानू ने अपने हाथ की रोटी अपने भाई को थमा दी। वह अपने हाथ की दोनों रोटियों को गौर से देखता रहा। इस हाथ से उस हाथ को करता रहा, फिर पहली रोटी अपने बहनोई को थमाई और दूसरी अपनी बहन को, और फिर बोला, ''अब सही रोटी सही जगह पर पहुँच गई है। चलो, तुम दोनों खा लो। चाय भी तैयार है।'' दोनों अपनी-अपनी रोटियों के तौलियों को खोलते हैं और फिर से गलत रोटी पाकर दोनों अजीत पर झपटते हैं। वह हँसता हुआ भागता है।

सा अ

विभाजन की विभीषिका

• भिक्खु



कथा-साहित्य के विरल हस्ताक्षर। 'सरस्वती', 'माधुरी', 'चाँद', 'विशाल भारत', 'ज्ञानोदय', 'साहित्य अमृत' सदृश पत्रिकाओं में प्रमुखता से छपते रहे। 'मौत की सराय', 'रक्त यात्रा', 'अस्तंगता', 'महाश्रमण सुनें' प्रमुख कृतियाँ हैं। इनके अलावा बीस उपन्यासों, तीन कहानी-संग्रहों एवं अंबपाली और उसके युग को रूपायित करनेवाला नाटक 'रूपलक्ष्मी' तथा शताधिक कहानियों का सर्जन। स्मृतिशेष : २९ सितंबर, २००३।

सरदार हरमहेंद्र सिंह की आपबीती

दुनिया में जिस देश में भी विभाजन हुआ है या होगा वैसा हिंदुस्तान और पाकिस्तान के विभाजन जैसा नहीं होगा। आज तक दुनिया के तमाम देशों में हुकूमतें बदली हैं, राजा बदले हैं; लेकिन प्रजा का बदलाव आज तक ऐसा न तो कभी हुआ और न कभी होगा। जिला मीरपुर में ७० प्रतिशत आबादी मुसलमान थी और ३० प्रतिशत हिंदू, सिख और अन्य कौम की थी। इस सबके बावजूद हम वहाँ पर बहुत चैन और भाईचारे के साथ रहते थे। अगर किसी मुसलमान परिवार में कोई शादी-ब्याह होता था तो वहाँ अन्य धर्मों के भी लोग खुशी-खुशी शामिल होते थे। खुशियों के साथ-साथ हम सभी एक-दूसरे के गम में भी शामिल होते थे। इसी तरह वो लोग भी हमारे सुख-दुःख में शरीक होते थे; परंतु हिंदुस्तान के विभाजन के समय उनकी आँखें ऐसी बदलीं कि एक-दूसरे को देखना भी गवारा नहीं था।

मैं अपने विद्यार्थीकाल का उदाहरण देता हूँ। एक दिन हमारा नौकर रामतीरथ घोड़े को पानी पिलाने के लिए नदी पर ले जा रहा था कि मैंने उससे अपने घोड़े की लगाम पकड़ ली और कहा, 'रामतीरथ, घोड़ा मुझे दे दे, मैं इसे पानी पिलाकर ले आता हूँ।' मैं घोड़े की लगाम पकड़कर उसकी पीठ पर बैठ गया। मुझे घुड़सवारी का बहुत शौक था और घोड़ा भी बहुत बेजोड़ था।

मेरे बैठते ही घोड़े ने सरपट दौड़ना शुरू कर दिया। मैंने उसे काबू में करने की बहुत कोशिश की, परंतु वह मेरे काबू में नहीं रहा। फिर मैंने भी घोड़े को एड़ लगाई और अपने मन में कहा कि 'चल, कहाँ तक चलता है।' घोड़ा हमारे गाँव से करीब आठ-दस मील दूर जा चुका था और शाम को सूरज भी छिपने लगा था। जब गाँव के राजा ने देखा कि बेकाबू घोड़े पर यह कौन लड़का बैठा हुआ जा रहा है तो राजाजी ने अपने चार-पाँच आदमी भेजे और वे मेरे घोड़े के आगे खड़े होकर उसे काबू में करने की कोशिश करने लगे। उन आदमियों ने मुझे घोड़े से उतारा और राजाजी के पास ले आए।

राजाजी ने मुझसे कहा, 'बेटा, तू किसका पुत्र है और यह घोड़ा लेकर कहाँ जा रहा है?' मैंने उनको सारी बात बताई। इसपर राजाजी ने कहा, 'बेटा, इस समय तुम गाँव में नहीं जा पाओगे। आज रात को तुम हमारे मेहमान बनकर यहीं रहोगे।' राजाजी ने घोड़े को अपने चार आदमियों के साथ मेरे घर भेजकर सूचित करवा दिया कि आपका बेटा मेरे पास सुरक्षित है और वह कल सुबह आपके पास सकुशल लौट आएगा।

उस गाँव में सारी आबादी मुसलिम थी और वह जानते थे कि हम सिख लोग उनके घर का बना हुआ मीट नहीं खाते। उनके गाँव में सिर्फ एक घर नाई का था, जो मुसलमान नहीं था। उन्होंने उसको बुलवाया और कहा कि हमारे एक सिख मेहमान आए हैं। तुम यह मुरगा ले जाओ और इनके रात के खाने का प्रबंध करो। खाने के बाद मुझे राजाजी ने अपनी बैठक में पूरी सुविधा के साथ रखा और दूसरे दिन सुबह अपने घोड़े पर दो-तीन आदमियों के साथ मेरे घर पहुँचाया। विभाजन के पहले हिंदू-मुसलमानों के आपसी संबंध ऐसे थे; परंतु विभाजन के तुरंत बाद एक-दूसरे के संबंध इतने बिगड़ गए कि सब एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए।

विभाजन के समय हिंदुस्तान की सभी रियासतों को हिंदुस्तान या पाकिस्तान के साथ विलय करना था। लेकिन हमारे जिले के महाराजा डोगरा थे और वहाँ की ७० प्रतिशत आबादी मुसलिम थी, तो वह इस दुविधा में थे कि वह पाकिस्तान में शामिल हों या हिंदुस्तान में ही रहें।

एक दिन महाराजा ने यह ऐलान कर दिया कि मैं बफर स्टेट रखूँगा, यानी मैं हिंदुस्तान और पाकिस्तान में से किसी में भी शामिल नहीं होऊँगा। पाकिस्तान यह चाहता था कि महाराजा पाकिस्तान में शामिल हों, क्योंकि वहाँ की ७० प्रतिशत आबादी मुसलिम था और हिंदुस्तान यह चाहता था कि महाराज डोगरा हिंदू राजपूत होने के कारण हिंदुस्तान में ही बने रहें। इसी दुविधा में पाकिस्तान ने अपने कबाइली, जो कि पाकिस्तानी सेना के सिपाही ही थे, भेजकर कश्मीर पर हमला कर दिया। उन कबाइलियों ने वहाँ पर बहुत लूट-मार की और श्रीनगर तक बढ़ आए। उस वक्त महाराजा ने यह समझा कि अब यह मेरे बूते से बाहर की बात है तो महाराजा ने भारत सरकार से विलय का अनुरोध किया, साथ-ही-साथ इन आक्रमणकारियों से निजात पाने का भी अनुरोध किया। इसपर भारत सरकार की ओर से तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू, गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल आदि ने भारतीय संसद् में फैसला लिया कि महाराजा के साथ वहाँ की जनता के लोकप्रिय प्रतिनिधि भी अगर अनुरोध करें तब भारत सरकार इस बारे में कोई फैसला ले सकती है। उस समय के कश्मीर के लोकप्रिय नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला जेल में बंद थे। महाराजा को उनको छोड़ना पड़ा और वे दोनों श्रीनगर से दिल्ली आए और तब उन्होंने भारत सरकार के साथ विलय के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद भारत सरकार ने कश्मीर के लिए हवाई मार्ग से तुरंत सैनिक मदद भेजी, जिससे कश्मीर में कबाइलियों का बढ़ना तुरंत रुक गया और दो-चार दिन में ही भारतीय सेना ने कबाइलियों को उड़ी सेक्टर तक खदेड़ दिया।

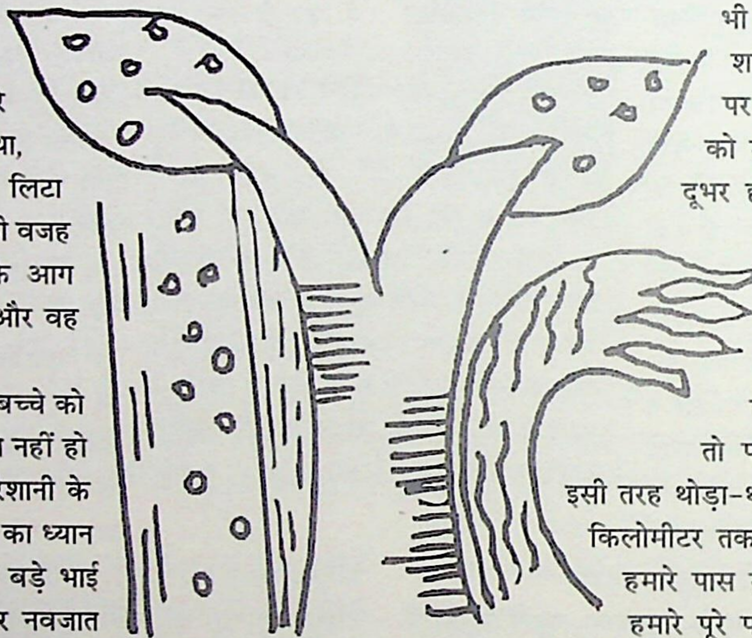
छावनी की दीवार फाँदते समय जिन लोगों को गोलियाँ लगी थीं उनकी लाशें वहीं पड़ी थीं और वहाँ पर खून का दरिया बह रहा था। वहीं पर माताजी ठोकर खाकर सिर के बल गिर पड़ी थीं और खून के दरिया में गिरने के कारण उनके केश भी खून से तर हो गए थे और इसी कारण उनके दुपट्टे और बालों से लगातार खून टपक रहा था।

मेरा पैतृक निवास मीरपुर जम्मू के मुसलिम-बहुल हिस्से में था। वहाँ तक भारतीय सेना पूर्ण रूप से सक्रिय नहीं हो सकी, जिसके परिणामस्वरूप हमें भारतीय सेना की तरफ से कोई मदद नहीं मिल पाई। वहाँ सिर्फ जम्मू-कश्मीर सेना के लगभग एक हजार जवान पाकिस्तान के इस व्यापक आक्रमण का मुकाबला नहीं कर सके और लगभग एक-डेढ़ माह लगातार चली लड़ाई के बाद जम्मू-कश्मीर सेना ने महसूस किया कि अब यह लड़ाई उनके बस की बात नहीं है। उन्हें मीरपुर कस्बे को छोड़कर किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाना चाहिए। एक दिन दोपहर में लगभग बारह बजे जम्मू-कश्मीर की सेना ने वहाँ से मोरचा हटाना शुरू कर दिया और वहाँ के निवासियों से कहा कि आप भी हमारे साथ चलो, ताकि हम आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा सकें। सेना की छावनी की पूर्व की एक दीवार तोड़कर उन्होंने रास्ता बनाया और सुरक्षित स्थान की तरफ बच निकले। इसपर वहाँ के सभी निवासियों ने भागना शुरू कर दिया। जब पाकिस्तान के कबाइली आक्रमणकारियों ने देखा कि यहाँ से लोग भाग रहे हैं तो उन्होंने दोनों तरफ से गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं, जिससे बहुत सारे लोग मारे गए। वहाँ भगदड़ का ऐसा माहौल हुआ कि लोगबाग अपने परिवार से बिछुड़ गए और एक-दूसरे की परवाह न करते हुए सिर्फ अपने प्राण बचाने की कोशिश में इधर-उधर भागते रहे। वहाँ से निकलकर हम लोग पाँच-छह किलोमीटर दूर एक पहाड़ी की तरफ जा रहे थे तो मेरे मुहल्ले के एक मित्र ने बताया कि तुम्हारी माताजी को गोली लगी है और उनके सिर से खून बह रहा है। इससे उनका दुपट्टा भी खून से लथपथ हो गया था। यह सुनकर मैंने जब पीछे की तरफ अपनी माताजी की तलाश में भागना शुरू किया तो मेरे एक और मित्र ने पूछा कि तुम पीछे की तरफ क्यों जा रहे हो? इसपर मैंने अपनी माताजी की तलाश की बात कही। तब उसने कहा कि 'मैंने तुम्हारी माताजी को आगे की तरफ जाते हुए देखा है, वह पीछे नहीं हैं। हाँ, उनके सिर से खून जरूर बह रहा था।' यह सुनकर मैं फिर से आगे पहाड़ी की तरफ माताजी को ढूँढ़ते हुए चलने लगा। लगभग एक-दो मील चलने के बाद मैंने दूर से देखा कि मेरी माताजी भी पहाड़ी की तरफ ही जा रही हैं। मैं दौड़कर माताजी के पास पहुँचा और उनसे पूछा, 'माताजी, आपको कहाँ चोट लगी है?' इसपर मेरी माताजी ने कहा, 'बेटा, यह तो पता नहीं कि मुझे कहाँ चोट लगी है, पर मेरे दुपट्टे से खून बह रहा है।' मैंने देखा कि माताजी का दुपट्टा खून से भरा हुआ था और दुपट्टे से खून टपक रहा था। माताजी को अच्छी तरह देखने के बाद मुझे महसूस हुआ कि माताजी को कोई गोली नहीं लगी है, लेकिन छावनी की दीवार फाँदते समय जिन लोगों को गोलियाँ लगी थीं उनकी लाशें वहीं पड़ी थीं और वहाँ पर खून का दरिया बह रहा था। वहीं पर माताजी ठोकर खाकर सिर के बल गिर पड़ी थीं और खून के दरिया में गिरने के कारण उनके केश भी खून से तर हो गए थे और इसी कारण उनके दुपट्टे और बालों से लगातार खून टपक रहा था।

चलते-चलते शाम हो गई और सभी थककर चूर थे तो हमने देखा कि पीछे से घुड़सवार पाकिस्तानी कबाइली चिल्ला रहे थे, 'आप लोग भागिए नहीं, आप तो हमारे ही भाई हैं। आप सभी अपने गाँव वापस लौट चलिए। वहाँ हम आपको पूरी सुरक्षा प्रदान करेंगे।' लेकिन किसी ने भी उनकी बात पर यकीन नहीं किया और आगे की तरफ ही चलते रहे। आखिर जब बिलकुल अँधेरा हो गया तो लोगों को भ्रम हो गया कि उन्हें कौन से रास्ते पर जाना चाहिए। इसी दौरान तीनों तरफ की पहाड़ियों से 'इधर आ जाओ, इधर आ जाओ' की आवाजें आ रही थीं। उसमें से एक आदमी ने अपना नाम लेकर कहा, 'मैं आपका भाई गणेश सिंह बोल रहा हूँ, आप लोग इस तरफ आ जाइए।' इसपर गणेश सिंह, जो हमारे ही साथ उस भीड़ में था, ने आगे बढ़कर कहा

कि मैं गणेश सिंह आप लोगों के बीच में मौजूद हूँ, यह कोई फर्जी गणेश सिंह है। आप इस आदमी की बात पर गौर न करें। इसपर सभी लोग परेशान होकर वहीं पर बैठ गए और सबने फैसला किया कि अब आगे का सफर सुबह होने पर ही शुरू किया जाएगा। इस वाकये के कारण सब लोग तीन गुटों में विभाजित हो गए। कुल चालीस हजार लोगों में से हमारी टोली में लगभग बारह हजार आदमी चलने लगे। बाकी दो टोलियों के लगभग अट्ठाईस हजार आदमियों में से बुजुर्ग और बच्चों को पाकिस्तानी कबाइली वहीं पर अली बेग नामक एक कैंप में ले गए और बाकी बचे जवान आदमी-औरतों को उन्होंने गोलियों से भून डाला। सिर्फ हमारी टोली ही सुरक्षित भारतीय सेना की छावनी 'झंगड़' में पहुँच सकी।

लगातार सात-आठ घंटे चलने की वजह से मेरी बड़ी भाभी, जो उस समय गर्भवती थीं, ने मेरी माताजी को बताया कि उसे प्रसव-वेदना होने लगी है। उस समय हमारे पास एक गज कपड़ा भी नहीं था, जिसका बिछौना बिछाकर उनको लिटा सकते। उस समय बहुत सर्दी होने की वजह से वहीं से लकड़ी इकट्ठी करके आग जलाई, जिससे गरमाहट बनी रहे और वह सर्दी से बच सकें।



इसी दौरान मेरी भाभी ने एक बच्चे को जन्म दिया। बच्चे की कोई देखभाल नहीं हो सकी, क्योंकि भय, थकान और परेशानी के कारण सभी लोग पस्त थे; पर सभी का ध्यान भाभी की तरफ ही था। इसपर मेरे बड़े भाई रो रहे थे कि अब मेरी पत्नी और नवजात बच्चे का क्या होगा? उसी समय हमारे गाँव के एक बुजुर्ग आदमी ने मेरे भाई से उनके रोने का कारण पूछा तो भाई ने उन्हें अपनी परेशानी का कारण बताया और कहा कि मेरे पास पत्नी और बच्चे को सर्दी से बचाने का कोई साधन नहीं है। इसपर उस बुजुर्ग आदमी ने पूछा कि आपके पास गुड़, मुनक्का आदि कोई चीज है? मेरे भाई ने 'न' कहते हुए सिर हिलाया। तब उस बुजुर्ग आदमी ने कहा कि तुम जंगल में से किसी पेड़ के कुछ पत्ते ले लो। और फिर उन्होंने अपनी जेब से एक शीशी निकालकर उसमें से एक तिनका भर दवाई निकालकर, पत्ते पर रखकर भाई को देते हुए कहा कि तुम यह अपनी पत्नी को खिला दो। मैं अभी यहीं रुका हुआ हूँ, अगर कोई भी परेशानी हो तो तुरंत मुझे बताना। दवाई खाते ही भाभी के शरीर में गरमी आनी शुरू हो गई और उनकी तबीयत में सुधार होने लगा; परंतु भयानक सर्दी के कारण बच्चा नहीं बच सका। हमने बच्चे को वहीं पर एक गड्ढा खोदकर दफना दिया। उस समय परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि हम उस बच्चे को कफन भी नहीं दे पाए। रात गुजरने के बाद सुबह मेरे भाई ने उस बुजुर्ग का शुक्रिया अदा करते हुए कहा कि आप मुझे इस दवाई की एक-दो खुराक और दे दें, ताकि जरूरत पड़ने पर मैं अपनी पत्नी को दे सकूँ। भाई के इस अनुरोध पर बुजुर्ग ने उनको दवाई की दो खुराक दे दीं। सुबह होते ही हर आदमी ने अपनी जान बचाने के लिए फिर से आगे बढ़ना शुरू कर दिया। मेरी भाभी इस हालत में नहीं थीं कि वह चलना तो दूर, उठकर खड़ी भी हो सकें। उन्होंने रोते हुए सबसे कहा कि आप सभी मुझे यहीं छोड़कर आगे चले जाओ, ताकि आप सबकी जान बच सके। हम सभी उनको अकेले छोड़ने को तैयार नहीं थे। तब मैंने यह फैसला किया कि मैं भाभी को अपनी पीठ पर उठाकर चलूँगा। यह उस समय की बात है जब मेरी उम्र लगभग सोलह-सत्रह साल की थी और मैं शक्ति से भरपूर था। भगवान् ने भी हालात को देखते हुए मुझे अपार शक्ति दी, जिससे मैं भाभी को पीठ पर उठाकर चल पड़ा। लेकिन भाभी को उठाकर दस-पंद्रह कदम चलना भी दूभर हो गया। मेरी भाभी शरीर से भारी थीं। तभी जम्मू-कश्मीर सेना के एक जवान ने मुझे प्रेरणा देते हुए कहा कि आप आराम से चलो, मैं सुरक्षा के लिए आपके साथ-साथ चलूँगा। मैंने भाभी को दोबारा उठाया तो पच्चीस-तीस कदम ही चल पाया। इसी तरह थोड़ा-थोड़ा चलते हुए मैंने भाभी को आधा किलोमीटर तक बिना रुके उठाना शुरू कर दिया। हमारे पास खाने की कोई चीज नहीं थी; परंतु हमारे पूरे परिवार को यह फिक्र रहती थी कि खाने की कोई चीज मिलने पर स्वयं न खाकर मुझे खिलाएँ, ताकि मेरी हिम्मत बनी रहे और मैं भाभी को उठाकर चलता रहूँ। दोपहर के समय हम एक स्थान पर थोड़ा आराम करने के लिए रुके तो रात की ही तरह जंगल से लकड़ियाँ काटकर आग जलाई, जिससे भाभी को कुछ आराम मिल सके। बहुत थकान के कारण जब आग की गरमी मिली तो मुझे नींद आ गई। सोते-सोते मेरे पाँव में पहनी चप्पल ने कब आग पकड़ ली, इसका मुझे आभास ही नहीं हुआ। जब चप्पल जलने से मेरे पाँव के अँगूठे को भी सेंक लगा तो मेरी नींद खुल गई। इस आग के कारण मेरी एक चप्पल भी नष्ट हो गई और आगे का सफर मैंने एक चप्पल से ही शुरू किया। दूसरे दिन भी उसी तरह चलते-चलते रात को लगभग दस-ग्यारह बजे हमें जंगल में पटियाला सेना के जवान मिले। उन्होंने हमारी हिम्मत बँधाते हुए कहा कि यहाँ से लगभग चार-पाँच किलोमीटर दूर ही झंगड़ ब्रिगेड मुख्यालय है। वहाँ पहुँचकर आपको पूरी सुरक्षा और सहायता मिलेगी। सिपाहियों ने

जब मुझे भाभी को उठाकर चलते देखा तो पूछा कि तुमने अपनी बीवी को क्यों उठाया हुआ है ? मैंने उनको बताया कि यह मेरी भाभी हैं और इनके साथ ऐसा हादसा हुआ है। तब सभी ने मेरे साथ हमदर्दी जाहिर की और मुझे खाने को कुछ-न-कुछ दिया।

सुबह लगभग ढाई बजे हम सभी झंगड़ पहुँचे तो सेना के जवान सिर्फ मुझे और मेरी भाभी को वहाँ पर स्थित 'एम.आई.' रूम, जहाँ पर प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध थी, ले गए और रात के बचे हुए खाने में से थोड़ा-बहुत खाने को दिया। वह खाना खाकर हमें बहुत सुकून मिला और हमने कुछ देर आराम किया।

मैं जब दिल्ली पहुँचा तो आवास की समस्या सबसे पहले उठी। जीवन-निर्वाह के लिए भी कोई काम चाहिए था; परंतु न तो आवास मिला और न ही कोई समुचित काम ही। मैंने आर्मी की सिविल विंग के 'एम.ई.सी.' में भी काम पाने की कोशिश की, लेकिन असफल रहा।

दरअसल, मैं अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई नहीं कर पाया था। मैंने अपने चाचाओं से कहा कि अगर वे मेरी आर्थिक सहायता करें तो मैं अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर लूँ। पर वे भी ऐसी स्थिति में नहीं थे कि मेरी आर्थिक सहायता कर सकते। हारकर मैंने एक विभाग में ड्राफ्टमैन का काम शुरू किया और धीरे-धीरे विभागीय परीक्षाएँ पास करके आर्मी की सिविल विंग में जगह पा ली। यहाँ भी मुझे शुरुआत ड्राफ्टमैन के रूप में ही करनी पड़ी। विभागीय परीक्षाओं के बाद ही मेरी पदोन्नति संभव हुई। सौभाग्य से दिल्ली में अपने पूर्व परिचित आई.आर.एस. के अधिकारी से मेरी भेंट हो गई। मेरे दादाजी ने इस अधिकारी के बुरे दिनों में आर्थिक मदद करके उसकी उच्च शिक्षा में सहायता की थी। यह भला अधिकारी वह सब अभी तक नहीं भूला था। दिल्ली में ठीक से बस जाने में उसने मेरी बहुत मदद की। कुछ वर्षों तक तो संघर्ष करता रहा, उसके बाद भगवान् की दया से मेरी सब समस्याएँ सुलझती चली गईं और मैं हर दृष्टि से एक अच्छी स्थिति में आ गया।

———— × ————

प्रेमनाथ ठाकुर की आपबीती

मेरा नाम प्रेमनाथ ठाकुर, पिता का नाम श्री जगन्नाथ ठाकुर और माता का नाम श्रीमती सुंदर देवी है। मैं कमालिया, जिला लायलपुर वेस्ट, पाकिस्तान का रहनेवाला था। वहाँ हम कई पुश्तों से रह रहे थे। हमारी बहुत सारी जमीन कमालिया और उसके बराबर के इलाकों में थी, जिसकी सिंचाई कुएँ या नहरों से होती थी। पैदावार भरपूर होती थी। इसके अलावा हमारे पास बहुत सी भेड़ें थीं, जिनसे हम ऊन का व्यापार करते थे। अनाज मंडियों में हमारी दो दुकानें थीं—एक मियाँ चन्नु, जिला मुल्तान में और दूसरी माणकबमरी में। कमालिया में हमारा पुश्तैनी मकान था, जो करीब पाँच सौ गज में फैला था और एक हिस्सा उसका तीन मंजिला था। घर के अंदर मवेशियों के लिए अलग हॉल था। उनकी देखभाल और सामान के लिए एक अलग कमरा था। घर के अंदर हवेली में कुश्ती का एक अखाड़ा था। मार्च १९४७ में हमारे पिताजी ने करीब सौ गज जमीन, हमारे पिछवाड़े लगी हुई, एक मुसलमान से खरीदी थी और उसे मकान में मिला लिया। हमारे तीन तरफ मुसलमान रहते थे; लेकिन वे सब मजदूरी का काम करनेवाले थे। उनमें से बहुत सारे हमारे ही यहाँ धोबी, मवेशियों की देखभाल, दूध निकालने या खेतों से पैदावार लाने-ले जाने का काम करते थे। अपनी जरूरत के लिए हमारे पिताजी ने एक घोड़ी भी घर पर रखी हुई थी। जब हमारे पिताजी जमीन खरीदने लगे तो हमारे मिलनेवालों ने बहुत समझाया कि अब पाकिस्तान बनने वाला है। आप हालात साफ होने दें, उसके बाद, कोई ऐसा काम करें। लेकिन हमारे पिताजी को पूरा यकीन था कि हम यहाँ से कहीं नहीं जानेवाले। १५ अगस्त, १९४७ को जब सचमुच विभाजन हो गया तो हम लोगों को बड़ा धक्का लगा और महसूस हुआ कि शायद कुछ गड़बड़ी होगी। फिर भी हमारे शहर में, जिसकी आबादी अठारह हजार थी और गाँव में चारों तरफ बहुत से हिंदू रहते थे, चैन-आराम से अगस्त के आखिर तक रहे। इस बीच आर.एस.एस. ने हम लोगों को सलाह दी कि हम लड़ाई के लिए तैयार रहें, अगर मुसलमान हमारे ऊपर हमला करते हैं तो। पहले तो हमें यकीन ही नहीं आता था कि वे मुसलमान, जो सुबह से शाम तक हमारे छोटे-छोटे काम करते हैं, झुककर बात करते हैं और जिनका गुजर-बसर हमारे पैसों से होता है, वे हमारे ऊपर हमला करेंगे! लेकिन फिर भी हम लोगों ने छोटी-छोटी बोतलों में तेजाब, मिट्टी का तेल डालकर और उसके ऊपर सल्फर के कागजों की लपेट देकर बहुत बड़ी तैयारी की कि अगर कोई हम पर हमला करने आता है तो हम ऊपर से ये सब फेंकेंगे, जो कि बम का काम करेंगे। इसके अलावा हमने अपनी छतों पर ईंटें इकट्ठी करके रखीं, जो कि हमलावरों के नजदीक आने पर हम उनपर फेंकेंगे और नजदीक आने पर तलवार और भाले से उनका मुकाबला करेंगे। खबरें चारों तरफ से आ रही थीं कि लाहौर, अमृतसर में हिंदू-मुसलमानों की लड़ाइयाँ हो रही हैं। १ सितंबर को हमें खबर मिली कि हजारों मुसलमान इकट्ठे होकर

बलौच फौज के साथ चारों तरफ के गाँवों पर हमला करके हिंदुओं को मार रहे हैं। जो हिंदू मर्द और औरत बच सके, भागकर कमालिया पहुँच गए। यह मार-धाड़ पाँच दिन तक जारी रही। उसके बाद बलौच फौज के साथ हजारों मुसलमानों ने कमालिया पर हमला कर दिया। इन मुसलमानों में कमालिया का रहनेवाला कोई नहीं था। सभी दूर-दूर से इकट्ठे होकर आए थे। हम तैयार होकर छतों पर जाकर बैठ गए। लेकिन थोड़ी देर में देखते हैं कि बलौच फौज के सिपाही किसी ऊँची छत पर पहुँचकर गोलियाँ दाग रहे हैं, जिस वजह से छतों पर चढ़े हुए हिंदू नीचे छलाँग लगाकर अपनी जान बचाने की कोशिश कर रहे हैं। चारों तरफ से गोलियों की आवाजें आ रही थीं और नीचे गलियों में हजारों मुसलमान तलवार-भाले लेकर मोटे शहतीरों से मकानों के दरवाजों को तोड़कर हिंदुओं को धड़ाधड़ मार रहे थे। ऐसी सूरत में न बराबर की लड़ाई हो सकती थी और न ही हमारे तलवार-भाले और बम काम में आ सकते थे। मैं अपने घरवालों के साथ भागकर साथवाली एक गली के मकान में, जो बहुत छोटा और अँधेरे में था, जाकर दरवाजा बंद करके चुपचाप बैठ गए। देखते-ही-देखते मुसलमान हमारी छतों और घर में आकर हिंदुओं की औरतों-बच्चों को भी मार रहे थे। हमारी सीढ़ी के दरवाजे से निकलकर 'अल्लाह हू अकबर' के नारे लगाते हुए मुसलमान छत पर चढ़े। भगवान् ने शायद हमें बचाना था, इसलिए उनको हमारे अँधेरे कमरे का दरवाजा नजर नहीं आया। हम भूखे-प्यासे चौबीस घंटों तक उस जगह पर छिपे रहे। जब मैंने बाहर निकलकर देखा तो पता लगा कि कमालिया के मुसलिम खरल खानदान के रईस आकर मार-धाड़ को रोकने की कोशिश कर रहे हैं और हमें एक आर्यसमाज कन्या पाठशाला में इकट्ठे होने के लिए कह रहे हैं। हमारे पास और कोई चारा नहीं था। अत: हम सभी आर्यसमाज पाठशाला में जा रहे थे कि अचानक बलौच सिपाहियों ने गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं, जिसमें कई सौ की जानें गईं। उनमें एक मेरे मामाजी भी थे, जिन्होंने मेरा हाथ पकड़ा हुआ था। आर्यसमाज स्कूल में कुछ खाने का इंतजाम नहीं था। अत: कुछ हिंदू जवान रात को निकलकर आस-पड़ोस की दुकानों से जो कुछ भी खाने को मिलता था, उठाकर ले आते थे। स्कूल पर भी बलौच सिपाहियों ने कई बार गोलियाँ चलाईं और कई लोग मारे गए। आखिर कई दिनों बाद वो खरल मुसलमान, जो कि शहर के चौधरी भी थे, ने बहुत अफसोस जाहिर किया और हमें अनाज मंडी जाने की सलाह दी, क्योंकि स्कूल में तो सारे बचे हुए हिंदू समा ही नहीं सकते थे। उसके बाद सभी हिंदू अनाज मंडी में पहुँच गए और मार-धाड़ बंद सी हो गई। जो कमालिया के मुसलमान थे वे खाने-पीने का सामान लेकर सब जानकारों के पास आए और हर जरूरत की चीज पहुँचाने की कोशिश की। अनाज मंडी में भी अनाज बहुत था, इसलिए जितने दिन लोग वहाँ रहे, उनको खाने-पीने की कोई दिक्कत नहीं हुई और स्थानीय मुसलमानों ने हिंदुओं के साथ जाकर उनके घरों से कुछ बचा-खुचा सामान लाकर हमारी सहायता की। उसके बाद दो-तीन रेलगाड़ी आईं, जो यहाँ के हिंदुओं को लेकर हिंदुस्तान आईं; लेकिन हमारे परिवार के सदस्य भीड़ की वजह से उसमें नहीं चढ़ सके। छह ट्रक भारतीय सेना के साथ वहाँ आए, जिनमें हम बँटकर दो ट्रकों में हिंदुस्तान के लिए ६ सितंबर, १९४७ को रवाना हुए। लाहौर में हमारा ट्रक खराब हो गया और लहू से सनी तलवारें लिये हमारे चारों तरफ मुसलमान इकट्ठा हो गए। हमारी रखवाली के लिए एक ही जवान था। खुशकिस्मती से भारतीय सेना की जीप हमें ढूँढ़ते हुए वापस आ गई और हमें बचा लिया गया। अमृतसर पहुँचने के बाद मैं और मेरे पिताजी, जो एक ट्रक में थे, घर के बाकी सदस्यों को छराटा के रिफ्यूजी कैंप में ढूँढ़ने लगे। तीन दिन के बाद मेरी माताजी, बहनें और छोटा भाई हमें एक कैंप में मिले, जिसके बाद हम सब इकट्ठे रह पाए।

> **थोड़ी देर में देखते हैं कि बलौच फौज के सिपाही किसी ऊँची छत पर पहुँचकर गोलियाँ दाग रहे हैं, जिस वजह से छतों पर चढ़े हुए हिंदू नीचे छलाँग लगाकर अपनी जान बचाने की कोशिश कर रहे हैं। चारों तरफ से गोलियों की आवाजें आ रही थीं और नीचे गलियों में हजारों मुसलमान तलवार-भाले लेकर मोटे शहतीरों से मकानों के दरवाजों को तोड़कर हिंदुओं को धड़ाधड़ मार रहे थे। मैं अपने घरवालों के साथ भागकर एक साथवाली गली के मकान**

———— × ————

वेदव्रत मेहता की आपबीती

यों तो विभाजन की बहुत सारी ऐसी घटनाएँ हैं जिनका स्मरण करते ही आज भी शरीर सिहर उठता है। कुछ भुक्तभोगी घटनाएँ हैं, कुछ समाचार-पत्रों द्वारा पढ़ी हुई घटनाएँ हैं, कुछ मित्रों और संबंधियों से सुनी-सुनाई घटनाएँ हैं। इसी संदर्भ में मैं एक घटना, जो कि मेरी छोटी बहन (सात बहन-भाइयों में तीसरे नंबर की) के साथ घटी, का संक्षिप्त विवरण देने की धृष्टता कर रहा हूँ। मेरी ये बहन पाकिस्तान के ओकाडा शहर में अपने पति व छोटे बच्चे सहित रहती थी। इसके पति का कारोबार आढ़त का था। २२ अगस्त, १९४७ के दुर्भाग्यपूर्ण दिन ये और संबंधियों के साथ ओकाडा से अपने पैतृक नगर अहमदपुर सरकिया (बहावलपुर रियासत) के लिए एक ट्रेन से रवाना हुए, क्योंकि इन सबके दिमाग में वहाँ पर ज्यादा सुरक्षा की आशा थी। जैसे ही यह ट्रेन चीचावतनी स्टेशन पर पहुँची, आततायियों के एक झुंड ने चुन-चुनकर हिंदू व सिख परिवारों की हत्या करनी शुरू कर दी। मेरी बहन के साथ इसके जेठ के परिवार के कुछ सदस्य भी थे। बलवाइयों द्वारा इन सबकी व मेरे बहनोई की भी निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी गई; परंतु

मेरी बहन व उसका छोटा बच्चा, जो कि उस समय केवल चार माह का था, किसी प्रकार बच गए। बच्चा तो स्टेशन पर पड़ा रहा और बहन मुरदों के ढेर में। जब किसी आततायी ने देखा कि इस देवी के कानों में बालियाँ हैं तो उसने निर्दयतापूर्वक उन बालियों को खींचा। फिर भी मेरी बहन ने उफ तक नहीं की और उस पीड़ा को बरदाश्त किया। उसके मन में यही विचार था कि इन मुरदों के साथ ही मैं जल मरूँगी; परंतु विधि को कुछ और ही मंजूर था। किसी कारणवश वह थोड़ा सा हिली, जिससे एक बुजुर्ग विधर्मी को दया आई और उसने उसको निकाला। पूछताछ करने पर मेरी बहन ने बताया कि मेरे साथ एक छोटा बालक भी है। ढूँढ़ने पर बालक तो स्टेशन के पास पड़ा मिल गया, परंतु जेठ के परिवार में से कोई भी जीवित न मिला। उसने मेरी बहन से पूछा कि आप कहाँ जाना चाहती हो? आपका क्या इरादा है? उसे थाने में भी बुलाया गया, परंतु उसने जाने से इनकार कर दिया। मेरी बहन ने बताया कि वह अहमदपुर सिरकिया (डेरा नवाब साहिब रेलवे स्टेशन) जाना चाहती है, क्योंकि उसका पैतृक गाँव वहाँ पर है और उसके मामा वहीं रहते हैं।



उपर्युक्त बुजुर्ग हमारे मामाजी को जानते थे, अत: उन्होंने आश्वासन दिया कि मैं खुद तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा। उसके साथ दो सिपाही भेजकर उसे ट्रेन में रवाना कर दिया गया। इसको एक महिला सवारी डिब्बे में बैठाया गया, जहाँ पर मुसलिम औरतें हिंदुओं के बारे में बहुत कुछ अनाप-शनाप कह रही थीं। वे यह सिद्ध करना चाहती थीं कि इनके साथ ऐसा ही होना चाहिए था। कुछ देर बाद सिपाही इनको वहाँ से निकालकर एक दूसरे डिब्बे में ले गए, जहाँ पर और लोग भी थे। अपने गंतव्य स्थान—डेरा नवाब स्टेशन—पर जब वह उतरी तो सिपाही उनको सकुशल पहुँचाने का इनाम माँगते हुए उनके पीछे-पीछे बाहर तक आए। तब बहन ने कहा कि मेरे पास तो तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है। तब और लोगों, जिनमें बुजुर्ग भी थे, ने सिपाहियों को लताड़ा कि क्या तुम्हारी आत्मा बिलकुल ही मर गई है। तुम इस औरत से इस हालत में भी इनाम माँग रहे हो। तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तब कहीं जाकर सिपाहियों ने इसका पीछा छोड़ा। डेरा नवाब साहब स्टेशन पर रेलवे में ही काम करनेवाले अपने एक परिचित सज्जन दिखाई दिए। इसने पुकारा, परंतु वे सज्जन इसको न पहचानने का बहाना करते हुए आगे निकल गए, क्योंकि वह अपनी पहचान हिंदू के रूप में नहीं देना चाहते थे। केवल इतना ही कह गए कि माई, ठहर, मैं अभी देखता हूँ। इसके बाद बहन रेलवे स्टेशन से बाहर निकली, जहाँ पर उसे एक बुजुर्ग मिले। उनके पूछने पर इसने अपने गंतव्य स्थान पर जाने की इच्छा जताई। वह सज्जन इसको ताँगे में सवार करके कई और सवारियों के साथ शहर की तरफ ले गए। जैसे ही शहर में पहुँचे तो इसे रिश्ते में अपने नाना के भाई के दर्शन हुए। पहले तो उन्होंने पहचाना नहीं, क्योंकि कपड़े और बाल खून से लथपथ थे, फिर थोड़ी देर के बाद जब पहचान पाए तो हमारी माता का नाम लेकर पूछा, 'क्या तू उसकी बेटी है?' इसपर मेरी बहन के 'हाँ' कहने पर वह उसे घर ले गए और वहाँ पहुँचने पर उनकी पत्नी ने भी न पहचानते हुए कहा कि किसको ले आए हो। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'क्या तुम अंधी हो गई हो? तुम इसे नहीं पहचानती हो?' फिर उसको वहीं नहला-धुलाकर हमारे पैतृक घर, जहाँ पर हमारे चाचाजी आदि का सारा परिवार था, पहुँचा दिया गया। क्योंकि हमारे मामाजी उस रियासत के नवाब के साथ कराची गए हुए थे, कारण कि वे नवाब के मुलाजिम थे। वहाँ से तीन-चार महीने के बाद जब काफिला ट्रकों में भारत के लिए रवाना हुआ तो वह भी भारत आ गइ। इसका वह नन्हा बच्चा भारत में ही पढ़ा-लिखा और यहीं स्टेट बैंक में कार्यरत है।

लाहौर और लायलपुर रेलमार्ग पर एक नगर साँगला हिल स्थित है। मेरी बड़ी बहन का परिवार वहाँ पर रहता था। इनके ससुर और पति एक ब्रिटिश फर्म मैसर्स राली ब्रदर्स में कार्यरत थे। सारा परिवार एक अहाते में रहता था। जैसा कि मुझे याद है, उसी २२ अगस्त, १९४७ के दिन इस परिवार को वहाँ से निकालकर उस जगह पर ले जाया गया जहाँ पर बाकी लोग भी भारत आने के लिए इकट्ठा थे। जब यह परिवार अपने घर से निकल रहा था तो इन्होंने अपने गहनों व धन की पोटली साथ ले ली, वहाँ इन्हें धमकाकर कहा गया कि इसपर तुम्हारा कोई हक नहीं है, इसे यहीं मेज पर छोड़ दो। मरता क्या न करता, उन्हें धन की पोटली वहीं पर रख देनी पड़ी। जाते हुए रास्ते में न जाने क्या हुआ कि इनके दो लड़कों, एक विवाहित और दूसरा अविवाहित, को गोली का निशाना बनाकर ढेर कर दिया गया। यह दुःख अभी तक इस परिवार का पीछा नहीं छोड़ रहा है। मेरी बड़ी बहन अब इस संसार में नहीं है, परंतु यह दुःख भरी दास्ताँ हम सबको यदा-कदा आज भी कचोटती रहती है।

घटनाएँ तो बहुत सारी हैं, परंतु मैं समझता हूँ, उपर्युक्त दो घटनाओं से पाठकगण समझ जाएँगे कि देश का विभाजन वहाँ से आनेवाले हिंदू भाई-बहनों के लिए कितना कष्टदायी और कितना भयावह रहा होगा! जब तक पाकिस्तान की तरफ से आए लोग जीवित हैं, ये हादसे भुलाए नहीं जा सकेंगे। परमात्मा से प्रार्थना है कि मनुष्य जाति में प्रेम-भाव उत्पन्न हो और इस प्रकार की घटनाएँ, जो कि अब भी किसी-न-किसी रूप में जारी हैं, मिट जाएँ और संसार के लोग सुख की साँस ले सकें।

सा अ

खँडहर

• मनु शर्मा

गाँव के छोर पर पुराने शिव-मंदिर की तरह सुनसान, सूखे तालाब की तरह उदास और सियार के रोने की तरह मनहूस मेरे घर के पास एक खंडहरनुमा मकान है, जिसमें एक बूढ़ा कभी-कभी दिखाई देता है। वह कब से इसमें रहता है? उसकी वल्दियत-सकूनत क्या है, यह मुहल्ले का कोई नहीं जानता। जब से मैं इस मुहल्ले में आया हूँ, तब से खंडहर में 'बूढ़े बाबा' के नाम से ही उसे जानता हूँ। गोया वह संदर्भहीन प्राणी या खंडहर से ही संदर्भित होता है।

हिमानी दाढ़ी-मूँछों और लंबी जटिल केशराशि से आच्छादित उसका व्यक्तित्व जब पुरानी लाठी टेकता आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकलता है, तब अस्सी के पार के वय-भार से झुकी उसकी गरदन अपनी शरीर यष्टि पर समकोण बनाती दिखाई देती है। दाएँ-बाएँ बराबर सहज रूप से हिलती यह गरदन इस बात का भी एहसास कराती है कि इसे अपनी कब्र की जमीन की तलाश है। बहुधा लोगों से इसे अपना कागज खो जाने की शिकायत करते हुए भी मैंने सुना है।

पर यह 'कागज' उससे संबंधित है या उसके खंडहर से—कोई नहीं जानता। यह सवाल कभी मेरे जेहन में भी नहीं आया, क्योंकि मैं उसमें और उस खंडहर में कोई विशेष फर्क नहीं कर पाता था। अगर फर्क था तो बस इतना ही कि निर्जीव होने का और दूसरा साँस लेता, या साँसों का बोझ ढोता खंडहर। इस प्रकार एक खंडहर खंडहर में रहता था। फिर भी दोनों का अस्तित्व था और दोनों एक होकर भी एक-दूसरे से काफी अलग थे। इस अलगीकरण में बूढ़े की साँसों की अहम भूमिका थी।

खाँसता हुआ बूढ़ा कभी-कभी ही खंडहर के बाहर निकलता था। तब ऐसा लगता था कि किसी भूले-बिसरे इतिहास से निकलकर कोई प्रेतात्मा चली आ रही है। वह न तो किसी से कुछ बोलता और न किसी से उसका दुआ-सलाम ही होता। गली के कुछ खुराफाती अपनी शरारत-भरी अदा में उसे 'पागल बाबा, सलाम' कहकर चिढ़ाते। वह निरपेक्ष भाव से सुनता और आगे बढ़ जाता। वह मुहल्ले से उपेक्षित था या मुहल्ला उससे? इस सवाल का जवाब आज तक मेरे पास नहीं है।

उस खंडहर पर मुहल्ले के कुछ दबंग लोगों की गिद्ध दृष्टि थी, जिन्हें अपने मनी और मसल पॉवर से कुछ भी कर डालने का गहरा विश्वास था। उनकी दृष्टियाँ आपस में टकराती भी थीं और कभी-कभी उनसे



हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार। लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास, दो सौ कहानियों और अनगिनत कविताओं के प्रणेता। 'तीन प्रश्न', 'के बोले माँ तुमि अबले', 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'अभिशप्त कथा', 'कृष्ण की आत्मकथा' (आठ भागों में), 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'गांधारी की आत्मकथा' प्रसिद्ध उपन्यास। गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की मानद उपाधि, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'लोहिया साहित्य सम्मान' और उत्तर प्रदेश हिंदी समिति द्वारा 'साहित्य भूषण' विशेष उल्लेखनीय। स्मृतिशेष : ८ नवंबर, २०१७।

चिनगारियाँ भी छूटती थीं। फिर खून-खराबा होने और जबरन कब्जा करने की बात तक बात बढ़ जाती थी।

कोई कहता, "अभी तो चारदीवारी मुकम्मल है। पीछे की दो कोठरियाँ भी खड़ी हैं।" पर जब तेज हवा चलती है या बच्चे गली में आतिशबाजी का बम फोड़ते हैं तो उन कोठरियों की दीवारों से मिट्टी का धुआँ उठता है।

कोई कहता, "दीवारें भी जल्दी खिसकेंगी। बूढ़ा भी खिसकने ही वाला है। करारे का पेड़ है। अब ढहा तब ढहा।"

"बस, इसी विश्वास पर अटके रहो। अरे, न पापी मरे, न खंडहर ढहे।" तीसरा कहता।

फिर यह पुरानी कहावत मेरे मन में कई सवाल पैदा करती है, खंडहर से पापी का क्या संबंध है? क्या बूढ़ा पापी है? यदि पापी है तो पाप क्या है? अचानक तुलसी की पंक्ति याद हो आती, 'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'। पाप की दूसरी परिभाषा शायद इससे अच्छी नहीं हो सकती। फिर बूढ़े को कभी किसी को पीड़ित करते हुए नहीं देखा। हाँ, पीड़ा सहते अवश्य देखा है। जब कोई शरारती छोकरा उसे 'पागल' कहकर ढेला मारता, तब बूढ़ा मुसकराते हुए बस इतना ही कहता, "ऐसा नहीं करते, बेटे। यह गंदी बात है।" और फिर वह धीरे से अपने खंडहर में घुस जाता।

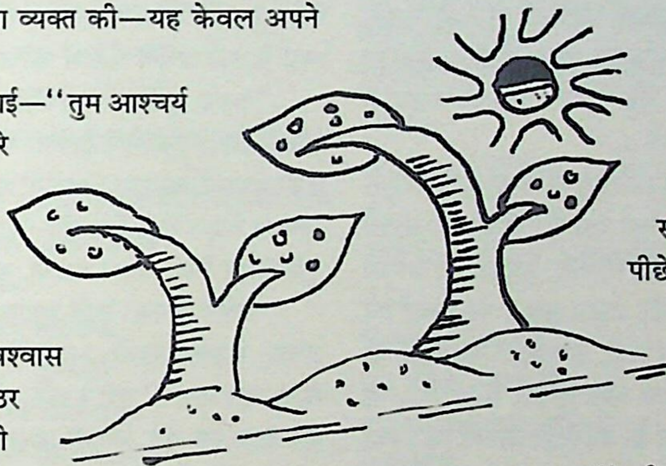
फिर वह पापी कैसा? स्मृति के पट से छलककर गीता की यह पंक्ति

टपक पड़ी, 'भुंजते ते त्वधं पापाये पंचन्त्यात्मकारणात्'—जो पापी लोग अपने लिए ही पकाते हैं, वे पाप को ही खाते हैं। शायद इस दृष्टि से बूढ़ा पापी हो, क्योंकि उसके यहाँ पकानेवाला भी वही है और खानेवाला भी वही। पर मेरा यह चिंतन तो सतही है, गीताकार ने यह बात इतने सतही तौर पर निश्चित ही नहीं कही होगी।

मेरा कुतूहल बढ़ा। आज तक उस बूढ़े से कोई सरोकार न रखनेवाली मेरी जिज्ञासा आज उस ओर खींच ले गई। मध्याह्न का सूरज सिर पर चढ़ आया था। मैं पापी की तलाश में उस खंडहर में घुसा। मैंने देखा कि एक छोटी सी कठौती में बूढ़ा खिचड़ी खा रहा है। साथ में एक कुत्ता भी है। अपनी लपलपाती जबान से 'चप-चप' की आवाज करता हुआ जब वह कुत्ता कठौती में मुँह डालता है, तब बूढ़े की आँखों में आत्मीयता के फूल खिल जाते हैं।

आदमी को कुत्ते के साथ खाते हुए मैं बड़े अचरज से देख रहा था। शायद किसी आदमी को मैंने किसी जानवर के इतने करीब इसके पहले नहीं देखा था। मेरे मन ने तुरंत प्रतिक्रिया व्यक्त की—यह केवल अपने लिए तो नहीं पकाता, फिर पापी कैसा?

मेरे विस्मय की पहचान बूढ़े को हो गई—''तुम आश्चर्य कर रहे हो न? यह कुत्ता मेरा दोस्त है, मेरे जीवन का साथी। जब कोई साथ नहीं रहा, तब भी यह साथ रहा है और अंत समय तक साथ रहेगा।''



मैं बड़ी गंभीरता से उसे देखता रहा।

''तुम्हें अब भी मेरी बात का विश्वास नहीं है? पर याद करो, महाराज युधिष्ठिर का साथ भी अंतिम समय तक कुत्ते ने ही दिया था। बंधु-बांधव सब छूट गए थे। एक सीमा के बाद धर्मराज के साथ भी कोई नहीं रहा, केवल एक कुत्ता रह गया। हो सकता है कि यह कुत्ता भी उसी कुत्ते का वंशज हो।'' इतना कहते-कहते एक प्रगल्भ हँसी बूढ़े के मुख से छूटी—दाढ़ी-मूँछों के जंगल के बीच से झरने की तरह।

स्पष्ट लगा कि बूढ़ा मूर्ख नहीं है और शायद पापी भी नहीं, क्योंकि मेरी जानकारी में पाप को नापने के जितने फ्रेम थे, बूढ़ा उनमें से किसी में फिट नहीं बैठता था। उसने मेरी उपस्थिति को भी बड़े सहज भाव से लिया और मेरे अचानक आने का कारण पूछा।

मैं क्या कहता कि मेरा कुतूहल खींच लाया है। बुद्धि ने तुरंत एक रास्ता निकाला। ''मैं यह बताने आया हूँ कि आपके खंडहर पर कुछ गुंडे कब्जा करना चाहते हैं।''

बूढ़ा फिर हँसा—''इसमें बताना क्या है? गुंडों द्वारा कब्जा किया जाना हर खंडहर की नियति है। जब तक मकान चुस्त और दुरुस्त रहता है, तब तक उसपर गुंडों की निगाह नहीं जाती और जाती भी है तो बहुत कम जाती है। जब गिरने लगता है और खंडहर हो जाता है, तब अवांछनीय तत्त्व उसपर कब्जा जमा लेते हैं। अब देखो, हमारा समाज भी जिन मूल्यों के मकान में रहता है, उसकी दीवारें बहुत कुछ गिर गई हैं। अब उन मूल्यों का खंडहर रह गया है। उसके खंडहर होते ही पूरे समाज में गुंडे हावी हो गए हैं। लगता है कि खंडहरों से गुंडों का कोई पुराना रिश्ता है।'' इतना कहकर वह पुनः हँसने लगा।

''पर लोग कहते हैं कि खंडहर से पापी का रिश्ता होता है—न पापी मरे और न खंडहर ढहे।'' मैंने कहा।

इस बार उसकी हँसी और भी तेज थी, पर शीघ्र ही उसकी मुद्रा बदली, ''पापी को भी अपने पाप का फल भुगतने के लिए जिंदगी को ढोते रहना पड़ा है और खंडहर को भी।''

''पर खंडहर तो वक्त की मार का परिणाम है।'' मैंने कहा।

''वक्त की मार तो सब पर पड़ती है, मगर हर मकान खंडहर नहीं होता। कुछ तो पुराने होने के पहले ही दूसरे मकान में तब्दील हो जाते हैं।''

''फिर भी इस परिवर्तन के लिए हर मकान को गिरना पड़ता है।'' मैंने कहा।

अब हमारी बातें निस्संकोच भाव से शुरू हो गई थीं। उसने तुरंत कहा, ''पर गिरने और गिराए जाने में बड़ा फर्क है। गिराए जाने के पीछे कोई योजना होती है, निर्धारित दिशा होती है, निर्माण की संकल्पबद्धता होती है; जबकि गिरने के पीछे ऐसा कुछ नहीं होता और होती भी है तो अनिश्चितता तथा अराजकता। इसी से गिराई जानेवाली दीवारें तुरंत बनती हैं और शायद पहले से मजबूत बनती हैं।'' अब बूढ़ा बोलता ही चला जा रहा था, ''इसी तरह क्रांतियाँ सड़े-गले जीवन-मूल्यों की दीवार को गिराती हैं, पर योजनाबद्ध रूप में इसी से उन ध्वस्त मूल्यों की दीवारें पुनः बनने भी लगती हैं। पर आज के मूल्यों की गिरावट में गिरने की प्रक्रिया स्वयं हो रही है। इसलिए वह दिशाहीन है, अराजक है। इसके पीछे निर्माण का कोई संकल्प नहीं है। न्यूटन लॉ है कि गिरती हुई वस्तु का वेग बढ़ता जाता है। हमारे बेईमान होने की गति भी बढ़ती जा रही है। भला आदमी हाशिए पर चल गया है।'' इतना कहते-कहते बूढ़े को खाँसी आ गई। उसके बोलने में व्यवधान पड़ा।

मैंने अनुभव किया कि उसके ज्ञान के प्रति मेरा पूर्वानुमान गलत है। अपढ़ और मूर्ख दिखाई देते हुए भी वह काफी पढ़ा-लिखा आदमी है। मैं उसे साश्चर्य देखता रहा। वह कुत्ते की पीठ सहलाता रहा। फिर अपनी भूल के लिए बिना क्षमायाचना किए और बिना किसी भूमिका के वह बोला, ''तुम अब तक खड़े हो, अच्छा होता कि बैठ जाते।'' और उसकी बगल में मैं उसी टाट के टुकड़े पर बैठ गया।

मौन का यह अंतराल धीरे-धीरे लंबा होता गया, क्योंकि न तो वह बोला और न मैं समझ पाया कि बात कैसे आरंभ करूँ। वह बराबर अपने कुत्ते की पीठ सहलाता रहा, उसे पुचकारता रहा। अपनी आत्मीयता का

प्रेमिल स्पर्श उसे देता रहा।

किसी तरह संकोच त्यागते हुए मैंने कहा, ''आपके बारे में जिज्ञासा तो बहुत दिनों से थी, किंतु...''

मेरी बात पूरी होने के पहले ही वह बोल पड़ा, ''मेरे बारे में जिज्ञासा करके क्या करोगे? अब यही समझो कि वक्त की मार खाते-खाते मैं एक खंडहर हो गया हूँ।... और सभी खंडहरों का वर्तमान करीब-करीब एक जैसा होता है। उनके अतीत की जानकारी के लिए बड़ी खुदाई करनी पड़ी है। पर कभी-कभी खोदने पर भी चुहिया ही निकलती है। इसलिए मैं तुम्हें यह सब करने की सलाह नहीं दूँगा। हाँ, एक आदमी की कहानी यदि तुम सुनना चाहो तो सुना सकता हूँ।''...और वह सुनाने लगा।

''हाँ, तो एक आदमी था। जैसे जानवरों के माता-पिता होते हुए भी नहीं होते वैसे ही उसके माता-पिता होते हुए भी नहीं थे। आदमी था, इसलिए उसका समाज था, समुदाय था, परिवार भी। वह किसी-न-किसी संप्रदाय से भी जुड़ा था। उसका धर्म भी था और ईश्वर में विश्वास भी। जैसे आदमियों के जीवन में बहुत सारी घटनाएँ घटती हैं वैसे ही उसके जीवन में भी घटी होंगी। क्योंकि घटनाएँ समय की सहयात्री हैं और उसने जिंदगी का एक लंबा समय बिताया था।'' बूढ़े ने इतने रहस्यमय ढंग से कहानी शुरू की कि मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई।

वह कहता गया—''काल की रद्दी की टोकरी में फेंकी जाने से एक घटना संयोग से बच गई थी, उसी की चर्चा कर रहा हूँ। जीवन के अंतिम दिनों में उसे ईश्वर की तलाश थी। वह मंदिरों में गया, मूर्तियों को प्रणाम किया, शंखध्वनि और कीर्तन सुने, भोग और प्रसाद पाया, पर ईश्वर को न पा सका। मसजिद में गया, उसने नमाज पढ़ी, सजदा किया, वहाँ भी ईश्वर नहीं मिला। उसकी यही स्थिति गिरजे और गुरुद्वारे में भी हुई, पर उसने ईश्वर को कहीं नहीं पाया। हो सकता है, इन सभी जगहों पर ईश्वर रहा हो, मगर उस अभागे को दिखाई न पड़ा हो। पर इसके बाद ही वह एक निष्कर्ष पर आया कि ईश्वर कहीं नहीं है।

''अब वह सड़कों और गलियों में घूमता और चिल्ला-चिल्लाकर अपना निष्कर्ष सबको बताता कि ईश्वर कहीं नहीं है। कहीं भोग है, कहीं प्रसाद है, कहीं कड़ा प्रसाद है, कहीं चढ़ावा और चादर है, पर ईश्वर कहीं नहीं है। ये सारे उपासना-स्थल ईश्वर-विहीन हैं। लोग उसपर फब्ती कसते, उसका मजाक उड़ाते। लड़कों की भीड़ उसका पीछा करती और उसे ढेले मारती। इस प्रकार वह पागल करार दे दिया गया।'' इस बीच बूढ़े का कुत्ता फिर उसकी दाढ़ी चाटने लगा और वह कुछ क्षणों के लिए रुक गया।

बाद में बूढ़े ने बताया, ''उस आदमी में अब भी ईश्वर के प्रति विश्वास था। उसने उसकी तलाश जारी रखी थी। एक दिन उसने फटेहाल भिखारी को देखा। वह उसके पीछे हो लिया।...वह भिखारी भी अजीब था। किसी से कुछ माँगता नहीं था और न किसी से कुछ कहता था। केवल हाथ फैला देता था। कोई-कोई उसमें कुछ डाल देता, कोई दुत्कार भी देता, पर वह किसी से कुछ बोलता नहीं। एक बार एक बदतमीज ने उसकी हथेली पर थूक भी दिया। फिर भी उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इस बार उस आदमी से रहा नहीं गया। उसने उसके इस मौन का रहस्य पूछा। भिखारी ने मुसकराते हुए बड़ी गंभीरता से कहा, 'आखिर जिसके पास जो होगा, वही तो देगा।' और चुपचाप आगे बढ़ गया।

''वह आदमी उसके पीछे अब भी लगा था। दिन डूबने लगा था। संध्या उतरने लगी थी। भिखारी की लड़खड़ाती चाल से जाहिर था कि वह काफी थक गया है। फिर भी वह बढ़ता जा रहा था और वह आदमी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था।

''अंत में सड़क पर लेटी एक अधनंगी औरत दिखाई पड़ी। उसके तन पर जो कपड़े भी थे, वह फटे और उसकी जिंदगी की तरह ही जीर्ण-शीर्ण और मैले-कुचैले। उसकी बगल में था एक नितांत दुर्बल रोता-चिल्लाता बच्चा।

''भिखारी वहाँ रुका। उसने बड़े गौर से उन्हें देखा और बोला, 'तुम्हें क्या कष्ट है और मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?'

''उस औरत ने बिलखते हुए कहा, 'मुझे कई दिनों से खाना नहीं मिला है। पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं है।...और मेरा बच्चा...' उसने प्यार से उसे अपनी गोद में खींचा। 'शायद यह रोते-रोते ही दम तोड़ दे।'

''इतना सुनते ही उस भिखारी ने अपने दिन भर की भीख की कमाई उस औरत के सामने उड़ेल दी और ऐसे आगे बढ़ गया जैसे कुछ हुआ ही न हो।...इसके बाद उस आदमी में विचित्र परिवर्तन हुआ। उसकी आवाज एकदम बदल गई। वह जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा कि मुझे ईश्वर मिल गया! भाइयो, मुझे ईश्वर मिल गया!

''लोग उसकी बातें सुनकर अब पहले से अधिक जोर से हँसते। उसका मजाक उड़ाते। लड़के ढेले मारते। अब वह पागल से घोर पागल माना जाने लगा।'' बूढ़े ने साँस ली और फिर कहना जारी रखा, ''एक दिन मैंने देखा कि वह आदमी चबूतरे पर खड़ा होकर लोगों को अपनी ओर बुला रहा है—'भाइयो, आप सब मेरे पास आइए, मुझे ईश्वर मिल गया है।'

''उसकी बेवकूफी पर लोग हँसने लगे और तमाशा देखने के लिए उसके पास आने लगे। देखते-देखते भीड़ लग गई। वह चिल्लाता रहा, 'मैं यह नहीं जानना चाहता कि आपका धर्म क्या है? आपकी जाति क्या है? आपका कर्म क्या है? मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि आपका दुःख क्या है? आपकी परेशानी क्या है? मैं आपको दुःख और परेशानी से मुक्ति का मार्ग बता सकता हूँ, क्योंकि मुझे ईश्वर मिल गया है।'

''इसके बाद एक पत्थर आकर उसके सिर में लगा। लहू की धार फूटी और वह वहीं गिरकर बेहोश हो गया। भीड़ अब भी उसका मजाक उड़ा रही थी और हँस रही थी।'' इसके बाद बूढ़ा गंभीर हो गया। फिर एक रहस्यमयी मुसकराहट उसके अधरों के बीच उभरी और मेरी आँखों में आँखें डालकर वह बोला, ''जानते हो, वह पत्थर खानेवाला आदमी कौन था? मैं ही था और ईश्वर को पानेवाला भी मैं ही था।''

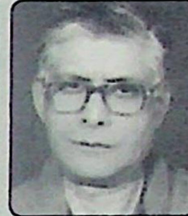
वह अब भी मुसकरा रहा था। मुझे लगा कि खंडहर के अंदर मानवीय मूल्यों की ढेर सारी वास्तविकताएँ दफन हैं।

सा अ



दो कविताएँ

गंगा प्रसाद विमल



सन् १९३९ में हिमालय के एक छोटे से कस्बे में जनमे गंगा प्रसाद विमल ने अनेक विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की तथा १९६४ में दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में अध्यापन प्रारंभ। चार उपन्यास, ग्यारह कहानी-संग्रह और सात कविता-संग्रहों के साथ-साथ अनेक गद्य ग्रंथ भी प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत। स्मृतिशेष : २३ दिसंबर, २०१९।

वह जो सामने है

तुम्हारी आँखों से देखूँगा
अपनी यह दुनिया
ओ नन्हे अजन्मे शिशु
अब तुम कहीं किलकोगे
अगली अर्द्धशती में
तब देखूँगा
सदी पार पहुँची अपनी स्वतंत्रता।

सदी पार जाएगा वह अखरोट का पेड़ भी
जिसे आगामी किसी कल
रोपना है मुझे

चालीस साल बाद
जब पहले फल आएँगे
उन्हें चखेंगे नटखट शिशु
दूध धुली उनकी दंत पंक्तियों में
हँसूँगा मैं

कौन बताएगा उन्हें
न...न...इस भाषा में
जिसमें लिख रहा हूँ
शयद वे न समझेंगे
क्योंकि तेजी से बदल रही है भाषा

और यह लिखा
संग्रहालय की चीज रह जाएगा
पुराने भोजपत्र-सा
तुम्हीं बताना व अनुभव के भाव
कि जब वे हरे अखरोट तोड़ेंगे।
उनके हाथों पर
फैलेगा वह हरा रस
जो हाथों को
और होंठों को काला बना देगा
उन काले होंठों से
मैं अपने आगामी भविष्य के
उद्दाय चुंबन लूँगा
रस-भरे वासना में लिप्त। अर्थवान!

जिन रास्तों पर हम चले हैं।
वे तो बियाबान हो जाएँगे
तुम अपने-अपने यान से
जब भी देखोगे धरती
मैं तुम्हारी आँखों से
अपने पुरखों के पुराने करतब देखूँगा।

पर जब भी देखूँ तुम्हारी तरह हिमालय
एक श्वेताम उजास
दिव्य
किंतु लौकिक
कुछ आत्मीय
भीतर बसनेवाला
फिर-फिर देखूँगा
हो तुम्हारी आँखों से
पलटते राज्य
सनसनीखेज घटनाएँ
और नए जन्म देखूँगा
नए से नए फूल
जब भी तुम कुछ भी देख रहे हो
ठीक तभी
मैं भी देख रहा हूँगा वह कुछ भी...

बरसात न भी हो

बरसात न भी हो
लोग छाता लेकर निकलते हैं

जिसे भाषणकर्ता जीवन-दर्शन करते हैं
वह इसी का हिस्सा है
कि सुरक्षा की तैयारी में
आदमी ज्यादा सुरक्षित है।

मेरे पिता
जो सादे आदमी थे। उस वक्त सादगी ही
कुलीनता थी। जो भाषा की तरह आज
मुझपर थोप दी गई है
तर्क देते थे कि छाता
गरमी में भी काम आता है।
गरमियों में
जो कि पहाड़ पर
जहाँ हम रहते थे।
गरमियाँ गरमियों के मौसम में भी
नहीं आती थीं।
एक सादा आदमी
सादगी का विक्टोरिया क्रॉस पहने
चुला गया।
मुझे लगा मेरा विश्वास
और अविश्वास
दोनों छाते के तर्क के साथ
विश्व से चले गए हैं
क्योंकि मैंने
बरसों न छाता खरीदा है
न उपयोग किया है।

अर्थ यह कि बिना खरीदे
आप पड़ोसी के
पड़ोसत्व का उपयोग
कर रहे हैं कि नहीं—
बरसात न भी हो
घर टपकने के डर से
महारथियों ने पात्र रखे हुए हैं
उदाहरणार्थ जिस घर में
हमारा स्वागत नहीं होता
वहाँ चाय के लिए दूध या चीनी का
अकाल होता है आतिथ्य का
मसलन अमेरिका में
नरसिंह राव के लिए
बड़े लोगों के पास समय नहीं था
यानी हमारा सिर
उनके धड़ों को नहीं
पाँवों को मिल रहा था

बरसात न भी हो
हम शर्म से हमेशा भीगे होते हैं।

पिछली सदी
गुलामी की लड़ाई में थे
इस सदी अपने सिर हम दूसरों के
पाँवों पर
मिलाने को मजबूर थे
साहित्य में यह नहीं तो आश्चर्य।
यही है। यही है।

चरित्रवान बाबू की कथा

• श्रीलाल शुक्ल



हिंदी के अग्रणी लेखक। छह उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, पाँच हास्य-व्यंग्य संग्रह, एक बाल उपन्यास; 'अगली शताब्दी के शहर', 'यह घर मेरा नहीं' (कहानियाँ, निबंध और टिप्पणियाँ)। 'राग दरबारी' उपन्यास के लिए सन् १९६९ में साहित्य अकादेमी पुरस्कार समेत अनेक विशिष्ट साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित। भारतीय प्रशासनिक सेवा में उच्च पदों पर रहे। स्मृतिशेष : २८ अक्तूबर, २०११।

किसी समय कर्णपुर नामक नगर में लघुवित्त नामक एक युवक रहता था। इंटरमीडिएट नाम की परीक्षा में सफल हो चुका है जो, ऐसा लघुवित्त दुर्भाग्य से जीविकाविहीन था। निम्न कक्षाओं के कुछ छात्रों का ट्यूशन करके वह किसी प्रकार उदर-पोषण तो कर लेता था, पर माता-पिता द्वारा प्रस्तावित विवाह के नाम मात्र से उसकी घिग्घी बँध जाती थी। कालांतर में एक उद्योगपति ने लघुवित्त को आश्वासन दिया कि यदि वह बी.ए. नामक परीक्षा पास कर ले तो उसे वह अपनी फैक्टरी में कनिष्ठ लिपिक बना देगा। तदनुसार धनागम की आशा से प्रेरित हो लघुवित्त बी.ए. की परीक्षा के लिए प्रवृत्त हुआ। कहा भी है—

प्रेमिका को यथावसर हस्तगत ही नहीं, सिद्धहस्त और सक्रिय भी होना चाहिए; पालतू श्वान को शत्रु पर भौंकना ही नहीं, उसे काटना भी चाहिए; बुद्धि का उपयोग बुद्धिमानों को प्रभावित करने के ही लिए नहीं, मूर्ख को मूर्खतर बनाने के लिए होना चाहिए और विद्या का उद्‍देश्य अपना अहंकारवर्धन ही नहीं, प्रचुर धनागम भी होना चाहिए॥ १ ॥

उस नगर में एक अज्ञातकुलशील विश्वविद्यालय भी था, जिसमें लघुवित्त ने एक प्राइवेट छात्र के रूप में परीक्षा का आवेदन-पत्र भरा। विश्वविद्यालय उस प्रदेश के दूसरे विश्वविद्यालयों की भाँति ही अनेक ग्राम्यतापूर्ण विवादों के लिए कुख्यात था। किंतु लघुवित्त ने इसे अनदेखा करके वहीं से परीक्षा दी। यथासमय बी.ए. का परीक्षाफल घोषित हुआ और नगर मार्गों पर तुरंत सफल छात्रों का तांडव-उत्सव शुरू हो गया। अश्व-निनाद और श्रृगाली-रुदन के भाँति-भाँति स्वरों से छात्रों के उद्‍दंड समूह हर्षध्वनि निकालने लगे; चतुष्पथों पर बियर और रम जैसे मादक पदार्थों का उन्मुक्त सेवन होने लगा। संकीर्ण वीथिकाओं में उत्साही छात्र उनसे भी अधिक उत्साही छात्राओं के साथ परिष्वजन, चुंबन आदि संपन्न करने लगे। ऐसे उत्सवधर्मी क्षणों में भी लघुवित्त अपने वायुहीन, प्रकाशहीन कक्ष में आहत-सा निश्शब्द बैठा रहा।

उसे विषण्ण देख दीर्घोदर नामक उसके एक मित्र ने पूछा, ''भोगियों की सभा में घोर कोष्ठबद्धता के रोगी जैसा, सुखासीनों के बीच बहुमूत्र से व्यथित वृद्ध जैसा तुम्हारा यह कैसा आचरण है ? तुम इतने उद्विग्न क्यों हो ? क्या तुम परीक्षा में असफल हो गए हो ?''

लघुवित्त बोला, ''नहीं मित्र, मेरी दशा कालिदास के 'न ययौ न तस्थौ' वाली है। मैं न उत्तीर्ण हूँ, न अनुत्तीर्ण। जिन छात्रों का परीक्षाफल रोक लिया गया है, मैं उन्हीं हतभाग्यों में से एक हूँ।''

दीर्घोदर ने कहा, ''तब प्रसन्न हो जाओ; चिंता छोड़ो और चतुष्पथ पर चलकर इस मदनोत्सव को एक नया उन्माद दो। तुम्हारी सफलता का परीक्षा-परिणाम मैं घोषित कराऊँगा। कहा भी है—

''काठ की छड़ी में किसी लंबी बरछी की भाँति, कुरते की जेब में रक्खी किसी भंग की गोली की भाँति, किसी बुड्ढे की थैली में भूली पड़ी वियाग्रा की टिकिया की भाँति ही उत्तम मित्र की संगति होती है; आपत्काल में अकस्मात् ही वह सुहृद का सहायक बन जाता है॥ २ ॥

दूसरे दिन दीर्घोदर लघुवित्त को लेकर विश्वविद्यालय के कुकर्मालय पहुँचा, जिसे कार्यालय की संज्ञा दी गई थी, और संबंधित बाबू से लघुवित्त के परीक्षाफल की चर्चा की। इसपर बाबू ने कहा, ''श्रीमन्, आपके आवेदन-पत्र के साथ दो सौ रुपयों का वह बैंक ड्राफ्ट उपलब्ध नहीं है, जो आपको उसके साथ संलग्न करना चाहिए था। तभी आपका परीक्षाफल रोक लिया गया है।''

लघुवित्त ने कहा, ''पर बैंक ड्राफ्ट तो मैंने लगाया था। उसकी रसीद मेरे पास मौजूद है।''

बाबू बोला, ''आपके पास है न ? हमारे पास तो नहीं है।''

लघुवित्त ने कहा, ''पर आपके पास बैंक ड्राफ्ट है।''

बाबू बोला, ''पर वही तो नहीं है।''

तब दीर्घोदर ने पूछा, ''इसका समाधान क्या है?''

बाबू बोला, ''पहले नया बैंक ड्राफ्ट दीजिए, साथ में विश्वविद्यालय प्रशासन जो अर्थदंड लगाए, वह भरिए...।''

दीर्घोदर ने कहा, ''विश्वविद्यालय प्रशासन तो आप ही हैं।''

बाबू बोला, ''सो तो हूँ ही; पर मैं ऐसा कह कैसे सकता हूँ और सुनिए, छोटी-मोटी कुछ और बातें हैं जिन्हें गिनाने का यहाँ समय नहीं है। सायंकाल आप मेरे आवास पर आ जाइए।'' यह उसने लघुवित्त से कहा; दीर्घोदर से कहा, ''पर आप कष्ट न करें।''

ततः सायंकाल लघुवित्त बाबू के आवास पर जाने को तैयार हुआ। उसे गमनोद्यत देख दीर्घोदर ने कहा, ''बाबू के लिए कुछ मेवा-मिष्टान्न भी खरीद लो। कहा भी है—

बुद्धिमानों का मत है कि राजा, वैद्य और गुरु के पास रिक्त-हस्त न जाना चाहिए। उसी प्रकार जहाँ पुलिस दल तैनात हो, जहाँ सड़क पर धरना चल रहा हो और जहाँ बाबू का घर हो, वहाँ भी रिक्त-हस्त न जाना चाहिए। इन स्थानों पर जाते समय हाथ में क्रमशः ढेला, माचिस और मिठाई का डिब्बा होना चाहिए॥३॥

''और हाँ, कुछ रुपए भी। उसका प्रबंध मैं कर दूँगा।''

इस प्रकार सायंकाल बाबू के आवास पर जाकर, उसे मेवा-मिष्टान्न तथा कुछ उत्कोच देकर, विश्वविद्यालय प्रशासन की साक्षात् प्रसन्नता प्राप्त करके लघुवित्त इस आश्वासन के साथ घर लौट आया कि उसका परीक्षाफल, जिसके अनुसार वह तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण है, तीन दिन बाद उसे कार्यालय में मिल जाएगा।

किंतु एक घंटे ही में वह दोनों मित्रों के पास लौट आई। उसके शरीर पर रति-रंग का कोई भी विभ्रम न था। दीर्घोदर ने सशंकित होकर पूछा, ''क्या हुआ?'' खड़े-ही-खड़े उसने उत्तर दिया, ''समझ में नहीं आता कि हँसूँ कि रोऊँ।''

किंतु सबकुछ भाग्याधीन है। मंत्रिपद के निमित्त शपथ-ग्रहण के लिए बुलाए गए भावी मंत्री को कुछ क्षण पहले ही कैसे दीर्घशंका की आकुलता व्यापी, किस भाँति उसे कुछ समय के लिए अनुपस्थित होना पड़ा और अंततः कैसे मंत्रिपद से वंचित रहना हुआ, यह कथा सर्वविदित है और न हो तो आपको यथावसर सुनाई जाएगी। अस्तु, तीन दिन बाद जब दोनों मित्र पुनः कार्यालय गए तो उन्हें ज्ञात हुआ कि मिष्टान्न-भक्षी बाबू दो दिन पहले ही रिटायर हो चुका है और उसका कार्यभार एक ऐसे बाबू ने ग्रहण कर लिया है जिसकी हैसियत बड़े बाबू की है।

यह बाबू एक छोटे से कक्ष में अकेला बैठता था। कुछ पूछताछ करने पर दोनों मित्रों को विदित हुआ कि वह अपनी लंपटता के लिए कुख्यात है; वह पुरुषों से नहीं, महिलाओं से मिलने को उत्कंठित रहता है; कार्यालय तक में लोगों ने उसे कई बार महिलाओं के गले में दोनों हाथ डालने की कुचेष्टा में देखा है और तभी उसका नाम 'गलग्रह' पड़ गया है।

जो भी हो, इस सूचना से सशंकित होने पर भी दोनों मित्र इस बाबू से मिले और उसे अपनी व्यथा-कथा सुनाई। सुनकर उसने कहा, ''पर आपका पिछला बैंक ड्राफ्ट तो आवेदन-पत्र के साथ ही मिल गया था। उसका द्रव्य भी विश्वविद्यालय प्रशासन को मिल चुका है।''

दीर्घोदर और लघुवित्त ने एक साथ एक-दूसरे को देखा। दोनों समझ गए कि नया बैंक ड्राफ्ट वह विश्वविद्यालय प्रशासन ले गया, जो दो दिन पहले रिटायर हुआ है।

दीर्घोदर ने पूछा, ''तो अब हमें क्या करना है?''

बाबू बोला, ''कुछ नहीं। केवल विश्वविद्यालय प्रशासन को सब प्रकार से संतुष्ट कर देना है। आप मेरे आवास पर पधारें। समुचित संतोष हो जाने पर आपकी अंक तालिका मैं स्वयं आपके हाथ में रख दूँगा—इस गारंटी के साथ कि आपको प्रत्येक विषय में प्रथम श्रेणी के अंक मिलेंगे।''

दोनों मित्र अवाक् होकर बाहर आए। विश्वविद्यालय प्रशासन के विरुद्ध उनके हृदय दग्ध हो रहे थे। दोनों ने तय किया कि बाबुओं के कुचक्र से निकलकर हम लोग सीधे कुलपति से मिलें और उन्हीं से समाधान प्राप्त करें।

पर दीर्घोदर को देखते ही कुलपति आवेश में आ गए। उन्होंने पूछा, ''आप तो छात्र संघ के संयुक्त सचिव हैं! हैं न?'' दीर्घोदर ने विनम्रता से स्वीकार किया। तब कुलपति ने लघुवित्त से कहा, ''बाहर जाओ और वहीं से मुझे अपना प्रार्थना-पत्र भेज दो। अगर अपना मामला तुमने छात्र संघ की राजनीति में फँसाया तो कहीं के नहीं रहोगे।''

दोनों मित्र हताश होकर घर लौटे। दीर्घोदर ने कुछ सोचकर कहा, ''मित्र, निश्चय ही यह गलग्रह अपने आवास पर मुझसे या तुमसे मिलने को उत्कंठित नहीं है। निश्चय ही वह किसी रूपवती कामिनी को देखकर प्रमुदित होगा। अतः यदि हमें अपना कार्य सिद्ध करना है तो हम क्यों न अपनी जगह किसी आहूतकन्यका को भेज दें?''

लघुवित्त ने पूछा, ''आहूतकन्यका? यह कौन सा पदार्थ है?''

दीर्घोदर ने कहा, ''वही, जिसे आंग्ल भाषा में 'कॉल गर्ल' कहते हैं।''

लघुवित्त बोला, ''पर यह तो घोर अनैतिकता होगी।''

इसपर दीर्घोदर ने उसे एक सुभाषित सुनाया—

''मधु प्राप्त करने के लिए सहस्रों मधुमक्षिकाओं का वध होता है; चीनांशुक धारण करने के लिए असंख्य भृंग खौलते जल में डाले जाते हैं; चुनाव जीतने के लिए कादंब-कामिनी-कांचन—सभी का प्रयोग विहित है। लक्ष्यसिद्धि हो जाए तो सभी साधन पवित्र हैं॥४॥

दीर्घोदर ने कहा, ''छात्र राजनीति के कारण मेरा संपर्क कुछ आहूतकन्यकाओं से है। आज सायंकाल मैं उन्हीं में से किसी को इस गलग्रह की सेवा के लिए भेज दूँगा। प्रथम श्रेणी पाने के लिए हमारे लिए

कुछ भी अदेय नहीं है।''

ऐसा ही अनुष्ठित हुआ है। एक तन्वंगी, प्रियदर्शिनी कन्यका बाबू के आवास पर जाने को प्रस्तुत हो गई। पर उसने कहा, ''मैं ऐसे अनेक लंपटों को जानती हूँ, जो वारवनिताओं से घृणा करते हैं और केवल कुलांगनाओं में आसक्ति दिखाते हैं। संभवत: यह निम्न-मध्यम वर्गीय मानसिकता से आक्रांत लंपट भी ऐसा ही हो। अत: मैं उत्तम वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर सिंदूर-चर्चित सीमंत के साथ वहाँ जाना चाहती हूँ, ताकि गलग्रह मुझे तुम्हारी भाभी या अन्य आत्मीया समझकर जो करना हो सो करे।''

इसपर दीर्घोदर सचमुच ही अपनी भाभी से कुलांगनाओं के उपयुक्त वस्त्र और आभूषण माँग लाया और उनको इस कॉल गर्ल के हाथों में सौंप दिया। उत्तम आभूषणों और शालीन वस्त्रों में उसकी छवि अत्यंत मनोहारी हो गई। तदुपरांत उसने बाबू के आवास की ओर प्रयाण किया।

किंतु एक घंटे ही में वह दोनों मित्रों के पास लौट आई। उसके शरीर पर रति-रंग का कोई भी विभ्रम न था। दीर्घोदर ने सशंकित होकर पूछा, ''क्या हुआ?''

खड़े-ही-खड़े उसने उत्तर दिया, ''समझ में नहीं आता कि हँसूँ कि रोऊँ।''

लघुवित्त ने कहा, ''पहले हँसो।''

इसपर हँसते हुए आहूतकन्यका ने कंचुकी से एक परचा निकालकर लघुवित्त को दिया। यह अंक तालिका थी। लघुवित्त को प्रत्येक विषय में प्रथम श्रेणी के अंक मिले थे।

इसके उपरांत उससे यह कहने की जरूरत न रही कि ''अब रोओ।'' वह पहले ही रोने लगी थी; रोते-रोते उसने बताया, ''उस लोभी व्यक्ति ने मेरे चेहरे की ओर देखा ही नहीं। मेरा सारा रूप-यौवन उसकी निगाह के आगे मूत्रसिक्त मृत्तिका जैसा हो गया। उसकी दृष्टि केवल मेरे अर्थात् आपकी भाभी के आभूषणों पर ही टिकी रही। उसने मुझे संकेत से अपनी ओर बुलाया, सोफे पर अपने पास बैठाया और कहा, 'बहन!'

''मैं चौंकी। तब तक उसने अपने दोनों हाथ मेरे गले में डाल दिए। मैं चकित थी। मुझे 'बहन' कहकर भी क्या वह मेरा आलिंगन करने जा रहा है? पर तब तक वह दोनों हाथों से मेरा कंठहार उतार चुका था। उसके बाद उसने मेरे कर्णाभूषण उतारे, हाथों के कंकण भी ले लिये और इस क्रिया में मुझे सुनाता रहा, 'सुनो बहन, मैं लंपट नहीं हूँ। चरित्रहीन मैं नहीं हूँ। भले ही लोग मुझे गलग्रह कहें, पर मैं महिलाओं को कामुक भाव से कभी नहीं छूता, केवल उनके आभूषण छूता हूँ। आभूषण अर्जित करना मेरी बाध्यता है। मेरी तीन पुत्रियाँ हैं। उनके विवाहार्थ मैं आभूषणों का संचय कर रहा हूँ। नारी-देह मेरे लिए केवल एक खूँटी है, जिसपर आभूषण लटकते हैं।

'' 'बहन, यह भी याद रखो कि मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता। यह अंक तालिका ले जाओ और लघुवित्त से जाकर कहो कि मेरा और उसका हिसाब बराबर हो गया।''

चरित्रवान् बाबू का वक्तव्य आहूतकन्यका के मुख से सुनते-सुनते, भाभी के लुटे हुए आभूषणों की याद करते हुए दीर्घोदर को भी रोना आया, पर छात्र संघ की राजनीति ने उसे कुछ सुदृढ़ बना दिया था। उसके आँसू आँखों में ही सूख गए।

कहा भी है—

कुछ भी निश्चय नहीं है : किसको कब लाभ मिल जाय, किसकी अचानक हानि हो जाय! कुख्याति भी भ्रांति है और सुख्याति भी, जैसा कि कंठहारहारी गलग्रह के साथ हुआ॥५॥

और भी कहा है—

गहने दिए एक ने, माँगकर लिये दूसरे ने, पहना तीसरे ने, उन्हें लूट लिया चौथे ने, लाभ पाया पाँचवें ने। इस उलटे-पुलटे विश्व-प्रपंच में जो अबूझ निरर्थकता है वही इस गलग्रह-कथा का सार है॥६॥

चतुराई से मुक्ति

• शिवकुमार गोयल

सच्चा मानव कौन है—इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए ऋषि व शास्त्रकार कहते हैं कि जिसका आचरण पवित्र है, जो निष्कपट है, जो दु:खी व्यक्ति की सहायता को तैयार रहता है, वही मानव कहलाने का अधिकारी है। कपटी, आडंबरी व्यक्ति जब अपने परिजनों की दृष्टि में ही विश्वसनीय नहीं होता, तो भला वह भगवान् को कैसे प्रिय हो सकता है। इसलिए तुलसीदासजी ने लिखा है, 'मन, कर्म, वचन छाड़ि चतुराई।' यानी चतुराई से पूरी तरह मुक्त होकर ही भगवान् श्रीराम का प्रिय बना जा सकता है।

आदिकवि वाल्मीकि 'सत्यमेवेश्वरो लोके' कहकर विशुद्ध सत्य, निष्कपट व्यक्ति को साक्षात् ईश्वर बताते हैं। उन्होंने कहा है 'संतश्चारित्रभूषणा:' यानी, संत वही है, जिनके आभूषण सदाचरण हुआ करते हैं। तुलसी भी कहते हैं, 'संत हृदय जस निर्मल बारी और चंदन त[illegible] हरि संत समीर।' सच्चे संत हर क्षण भगवान् के भजन तथा दूसरों [illegible] सद्विचार की सुगंध से सुवासित करते रहते हैं।

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

शिक्षा

● इंदु जैन

नहीं बनना चाहती मैं माँ
उन तमाम लड़कियों की
जिन्हें मैं पढ़ाती हूँ
अगर होना है तो कुछ ऐसा हो
कि बन सकूँ
उन सबकी माँओं की माँ
या और अच्छा कि उनकी पिता
क्योंकि वे माँएँ भी कहाँ बन पाईं वो
जो वे बनना चाहती थीं।

पिता बनकर खड़ा कर दूँ
उन सबके पिता को कतार में सीधा
खोल-खोल दिखाऊँ इन लड़कियों की
मांस-मज्जा
दिल, दिमाग, फेफड़े
सिकुड़े सहमे पड़े
नब्ज की धीमी धड़कन
समझाऊँ इनसान होने की लाचारी
पूछूँ कि क्यों रक्तदान नहीं कर पातीं ये
क्यों अंडरवेट हैं
पीली क्यों पड़ी हैं
कि टी.बी. आकर दबोच लेती है
क्यों जमुहाती हैं कक्षा में—
क्या जानता है पिता
और नहीं जानता तो क्यों ?

यों, माँ होना भी बुरा नहीं इतना
खोखले बाँस में बाँसुरी भरना
गाना वह तराना
जो सन्नाटे में बज रहा है सुनसान
चुप्पा
जो कभी-कभी चीखते-चिल्लाते शोर में
ढूँढ़ना पड़ता है
इन सुंदर, प्यारी, चहकती—आँख लड़कियों की



हिंदी की वरिष्ठ व सम्मानित कवयित्री व लेखिका। चौदह काव्य-संग्रह, आठ गद्य-संग्रह। 'भारत ज्ञान कोश' (छह खंड) का इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के लिए संपादन। दूरदर्शन व आकाशवाणी से सतत जुड़ाव। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत।

के.जी. शिक्षिका बन
ले जाना चाहती हूँ वनों में
चित्रों से मिलवाने
कविताएँ उगाने
पेड़ों से पहचान कराने
घास की ढलान पर फिसलाने-चढ़ाने
खनखनाना चाहती हूँ
उत्खनन से मिले वे सिक्के
उकेरे नक्श, ढही इमारतें
जो इनके सोए सपनों का हिस्सा हैं अनजाने।

आँखों में इनकी
उतारना चाहती हूँ चमक नेजों की
इतनी चमक चमत्कार की
कि उलझे जंगलों के झंखाड़ उखड़ आएँ
बनैले हिंस्र पशु बिलबिलाने लगें
रात रोशनी से पट जाए
भविष्य हथेली पर आ जाए
आटे के पेड़े सा
अपने हाथ अपनी आँच पर
रोटी सिंक जाए
इतिहास हँस पड़े खिलखिलाहट में

खंडहर कहकहों से गूँज जाए
चमगीदड़ों का झुंड घबराता
फड़फड़ाता उड़ान ले जाए…

ये सब मेरी परिधि से बाहर रही हैं
सदियों सदी
अजनबी नजरों को मात्र मुग्धता से
अपनाया नहीं जा सकता
पैरों की बेड़ियों में संगीत नहीं सोता
और जब उन्हें पाजेब मान लिया जाए
तो घुँघरुओं के बीज बिखर जाते हैं।

अब पढ़ाने में ब्लैकबोर्ड साफ करने का
भ्रम है
बार-बार उभर आती है
पुरानी लिखावट
गड्डमड्ड हो जाते हैं अक्षर
धो-पोंछकर
उतारे नहीं जा सकते चढ़े पक्के रंग।

तभी तो होना चाहती हूँ अतीत

और तभी अचानक
रहस्य से मुसकरा देती है एक लड़की
माँओं, पिताओं, शिक्षकों को भूल
एक गेंद उछाल देती है अंतरिक्ष में
सारे नक्षत्र
नई बुनावट में जगह बदलने लगते हैं,

मुझे लगता है
मैं आराम से सो सकती हूँ
जिंदा सपनों के देश में।

एक दिन का सुख

• विवेकी राय

गाँव की बोली में वह 'परोज' कहलाता है। लोगबाग, हित-मित्र और भाई-बंधु बटुर जाते हैं। खाना-पीना होता है और रोज-रोज के दुखरा-धंधा के बीच एक दिन मनसायन होता है।

ऐसा ही एक परोज (समारोह) था। देश-देश के किसान-भूपति आए थे। खम्हिया के आगे चारपाइयों पर—एक-एक पर पाँच-पाँच, छह-छह लोग बैठे थे। वह एक अजब समय होता है जब आँख व्यक्ति पर नहीं, समूह पर पड़ती है और चौड़ाई में झलक आँकती है। जब किसी एक आदमी पर ठहर जाती है तो पहचान का झरोखा खुल जाता है और फिर तो 'पालागी, कहिए, समाचार तो ठीक हैं? कब आए?' आदि का क्रम चलता है।

तो इसी प्रकार उस दिन समवेत लोगों में मेरी निगाह एक बुजुर्ग सज्जन पर जा टिकी। वे मोटे अधिक थे अथवा बूढ़े, यह कहना कठिन है। मुझे ऐसा लगा कि इन्हें मैंने कहीं देखा है और जाने-पहचाने रईस हैं। पता नहीं वे मेरी ओर ताक रहे थे या किसी दूसरी ओर; परंतु मुझे लगा कि वे मुझे ही एकटक घूर-घूरकर देख रहे हैं। यह भी आभास हुआ कि शायद मन में वे सोच रहे हैं कि देखो, अब तो यह पहचानता भी नहीं है, साहेब—सलामत की तो बात क्या, समाचार भी नहीं पूछ रहा है।

और चटपट मैंने सलामी दाग दी। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरी 'पालग्गी' बूढ़े बाबा के कानों तक गई और उनके कानों में कोई दोष नहीं है तो भी कुछ अजीब सा लगा कि न वे मुसकराए, न हिले-डुले और न जबान खोली। सिर को जरा सा हिला दिया और पूर्ववत् निरपेक्ष भाव से आँखों की सूनी सड़क सीध में बिछाते रहे। जिस चारपाई पर वे बैठे थे, अकेले बैठे थे। वह सबसे एकांत में एक सिरे पर बिछाई गई थी और छोटी थी। मैंने सोचा कि यह कितना उचित है कि उसपर बूढ़े बाबा अकेले विराजमान हैं। आसन-विशिष्ट, स्थान-विशिष्ट और आसीन महानुभाव परम विशिष्ट। मानो बिना बनाए, बिना फूलमाला पहनाए स्वयंसिद्ध वे इस सभा के सभापति हैं। यही कारण है कि वे मौन हैं, उनकी मुखमुद्रा में गंभीरता छाई है और सधे हुए आसन में शांत भाव से बैठे हैं। शरीर कुरते मे ढका है, चारपाई के नीचे सामने चमरौधा जूता, जिसमें हाल ही में रेंड़ी का भरपूर तेल छोड़ा गया है, पड़ा है। दुपट्टा गले में पड़ा है। सिर खाली है, जिसकी शोभा बढ़ाने के लिए छोटे-छोटे सफेद बाल तरनाए खड़े हैं। मुँह भरा हुआ और गोल है। कुछ दाँत अभी और शेष हैं। इसका पता तब लग जाता है जब वे विचित्र प्रकार से सुरती थूकते हैं। रंग काला



सुप्रसिद्ध साहित्यकार। सात कहानी-संग्रह, दस उपन्यास, सात ललित-निबंध, दस निबंध और शोध-समीक्षा प्रकाशित। भोजपुरी साहित्य में एक ललित-निबंध, एक काव्य-संग्रह, समीक्षा ग्रंथ, एक कहानी-संग्रह, विविध विधाओं का एक संकलन तथा फीचर आदि प्रकाशित।

स्मृतिशेष : २२ नवंबर, २०१६।

नहीं है, परंतु गोरा होते-होते रह गया है। हाथ मुलायम हैं। बूढ़ा अवश्य ही ढेला नहीं फोड़ता है। मैं सोचने लगा कि कहाँ पर मैंने इन्हें देखा है?

इसी बीच एक आदमी भरा हुआ हुक्का बड़े आदर के साथ उनके हाथों में थमा गया। हुक्के को बाएँ हाथ में लेकर बाबा ने आसन परिवर्तन किया और तभी 'गुड़गुड़-गुड़गुड़' की कोमल आवाज आई। धुआँ उन्होंने बँसवारी की ओर फेंककर बैलों पर निगाह जमा दी। पास ही बैल बँधे चारा खा रहे थे। एक आदमी उनकी चरन में पड़े भूसे के ऊपर अन्न की भूसी छिड़क रहा था। बैल भूसी पड़ते ही जैसे उसे हबक लेने के लिए अफना उठते थे। वह आदमी उनके सींगों से बचता हुआ अपना काम कर रहा था।

बाबा ने पूछा—

''इन बाँसों में घुन तो नहीं लगते हैं?''

''नहीं, ये बाँस घुनते नहीं हैं।'' उस आदमी ने संक्षिप्त उत्तर दिया और भूसी छिड़ककर फरुसी से बैलों का गोबर टारने लगा। गोबर खींचकर एकत्र करने के बाद उसने एक गोबरही खाँची में उसे उठाकर बँसवारी के बीच एक जगह पटक दिया। वहाँ उपले पाथने का इंतजाम था और कई कतार में उपले खड़े थे। शरद् ऋतु बीत जाने पर मैंने देखा कि एक खंजन पक्षी खड़े उपले के ऊपर फुदक रहा है। संयोग की बात रही कि इस वर्ष शरद् में खंजन पक्षी के दर्शन नहीं हुए थे। देर से सही, दर्शन तो हुए। मैं बहुत खुश हुआ; तिसपर भी उत्तर मुँह गोबर पर उड़ता खंजन! सौभाग्य और सुख का यह सूचक माना जाता है। मुझे लगा कि सुख की कोई दीर्घकालीन संभावना इस शकुन के भीतर निहित हो चाहे नहीं, परंतु आज एक दिन का आनंद में कट जाना तो वर्तमान और प्रत्यक्ष था।

उसी समय मेरी निगाह बाबा पर पड़ी। हुक्का पीकर उसे वे चारपाई के पाये के सहारे ओठघा रहे थे। यह काम भी बड़ी धीरता-गंभीरता के साथ हो रहा था। कितने शांत हैं ये बूढ़े बाबा! इतनी देर में जो इनके

मुँह से आवाज निकली है वह सिर्फ बाँसों के घुनने के बारे में। चुपचाप निःशब्द बैठे हैं। बहुत से बूढ़ों की आदत होती है कि वे वक्त-बेवक्त बड़बड़ाया करते हैं। वे किसीकी सुनते नहीं, बस अपनी ही जोतते चले जाते हैं। मेरा मन उस बाबा से बात करने के लिए व्यग्र हो उठा। मगर ये तो कुछ बोलते ही नहीं हैं। क्या बात की जाए? कैसे शुरू की जाए? बातचीत को जो एक कला कहा गया है सो बहुत सोच-समझकर कहा गया है। किससे क्या बात की जाए, यह बहुत मर्म की बात है। उस समय इस छोटी सी बात में मैं असफल सिद्ध होने लगा। कोई बात नहीं मिल रही थी जिसे उकटेरकर मौन बाबा को उकसा दूँ।

एक मजेदार कल्पना मन में आई। मैंने सोचा कि रात में खाना खाने के बाद इस बाबा से कहानी सुनी जाए। इस विचार से मेरे भीतर बड़ी स्फूर्ति आई। खम्हिया में कोदों का पुआल बिछाकर खूब मोटी पहल डाल दी गई है। यह जाड़े का कितना लुभावना गद्दा है। बैठते ही कुरमुर-कुरमुर करके अपनी गोद में खींच लेता है। इसी पर पड़े बिछावन के ऊपर सुचित्त होकर, लेटकर जब लालटेन की रोशनी कुछ धीमी कर दी जाएगी और जब हुक्का चलता रहेगा या कोई खेती-गृहस्थी की बात चलती रहेगी अथवा आने-जानेवालों का समाचार पूछा जाता रहेगा तो उसी बीच प्रस्ताव करूँगा कि बाबा, एक कहानी सुनाओ।

दिन बीता, रात आई। इस बीच कैसे मैं मौन-मूर्ति बूढ़े बाबा को भूल गया, पता नहीं। वास्तव में वे कहाँ चले गए, पता नहीं। शायद पूजा-पाठ करते हों और नहाने-निपटने कहीं एकांत कुएँदार मंदिर की ओर चले गए हों। उनकी याद ऐन मौके पर आई। अर्थात् भोजनोपरांत जब एक प्रकार का सुखद आलस छा गया तो किसीके मुँह से कुछ सुनने की इच्छा जागी। 'एक राजा था…' अथवा 'चार दोस्त देश-दुनिया देखने के लिए निकले…' अथवा 'एक राजा की चार लड़कियाँ…' जैसी कोई चीज अब होनी चाहिए। जाड़े का दिन, पुआल, अनेक गाँव के लोग, भोज-भात की ताजगी और निश्चिंत क्षण। बस, और चाहिए क्या? चाहिए सिर्फ एक कहानी।

लेकिन यह क्या? मैंने देखा, हाँ, पहचान में कोई भूल नहीं, तमाम शरीर रजाई से ढका, मगर मुँह खुला हुआ कि जहाँ सब लोग पुआल पर ढरके हुए हैं वहाँ यह मेरा प्यारा बाबा एक तरफ नलकूप की नाली की तरह पतली, गहरी और एक छोटी सी खटिया लेकर खर्राटे भर रहा है। हवाई जहाज के इंजन की तरह नाक-ध्वनि ध्वनित हो रही है। मालूम होता है कि कहीं पास में रुई धुनने की मशीन घड़घड़ा रही है। नींद साहित्य की यह नई कविता बहुत जँच रही थी, मगर भविष्य का स्मरण कर एक दहशत सामने आ खड़ी हुई। अगर इस घनचक्की का स्वीच ऑफ नहीं हुआ तो नींद बुलाने के लिए एक कमलासन न लगाना पड़े।

इसी बीच बाबा ने करवट बदली। इस परिवर्तन से नासिका रंध्र का विस्फोटक रूप थम गया, तो भी मुँह की क्रुद्ध नाग जैसी साँस के ताल पर निकलनेवाली फूत्कार जारी थी। मगर यह उपद्रव उतना उग्र नहीं था और इससे कुछ अंडस संभव नहीं था। मैंने देवताओं का गुण गाया, श्री रामचंद्रजी का ध्यान किया और दिन में देखे खंजन खग का स्मरण किया। डीह बाबा को मनाया कि बाबा को इसी करवट में रात भर रखो। अब इसीको कहानी का मजा मानूँगा। बेचारा बाबा, दिन में अपने गाँव से चलकर आया इतना थक गया होगा कि संभवतः आँख लगते ही होश-हवास गुम।

कुछ देर तक बोलचाल का वातावरण रहा। बगल में सोए कहार और सेवकगण आपस में कुछ भुनभुन बात करते रहे। परंतु थोड़ी देर में सन्नाटा। नींद मुझे भी आ रही थी और बहुत अच्छा लग रहा था कि पुआल पर कैसी सुंदर शयन की समाजवादी व्यवस्था हो गई है। एक कतार में लोग पटरा पड़े हैं। बहुत से लोगों को सोए हुए देखने पर कैसा लगता है।

कुछ ऐसी ही बातें सोचता मैं भी नींद की गहराई में डूब गया। उस नींद के सागर में डूबे-डूबे ही कुछ आहट मिली। पहले तो मालूम हुआ कि करकट से छाए हुए घर में सोया हूँ और ऊपर से बूँदें पड़ रही हैं। फिर नींद टूट गई और यह क्या? यह तो बूढ़े बाबा हैं। धीरे-धीरे ही सही परंतु धाराप्रवाह बोल रहे हैं। श्रोता रूप में चारपाई के पास बैठे एक अधेड़ सज्जन हैं, जो हाँ में हाँ मिला रहे हैं और सुरती मल रहे हैं। गाँव का समाचार चल रहा था। बड़ा लंबा क्रम रहा। अजी, यह खत्म होगा कि नहीं।

मैंने उठकर घड़ी को लालटेन की रोशनी के पास ले जाकर देखा। साढ़े बारह बज रहा था। मैं भी बैठ गया।

'आपको सोने में हर्ज हो रहा है…अच्छा, सोइए। हम लोग धीरे-धीरे बात कर रहे हैं। बहुत दिन बाद हम दोनों संगी मिले हैं। सुख-दुःख कह-सुन रहे हैं। फिर तो सवेरे उठकर अपने-अपने रास्ते पर रवाना होंगे…हाँ, तो भैया। इस साल कियारी खूब आई। करम टरे तो टरे, कियारी ना टरे।'

ओफ! दिन भर चुप, गुमसुम पड़ा रहनेवाला बाबा रात में तो पूरा अगिन बोट हो गया और धीरे-धीरे, बुदबुदाहट की बातचीत के बीच में तो अब नींद आना संभव नहीं। ये कितनी दिलचस्प बातें कर रहे हैं। मगर मैं इस समय इसका मजा नहीं उठा सकता। हाय, मार डाला इन बूढ़ों ने! दूसरी बार घड़ी देखी तो दो बज रहा था। गई नींद!

मुझे उन लोगों से ईर्ष्या होने लगी जो खर्राटे भर रहे थे। अपने पर भारी खीज। नींद पर भी कम आक्रोश नहीं। इधर रात जिस गति से खत्म होती जा रही थी उधर उसी गति से उनके सुख-दुःख की बातों में विस्तार आता जा रहा था और मुरगे ने जब बाँग दी तो मैं एकदम जाग रहा था। सुबह का सारा रस मेरे लिए नीरस था। अब मेरे भीतर नया दुःख इस रूप में सिर उठा रहा था कि उन बूढ़ों जैसा सुख मेरे पास क्यों नहीं है?

सा अ

भयाक्रांत

• गिरिराज किशोर

हम दो-तीन दिन से साथ बैठ रहे थे। अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद वह काफी अच्छे मूड में बात करता था। हम लोगों ने तय कर लिया था कि हम उसके सामने उसके स्वास्थ्य के बारे में ऐसी कोई बात नहीं करेंगे, जो उसकी परेशानी का कारण बन जाए। राजनीति की बात उसे रिलेक्स करती थी। आजकल तो वैसे भी अन्ना आंदोलन का खुमार लोगों पर शिद्दत से हावी है। हम सभी लोग पंद्रह दिन तक गांधीजी की प्रतिमा पर धरने पर बैठ चुके थे। शहर में दो ही जगह थीं, जहाँ धरने पर बैठा जा सकता था—एक, बाबासाहब की प्रतिमा, दूसरी गांधी प्रतिमा। यह बात कभी-कभी अजीब लगती थी कि लोगों ने इसमें भी वर्ण विभाजन कर लिया था कि कौन कहाँ बैठकर आंदोलन करेगा। इस तरह के लोगों का, जिन्होंने देश के हित में बड़े काम किए हों, किसी देश में बँटवारा नहीं होता। मार्टिन लूथर किंग और यू.एस. के श्वेत लोगों ने रंगभेद के बावजूद शायद ही ऐसा कोई समीकरण बनाया है, जैसा हम लोग बना लेते हैं।

उस राज हम इसी मसले पर बात कर रहे थे। भ्रष्टाचार तो इन दोनों ही महापुरुषों की नजर में समान रूप से घृणित और त्याज्य था। भ्रष्टाचार का विरोध कहीं भी धरना देकर किया जा सकता था। यह बात अलग है, साधन को गांधी ने आदर्शों की परिधि में ले लिया था। एक बार मुझे बाबासाहब से मिलने का सौभाग्य मिला था। उन्होंने कहा था, 'मैं देश को बाँटना नहीं चाहता। न मैं गांधी के विरुद्ध हूँ, मतभेद विरोध नहीं होता।" लेकिन हम लोगों ने उसे विरोध में बदल दिया। हम लोग कम करने की जगह उसे दिन दूना रात चौगुना बढ़ाते जा रहे हैं। इस बात पर हम लोगों में नीम रजामंदी थी। लेकिन एकाएक बात दूसरी तरफ मुड़ गई।

एक साहब बोले, "यार, सोनियाजी को ऐसे वक्त विदेश नहीं जाना चाहिए था। अन्ना का भ्रष्टाचार के विरुद्ध आदोलन कांग्रेस के लिए काफी संकट पैदा कर सकता है।"

दूसरे सज्जन बोले, "घूमने तो गईं नहीं, कोई ऐसी बीमारी हो सकती है, जिसका इलाज यू.एस. में ही हो सकता हो।"

एक क्रांतिनुमा सज्जन ने कहा, "क्या बात करते हो! दुनिया की कोई ऐसी बीमारी है जिसका इलाज हिंदुस्तान में न हो सके? ऐसा ही था तो वहाँ से डॉक्टर यहाँ बुला लेतीं। पहले भी डॉक्टर बुलाया जा चुका



हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार तथा चिंतक। बारह कहानी-संग्रह, 'दुशमन और दुश्मन' समग्र कहानियाँ पाँच खंडों में। ग्यारह उपन्यास। प्रसिद्ध उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' मराठी, गुजराती, ओड़िया, कन्नड़ और अंग्रेजी में भी प्रकाशित। छह नाटक तथा लेख/निबंध के आठ संग्रह प्रकाशित। भारतेंदु सम्मान, बीर सिंह देवजू राष्ट्रीय सम्मान, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, साहित्य भूषण पुरस्कार, शतदल सम्मान, जनवाणी सम्मान से अलंकृत। स्मृतिशेष : ९ फरवरी, २०२०।

है। परंपरा के अनुसार उसे 'भारत रत्न' या 'भारत भूषण' दे देते, हिसाब चुकता हो जाता।" सब हँस दिए।

दूसरे साहब बोले, "प्रधानमंत्री और पार्टी अध्यक्ष में अंतर होता है। जिन्होंने बुलाया था वे प्रधानमंत्री थे।"

तीसरे ने हस्तक्षेप किया, "गलत! सत्ताधारी पार्टी की अध्यक्ष की बात दूसरी पार्टियों के अध्यक्षों से अलग है।"

बात एकाएक दूसरी ओर मुड़ गई, "आखिर बीमारी क्या थी, जो ऑपरेशन के लिए यू.एस. जाना पड़ा। आखिर वर्तमान पी.एम. ने भी दो बार बाईपास एम्स दिल्ली में ही कराया।"

"हो सकता है, और कोई गंभीर बीमारी हो। यह बीमारी-व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर करती है।"

"तुम ठीक कहते हो; कैंसर था, क्योंकि एक चैनल पर हॉस्पिटल का नाम आया था, उसमें हॉस्पिटल के नाम के साथ कैंसर लिखा था।"

"जरूर अंदरूनी कैंसर रहा होगा। नहीं तो वी.आई.पीज की बीमारी पर हर चार घंटे बाद हेल्थ बुलेटिन आता है, जिससे हालत न सुधरे तो प्रजाजन प्रार्थना कर सके और सुधरे तो आपस में खुशी बाँट सके। बीमारी को पारिवारिक मामला बताकर फुलस्टॉप लगा दिया गया। लोगों को न प्रार्थना का अवसर मिला, न खुश होने का।"

"पता तो चलना चाहिए था। आखिर अब वे हमारी हममुल्क हैं और सर्वोच्च नेता भी। दुःख-सुख में भाग लेने का हमारा अधिकार भी

बनता है।"

"कैंसर का नाम ही लेना बुरा!"

"आखिर कहाँ का कैंसर था? देशवासियों को पता चलना चाहिए था।" एक साहब बीच में ही बोले, "होगा तो शरीर में ही, देशवासी ही क्या कर लेते? बस अपने पैरों अपने पर आ गईं, यही क्या कुछ कम है!"

वह हमारी बात खामोशी से सुन रहा था। उसकी खुशी में धीरे-धीरे कमी आती गई। बातचीत में जिस उत्साह से भाग ले रहा था, एकाएक ऐसा आभास हुआ, जैसे बूढ़े घोड़े पर जीन लादी जा रही हो। उसकी पत्नी का आग्रह रहता था कि समय निकालकर आप तीनों-चारों दोस्त आ जाया करो। आप लोगों के आ जाने से इनमें चेतनता आ जाती है। साथ ही दबी आवाज से यह भी बंदिश लगा देती थीं, "कृपया कोई डिप्रेसिंग बात न करें।" इसलिए यह तय कर लिया गया था, अपने-अपने काम से लौटते हुए, जहाँ तक होगा सब पहले यहाँ इकट्ठे हुआ करेंगे, फिर घर जाएँगे। हम लोग या तो राजनीति पर बात करते थे या स्कूल के जमाने के किस्से कहते-सुनते थे। मास्टर तारीफ सिंह का कैरीकेचर उतारते थे। वे अगर किसी बच्चे से नाराज होते थे तो कहते थे, 'बड़ी तवाई की बात है' और धौल जमा देते थे। फिर पूछते, 'याद रखेगा ना?' या फिर मास्टर पन्नालाल की नकल उतारते थे। वे आर्ट टीचर थे। अगर आर्ट कॉपी जरा भी गंदी होती थी तो बड़े अंदाज में कहते—'अबे, क्या टट्टी फिर लाया? सूअर बना दूँगा, घुड़-घुड़ करता फिरेगा।' हँसी भी आती थी और डर भी लगता था, कहीं बना ही न दें! वह इन बातों को सुनकर खुश होता था। वह आर्ट में होशियार था, उसे कभी यह संवाद सुनने को नहीं मिला। लेकिन उस दिन राजनीति की बात करते-करते कैंसर का जिक्र आ गया। हम लोग अपनी रौ में बात करते जा रहे थे। इस बात की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था कि हम लोग प्रतिबंधित जोन में प्रवेश कर गए हैं।

पत्नी ने ही कहा, "आज तो आप लोग बातों में इतना खो गए कि समय का ही खयाल नहीं रहा।" हालाँकि उस समय साढ़े छह भी नहीं बजे थे। हम लोग कई बार सात बजे तक बैठते थे। उठते थे तो दोनों में से कोई टोक देता था कि थोड़ी देर और बैठिए, सात ही तो बजे हैं। हममें से कोई हँसकर कह देता था, "आप लोग तो अपने घर पर बैठे हैं। हमें तो अपने-अपने घर जाना है। बीवियों की डाँट खानी पड़ेगी सो अलग।" लेकिन उन लोगों के उतरे चेहरों ने तत्काल भान करा दिया, अतिक्रमण हुआ है। हम एक ही इशारे में उठ गए। उसने दबी जुबान में कहा भी, "बैठो, ऐसी जल्दी क्या है!" हममें से एक ने कहा, "जल्दी और देर में कोई खास फर्क नहीं। कभी जल्दी में भी देर का अहसास होता है और कभी देर भी देर नहीं लगती।" रास्ते में सोचा भी, हमें यह सब नहीं कहना चाहिए था। वह काफी सेंसिटिव हो गया है।

अगले दिन उसकी पत्नी का फोन आया, "आजकल उन्हें थकान ज्यादा महसूस होती है। कल वे कुछ अधिक थक गए थे। रातभर सो नहीं पाए। पूछते रहे थे कि सोनियाजी को क्या हो गया था? क्या अब वे पूरी तरह स्वस्थ हैं? मैं उन्हें समझाती रही कि वे बिलकुल ठीक है। अपने देश वापस आ गईं।

वे इसी उधेड़बुन में रहे, 'वे ठीक हो गईं तो कैंसर के दूसरे मरीज भी ठीक हो जाते होंगे। फिर लोग कैंसर से क्यों डरते हैं?'

'कौन डरता है, कोई नहीं डरता। जैसी और बीमारियाँ, वैसी ही यह बीमारी।'

'तुम ही डरती हो।'

'मैं क्यों डरूँगी?'

'तो क्या तुम मुझे डरा रही हो? मैं डरनेवाला नहीं। तुम सब मुझे डराने के लिए इस तरह की बातें करते हो।'

मुझे रोना आ गया, वे और ज्यादा बिगड़ने लगे। अभी तो मैं जिंदा हूँ। मैंने सोचा कि बातों का यह सिलसिला ही खत्म कर दूँ। हर बात को अब उलटी लेते हैं। इसलिए सोचा, आपको क्यों इस फजीहत में डालूँ। मुझे तो भोगना है, पत्नी जो ठहरी।"

मैं समझ रहा था कि रवि बाबू के बारे में बात छिपाई जा रही है। भाभी भी इस बीच काफी कमजोर हो गई थीं। रवि बाबू तो हो ही गए थे। अपने को ऐसे दिखाते थे जैसे वे पहले जैसे मस्तमौला हैं। कभी-कभी कहते थे, "ये डॉक्टर हम लोगों को कैद करने के लिए तैयार रहते हैं। ये लोग पुलिसवालों से ज्यादा सख्त दिल हैं। पुलिसवाले कानूनी गलतियों का फायदा उठाते हैं, ये शरीर की कमजोरियों का। कर्जदार बना देते हैं वह अलग। शरीर से भी गए और पैसे से भी। हमारे दादा कहा करते थे कि डॉक्टर और मुकदमे से बचो। जरा कुछ हुआ नहीं कि ये लोग दवाओं और परहेज की बेड़ियाँ डालना शुरू कर देते हैं और सबकुछ केमिस्ट और डॉक्टर मिलकर आपस में बाँट लेते हैं।"

मैंने अपने उस दोस्त से कहा, जिसने सोनियाजी की बीमारी का अनायास जिक्र कर दिया था, "रवि बाबू के यहाँ से सबका पत्ता कटवा दिया—रवि बाबू के यहाँ से फोन आया था कि हमारी बातों से वे इतने परेशान हुए कि रातभर सो नहीं पाए। भाभी ने कहा है कि उन्होंने शाम की बैठक का सिलसिला खत्म कर दिया।" उसने उसे नाराजगी के साथ लिया। बोला, "रवि बाबू की बीवी ने ही निमंत्रण दिया था। हम कौन खुशामद करने गए थे! हम तो उधर मुँह करके मूतेंगे भी नहीं।"

मैंने समझाना चाहा, "तुम नाराज क्यों होते हो? रवि बाबू की हालत समझो। मुझे लगता है, वे जिंदगी की अंतिम लड़ाई लड़ रहे हैं, लेकिन वे सोनियाजी वाले अस्पताल में इलाज नहीं करा सकते। वे जितने संतुलित थे, उतने ही असंतुलित हो गए हैं। उनकी पत्नी को लगा, दोस्तों के साथ रवि बाबू को अच्छा लगता है तो उन्होंने हम लोगों से आने के लिए कह

दिया। उन्होंने पहले ही संकेत दे दिया था कि डिप्रेसिंग बात न करना। हम राजनीति के चक्कर में सोनियाजी के ऑपरेशन और कैंसर की बात करने लगे। वे तो पत्नी हैं, उन्हें तो अपने पति की भावनाओं का ध्यान रखना ही होगा। तुम्हारे मूतने या न मूतने से उसका कोई मतलब नहीं।"

वह मुझ पर भी नाराज होने लगा, "मैं जानता हूँ, तुम रवि बाबू की लेंडी सहलानेवालों में हो। दुनिया में कहीं नहीं होता कि जब चाहा गले लगाया और जब चाहा दुतकार दिया। सोनियाजी से उसकी ऐसी क्या रिश्तेदारी कि वह इतना परेशान हो गया कि रातभर सो नहीं पाया। अगर यह खबर सोनियाजी के पास पहुँच जाए तो पौबारे हो जाएँ। मेरी समझ में नहीं आता कि सोनियाजी के कैंसर के ऑपरेशन की बात कहकर मैंने ऐसा क्या गुनाह कर दिया? आधी दुनिया इस तरह की तकलीफों से पीड़ित है। क्या सब इसी तरह सुनने मात्र पर रतजगा करते हैं?"

उसकी ये सब बातें असह्य होती जा रही थीं। समझ में नहीं आ रहा था कि लोग दूसरों के बारे में इतने संवेदनहीन क्यों हो जाते हैं। यह ठीक है, सामान्य आदमी की मानसिकता से परिचित न हों। पर अंदाज तो लगा ही सकते हैं। वह इस बात के लिए तैयार नहीं था। मैंने उससे पूछा, "आखिर तुम इतने नाराज क्यों हो?"

उसकी ये सब बातें असह्य होती जा रही थीं। समझ में नहीं आ रहा था कि लोग दूसरों के बारे में इतने संवेदनहीन क्यों हो जाते हैं! यह ठीक है, सामान्य आदमी की मानसिकता से परिचित न हों, पर अंदाज तो लगा ही सकते हैं। वह इस बात के लिए तैयार नहीं था। मैंने उससे पूछा, "आखिर तुम इतने नाराज क्यों हो?"

"मेरे एक ही जबान है; मैं जो ठीक समझता हूँ, वह कह देता हूँ। आप लोगों की तरह लल्लो-चप्पो नहीं करता। एक औरत की यह मजाल कि वह पहले बुलाए और फिर मना कर दे! बाजारू औरतें भी ऐसा नहीं करतीं!"

"मेरे एक ही जबान है; मैं जो ठीक समझता हूँ, वह कह देता हूँ। आप लोगों की तरह लल्लो-चप्पो नहीं करता। एक औरत की यह मजाल कि वह पहले बुलाए और फिर मना कर दे! बाजारू औरतें भी ऐसा नहीं करतीं!"

"तुम जो मुँह में आ रहा है, बोल रहे हो। किसी भी इनसान के पास दो जबानें नहीं होतीं। लेकिन हर जबान में अलग-अलग भाषाएँ बोलने की कुव्वत होती है। हम सब एक ही जबान से अलग-अलग संवेदनाओं को अलग-अलग मौके पर अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। अपनी जबान का गलत इस्तेमाल भी इनसान की शाइस्तगी में दखलंदाजी करता है। मेरा फर्ज था कि मैं आप लोगों को उनका संदेश दे दूँ।"

"ठीक है, तुम्हें वहाँ अकेले जाता है तो जाओ, मैं फिर कहता हूँ, मैं उधर की तरफ मुँह करके मूतूँगा भी नहीं।"

मेरे पास उससे बहस करने का न दम था, न कारण। उसकी जबान बेकाबू होती जा रही थी। उसका यह रूप पहली बार सामने आया था। मैं बिना कुछ कहे चल दिया। वह अनाप-शनाप बोल रहा था, "मैं औरतों की चमचागिरी नहीं करता। जिन्हें करना हो, करें।" मुझे गुस्सा तो आया, फिर ध्यान आया कि उस दिन जब भाभी चाय के झूठे बरतन उठाने आई थीं तो वह झपटकर स्वयं उठाने लगा था। "हमारे होते हुए आप कैसे उठाएँगी।" वह सब सोचकर मेरे चेहरे पर मुसकराहट आ गई।

□

भाभी ने फोन करके बुलाया। मैं गया तो वे बोलीं, "आपके भाई को हर समय लगता है, उनके शरीर का खून सूखता जा रहा है। हाथ-पैर सफेद हो गए हैं। हर वक्त देखते रहते हैं। कल डॉक्टर के पास चलने को कहा तो मना कर दिया। अब कुछ नहीं हो सकता। आखिर यहीं बुलाकर दिखाना पड़ा। एक हजार रुपए फीस ली। वह तो नारायण भाई आ गए। वे डॉक्टर को जानते थे। जाकर ले आए। नारायण भाई रोज आते हैं। दवा-दारू का जो काम होता है, कर देते हैं।" मैं चकित सा देख रहा था और अंदर-ही-अंदर उसका वह जुमला दोहराता सुन रहा था, 'उधर मुँह करके भी नहीं मूतूँगा।' मुझसे भी कहा था, 'तुम्हें वहाँ अकेले जाना है तो जाओ।' सोचकर हलकी सी मुसकराहट आ गई। भाभी ने पूछा, "क्या बात है भैया?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं, अच्छा लगा कि नारायण आ जाते हैं।"

"मुझसे शिकायत कर रहे थे कि आपने अपने घर आने को भूषण बाबू (यानी मुझसे) से मना करा दिया था। मैं भूषण से लड़ पड़ा। मुझे लगा, वे बाकी लोगों को काटकर स्वयं वहाँ अपने पैर जमाना चाहते हैं।" मैंने बताया, लेकिन वे तो उस दिन के बाद आए ही नहीं। वे बोले, "मैं उनसे माफी माँग लूँगा।"

मैं चलने लगा तो वे बोलीं, "अपने भैया से नहीं मिलोगे? वे तो आपको याद करते रहते हैं।"

मैं अंदर गया तो रवि बाबू के चेहरे पर हलकी सी मुसकराहट आई। धीरे से बोले, "अच्छा है, तुम आ गए। शरीर का खून जैसे हवा चूस रही है।" हाथ फैलाकर दिखाते हुए कहा, "देखो, हाथ बर्फ की माफिक सफेद हो गए।"

मैंने बात बदलते हुए कहा, "अंग्रेजों की माफिक, क्यों, नहीं?"

रवि के चेहरे पर हलकी से वदना उभर आई, बोले, "आप ठीक कहते हैं, सफेदी तो शांति का रंग है, क्यों?" मैं समझ गया, वे क्या कहना चाहते हैं! मैं नहीं चाहता था कि बात खोलकर कही जाए। मैं हँस दिया। इतने में नारायण आ गया। मुझे देखकर सकपकाया। मैं केवल मुसकराया और बोला, "चलता हूँ।" उसने मेरी तरफ देखा और गरदन नीची कर ली।

वे धीरे-धीरे सफेद पड़ते गए। हम लोग उनके आग्रह पर फिर आने लगे। अब वे कम बोलते थे। बस, अपने हाथों की सफेदी निहारते रहते थे। कभी-कभी कहते थे, "अब तो चुप रहने का मन करता है।"

हम लोग समझाते थे, पर चुप रहते थे। ❑

तीन कविताएँ

● बलदेव वंशी

बूँद की ओट में समुद्र

मैंने तो
बस इतना ही किया
कि समुद्र के अतलांत जल को
एक बूँद की ओट में
कर दिया
मैंने तो
बस इतना ही किया
कि अनंत अर्थ-विस्तार को
एक शब्द के संपुट में
धर दिया।

मैंने तो
बस इतना ही किया
कि उनचासों पवनों को
एक ही साँस-करवट
उच्छ्‍वास भर जीया।

मैंने तो
बस इतना ही किया
कि अनहद नाद को
एक नाम के जप में
जी भर लिया।

मैंने तो पूरा जीवन
बस, इतना भर किया!

मनुष्य की हथेली पर चुग्गा

भवनों के साथ घोंसले अंडे बच्चे भी
उड़े चीथड़े लोथड़े बिखरा रक्त
बारूद के धमाकों में…


हिंदी के वरिष्ठ कवि एवं संत-साहित्य के मर्मज्ञ। बारह काव्य-संग्रह, बारह आलोचना तथा बीस से अधिक संपादित पुस्तकें प्रकाशित। पंजाब सरकार के 'शिरोमणि साहित्य पुरस्कार', हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' एवं उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'साहित्य भूषण सम्मान' के अतिरिक्त केंद्र व राज्य सरकारों तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

बड़े-बड़े नगरों में है रवायत
एवज में मुआवजा का चलन
आतंकी हमलों में मरने का अपना कायदा
सरकारें हैं कितनी संवेदनशील
तुरंत घोषित होते आश्वासन, मुफ्त राशन
खुल जाते हैं बंद पड़े बाजार…
लो!
आने लगे लोग फिर बाहर पक्षी भी
दुबके छुपे लाचार
तीन दिन तीन रात
सब देख समझ सहमे परिंदे
उतर आए
मनुष्य की हथेली पर धरा
चुग्गा खाने!

चाक पर चढ़ी मिट्टी

चाक पर चढ़ी मिट्टी
घूम रही है चाक के साथ…
पीड़ाओं सनी उँगलियों से
दुर्भाग्य की रेखाओं कढ़ी हथेलियों से
गढ़ रहा नए-नए पात्र प्रजापति…

पाँवों तले बेरहमी से कुचली-गूँधी मिट्टी
खेतों की
नदी-नालों के बहते पानियों की
कहाँ-कहाँ से आई बहकर
चीकनी मिट्टी यह
कैसा-क्या लेगी आकार?

रोते हुए भूखे कण
दुविधा में दुखते क्षण
अकाल के मारे या
पानी पानी जागने के
पत्थर पत्थर सोने के
विदीर्ण सपनों के
कैसे लेंगे आकार…

कुम्हार का स्वप्न
या मिट्टी की आकांक्षा
कौन है प्रबल?

मिट्टी के बिना कुम्हार भी अधूरा है।

कुम्हार को बनानेवाला कुम्हार
या सपनों में जगानेवाला सपना
क्या है सच?
लुटा-पिटा कुम्हार भी भौचक है आज
मिट्टी-मिट्टी सना प्रजापति
यह मिट्टी / कैसे आकार लेने लगी है?

किंवदंतियों की भूमि लक्षद्वीप

• शंकरदयाल सिंह



प्रसिद्ध साहित्यकार-राजनीतिज्ञ। लोकसभा व राज्यसभा के सदस्य रहे। साहित्य मनीषी अज्ञेय उन्हें हिंदी का 'फील्ड मार्शल' कहकर बुलाते थे। उनकी तीस से अधिक पुस्तकें उनकी रचनाधर्मिता का मुखर प्रमाण हैं। इन पुस्तकों में उनके यात्रा-वृत्तांत, व्यक्ति संस्मरण, निर्बंध निबंध, सामयिक विचार, कहानियाँ यानी पूरा रचना-संसार सहेजा हुआ है। स्मृतिशेष : २६ नवंबर, १९९५।

पहले मैं यहाँ क्यों नहीं आया? रह-रहकर यही प्रश्न मेरे मन में कौंधता रहा। हालाँकि यहाँ आना कोई उतना आसान नहीं है। पहले प्लेन या ट्रेन से कोचीन पहुँचिए, फिर वायुदूत से अगत्ती और अगत्ती के बाद जिस द्वीप खंड में जाना हो, हेलीकॉप्टर अथवा पानी का जहाज छोड़कर और कोई चारा नहीं। हालाँकि कोचीन से पानीवाले जहाज से यहाँ आया जा सकता है और वह एक रोमांचक यात्रा हो सकती है; लेकिन अपनी जो भाग-दौड़ की जिंदगी है, उसमें कहीं सुबह, कहीं शाम, इसका कोई लेखा-जोखा तो है नहीं, इसलिए मैं बोइंग से कोचीन पहुँचा। कोचीन से, वायुदूत द्वारा अगत्ती और अगत्ती से हेलीकॉप्टर द्वारा कवरत्ती।

लीजिए अभी तक मैंने आपको स्थान का नाम तो बताया ही नहीं कि मैं कौन-सी जगह पहुँचा? आप कुछ समझ भी नहीं पाए होंगे; तो बता ही दूँ, उस जगह का नाम—यह लक्षद्वीप है, जिसके बारे में दिल्ली से रवाना होने से पहले 'भ्रमण संगी' में मैंने पढ़ा—

"नीले अरब सागर के जल से धोया हुआ, मूँगा व प्रवाल से गढ़ा, झरनों की इंद्रधनुषी सुंदरता से घिरा लक्षद्वीप सपनीले सौंदर्य का मनमोहक द्वीप-समूह है। लक्षद्वीप, मिनीकॉय और अमिनीदिवि—इन तीनों के समन्वय से १ जनवरी, १९७३ को लक्षद्वीप का गठन हुआ। इसमें और द्वीप भी हैं, जिनकी संख्या ३६ है। केवल १० द्वीपों में ही आबादी बसती है। कुल जनसंख्या ४०,२३७, साक्षरता का प्रतिशत ५५.०७, धर्म सुन्नी संप्रदाय (इसलाम), भाषा मलयालम। हाँ, दक्षिणी द्वीप मिनीकॉय इसका अपवाद है। मिनीकॉयवासियों की भाषा 'माल' है। लिपि दिवेही है, जिसका अरबी से काफी मेल है और यह उलटी ओर से लिखी जाती है—उर्दू की तरह। संभव है, मालदीव का सान्निध्य ही इसके मूल में हो। लक्षद्वीप में सर्वस्तरीय निःशुल्क शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था है। नारियल के पेड़ों की सघन, स्निग्ध, शीतलतादायी छाया समूचे आकाश को ढाँपे हुए नीले जल के दर्पण में अपना सौंदर्य निहारती सैलानियों को रोमांटिक अनुभूतियों से तर-ब-तर कर देती है। नारियल वीथिकाओं के अतिरिक्त पपीते, केले व अमरूद की वृक्षावलियाँ भी एक अलग सैलानी अहसास भर देती हैं। मत्स्य शिकार मूल जीविका है। नारियल के छोबड़ा से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्माण का कार्य यहाँ कुटीर शिल्प के रूप में विकसित हुआ है। राजपथ हैं। टेलीफोन केंद्र हैं। साथ ही कवरत्ती द्वीप में सैटेलाइट (उपग्रह) के माध्यम से दूरदर्शन केंद्र की स्थापना हुई है।

"अनंत गहराई व फैलाववाले समुद्र की तरह नाना प्रकार की किंवदतियों की यह भूमि लक्षद्वीप सुरमई छाँव का अहसास है। मार्को पोलो ने अपने यात्रावृत्तांत में मिनीकॉय का आकर्षक प्रमीला राज्य के रूप में उल्लेख किया है। यहाँ तक कि कांगानोर के हिंदू राजा चेरामन पेरूमल इसलाम धर्म कबूल कर कांगानोर से मक्का की ओर रवाना हुए, किंतु समुद्री-तूफान से दिग्भ्रमित होकर बंगाराम द्वीप पहुँच गए। बंगाराम से राजा अगत्ती पहुँचे। देश वापसी पर उन्होंने लाव-लश्कर भिजवाया। ये हिंदू थे—संभवतः यही कारण है कि इनमें हिंदू प्रभाव आज भी विद्यमान है। गुजरते वक्त के साथ अगत्ती तथा अमिनीदिवि आदि अन्यान्य द्वीपों की खोज-खबर हुई। किंवदंती है कि सातवीं शताब्दी में जद्दा के मुसलिम फकीर उबैदुल्लाह ने अमीनी व अंदरोत में इसलाम धर्म का प्रचार किया। आज भी अंदरोत में उनकी दरगाह पवित्र मुसलिम तीर्थ है। १६वीं शताब्दी में लूट का आनंद उठाने यहाँ पुर्तगाली आए, किंतु द्वीपवासियों ने विषक्रिया से उनकी हत्या कर दी। द्वीपवासियों के मुसलमान होने के बावजूद राज्य-शासन चिराक्कल के हिंदू राजा के हाथ में चला गया। १६वीं शताब्दी के मध्य भाग में अराकान के मुसलिम बादशाह के हाथ में फिर सत्ता वापस आ गई। अंततः १७८३

में अमिनवासियों के अनुरोध पर अराकान के बादशाह की बीवी की प्रत्युत्पन्नमति से कई द्वीपों पर टीपू सुल्तान का कब्जा हो गया। टीपू की मौत के बाद १८५५ में द्वीप पर ईस्ट इंडिया कंपनी का कब्जा हो गया। चिराक्कन के राजा सहायता के लिए आगे आए। प्रयोजनीय क्षतिपूर्ति देने में असमर्थ राजा को ईस्ट इंडिया कंपनी ने कर्ज दिया। कर्ज देने में असमर्थ होने पर द्वीप ईस्ट इंडिया कंपनी के कब्जे में चला गया। १९४७ में भारत के मूल भूखंड के साथ इसका विलय हुआ और सत्ता भारत सरकार के हाथ में आ गई। १९५६ तक लक्षद्वीप मद्रास का ही एक अंग बना रहा। इसी वर्ष १ नवंबर को लक्षद्वीप केंद्र शासित राज्य बना। सारे द्वीप की नैसर्गिक सुषमा अप्रतिम, अतुलनीय है।"

अब आपको बहुत कहने की जरूरत नहीं रही इस द्वीप-समूह के संबंध में।

विश्वास मानिए, लक्षद्वीप की सुंदरता, प्रदूषण-मुक्त वातावरण, नीले सागर का सफेद जल, उसमें तैरती असंख्य मछलियाँ, मूँगा-मोती का अक्षय भंडार, हजारों-हजार नारियल के गदराए पेड़, सफेद बालुका-राशि, शांत और निरीह द्वीपवासी, सबके सब आँखों में इस कदर बस गए हैं, जो वर्णन से परे एक निमंत्रण है। उस निमंत्रण को स्वीकार कर आप यदि वहाँ हो आएँ तभी समझ पाएँगे मेरी बातों को। देश-विदेश में कई जगहों में कई रूपों, कई नामों से उद्धृत सागर को मैंने सैकड़ों बार देखा है, लेकिन लक्षद्वीप के कगारों पर खड़े होकर मैंने अनुभव किया कि यहाँ के सागर में खारापन से अधिक कुँवारापन है। उच्छ्वास की जगह मिठास। उद्धत की जगह सरल।

सच में विशाल और महान् है अपना देश। एक क्या, कई जन्मों में भी आदमी चाहे या सोचे कि मैंने सबकुछ देख लिया तो यह उसका वृथा अभिमान या भ्रम ही कहा जाएगा।

अब देखिए न, गोवा, पुरी, अंडमान-निकोबार, दमनदीव, कोवलम, द्वारका, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी देखकर ऐसा लगता था कि सबकुछ देख लिया; लेकिन आज जब लक्षद्वीप आया तो शर्म से सिर झुक गया कि अब तक यहाँ क्यों नहीं आया था?

समुद्र को किनारे से देखना और समुद्र के बीच में खड़े होकर समुद्र से साक्षात्कार करना, दोनों में बड़ा अंतर है।

लक्षद्वीप—कुँवारा-सा द्वीप है, जहाँ पर्यावरण की कोई समस्या नहीं तथा सौंदर्य निरावरण रूप से यहाँ चप्पे-चप्पे पर बिछा हुआ है।

छत्तीस द्वीपों का समूह मिलकर लक्षद्वीप बनता है। अलग-अलग द्वीपखंड, जिनमें दस द्वीपों पर ही बाशिंदे हैं। कोरल, नारियल, मत्स्य और सीधे-सादे लोगों का यह मनोरम भूखंड। कितना प्यारा लग रहा है!

यहाँ के बारे में अनेक जानकारियाँ हुईं, जिन्हें सुनकर चित्रवत् हूँ। यह कि यहाँ कोई अपराध नहीं होता। यह कि यहाँ कोई चोरी नहीं होती। यह कि यहाँ के सभी द्वीपों पर (बंगाराम को छोड़कर) पूर्ण नशाबंदी है। यह कि यहाँ से एक कोरल उठाकर ले जाना भी अपराध है। यह कि समुद्र में आप कोई टुकड़ा तक नहीं फेंक सकते। यही एक जगह है जहाँ आने के लिए बोइंग या रेल, वायुदूत तथा हेलीकॉप्टर या फिर पानीवाले जहाज का सहारा लेना पड़ता है।

बंगाराम विचित्र नहीं, सचित्र है। मेरी देखी सर्वोत्तम जगहों में एक। लक्षद्वीप के अंतर्गत बंगाराम द्वीप एक ऐसा द्वीप है, जहाँ कोई स्थायी वासी नहीं, सवारी नाम की चीज नहीं, कहीं से कोई आने-जानेवाला नहीं, फोन नहीं, तार नहीं, अखबार नहीं, कुछ नहीं।

बंगाराम आइलैंड रिसॉर्ट होटल जहाँ कभी राजीव गांधी तथा सोनिया गांधी अपने मित्र अमिताभ बच्चन और जया बच्चन के साथ ठहरे थे, वहीं हम ठहरे। फर्क यही रहा कि हमने किसी मछली की जान नहीं बचाई। सभी सदस्यों को एक-एक कमरा मिला था। पूरा दिन और पूरी रात अपनी थी। कवरती से हेलीकॉप्टर द्वारा यहाँ पंद्रह-बीस मिनटों में आ गए। वैसे पानी के जहाज से पाँच-छह घंटे लगते। कॉटेजों की बनावट और बुनावट दर्शनीय है—सीलिंग में चटाई, घास-फूस के छप्पर, लकड़ी का बरामदा, स्वाभाविक झोंपड़ी, बेंत के फर्नीचर, लुभावने, सुहावने निरभ्र आकाश तथा उससे मेल खाता समुद्र। कौन-किसकी नीलिमा को चुराए हुए है, कहना कठिन है।

समुद्र-स्नान का अपना ही मजा है, जिसे श्री विजय कुमार यादव ने उठाया। समुद्र तल में असंख्य जीव-जंतु और मछलियाँ हैं। सच में यहाँ की मछलियाँ सुहावनी हैं। इनके सामने इंद्रधनुष मात खा जाए।

अगत्ती एक पड़ाव था। ६.३० कि.मी. लंबा द्वीप। सिंडीकेंट बैंक का एक छोटा-सा दफ्तर। उसका निरीक्षण डाक बँगला में बैठकर किया। अजब लगा—हम आठ मेंबर, चार अफसर और वहाँ बैंक के मात्र दो अधिकारी। बैठने के लिए भी पूरी जगह नहीं। यही एक ऐसी जगह मिली, जहाँ कार नहीं, एक-एक जीप पर चार-चार मेंबर सवार हुए। लगा, जीवन में जब जैसा, तब तैसा न हो—वह आदमी कैसा!

अगत्ती में छोटे-छोटे अनेक केंद्रीय दफ्तर हैं तथा मध्य प्रदेश से आए केंद्रीय रिजर्व फोर्स की एक बटालियन भी है, जिसके जवानों से मिले। बंगाराम से अगत्ती मात्र दस मिनट में पहुँच गए। हेलीकॉप्टर इतना नीचे से उड़ रहा था कि भय होता था, कहीं समुद्र में गिर न जाएँ।

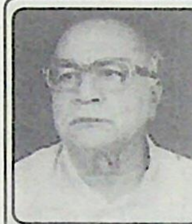
इन द्वीपों में आने के लिए अनुमति-पत्र लेना आवश्यक होता है। पाँच दिनों से ज्यादा कोई ठहर नहीं सकता। तभी यहाँ की स्वाभाविकता, सभ्यता, संस्कृति बची हुई है। अगत्ती में लगभग दो घंटे रुके। इसी बीच 'वायुदूत' आ गया आ गया और नीचे समुद्र को निहारते हुए कोचीन पहुँच गए। लक्षद्वीप में रहा तो दो-तीन दिन, लेकिन मन नहीं भरा।

सच में क्या हम अपनी इन दो छोटी-छोटी आँखों से उन सारी चीजों को देख लेते हैं, जो देखने को बनी हैं? कभी नहीं। भले हमारा दिल सब कुछ देख ले और जबान इसका कुछ वर्णन कर दे, लेकिन सच बात यह है कि ऐसी जगहों पर आकर जाने का मन नहीं करता और जब हम चले जाते हैं तो बार-बार मन में यह बात उठा करती है—एक बार फिर वहाँ जाना है!

सा अ

ऐसा इनसान कहाँ

• यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'



हिंदी के यशस्वी कथाकार। साठ उपन्यास, पंद्रह कहानी-संग्रह, नौ नाटक, एक कविता-संग्रह, पाँच राजस्थानी रचनाएँ; तीन टेलीफिल्में; 'लाज राखौ राणी सती' (पहली राजस्थानी रंगीन फिल्म)। साहित्य अकादेमी, फणीश्वरनाथ रेणु, मीरा, राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थानी भाषा सा.सं. अकादमी, राजस्थान पत्रिका कहानी पुरस्कार; साहित्य महोपाध्याय, विद्यावाचस्पति, साहित्यश्री, साहित्य मनीषी, डॉ. राहुल सांकृत्यायन साहित्य महोपाध्याय आदि अनेक सम्मान। अनेक विश्वविद्यालयों से १२ शोध व अनेक लघु शोध। स्मृतिशेष : ३ मार्च, २००९।

अर्धाकार सूर्य अत्यंत ही आकर्षक लगा 'दशपुर' के नवाब महमूद को। तत्कालीन युद्ध-पिपासुओं के विलासी राजा-नवाबों के विपरीत वह अत्यंत ही संयमी था और दिन भर अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ साँझ के समय महल के बरामदे में आकर प्रकृति के दर्शन करता था।

आज भी उसने ऐसा ही किया।

बरामदे में आकर उसने उपत्यकाओं पर दृष्टिपात किया। तभी उसे एक चील सूर्य की ओर त्वरा से बढ़ती हुई दिखाई दी। और उधर सूर्य क्षितिज-अधर का अंतिम चुंबन लेकर अदृश्य होने की तत्परता दिखाने लगा।

केवल तिमिरांचल का हलका आवरण छाने लगा।

महमूद उसके अवलोकन में मुग्ध था।

साँझ के समय प्राय: वह अपने रजत के सिंहासन पर आ बैठता था। एक श्वेत कपोत उसके आस-पास मँडराता रहता था। अन्य यवन नरेश उसे बार-बार 'कांठल' की राजधानी पर आक्रमण करने हेतु उकसाते रहते थे, पर महमूद उनकी बात पर कान नहीं धरता था। यही कारण था कि कांठल की राजधानी 'देवगढ़' समृद्धि की ओर बढ़ रही थी। उसकी उन्नति दिन-प्रतिदिन हो रही थी। उसका वैभव आकाश-स्पर्शी हो रहा था। तब मेवाड़ बड़ी रियासत था और कांठल उसके अधीन महारावलों का एक श्रेष्ठ ठिकाना।

महमूद को युद्ध के प्रति उकसानेवाला वैशाली का सूबेदार था। जातिगत संकीर्णता से आहत सूबेदार उसे बार-बार कहता था, ''कांठल की राजधानी देवगढ़ पर आक्रमण करके उसके ऐश्वर्य को पा लेना चाहिए। इन ताकतों का बढ़ना हमारे हक में नहीं रहेगा। एक दिन ये हमें ही मसलकर रख देंगे।''

सुलतान महमूद को युद्ध से घृणा थी। वह शांतिप्रिय था। इसका तात्पर्य यह नहीं है, वह दुर्बल था या उसके पास शक्ति नहीं थी। किंतु उसे व्यर्थ के रक्तपात में विश्वास नहीं था। मालवा की अपराजेय सेना थी उसके पास।

वह उत्तर देता, ''वजीर खाँ! इनसान का खून बेमतलब बहाना ठीक नहीं है। मेरा अपनी ताकत को ज्यादा मजबूत करने में यकीन है। मेरी सरहदें कोई पार नहीं कर सकता। मैं उन आँखों को फोड़ दूँगा, जो मेरी उठेंगी।''

''किंतु, मेवाड़ मुसलमानों का शुरू से दुश्मन रहा है। आग और पानी का मेल कब हुआ है, हुजूरेआला?''

''हिंदू और मुसलमान ही क्यों?'' महमूद ने बहुत ही शांत स्वर में दोहराया, ''क्या दुनिया के सारे इसलामी मुल्क एक हैं? क्या मुसलमान आपस में लड़ते नहीं? सब लड़ते हैं। एक माँ के दो सगे बेटे खुदगर्जी के लिए लड़ते हैं। न हिंदू लड़ता है और न मुसलमान। सूबेदार साहब! लड़ती है खुदगर्जी, लड़ता है स्वार्थ!''

सूबेदार चुप हो जाता।

महमूद फिर अपने शांत जीवन और सुखी परिवार के सपनों में खो गया।

साँझ रात के अँधेरे में खो गई।

महमूद उठकर महल में आया। महल में चिराग और मशालों की लौ पवन के झोंकों के कारण लौ घड़ी-घड़ी प्रकंपित हो रही थीं।

बाँदी कुछ अंतराल के पश्चात् महमूद के पास गई। कोरनिश करके बोली, ''आपको बेगम...।''

तभी घोड़े की टापें सुनाई पड़ीं।

महमूद के कान खड़े हो गए।

असमय अश्व की इन टापों ने उसके मन में कई प्रश्न उगा दिए। उसने बाँदी से कहा, ''जाओ, पता लगाओ, कौन आया है?''

बाँदी चली गई।

वह प्रकोष्ठ में टहलता रहा।

थोड़ी देर में बाँदी लौट आई। कोरनिश करके बोली, ''हुजूरेआला, सूबेदार वजीर खाँ आए हैं। इसी वक्त मुलाकात करना चाहते हैं।''

''हाजिर करो।''

बाँदी चली गई। उसके जाते ही शांतिप्रिय महमूद ने सोचा कि यह जरूर कोई नई बात लेकर आया है। इसके दिमाग में है जंग' जंग' जंग। वह नहीं जानता कि एकलिंग की छत्रच्छाया में प्रभुता-संपन्न मेवाड़ के गौरव को पददलित करना आसान नहीं है। हर पल वजीर खाँ की निगाह खुशहाली में झूमते हुए देवगढ़ पर पड़ती है। उसकी सुंदर युवतियों को दबोचने पर लगी रहती है। कैसे हैं ये गिरे हुए आदमी!

उसने पुनः दृढ़ निश्चय किया कि वह व्यर्थ में रक्तपात नहीं करेगा। फिर वे लोग मेरे दोस्त हैं।

वजीर खाँ ने आकर आदाब किया।

''आइए वजीर खाँ, आज आप बेवक्त कैसे तशरीफ लाए?''

इस बीच बाँदी ने एक छोटी कुरसी लाकर रख दी। वजीर खाँ उसपर बैठ गया। वह अपनी मुद्रा को गंभीर बनाता हुआ बोला, ''आप तो जानते ही हैं कि लगातार आपके उपदेशों से मेरा दिल भी रहमदिल हो गया है। अब मैं किसी की जान जाते नहीं देख सकता।''

''मतलब?'' चौंका सुलतान।

''एक हसीना आपके लिए घर-बार छोड़ चुकी है।''

महमूद चौंक पड़ा। पल भर के लिए उसमें एक जड़ता आ गई। वह प्रश्न भरी दृष्टि से वजीर खाँ को देखने लगा।

''हाँ, हुजूर, वह दीवानी जिद पकड़कर बैठ गई है कि शादी करेगी तो आपसे ही।'' उसके स्वर में जरा उपहास भरा व्यंग्य था।

महमूद को इतनी हलकी बात पर बड़ा गुस्सा आया, पर उसने अपना संयम नहीं खोया। वह आहिस्ता-आहिस्ता अपने ललाट में बल डालते हुए बोला, ''आप पहेलियाँ न बुझाकर मुझे साफ-साफ कहें।''

''बात यह है कि देवगढ़ के ग्राम की एक सुंदर युवती आपसे विवाह करने की प्रतिज्ञा कर चुकी है।''

महमूद कुछ रुकते हुए बोला, ''वह कौन है?''

''वह एक ब्राह्मण कन्या है, आलमपनाह! वह किसी हूर से कम नहीं है। एकदम अद्भुत! एकदम नाजनीन!''

महमूद के अनुरोध पर वजीर खाँ ने सारा वृत्तांत सुनाया। घटना इस प्रकार थी—

देवगढ़ ग्राम का एक सरोवर। उसमें उस दिन अनेक कन्याएँ नहा रही थीं। सबके अंगों से सौंदर्य झलक रहा था।

उसमें थी एक गौरी नाम की छोरी! किशोर और यौवन के बीच की कली। सौंदर्य-सरोवर में सद्यःस्नाता सी। नारी-हठ की प्रतीक! जिस बात पर अड़ जाती है, फिर क्या मजाल है कि उसे छोड़ दे। इसकी पृष्ठभूमि यह थी कि गौरी की माँ मर चुकी थी और सौतेली माँ ने उसे थोड़ा भी प्यार नहीं दिया था। एक प्यार की प्यास बुझाने के लिए वह हर पल लालायित रहती थी। एक ललक थी उसमें कि कोई उसे प्रेम की वर्षा से भिगो दे। उसके अंग-अंग में उस प्रकंपन को भर दे, जो पीर से आवेष्टित होने के बाद भी सुखद होता है। आनंद बिखेरता है।

गौरी को प्रेम की दो बूँदें भी नहीं मिलीं। इसलिए वह अपमानित व प्रताड़ित होकर भी अपना हठ पूरा करती थी और कभी-कभी कोई अनुचित बात पकड़कर बैठ जाती थी। उसके लिए उसे फिर कितना ही संकट और अपमान क्यों न सहना पड़े, उसकी वह परवाह नहीं करती थी।

उस दिन भी सरोवर में सब लड़कियाँ नहा रही थीं। गौरी उसमें साक्षात् गणगौर लग रही थी। गोरा अंग-सौष्ठव! उसपर चिपकी हुई भीगी साड़ी। उसकी सहेलियाँ भी ईर्ष्या के मारे जल उठीं।

सिरे कुँवर उसपर पानी उछालती हुई बोली, ''मरी! तुम्हारा रूप-यौवन किससे बँधेगा, राम जाने!''

नैनड़ी मुसकराकर बोली, ''प्रभु ने इसे बड़ी फुरसत से बनाया है। देखो न, कहीं भी कोर-कसर नहीं है। एकदम पूगलगढ़ की पद्मिनी!''

गंगली ने पीछे से आकर गौरी को आलिंगन में आबद्ध सा कर लिया। उसकी गरदन का चुंबन लेकर बोली, ''इसे तो किसी राजा के घर में जाना चाहिए। अवश्य यह राजा के घर पैदा होते-होते ब्राह्मण के घर जन्म गई। है तो यह गुलाब का पुष्प ही।''

उन सब लड़कियों में एक बड़े घर की बेटी थी—कँवली। फूल-सी कोमल और बंदर-सी नटखट। कँवली ने उसकी साड़ी को खींचा। गौरी ने उसे मना कर दिया। दूसरी लड़कियों ने भी कँवली को मना किया, पर कँवली मानी नहीं। वह गौरी की साड़ी खींचती ही रही। गौरी बेचारी अर्धनग्न-सी हो गई। इसी बीच नैनड़ी, सिरेकुँवर और गंगली ने मिलकर कँवली को घेर लिया। सभी उसकी साड़ी खींचने लगीं। अब कँवली घबराई। वह सबको मना करने लगी। हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी, पर यौवन में मदांध लड़कियों ने उसकी एक बात भी नहीं मानी।

उस पल कँवली की माँ आ गई। बड़े घर की बहू—ठसकदार, घमंडी। आते ही बोली, ''क्यों री छिनालो, मेरी बेटी को किसलिए तंग कर रही हो?''

''जो कंकर की मारेगा, वह पत्थर की वापस खाएगा। मैं किसी की दबैल नहीं हूँ।'' आँखों में रोब भरकर गौरी बोली, ''अरी! अपनी कँवली को सँभाल, वह जो पंख निकाल रही है, वे पकड़ में नहीं आएँगे। भटक गई तो कौन विवाह करेगा?''

''मेरी बेटी के लिए तो वरों की कतार लग जाएगी। वह तो राजकुमार से विवाह करेगी, पर तुझसे कौन विवाह करेगा? अच्छे वर के लिए थैली में नकद नारायण होना चाहिए।'' कँवली की माँ एक पल रुकी, फिर बोली, ''अपने रंग-रूप का इतना ही घमंड है तो कर न विवाह सुलतान से?''

आवेश व क्रोध में गौरी चिनगारी बनी हुई थी। सोचा न समझा। बोल पड़ी, ''हाँ-हाँ, मेरी शादी सुलतान से ही होगी।''

लड़कियाँ सहम गईं।

कँवली की माँ पुन: बोली, ''सब इसे घेरकर मारोगी क्या?''

''नहीं तो!''

''फिर इसे क्यों तंग कर रही हो?''

''तंग हम नहीं, तुम्हारी यह छिनाल कर रही है।'' गौरी ने जरा गुस्से में कहा।

कँवली की माँ को अपनी बेटी को छिनाल कहना सहन नहीं हुआ। वह त्योरियाँ बदलकर बोली, ''मुँह सँभालकर बात कर, मेरी बेटी को छिनाल...।''

''एए... पहले अपने हृदय में झाँक? हर एक की बेटी तुम्हारी बेटी से अधिक अच्छी है। दूसरे को कहते हुए तुम्हारी जीभ नहीं जली, क्यों?'' गौरी उत्तेजित हो गई थी।

''कलमुँही कहीं की, मुझसे जबान लड़ाती है? पैदा होते ही माँ को खा गई। डायन कहीं की!''

''डायन मैं नहीं, तेरी सात पीढ़ी होंगी।''

कँवली की माँ का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। बोली, ''मुझे गाली देती है?''

''जो कंकर की मारेगा, वह पत्थर की वापस खाएगा। मैं किसी की दबैल नहीं हूँ।'' आँखों में रोब भरकर गौरी बोली, ''अरी! अपनी कँवली को सँभाल, वह जो पंख निकाल रही है, वे पकड़ में नहीं आएँगे। भटक गई तो कौन विवाह करेगा?''

''मेरी बेटी के लिए तो वरों की कतार लग जाएगी। वह तो राजकुमार से विवाह करेगी, पर तुझसे कौन विवाह करेगा? अच्छे वर के लिए थैली में नकद नारायण होना चाहिए।'' कँवली की माँ एक पल रुकी, फिर बोली, ''अपने रंग-रूप का इतना ही घमंड है तो कर न विवाह सुलतान से?''

आवेश व क्रोध में गौरी चिनगारी बनी हुई थी। सोचा न समझा। बोल पड़ी, ''हाँ-हाँ, मेरी शादी सुलतान से ही होगी।''

कँवली खिलखिला पड़ी। बोली, ''असल बाप की बेटी हो तो सुलतान से विवाह करके दिखाना। नहीं तो गाँववालों को अपना मुँह मत दिखाना।''

कँवली की माँ ने एक और पत्थर फेंका, ''यदि तुममें जरा भी सच्चाई है तो तालाब में से तभी निकलना जब सुलतान आए।''

''हाँ-हाँ, मैं तभी तालाब से बाहर निकलूँगी जब सुलतान आएगा।''

बातों-ही-बातों में प्रतिज्ञाएँ हो गईं।

नीली झील-सी आँखें सजल हो उठीं गौरी की।

उसकी प्रतिज्ञा ने चारों ओर सन्नाटा कर दिया। वह बोली, ''तुम सब जाओ। मैं अब यहीं रहूँगी और सुलतान की प्रतीक्षा करूँगी।''

कँवली की माँ मुँह बिचकाकर चली गई।

सहेलियों के मुँह उतर गए। जब कँवली और उसकी माँ आँखों से ओझल हो गईं तो वे उसके सन्निकट आकर समझाने लगीं—

''गौरी, यह लुगाई तो लोगों के काम बिगाड़ती रहती है।''

''यह उलटे पाठ पढ़ाकर सबको दु:ख देती है।''

''चल, घर चल, इस प्रतिज्ञा को थूक दे।''

''नहीं, मैं यहीं रहूँगी। मैं अब सुलतान से विवाह करके ही आऊँगी, वरना यहीं पर मर जाऊँगी। इस सरोवर में जल-समाधि ले लूँगी।'' उसकी नीलम-सी प्यारी आँखें भर आईं।

पर सहेलियों ने तब तक हार नहीं मानी जब तक वह जल से बाहर नहीं निकली। वह बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। अपनी प्रतिज्ञा को बार-बार दोहराती रही। उसके हठ से हारकर गंगली और नैनड़ी चली गईं।

साँझ के मटमैले उजाले में सिरेकुँवर बोली, ''ऐसा हठ नहीं करते भायली (सखी)!''

''सिरेकुँवर! तुम तो मेरी बचपन की भायली हो। सच्ची भायली हो। तुमने मेरा जीवन देखा है। तुमने मेरी पीड़ा को समझा है। अरी पगली, क्या जीना और क्या मरना! मैं जो जीवन अपनी सौतेली माँ के साथ जी रही हूँ, उससे तो मौत भली। फिर क्यों न अपने वचन की रक्षा करती हुई मरूँ? मैं मर जाऊँगी, पर अब घर नहीं लौटूँगी। वास्तव में मुझे जीने में कोई आनंद नहीं। एक घुटन और दुत्कारों भरे जीवन से तो अच्छा है, यहीं पर धूनी जलाकर मर जाना।'' वह सुबक पड़ी। रुँधे स्वर में बोली, ''माँ का प्रेम नहीं, घर में कोई आव-आदर नहीं, कोई मीठे बोल बोलनेवाला नहीं।...नहीं-नहीं मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी, कदापि नहीं जाऊँगी।''

सब हारकर चली गईं।



साँझ नि:शब्द पाँव उठाती हुई रात्रि की कालिमा में घुलकर एकमेक हो गई।

जब यह चर्चा गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पास पहुँची तब वे चिंतित हो उठे। वे एकत्रित होकर गौरी के बापू के पास गए। बापू के पाँवों के नीचे की जमीन खिसक गई। उसने मन-ही-मन सोचा कि उसकी बेटी ने इतनी भयानक प्रतिज्ञा कैसे की? प्रतिज्ञा भी ऐसी, जो न तो पूरी हो सकती है और न कोई भी गौरवशाली व्यक्ति पूरी होने देगा। हिंदू विप्र-कन्या क्या किसी मुसलमान के घर जा सकती है? उसके महल की शोभा बन सकती है? विधर्मियों के स्पर्श से प्राण त्यागनेवाली हिंदू नारियाँ इतनी पतित हो गईं कि एक यवन से विवाह करने का हठ करती हैं।

निश्चय किया गया कि पहले उसे समझाया जाए, वरना उसे आगाह कर दिया जाए—यदि तुमने अपना हठ नहीं छोड़ा तो तुम्हारी गरदन धड़ से अलग कर दी जाएगी। वे लोग आए। उनमें गौरी का बाप भी था।

सरोवर के आस-पास घना अँधेरा हो गया था। जुगनू चमक रहे

थे। कहीं-कहीं रात्रि-पखेरू बोल जाता था। वे लोग एक मशाल जलाकर लाए थे। इतने निर्जन एकांत में गौरी बैठी थी। सब लोग उसके पास आए।

मुखिया शांत स्वर में बोला, ''बेटी, यह कैसी प्रतिज्ञा है, जो तुम्हारे कुटुंब के उज्ज्वल मुख पर कलंक लगानेवाली है? हिंदू कन्या होकर ऐसा मन में सोचना भी पाप है।''

''जो सोच लिया, वह सोच लिया काका सा!'' उसने दृढ़ता से कहा।

''जानती हो कि वह मुसलमान है, तुम ब्राह्मण होकर उस कुल की वधू नहीं बन सकती।''

''काका सा! प्रतिज्ञा सूत का कच्चा धागा नहीं है, जिसे जब चाहा तोड़ लिया।''

उसका पिता अत्यंत ही उत्तेजित स्वर में कड़ककर बोला, ''पर तेरी गरदन तो कच्चे सूत ज्यूँ टूट सकती है। कुल-कलंकिनी, ब्राह्मण होकर सुलतान का मन में विचार भी लाना महापाप है।''

''आप मेरी गरदन काट दीजिए। मैंने एक बार 'सुलतान' को मन से वर लिया, सो वर लिया। सच्चा वर लेना तो मन का ही है।''

''नीच!'' उसने उसे पीटना चाहा।

मुखिया ने उसे रोक दिया, ''तुम्हें पंद्रह दिन का समय दिया जाता है। अच्छी तरह सोच लो वरना या तो तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा या अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देनी पड़ेगी।''

गौरी ने कोई जवाब नहीं दिया।

गौरी उस भयावह एकांत में बैठी है। वह केवल पानी पीती। आठ दिन बीत गए हैं। वजीर खाँ ने बात खत्म की।

सारी घटना सुनकर नवाब मुहम्मद, जो मालवा का सुलतान भी कहलाता था, बोला, ''यह धर्म-संकटवाली बात है। हम सबका कठोर इम्तहान है।''

''आलमपनाह, वह बेचारी अकेली नदी के किनारे बैठी है। उसकी इच्छा जरूर पूरी की जाए।''

''वजीर खाँ! अभी तक आप आदमी से ऊँचे नहीं उठे हैं। फिर भी हम उसकी प्रतिज्ञा को पूरी करेंगे। हम ब्राह्मण-कन्या के दिल को नहीं तोड़ेंगे। उसका जलाल रखेंगे।''

''फिर मैं उस सर्वांग सुंदरी को लाने की तैयारियाँ करूँ?''

''हाँ, हाथी सजाया जाए।''

''जो हुक्म!''

''खूब धूमधाम हो।''

''बहुत खूब आलमपनाह!'' वजीर खाँ खुशी में पागल हो गया। वह बार-बार सोच रहा था कि सुलतान की इच्छा से नहीं, अनिच्छा से एक हिंदू कन्या हरम में तो आएगी! वह हमारे धर्म की एक विजय है।

पर विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का यह नायक इस घटना के सुंदर समाधान के लिए विचारता रहा, सोचता रहा।

रात नीरव होकर एकदम चुप हो गई।

सुलतान चहलकदमी करता रहा।

गौरी के पास मुसलमानी पोशाक में एक व्यक्ति पहुँचा। उसने शांत-स्थिर बैठी गौरी को नमस्कार करके कहा, ''बहन! मैं सुलतान का दूत हूँ और आपको एक बहुत ही बुरी खबर सुनाने आया हूँ।''

गौरी ने प्रश्न भरी दृष्टि से आगंतुक को देखा। उसका चेहरा उदास था। उसकी पलकों के नीचे वेदना छाई हुई थी। वह मौन रही। आगंतुक ने कहा, ''सुलतान की मृत्यु हो गई है। अचानक वे बीमार पड़कर परलोक सिधार गए हैं।''

वह दुःख से आहत हो उठी। उसकी आँखें भर आईं। कपोलों पर दो अश्रु ढुलक गए। बोली, ''मैं अभागी हूँ, मुझे सुख नहीं मिल सकता। हे भगवान्, तुम्हारा कौन सा यह दंड है?'' उसने आँसू पोंछे। साहस करके बोली, ''भाई मेरे, तुमने मुझे बहन कहा है, इसलिए अपनी बहन को सती होने में मदद करो। मैं चिता में जलकर भस्म होना चाहती हूँ।''

आगंतुक उसे समझाता रहा, पर वह नहीं मानी। चंदन-चिता तैयार हो गई। गाँव के नर-नारी एकत्र हो गए। यह एक विचित्र खेल था, गौरी का बाप चुप था, कदाचित् इसलिए कि कुल एक भयानक कलंक से बच गया। ऐसी बेटी जलकर मर जाए तो अधिक उत्तम!

आग लगने के पूर्व आगंतुक तीव्र स्वर में बोला, ''बहन! तुम्हें चिता में जलने की जरूरत नहीं। सुलतान तुम्हें ब्याहने आ गया है।''

सभी ने देखा कि शाही सेना के साथ सुलतान हाथी पर सवार होकर आ रहा है।

गाँव के लोग हैरान! कँवली की माँ के पाँवों के नीचे की जमीन खिसक गई। नयन विस्फारित हो गए, ''क्या सचमुच इसका विवाह होगा सुलतान से?''

गौरी के बाप ने यह निश्चय कर लिया कि जैसे ही उसकी बेटी फेरे खाएगी, वैसे ही वह आत्महत्या कर लेगा।

तब तक हाथी के हौदे पर सुलतान आ गया। वह नीचे उतरा। गौरी का मन उल्लास से भर गया। वह उन्मत्त सी सुलतान की ओर बढ़ी। उसे देखा तो स्तब्ध रह गई। अधर चिपक गए। उसे सुन्न देखकर उसका पिता पास आया। वह भी सुलतान को देखकर हतप्रभ रह गया।

कँवली की माँ भी वहाँ आई। पहली बार वह बोली, ''अरे! यह तो जयदेव है। अपने गाँव का ब्राह्मण-पुत्र जयदेव!''

जयदेव! यह नाम सर्वत्र फैल गया।

आगंतुक, जो स्वयं महमूद था, समीप आकर बोला, ''गौरी बहन! सुलतान से शादी करना चाहती थी, आज मैंने अपना यह अधिकार जयदेव को दे दिया है। जयदेव आज मालवा का सुलतान है। आज इसकी शादी गौरी से होगी। उसकी प्रतिज्ञा पूरी होगी।''

सारे उपस्थिति जनसमुदाय के हृदय में सम्मान जाग उठा। भीड़ ने उसकी जय-जयकार की। वन में विवाह-मंडप बना। गौरी का विवाह हुआ। विदा होते समय वह रो पड़ी। 'सुलतान भैया' सुलतान भैया कहकर रोती रही।

''जाओ बहन, सुख से रहो।'' उसने अपने अश्रु पोंछे।

और शहनाई का दर्दीला स्वर वातावरण में तैर गया। गौरी का पिता उस महान् इनसान के समक्ष मन-ही-मन नत हो रहा था।

सा अ

विगत का डर

• महीप सिंह

गीता प्लेटफॉर्म पर हक्की-बक्की सी खड़ी थी। उसकी घड़ी में अभी आठ पैंतीस ही हुए थे और आठ पचास की गाड़ी कब की जा चुकी थी। स्टेशन मास्टर के कमरे में लगी क्लॉक की बड़ी सुई नौ को छोड़कर बारह को पार करती हुई तीन पर जा खड़ी हुई थी, जैसे—छोटे मिनटों का बोझ ढोनेवाली वह बड़ी सुई बड़े-बड़े घटों के बोझ को ढोनेवाली छोटी सुई से दूर-दूर रहने में ही अपनी शान समझती हो।

वह कलाई पर बँधी हुई घड़ी देख रही थी, यह इतनी लैट कैसे हो गई?

वह पूछ रही थी, 'धर्मपुर के लिए दूसरी गाड़ी?'

अधेड़ स्टेशन मास्टर अपने रजिस्टर को अलमारी में रख रहा था, 'बारह दस की पैसिंजर।'

गीता उस गाड़ी का समय जानती थी। बारह दस की पैसिंजर धर्मपुर पहुँचती है सुबह पाँच पचपन पर। यह बात तो उसने बस ऐसे ही पूछी थी।

उसने अपनी घड़ी ठीक कर ली—नौ बीस हुए थे। जैतीपुरा का वह छोटा स्टेशन जंगली पोखर की तरह निस्पंद हो गया था। कुछ देर पहले गाड़ी आकर चली गई थी, जैसे उस पोखर में पास के पेड़ से कोई फल टूटकर गिरा हो।

गाड़ी आने में करीब तीन घंटे बाकी थे। स्टेशन से तीन मील दूर का गाँव रात के अँधेरे में जैसे क्षितिज का एक कोना बन गया था।

स्टेशन मास्टर अपने कमरे में ताला बंद कर अपने क्वार्टर में जाने की तैयारी कर रहा था।

वह अँधेरे में गमसुम खड़ी थी।

"आपको धर्मपुर जाना है?"

"हाँ।"

"वेटिंगरूम खुलवा देता हूँ।"

वेटिंगरूम में एक बड़ी सी गोल मेज बीच में रखी थी। उस पर मद्धिम सा जलता हुआ लैंप था । आसपास दो-तीन कुरसियाँ और दो ओर दीवार से लगी दो लंबी बेंचें पड़ी थीं। बाहर अँधेरा खूब गहरा था।

वह देख रही थी, बाईं ओर कुछ दूर लैंप-पोस्ट के नीचे बैठे कुछ देहाती बीड़ी का धुआँ उड़ा रहे थे। उनके साथ की स्त्रियाँ वहीं जमीन पर लेटकर सो गई थीं।



हिंदी के प्रसिद्ध लेखक व संपादक। तेरह कहानी संग्रह, दो उपन्यास, दो व्यंग्य-संग्रह, एक निबंध पुस्तक, तीन शोधग्रंथ, तीन जीवनियाँ, बाल साहित्य की तीन पुस्तकें प्रकाशित एवं अनेक ग्रंथों का संपादन। लंबे समय तक 'संचेतना' पत्रिका का संपादन किया। स्मृतिशेष : २४ नवंबर, २०१५।

वह एक लंबी आरामकुरसी पर बैठ गई। उसकी पीठ दरवाजे की ओर थी। अटैची से उसने एक उपन्यास निकाल लिया और उसके पन्ने उलटने लगी।

तभी एक चीज उसके अंदर जल में पत्थर की तरह उतर आई—कहीं कोई पीछे से आकर? वह खड़े होकर तेज साँसों से आँखें फाड़कर दरवाजे के बाहर देखनी लगी। पटरियों के पास काला लबादा ओढ़े हुए दरख्त उसे तिलिस्मी उपन्यासों के पात्र जैसे लग रहे थे। उसने झाँककर बाईं ओर देखा। लैंप-पोस्ट के पास बैठे धुआँ उड़ाते यात्रियों की आवाज उसे बहुत अच्छी लगी।

वह अंदर आकर सामने की कुरसी पर बैठ गई। अब उसका मुँह दरवाजे की ओर था। वह उपन्यास पढ़ रही थी, पर बार-बार उसे लग था कि दरवाजे में बाहर कुछ आकृतियाँ चल-फिर रही हैं। वह बार-बार नजर उठाकर देख चुकी थी, वहाँ कुछ भी नहीं था और सामने पटरियों के उस पार दरख्त थे—बेजान दरख्त।

यदि ऐसे में कोई आ जाए? उस वीराने में उसके हृदय की धड़कन हथौड़े की तरह उसके कानों में बजने लगी। वह दरवाजे के पास आ खड़ी हुई। दाईं ओर से कोई आ रहा था। वह दरवाजे की ओट में हो गई। वह सीधा चला गया। शायद कोई रेलवे कर्मचारी था। उसने अपनी घड़ी की ओर देखा। पूरे दस भी नहीं बजे थे। वह उसे देखती रही। सेकिंड की सुई बहुत तेज दौड़ती थी। बाकी की दोनों सुइयाँ उसे स्थिर सी लग रही थीं, जैसे कोई स्टैंड पर खड़ी साइकिल की सीट पर बैठा पैडल चला रहा हो, पहिया तेज घूम रहा हो, पर साइकिल वहीं-की-वहीं हो।

वह आकर कुरसी पर बैठ गई। अब दरवाजा उसके बाईं ओर पड़ रहा था, क्योंकि वह उसकी ओर न अपना मुँह करना चाहती थी, न पीठ। लैंप पास लाकर वह उपन्यास के दो-तीन पन्ने पढ़ गई। फिर उसे लगा जैसे दरवाजे से कोई अंदर आ रहा है। उसने चौंककर देखा। वहाँ कोई नहीं

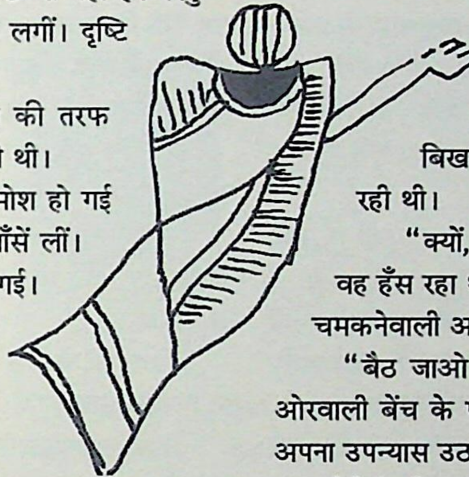
था। शायद कोई दरवाजे के बाहर से निकल गया था।

वह पढ़ रही थी। मन-ही-मन उसने निश्चय कर लिया कि अब वह इधर-उधर नहीं देखेगी, बस पढ़ती ही रहेगी। पढ़ेगी नहीं तो समय कैसे कटेगा? और समय भी कितना विचित्र है। कभी तो हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरता निकल जाता है और कभी कीड़े की तरह सरकता भी नहीं। कभी व्यक्ति को अपनी गोद में बैठाकर हवा में उड़ता है, कभी उसकी गोद में बैठकर न खुद चलता है, न उसे चलने देता है।

वह पढ़ती रही। दो-एक बार आभास हुआ जैसे दरवाजे पर खड़ी कोई चीज उसका ध्यान अपनी ओर खींच रही है। पर वह अपनी नजर पंक्तियों पर गड़ाए रही। वह जानती थी, वहाँ कुछ भी नहीं है। परंतु पुस्तक सँभाले उसकी उँगलियाँ शिथिल पड़ने लगीं। दृष्टि पक्तियों से फिसलती सी गई।

उसने गरदन मोड़ी, कनखियों से दरवाजे की तरफ देखा। वह अपने-आपसे देखने की चोरी कर रही थी।

बाहर की वीरानी और भी गहरी और खामोश हो गई थी। उसने एक लंबी साँस ली। दो और लंबी साँसें लीं। फिर वह लंबी साँस लेती गई। लंबी साँस लेती गई। लंबी साँस लेने से हवा की कुछ आवाज होती है। सारा वक्ष-प्रदेश हिल जाता है और उस आवाज व हलचल में दिल की धड़कनें सुनाई नहीं देतीं।



घड़ी में दस बजकर बाईस मिनट हो गए थे । वह उठकर दरवाजे पर गई। बाईं ओर लैंप-पोस्ट से बीड़ी का धुआँ पहले से ज्यादा उठ रहा था।

उसे खीझ छूटी। उसकी गाड़ी क्यों छूट गई? उसकी घड़ी क्यों लेट हो गई? पर ऐसी बड़ी बात भी क्या हो गई। बारह बीस वाली पैसिंजर तो मिल ही जाएगी! उसका स्कूल और घर स्टेशन के पास ही है। सात बजे तक वह आराम से नहा-धोकर स्कूल पहुँच सकती है।

लेकिन यह घबराहट कैसी? क्या उसे डर लग रहा है? किसका? भूत-प्रेत का? हूँ—वह भूत-प्रेत नहीं मानती। फिर? किसी पुरुष का? हाँ, यह पुरुष जरूर डर की चीज है। स्त्री को देखकर हर पुरुष अपनी ओर देखता है। वह देखता है, कितनी मोटी-मोटी रस्सियों से उसे जकड़कर स्त्री को चिड़िया की तरह फुदकने के लिए आजाद छोड़ दिया गया है पर कभी तो ये रस्सियाँ शिथिल हो ही जाती हैं और तब?

वह फिर बेंच पर आ बैठी। उसने अपना उपन्यास खोल लिया और पढ़ने लगी। कनखियों से वह दरवाजे की ओर देख लेती थी। उसे बार-बार जम्हाई आ रही थी। कहीं एक प्याला चाय मिल जाती। पर यह स्टेशन कितना छोटा है! उसने उपन्यास पूरा कर लिया। उसका उपन्यास भी कछुआ-चाल मार्का है। पन्ने पढ़ जाओ, कोई खास बात ही नहीं होती।

लेकिन उपन्यास का यह स्थल कुछ अधिक रोचक आ गया था। मानसिक अतर्द्वंद्व में फँसा रहनेवाला नायक अब नायिका की बड़ी-बड़ी आँखों में भरे हुए आँसुओं से कुछ द्रवित हो गया था। दोनों बँगले के पिछवाड़े खड़े आपस में कुछ बातें कर रहे थे। नायिका के पिता के आ जाने की किसी भी समय संभावना थी और यदि वह आ जाए तो?

कोई आ गया। उसने फिर सिर उठाकर देखा, सामने एक आदमी खड़ा था। उसे लगा, उसके दिल पर कोई बड़ी सी बोझिल चीज झट से आ गिरी है। वह हड़बड़ाकर खड़ी हो गई। पुस्तक उँगलियों से छूटकर जमीन पर आ गिरी। मेज पर रखा लैंप डगमगा गया।

उसे लगा, उसकी उँगलियों का खून किसी ने निचोड़ लिया है।

उस आदमी के दोनों कंधों पर थैले लटक रहे थे। उसके बाएँ हाथ में एक छोटा सा बिस्तरा था और दाहिने हाथ में एक सूटकेस। उसका कद ठिगना था। सिर पर आगे के बाल झड़े हुए और पीछे के कुछ लंबे थे। पुराने फ्रेम और मोटे शीशे के चश्मे के पीछे से झाँकती हुईं आँखें। बड़ी-बड़ी बिखरी मूँछों से ढँके होंठ, जिन पर विचित्र सी थिरकन हो रही थी।

"क्यों, डर गईं? हा¨हा¨।" अपने सामान से लदा-लदाया वह हँस रहा था। लैंप के मद्धिम प्रकाश में उसे वह हँसी श्मशान में चमकनेवाली आग की तरह लगी।

"बैठ जाओ न, हा¨हा¨।" वह फिर हँसा और मुड़कर दूसरी ओरवाली बेंच के पास जाकर अपना सामान रखने लगा। उसने धीरे से अपना उपन्यास उठाया और कुरसी पर इस तरह डरते-डरते बैठ गई जैसे वह कोई दंडाधिकारी हो।

वह इधर-उधर देखती, फिर उसे देखने लगी वह अपना सामान सँभाल रहा था और कुछ गुनगुना रहा था। फिर वह बेंच पर बैठ गया और चमकती आँखों से उसे देखने लगा।

"कहाँ जाओगी तुम?"

वह कसमसाई । बोली, "धर्मपुर।"

"धर्मपुर? हाँ, मैं भी वहीं उतरूँगा। सुना है, शिवजी का बड़ा पुराना मंदिर है वहाँ। हाँ, तुम वहाँ क्या करती हो?"

"स्कूल में पढ़ाती हूँ।"

"अच्छा मास्टरनी हो¨हा¨हा¨।"

"इस जैतीपुरा में तुम्हारा कौन है?"

"मेरी माँ है।" कहकर उस मद्धिम रोशनी में जब उसने उसकी तरफ देखा तो वह काँप उठी। वही मुसकराहट उसके होंठों और आँखों से झर रही थी।

वह आदमी उठा और दरवाजे की ओर चला। वह उसे सहमी सी देखती रही। वह दरवाजे से बाहर चला गया।

वह पढ़ रही थी, पर बार-बार उसका ध्यान उस आदमी की ओर जा रहा था। फिर जैसे वह उसके वापस आने की प्रतीक्षा कर रही हो। वह नजर उठाकर दरवाजे की ओर देख रही थी। उसे लग रहा था कि उस आदमी को बाहर गए बहुत समय हो गया है। थोड़ी देर में वह लौट आया। उसने पुस्तक पर झुकी नजरों से उसके आगमन को देखा, लग रहा था

जैसे कोई हाथी चल रहा हो।

"सुनो।"

उसने चौंककर देखा। वह अपनी बेंच पर बैठा मुसकरा रहा था।

"मैं जरा लेट रहा हूँ। अगर सो जाऊँ तो गाड़ी आने पर जगा देना, जगा दोगी न?" कहते-कहते वह बेंच पर लेट गया और उसके मुँह से फिर हँसी का स्वर फूट निकला।

वह लेटा-लेटा ही बोला, "तुम सो तो नहीं जाओगी? दोनों की ही गाड़ी छूट जाएगी, हा···हा···हा···।"

उसने करवट बदल ली।

वह कुछ नहीं बोली। उस आदमी से उसे डर तो लग ही रहा था, मौका होता तो उसे उस पर गुस्सा भी आता, जो इतनी उन्मुक्तता से उससे बातें किए जा रहा था। उसने घड़ी देखी। गाड़ी आने में अभी लगभग एक घंटा बाकी था। वह पढ़ती जा रही थी। एकाएक वह काँप उठी। घर्र-घर्र की आवाज उसके कानों में पड़ी तो उसने इधर-उधर देखा। मेज के उस पार बेंच पर लेटा वह आदमी खर्राटे भर रहा था।

वह अपने उपन्यास से जूझ रही थी। पर कुछ-कुछ क्षणों के बाद अनायास ही उसकी नजर उस आदमी पर पड़ रही थी।

धीरे-धीरे उसकी आँखें बोझिल होने लगीं। पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें खुद-ब-खुद बंद हो रही थीं। वह कुछ लम्हे किसी खुमारी में खोई रहती, फिर चौंककर आँखें खोल देती और उस आदमी की ओर देखती।

खुमारी का झोंका फिर-फिर आ रहा था। वह फिर-फिर ऊँघ रही थी, और फिर-फिर चौंककर इधर-उधर देख रही थी।

अब उसकी घड़ी में बारह बजने में दस मिनट रह गए थे। गाड़ी आने में बस बीस मिनट थे। पर कितने मुश्किल हो गए ये बीस मिनट। नींद ने उसकी आँखों को जकड़ सा लिया था। पलकों पर मन-मन भर का बोझ उतर आया था। पर एक बात उसके ध्यान से दूर नहीं गई थी—उसे सोना नहीं है। सो जाने से गाड़ी छूट सकती है और सामने सो रहा वह आदमी···।

उसे फिर झपकी लग गई। उसका सिर भारी होकर मेज पर झुक गया। उसे लगा, दो बाँहें धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ती आ रही हैं। उन बाँहों पर घने बाल हैं। खुले हुए पंजों की उँगलियाँ बड़ी मोटी-माटी हैं। उन मोटी उँगलियों के आगे बड़े-बड़े नाखून हैं। उसे लगा, वे बाँहें उसके बहुत पास आ गई हैं, बिलकुल उसके पास···।

"क्या है···?" वह चीख उठी थी। वह अपने आपसे सिकुड़ गई। वह आदमी बिलकुल उसकी कुरसी के पास खड़ा हँस रहा था।

"मैंने कहा था, तुम खुद ही सो जाओगी हा···हा···हा···। चलो उठो, घंटी बज गई है। बस गाड़ी आनेवाली है।"

वह उसे फटी-फटी आँखों से देख रही थी। वह आदमी झरने की तरह हँसी बिखेरता अपना समान उठाने में लग गया था।

उसने उठकर अपनी साड़ी ठीक की। अटैची खोलकर पुस्तक उसमें रखी। उसका अंग-अंग पत्तों की तरह काँप रहा था।

पैसिंजर गाड़ी का इंजन फक-फक करता हुआ उस छोटे से स्टेशन पर आ खड़ा हुआ। जंगली पोखर में फिर हलचल आ गई।

"चलो-चलो।" वह आदमी उसे बुला रहा था और आगे-आगे चला जा रहा था, जैसे वह उसी के साथ हो। वह उसके पीछे बोराई सी चली जा रही थी।

डिब्बे में दोनों ने आमने-सामने जगह ले ली। उस आदमी ने सीट पर बिस्तर बिछा लिया।

"अच्छा मास्टरनीजी, मैं तो अब सोता हूँ। धर्मपुर पर मुझे जरूर जगा देना हा···हा···हा···। नहीं तो गाड़ी कहीं-की-कहीं चली जाएगी। हा···हा···।" उसने चश्मा उतारकर केस में रख लिया और आँखें बंद कर सीधा लेट गया।

वह उस सोए हुए आदमी को देख रही थी। उसकी घनी मूँछों के अंदर से झाँकते हुए होंठों पर एक बड़ी लुभावनी मुसकराहट फैली हुई थी।

वह भी मुसकरा दी। सा अ

नियम के पक्के

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

भारत के प्रतिभाशाली इंजीनियर डॉ. विश्वेश्वरैया 'भारत रत्न' की उपाधि लेने दिल्ली आए थे। सरकारी मेहमान होने के नाते उन्हें राष्ट्रपति भवन में ठहराया गया था।

एक दिन प्रात: तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से वे बोले, "अब मुझे इजाजत दीजिए।"

राजेंद्र बाबू ने कुछ दिन और ठहरने का आग्रह किया, लेकिन उन्होंने कहा, "चूँकि राष्ट्रपति भवन का नियम है कि कोई व्यक्ति यहाँ तीन दिन से अधिक नहीं ठहर सकता, इसीलिए अब मैं रुक नहीं सकूँगा।" राजेंद्र बाबू ने जोर दिया, "यह नियम पुराना है। इस पर ध्यान नहीं दीजिए और यह आपके लिए लागू नहीं होगा।"

लेकिन डॉ. विश्वेश्वरैया ने राजेंद्र बाबू की बात नहीं मानी और उनसे विदा लेकर कहीं और ठहरने चले गए। जिस तरह डॉ. विश्वेश्वरैया वक्त के पाबंद थे, उसी तरह नियम के भी बड़े पक्के थे।

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

दो कविताएँ

● सुनीता जैन



हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री व लेखिका। लंबे समय तक आई.आई.टी., दिल्ली में अंग्रेजी की प्रोफेसर व मानविकी विभाग की अध्यक्ष रहीं। अंग्रेजी व हिंदी में कुल सत्तर से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। 'पद्मश्री', 'हरियाणा गौरव', 'साहित्य भूषण', 'साहित्यकार सम्मान', महादेवी वर्मा व निराला नामित सम्मान से सम्मानित। स्मृतिशेष : ११ दिसंबर, २०१७।

ज्वाला

दहक गए हों शब्द धौंक के
कोई ऐसी ज्वाला पा लूँ
अपनी ही मुट्ठी में
अपनी राख उठा लूँ

दिन-दिन एक फकीरा
संग हो संग कबीरा
डाली से अटका जो
उस पत्ते को बिलगा लूँ

न पिछला न बाद कोई
न मोहरा न मात कोई
यहीं बीन के यही चदरिया
धो-धो यहीं सुखा लूँ

कोई ऐसी ज्वाला पा लूँ
अपनी ही मुट्ठी में
अपनी राख उठा लूँ।

उबटन

घास पर ओस
ओस पर
अमलतास की पीली पत्ती
कल तक जो
व्योम टँगी
सूरज-सी उजली
या मेरी उँगली में
सोने की चुटकी-सी

या चुटकी भर पावनता जो
आज प्रात ने
उबटन-हलदी कर
नहला दी—
अंदर की देह मेरी।

क्या नाता है

कहीं से तिरता
वह आता है
वह आती है
एक फूल—
एक तेल बूँद—

क्या नाता है ?

आकाश खोलता आँख
धरती रोकती साँस
कुटिल पवन गाता है
क्या नाता है ?

साँप छोड़ता केंचुल
वृक्ष ओढ़ता छाल
कमल कसमसाता है

क्या नाता है ?

यह नाम

और एक दिन समाप्त हो गई
उसकी उपादेयता।
संतान की झिलकारी
और संकेत भरे मौन ने कहा
कि वे जानते हैं अपना
भला-बुरा,
इसलिए वह न बोले,
न बीच में पड़े तो अच्छा।
बिन बोले, चुप्पी साधे
माँ सोचती है,
सबको तो पता है सबकुछ अपना।
केवल वह ही क्यों नहीं जानती
कि उसको क्या करना, या नहीं करना ?
सोचती है बार-बार
खिड़की में बैठी, उदास,
क्यों नहीं होता अब वानप्रस्थ हमारा ?
क्यों नहीं जा सकती
वह पकड़कर किसी अन्य हमउम्र का हाथ,
छोड़कर सबकुछ
यहीं का यहीं—
यह मकान, यह सामान, यह नाम!

सा अ

खास बनाम आम

• जैमिनी हरियाणवी

साम्यवादियों ने समाज को दो वर्गों में विभाजित किया था—'हैव्स ऐंड हैव नॉट्स'। कोई हर्ज नहीं यदि हम दे दें इन्हें नाम—'खास और आम'। बढ़ रही है इनकी तादाद, आ रहा है स्वाद, दोनों जिंदाबाद। आम वे, जो चूसे जाते हैं और खास वे, जो चूसने का लुत्फ उठाते हैं। कालांतर में समाज ने नया रूप दिखाया और एक तीसरा 'मध्य वर्ग' उभरकर सामने आया। उसने नीचे नजर डाली तो आम, ऊपर देखा तो खास, दुविधा में पड़ हो गया उदास। न तो इस वर्ग को 'खास' ने स्वीकारा और न ही 'आम' ने इसे अपना कहकर पुकारा। दिशाहीन होकर बेचारा भटक गया और त्रिशंकु की तरह अधर में लटक गया। न तो 'आम' का मिला प्यार, न ही 'खास' की हुई दया और समय-समय पर चूसा भी आम से ज यादा गया।

आमों के मौसम को हमारे देश के नेताओं ने अच्छी तरह पहचान लिया है और इसे 'विदेश-भ्रमण' का मौसम भी मान लिया है। हमारे खास-खास नेता विदेशों में जाते हैं, आमों से भरे टोकरे विदेशों के खास-खास नेताओं को भेंट करके मित्रता बढ़ाते हैं। रात को जब टकराते हैं जाम से जाम, तो हमारे नेता मूड में फरमाते हैं—'लीजिए, इन्हें चूसिए, ये हैं बहुत मीठे और रसीले हमारे देश के आम।' दोनों खासुलखास नेता प्रसन्न होकर करते हैं कोई लेन-देन-समझौता, होती है आपसी संबंधों में थोड़ी सी हलचल और यात्रा सफल। वहाँ से यदि थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता जाए मिल, तो नेताजी का चेहरा जाता है खिल। ऐसा होने पर वह अंदर-ही-अंदर मुसकराता है और आमों की गुठलियाँ वहीं छोड़ आता है। देश में लौटकर आम आदमी को आर्थिक सहायता के बारे में बताते हुए कहता है—'करके आया हूँ तुम्हारे हित का काम, साथ में लाया हूँ तुम्हारी गुठलियों के दाम'।

खास-खास नेताओं का विदेश भ्रमण हुआ आम आदमी के सहारे, लंबी यात्रा थी, काफी दिन वहाँ रुके भी थे, थके हुए हैं बेचारे। आम भी नहीं चूस पाए अपने प्रवास के दौरान, अपने ही आमों को भला कैसे चूसता मेहमान? घट सकती थी शान, हाँ देश में मिले अवसर और हो इनका सम्मान।



'हम नन्हे-मुन्ने सरदार' *(बालगीत संग्रह)*, 'इनकलाब' *(कहानी)*, 'राष्ट्रीय छात्र सेना', गीत फैशनी गावो' *(हरियाणवी हास्य-व्यंग्य)*, 'वंस मोर', 'हँसाए जा प्यारे', 'नई बीमारियाँ : नए इलाज' *(हास्य-व्यंग्य कविताएँ)*, 'कसम है आजादी की', 'मून पर हनीमून' *(गीत-गजल)*, 'नीम का पेड़' *(हास्य-व्यंग्य लेख संग्रह)*। 'ठिठोली' पुरस्कार, राष्ट्रपति के हाथों 'काका हाथरसी पुरस्कार', राष्ट्रपति द्वारा 'हास्य-रत्न' की उपाधि, 'अग्रसेन सरस्वती सम्मान', 'टेपा साहित्य-संस्कृति सम्मान', दिल्ली सरकार द्वारा सम्मानित, हरियाणा सरकार द्वारा 'हरियाणा गौरव सम्मान' तथा अनेक सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं, रोटरी एवं लायंस क्लबों द्वारा सम्मानित। स्मृतिशेष : ६ फरवरी, २०१९ को।

एक खासुलखास नेता का बँगला, बँगले का एक बड़ा कमरा, जहाँ जमा हुए सभी राजनीतिक दलों के खास-खास नेता। नेताओं के सामने परोसे गए नाना प्रकार के आम, 'आम चूस मीटिंग' था इस खास मीटिंग का नाम। आमों के नए-नए प्रयोगों और चूसने के भिन्न-भिन्न तरीकों पर होती थी यहाँ चर्चा, इसलिए आम आदमी को आमंत्रित नहीं कियां गया। आदमी अर्थात् आदमी जो आम है, आम जनता अर्थात् जनता जो आम है। आदमी जब नेता हो जाता है तो बन जाता है खास, कभी आम से दूर, कभी आस-पास।

एक खास नेता ने आमों को ललचाई नजरों से देखा। एक आम को उठाकर हवा में उछाला, फिर सावधानी से लपककर बोला, 'वाह! क्या आम है! एकदम हमारे आम आदमी जैसा! कैसे भी इसे हम प्रयोग में लाएँ, कैसा भी हो हमारा व्यवहार, कमाल का सहयोग, भरपूर प्यार, सबकुछ सहने को हमेशा तैयार।' दूसरे खास ने स्पष्ट किया—'अरे, इन्हीं के कारण तो हम खास बने हैं, हमारे सीने तने हैं।' तीसरे खास ने ध्यान दिलाया—'विदेशों में तो ऐसे आम पैदा ही नहीं हो सकते हैं, वे तो इनकी खातिर तरसते हैं। पचास प्रतिशत तो हमारे ही देश में होता है आमों का उत्पादन, हम यदि इन्हें निर्यात करने में लगाएँ अपना मन, तो विदेशी मुद्रा के रूप में अर्जित कर सकते हैं काफी धन।' अब

चौथे खास ने प्रश्न पूछ लिया—'पिछले वर्ष हम धोखा खा गए, पता नहीं क्यों लखनऊ से भेजे गए हमारे आम विदेश से वापस आ गए?'

खासुलखास नेता ने जानकारी दी—'वे आम कुछ हरे थे और उन्हें चाहिए थे पीले। नासमझ थे बेचारे, हमने समझाया तब समझे। हमारे आमों को रखकर वे यदि थोड़ा सब्र दिखाते तो हरे आम खुद पीले पड़ जाते। अरे, हम से पूछते, हम सलाह देते, आम का अचार ही डाल लेते। डालना नहीं आता था तो हम सिखाते, वे और हम काहे को पछताते? हमसे बिना संपर्क किए मूर्खों ने वापस कर दिए। विदेशियों को कुछ ज्ञान दे मेरे राम, मीठे ही होते हैं हमारे हरे आम। वे चखकर यदि देख लेते तो भजन गाने लगते—'वाह! हरे आम हरे-हरे, जय श्रीराम हरे हरे।'

आमों के मौसम की तरह देश में चुनावों का भी मौसम आता है। उस समय आम आदमी का महत्त्व बढ़ जाता है। जैसे आम फलों का राजा कहलाता है, चुनाव के समय वैसे ही आम आदमी 'वोटर राजा' बन जाता है। जब नेता उसे वोटर राजा कहकर बुलाता है तो आम आदमी फूलकर कुप्पा हो जाता है और नेताजी की जय बोलता है, साथियों से बुलवाता है। प्रत्येक नेता हाथ जोड़कर आम आदमी की तारीफ करता हुआ नजर आता है—'हम तो सेवक हैं लोकतंत्र के, तुम मालिक हो, भाग्य विधाता हो, तुम ही हमारे माता-पिता, बंधु-सखा हो। हमें अपना सहारा दीजिए और वोट रूपी आशीर्वाद देने की कृपा कीजिए।'

चुनावों के मौसम में बढ़ जाती है राजनीतिक हलचल, कहीं गठबंधन, कहीं दलबदल। कुछ अलग होते हैं, कुछ हाथ मिलाते हैं और नेतागण दो श्रेणियों में बँट जाते हैं। एक का उद्देश्य 'सत्ता हथियाओ' और दूसरे का 'सत्ता बचाओ'। यहाँ मुझे एक घटना याद आ गई। एक व्यक्ति एक जनरल स्टोर में घुसा और एक-एक वस्तु को उठा-उठाकर देखने लगा। काफी समय हो गया तो स्टोर मालिक से नहीं रहा गया। वह पूछ बैठा, 'भाई साहब, आपको क्या चाहिए?' उस व्यक्ति ने जवाब दिया, 'कुछ नहीं, मुझे बस मौका चाहिए।' हमारे देश के नेताओं का यही हाल है, बस मौका चाहिए, सत्ता का सवाल है।

सत्ताविहीन आम आदमी को कहते हैं—'सत्ताधारियों ने तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं किया है, सिर्फ धोखा दिया है। आम को आम से लड़ाया है, राजनीतिक लाभ उठाया है। तुम्हें नफरत का जहर पिला दिया है, प्रजातंत्र का आधार ही हिला दिया है। इनके काल में हुआ नहीं कोई तुम्हारी भलाई का काम, नहीं रखा तुम्हारी सेहत का ध्यान, न सुरक्षा का इंतजाम। इस बार हमें परख लीजिए, हमें मौका दीजिए।'

सत्ताधारी बोलते हैं—'हे आदरणीय आम, वोटर राजा, हम हृदय से आभारी हैं, तुमने जो हमें प्यार और सहयोग दिया, पाँच साल के लिए कुरसियों पर बैठने का अवसर प्रदान किया। हमें दुःख है, तुम्हारी सुध नहीं ली, बनी रही दूरियाँ, समय का अभाव था और कुछ थी हमारी मजबूरियाँ। हम जानते हैं कि तुमने पीड़ा झेली, कष्ट उठाए और हम तुम्हारे लिए कुछ खास नहीं कर पाए। लेकिन हम विदेश गए, मित्रता बनाई, दरियादिली दिखाई और तुम्हारी शान बढ़ाई। कृपा करके अब इतना ही कीजिए, हमें पाँच साल और दीजिए। इस बार तुम्हारी सेहत और सुरक्षा का हम पूरा प्रबंध कराएँगे, चूसना तो दूर तुम्हें हाथ तक नहीं लगाएँगे।'

आम आदमी बोला, 'अब हम आपको अच्छी तरह समझ गए हैं, आपके आश्वासनों को सुन-सुनकर थक गए हैं। यह ठीक है कि आप हमें हाथ नहीं लगाएँगे, लेकिन किसी विदेशी कंपनी से रस निकलवाकर पीएँगे या चाकू से कटवाकर खाएँगे।'

खैर, कहा-सुनी समाप्त हुई और वह दिन आया जब क्या बीमार क्या स्वस्थ, क्या हरे क्या पीले, क्या छोटे और क्या बड़े, सबके सब अपना-अपना कीमती वोट देने घर से निकल पड़े। हर चुनाव का यही निकलता है परिणाम, जीतता है नेता यानी कि खास और हारता है आदमी यानी कि आम। जब अपनों में से किसी को खास बना देती है आम जनता, फिर वह कभी आम नहीं बनता। आदमी तो नेता बन जाता है, लेकिन नेता कभी आदमी नहीं बन पाता है। खास बनने के बाद वह आम का कैसे ही प्रयोग करे, यह उसकी रजा है, उसी का कहना है कि आम को खाने से ज्यादा चूसने में मजा है। वास्तव में 'आम' है भोला-नासमझ और 'खास' है चालाक-समझदार। खास जानता है कि आम को चाकू से काटकर खाने पर हो सकता है विरोध, बढ़ सकती है तकरार, लेकिन मुँह लगा आम चुसने को समझता है खास का प्यार, इसीलिए चुसने को तैयार।

जैसे होती है आम की गुठली, वैसे ही होती है आम आदमी की हड्डी। चूसने के बाद ये साफ नजर आती हैं और जिंदगी भर की कहानी कह जाती हैं। फिर भी ये बड़े काम की कहाती हैं। चुनाव के समय नेता आम आदमी को समझाता है, वोट बड़ा कीमती है, उसे बताता है। इससे जाहिर होता है कि कीमत होती है एक-एक वोट की और उसे खरीदने के वास्ते जरूरत होती है नोट की। आम आदमी कितना ही चुस जाए, उसकी हड्डी वोट तो देगी ही और बदले में कीमत भी लेगी ही, हो सकता है आम की गुठली और आदमी की हड्डी का किसी व्यक्ति ने अच्छी तरह अध्ययन किया हो और 'आम के आम और गुठलियों के दाम' मुहावरे को जन्म दिया हो।

सा
अ

इतिश्री

• मालती जोशी



सुप्रसिद्ध लेखिका। विविध विधाओं की ४० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित; १० मराठी कथा-संग्रह, एक गीत-संग्रह एवं हिंदी की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं लघु उपन्यास प्रकाशित। अनेक कहानियों का कन्नड़, मलयालम, तमिल, गुजराती, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, रूसी और जापानी भाषाओं में अनुवाद। 'साहित्य शिखर सम्मान' सहित कई सम्मानों से विभूषित।

'आज खाना नहीं बनेगा क्या?'

'कब से बन गया है।'

'फिर परोसने का मूहूर्त कब है?'

'जब आप कहें।'

'मतलब कहना पड़ेगा, तभी खाना मिलेगा!'

रमा ने कोई जवाब नहीं दिया और वह रसोई में चली गई। जवाब देती तो पतिदेव और कोई नुक्ता निकालते। सीधी बात करना तो इस आदमी ने सीखा ही नहीं है। जब भी मुँह खोला है, उलटी-सीधी बात ही निकली है। खाने की बात को ही ले लें। अगर अपने से खाने के लिए कहेगी तो ठीक है। क्या तुम कहोगी तभी खाना पड़ेगा? तुम्हें तो बस काम निपटाने की पड़ी रहती है। चाहे सामनेवाले को भूख हो या न हो। इसीलिए आजकल वह बुलाती नहीं है। जब कहते हैं, तभी परोसती है।

थाली लगाकर उसने आवाज दी, '…आ जाइए।'

पतिदेव आकर बैठ गए। आते ही पूछा, 'तुम्हारी थाली कहाँ है?'

'मैं बेटू के साथ खा लूँगी।'

'वे हजरत पूरे शहर की खाक छानकर आधी रात को लौटेंगे। तब तक भूखी बैठी रहोगी?'

'मुझे आदत है।'

'अच्छा?'

'आपकी माँ आपके लिए आधी-आधी रात तक खाना लिये बैठी रहती थीं। आप दोनों से पहले मेरे खाने का सवाल ही नहीं उठता था चाहे गोद में बच्चा हो या पेट में—मुझे तो रुकना ही पड़ता था।'

'मेरी माँ को मरे कई बरस हो गए। उसे क्यों कोस रही हो?'

'कोस नहीं रही। आपको यादभर दिला रही हूँ कि बेटा भूखा हो तो माँ के गले से ग्रास नहीं उतरता।' दरअसल वह कहना चाहती थी कि रात-रातभर रमी खेलनेवाले बेटे के लिए भी माँ भूखी बैठी रहती थी। तो मेरा बेटा तो फिर भी कुछ कर रहा है। पर उसने यह कहा नहीं; अच्छा-खासा महाभारत हो जाता।

इतने दिनों तक इंटर कॉलेजएट ड्रामा कॉम्पटीशंस चल रहे थे। आज उसका रिजल्ट था। उसका मन उधर ही लगा हुआ था। दो-तीन बार पतिदेव ने टोका भी, 'ध्यान किधर है तुम्हारा? कब से दाल माँग रहा हूँ।'

उसके कान मोबाइल पर लगे हुए थे। घंटी बजते ही वह दौड़ पड़ी। फोन मुकुल का ही था—'ममा, बधाई हो। आपके बेटे को बेस्ट एक्टर का प्राइज मिला है।'

'सच?' खुशी से उसकी आँखें छलक आईं।

'हाँ, और हमारा नाटक सेकेंड आया है।

'बेटा, कोई दुकान खुली मिले तो पावभर मिठाई लेते आना। ठाकुरजी का भोग लगा दूँगी।'

'ठीक है ममा, आवाज कैसी आ रही है?'

'तुम्हारे पिताजी खाने पर बैठे हैं। थाली पीट रहे हैं।'

'माँ जाओ, उन्हें अटेंड करो; नहीं तो हंगामा मचा देंगे।'

रसोई में आते ही उसने कहा, 'थाली क्यों बजा रहे थे।'

'तुम बीच में कहाँ गायब हो गई थीं?'

'सबकुछ सामने तो रखा था।'

'तुम कौन सा पहाड़ खोदने गई थीं?'

'फोन लेने गई थी।'

'ऐसा किस लाट साहब का फोन था कि तुम्हें यह भी याद नहीं रहा कि मैं थाली पर बैठा हूँ?'

'बेटू का फोन था…' और फिर उसने हर्ष विह्वल होकर कहा, 'आज ड्रामा कॉम्पटीशन का रिजल्ट था न! आपके बेटे को बेस्ट एक्टर का प्राइज मिला है।'

'तुम तो ऐसे हुलस रही हो, जैसे तुम्हारा बेटा दिलीप कुमार बन गया हो!'

'आज की तारीख में तो वह मेरे लिए दिलीप कुमार ही है।' और फिर अनुनय भरे स्वर में बोली, 'देखिए, आपसे एक रिक्वेस्ट है। आज वह घर लौटे तो उससे रोज की तरह बहसबाजी मत कीजिएगा। उसकी सारी खुशियों पर पानी फिर जाएगा।'

'ये आपका हुक्म है, जो मानना पड़ेगा ?'

'नहीं, ये मेरी रिक्वेस्ट है। हाथ जोड़कर विनती है।'

'तुम माँ-बेटे को मेरा बोलना इतना बुरा लगता है ?'

'आपका बोल ही इतना कड़वा है तो बुरा तो लगेगा ही। और हम दोनों को ही नहीं, आपकी लाडली को भी आपका बोलना बुरा लगता है।'

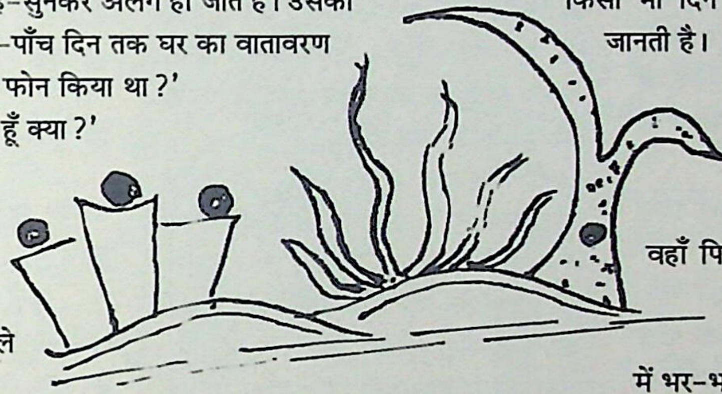
'अच्छा ?'

'अभी दो दिन पहले ही उसका फोन आया था। कह रही थी कि पापा से कहो कि जो कुछ कहना हो, मुझसे कहा करें। नवीन से बात न करें, प्लीज। कह रही थी, पापा तो कह-सुनकर अलग हो जाते हैं। उसका ताप मुझे झेलना पड़ता है। अगले चार-पाँच दिन तक घर का वातावरण कसैला हो जाता है। आपने नवीन को फोन किया था ?'

'हाँ, किया था। किसी से डरता हूँ क्या ?'

'फोन क्यों किया था ?'

'उसका बाप गाँव की जमीन बेचकर आया है। तो पूछ रहा था कि तुम्हारे हिस्से कुछ आया कि तुम्हारा कलकत्तेवाला भाई सब बटोरकर ले गया ?'



'आपको यह सब पूछने की क्या जरूरत थी ? यह उनका घरेलू मामला है।'

'उस घर में मेरी बेटी ब्याही है ?'

'लेकिन आपकी ये बात आपकी बेटी के खिलाफ ही जाती है न! घरवाले तो यही समझते हैं कि उसने यह सब पुछवाया होगा। कह रही थी इतनी सी बात के कारण घर में भारी कलह हो गई। देखिए, आपकी अच्छी-बुरी बातें हम घरवाले झेल लेते हैं। झेलनी ही पड़ती हैं। लेकिन दामाद आपकी बात क्यों सुनेगा ? उसने पलटकर कुछ जवाब दे दिया तो आपकी क्या इज्जत रह जाएगी ?'

'तुम्हें क्या लगता है वह नालायक चुप रह गया होगा ? जानती हो उसने क्या कहा ?'

'क्या कहा ?'

'उसने कहा, 'मेरे पिता अभी जीवित हैं। बँटवारे की नौबत नहीं आई है, पर आप घर का सौदा करते समय बेटी को याद रखिएगा। उसका हिस्सा मत डकार जाना।' उस नालायक को कैसे पता कि मैं घर बेच रहा हूँ।'

'आप घर बेच रहे हैं ?'

पतिदेव एकदम चौंके। अनजाने, अनचाहे उनके मुँह से सच निकल गया। अपने को सँभालते हुए बोले, 'बिल्डर को दे रहा हूँ। इस पुराने घर की साज-सँभाल अब मेरे बस की नहीं है। बिल्डर इसे नई शक्ल-सूरत दे देगा। अपने लिए एक फ्लैट भी देगा।'

'और तब तक ?'

'तब तक के लिए भी वह हमारे रहने की व्यवस्था करेगा; बात हो गई है।'

और वे उठ गए। रमा दोनों हाथों में सिर दिए बैठी रही।

घर बेचने की बात पर रमा को जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ था। पति की पिछली कारगुजारियों को देखकर तो लगता था यह अब तक तो हो जाना था। उसे कोई मोह नहीं था। वह बस यही चाहती थी कि बेटे की नौकरी लगने तक सिर पर छत बनी रहे। उसके बाद वह न घर का मुँह देखेगी, न घरवाले का।

बिल्डर वाली बात पर भी उसे खास भरोसा नहीं था। यह आदमी किसी भी दिन उसे सड़क पर खड़ा कर देगा, वह जानती है।

बहुत पुरानी एक बात याद आ गई। शहर के बाहर उन लोगों का आम का बगीचा था। अकसर परिवार के साथ, मित्रों के साथ, सखियों के साथ वहाँ पिकनिक मनाती थी। आम के मौसम में इतने आम आते थे कि अचार-मुरब्बे से बरनियाँ भर जाती थीं। ढेर आम टोकरों में भर-भरकर मोहल्ले में, रिश्तेदारों में बँटते थे।

एक बार पूरा सीजन निकल गया, घर पर एक आम नहीं आया। उस समय उसकी सास जीवित थी। वे ताव खाकर एक दिन ठेकेदार के घर पहुँच गई और उसे खूब खरी-खोटी सुनाई। उसने पाँव पकड़ लिये। बोला, 'माँजी, मैं नौकर आदमी हूँ। मालिक की आज्ञा बिना किसी को आम कैसे दे सकता हूँ ?'

'घर पर देने के लिए भी मालिक की आज्ञा चाहिए ?'

ठेकेदार समझ गया। बोला, 'आपको शायद पता नहीं है! भैया ने बाग बेच दिया है। नए मालिक ने मुझे रख लिया, यही मेहरबानी है।'

माँजी तो सन्न रह गईं। ठेकेदार ने टोकरीभर आम थैले में भरकर उन्हें देने चाहे तो वहीं पटककर चली आईं। घर आकर बेटे को आड़े हाथों लिया तो उन्होंने अत्यंत निर्लिप्त भाव से कह दिया, 'बाबूजी की तेरहवीं का कर्ज चुकाना था, इसलिए बेच दिया।'

'तुम्हारे बाबूजी को गुजरे तो तीन बरस हो गए।'

'हाँ! तो इन तीन वर्षों में सूद मूल से भी ज्यादा हो गया था। क्या करता ?'

बेटे की इस साफगोई पर माँजी चकित रह गईं।

फिर बोली, 'देखो, एक बात आज ध्यान से सुन लो। मेरी तेरहवीं पर तुम कोई कर्ज नहीं उठाओगे। समझे ? जब मेरी अस्थियाँ सिराने जाओ तो वहीं दो-चार ब्राह्मण जिमा देना, समझे!'

इतना कहकर भी वे आश्वस्त नहीं हुईं। एक दिन पोटलीभर नोट रमा को थमाते हुए बोली, 'सँभालकर रखना। उसे हवा भी मत लगने देना।'

'ये इतने सारे रुपए काहे के लिए ?'

'मेरी अंत्येष्टि के लिए। मेरी लकड़ी के लिए चंदा करके मुझे बेइज्जत मत करना। मुकुल की बहू के लिए चेन रखी थी। उसे बेचकर ये पैसे लाई हूँ।'

माँजी ने बेटे को अच्छे से परख लिया था, जिस दिन उनकी अंतिम यात्रा निकलने को थी, घर-बाहर लोगों की भीड़ जुट गई थी। ऐसे में पति ने उसे कमरे में बुलाया, 'तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं ?'

'आपके पास माँ की अंत्येष्टि के लिए भी पैसे नहीं हैं ?'

'अरे, ये सब एकदम हो गया !'

'ठीक ही तो हुआ। बीमार पड़तीं तो क्या आप इलाज करा पाते ?' फिर पैसे देते हुए कहा, 'मुझे पता था यह सब, इसीलिए भैया लोगों से कहा था—पैसे लेते आना। अब आप समय से उनका कर्जा चुका देना बस।'

पतिदेव ने हमेशा की तरह सिर हिला दिया और बाहर चले गए।

माँ नहीं रहीं तो कोई अंकुश नहीं रहा। उन्होंने अपनी पुश्तैनी दुकान पर बैठना ही छोड़ दिया। कहा कि पीठ में दर्द रहता है। दुकान पर एक लड़का रख दिया है।

जब चार महीने तक दुकान से एक पैसा नहीं आया तो रमा ने पूछा, बोला, 'किराए से उठा दी है।'

उस पेशगीवाली रकम का क्या हुआ यह उसने चाहकर भी नहीं पूछा। क्योंकि ऐसे प्रश्न हमेशा अनुत्तरित रहते आए हैं। एक दिन मुकुल उस ओर गया था। लौटकर उसने बताया कि दुकान का तो कायापलट हो गया है। वह पहचानी नहीं जाती! कॉस्मेटिक्स, आर्टिफिशल ज्वैलरी, ग्रीटिंग कार्ड्स, महँगे खिलौने, गिफ्ट आइटम—पता नहीं क्या-क्या है उसमें। उस बाजार में अलग ही नजर आ रही है। मुकुल ने बताया कि दुकान की सिर्फ शक्ल-सूरत ही नहीं बदली है, बोर्ड भी बदल गया है। उसपर नया नाम है।

उसने पति से जवाब-तलब करना चाहा तो उन्होंने सपाट स्वर में कहा, 'पैसे की जरूरत थी, बेच दी।'

'बताना तो था ?'

'हर बात तुम्हें बताना जरूरी है। बताता तो तुम क्या कर लेतीं ?'

यह तो सच था। वह क्या कर लेती ? बस वह चिंता में डूब गई। यही सिलसिला रहा तो गृहस्थी कैसे चलेगी ? उसकी छोटी सी नौकरी है। उससे दोनों वक्त का चूल्हा तो जल जाएगा, पर गृहस्थी में और भी तो खर्चे होते हैं। उनका क्या ?

अपनी उधेड़बुन में वह इतनी व्यस्त रही कि उसे कभी पता ही नहीं चला कि बच्चे इस बोझिल वातावरण से ऊब चले हैं। वे अपने स्नेह का, सुख का आलंबन कहीं बाहर ढूँढ़ रहे हैं। जिस दिन मीनल ने घर से भागकर शादी की, उस दिन उसे होश आया।

मीनल के पापा ने बड़ा हंगामा किया। मुकुल ने बड़े शांत स्वर में उनसे कहा, 'आप उसके लिए कौन सा आई.ए.एस. लानेवाले थे, जो इतना शोर मचा रहे हैं! उसकी कॉलेज की फीस तक तो आपसे भरी नहीं गई। कब से बेचारी को घर में बिठा रखा था। ऐसे में कोई भी भटक सकता है। वह तो अच्छा है कि लड़का परिचित है, पढ़ा-लिखा है और कमाऊ है।'

उससे वे हर बार फीस के लिए तरसाने लगे थे। हारकर रमा ने अपने भइया से गुहार की कि दाल-रोटी का जुगाड़ तो मैं कर लूँगी। आप लोग मेरी राखी-भाईदूज मानकर उसकी फीस का इंतजाम कर दें।

राखी-भाईदूज और फीस में कोई तारतम्य नहीं था, पर उसके भाइयों ने उसकी बात का मान रखा। बेटे ने भी आश्वस्त किया है कि मामा लोगों की पाई-पाई चुका देगा।

मुकुल को मौसाजी ने अपना पुराना स्कूटर दे दिया है। दुनियाभर के लड़के चमचमाती बाइक पर घूमते हैं। मुकुल अपनी खटारा स्कूटर खदेड़ता रहता है, पर उसके चेहरे पर शिकन नहीं आती।

भगवान् ऐसा समझदार बेटा सबको दें।

हमें भी लगा कि बेटी ने ठीक ही किया। बाप के भरोसे बैठी रहती तो जिंदगीभर कुँवारी रह जाती।

और जिस बेटी को फूटी कौड़ी भी नहीं दी, उसके यहाँ जमीन-जायदाद का हिसाब माँगने पहुँच गए! बेशर्मी की हद होती है!

उन्हें पक्का विश्वास हो गया है कि माँ और भाई की शह पाकर ही बेटी ने यह कदम उठाया है। तब से मुकुल उनकी आँखों में काँटा बन गया है। उससे वे हर बार फीस के लिए तरसाने लगे थे। हारकर रमा ने अपने भइया से गुहार की कि दाल-रोटी का जुगाड़ तो मैं कर लूँगी। आप लोग मेरी राखी-भाईदूज मानकर उसकी फीस का इंतजाम कर दें।

राखी-भाईदूज और फीस में कोई तारतम्य नहीं था, पर उसके भाइयों ने उसकी बात का मान रखा। बेटे ने भी आश्वस्त किया है कि मामा लोगों की पाई-पाई चुका देगा।

मुकुल को मौसाजी ने अपना पुराना स्कूटर दे दिया है। दुनियाभर के लड़के चमचमाती बाइक पर घूमते हैं। मुकुल अपनी खटारा स्कूटर खदेड़ता रहता है, पर उसके चेहरे पर शिकन नहीं आती।

भगवान् ऐसा समझदार बेटा सबको दें।

बेटे की याद आते ही उसने घड़ी की ओर देखा—ग्यारह बजने को थे। उसने सोचा वह आता ही होगा। कटोरी में राई-नोन लेकर वह खिड़की पर जा बैठी। गली में उसके स्कूटर की आवाज सुनते ही उसने दरवाजा खोल दिया।

मुकुल स्कूटर से उतरा, गेट खोलकर भीतर आया, स्कूटर पार्क कर उसने गेट बंद किया। फिर माँ से बोला, 'माँ। गेट का ताला देना।'

‘एक मिनट वहीं खड़े रहो।’ रमा ने कहा और दोनों हाथों में राई-नोन लेकर उसकी नजर उतारने लगी। उसने हाथ ऊपर की ओर घुमाए ही थे कि पीछे से किसी ने उन हाथों का झटका दिया, पूरा राई-नोन आँगन में बिखर गया।

‘ये क्या किया आपने?’ वह चीखी और रो पड़ी।

‘वह कौन सी जंग जीतकर आया है, जो उसकी आरती उतार रही हो?’

मुकुल भीतर आया। अपने पीछे दरवाजा बंद करते हुए उसने कसैले स्वर में कहा, ‘वाह! इससे अच्छे स्वागत की तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी!’

‘स्वागत किसलिए जनाब? आवारागर्दी करके लौटे हो, इसलिए? कहाँ थे अब तक?’ उन्होंने कड़कदार आवाज में सवाल दागा।

‘पापा! रोज-रोज एक ही प्रश्न पूछते हुए आप बोर नहीं होते? लेकिन मैं उत्तर देते-देते ऊब गया हूँ। कुछ नया सोचिए न!’

‘अच्छा तो यह बताओ कॉलेज पढ़ने जाते हो या नाटक करने?’

‘यह प्रश्न पूछने का अधिकार सिर्फ उन्हें है, जो मेरी फीस भरते हैं।’ मुकुन ने सपाट स्वर में कहा।

‘बदतमीज?’ आवेश में उनका हाथ उठ गया। पर दूसरे ही क्षण वह जवान बेटे की बलिष्ठ मुट्ठी में कैद था। वह कसमसा गए। लगा कि और कुछ पल यह मुट्ठी ऐसी ही कसी रही तो उसकी कलाई चटक जाएगी।

जैसे ही बेटे ने हाथ छोड़ा, वे फुफकार उठे, ‘निकल जा मेरे घर से, अभी, इसी वक्त।’

‘यह घर मेरे दादा-परदादा का है। इसमें रहने का मुझे भी उतना ही हक है, जितना आपको। जब आप अपना घर बनाएँगे, उससे बेशक मुझे बेदखल कर सकते हैं।’

‘मुझे कानून सिखाएगा तू?’

‘मम्मा, आप खाना लगा दो। मैं फ्रेश होकर आता हूँ। यह बहस तो चलती रहेगी।’

वह अपने कमरे में चला गया। रमा रसोई की ओर मुड़ी तो उन्होंने आवाज दी, ‘सुनो।’

रमा रसोई के दरवाजे पर रुक गई।

‘आज अगर तुमने उसे खाना दिया तो मेरा मरा मुँह देखोगी।’

रमा ने गरदन को एक ओर झटका दिया और रसोई में जाकर खाना गरम करने लगी।

वे रसोई के दरवाजे पर आकर खड़े हो गए। ‘तुमने सुना नहीं मैंने क्या कहा? मेरा मरा मुँह देखोगी, जो उसे आज खाना दिया।’

रमा टेबल पर थाली-कटोरी लगाती रही। उन्होंने फिर कहा, ‘तुमने सुना नहीं मैंने क्या कहा। मेरा मरा… !’

‘सुन लिया भई, सब सुन लिया।’

उसने झल्लाकर कहा, ‘कितनी बार वही-वही बात कहेंगे?’

‘व्हाट इज द प्रोब्लम।’ पीछे से मुकुल की सख्त आवाज आई। उन्होंने देखा, उसकी आँखें अंगार हो रही थीं। वे सहमकर पीछे हट गए।

मुकुल के भीतर आते ही उसने कहा, ‘आ जा बेटा, सब गरम कर दिया है। आराम से बैठकर खा ले। मैं बाहर जाकर दरवाजा बंद कर लेती हूँ, नहीं तो शांति से खा नहीं पाएगा। बाद में मैं आकर समेट लूँगी।’

‘तुम खा चुकी माँ?’

‘हाँ बेटा। मुझे लगा तुम लेट हो जाओगे, इसलिए खा लिया। अब तुम आराम से बैठकर खाओ।’ कहते हुए वह बाहर निकल आई और उसने दरवाजा बंद कर लिया।

बाहर वे जले-भुने बैठे थे। ‘मैंने तुमसे कुछ कहा था।’

‘क्या?’

‘यही कि आज आप उससे बहसबाजी मत करना नहीं तो उसकी सारी खुशी पर पानी फिर जाएगा। पर आपने मेरी बात नहीं मानी। रोज की तरह हंगामा कर दिया। जब आप मेरी बात नहीं मान सकते तो मुझसे क्यों अपेक्षा करते हैं?’

‘मेरी तुम्हारी बात में कोई फर्क नहीं है?’

‘क्या फर्क है?’

‘मैंने कहा था, मेरा मरा मुँह देखोगी, अगर उसे खाना दिया।’

‘तो?’

‘मतलब तुम्हें मेरे मरने-जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता?’

वह चुप रही।

‘यह मत भूलो कि मेरी वजह से तुम सुहागिन बनकर इठला रही हो।’

वह भरी बैठी थी। एकदम फूट पड़ी, ‘ऐसे निकम्मा सुहाग का मैं क्या करूँ? इससे तो मैं अभागिन ही भली।’

कहते हुए उसने अपना मंगलसूत्र उतारकर उनकी ओर उछाल दिया। ‘लीजिए, इसे भी बेच खाइए। कुछ दिन का खर्चा-पानी चल जाएगा।’

वे सन्न रह गए। यह वही मंगलसूत्र था, जो कभी टूटकर बिखर जाता था तो वे सारे काम छोड़कर उसे पिरोने बैठ जाती थी। सूने गले से वह पानी भी नहीं पीती थी। वही मंगलसूत्र रमा ने आज ऐसे उतारकर फेंक दिया था, जैसे वह कोई चीज हो।

उनके स्वामित्व का अहंकार पलभर में शेष हो गया था।

उनका पति होने का अहसास किसी रद्दी कागज के टुकड़े की तरह उनके पैरों में लोट रहा था।

सा अ

१२०, मदनलाल ब्लॉक, एशियाड विलेज,
नई दिल्ली-११००४९

मेरा समाज

● नरेंद्र कोहली



उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, नाटक, निबंध, आलोचना, संस्मरण इत्यादि गद्य की सभी प्रमुख एवं गौण विधाओं में अपनी विदग्धता का परिचय दिया है। उपन्यास श्रृंखला में 'महासमर', 'तोड़ो कारा तोड़ो' तथा रामकथा पर उपन्यास चर्चित। सौ से भी अधिक उच्च कोटि के ग्रंथों का सृजन। 'शलाका सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

बालेंदुजी का दूसरी बार निमंत्रण आया था, फोन पर। इस निमंत्रण ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया।

उन्होंने कहा कि राँची के संत जेवियर कॉलेज का वार्षिकोत्सव है, दीक्षांत समारोह भी। उसी में सफल छात्रों को उनकी उपाधियाँ दी जाएँगी। वे चाहते थे कि मैं उसमें दीक्षांत भाषण करूँ।

मैं चकित था। एक तो अपने देश में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में दीक्षांत भाषणों के लिए राजनीति के धुरंधर बुलाए जाते थे, कोई राजपाल, कोई मंत्री, कोई उद्योगपति, कोई सरकारी अधिकारी, किसी विश्वविद्यालय के कुलपति, कभी-कभी फिल्म जगत् का कोई अभिनेता। किसी लेखक को बुलाने की घटना मैंने कभी नहीं सुनी। दूसरी बात, संत जेवियर्स ईसाई मिशनरियों का कॉलेज था, जिनकी प्रत्येक गतिविधि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए होती थी। वे मुझे, हिंदी के एक लेखक को, जो अपनी पौराणिक कृतियों से ही जाना जाता था, जो हिंदू था और इस देश की संस्कृति का गुणगान करने में किसी मिशनरी से कम नहीं था, वे मुझे निमंत्रित कर रहे थे। विश्वास नहीं हुआ। कहीं कोई भ्रम अवश्य है।

मैंने अपने संशय तिवारीजी के सामने रख दिए। वे चिंतित नहीं हुए। शुद्ध बिहारी शैली में बोले, "अरे, वहाँ एक लड़का हिंदी पढ़ाता है, कमल बोस। अपना ही चेला है। उसी ने निवेदन किया है कि उस समारोह के लिए आपको बुला दूँ।"

"वह मेरे विषय में जानता है?"

"अच्छी तरह। तभी तो बुला रहा है।"

"बाद में उसे कोई परेशानी न हो।"

"नहीं होगी। और होगी, तो वही समझेगा। आपको क्या करना है?"

"तो ठीक है, उसे कहिए कि टिकट भिजवा दे।"

जब तक टिकट आ न जाए, मैं उस निमंत्रण को गंभीर नहीं मानता, किंतु कमल बोस ने टिकट भिजवा दिया। अब निश्चित था ही कि मुझे राँची जाना है। वस्तुतः हिंदी साहित्य के विद्यार्थी के लिए संत जेवियर्स महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कामिल बुल्के वहाँ पढ़ाते थे। मेरे कई मित्र उनसे पढ़कर ही आगे बढ़े थे। मैं उनसे दो-एक बार मिला तो था; किंतु मैं कभी उनका छात्र नहीं रहा। मैंने भी उनकी रामकथा पर पुस्तक बहुत ध्यान से पढ़ी थी; और दूसरे उनका अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश आज भी मेरी मेज पर रहता है। हमारे घर में जब कभी किसी शब्द के अर्थ को लेकर मतभेद होता है, तो कहा जाता है, "फादर से पूछो।"

मेरे मन में कामिल बुल्के के लिए सम्मान तो था; किंतु मैं उनके प्रति श्रद्धा से भरा हुआ नहीं था। रामकथा संबंधी उनका शोध महत्त्वपूर्ण था; किंतु उसके पीछे एक शरारत भी थी, जो बाद में बहुत प्रचारित हुई।

वे तो केवल यह बता रहे थे कि रामकथा किस-किस ने लिखी और उन कृतियों में क्या भेद अथवा भिन्नता थी। किंतु उनके चेलों ने उसमें से जो अर्थ निकाला, और जिसका प्रचार किया गया, वह यह था कि संसार में अनेक रामायणें हैं और वे एक-दूसरे से भिन्न हैं। यदि राम कोई ऐतिहासिक पात्र होते, तो उनके विषय में अनेक प्रकार की परंपराएँ विभिन्न कल्पनाएँ नहीं करतीं। चूँकि सारी रामायणें एकरूप नहीं हैं, इसलिए वे इतिहास नहीं हैं, कल्पना के आधार पर लिखे गए काव्य हैं। यही कारण है कि जब हमारे उच्चतम न्यायालय में राम-सेतु संबंधी सुनवाई चल रही थी, तो हमारी हिंदू विरोधी ईसाई सरकार ने वहाँ यह कहा था कि राम एक काल्पनिक पात्र हैं। इस संसार में न उनका जन्म हुआ, न उन्होंने कोई सेतु बनाया, इसलिए रामसेतु तोड़ने में किसी की भी आपत्ति कोई अर्थ नहीं रखती।

तो राम को काल्पनिक पात्र बनाने का अभियान संभवतः कामिल बुल्के से आरंभ हुआ था। वे उसी के लिए अपने देश से आकर यहाँ बस गए थे; और इस काम को उन्होंने बहुत अच्छी तरह किया।...जो भी हो, किंतु उनका संबंध इसी कॉलेज से था। उन्होंने यहाँ पढ़ाया था, तो ऐसा कैसे हो सकता है कि उस कॉलेज में जाकर उनको स्मरण न किया जाए। लंका में जाकर रावण को स्मरण न करें, ऐसा हमारे लिए संभव नहीं है।

भास्कर और सूर्या भी राँची में रहकर पढ़ने के कारण, कामिल बुल्के से बहुत प्रभावित थे। उन्हें भी सूचित करना होगा कि मैं कामिल बुल्के के कॉलेज में व्याख्यान देने के लिए राँची आ रहा हूँ। संभव है कि वे लोग मुझसे मिलने के लिए राँची आ जाएँ।...

मैंने जब भास्कर को फोन किया तो बहुत उत्कंठित हो उठा।

"कहाँ ठहरोगे?"

"जहाँ वे ठहराएँगे।"

"फंक्शन कॉलेज में ही होगा?"

"भाई, मैं क्या जानूँ? मुझे उन्होंने बुलाया है, मैं जा रहा हूँ। जहाँ ठहराएँगे, वहाँ ठहर जाऊँगा। वहाँ से आयोजन स्थल तक ले जाना उनका दायित्व है। ऐसा तो नहीं है कि वे मुझे कह दें कि आप बस पकड़कर होटल से आयोजन स्थल पर आ जाएँ।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं होगा।" वह बोला, "मैं तो इसलिए कह रहा हूँ कि यदि यह दो बातें मालूम हो जातीं, तो मुझे राँची में अपने रुकने के लिए होटल चुनने में सुविधा रहती।"

"तो तुम तिवारीजी को फोन कर लो। वे जानते होंगे कि कहाँ-क्या होना है।"

मुझे तिवारीजी और कमल बोस के फोन कम आए, भास्कर के ही अधिक आए। उसे बहुत कुछ जानना था। क्यों, कब और कहाँ के अनेक प्रश्न थे। वह राँची आ रहा था और सूर्या के साथ आ रहा था, इसलिए अधिक सुविधाएँ चाहिए थीं।

"वे मुझे जहाँ ठहराएँगे, तुम भी उसी होटल में ठहर जाना।"

"वह होटल महँगा होगा।" वह बोला, "मुझे अपने बजट के अनुसार होटल चाहिए। यदि वह मेरा कोई परिचित होटल होगा तो और भी सुविधा होगी। सूर्या सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकती। या तो भूमि तल पर ही कमरा मिले या वहाँ लिफ्ट हो। अटैच्ड बाथ हो। और भी कुछ सुविधाएँ…।"

"समझ गया।" मैंने कहा, "मैं तो राँची नगर के विषय में कुछ नहीं जानता। तुम मुझसे कहीं अधिक जानते हो या फिर तिवारीजी से पूछ लो, अशोक प्रियदर्शी से पूछ लो, ऋता शुक्ल से पूछ लो। तुम सबको ही जानते तो हो।"

"देखता हूँ।" वह बोला, "वैसे किसी भी नगर के निवासी उस नगर के होटलों के विषय में कुछ नहीं जानते; क्योंकि वे लोग वहाँ होटल में नहीं ठहरते।"

ठीक कह रहा था वह। किंतु एक बात जिसकी ओर उसका ध्यान नहीं गया था, यह थी कि विभिन्न नगरों में मेरे ठहरने के लिए प्रबंध मेरे आतिथेय करते हैं। मैं तो जिस कमरे में ठहरता हूँ, उसके किराए के विषय में भी नहीं जानता। यदि कभी उनके कुछ कागजों पर दृष्टि पड़ जाए, तो यह भी पता नहीं होता कि छपे हुए और भुगतान किए गए किराए में कितना अंतर है!

इसलिए उसके प्रश्नों के उत्तर मेरे पास नहीं थे।

कामिल बुल्के तो केवल यह बता रहे थे कि रामकथा किस-किस ने लिखी और उन कृतियों में क्या भेद अथवा भिन्नता थी। किंतु उनके चेलों ने उसमें से जो अर्थ निकाला, और जिसका प्रचार किया गया, वह यह था कि संसार में अनेक रामायणें हैं और वे एक-दूसरे से भिन्न हैं। यदि राम कोई ऐतिहासिक पात्र होते, तो उनके विषय में अनेक प्रकार की परंपराएँ विभिन्न कल्पनाएँ नहीं करतीं। चूँकि सारी रामायणें एकरूप नहीं हैं, इसलिए वे इतिहास नहीं हैं, कल्पना के आधार पर लिखे गए काव्य हैं। यही कारण है कि जब हमारे उच्चतम न्यायालय में राम-सेतु संबंधी सुनवाई चल रही थी, तो हमारी हिंदू विरोधी ईसाई सरकार ने वहाँ यह कहा था कि राम एक काल्पनिक पात्र हैं। इस संसार में न उनका जन्म हुआ, न उन्होंने कोई सेतु बनाया, इसलिए रामसेतु तोड़ने में किसी की भी आपत्ति कोई अर्थ नहीं रखती।

□

राँची विमानपत्तन से बाहर आया तो संध्या प्रायः ढल चुकी थी। बाहर निकलकर देखा, डॉ. बालेंदुशेखर तिवारी एक व्यक्ति के साथ सामने ही खड़े थे। वह कमल बोस ही होगा, मैंने अनुमान लगाया। … तो आज उनके पास ड्राइवर नहीं था।

परिचय हुआ। वह व्यक्ति कमल बोस ही था : डॉ. कमल बोस। वे लोग कमल बोस की गाड़ी से ही आए थे और वह स्वयं ही उसे चला रहा था।

हम दोनों को पीछे की सीट पर बैठाकर वह स्वयं स्टीयरिंग पर जा बैठा।

"यात्रा ठीक रही?" कमल बोस ने मुझसे पूछा।

वह अधिक बातें करनेवाला व्यक्ति नहीं लगता था, इसलिए उसे तिवारीजी की आवश्यकता हर क्षण ही थी, ताकि वे मुझे उलझाए रखें।

"ठीक थी।" मैंने कहा, "राँची अथवा इंदौर जैसे नगरों के जो नए विमानपत्तन बने हैं, वे सुंदर और साफ-सुथरे हैं। अच्छे लगते हैं। भीड़ भी अधिक नहीं होती। फिर भी राँची में जितने यात्री हैं, वे भी मुझे चकित करते हैं। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि राँची से इतनी उड़ानें आएँ-जाएँगी और यहाँ इतने यात्री होंगे! मैं तो राँची को बस अड्डे वाला नगर ही मानता रहा।"

"झारखंड की राजधानी हो जाने के कारण।" बोस ने कहा।

उसका फोन बजा। वह बात करने लगा। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। गाड़ी चलाते हुए फोन पर बात करना…उसने फोन बंद कर दिया, "यह डॉ. भास्कर राव का तीसरा फोन था। वह तब से पूछ रहे हैं कि आपको किस होटल में ठहराया जा रहा है और आप होटल में कितनी देर में पहुँचेंगे?"

"बता दो।" तिवारीजी बोले, "पहुँचने ही वाले हैं। वे आ जाएँ।"

"डॉ. कोहली को विश्राम की आवश्यकता नहीं होगी? अभी से लोग आने लगे तो…"

"कोई बात नहीं है। बुला लो।" मैंने कहा।

"वे इनके पुराने मित्र हैं।" तिवारीजी ने कहा, "डॉ. सूर्या राव भी इनकी सहपाठिनी रही हैं। बी.ए. में साथ ही पढ़ते थे। वे लोग जमशेदपुर से आए हैं इनका भाषण सुनने।"

मैंने मुसकराकर उनका समर्थन कर दिया।

हम भीड़ भरे बाजार में से निकल रहे थे। मैं नहीं चाहता था कि बोस का ध्यान कहीं और बहके। अच्छा था कि कोई बात न हो। वह ध्यान से

गाड़ी चलाए।

होटल 'लै लार्क' में पहुँचे। रिसेप्शन से चाबी लेकर बोस हमें ऊपर ले आया। कमरे में पहुँच, मैं पलंग पर बैठ गया। तिवारीजी सोफे पर विराजमान हुए। बोस देखता रहा कि कमरे और बाथरूम में आवश्यकता की सारी चीजें ठीक से लगा दी गई हैं न।

तभी कमरे के फोन की घंटी बजी। फोन बोस ने ही उठाया।

मैं उसकी ओर देखता रहा। वह सुनता रहा। कोई विशेष बात नहीं की। फिर बोला, "आने दीजिए।"

फोन रखकर वह हमारी ओर मुड़ा, "डॉ. सी. भास्कर राव आ गए हैं।"

कमरे का दरवाजा उनके लिए खुला ही छोड़ दिया था। द्वार पर घंटी थी, किंतु भास्कर ने हलके से कपाट थपथपाए और उन्हें धकेलकर भीतर आ गया। उसके पीछे ही सूर्या भी थी।

मैं पलंग पर विश्राम की मुद्रा में पैर फैलाकर बैठा था। सोफे पर डॉ. बालेंदु तिवारी थे। एक कुरसी पर बोस बैठा था। भास्कर और सूर्या को देखकर वे दोनों उठकर खड़े हो गए।

औपचारिक अभिवादन के बाद हम तीनों···मैं, भास्कर और सूर्या··· बारी-बारी गले मिले।

जिन जगहों पर वे दोनों बैठे थे, वहाँ भास्कर और सूर्या को बैठा दिया। वे दोनों खड़े ही रहे।

"आप दोनों भी विराजिए।" मैंने कहा।

"नहीं, हम अब निकलेंगे। हम इनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।" बालेंदु बोले।

"अब हम सर को आपके जिम्मे सौंपकर जा रहे हैं।" कमल ने हँसकर कहा।

मुझे आश्चर्य हुआ। यह व्यक्ति हँसता भी था!

वे दोनों हमसे विदा होकर दरवाजे की ओर आगे बढ़ने को हुए।

"कल का क्या कार्यक्रम होगा?" भास्कर गतिरोधक बन गया।

"आप लोग कहाँ ठहरे हुए हैं?" कमल ने पूछा।

"लालपुर चौक में, न्यू राजस्थान होटल में।"

"क्या ऐसा हो सकता है कि पहले कोहलीजी को लेकर, फिर लालपुर से इन्हें लेकर कॉलेज पहुँचा जाए?" बालेंदु बोले।

"ऐसा भी हो सकता है।"

"मैं चाहता हूँ कि नरेंद्र के साथ ही हम वहाँ पहुँचें, ताकि वहाँ प्रवेश संबंधी कोई झमेला न हो। आखिर इतना बड़ा आयोजन है।" भास्कर ने कहा।

"अच्छा होगा कि आप लोग सुबह आठ-साढ़े आठ तक यहीं आ जाएँ। नौ बजे तक सर को लेने जो गाड़ी आएगी, उसी से आप भी आ जाएँ।" कमल ने मार्ग सुझाया।

"यह भी ठीक है।" सूर्या ने कहा, "पर प्रवेश। कन्वोकेशन में हमारे लिए बैठने की क्या व्यवस्था होगी?"

कमल बोस और तिवारीजी चले गए थे।

अब वहाँ हम तीनों ही बचे थे। वह हमारा अपना समय था। कोई अन्य विघ्न-बाधा भी नहीं थी। मैं पुन: अपने पलंग पर पुरानी मुद्रा में आ गया था।

"हाँ भाई, अब सुनाओ, क्या समाचार हैं?"

"सब ठीक है।" भास्कर ने कहा।

मेरा मन कह रहा था, "यही उत्तर होना चाहिए था।"

"राँची में कब तक हो?" सूर्या ने पूछा।

"अभी आज तो पहुँचा ही हूँ, कल मुख्य कार्यक्रम है। उसमें पता नहीं कितना समय लगेगा। परसों प्रात: विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एक व्याख्यान है और शाम की फ्लाइट से पटना निकलना है।"

"अब हम लोग भी चलें।" सहसा भास्कर व्याकुल हो गया, "नरेंद्र भोजन करके विश्राम करेंगे।"

"हाँ, चलो।" सूर्या सहमत हो गई।

"अरे, भोजन तो करके जाओ।" मैंने उन्हें रोका।

"नहीं, बहुत देर हो जाएगी।" सूर्या बोली, "हमारा होटल यहाँ से दूर है। अँधेरा हो रहा है। हमें जल्दी चलना चाहिए।"

"अरे बैठो। अभी तो ढंग से तुम्हारा चेहरा भी नहीं देखा।"

"धत्त!" वह बोली, "अपने होटल जाने से पहले खाने के लिए कोई ढाबा भी तो खोजना पड़ेगा।"

"खाना यहीं खाकर जाओ। अच्छा होटल लग रहा है। खाना भी ठीक-ठाक ही होगा। अपने होटल जाकर भी डिनर तो करोगे ही। वह काम यहीं निपटाते जाओ। फिर तो सोना ही रह जाएगा।" मैंने कहा।

"सही है। पता नहीं हमारे होटल में डिनर की क्या व्यवस्था है; या कोई रेस्त्राँ ढूँढ़ना पड़ेगा।" भास्कर ने कहा।

भास्कर ने बताया था कि सूर्या को जल्दी किसी होटल का खाना पसंद नहीं आता था। होटल का खाना वैसे भी महँगा होता है। ब्रेकफास्ट कॉम्प्लिमेंट्री हुआ तो ले लिया, नहीं तो बाहर कोई अच्छा स्थान खोजना पड़ता था।

"लै लार्क अच्छा होटल है।" भास्कर ने सहमति जताई, "भोजन भी अच्छा होना चाहिए।"

सूर्या ने हठ नहीं पकड़ी।

"आपके यहाँ सूखी चपाती मिलेगी न?" सूर्या ने बैठते ही बैरे से पूछा।

सूखी रोटी खाना भी एक नजाकत है। कोई भी अच्छा वैद्य बता देगा कि घी में कोई बुराई नहीं है, किंतु यह भी आधुनिकता का एक शाप है।

रेस्त्राँ में लोग बहुत कम थे और हमने सादे खाने का ही ऑर्डर किया था, फिर भी उन्हें परोसने में काफी समय लग गया। बड़े होटलों में ऐसा होता ही है। खाकर उठे तो दस बज रहे थे। और मैं सोच रहा था कि सूर्या ठीक ही कह रही थी। देर तो हो ही गई थी।

☐

प्रात: मैं नाश्ता कर डायनिंग हॉल से लौटा ही था कि भास्कर और सूर्या आ गए।

मैं समझ रहा था कि भास्कर के मन में आज के कार्यक्रम को लेकर कुछ घबराहट थी। वे लोग जमशेदपुर से आए थे। चाहते थे कि कार्यक्रम में सम्मिलित हों। पर उसके मन में एक कीड़ा यह था कि कार्यक्रम में प्रवेश निमंत्रण से ही होगा और वे लोग औपचारिक रूप से आमंत्रित नहीं थे। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रवेश द्वार से ही वापस लौटना पड़े! यदि प्रवेश मिल ही गया और उन्हें छात्रों की भीड़ के साथ किसी ऐसे स्थान पर बैठा दिया गया, जहाँ से मंच भली प्रकार से दिखाई भी न पड़ता हो, तो? स्थान सुविधाजनक न हो, तो सबकुछ बदमजा हो जाता है।···

मैं उसकी इच्छा को समझ रहा था कि वह सम्मान और सुविधाजनक स्थान दोनों चाहता था। इतना कुछ वह शब्दों में कह नहीं सकता था, इसलिए यह मार्ग खोज निकाला था कि वे मेरे साथ जाएँगे तो उनकी सारी शर्तें पूरी हो जाएँगी।··· वह जितना चिंतित रहता था, उतना ही अच्छा प्रबंध या जुगाड़ भी कर लेता था। वह उसने कर लिया था। और उसके लिए माध्यम चाहे मैं रहा होऊँ; किंतु मुझे कुछ करना नहीं पड़ा था। सब उसका अपना ही किया-कराया था।

गाड़ी उनके आने के लगभग आधा घंटा बाद आई थी। उस आधे घंटे में वह वहाँ की व्यवस्था और अपनी सीट इत्यादि की चर्चा करता रहा; किंतु मैं तो उस संदर्भ में कुछ जानता ही नहीं था। निश्चिंत था कि हमारे आतिथेय अच्छा प्रबंध कर देंगे।

कॉलेज होटल से अधिक दूर नहीं था। शायद उसकी निकटता देखकर ही मुझे वहाँ ठहराया गया था।···कॉलेज के प्रांगण में गाड़ी रुकी और हम उतरे तो स्वागत समिति के लोग हमारी ओर लपके। जब तक हम अपने आप को समेटते, सँभलते, कॉलेज के प्राचार्य और कमल बोस भी आ गए। आज तिवारीजी कहीं नहीं थे।

वे हमें एक छोटे हॉल में ले गए।

बाहर भीड़-भाड़ थी। कई छात्र अपने गाऊन में दिखाई पड़ रहे थे और प्रसन्न थे। उत्सव का माहौल था; कॉलेज के लिए तो वसंत ही था।। क्यों न होता? छात्रों के लिए यह कॉलेज का ही नहीं, उनके अपने जीवन का भी उत्सव था। उनका सारा भावी जीवन, आज मिलनेवाली डिग्री की नींव पर ही तो खड़ा होनेवाला था। उनमें से जो प्रसन्न दिखाई नहीं दिए, मैंने मान लिया कि वे आज अपने प्रिय अथवा प्रिया से बिछुड़ने वाले हैं। कॉलेज का अंतिम दिन बहुत सारे लोगों को जीवन भर के लिए घाव दे जाता है।

हमने हॉल में कॉफी पी।

"चलिए।" कमल बोस ने कहा।

हम तीनों उठ गए। कमल के पीछे कुछ कदम आगे बढ़े भी।

तब कमल ने मेरी ओर देखा, "सर, आप अभी अंदर ही रहें। आपको तो गाऊन पहनाया जाएगा। मैं भास्कर सर और मैडम को सभा-स्थल पर बैठाकर आता हूँ।"

"अच्छी जगह बैठाना," मैंने कहा, "जहाँ से ये मुझे और मैं इनको देख सकूँ।"

"तुम बाज नहीं आओगे।" सूर्या मुसकराई, एक गर्वीली मुसकान। प्राचार्य मुझे लेकर चले, हम भीतर जाने के लिए मुड़े।

तभी प्राचार्य महोदय ने मंद स्वर में शालीनता से कहा, "यदि आपको वाश रूम···"

"ओह हाँ।" मैंने कहा, "एक बार बैठ गए तो···।"

"आपको जो गाऊन पहनाया जाएगा, वह काफी भारी है।" प्रिंसिपल ने कहा।

मैं समझ गया कि उनका संकेत उसकी गरिमा नहीं, उसकी असुविधा की ओर था। खैर···

छात्रों के वसंत को देखकर और डिग्री देनेवाला गाऊन पहनकर मैं अपने वसंत में चला गया था।···मैं न तो बी.ए. और न पी-एच.डी. के दीक्षांत समारोह में सम्मिलित हुआ था। बस, दिल्ली में एम.ए. की डिग्री दीक्षांत समारोह में ली थी। आज भी यह झमेला ही लग रहा था।

बी.ए. के दीक्षांत के समय मैं दिल्ली में था और दीक्षांत राँची में था। मुझे ध्यान भी नहीं है कि वह कब हुआ। मेरी उसमें कोई रुचि नहीं थी। एम.ए. के दीक्षांत में मेरे अनेक सहपाठी डिग्री लेने आ रहे थे। वह एक सामूहिक उत्सव था। डिग्री मिलने से पहले, गाऊन पहनकर टहलना और स्वयं को हीरो समझना। लड़कियों के विषय में तो सुना था कि वे पहले ब्यूटी पार्लर गई थीं। मेकअप के बाद, गाऊन पहनकर फोटो स्टूडियो। वहाँ हाथ में एक कैलेंडर पकड़कर चित्र खिंचवाया था। तब वे यूनिवर्सिटी लॉन में आई थीं।

चित्र तो मैंने भी खिंचवाया था, किंतु डिग्री मिल जाने के बाद। उस दिन लड़के और लड़कियों में दूरियाँ कुछ बढ़ गई थीं। दोनों अपने-अपने समूहों में थे। फिर भी जीवन का वसंत तो वह था ही।

पी-एच.डी. की डिग्री लेने मैं नहीं गया था, दिल्ली में रहते हुए भी। प्रो. सावित्री सिन्हा ने पूछा था कि मैं क्यों नहीं आया? कह दिया कि डिग्री तो डाक से भी आ जाएगी। यह नहीं कहा कि उस दीक्षांत में मेरा एक भी सहपाठी वहाँ नहीं था···न कोई लड़का, न कोई लड़की। किसको देखने के लिए जाता और किसको दिखाने के लिए डिग्री लेता? दीक्षांत तो था, किंतु वह मेरे लिए वसंत नहीं था, निदाघ था।

आज मेरा वसंत न सही, किंतु इतने सारे युवा मनों का वसंत तो था और उनके चहकने से स्पष्ट था कि वह उनके लिए कितना महत्त्वपूर्ण था।

मैंने कहा, "आगे की पढ़ाई और अपने भावी कॅरियर के लिए आप अपने विवेक से काम लें, अपने अभिभावकों की सनक से नहीं। आपके अभिभावकों का विवेक पुराना हो गया है, पच्चीस से पचास वर्ष। वे आपके समान नहीं सोच सकते। आपके सपनों को वे नहीं जी सकते। आप किसी के बहकावे और दबाव में न आएँ। जिस क्षेत्र में आपकी रुचि है, उसी का चयन करें। कोई कोर्स सिर्फ इसलिए न करें कि उसमें सफलता और नौकरी की संभावनाएँ अधिक हैं। अपने मन की आवाज को सुनें और उसे ही प्राथमिकता दें। सफलता तभी मिलेगी। आगे जो कुछ भी पढ़ें, सिर्फ डिग्री पाने के लिए नहीं, वरन् अपने विकास के लिए पढ़ें, अपने स्व को जानने के लिए पढ़ें।"

मैं वहाँ था, किंतु चाहकर भी मैं उस परिवेश का अंग नहीं बन सकता था। बच्चन ने कहा है न—'मधुप नहीं अब मधुवन तेरा।'

गाउन पहन, गुरु गंभीर मुद्रा बनाकर शोभायात्रा के रूप में हम मंच की ओर चले। दो-तीन क्षणों का मार्ग तय कर हम मंडप में आ गए। मंडप विशाल भी था और भव्य भी। एक खुले मैदान को इस आयोजन के लिए मंडप बनाया गया था। मंडप दो भागों में बँटा था और बीच में से होकर एक गलियारा जा रहा था। दोनों ओर अनुशासित छात्र बँधे खड़े थे। छात्र भी और उनके अभिभावक भी। भास्कर और सूर्या दूसरी या तीसरी पंक्ति में बैठे थे। उनके साथ ही कमल बोस की पत्नी बैठी हुई थी। बोस ने बताया था कि उसकी बेटी ने भी किसी विषय में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था।

शोभायात्रा मुझसे ही आरंभ होती थी। शेष सब लोग मेरे पीछे थे। उनमें राँची विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे। पिछली बार जब मैं राँची आया और उन्होंने मुझे स्मृतिचिह्न दिया था, वे कुलपति कोई और थे। वर्तमान कुलपति नए थे और इसी कॉलेज के पढ़े हुए थे, इसलिए विश्वविद्यालय के कुलपति होते हुए भी कॉलेज के प्रिंसिपल को 'फादर' कहकर संबोधित कर रहे थे।

दोनों ओर लोग खड़े थे और हम उनके मध्य के गलियारे से मंच की ओर जा रहे थे। इस प्रकार की शोभायात्रा का नेतृत्व करने का मुझे कोई अभ्यास नहीं था। इसलिए मैं कितना सहज दिख रहा था, नहीं जानता।...हम मंच पर बैठे। प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक फाइल थी, जैसे कि प्रत्येक बैठक में रखी जाती है। सबसे ऊपर जो कागज था, उस पर कार्यक्रम अंकित था। प्रत्येक वक्ता के नाम के सामने उसके वक्तव्य का समय लिखा हुआ था। मैंने अपने नाम के सामने देखा...दस मिनट। मुझे एक झटका लगा...दस मिनट! मैं दस मिनट बोलने के लिए दिल्ली से यहाँ आया था? मेरे तीन दिन इसमें निकल जाएँगे। और बोलना था... दस मिनट! देखा, बहुत सारे वक्ता थे और कोई भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। फिर सैकड़ों विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र और मेडल देने थे। सहस्रों विद्यार्थियों का परीक्षाफल घोषित होना था। निश्चय ही वे इससे अधिक समय नहीं दे सकते थे।

संचालक महोदय, अर्थात् डॉ. कमल बोस माइक पर मेरा परिचय दे रहे थे, "आज कॉलेज के इतिहास का एक अविस्मरणीय और स्वर्णिम दिन है कि हमारे बीच हिंदी के महान् साहित्यकार पद्मश्री डॉ. नरेंद्र कोहली उपस्थित हैं।"

मेरा मन हँसने को हुआ, किंतु जहाँ मैं बैठा था, वहाँ हँसा नहीं जा सकता था। करतल ध्वनि से पूरा पंडाल गूँज उठा।

मेरा ध्यान इस ओर गया कि भारत सरकार के द्वारा पद्मश्री अलंकार की घोषणा के बाद सार्वजनिक मंच पर यह पहला ही अवसर था। इस पद्मश्री के चक्कर में ही तो इन्होंने मुझे नहीं बुलाया? यह भी संभव था। अपने देश में इन सब चीजों का बहुत महत्त्व है। मेरे साहित्य का किसी को पता हो-न-हो, पद्मश्री का पता सबको होगा। उसको जानने के लिए कुछ पढ़ना नहीं पड़ता न।

दीप प्रज्वलन हुआ। माल्यार्पण भी हुआ। एक सुंदर और आकर्षक बुके भी दिया गया। मैं सोचता ही रह गया कि दिल्ली में ऐसा बुके मि होता तो उसे घर ले जाकर सजा देता। सप्ताह भर तो उसका नयनसु प्राप्त होता। यहाँ क्या करूँगा उसका? होटल का कमरा सुगंधित करूँ हर बार ऐसा ही होता था। मधुरिमा साथ होतीं, तो कहतीं कि जैसे भी इसे दिल्ली ले चलो और मैं हूँ कि उसे किसी ड्राइवर या बैरे को दे संतुष्ट हो जाता हूँ।

कार्यक्रम की रूपरेखा...स्वागत भाषण...यह स्वागत भाषण विचित्र होता है, जिसमें अपनी ही प्रशंसा होती है।

मुझे अर्थात् पद्मश्री नरेंद्र कोहली को बोलने के लिए आमं किया गया। उसमें नरेंद्र कम था, पद्मश्री अधिक था, या शायद केव वही था। तालियाँ बजीं। पता नहीं लोग तालियाँ किस बात पर बजाते है अभ्यासवश, शिष्टाचार में अथवा अतिथि का मन रखने के लिए अथ अपने आयोजन को अधिक कोलाहलमय बनाने के लिए!

मैं माइक के सामने खड़ा था। मेरे सामने अपरिचित बच्चे और उन अभिभावक बैठे थे।...पर वे तो अपनी डिग्री, अपने मेडल के लिए बैठे मेरा व्याख्यान उनके लिए क्या महत्त्व रखता था? मैं तो उनके और उन डिग्री, उनके मेडल के बीच की बाधा था। वे मुझे सुनना चाहेंगे? अरे मिनट ही तो बोलना था। नहीं सुनना चाहेंगे, न सुनें। दस मिनट तो बीत जाएँगे। पर क्या कहूँ इन अपरिचित बालक-बालिकाओं से?

वे कॉलेज की पढ़ाई के निकास द्वार पर खड़े थे। उन्हें अपने भा जीवन के लिए चुनाव करना था। क्या पढ़ें? पढ़ें न पढ़ें, नौकरी खोजें।... चलो, उन्हें कुछ भड़काने का काम करते हैं। उन्हें अपने बड़ों के समक बराबरी के धरातल पर खड़ा करते हैं। वे बाजार की माँग का मुँह न दे नहीं तो बी.कॉम. ही पढ़ेंगे। उनसे कहता हूँ कि वे अपने मन के भी झाँकें। चलो, उपदेश देते हैं।

मैंने कहा, "आगे की पढ़ाई और अपने भावी कॅरियर के लिए अ अपने विवेक से काम लें, अपने अभिभावकों की सनक से नहीं। आप अभिभावकों का विवेक पुराना हो गया है, पच्चीस से पचास वर्ष। आपके समान नहीं सोच सकते। आपके सपनों को वे नहीं जी सकते। अ किसी के बहकावे और दबाव में न आएँ। जिस क्षेत्र में आपकी रुचि उसी का चयन करें। कोई कोर्स सिर्फ इसलिए न करें कि उसमें सफल और नौकरी की संभावनाएँ अधिक हैं। अपने मन की आवाज को और उसे ही प्राथमिकता दें। सफलता तभी मिलेगी। आगे जो कुछ भी प सिर्फ डिग्री पाने के लिए नहीं, वरन् अपने विकास के लिए पढ़ें, अपने को जानने के लिए पढ़ें।"

उन्हें अपना उदाहरण देते हुए कहा, "मैं भी पहले सबके स विज्ञान का छात्र था। अच्छे छात्र विज्ञान ही पढ़ते हैं। मान्यता यही है न अयोग्य छात्र ही साहित्य या कला की ओर जाते हैं। मैं अच्छा छात्र प्रथम आनेवाला। अच्छे अंक लानेवाला। किंतु मैं लेखक बनना चा था। आज कह सकता हूँ कि मैं तो लेखक था। पैदा ही लेखक हुआ इसलिए विज्ञान छोड़कर साहित्य में आ गया। आप क्या समझते हैं, इस निर्णय को परिवार के बड़ों ने सुविधा से मान लिया होगा? कोई

मानता तो वे ही क्यों मानते ? मुझे मूर्ख, पागल, नासमझ···जाने क्या-क्या कहा गया। युग विज्ञान का था और मैं साहित्य पढ़ने जा रहा था! साहित्य तो कम बुद्धि के लोग पढ़ते हैं न!

“वे जो चाहें, सोचें। मैं अपने आसपास के लोगों को प्रसन्न करने के लिए अपने सपनों की बलि नहीं दे सकता था। मेरा लक्ष्य आरंभ से ही स्पष्ट था। मुझे साहित्य पढ़ना था और साहित्यकार बनना था। मैं बाजार के किसी प्रलोभन, किसी बड़ी नौकरी, किसी बड़े वेतन के सामने झुका नहीं। यह पागल किसी समझदार की बातों या दबाव में नहीं आया। अपनी बात पर अडिग रहा। परिणाम ? मैंने अपने भीतर के साहित्यकार का विकास किया। समाज ने उसको पहचान दी और आज मैं आपके सामने हूँ।

“लोगों की बात मानकर टाटा कंपनी का एक इंजीनियर बन गया होता तो जमशेदपुर में एक बड़ा बँगला चाहे मिल गया होता, किंतु दीक्षांत भाषण के लिए आमंत्रित नहीं किया जाता। दिल्ली विश्वविद्यालय के इस अध्यापक को जब लगा कि अध्यापन भी मेरे लेखन में बाधा है तो स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का निर्णय लिया। दस वर्षों की नौकरी अभी शेष थी। छोड़ दी। लिखने के घंटे बढ़ा दिए। पूरी तरह लेखन में जुट गया। सहयोगियों ने समझाया, गुरुओं ने चेताया, प्रिंसिपल ने पुनर्विचार के लिए कहा। बस एक मैं था और एक मेरी पत्नी, हम दोनों इस निर्णय पर टिके रहे। सोचकर देखो मित्रो, आर्थिक लाभ कोई बड़ा लाभ नहीं होता। अपना विकास और अपनी प्रतिभा का प्रसाद समाज को समर्पित करना वास्तविक कर्म है, सफल जीवन का लक्ष्य है। अपनी अंतरात्मा की सुनो। वह निरंतर सत्य का गुंजार कर रही है।

“लोगों की बात मानकर टाटा कंपनी का एक इंजीनियर बन गया होता तो जमशेदपुर में एक बड़ा बँगला चाहे मिल गया होता, किंतु दीक्षांत भाषण के लिए आमंत्रित नहीं किया जाता। दिल्ली विश्वविद्यालय के इस अध्यापक को जब लगा कि अध्यापन भी मेरे लेखन में बाधा है तो स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का निर्णय लिया। दस वर्षों की नौकरी अभी शेष थी। छोड़ दी। लिखने के घंटे बढ़ा दिए। पूरी तरह लेखन में जुट गया। सहयोगियों ने समझाया, गुरुओं ने चेताया, प्रिंसिपल ने पुनर्विचार के लिए कहा। बस एक मैं था और एक मेरी पत्नी, हम दोनों इस निर्णय पर टिके रहे। सोचकर देखो मित्रो, आर्थिक लाभ कोई बड़ा लाभ नहीं होता। अपना विकास और अपनी प्रतिभा का प्रसाद समाज को समर्पित करना वास्तविक कर्म है, सफल जीवन का लक्ष्य है। अपनी अंतरात्मा की सुनो। वह निरंतर सत्य का गुंजार कर रही है।

“मेरी कामना है कि आप परीक्षाफल, डिग्री, नौकरी, वेतन के मोरचे पर सफल हों-न-हों, आपका जीवन एक सफल जीवन हो। सफलता वेतन में नहीं, अपने विकास में है। अपने आप को पहचानिए और उसे संसार के सामने प्रस्तुत कीजिए। मैं आपको भ्रामक नहीं, वास्तविक सफलता का आशीर्वाद दे रहा हूँ।”

तालियाँ बजीं और कुछ ज्यादा ही बजीं।

पता नहीं, वक्तव्य अच्छा लगा या फिर समझ में न आनेवाला भाषण समाप्त होने की प्रसन्नता में सभागार तालियों से गूँजा।

जानता था कि भाषण संक्षिप्त था, किंतु क्या करता! उन्होंने दस मिनट लिखकर परची मेरे सामने रखी थी। और यह दीक्षांत का अवसर था, मेरा एकल भाषण तो था नहीं कि मैं बोलता ही चला जाता। संक्षेप में, कम समय में, सार्थक, सारगर्भित और सीधी बात कह दी। वैसे मुझे पसंद भी यही है कि श्रोताओं की आँखों में देखते हुए, सीधी और सच्ची बात बिना किसी पाखंड के उनके गले से उतार दो। छात्रों से सीधा संवाद करो। विद्वत्ता मत झाड़ो। इतनी बड़ी संख्या में उपस्थित लोगों को बाँधने का और क्या उपाय हो सकता है ?

उपाधियाँ बाँटने का कार्य आरंभ हुआ। सबसे पहले प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान। उन्हें मुख्य अतिथि अर्थात् मेरे हाथों से प्रमाण-पत्र दिए जाने थे। फिर स्नातक प्रतिष्ठा में प्रथम स्थान।···मुझे लगा कि लंबा काम है। कमल को संकेत किया।

“मैं अधिक समय तक खड़ा नहीं रह पाऊँगा। डायबिटिक हूँ। आराम के लिए होटल लौटना चाहता हूँ।”

उसने तत्काल माइक पर घोषणा कर दी कि मुख्य अतिथि जाना चाहते हैं।

विदा करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण लोग मेरे साथ मंच से नीचे उतरे। दोनों ओर बैठे लोगों के बीच से होकर हम बाहर निकले। अनायास ही लोग खड़े हो गए थे। छात्र तालियाँ बजाने लगे। लगा कि अनुशासित बच्चे हैं, तौर-तरीका जानते हैं।

मैंने देखा कि भास्कर ओर सूर्या भी बाहर निकलने वाली भीड़ का अंग थे। वे मेरे साथ आए थे। अब शायद लौटना भी मेरे साथ ही चाहेंगे।

“आप इतना संक्षिप्त क्यों बोले ? आपको सुनने के लिए ही तो यह सारे लोग आए थे।” कमल बोस ने कार का दरवाजा खोला।

मैंने उसकी ओर देखा, “तुमने शायद वह कागज नहीं देखा, जो हमारे सामने रखा गया था। उसमें मेरे लिए दस ही मिनट थे।”

“अरे, वह किसी क्लर्क ने लिख दिया होगा।”

“मैं क्या जानूँ कि किसने लिखा! मेरे लिए तो वह आदेश था।” मैंने कहा, “फिर भी मैं उससे पाँच-सात मिनट अधिक ही बोला होऊँगा।”

“ठीक है। भूल हुई। हम आपको कम-से-कम आधा घंटा सुनना चाहते थे।”

“चलो। बाकी फिर कभी।”

मैं गाड़ी में बैठ गया। भास्कर और सूर्या भी बैठ गए थे।

गाड़ी के चारों ओर भीड़ थी। मैंने कमल बोस की ओर देखा।

“ये स्थानीय समाचार-पत्रों और टी.वी. चैनलों के प्रतिनिधि हैं। आपसे बात करना चाहते हैं।”

“हम बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे हैं सर।” एक पत्रकार ने कहा।

“अर्थात् मुझे विश्राम नहीं करने दोगे।” मैंने कहा, “अच्छा, ऐसा

करो कि होटल में आ जाओ। वहीं होटल की लॉबी में बातचीत कर लेंगे।"

ड्राइवर को संकेत किया कि निकलो। उस भीड़ को सँभालने का दायित्व कमल बोस का था। एक-दो पत्रकार होते तो मेरे मन में भी उनसे चर्चा करने का लोभ होता; किंतु इस भीड़ का क्या करूँ?

"बाप रे।" सूर्या ने कहा, "ये पत्रकार हैं या मधुमक्खी का छत्ता! ऐसे घिर आए हैं।"

"नरेंद्र से बात करने का मोह।" भास्कर ने कहा।

□

भोजन कर कुछ देर विश्राम किया था कि कमल बोस के साथ तिवारीजी आ गए।

कमल जानना चाहता था कि मुझे कोई असुविधा तो नहीं हुई।

"नहीं हुई। बस अब कल मध्याह्न में विमानपत्तन पहुँचा देना।"

"वह हो जाएगा। मैं स्वयं आऊँगा।" उसने कहा, "आपके भाषण को लोगों ने खूब पसंद किया है; किंतु अतृप्त ही रहे। आपको और बोलना चाहिए था।"

"मैंने बताया न कि मेरे सामने रखे कागज ने मुझे दस मिनट का समय दिया था।"

"हाँ।" उसने अपनी मुद्रा बदली, "किसी क्लर्क की मूर्खता को भुगत रहे हैं हम।"

"अगली बार से अतिथि को वह कागज सौंपने से पहले स्वयं भी देख लेना। क्लर्क पर अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए। भगवान् की कृपा रही कि तुम्हारे क्लर्क ने मेरा नाम भी लिख दिया था और दस मिनट भी। वह मेरा नाम ही न लिखता तो मैं क्या कर लेता?"

थोड़ी ही देर में अशोक प्रियदर्शी भी आ गए।

"कुछ और मित्र भी आ रहे हैं।" उन्होंने बताया, "भास्करजी भी आएँगे क्या?"

"नहीं। वे लोग मुझसे विदा लेकर जा चुके हैं।"

"अभी राँची में ही हैं न?"

"जी। हैं तो राँची में ही।"

"तो फोन कीजिए। उनके बिना शोभा नहीं होगी।"

मैंने फोन मिलाया, "भास्कर, राँची के कई साहित्यकार इस समय मेरे कमरे में जमा हैं और कह रहे हैं कि भास्कर वहाँ क्या कर रहे हैं, उन्हें भी बुला लीजिए।"

"मुझे अनुमान था कि ये लोग आपके पास जुटेंगे, लेकिन हमें अपनी पुरानी अंतरंग मित्र मीरा बुधिया से मिलने जाना है। वे लालपुर में ही रहती हैं। उनकी बड़ी बेटी इन दिनों काफी अस्वस्थ है। मैं इस साहित्यिक गोष्ठी को मिस करूँगा, लेकिन मीरा से मिलना भी जरूरी है, जो कल नहीं हो पाएगा।"

"ठीक है। जब बात पुरानी मित्रता और बीमार बेटी की है तो वहीं चले जाओ।"

"धन्यवाद। वैसे राँची के सारे ही पुराने साहित्यकार मीरा बुधिया को जानते हैं और उनके साथ हमारी वर्षों पुरानी मित्रता को भी।"

"हरि इच्छा!" मैंने कहा।

१७५ वैशाली, पीतमपुरा
दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ९८७१६८१३८२

डाकू संत बन गया

• शिवकुमार गोयल

निरंजनी संप्रदाय के संत कवि हरिदास युवावस्था में कुसंग में पड़कर अपराधों में लिप्त रहने लगे थे, तब उनका नाम हरि सिंह हुआ करता था। एक दिन वे और उनके साथी राहगीरों को लूट रहे थे, तभी एक भगवाधारी साधु वहाँ से गुजरा। डाकू हरि सिंह ने साधु को रोका। साधु ने कहा, 'मैं तो माँगकर काम चलाता हूँ। साधु को तो वैसे भी छोड़ देना चाहिए।'

हरि सिंह ने कहा, 'बातें न बना, पोटली खोल।'

साधु ने पोटली खोली। उसमें कुछ रुपए थे। हरि सिंह ने वे रुपए ले लिए। लुटेरों की नजर पोटली में रखी एक पुड़िया पर पड़ी, उनमें से एक ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, तो साधु ने कहा, 'इसे मत छीनो। यह दवा की पुड़िया है। गाँव का एक व्यक्ति मरणासन्न है। मैं उसके लिए यह औषधि लाया हूँ।'

हरि सिंह ने साधु के ये शब्द सुने, तो वह हक्का-बक्का रह गया। उसे लगा कि साधु कितना महान् है। इसके हृदय में कितनी दया भावना है। वह साधु के पैरों में गिर पड़ा और उसके रुपए वापस करते हुए बोला, 'बाबा, आज से आप मेरे गुरु हैं। मुझे आशीर्वाद दें कि मैं भविष्य में लूट-मार जैसा अधर्म न करूँ।'

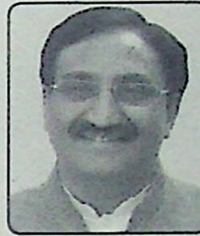
साधु ने हरि सिंह को उपदेश देते हुए कहा, 'बेटा, कभी किसी कुसंगी का साथ न करना। भगवान् तुम पर कृपा करेंगे।' आगे चलकर यही हरि सिंह निरंजनी संप्रदाय के सुविख्यात संत हरिदास निरंजनी के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने अनेक भक्ति-पदों की रचना की।

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)



जूझना पड़ता है

रमेश पोखरियाल 'निशंक'



सुप्रसिद्ध लेखक एवं राजनीतिज्ञ। विविध विधाओं पर अब तक चार दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुस्तकों का विदेशी एवं भारतीय भाषाओं में अनुवाद। देश एवं विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में रचनाएँ शामिल तथा साहित्य पर शोध कार्य। हो रहे हैं उत्कृष्ट साहित्य-सृजन के लिए देश के तीन राष्ट्रपतियों द्वारा सम्मानित एवं अन्य प्रतिष्ठित सम्मान। संप्रति : केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री।

प्रवाहमय ज्ञान

जो ज्ञान हिंसा को
प्रेम में बदलने में असमर्थ है,
ऐसा ज्ञान
जीवन के लिए व्यर्थ है।
ज्ञान मस्तिष्क के अंदर
प्रवाहमय होना चाहिए
यही इसकी गूढ़ता है,
अन्यथा
स्थिरता का अर्थ तो मूढ़ता है।

पहली पहचान

मनुष्य की सबसे बड़ी
जमापूँजी उसका व्यक्तित्व है,
इसके बिना उसके पास
कितना भी अर्थ हो वह
दरिद्र हो जाता है,
मन में हमेशा कुंठाओं
को ढोता है,
व्यक्तित्व मनुष्य की
पहली पहचान है
समाज में इसी के कारण
पद-प्रतिष्ठा और मान है।

सुख का शोषण

विषयों के प्रति हमारी आसक्ति
मन में 'मैं' और 'मेरा' का
भाव लाती हैं,
मन इस भाव से
आपके कर्म और भोग में
हमें उलझाती हैं।
'मैं' का विचार ही हमारे
अहंकार का पोषण करता है,
फिर विषयासक्त मन
हमारे सुख का
शोषण करता है।

सौंदर्य और भोग

अनंत सौंदर्य है
संसार और इस सृष्टि में,
लेकिन हमारी दृष्टि में
यह गहन अँधेरे के
मर्म में छिपा हुआ है,
क्योंकि हमारा जीवन
भोगमय बन गया है,
भोग की इच्छा में हमारी दृष्टि पर
दोष तन गया है।

मौन एक कोष

मौन सदैव ही
आत्मशक्ति का संचायक है,
यह हमारी
मानसिक शक्ति का परिचायक है,
इससे हमारी प्रवृत्तियाँ
अंतर्मुखी होकर
हमें हमारा अस्तित्व समझाती हैं,
यह एक ऐसा कोष है
जो जीवन में ऊर्जा और
आनंद लाती है।

विश्वास का फल

श्रम करते हुए
सफलता पर विश्वास करना
हमें आत्मबल देता है,
जैसे औषधि लेते हुए
नीरोग होने का विश्वास
हमारा दुःख हर लेता है।
हर कार्य का फल हमारा
प्रारब्ध कहलाता है,
सतत कर्म करते रहने से ही
उच्च प्रारब्ध आता है।

असफलताएँ

असफलताएँ
उम्मीदों को छोड़ देती हैं
यह मन को अंदर से
तोड़ देती हैं,
लेकिन सफलताएँ
प्राप्त करने के लिए
मन को तोड़ देनेवाली
इन घटनाओं से
जूझना पड़ता है,
तभी आगे का मार्ग
दिखलाई पड़ता है।

सा अ

२६ सफदरजंग रोड
नई दिल्ली

भारतीय लोककलाएँ : ज्ञान का उत्स

• मालिनी अवस्थी



सुप्रसिद्ध लोक-गायिका। लोकगीतों में निहित लोक-संस्कृति को ग्राम की परिधि लाँघकर सात समंदर पार भी लोकप्रिय करने का कार्य। देश-विदेश में अनेक कार्यशाला, व्याख्यान, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय उत्सव में सहभागिता। भारत सरकार के पद्मश्री सम्मान के अलावा अनेक सम्मान-पुरस्कार प्राप्त।काशिक, अवधी, भोजपुरी की लोक-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अनवरत योगदान।

लोक भारत की कलाएँ और हस्तशिल्प इसकी सांस्कृतिक और परंपरागत प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करने का माध्यम बने रहे हैं। लोककलाओं का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन है हमारी ग्राम संस्कृति! इसका क्रमिक इतिहास नहीं मिलता, यह सर्व व्याप्त है, साथ चलती है—पुष्प में सुगंध की तरह। सिंधु घाटी सभ्यता में मिले अवशेषों को भारतीय लोककला का आरंभिक नमूना माना जा सकता है। उस समय पाए गए मृदभांड, गुफा चित्रकारी, भित्तिचित्र आदि लोककलाओं के रूप पूर्ववैदिक युग से उत्तर वैदिक युग तक विद्यमान रहे।

हमारे पूर्वजों ने भारतीय दर्शन, जीवन-पद्धति, संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए कला का आश्रय लिया। लोककलाएँ ही संस्कृति का मुखारविंद बन गईं और कभी चित्रांकन के रूप में, कहीं विभिन्न शिल्पकला के रूप में, मूर्तिकला के रूप में, आलेखन के रूप में, तो कहीं लोकगीतों लोकनृत्य, लोकनाट्य के रूप में, और तो और लोकव्यंजन के रूप में, हमारी संस्कृति मुखरित होती रही, संरक्षित रही!

वैदिक धर्म में आर्यों की यज्ञ वेदियों के चतुर्दिक् बनी ज्यामितीय सजावट, भित्ति पर लिखे गए प्रणब आकार या स्वास्तिक चिह्न जैसे मंगल प्रतीक आगे चलकर जीवन के सभी प्रतीकों को अपने एम समेत मांगलिक परंपरा के रूप में विकसित हुए। इन आलेखनों में सभी चिह्नों की अपनी भाषा है। सीधी रेखा सदाचार का प्रतीक है, तरंगित रेखाओं में ऊर्जा का स्पंदन है। लोककला में त्रिकोण की रचना तंत्र का बीज चिह्न प्रकट करती है। नवग्रह, षोड्श मातृकाएँ चार कोनों में आबद्ध बनाए जाते हैं। इसी तरह षड्भुज तथा एक मध्य बिंदु के नाते सप्तर्षि समझा जाता है। भिन्न अवसरों, अनुष्ठानों और पर्वों पर भिन्न आलेखन के द्वारा शुभता जाग्रत् की जाती है। इन आलेखनों में समस्त चराचर जगत् को सम्मिलित कर मनुष्य ने सबसे पहला ज्ञान यही साँझा किया कि प्रकृति वनस्पति प्राणि जगत् का सम्मान हो! पूजा की इन चौक में सूर्य और चंद्र आशीष देने सर्वोपरि विराजते हैं। उनके साथ चिरैया-शगुन, मछली-कामना, आम-सुमंगल, तुलसी-कल्याण, कुंभ-पूर्णता, हरियाली-खुशहाली, ईख-सद्भावना, गाय-देवताओं का सामूहिक स्वरूप, हाथी-ऐश्वर्य, अश्वशक्ति, सर्प-संतति के बिंब बन विराजते हैं।

आधुनिक चित्रकला भले ही व्यक्तिगत ज्ञान पर आधारित हो, पर लोक चित्रकलाएँ हमेशा ज्ञान की परंपरा पर ही बनाई जाती हैं। चाहे बस्तर के आदिवासी हो या हजारीबाग या मीरजापुर। शैल चित्र बनानेवाले आदिवासियों को पारंपरिक रंगों की ज्ञान परंपरा भलीभाँति ज्ञात थी। आज हजारों वर्षों से चटक रंग इस बात के साक्षी बने हुए हैं। गोबर-मिट्टी खडिया शंख से चित्रित इनमें गेरू से लाल, हरसिंगार से नारंगी, जामुन से नीला, सेम-बेल-मकोय की पत्ती से हरा, हल्दी से पीला, गुड़हल से गुलाबी रंग योजना द्वारा कलात्मक ढंग से अपनी संस्कृति को आगे प्रसरित किया।

गोवर्धन पूजा के आलेखन में गोवर्धन पर्वत उठाए कृष्ण का चित्रांकन होता है। गैया-बछड़ा बनाकर गोबर की नाँद बनाकर अन्न एवं दूध की पूजा की जाती है। गोप-ग्वाल बनते हैं, अलंकरण से अन्न का महत्त्व समझाया जाता है। सूर्य, चंद्र, गंगा, यमुना सभी लोकचित्रों में अनिवार्यत: उपस्थित रहते हैं। सूर्य को अर्घ्य देने, अंजलि देने और सूर्य नमस्कार की परंपरा हमारे लोक-संस्कार में है। सौर पंचांग से ही पर्व मनाए जाते हैं, चंद्रमा शीतलता रस एवं गंगा-जमुना निरंतरता का प्रतीक बन संदेश देती हैं।

ओडिशा की सबसे प्राचीन और सर्वाधिक लोकप्रिय कला पत्ताचित्र का नाम संस्कृत के पत्ता, जिसका अर्थ है कैनवास, और चित्रा जिसका अर्थ है छवि, अधिकांशत: पौराणिक चित्रण होता है। जगन्नाथ मंदिर का चित्रण; कृष्णलीला जगन्नाथ का भगवान् कृष्ण के रूप में छवि, जिसमें बाल रूप में उनकी शक्तियों को प्रदर्शित किया गया है; दसावतारा पति-भगवान् विष्णु के दस अवतार, पंचमुखी-पाँच सिरोंवाले देवता के रूप में श्रीगणेशजी का चित्रण! तंजोर कला में स्थानीय देवी-देवताओं की कथा हमारे प्राचीन वैभव और भव्य सांस्कृतिक विरासत के बहुमूर्तिदर्शी चित्रण

के रूप में दिखती है, तो वर्ली लोकचित्रकला संघर्षशील मानवीय जीवन के अधिक निकट है। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में आयोजित एक मेले में मधुबनी के चटख रंगों में नाव से उतरे केवट को गले लगाए राम का चित्र देख मैं मुग्ध भाव से उसे देखती रह गई। समरसता और सहज प्रेम का इससे अनुपम ज्ञान और कहाँ मिल सकता है। खजुराहो हो या कोणार्क मंदिर का स्थापत्य, सभी मंदिरों में चित्रांकन कला एवं मूर्ति कला ज्ञान-परंपरा के अनन्य स्रोत हैं।

भारत की ज्ञान परंपरा अत्यंत विशद, समृद्ध व प्राचीन है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि वे समय के साथ चलकर आज भी लोक जन में व्याप्त है, क्योंकि उन्हें लोककलाओं का लालित्यपूर्ण साथ मिला। भारत के प्रत्येक लोक क्षेत्र में पारंपरिक लोकनाट्य विधाएँ मिलती हैं—रामलीला, रासलीला, यक्षगान, नाचा, माचा, अंकिया नाटक, जात्रा, नौटंकी आदि सभी लोकनाट्य भारत की पारंपरिक ज्ञान परंपरा पर आधारित लोक के लिए सहज रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।

यूनेस्को ने लोककलाओं में रामलीला को विश्व विरासत घोषित करते हुए माना है कि दुनिया में ५०० वर्षों से अकेली यह कला है कि जो निरंतर है। इसका एकमात्र कारण रामचरितमानस की समृद्ध ज्ञान-परंपरा का आधार था। रामलीलाओं में भारत के धर्म-दर्शन व ज्ञान के सभी तत्त्व हैं, जो मानव को मानव बनाते हैं। वाल्मीकि रामायण की पर्यावरण चेतना, विज्ञान, अध्यात्म रामलीलाओं में व्यास परंपरा के माध्यम से लोक तक पहुँचा। आदर्श एवं कर्तव्य-निष्ठा की कसौटी पर रची रामकथा स्वयं में ज्ञान गंगा है। आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श पति, आदर्श योद्धा के साथ-साथ ऐसी मीमांसाएँ आज तक शिक्षा देती हैं कि राजा का धर्म क्या हो? मर्यादा क्या है, शक्ति लोकहितकारी ही हो।

वास्तव में लोककलाएँ स्थायी इसीलिए बन पाईं, क्योंकि वे ज्ञान परंपरा पर आधारित थीं। रामलीला मंचन मात्र न रहकर हमारे संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित है। यूनेस्को ने लोककलाओं में रामलीला को विश्व विरासत घोषित करते हुए माना है कि दुनिया में ५०० वर्षों से अकेली यह कला है कि जो निरंतर है। इसका एकमात्र कारण रामचरितमानस की समृद्ध ज्ञान-परंपरा का आधार था। रामलीलाओं में भारत के धर्म-दर्शन व ज्ञान के सभी तत्त्व हैं, जो मानव को मानव बनाते हैं। वाल्मीकि रामायण की पर्यावरण चेतना, विज्ञान, अध्यात्म रामलीलाओं में व्यास परंपरा के माध्यम से लोक तक पहुँचा। आदर्श एवं कर्तव्य-निष्ठा की कसौटी पर रची रामकथा स्वयं में ज्ञान गंगा है। आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श पति, आदर्श योद्धा के साथ-साथ ऐसी मीमांसाएँ आज तक शिक्षा देती हैं कि राजा का धर्म क्या हो? मर्यादा क्या है, शक्ति लोकहितकारी ही हो। संगठन में शक्ति, निर्बल की शक्ति अपरमित है, अधर्म का नाश हो, धर्म की विजय हो। 'कुटिअट्टम्' केरल का लोकनाट्य है, जिनमें रामायण महाभारत के छोटे-छोटे प्रसंगों को २:३० घंटे तक प्रस्तुत किया जाता है। बालि युद्ध एक ऐसी घटना है, जिसकी व्याख्या दस मिनट में की जा सकती है, पर केरल में 'कोडियाट्टम्' में इसे ढाई घंटे में प्रस्तुत करते हुए धर्म-दर्शन के साथ स्त्री मनोविज्ञान को विस्तार से प्रस्तुत किया जाता है। तारा और बालि संवाद स्त्री मनोविज्ञान पर अद्भुत स्थापना रखता है।

बनारस में भरत-मिलाप देखने आज भी लाखों लोग जुटते हैं एवं आँखों के कोर पोंछते हुए विदा लेते हैं। रामकथा तो वाल्मीकि के समय से जनश्रुति में प्रचलित थी, किंतु तुलसीदासजी की अवधी में लिखी मानस एवं उसे रामलीला के रूप में मंचित करना मन-मंदिर को राममय कर गया।

उत्तर प्रदेश में बुंदेलखंड का एक लोकनृत्य है 'पाई डंडा'! पाई डंडा में लोकनर्तक डंडा लेकर नृत्य करते हुए कृष्ण की लीला रचते हैं एवं उल्लास में करतब दिखाते हैं। यह नृत्य अन्नकूट की पूजा एवं दीवाली के समय किया जाता है। वे मानते हैं कि कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर प्रजा को भी डंडी से हाथ लगाकर पर्वत थामने को कहा था, और इस तरह सबल, निडर होने का संदेश दिया था। मूलतः अपने पूर्वजों को ब्रजवासी माननेवाले ये लोकनर्तक बुंदेलखंड के यदुवंशी हैं और गोवर्धन पूजा के कई दिन पूर्व से गोप भाव से कलाबाजियाँ दिखाते हुए नृत्य करते हैं। नीम के वृक्ष में सर्वाधिक औषधीय गुण हैं, सोनभद्र के करमा लोकनृत्य नीम की पूजा से प्रारंभ होता है।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं। पतंजलि ने योग की जिन आठ परंपराओं को प्रस्तुत किया, वह आज बाबा रामदेव के प्रयास से लोकप्रिय हुई हैं, लेकिन हमारे पूर्वजों ने योग एवं स्वास्थ्य के अभिन्न संबंध को समझकर हर लोकनृत्य में योग की प्रक्रिया का संगीतमय व लालित्य पूर्ण समावेशन कर दिया। 'गोटी पुआ' नृत्य को देखते हुए आपको भारतीय धर्म-दर्शन के साथ योग की पारंपरिक क्रियाओं के सहज दर्शन होते हैं, जिसे देखते हुए आप ब्रह्म के समीप पहुँच जाते हैं। पुरलिया शैली के 'छाऊ लोकनृत्य' में मुखौटा लगाए कलाकार एक साथ कई कलाबाजियाँ लगाते हुए शारीरिक सौष्ठव का परिचय देते हैं। आत्मरक्षा एवं शत्रु का सामना करने के लिए लाठी चलाना, कुश्ती कला, दंड बैठक, व्यक्तित्व विकास के लिए अनिवार्य माना गया। युद्ध-कला आवश्यक है और आत्मरक्षा व प्रहार के लिए तलवार, ढाल, भाला, यह भी अनायास लयसुरबद्ध होकर सिखाई गई। केरल का 'कलारिपट्टू' एवं मणिपुर की 'थांग टा' ऐसी ही दर्शनीय कला है। भारतीय कलाओं की विशेषता है कि वह समय देश, काल, परिस्थिति के अनुरूप स्वयं को ढालती हुई आगे परिष्कृत होती जाती हैं। पंद्रहवीं शताब्दी में देश राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक विनाश के दौर से गुजर रहा था। ऐसे में सांस्कृतिक धरातल पर राष्ट्रीय एकता का ज्ञान बाँटते हुए चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण जीवन को आधार बना भक्तिमय नाटकों का मंचन प्रारंभ किया। चैतन्य देव की यह परंपरा बाद में जात्रा और बाउल के रूप में प्रवहमान रही। ब्रह्म सत्य जगत् माया दर्शन की यह गूढ़ धारणा भारतीय कलासाधना का प्राण रही है।

अब कुछ बात निर्गुण परंपरा की।

एकोहम द्वितीयोनास्ति! जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान कबीर, रहीम, रैदास के अनन्य अनाम लोकगीत हैं।

बुंदेलखंड का राई नृत्य प्रस्तुति में अत्यंत शृंगारिक है, पर इसके गीत निर्गुण हैं। भोजपुरी अवधी लोकगीतों में ऋतु वर्णन, महीनों की विशेषताएँ, स्त्री-पुरुष मनोविज्ञान, औषधि विज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन, अध्यात्म सब मिलता है। ऐसी कोई ज्ञान-परंपरा नहीं, जो हमारे लोकगीतों में विद्यमान न हो। एक और बात कहना चाहूँगी। भारतीय लोक-संस्कृति की आत्मा का केंद्र अध्यात्म है। वह अध्यात्म, जो मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ाता है। वह अध्यात्म, जो विश्व मात्र के कल्याण हेतु स्वयं को उत्सर्ग करने हेतु तत्पर रहने की सीख देता है। वह अध्यात्म, जो जीवन की विषमताओं को निर्मूल करने में सहायक सिद्ध होता है। लोक-परंपरा वस्तुतः हमारे पूर्वजों द्वारा भगीरथ प्रयास से अभिसंचित ज्ञान गंगा है, जिसकी वाहिकाएँ अनंत लोककथाएँ हैं, गाथागान व लोकगीत हैं, लोकचित्र-भित्तिचित्र हैं, कहावतें-मुहावरे हैं, और हमारे लोकविश्वास हैं। भारतीय संस्कृति का मूल उद्‍देश्य है—व्यक्ति का आत्मिक विकास। अनंत काल से हमारे मनीषियों ने इसी दिशा में प्रयास किया, जिससे मनुष्य अपनी चेतना को समझ सके और सार्थक जीवन व्यतीत कर सके। इसी उद्‍देश्य से ऋषियों ने वेद और सूत्र रचे, सनातन ज्ञान के अनंत स्रोत श्लोकों, आख्यानों के रूप में उपनिषद् पुराण रचे, धर्म की मीमांसा की, कभी लोकहितकारी रामराज्य के प्रणेता मर्यादा पुरुषोत्तम के माध्यम से अनाचारी राजाओं के सामने आदर्श बना प्रतिष्ठित किया, तो कभी अकर्मण्य हो चले समाज को कृष्ण के माध्यम से कर्मण्येवाधिकारस्ते का मंत्र सिखाया! इन सबका संबंध मानव जीवन की सार्थकता से है, जीवन को उत्कृष्ट बनाने की दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की कामना में है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा की आधारबेल श्रुति और स्मृति परंपरा रही है। पाँच हजार वर्षों से अधिक प्राचीन ज्ञान गंगाएँ, अगणित बाधाओं, नष्ट किए जाने के कुचक्रों के बाद यदि आज भी प्रकट हैं तो सिर्फ इसीलिए, क्योंकि हमारी ज्ञान प्राप्त करने और देने की परंपरा श्रुति एवं स्मृति परंपरा में निबद्ध थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी आया यह ज्ञान लोकविज्ञान बन गया, संस्कृति की जड़ें अरण्य के गुरुकुलों से होती हुईं, ग्रामीण चेतना तक ऐसी व्याप्त हो गईं कि दिन-प्रतिदिन रीति-रिवाज, संस्कार, मान्यताओं, परंपराओं के माध्यम से अनंत विस्तार पाने लगीं। हमारी लोक-परंपरा वस्तुतः हमारे पूर्वजों द्वारा भगीरथ प्रयास से अभिसंचित ज्ञान गंगा है, जिसकी वाहिकाएँ अनंत लोककथाएँ हैं, गाथागान व लोकगीत हैं, लोकचित्र-भित्तिचित्र हैं, कहावतें-मुहावरे हैं, और हमारे लोकविश्वास हैं। परंपरा की भावधारा श्रुति परंपरा के सहारे अगणित मोड़ लेती हुई आज भी अपने प्राचीन रूप में प्रवाहित है। ग्रामीण जनता ने इस निधि की बहुत यत्न से रक्षा की और श्रद्धापूर्वक इसे सँभाला, सँवारा और आग्रहपूर्वक अगली पीढ़ी को सौंप दिया। लोक अपने दायित्व के प्रति आज भी सजग है, इसलिए शिक्षा देते हुए आगे बढ़ता है। इसके लिए वह अभिव्यक्ति के मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेता है। शिशु के जन्म पर सोहर गाया गया—

कुअंना खनवले कवन फल, सुनऽ हो राजा दशरथ?
झोंकवन भरै पनिहारिन तबै फल होइहै।
बगिया लगाए, कौन फल हे मोरे साहेब?
राही बाटे अमवा जो खइहैं, तबै फल होइहै।
पोखरा खोदाये कौन फल, हे मोरे साहेब?
गउवा पीवें जूड़ पानी, तवै फल होइहै।
पुतवा के जनमे कौन फल, हे मोरे साहेब?
दुनिया आनंद जब होइहै, तबै फल होइहै॥

इस पारंपरिक सोहर में लोक-कल्याण के लिए किए गए कार्यों का मूल प्रयोजन पूछने पर दशरथ के उत्तरों से स्पष्ट है कि कुएँ से आम व्यक्ति भी जल पा सके, तभी कुआँ बनाना सफल है। राह चलता पथिक फल तोड़कर खा सके, तभी वृक्ष लगाना सार्थक है। जीव-जंतु अपनी प्यास बुझा सकें, तभी सरोवर का निर्माण फलीभूत है। पुत्र का जन्म संसार को आनंद दे, तभी पुत्र उत्पत्ति फलदायी है। मनुष्य के कर्म, परोपकार के लिए हों, लोक-कल्याण के लिए हों, केवल तभी सार्थक हैं! हमारे यहाँ भविष्य पुराण में कह दिया गया—

दशकूपसमा वापी, दशवापीसमो ह्रद:।
दशह्रदसम पुत्रो, दशपुत्रसमोद्रुम॥

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष! जल, वृक्ष और मानव के एक-दूसरे पर आश्रित संबंधी की इससे अनुपम व्याख्या क्या कहीं और दिखती है। जल संरक्षण पर आज विश्वव्यापी अभियान चलाए जा रहे हैं, हमारे पूर्वजों ने जल की पूजा करने की सीख दी। नववधू द्वारा सबसे पहले कुआँ पूजने की परंपरा है। शिशु जन्म के सवा महीने बाद सद्य:प्रसूता माँ घर से बाहर पहला कदम कुएँ की ओर रखती है, इसे कुआँ पूजन कहते हैं। हमारे पूर्वज जान चुके थे कि जल है तो जीवन है और जो जीवनदाता है, वही देवता है।

एक और उदाहरण देखें—हजारों वर्षों से नीम हमारे घर आँगन का हिस्सा है, क्योंकि हमारे पूर्वजों को नीम की गुणवत्ता का ज्ञान था। परंपरा ने गाँव में एक पुरानी कहावत दी—

गोबर, मैला, नीम की खली, या से खेती दूनी फली॥

नीम के औषधिपरक गुण सदा से लोक-व्यवहार में आदरणीय रहे। इसीलिए नीम में शीतला माई का वास माना गया, ऐसे ही लोक-व्यवहार में पीपल और बरगद का वृक्ष काटना वर्जित माना गया। लोक की आस्था से इसे जोड़ दिया गया। पीपल में विष्णु और बट वृक्ष में शिव का वास माना गया। सच तो यह है कि दोनों वृक्षों में वातावरण को शुद्ध करने की अपार क्षमता है, इस तरह वृक्ष में देवत्व का लोकविश्वास ही इन्हें कटने से बचा सका। घर में तुलसी पूजा भी इसी तरह हमारी लोक-संस्कृति की ज्ञान-परंपरा का उपादान बन गई। बच्चों को सिखाया जाता कि शाम के बाद वृक्षों को छूना नहीं चाहिए, ऐसे ही फल-फूल प्रदान करनेवाले वृक्षों को वनवासी समाज ने बड़ी सूझबूझ से संरक्षित कर लिया एवं इनकी जड़ी बूटियों औषधियों का प्रयोग उपचार आरोग्य के लिए

करते रहे। सभी पूजा अनुष्ठानों में सुहागिनें माटी का आशीर्वाद लेकर ही कार्य प्रारंभ करती हैं। जड़ में चेतन का अनुभव कराती, यह अद्‍भुत ज्ञान-परंपरा है। पशु-पक्षी, वृक्ष-जलाशय सभी का सम्मान है। सभी का साथ होना ही लोक को संपूर्णता प्रदान करता है। सांसारिक प्रपंच में लिप्त मानव में चेतना जगाने का कार्य प्राय: शुक, चातक अथवा हिरण द्वारा करवाया गया है। कहीं कौशल्या को समझाती हिरनी है, तो कहीं रुक्मणि को ज्ञान देती चकोर है! कहीं राम को भविष्य के लिए चेताता तोता है, तो कहीं स्वामी के शिशु पर उत्सर्ग हो जानेवाला नेवला है! पंचतंत्र, हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, वेताल पचीसी की कथाएँ लोक से ही आई हैं। बाद में इनमें से कुछ ने व्रत पर्व, अनुष्ठान, त्योहार के अवसर पर कही जानेवाली कथाओं का रूप ले लिया। प्रत्येक कथा एक शिक्षा के साथ समाप्त होती है। ये सिर्फ मनोरंजन नहीं करतीं, जीवन के तमाम रहस्यों से परदा उठाती हैं, हार न मानते हुए गंतव्य तक पहुँचने का संकल्प जगाए रखती हैं, चर-अचर समस्त प्राणियों में एक ही सत्ता का अनुभव कराती रहती हैं। हल षष्ठी पर हल और बैल की पूजा करना, गोवर्धन पूजा के दिन कृष्ण द्वारा प्रजा को आत्मसम्मान एवं अन्न का सम्मान करने की शिक्षा के रूप में, नरकचौदस पर पाँच महापातक जीव हिंसा, मदिरा पान, चोरी, विश्वासघात, परस्त्री गमन का त्याग करते हैं।

लोक-संस्कृति में ज्ञान परंपरा साथ-साथ चलती है। कुछ इस तरह, कि वह हमें कभी कुछ जताती नहीं। भोजन से पूर्व एक ग्रास निकाल देना और उसे गाय अथवा पक्षी को खिलाना, या अपने से पूर्व दूसरों के लिए आत्मन: परेशां···वर्षा ऋतु में जीवों के परस्पर मिलन का समय निश्चित होता है, इसी कारण शिकारी इस मौसम में शिकार नहीं करते।

एक और उदाहरण देखें—वर्षा काल में चहुँ ओर जल भर जाने के कारण सर्पों को बिल से बाहर निकलना ही पड़ता है। ऐसे में उनके अस्तित्व पर संकट आया देख, हमारे मनीषी पूर्वजों ने सावन में ही नागपंचमी की पूजा की परंपरा डाल सर्पों का वध निषिद्ध कराया। यही सर्प कृषक के सबसे बड़े मित्र होते हैं, जो फसल को नष्ट करनेवाले चूहों को अपना आहार बनाते हैं। साझेदारी की भावना ने हमारे यहाँ व्यक्ति को नहीं, परिवार को महत्त्व दिया। सभी संबंध लोकगीतों-परंपराओं के द्वारा ऐसे गूँथे गए हैं कि सभी एक-दूसरे पर आश्रित दिखते हैं। इसी साझेदारी के भाव ने उल्लास सिखाया, सामूहिक दायित्व निर्धारित किए। लोकमेले रचे। लोक का एक सबसे सशक्त पक्ष है कहन! समष्टि के उन्नयन के लिए वह जो भी कहना चाहता था, उसने कहा! लोकमानस की अंतश्चेतना में व्याप्त रस कथा और गीत बन नि:सृत हुए, गाथा गायन के रूप में विकसित हुए।

अवधी में राजा भृतहरि की कथा, श्रवण कुमार की कथा, चंद्रावली, कुसुमा के बलिदान की कथा, बुंदेली में आल्हा, जगदेव का पंवारा, रामकथा, भोजपुरी में, बाबू वीर कुँवर सिंह, लोरिकी, सोरठी, उड़िया में सत्यवादी हरिश्चंद्र, सावित्री चरित्र, छत्तीसगढ़ी में अहिमन रानी, पंडवानी, फूल कुँवर, पंजाब में हीर-राँझा, शहीद बाबा दीप सिंह, दुल्लाभट्टी, बँगला में गोरखनाथ, महिपाल, गोपीचंद की कथा, ऐसी अनंत गाथाएँ देश के विभिन्न अंचलों में विभिन्न बोलियों में अनंत काल से कही जाती रही हैं। जिस तरह नौटंकी सत्यवादी हरिश्चंद्र में सत्य का तप मुखरित होता है, उसी प्रकार पंडवानी के माध्यम से कृष्ण का अर्जुन को गीता का ज्ञान गुंजित होता है।

गान और कथा एक बिंदु पर मिल कभी लोरिकी, तो कभी आल्हा बन प्रस्फुटित हुए। अवधी में राजा भृतहरि की कथा, श्रवण कुमार की कथा, चंद्रावली, कुसुमा के बलिदान की कथा, बुंदेली में आल्हा, जगदेव का पंवारा, रामकथा, भोजपुरी में, बाबू वीर कुँवर सिंह, लोरिकी, सोरठी, उड़िया में सत्यवादी हरिश्चंद्र, सावित्री चरित्र, छत्तीसगढ़ी में अहिमन रानी, पंडवानी, फूल कुँवर, पंजाब में हीर-राँझा, शहीद बाबा दीप सिंह, दुल्लाभट्टी, बँगला में गोरखनाथ, महिपाल, गोपीचंद की कथा, ऐसी अनंत गाथाएँ देश के विभिन्न अंचलों में विभिन्न बोलियों में अनंत काल से कही जाती रही हैं। जिस तरह नौटंकी सत्यवादी हरिश्चंद्र में सत्य का तप मुखरित होता है, उसी प्रकार पंडवानी के माध्यम से कृष्ण का अर्जुन को गीता का ज्ञान गुंजित होता है।

ज्योतिर्विज्ञान जिस प्रकार संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध होकर अनेक ग्रंथों के रूप में सुरक्षित, संरक्षित है, उसी प्रकार लोकजीवन की स्थानीय भाषाओं में भी ज्योतिष ज्ञान के अनेक व्यावहारिक सूत्र लोक-स्मृतियों में संगृहीत होकर जन-जन की वाणी से प्रस्फुटित होते रहते हैं। परंपरा ने ही लोकभाषा में कहावतों के रूप में सूक्तियों का प्रादुर्भाव किया और इन्हीं कहावतों, जिनमें भविष्यवाणियाँ रहती हैं, के आधार पर ग्राम्य-अंचल में खेती एवं सामाजिक समस्याओं का निदान करने की सुदीर्घ परंपरा जनमी और विकसित हुई। इन भविष्यवाणियों के जनक के रूप में घाघ तथा भड्डरी का नाम लिया जाता है। घाघ जहाँ खेती, नीति एवं स्वास्थ्य से जुड़ी कहावतों के लिए विख्यात हैं, वहीं भड्डरी की रचनाएँ वर्षा, ज्योतिष और आचार-विचार से विशेष रूप से संबद्ध हैं।

गोबर राखी पाती सड़ै, फिर खेती में दाना पड़ै॥
शुक्रवार की बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए॥
रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहै घाघ सुन घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय॥

भारतीय लोककलाएँ ज्ञान का उत्स हैं। जो कुछ हमारे मनीषियों को कहना था, वह उन्होंने कहा, और फिर से परंपरा और लोक से जोड़ दिया। कभी लोक ने ही परंपराओं को जन्म दिया और फिर उनका पोषण किया। हमारी लोककलाएँ और लोक-परंपराएँ हमारी थाती हैं और इन्हें सँवारने, सँजोने का हर यत्न सराहनीय है।

सा अ

१/११२, विजय खंड १, गोमती नगर
लखनऊ-२२६०१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४१५४१४३०२

स्कूल मास्टर

• रमेशचंद्र शाह



सुविख्यात कवि-कथाकार चिंतक। 'जंगल में आग', 'मुहल्ले का रावण' (कहानी-संग्रह); 'शैतान के बहाने', 'आडू का पेड़', 'पढ़ते-पढ़ते' (निबंध-संग्रह); 'छायावाद की प्रासंगिकता', 'आलोचना का पक्ष' तथा 'भूलने का विरुद' (आलोचना), बाल कविता-संग्रह, बाल नाटक तथा 'मारा जाई खुसरो' नाटक प्रकाशित। 'पद्मश्री', 'व्यास सम्मान', 'शिखर सम्मान' तथा 'महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार' समेत कई विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

एक साथ पाँच-पाँच 'यस-सरों' की चीख ने मुझे बुरी तरह चौंका दिया है। मेरी निगाह रजिस्टर पर से उछलकर क्लास के उस कोने पर ठहर गई है, जहाँ और भी कई निगाहें टिकी हुई हैं। चार-पाँच चेहरे एक धृष्ट ललकार की मुद्रा में मुसकराते हुए मुझे घूर रहे हैं। हो न हो वही···

'प्रॉक्सी क्यों बोली ? मैं निहायत चिड़चिड़े स्वर में उनमें से एक की ओर उँगली उठाकर पूछता हूँ "पचास बार कहा कि···"

"मगर सर, मैंने तो प्रॉक्सी नहीं बोली", वह लड़का एकदम भोला और मासूम बन गया है। मैं इन धूर्तों को अच्छी तरह जानता हूँ। अध्यापक के पूरे अधिकार से मैं गरजता हूँ, "नो, इट इज यू हू प्रॉक्सीड। आई विल मार्क यू एबसेंट फॉर द डे।"

कक्षा में सन्नाटा छा गया है। मुझे धीरे-धीरे अपने महत्त्व का भान हो रहा है।

"ओह सर, आई एम सारी!" वह लड़का रोनी सी आवाज बनाकर कहता है। हँसी की एक हलकी-सी लहर पिछली बेंच से उठकर हर बेंच पर दुहराती हुई मेरे कानों से टकरा गई है और मैं रजिस्टर पटककर चीख उठा हूँ, "साइलेंस"!

और अपने आदेश के प्रभाव का अपनी ही आँखों से अनुसरण करता हुआ भर्त्सना के भाव से उस लड़के की ओर देखता हूँ, जो एक हाथ से सिर खुजलाता हुआ सिर झुकाए पूर्ववत् खड़ा है और बीच-बीच में कौतुक से मुझे देख लेता है। मुझे उसके कृत्य की चुनौती अभी तक साल रही है। जी में आता है उसे डपटूँ, शर्मिंदा करूँ। उससे अपने प्रति जताए अपमान का बदला लूँ। पर उसकी ओर देखते ही उसकी दयनीय मुद्रा पर एकाएक मुझे बेतरह हँसी छूटने लगी है। मेरा मन करता है, मैं भी और लड़कों की तरह बुरी तरह खिलखिलकर हँसूँ। मैं तत्काल उसकी ओर से नजर हटाकर अपने रजिस्टर पर झुक गया हूँ। मगर चेहरे पर व्यस्त भाव लाने की लाख कोशिश करते हुए भी मैं चंचल हो उठा हूँ। हँसी का एक दुर्निवार वेग मेरे अंदर उमड़ रहा है। मेरे होंठ हठात् अंदर की ओर भिंच गए हैं और देखते-देखते क्लास में चारों ओर हँसी के फव्वारे फूट पड़े हैं मेरे होंठों की जकड़न ढीली पड़ गई है और मैं सिर झुकाए ही एक हाथ ऊपर उठाकर छात्रों को शांत हो जाने का आदेश देते हुए फिर जोर-जोर से हाजिरी बोलने लगा हूँ। हँसी के पटाखे हलकी कानाफूसियों में बुझने लगे हैं। और में यंत्रवत् नाम बोलता चला जा रहा हूँ। कक्षा में एक सुगबुगाहट फैली हुई है और एक-एक कर सबके नाम के आगे उपस्थिति लगाता जा रहा हूँ क्योंकि मैं स्वयं उपस्थित नहीं हूँ।

मैं अर्थात् मेरा सयाना, गुरु-गंभीर व्यक्तित्व। उस शरारती लड़के की एक बचकाना हरकत ने मेरी बरसों पुरानी वयस्कता को झकझोर डाला है और मैं एक ही छलाँग में समय की दीवार फाँदकर उस दुनिया में पहुँच गया हूँ, जो मेरे इतने पास होकर भी मेरे लिए हमेशा सुदूर और अगम्य बनी रही। मेरे आगे यह टेबिल है, जिसके इस पार सभ्यता और संस्कार का पहरा है और उस पार असभ्य, उच्छृंखल अर्ध मानवों का अधीर विद्रोह। ज्ञान और बड़प्पन के दुर्ग को घेरकर बड़े हुए सनातन आततायियों से लगते रहे हैं ये नवयुवक मुझे···। पर आज न जाने क्यों मेरा मन इस निरंकुश लड़कपन पर निछावर हुआ जा रहा है। लाख स्वयं को समझा रहा हूँ कि मेरी स्थिति टेबिल के इस पार ही है और उसपार से मेरा संबंध वैसा ही है, जैसा पुलिस का चोर से या यमराज का पापात्माओं से, मगर मन है कि बरबस उसी ओर बहा जा रहा है। जितना ही इन किशोरों का कलरव बढ़ता जाता है, उतना ही उनके प्रति मेरी आत्मीयता उमड़ी पड़ रही है···

"सर···सर···देखिए यह भाग रहा है" कक्षा में एक समवेत रव गूँज उठा है। 'कौन भाग रहा है ?'···मैं बनावटी क्रोध से गरज रहा हूँ ? दरवाजे की ओर लपकता एक छात्र मेरे उधर दृष्ट करते ही खिसियाकर अपनी सीट पर पुनः बैठ गया है। मुझे उसकी खिसियानी मुद्रा पर हँसी आ रही है। और मैं फुरती से चाक-डस्टर उठाकर ब्लैकबोर्ड की ओर मुड़ गया

हूँ।…"चलो लिखे चुपचाप।" ब्लैकबोर्ड साफ करते हुए मेरे सामने भागने में असफल उस छात्र की निराश तसवीर आ जाती है और मुझे तमाम छात्रों पर तरस आने लगता है। मुझे लग रहा है—ये सब एक बहुत बड़े पिंजरे में बंद तरह-तरह के पक्षी हैं और बाहर निकलने के लिए बेचैन पंख फड़फड़ा रहे हैं और मैंने एकाएक बढ़कर पिंजरे का द्वार खोल दिया है।…चाक ब्लैक बोर्ड पर फिसल रही है, 'प्रेसी' लिखा देता हूँ—पढ़ाने को कत्तई मन नहीं करता आज। बच्चे भी आज पढ़ने के मूड़ में नहीं दिखते। खैर, जिसका मन हो लिखे, चाहे न लिखे। मेरी तरफ से छुट्टी आज इन सबको। क्यों नहीं मैंने सुधीर को चले जाने दिया? देखा-अनदेखा कर देना चाहिए ऐसे मौकों पर तो। मैं क्या कम क्लास 'कट' करता था? प्रोफेसर की नजर बचाकर ही सही, मगर कई दफा मैंने देखा है कि प्रोफेसर देखते हैं और कुछ नहीं कहते। वे जानते हैं लड़कों की आदतें। जो पढ़ना चाहते हैं पढ़ें…जबरदस्ती क्यों की जाए आखिर? और यह कोई अपराध थोड़े है! मैं क्या डॉक्टर प्रसाद की इज्जत नहीं करता था? मगर बोर होता था तो तुरंत बाहर निकल जाता था। तो मैं अपने दिनों को क्यों भूल जाता हूँ?…

…मेरे मन में उल्लास के सौ-सौ झरने जैसे एक साथ फूट पड़े हैं। दस साल पूर्व के किशोर छात्र ने मेरे अध्यापक की केंचुल उतार फेंकी है और मैं इन बेंचों पर बैठे हुओं के साथ घुल-मिलकर उस केंचुल की हँसी उड़ा रहा हूँ। मेरा बचपन लौट आया है और मेरा चिर-संचित आवेग और चांचल्य अपनी अनायासता में मुखरित होने को अधीर हो उठे हैं। मेरे सामने जड़ी हुई यह ठोस, भारी भरकम टेबिल जैसे किन्हीं अदृश्य हाथों ने अलग कर दी है और मुझे लग रहा है कि…

"सर…चाक ठीक नहीं है, अक्षर पढ़ने में नहीं आते।" कोई चिल्ला उठा है। मेरा हाथ ठिठक गया है और अपनी लिखावट पर मैं खुद हैरान हूँ। चाक की आवाज आ रही है। मैं उसे फेंककर नई चाक हाथ में ले लेता हूँ। क्लास में एक बेचैन सुनसानी छा गई है, मैं एक नजर लड़कों पर डाल लेता हूँ। कई थके-कुम्हलाए चेहरे जैसे मुझसे जवाब तलब कर रहे हैं। मैं अपराधी की तरह उधर से नजर हटाकर पुन: लिखने में जुट जाता हूँ। मेरी उँगलियाँ तेजी से ब्लैक बोर्ड पर फिसल रहे हैं, पर मेरी निगाह जैसे ब्लैक बोर्ड के आर-पार चली गई है। वहाँ लाल-लाल बुर्जोंवाली गवर्नमेंट इंटर कॉलेज की इमारत चमक रही है और मैं साइंस रूम का सबसे पिछली बेंच पर बैठा हूँ। मेरी आँखें ब्लैकबोर्ड पर डायग्राम बनाते हुए विजयानंदजी का अनुसरण कर रही हैं…मैंने बगल में बैठे ब्रजमोहन को इशारा किया है और पलक मारते ही हम पीछे के दरवाजे से बाहर निकल आए हैं…और बेतहाशा कॉलेज का पथरीला प्रांगण पार करके बाबूलाल के खोमचे की ओर लपके जा रहे हैं…चौथा पीरियड शुरू होने से पहले ही वापस लौट जाना है। पद्दा के क्लास से फरार होना असंभव है; गिद्ध जैसी आँखें रखते हैं वो। पकड़ में आ गए तो सबके सामने केनिंग और फिर प्रिंसिपल से…

शैतान! शिक्षक-द्रोही! नहीं…नहीं। क्या था तब मैं? क्यों ऐसा करता था? अरे उस उम्र में सभी ऐसा करना चाहते हैं…बंद कमरे में घुटना किस लड़के को सुहाएगा? हिम्मत की बात है, मुझमें थी हिम्मत…बस।…अच्छा हुआ प्राइमरी में नहीं सड़ना पड़ा। नहीं तो दर्जा अ से लेकर दर्जा ४ तक… उफ! घर में कितनी आजादी थी! जब जी चाहे पढ़ो-खेलो, बाद में वह गवर्नमेंट कॉलेज का पहला अनुभव? शिशु मन का दुर्धर्ष विद्रोह।…

पलायन, ताड़ना, तिरस्कार…रुदन और अफिर पलायन। हिंदी अंग्रेजी में तो तब भी निभ जाती है। मगर साइंस! जयदत्त मास्टर की नटौरियाँ खानी पड़ती हैं। चार-चार दिन तक सिर दुखता ही रहता है। अब तो रिटायर भी हो गए होंगे। नटौरी मारने का सुख अब कहाँ और गणित? आज तो गणित से अच्छा कुछ भी नहीं लगता। मगर उन दिनों तो गणित जैसे एक डरावना प्रेत था, होगा क्यों नहीं! वह सदानंदजी किस राक्षस से कम हैं। चुटकी क्या काटते हैं, मांस नोंच लेते है बाँह का। भाड़ में जाए तुम्हारा पढ़ाना। मैं घर से पढ़ लूँगा। अरिथमेटिक अलजेबरा। देवाल के पंडितजी से मुझे नहीं करना तुम्हारा काम—नहीं बैठना तुम्हारी क्लास में, बस। काटो चुटकी, निकालो बाहर और खींचो चुटिया दो, जितनी सजा देता है तुम्हें। बाहर निकाल दो यह तो मैं खुद चाहता ही हूँ। खेतों में कूदता-फाँदता हुआ नीचे गधेरे में उतर जाऊँगा, वहाँ जहाँ रसीले हिसालुओं से लदी झाड़ियाँ हैं और…

…मार खाने से मन विद्रोह करता है। सहपाठी जो हिंदी की कक्षा में ईर्ष्या से फुँके जाते हैं…यहाँ उनकी मन की हो जाती है। शाम को जाकर मोहल्ले में बकते फिरेंगे कि आज रामू को मुरगी बनाकर कोने में खड़ा किया…ये साइंस और गणित के मास्टर तो दानव। बदला जैसा लेते हैं बच्चों से। मास्टरजी हों तो खुलबे मास्साब जैसे! क्या हुआ, जो छह सवालों की जगह दो ही सवाल किए इम्तहान में? दो जवाबों से ही छह जवाबों जितना असर हुआ होगा, तभी न घर पर आकर चाचाजी से कह गए, "ऐसा बढ़िया जवाब जॉगराफी में आज तक नहीं पढ़ा मैंने। जरा रेगुलर होकर पढ़े तो क्या बात है?" बस, यह रेगुलर होकर पढ़नेवाली बात ही तो मुझे नहीं जँचती! अच्छा विद्यार्थी होने के लिए यह क्या जरूरी है कि सुबह नौ बजे से शाम के चार बजे तक बंद कमरों के अंदर घुटते रहो…बस बैठे रहो चुपचाप, हाथ-पैर तक न हिलाओ, मन लगे न लगे, माथा पकड़कर बैठे रहो चुपचाप। क्या विडंबना है! वह तो अच्छा हुआ…कहानी-उपन्यास का चस्का डाल लिया। वरना मौत ही हो जाती इतने लंबे कारावास में तो…। क्लास में जाओ, डेस्क के अंदर किताब खोलकर बैठ जाओ और अध्यापक की नजर बचाकर पढ़ते रहो। बोरियत नहीं होती और वक्त ठाट से गुजर जाता है, क्या हुआ जो कभी-कभार खड़ा करके सवाल पूछ दिया। और पकड़ में आ ही गए? तो ज्यादा-से-ज्यादा दो थप्पड़। या फिर गेट आउट। अरे यहाँ 'सिंदबाद दि सेलर' समंदर के थपेड़े खा रहा है। तुम्हारे जरा लाल मास्टर ने कान ही उमेठ दिए तो कौन ऐसी जान चली जाएगी?… खैर पकड़ ही में कहाँ आता था मैं?…दर्जा तीन से लेकर एफ.ए., बी.ए. तक की कैद क्या यों ही काट दी? डिग्री कॉलेज और यूनिवर्सिटी तक में एक से एक बोर प्रोफेसरों के प्रवचन झेले, इसी कहानी-उपन्यास की बदौलत…और हाँ, उस कार्टूनिंग के…। बी.टी. के प्रिंसिपल साहब सबसे ज्यादा बोर करते हैं हिस्ट्री के पीरियड में।…प्रॉक्सी भी नहीं हो सकती। एक-एक की आवाज पहचानते हैं। खैर, मैं भी इस ज्यादती का बदला

ले ही लेता हूँ उनका कार्टून बना के।···कभी नजर पड़ जाए इन कारनामों पर तो सीधे डिसमिस ही हों। कैसी-कैसी विकृत चेष्टाएँ करते हैं पढ़ाते हुए। उन सारी मुद्राओं को देख पाएँ ना अगर मेरी नोटबुक में तो बस··· और परसों की ही तो बात है, जब मेहरा ने चुगली की थी प्रमोद की, कि वह मेरा फोटू बनाता रहता है हर वक्त; तो मैं किस कदर आपे से बाहर हो गया था? भला इतना उत्तेजित होने की बात क्या थी? तुम पोस्ट ग्रैजुएट क्लास के स्टूडेंट होकर अपने प्रिंसिपल का कार्टून बना सकते हो। तो प्रमोद ग्यारहवीं कक्षा का छात्र होकर तुम्हारा कार्टून क्यों नहीं बना सकता? मगर तब मुझे न जाने क्या हो गया था। मैंने तत्काल उसे नीचे बुलाकर सबके सामने चार बेंत लगाए थे और बाहर निकाल दिया था। बेचारा प्रमोद! कैसा पत्थर हो गया हूँ, मैं भी। अध्यापक हो जाने भर से आदमी क्या सचमुच इतना बदल जाता होगा कि अपने दिनों को बिल्कुल भुला दे।···मेरी चाक खत्म हो गई है और ब्लैकबोर्ड भी लगभग पूरा भर गया है बस इतना काफी है। मैं क्लास की ओर मुड़ गया हूँ। मेरी दृष्टि स्वत: पिछली कतार में बैठे हुए प्रमोद की ओर चली गई है···ऐं! क्या-क्या? वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता। खिसक गया मालूम पड़ता है। अच्छा तो अब यह गुण भी सीख लिया बदमाश ने?··· अरे···रे···यहाँ तो कतार की कतार गायब मालूम देती है···मेरी ढिलाई का फायदा उठाकर···चलो लिखा···मैं आदेश के स्वर में कहता हूँ। किनारे की सभी सीटें खली पड़ी हुई हैं। एक चौथाई से अधिक लड़के चंपत हो गए हैं···अब तो···कहीं प्रिंसिपल ने देख लिया तो? बेवकूफों को कायदे से भागना भी तो आता नहीं···

"सर!···सर!" मुझे जैसे किसी ने सोते हुए एकाएक पकड़कर बिठा दिया है। और मैं तिलमिलाकर उस लड़के को ताकता ही रह गया हूँ, जो उस कोने में खड़ा हैरानी से मुझे देख रहा है। "सर!" वह जोर से चीख उठा है, "आज 'अनसीन' का टर्न नहीं था।" "तो?" में चौंककर ब्लैक बोर्ड की इबारत की ओर देखता हूँ। मटर के दाने सा घिसा चाक का टुकड़ा अब भी मेरी उँगलियों में लटका पड़ा है।

"सर! आज तो प्रोज है।"

"सर! हम तो प्रोज लाए हैं।"

"सर! अनसीन है," चार-पाँच आवाजें एक साथ चीख उठी हैं। मेरी तन्मयता बिखरने लगी है। कक्षा में बवंडर बच गया है 'अनसीन प्रोज अनसीन।' की चीत्कारों से कमरा गूँज उठा है, बगल के कमरे से केमिस्ट्री के लैक्चरर निकलकर आश्चर्य से मेरे कमरे में झाँक गए हैं, मैं कुछ पलों के लिए स्तंभित, अवाक् रह गया हूँ।···कमरे में कोहराम मच उठा है··· डेस्क बज रहे हैं और पीछे से बड़े जोर की सीटी सुनाई पड़ती है···

'साइलेंस' मैं एकाएक पागलों की तरह चिल्ला पड़ा हूँ। गुस्से के मारे मेरा सारा शरीर काँपने लगा है। कोलाहल थम गया है। और मैं आवेश में हाँफता हुआ क्लास के एक लड़के को हिंस्र आँखों से पीता जा रहा हूँ, आज तक मेरी कक्षा में किसी ने डेस्क पटकने या सीटी बजाने की हिम्मत नहीं की। मुझे अकस्मात् लग उठा है, जैसे मेरे छात्रों में से ही किसी ने आकर मुझे दो तमाचे जड़ दिए हों और इस खयाल ने मुझे अंदर-ही-अंदर तक बौखला दिया है।

"सीटी किसने बजाई?"···मेरी आवाज आवेश से काँप रही है। मेरी आँखें क्लास के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ती हुई तीसरी कतार के कोने में सिर झुकाए बैठे हुए एक लड़के पर टिक गई है। सुभाष गुप्ता? वही है वह! कल ही तो मैंने क्लास में मूँगफली खाते हुए पकड़ा था। आस-पास के लड़के कनखियों से उसी ओर देख रहे हैं। मेरा संदेह विश्वास में बदल गया है।

"सुभाष कम हीयर," मैं डपककर उसे आदेश देता हूँ, सारे लड़कों की नजर उसकी ओर घूम गई है। वह सहमा सा उतरकर मेरे सामने खड़ा हो गया है और मेरा हाथ बिजली की फुरती से अपने आप ऊपर उठ गया है।

"सर, मैंने सीटी नहीं बजाई। मैंने सीटी नहीं बजाई सर···" वह कातर स्वर में चीख उठा है। मेरा हाथ ऊपर हवा में टँगा ही रह गया है, मेरी नजरें अपराधी पर टिक गई हैं—वह दोनों हाथों से अपना चेहरा ढके भयभीत, विस्फारित आँखों से मुझे देख रहा है। वह बुरी तरह काँप रहा है और मैं अपने स्थान पर जड़-निर्निमेष उसे ताकता ही रह गया हूँ, मेरी स्मृति में सहसा कुछ कोंध गया है और मेरा हाथ अपने आप शिथिल होकर नीचे लटक गया है···यह जो आकृति मेरे सामने खड़ी है, यह सुभाष गुप्ता नहीं है। यह मैं हूँ और इस आकृति के ऊपर मँडराता यह डरावना हाथ चौथी जमात को अंग्रेजी पढ़ानेवाले हैदरी साहब का है···वह शिशु आकृति सहमी सी उस हाथ को अपने गाल के करीब आता देख रही है और यकायक पूरे जोर से चीख पड़ी है, "नहीं-नहीं···मैंने सीटी नहीं बजाई···मैंने सीटी नहीं बजाई···" और एक थप्पड़ भरपूर उसके गाल पर पड़ा है···"मक्कार! मदमाश! झूठ बोलता है? तूने नहीं बजाई तो किसने बजाई? बोल," हैदरी की दहाड़ कमरे में गूँज उठी है और वह आकृति सिसकियों के बीचकह रही है—

"सीटी···सतीश ने बजाई मास्साब, मैंने नहीं···" तड़ाक एक तमाचा उस पर पड़ा है।···आकृति लड़खड़ा गई है। वही भयावना हाथ उसे कान पकड़कर घसीटता हुआ कमरे से बाहर कर देता है।

"बदमाश···शरम नहीं आती चुगली करते हुए···? गेट-आ-ऊ-ट।"

'टन टन न न न घंटी बज रही है। शोर मचाते हुए लड़के बाहर को छिटके जा रहे हैं। मैं अचकचाकर अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाता हूँ। सामने सुभाष खड़ा है पूर्ववत्। मुझे एकटक ताकता हुआ। आकृतियाँ विलीन हो गई हैं। सुभाष रह-रहकर दरवाजे के बाहर शोर मचाते अपने साथियों को देख लेता है, उसकी मुद्रा अधिकाधिक अधीर-चंचल होती जा रही है।

"जाओ···।" मुझे अपना ही स्वर अनपहचाना सा लगता है। मैं कुछ और कहना चाहता हूँ, पर शब्द जैसे गले में अटक गए हैं।···वह आश्चर्य से स्तब्ध एक क्षण अविश्वास के भाव से मुझे देखता है और दूसरे ही क्षण हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ बाहर निकल गया है, जैसे अब इसके बाद वह कभी मेरे पास नहीं आएगा। मेरी आँखें उसकी पल-पल दूर होती आकृति का अनुसरण कर रही हैं।···वह अब लगभग आँखों से ओझल हो गया है और मुझे लग रहा है, जैसे अब वह सचमुच मेरी क्लास में कभी··· कभी नहीं आएगा।

एम-४, निराला, भदभदा रोड
भोपाल-४६२००३ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२४४४०५७४

साहित्य, सिनेमा और समाज के अंतःसूत्र

• रमा

"साहित्य का लक्ष्य सामाजिक प्रक्रिया का विश्लेषण मात्र करना नहीं है, उसका लक्ष्य समाज का मनोरंजन है, उसका लक्ष्य समाज की रुचि के अनुसार उसके लिए बौद्धिक सामग्री प्रस्तुत करना है। दूसरे शब्दों में साहित्य समाज का भोज्य नहीं है, न वह समाज का भोक्ता ही है। वह समाज की रुचि का परिष्कार करनेवाला है और जो कुछ भी समाज का आस्वाद्य या भोज्य है, उसको एक मानवीय संवेदना से जोड़कर आस्वाद्य बनानेवाला है।[१]

"भारतीय सिनेमा देश के सामान्य जनजीवन से इतना गहरा गुँथा हुआ है कि इसके बिना समाज गतिशील और जीवंत हो ही नहीं सकता। इस समय फिल्म में जिस तरह के रचनात्मक मोड़ दिखाई दे रहे हैं, उनसे आशा बँधती है कि भारतीय सिनेमा न केवल देश के जनमानस में अपनी जड़ों को और गहरा बनाएगा, बल्कि विश्वमंच पर भारत की छवि को देदीप्यमान करने में भी अपना योगदान बढ़ाएगा।"[२]



बारह मौलिक पुस्तकों का लेखन तथा साहित्य, संस्कृति, भाषा और सिनेमा पर लगभग तीन दर्जन पुस्तकों का संपादन। आकाशवाणी व दूरदर्शन के कार्यक्रमों में तीन दशकों से जुड़ाव। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों में पचास से अधिक लेख प्रकाशित। महाकवि जयशंकर प्रसाद फाउंडेशन की अध्यक्ष। त्रैमासिक पत्रिका 'समसामयिक सृजन' तथा पाक्षिक समाचार-पत्र 'कैंपस कॉर्नर' की संरक्षक।

इन परिभाषाओं के माध्यम से साहित्य और सिनेमा से समाज के संबंध को समझाने का प्रयास करूँगी। सभी जानते हैं कि आरंभिक समय में सिनेमा को समाज के लिए अच्छा नहीं माना गया, लेकिन उसे देखने की लालसा हमेशा बनी रही। मनोरंजन के रूप में सिनेमा विश्व का सबसे बड़ा माध्यम है, जिसे समाज का प्रत्येक वर्ग आसानी से समझ सकता है। सिनेमा के प्रति समाज का इस नकारात्मक दृष्टिकोण में दरअसल व्यक्ति की सोच पर निर्भर करता है, क्योंकि एक ही समाज में कई तरह के लोग रहते हैं। जिस समय सिनेमा का विरोध करनेवाले लोग थे, उसी समय में उसके समर्थन करनेवाले लोभी थे। यही कारण है कि सिनेमा आज सबसे लोकप्रिय मनोरंजन की विधा है। विख्यात दार्शनिक विवेकानंद का कहना था, "संसार की प्रत्येक चीज अच्छी है, पवित्र है और सुंदर है। यदि आपको कुछ बुरा दिखाई देता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह चीज बुरी है, इसका अर्थ यह है कि आपने उसे सही रोशनी में नहीं देखा।" स्वामी विवेकानंद का यह वाक्य बताता है कि किसी भी चीज के प्रति हमारा जो नजरिया होता है, वह हमारे अंदर के आचरण को भी प्रदर्शित करता है।

साहित्य निश्चित रूप से सामाजिक परिवर्तन का सबसे पहला माध्यम है। साहित्य मनुष्य की सृजनशीलता का सबसे प्रभावशाली उदाहरण है। प्रेमचंद लिखते हैं, "मनुष्य में जो कुछ सुंदर है, विशाल है, आदरणीय है, आनंदप्रद है, साहित्य उसी की मूर्ति है। उसकी गोद में उन्हें आश्रय मिलना चाहिए—जो निराश्रय हैं, जो पतित हैं, जो अनादृत हैं। माता उस बालक से अधिक से अधिक स्नेह करती है, जो दुर्बल है, बुद्धिहीन है, सरल है। सपूत बेटे पर गर्व करती है।"[३]

भारतीय सिनेमा की आरंभिक फिल्मों में भारतीय जीवन की संस्कृति की महक रची-बसी है। वे भारतीय समाज का आईना रही हैं, जो समाज की हर गतिविधियों को स्वयं में समेट लेने में सक्षम रहा है, चाहे वह स्वतंत्रता संग्राम के युद्ध की विभीषिका हो या फिर विभाजन की त्रासदी। शहर की असंवेदनशीलता हो या फिर गाँव का मर्म। फिल्में सबको व्यक्त करने का बूता रखती हैं। सिनेमा में जो एक बार कैद हो गया, वह दुनिया रहने तक अमर हो गया। सिनेमा अपने समाज का एलबम होता है, जिसमें उसके समय की संवेदनाएँ, घटनाएँ, विमर्श आदि चित्रों की भाँति सुरक्षित होते हैं।

सिनेमा बृहत्तर स्तर का संप्रेषण है। आधुनिक समय में सिनेमा संप्रेषण का माध्यम है। संप्रेषण चेतना फैलाता है। इसका अर्थ है कि संप्रेषण समाज के पुराने मूल्य में परिवर्तन करके समय के अनुरूप सामाजिक मूल्य को समकालीन ज्ञान के मुताबिक रखता है। सिनेमा संप्रेषण का एक प्रकार है। अगर हम इसके पूरे बनने की प्रक्रिया को देखें तो समाज एक मूल्य तय करता है। यह मूल्य समाज के वर्तमान ज्ञान के सापेक्ष होते हैं, जिनके जरिए समाज का विकास किया जाता रहा है। समाज में ज्ञान

के विकास के लिए ही किसी प्रकार के ज्ञान को साझा किया जाता है, उदाहरणार्थ अगर किसी कक्षा में कोई शिक्षक किसी विषय में विद्यार्थियों को बताता है और विद्यार्थी उसे सुनकर समझ रहे हैं तो इसका अर्थ है कि शिक्षक द्वारा ज्ञान को संप्रेषित किया जा रहा है। शिक्षा के माध्यम से ही ज्ञान को समाज तक पहुँचाया जाता है। इसे ही ज्ञान का साझा करना कहते हैं। जब दो व्यक्ति आपस में बात करते हैं, दोनों एक-दूसरे की बात को समझते हैं, इसका मतलब दोनों व्यक्ति ज्ञान का साझा किसी अर्थ को समझने के लिए करते हैं। इससे ही समाज का निर्माण होता है। समाज के बनने की प्रक्रिया में सिनेमा एक ऐसी हैसियत तक पहुँच गया है कि वह कहीं-न-कहीं समाज के मूल्य को वहन करता है और वहन मूल्य को पुनः परिवर्तित करके समाज के सामने उस मूल्य को प्रस्तुत करता है। सिनेमा एक मूल्य वाहक बन भी रहा है और चेतना भी फैलाता रहा है। उदाहरण के लिए, अगर हम भारतीय स्वतंत्रता के समय को ही लें, तो आमतौर पर यह माना जाता रहा है कि इस दौर और संघर्ष में सिनेमा का कोई योगदान नहीं रहा है।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि भारत गुलामी की जंजीर में इस कदर जकड़ा हुआ था कि किसी विद्रोही चीज की कल्पना भी उनके लिए घातक थी, क्योंकि यह वह समय था, जब भारतीय जीवन पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। जब खेत-खलिहान और खून-पसीना किसानों का था, पर उसमें उगनेवाले अनाज पर हक अंग्रेजों का था। श्रम भारतीयों का था, पर उससे मिलनेवाला फल ब्रिटिशों का। साहित्य की दृष्टि से देखें तो यह समय नवीन विचारधाराओं और तमाम साहित्यिक नई विधाओं के आरंभ का था। सामाजिक विसंगतियाँ और आडंबर भी अपने चरम पर थे। ऐसे में निर्देशकों के सामने एक चुनौती थी कि वे किस तरह की फिल्मों का निर्माण करें, क्योंकि दर्शकों का मनोविज्ञान समझना भी उनके लिए एक अलग तरह की चुनौती थी। इस समय की अधिकतर फिल्मों में धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और पंचतंत्र जैसे विषयों को लिया गया, इसका एक कारण यह भी था कि आम जनता अभी साहित्य की नवीनता से परिचित नहीं हो सकी थी, लिहाजा ऐसे विषयों पर फिल्म का निर्माण निर्देशकों को ज्यादा सार्थक लगा।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि भारत गुलामी की जंजीर में इस कदर जकड़ा हुआ था कि किसी विद्रोही चीज की कल्पना भी उनके लिए घातक थी, क्योंकि यह वह समय था, जब भारतीय जीवन पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। जब खेत-खलिहान और खून-पसीना किसानों का था, पर उसमें उगनेवाले अनाज पर हक अंग्रेजों का था। श्रम भारतीयों का था, पर उससे मिलनेवाला फल ब्रिटिशों का। साहित्य की दृष्टि से देखें तो यह समय नवीन विचारधाराओं और तमाम साहित्यिक नई विधाओं के आरंभ का था।

१९५० का दशक हिंदी सिनेमा में बदलाव का दौर लेकर आता है, जिसमें सिनेमा की विषय-वस्तु, भाषा और नायक के रंग-ढंग में बदलाव देखने को मिला। इस दौर में हिंदी सिनेमा को ऐसे नायक मिले, जिन्हें विश्व स्तर पर सफलताएँ मिलीं। इन नायकों के लोकप्रियता ने नए मानदंड स्थापित किए और अभिनय का नया रंग दिखाया। इस दौर के नायक भारतीय आजादी के महान् पुरुषों के चरित्रों से गहराई से प्रभावित थे। वे उनके आदर्शों और सीखों के नक्शे-कदम पर चलकर भारतीय युवाओं को नई दिशा प्रदान कर रहे थे—"वास्तव में १९५० का दशक भारतीय फिल्मों में नायकत्व के सशक्त होने का समय है। भारतीय समाज सदा से नायक की तलाश में रहा है, कोई ऐसा नायक, जो सबके लिए बात करे, सबके लिए लड़े, सबको संबोधित करे। इस दशक में सरकार के अंदर ही अनेक नायक थे, जो आजादी की लड़ाई से होकर उभरे थे। महात्मा गांधी का दौर बीत चुका था, पं. जवाहरलाल नेहरू का दौर चल रहा था। नेहरू फिल्म प्रेमी व्यक्ति थे। वे फिल्म वालों की लोकप्रियता से प्रभावित रहते थे। उनके समय सरकार ने फिल्मों के विकास के लिए कई तरह से प्रयास शुरू किए, इससे भी फिल्मों में नायकत्व को बल मिला। पहले के दशकों की अपेक्षा इस दशक में फिल्में ज्यादा बेहतर ढंग से सुलझने लगीं, साफ-साफ अपनी बात रखने लगीं। गरीबी, अभाव, तरह-तरह के भेदभाव, जातिवाद, सांप्रदायिकता, फासीवाद, हिंसा इत्यादि देश की बड़ी समस्याओं को फिल्मों ने बहुत तरीके से भरपूर मनोरंजन करते हुए भी प्रस्तुत किया।"[८]

आज हिंदी सिनेमा, विज्ञापन और टी.वी. संस्कृति ने समाज में अश्लीलता की नई अवधारणाएँ तथा नवीन नैतिकता का विकास किया है। भूमंडलीकरण तथा हॉलीवुड ने भारतीय हिंदी सिनेमा को विशेष रूप से प्रभावित किया है, जिससे बॉलीवुड में अश्लीलता के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया है। इसमें नंगापन का समावेश इस हद तक हो चुका है कि हम अपने परिवार के साथ बैठकर फिल्म नहीं देख सकते। पहले अगर फिल्मों में या टी.वी. पर कोई ऐसा दृश्य आता, जिसमें युगल शारीरिक रूप से निकट आते, तो परिवार के बड़े लोग चुपचाप उठकर चले जाते, पर आज वह अहसास-बोध भी समाप्त होता जा रहा है। आज श्लील एवं अश्लील में कोई भेद नहीं रह गया है। कुछ वर्ष पूर्व से अश्लीलता का जीवंत रूप देखने को मिल रहा है—"हॉलीवुड फिल्मी सितारों के अनुकरण हमारे सिनेमा में निरंतर होते चले आ रहे हैं। यदि वहाँ चुंबन और रति-मुद्राएँ आम हैं, तो हमारे यहाँ भी धड़ल्ले से आ चुकी हैं। अब तो स्थिति यह आ गई है कि सिनेमा अभिनेत्रियों में जबरदस्त प्रतिस्पर्धा है, कौन कितना ज्यादा उघड़ (एक्सपोज) सकती है। प्रत्येक शुक्रवार को उद्घाटित होनेवाली फिल्मों में कोई-न-कोई बाला है, जो नंगे होने के पिछले रिकॉर्ड को मात देती हुई अपना अलग कदम उठाती है।"

सिनेमा और साहित्य न केवल संवेदना को व्यक्त करते हैं, बल्कि हमारी संस्कृति और सभ्यता को बड़े फलक पर ले जाते हैं। इस संबंध में यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा—"सिनेमा और साहित्य सामाजिक,

सांस्कृतिक उत्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी भी राष्ट्र के उत्थान में लिखे गए शब्दों का जितना महत्त्व रहा है, उसके आधार पर बने चित्रों, बिंबों का भी महत्त्व रहा है। साहित्य हमारे परिवेश की आसान और जटिल संरचना को एक निश्चित समय और स्थान में प्रस्तुत करता है। हम उसे पढ़ते हुए शब्दों के माध्यम से महज निरे विवरणों की तरह ग्रहण नहीं करते, बल्कि इन विवरणों के माध्यम से हमारे मस्तिष्क में बननेवाले दृश्यों और बिंबों को भी ग्रहण करते हैं।"[६]

दरअसल सिनेमा और साहित्य लेखन में कुछ बुनियादी फर्क होता है। सिनेमा को साहित्य के विरुद्ध माना गया है। साहित्यकार भी अपने समय का नग्न यथार्थ बहुत कम मात्रा में उठा पाए। सच कहें टी.पी. साहित्य में वर्षों आदर्श, सभ्यता, संस्कृति और परंपरा को पाला-पोसा गया, जिसके कारण नया और स्वच्छंद सोच रखनेवाले साहित्यकारों का मानसिक और सामाजिक क्षरण हुआ। मुक्तिबोध, मंटो, राजकमल चौधरी जैसे साहित्यकार इसी श्रेणी में हैं। आरंभिक साहित्य में भ्रष्टाचार, व्यभिचार और नग्नता को आदर्शों, सभ्यताओं, संस्कृतियों और परंपराओं के आवरण में छुपा लिया गया। यथार्थ भी पूरी तरह हिंदी साहित्य में मुश्किल से आया। मनोरंजन को तो हमेशा तिरस्कृत किया गया, जबकि सिनेमा में मनोरंजन व्यावसायिकता के साथ तकनीकी का ज्ञान उसका आवश्यक तत्त्व है। सिनेमा को हमेशा उपेक्षित समझा गया, लेकिन देखने की लालसा हमेशा बनी रही। उसे फुटपाथिया या लुगदी साहित्य का हिस्सा माना गया। ये सारी बातें तब की हैं, जब हम शारीरिक रूप से आजाद थे, पर मानसिकता गुलामी की कैद में थी। अब सिनेमा बहुत बदल गया है। यह सुखद है कि हिंदी में भी अब सिनेमा को ध्यान में रखकर साहित्य लिखा जा रहा है; हालाँकि यह प्रतिशत बहुत कम है, पर शुरुआत हमेशा प्रशंसा के लिए होती है। हिंदी सिनेमा में हमेशा उस तरह की फिल्में बनती रहीं, जिस तरह का साहित्य लिखा जाता रहा है। कई साहित्यिक कृतियों पर बेहतरीन फिल्मों का निर्माण भी हुआ। 'चित्रलेखा', 'तीसरी कसम', 'सारा आकाश', 'यही सच है', 'आपका बंटी', 'काली आँधी', 'पिंजर' जैसी दर्जनों कृतियों पर फिल्में बनीं और लोगों को आकर्षित करने में सफल भी रहीं। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह भी रही ही कि अनिवार्यता के बावजूद सिनेमा और साहित्य के संबंध मधुर नहीं रहे। यदि ऐसा होता तो सचमुच हिंदी सिनेमा की तसवीर कुछ और ही होती। दोनों एक-दूसरे के लिए अनंत संभावनाओं के द्वार खोल सकते थे और दोनों व्यावहारिक रूप में अपनी सच्ची सामाजिक भूमिका निभा सकते थे। निश्चित रूप से फिल्म के पास अभिव्यक्ति के जितने उपकरण हैं, उतने अन्य किसी भी कलात्मक विधा के पास नहीं हैं, बल्कि यों कहें कि सिनेमा में आकर सारी विधाएँ एकत्र हो जाती हैं। कला की जितनी भी विधाएँ हैं, उन सभी में साहित्य किसी-न-किसी रूप में कम या अधिक मात्रा में प्रस्तुत रहता ही है। कला की सभी विधाएँ अंततः अपने-अपने माध्यमों से कोई-न-कोई कथा कहने का ही प्रयास करती हैं।

साहित्य को आरंभ से ही एक आदर्श विधा के रूप में स्वीकार किया गया, जबकि सिनेमा अपने स्वभाव से ही क्रांतिकारी रहा है। साहित्य ने अपनी सीमाओं को पार करने में बहुत समय लगा दिया, लेकिन सिनेमा ने हमेशा ही ऐसे विषयों को आधार बनाया, जिस पर लोग खुलकर बातचीत नहीं कर पाते। साहित्यकारों ने सिनेमा को ऐसा साधन मान लिया, जो सिर्फ मनुष्य को बिगाड़ने का काम करता है। साहित्य को माननेवालों ने सिनेमा के सामाजिक सरोकारों को कभी स्वीकार ही नहीं किया।

हम यह जानते हैं तथा एक संवेदनशील पाठक, श्रोता एवं दर्शक होने के नाते हमने यह अनुभव भी किया है कि इनमें से प्रत्येक विधा में सहृदय के मन और मस्तिष्क को स्पर्श करने की कितनी अद्भुत क्षमता होती है। इन कलाओं का पारस्परिक संयोग और समन्वय जिस सीमा तक बढ़ता चला जाता है, उसकी प्रभावक क्षमता भी उतनी ही बढ़ती चली जाती है। इसीलिए यदि गीत के साथ संगीत का समन्वय हो या फिर गीत और संगीत के साथ नृत्य का भी समन्वय हो तो अंतर्मन के तारों को वह उतना ही अधिक झंकृत करता है।

प्रत्येक कला रूप में साहित्य का कुछ-न-कुछ अंश होता ही है। सिनेमा में भी प्रत्येक कला का कुछ-न-कुछ अंश होता है, इसीलिए यह मानना कठिन नहीं है कि सिनेमा को सहित्य से अपने संबंध सौहार्दपूर्ण रखने चाहिए। यह बात इसके ठीक विपरीत नहीं हो सकती कि साहित्य सिनेमा से अपने संबंध सौहार्दपूर्ण रखे, क्योंकि साहित्य को सिनेमा की जरूरत नहीं है। साहित्य एक 'शब्द विधा' है, इसलिए उसकी अनिवार्यता 'भाषा' है, न कि 'कैमरा'। यह अपने आप में एक पूर्ण एवं आत्मनिर्भर विधा है। उसे पाठक चाहिए, दर्शक नहीं। यहाँ तक कि नाटक के दर्शक की मानसिकता पाठक की मानसिकता के अधिक निकट होती है, बजाय सिनेमा के दर्शक के। फिर ऐसी बात भी नहीं है कि जो नाटक खेला न जा सके, वह व्यर्थ होता है। लोकमंच की बात अलग है, किंतु साहित्यिक नाटक पूरी तरह दर्शकों पर अवलंबित नहीं होता। इसलिए यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि श्रेष्ठ साहित्य पर श्रेष्ठ फिल्म भी बनाई जा सकती है या हर अच्छे साहित्य पर फिल्म बननी चाहिए या कि हर फिल्म साहित्य पर ही बननी चाहिए। सत्यजीत रे उन फिल्मकारों में थे, जिन्होंने साहित्य पर सबसे अधिक फिल्में बनाईं, किंतु उनकी सभी फिल्में साहित्य पर नहीं हैं। उन्होंने उस साहित्य को अपनी फिल्म के लिए प्राथमिकता दी, जिसमें 'डिटेल्स' थे, ताकि साहित्य की आत्मा को चित्रित और साहित्यकार तथा निर्देशक के संवेदनात्मक टकराव एवं विलगाव को कम-से-कम किया जा सके। उन्होंने विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के उपन्यास का अपनी फिल्म के लिए चयन किया। इस फिल्म ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलाई। ऐसा कैसे हुआ, वे स्वयं लिखते हैं, "पाथेर पांचाली का प्रमुख गुण था—उसकी सरलता। उसके साथ ही आवेग, काव्यमयता, यथार्थता, मानवता आदि वैसे गुणों का समावेश, जो विभूतिभूषण के उपन्यास में मौजूद हैं। उस फिल्म में उन गुणों का समावेश

रहने के कारण ही उसने दर्शकों के मन में एक ऐसी छाप छोड़ दी है, जिसे मिटाया नहीं जा सकता।"[७]

साहित्य को आरंभ से ही एक आदर्श विधा के रूप में स्वीकार किया गया, जबकि सिनेमा अपने स्वभाव से ही क्रांतिकारी रहा है। साहित्य ने अपनी सीमाओं को पार करने में बहुत समय लगा दिया, लेकिन सिनेमा ने हमेशा ही ऐसे विषयों को आधार बनाया, जिस पर लोग खुलकर बातचीत नहीं कर पाते। साहित्यकारों ने सिनेमा को ऐसा साधन मान लिया, जो सिर्फ मनुष्य को बिगाड़ने का काम करता है। साहित्य को माननेवालों ने सिनेमा के सामाजिक सरोकारों को कभी स्वीकार ही नहीं किया। इस संबंध में सिने आलोचक प्रह्लाद अग्रवाल की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है, "सिनेमा को कभी साहित्य के मानदंडों पर परखा गया, कभी इसे नैतिक मानदंडों के आधार पर नापा गया, लेकिन इसे एक स्वतंत्र कलात्मक अभिव्यक्ति समझते हुए इस पर समझदार विमर्श की आवश्यकता हिंदी में तो नहीं ही समझी गई। सिनेमा वह रचनात्मक विधा है, जिसके सृजन में जीवन के लगभग हर कार्य व्यापार से संबंधित व्यक्ति जुड़ा होता है।"[८]

साहित्य और सिनेमा का अंततः उद्देश्य समाज के लिए वैचारिक भूमि तैयार करना और उसे नई दृष्टि प्रदान करना है। साहित्य और सिनेमा के बीच में समाज की भूमिका कड़ी की तरह है, जो उन्हें बाँधे रखती है। समाज साहित्य और सिनेमा के केंद्र में होता है, "साहित्य की तरह सिनेमा भी अपनी प्राणऊर्जा समाज से ग्रहण करता है। इसलिए सिनेमा की चर्चा होने पर उसके सामाजिक सरोकारों की ओर अनायास ही ध्यान जाता है। सिनेमा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए, किसी सामाजिक उद्देश्य के लिए, मनोरंजन के लिए या फिर शुद्ध व्यवसाय के लिए हो सकता है, किंतु प्रत्येक स्थिति में उसका संबंध समाज से अवश्य होता है। यह कह सकते हैं कि समाज सिनेमा का एक अनिवार्य तत्त्व है।"[९]

समग्रतः समाज का सिनेमा और सिनेमा से संबंध किसी-न-किसी रूप में मौजूद रहा ही है। हिंदी सिनेमा का भारतीय समाज और दर्शकों से गहरा संबंध है। यही कारण है कि वर्तमान समय के निर्देशकों ने अपने सिनेमा में सामाजिकता के साथ शिक्षा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि अगर कोई भी व्यक्ति किसी सिनेमा से प्रभावित होकर अपनी सोच को बेहतर बना सके तो सिनेमा का उद्देश्य पूरा व सार्थक होगा। सिनेमा को बेहतर होने के लिए साहित्य के दरवाजे तक आना ही होगा।

संदर्भ :

१. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्ता, पृष्ठ ४०
२. आजकल, अक्तूबर २०१२, जीवन में गहरे पैठा है सिनेमा, सुभाष सेतिया, पृष्ठ ४७
३. प्रेमचंद : समाज संस्कृति और राजनीति, सं.-अच्युतानंद मिश्र, 'साहित्य की प्रगति', प्रेमचंद, पृष्ठ ४४
४. ज्ञानेश उपाध्याय, बहुवचन-३९, अक्तूबर-दिसंबर २०१३, पृष्ठ १५
५. जवरीमल्ल पारख, 'भूमंडलीकरण और भारतीय सिनेमा', पृष्ठ ६१-६२
६. अमरेंद्र कुमार शर्मा, मीडिया विमर्श सिनेमा अंक, जून २०१३, पृष्ठ ५३
७. सत्यजीत रे, सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ ३५
८. अग्रवाल प्रह्लाद नजर से नजर का खेल है सिनेमा, पृष्ठ ४८ सतरंगी संसार, अक्तूबर २०१२
९. डॉ. अर्चना उपाध्याय, हिंदी सिनेमा : बदलते संदर्भ, सतीश बुक डिपो, दिल्ली, पृष्ठ-१२

सा अ

प्राचार्या, हंसराज कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
दूरभाष : ९८७१९०७०८१

उपकार

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

एक गुलाम था। उसका नाम एंड्रोक्लीज था। एक बार वह एक जंगल से होकर जा रहा था। उसने किसी के कराहने की आवाज सुनी। उसने देखा कि थोड़ी दूरी पर एक शेर लेटा हुआ है और कराह रहा है। एंड्रोक्लीज डरते-डरते उसकी ओर गया। उसने देखा कि शेर के पैर में एक काँटा चुभा हुआ है। पहले तो एंड्रोक्लीज को भय लगा, फिर हिम्मत कर वह शेर के पास पहुँचा। उसने शेर के पैर को अपने हाथों में लेकर काँटा निकाल दिया।

शेर ने कृतज्ञता के भाव से उसकी ओर देखा और चला गया। इस घटना को कई वर्ष बीत गए। उन दिनों अपराध करने पर दंड पाए हुए अपराधी के सामने भूखा शेर छोड़ दिया जाता था। इस भयानक तमाशे को देखने के लिए चारों ओर जनता एकत्र हो जाती थी।

संयोग की बात। एंड्रोक्लीज के सामने वही शेर छोड़ा गया, जिसका काँटा उसने निकाला था। शेर उसके सामने आया। लेकिन अरे, यह क्या हुआ! चारों ओर खड़े लोग आश्चर्य से आँखें फाड़े देखने लगे। वे सोच रहे थे कि शेर थोड़ी देर में एंड्रोक्लीज का काम तमाम कर देगा, परंतु शेर उसके पास आया, उसकी ओर देखने लगा और फिर पालतू कुत्ते की तरह बैठकर उसके पैर चाटने लगा।

पशु भी प्रेम और सहानुभूति पहचानते हैं। वे भी दूसरों के उपकार नहीं भूलते। फिर हम तो इनसान हैं, हम दूसरों के उपकार क्यों भूलें?

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

कान्हा से द्वारकाधीश तक

● सुरेंद्र शर्मा

स्वर्ग में विचरण करते हुए
अचानक एक-दूसरे के सामने आ गए
विचलित से कृष्ण, प्रसन्नचित सी राधा
कृष्ण सकपकाए, राधा मुसकाई
इससे पहले कृष्ण कुछ कहते, राधा बोल उठी
कैसे हो द्वारकाधीश ?
जो राधा उन्हें कान्हा-कान्हा कहके बुलाती थी
उसके मुख से द्वारकाधीश का संबोधन
कृष्ण को भीतर तक घायल कर गया
फिर भी किसी तरह अपने आप को सँभाल
लिया
और बोले राधा से···
मैं तो तुम्हारे लिए आज भी कान्हा हूँ
तुम तो द्वारकाधीश मत कहो!
आओ बैठते हैं···
कुछ मैं अपनी कहता हूँ, कुछ तुम अपनी कहो
सच कहूँ राधा,
जब-जब भी तुम्हारी याद आती थी
इन आँखों से आँसुओं की बुँदें निकल आती
थीं! बोली राधा,
मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ
न तुम्हारी याद आई, न कोई आँसू बहा
क्योंकि हम तुम्हें कभी भूले ही कहाँ थे
जो तुम याद आते
इन आँखों में सदा तुम रहते थे
कहीं आँसुओं के साथ निकल न जाओ
इसलिए रोते भी नहीं थे
प्रेम के अलग होने पर तुमने क्या खोया
इसका इक आईना दिखाऊँ आपको ?
कुछ कड़वे सच, प्रश्न सुन पाओ तो सुनाऊँ ?
कभी सोचा इस तरक्की में
तुम कितने पिछड़ गए
यमुना के मीठे पानी से जिंदगी शुरू की



हिंदी के लोकप्रिय कवि हैं। पिछले लगभग पाँच दशक से कवि-सम्मेलनों में अपनी 'चार लाइना' से अपनी विशेष पहचान बनाई। अनेक सामाजिक व साहित्यिक संस्थानों में सक्रिय। हरियाणा साहित्य अकादमी और हिंदी अकादमी, दिल्ली के उपाध्यक्ष। पद्मश्री के साथ अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत।

और समुद्र के खारे पानी तक पहुँच गए ?
एक उँगली पर चलने वाले सुदर्शन चक्र पर
भरोसा कर लिया और
दसों उँगलियों पर चलने वाली
बाँसुरी को भूल गए ?
कान्हा जब तुम प्रेम से जुड़े थे तो···
जो उँगली गोवर्धन पर्वत उठाकर लोगों को
विनाश से बचाती थी प्रेम से अलग
होने पर वही उँगली
क्या-क्या रंग दिखाने लगी
सुदर्शन चक्र उठाकर
विनाश के काम आने लगी
कान्हा और द्वारकाधीश में
क्या फर्क होता है बताऊँ
कान्हा होते तो तुम सुदामा के घर जाते
सुदामा तुम्हारे घर नहीं आता
युद्ध में और प्रेम में यही तो फर्क होता है
युद्ध में आप मिटाकर जीतते हैं
और प्रेम में आप मिटकर जीतते हैं
कान्हा प्रेम में डूबा हुआ आदमी
दु:खी तो रह सकता है
पर किसी को दु:ख नहीं देता

आप तो कई कलाओं के स्वामी हो
स्वप्न दूरदृष्टा हो
गीता जैसे ग्रंथ के दाता हो
पर आपने क्या निर्णय किया
अपनी पूरी सेना कौरवों को सौंप दी ?
और अपने आपको पांडवों के साथ कर लिया
सेना तो आपकी प्रजा थी
राजा तो पालक होता है
उसका रक्षक होता है
आप जैसा महाज्ञानी
उस रथ को चला रहा था जिस पर बैठा अर्जुन
आपकी प्रजा को ही मार रहा था
अपनी प्रजा को मरते देख
आपमें करुणा नहीं जगी
क्योंकि आप प्रेम से शून्य हो चुके थे
आज भी धरती पर जाकर देखो
अपनी द्वारकाधीश वाली छवि को
ढूँढ़ते रह जाओगे हर घर, हर मंदिर में
मेरे साथ ही खड़े नजर आओगे
आज भी मैं मानती हूँ
लोग गीता के ज्ञान की बात करते हैं
उनके महत्त्व की बात करते है
मगर धरती के लोग
युद्ध वाले द्वारकाधीश पर नहीं
प्रेम वाले कान्हा पर भरोसा करते हैं
गीता में मेरा दूर-दूर तक नाम भी नहीं है
पर आज भी लोग उसके समापन पर
'राधे राधे' करते हैं।

सा
अ

१, रामकिशोर रोड,
रोहतगी अपार्टमेंटस
कॉटेज नं. ४, सिविल लाइंस
दिल्ली



मरते-मरते

• ज्ञान चतुर्वेदी



ख्याति प्राप्त कार्डियोफिजीशियन व चिकित्सा विशेषज्ञ। प्रथम उपन्यास 'नरकयात्रा' अत्यंत चर्चित रहा। 'बारामासी', 'मरीचिका' तथा 'हम न मरब' उपन्यासों का लेखन तथा अनेक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में नियमित स्तंभ लेखन। अब तक लगभग हजार व्यंग्य रचनाओं का प्रकाशन। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत; सन् २०१५ में पद्मश्री सम्मान से विभूषित। संप्रति : भोपाल के ख्यात नोबल अस्पताल में मेडीसिन के विभागाध्यक्ष।

जीवन भर सिफारिशों पर वह पलता और जीता रहा था। आज मर गया।

मरने से पहले बीमार भी रहा। बड़ा सीरियस था। तब भी, अस्पताल के पलंग पर पड़ा-पड़ा डॉक्टरों तक यहाँ-वहाँ से सिफारिशें पहुँचवाता रहा कि डॉक्टर साहब, इनका बढ़िया इलाज किया जाए और देखिएगा कि इन्हें कुछ होने न पाए। डॉक्टर हँसने लगा था। एम.एल.ए. की सिफारिश पर जान बच जाती तो फिर तो कोई मरता ही नहीं। फिर भी वह मरते-मरते भी सिफारिशों की कोशिश तो करता ही रहा। बीमारी गंभीर थी, सिफारिशी मर गया।

अब घर में अंतिम संस्कार के लिए शमशानघाट ले जाने की तैयारी चल रही है। बाल-बच्चे, रिश्तेदार, आसी-पड़ोसी, लाश पड़ी है सिफारिशी की, परंतु उसकी आत्मा को अभी भी चैन नहीं, दोनों बेटे नाकारा हैं। स्साले देखना बिना ठीकठाक सिफारिश का इंतजाम किए ही, मुझे उठाकर पहुँच जाएँगे श्मशान घाट। सिफारिशी को जीवन भर यही विश्वास रहा है कि इस दुनिया में सिफारिश के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसे तो उसका अंतिम संस्कार अटक जानेवाला है। 'अरे साहब, कौन पूछता है। ऐसे तो वहाँ बीसों लोग मर-मरा के पहुँच रहे हैं। पता नहीं कि शहर में आज कितनों की मौत हुई हो। वहाँ पहुँचे तो लाश को किनारे न धरवा दें कि अभी लाइन में लगो, आज बहुत से मुरदे फूँकने को आए हैं। फिर कहीं गीली लकड़ी न पकड़ा दें चिता के लिए तो अलग मुसीबत। ये लौंडे तो कुछ न करेंगे। उसे ही कुछ करना पड़ेगा।'

अपनी लाश को वहीं छोड़ सिफारिशी सीधे श्मशान घाट जा पहुँचा। जब तक घरवाले अरथी सजाकर यहाँ पहुँचें, तब तक कोई जुगाड़ जमाने की कोशिश क्यों न कर ली जाए! पकड़ते हैं किसी को। वह श्मशान घाट में घूमने लगा। सामने ही श्मशानघाट का चौकीदार दिख गया। जाकर नमस्कार की और सिफारिश जुटाने की कोशिश चालू कर दी। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद सिफारिशी अपने मतलब की बात पर आ गया।

'बॉस, लकड़ी का क्या भाव चल रहा है?'

चौकीदार ने भाव बताया। पूछा कि लाश नहीं लाए हो क्या? वजन के हिसाब से लकड़ी का सही-सही बता देता···

'वजन तो हमारे बराबर ही समझ लो···'

चौकीदार ने उसे घूरकर देखा। अंदाजा लगाता रहा, बोला कि तीन मन के करीब तो लकड़ियाँ लग ही जाएँगी। सिफारिशी ने मन में गणना की और बोला, 'यार, तब तो लकड़ी में ही बहुत पैसे ठुक जाएँगे···इससे अच्छा तो था कि न ही मरते।'

'मरना-जीना कौना सा आदमी के हाथ में है भाई साहब?' चौकीदार फिलॉस्फीकल हो चला।

'सो तो है···पर पहले डॉक्टरों ने इतना खींच लिया और अब इधर लकड़ी में···'

'नाम बता देते मरनेवाले का भाई साहब तो हम अभी से रजिस्टर में चढ़ा लेते और अरथी आने तक लकड़ियाँ तौल के डलवा भी देते···सूखी लकड़ियों का टोटा चल रहा है ना, तनिक ही बची हैं।'

'यार, तुम हमारा ही नाम लिख लो। आर.पी. श्रीवास्तौ! बढ़िया सूखी लकड़ियाँ बीन दो, फटाफट।'

'अपना नाम काहे लिखा रहे हो भाई साहब? जो मरा है, उसका बताओ न!'

'मान लो कि हम ही मरे हैं।'

'काहे मजाक कर रहे हैं भाई साहब? लगता है कि बहुत प्रेमभाव रहा है मरनेवाले से। चलिए, हमें क्या है, हम यही नाम चढ़ाए लेते हैं।'

'अच्छा यार, ये बताओ कि मान लो कि हम किसी से कहलवा दें, फोन-वोन करा दें तो क्या कुछ कम भाव नहीं लग जाएँगे लकड़ी के?'

'आप शर्माजी से कहलवा दें तो हम तो मुफ्त में डाल देंगे भाई साहब! शर्माजी तो श्मशान ट्रस्ट के मालिक जैसे हैं।'

'ये वाले शर्माजी वो तो नहीं, जो पिछली दफा एम.एल.ए. के लिए खड़े हुए थे? तब हम उनकी जीप में चढ़े-चढ़े घूमे थे। खुद वोट दिए थे

और कित्ते ही वोट गिरवाए थे हमने···'

'फिर क्या है, कहलवा दो न।'

'पर मरने के बाद काहे पूछेंगे शर्माजी। आगे तो हम वोट देने से रहे! अभी न सुनेंगे वे हमारी।' चौकीदार समझा नहीं कि वे क्या कह रहे हैं?

चौकीदार ने मानो कुछ भी कहने के लिए कहा, 'वैसे आप हैं श्रीवास्तो बामन होते तो शर्माजी, वैसेई···'

'सही कहा, हम बामन होते तो शर्माजी से यहाँ भी सारी लकड़ी मुफ्त ले लेते और पच्चीस-तीस किलो घर में डलवा लेते कि तेरहवीं पर हलवाई की भट्ठी में काम आ जाएगी। अपनी जात का आदमी सही जगह मिल जाए तो आधी सिफारिश तो ऐसे ही हो जाती है।'

चौकीदार चुप रहा।

'तुम्हीं कुछ हेल्प करो न यार!'

'हम क्या करेंगे भाई साहब? हम तो छोटे आदमी ठहरे।'

'अरे, ऐसा न कहो चौकीदार भी बड़ी पोस्ट होती है भैया। पूरे श्मशानघाट की देखभाल का बड़ा जिम्मा उठाए हो तुम। अरे, तुम चाहो तो पचास सौ किलो लकड़ी तो किसी तरफ भी कम-बढ़ गिरवा दो। और क्या! अरे तुमसे कौन पूछनेवाला है, है कि नहीं?' सिफारिशी चौकीदार को साधने लगा।

चौकीदार भी समझ गया कि बात किस दिशा में जा रही है।

'भाई साहब, यहाँ सब तरफ घूम रही आत्माएँ गवाह हैं। हमने एक लकड़ी की भी जो कभी हेराफेरी की हो तो जो सजा···'

'आपकी ईमानदारी की चर्चा तो हम भी खूब सुने हैं, पर अब मरनेवाले की आखिरी इच्छा ही मान के कुछ करा दो यार···' मरे हुए सिफारिशी की अंतिम इच्छा है कि चौकीदार थोड़ी-बहुत रिश्वत ले-लवाकर औने-पौने भाव में लकड़ी दे दे।'

बात पचास के नोट पर टूटी।

सिफारिशी लगभग मुफ्त में लकड़ी डलवाकर लौट गया। अब जाकर उसकी आत्मा को शांति मिली थी। फिर उसकी अरथी उठी। लाश के चेहरे पर परम संतोष था कि मरने पर भी जुगाड़ बिठा ही लिया।

किसी ने लाश को देखकर कहा, 'कितनी शांति है चेहरे पर!'

'पुण्यात्मा ठहरे!' किसी और ने कहा।

पुण्यात्मा कहने का ही रिवाज है। वरना कभी किसी सिफारिशी के चेहरे को देखिएगा, वहाँ भी इस लाश की तरह ही परमसंतोष के भाव रहते हैं।

सा अ

४०-ए, अलकापुरी
भोपाल-४६२०२४ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५६०४१०३

बदल गए दस्तूर

दोहे

● रामनिवास 'मानव'

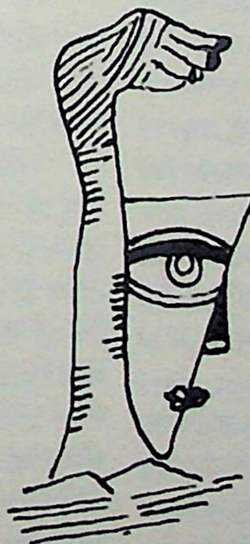
गली-मुहल्ले चुप सभी, घर-दरवाजे बंद।
कोरोना का भूत ही, घूम रहा स्वच्छंद॥

लावारिश लाशें कहीं, और कहीं ताबूत।
भीषण महाविनाश के, बिखरे पड़े सबूत॥

पड़े हाँफते सड़क पर, समृद्धि और विकास।
दुनिया को घेरे खड़े, शोक और रुआँस॥

महानगर या शहर हो, कस्बा हो या गाँव।
कोरोना के कोप से, ठिठके सबके पाँव॥

चीख-चीखकर आँकड़े, करते यही बखान।
मानव के अस्तित्व पर, भारी पड़ा वुहान॥



उड़ते थे आकाश में, करते थे उत्पात।
कोरोना ने दी बता, उन सबकी औकात॥

साधन कम खतरे बहुत, कठिन बड़े हालात।
देवपुत्र फिर भी जुटे, सेवा में दिन-रात॥

आस-पास सारे रहें, लगते फिर भी दूर।
पल में घर-परिवार के, बदल गए दस्तूर॥

कोरोना के दौर में, पुनः हुआ यह सिद्ध।
संकट में भी नोंचते, मानवता को गिद्ध॥

कोविड का प्रकोप कहीं, कहीं युद्ध का शोर।
साक्षी बना विनाश का, यह उन्मादी दौर॥

सा अ

५७१, सेक्टर-१, पार्ट-२
नारनौल-१२३००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ८०५३५४५६३२

मरते-मरते

• ज्ञान चतुर्वेदी



ख्याति प्राप्त कार्डियोफिजीशियन व चिकित्सा विशेषज्ञ। प्रथम उपन्यास 'नरकयात्रा' अत्यंत चर्चित रहा। 'बारामासी', 'मरीचिका' तथा 'हम न मरब' उपन्यासों का लेखन तथा अनेक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में नियमित स्तंभ लेखन। अब तक लगभग हजार व्यंग्य रचनाओं का प्रकाशन। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत; सन् २०१५ में पद्मश्री सम्मान से विभूषित। संप्रति : भोपाल के ख्यात नोबल अस्पताल में मेडीसिन के विभागाध्यक्ष।

जीवन भर सिफारिशों पर वह पलता और जीता रहा था। आज मर गया।

मरने से पहले बीमार भी रहा। बड़ा सीरियस था। तब भी, अस्पताल के पलंग पर पड़ा-पड़ा डॉक्टरों तक यहाँ-वहाँ से सिफारिशें पहुँचवाता रहा कि डॉक्टर साहब, इनका बढ़िया इलाज किया जाए और देखिएगा कि इन्हें कुछ होने न पाए। डॉक्टर हँसने लगा था। एम.एल.ए. की सिफारिश पर जान बच जाती तो फिर तो कोई मरता ही नहीं। फिर भी वह मरते-मरते भी सिफारिशों की कोशिश तो करता ही रहा। बीमारी गंभीर थी, सिफारिशी मर गया।

अब घर में अंतिम संस्कार के लिए शमशानघाट ले जाने की तैयारी चल रही है। बाल-बच्चे, रिश्तेदार, आसी-पड़ोसी, लाश पड़ी है सिफारिशी की, परंतु उसकी आत्मा को अभी भी चैन नहीं, दोनों बेटे नाकारा हैं। स्साले देखना बिना ठीकठाक सिफारिश का इंतजाम किए ही, मुझे उठाकर पहुँच जाएँगे श्मशान घाट। सिफारिशी को जीवन भर यही विश्वास रहा है कि इस दुनिया में सिफारिश के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसे तो उसका अंतिम संस्कार अटक जानेवाला है। 'अरे साहब, कौन पूछता है। ऐसे तो वहाँ बीसों लोग मर-मरा के पहुँच रहे हैं। पता नहीं कि शहर में आज कितनों की मौत हुई हो। वहाँ पहुँचे तो लाश को किनारे न धरवा दें कि अभी लाइन में लगो, आज बहुत से मुरदे फूँकने को आए हैं। फिर कहीं गीली लकड़ी न पकड़ा दें चिता के लिए तो अलग मुसीबत। ये लौंडे तो कुछ न करेंगे। उसे ही कुछ करना पड़ेगा।'

अपनी लाश को वहीं छोड़ सिफारिशी सीधे श्मशान घाट जा पहुँचा। जब तक घरवाले अरथी सजाकर यहाँ पहुँचें, तब तक कोई जुगाड़ जमाने की कोशिश क्यों न कर ली जाए! पकड़ते हैं किसी को। वह श्मशान घाट में घूमने लगा। सामने ही श्मशानघाट का चौकीदार दिख गया। जाकर नमस्कार की और सिफारिश जुटाने की कोशिश चालू कर दी। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद सिफारिशी अपने मतलब की बात पर आ गया।

'बॉस, लकड़ी का क्या भाव चल रहा है?'

चौकीदार ने भाव बताया। पूछा कि लाश नहीं लाए हो क्या? वजन के हिसाब से लकड़ी का सही-सही बता देता''

'वजन तो हमारे बराबर ही समझ लो''

चौकीदार ने उसे घूरकर देखा। अंदाजा लगाता रहा, बोला कि तीन मन के करीब तो लकड़ियाँ लग ही जाएँगी। सिफारिशी ने मन में गणना की और बोला, 'यार, तब तो लकड़ी में ही बहुत पैसे ठुक जाएँगे''इससे अच्छा तो था कि न ही मरते।'

'मरना-जीना कौना सा आदमी के हाथ में है भाई साहब?' चौकीदार फिलॉस्फीकल हो चला।

'सो तो है''पर पहले डॉक्टरों ने इतना खींच लिया और अब इधर लकड़ी में''

'नाम बता देते मरनेवाले का भाई साहब तो हम अभी से रजिस्टर में चढ़ा लेते और अरथी आने तक लकड़ियाँ तौल के डलवा भी देते''सूखी लकड़ियों का टोटा चल रहा है ना, तनिक ही बची हैं।'

'यार, तुम हमारा ही नाम लिख लो। आर.पी. श्रीवास्तौ! बढ़िया सूखी लकड़ियाँ बीन दो, फटाफट।'

'अपना नाम काहे लिखा रहे हो भाई साहब? जो मरा है, उसका बताओ न!'

'मान लो कि हम ही मरे हैं।'

'काहे मजाक कर रहे हैं भाई साहब? लगता है कि बहुत प्रेमभाव रहा है मरनेवाले से। चलिए, हमें क्या है, हम यही नाम चढ़ाए लेते हैं।'

'अच्छा यार, ये बताओ कि मान लो कि हम किसी से कहलवा दें, फोन-वोन करा दें तो क्या कुछ कम भाव नहीं लग जाएँगे लकड़ी के?'

'आप शर्माजी से कहलवा दें तो हम तो मुफ्त में डाल देंगे भाई साहब; शर्माजी तो श्मशान ट्रस्ट के मालिक जैसे हैं।'

'ये वाले शर्माजी वो तो नहीं, जो पिछली दफा एम.एल.ए. के लिए खड़े हुए थे? तब हम उनकी जीप में चढ़े-चढ़े घूमे थे। खुद वोट दिए थे

और कित्ते ही वोट गिरवाए थे हमने…'

'फिर क्या है, कहलवा दो न।'

'पर मरने के बाद काहे पूछेंगे शर्माजी। आगे तो हम वोट देने से रहे! अभी न सुनेंगे वे हमारी।' चौकीदार समझा नहीं कि वे क्या कह रहे हैं?

चौकीदार ने मानो कुछ भी कहने के लिए कहा, 'वैसे आप हैं श्रीवास्तो बामन होते तो शर्माजी, वैसेई…'

'सही कहा, हम बामन होते तो शर्माजी से यहाँ भी सारी लकड़ी मुफ्त ले लेते और पच्चीस-तीस किलो घर में डलवा लेते कि तेरहवीं पर हलवाई की भट्ठी में काम आ जाएगी। अपनी जात का आदमी सही जगह मिल जाए तो आधी सिफारिश तो ऐसे ही हो जाती है।'

चौकीदार चुप रहा।

'तुम्हीं कुछ हेल्प करो न यार!'

'हम क्या करेंगे भाई साहब? हम तो छोटे आदमी ठहरे।'

'अरे, ऐसा न कहो चौकीदार भी बड़ी पोस्ट होती है भैया। पूरे श्मशानघाट की देखभाल का बड़ा जिम्मा उठाए हो तुम। अरे, तुम चाहो तो पचास सौ किलो लकड़ी तो किसी तरफ भी कम-बढ़ गिरवा दो। और क्या! अरे तुमसे कौन पूछनेवाला है, है कि नहीं?' सिफारिशी चौकीदार को साधने लगा।

चौकीदार भी समझ गया कि बात किस दिशा में जा रही है।

'भाई साहब, यहाँ सब तरफ घूम रही आत्माएँ गवाह हैं। हमने एक लकड़ी की भी जो कभी हेराफेरी की हो तो जो सजा…'

'आपकी ईमानदारी की चर्चा तो हम भी खूब सुने हैं, पर अब मरनेवाले की आखिरी इच्छा ही मान के कुछ करा दो यार…' मरे हुए सिफारिशी की अंतिम इच्छा है कि चौकीदार थोड़ी-बहुत रिश्वत ले-लवाकर औने-पौने भाव में लकड़ी दे दे।'

बात पचास के नोट पर टूटी।

सिफारिशी लगभग मुफ्त में लकड़ी डलवाकर लौट गया। अब जाकर उसकी आत्मा को शांति मिली थी। फिर उसकी अरथी उठी। लाश के चेहरे पर परम संतोष था कि मरने पर भी जुगाड़ बिठा ही लिया।

किसी ने लाश को देखकर कहा, 'कितनी शांति है चेहरे पर!'

'पुण्यात्मा ठहरे!' किसी और ने कहा।

पुण्यात्मा कहने का ही रिवाज है। वरना कभी किसी सिफारिशी के चेहरे को देखिएगा, वहाँ भी इस लाश की तरह ही परमसंतोष के भाव रहते हैं।

सा अ

४०-ए, अलकापुरी
भोपाल-४६२०२४ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५६०४१०३

दोहे

बदल गए दस्तूर

● रामनिवास 'मानव'

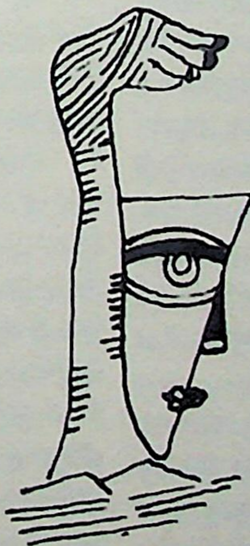
गली-मुहल्ले चुप सभी, घर-दरवाजे बंद।
कोरोना का भूत ही, घूम रहा स्वच्छंद॥

लावारिश लाशें कहीं, और कहीं ताबूत।
भीषण महाविनाश के, बिखरे पड़े सबूत॥

पड़े हाँफते सड़क पर, समृद्धि और विकास।
दुनिया को घेरे खड़े, शोक और रुआँस॥

महानगर या शहर हो, कस्बा हो या गाँव।
कोरोना के कोप से, ठिठके सबके पाँव॥

चीख-चीखकर आँकड़े, करते यही बखान।
मानव के अस्तित्व पर, भारी पड़ा वुहान॥



उड़ते थे आकाश में, करते थे उत्पात।
कोरोना ने दी बता, उन सबकी औकात॥

साधन कम खतरे बहुत, कठिन बड़े हालात।
देवपुत्र फिर भी जुटे, सेवा में दिन-रात॥

आस-पास सारे रहें, लगते फिर भी दूर।
पल में घर-परिवार के, बदल गए दस्तूर॥

कोरोना के दौर में, पुनः हुआ यह सिद्ध।
संकट में भी नोंचते, मानवता को गिद्ध॥

कोविड का प्रकोप कहीं, कहीं युद्ध का शोर।
साक्षी बना विनाश का, यह उन्मादी दौर॥

सा अ

५७१, सेक्टर-१, पार्ट-२
नारनौल-१२३००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ८०५३५४५६३२

खरबिरवा दवा

• मृदुला सिन्हा

उस दिन पुनः डॉक्टर, नर्स, पुलिस ऑफिसर, उस पंचायत के सदस्य और सरपंच तीन गाड़ियों और तीन मोटर साइकिल पर भरकर आए। गाँव की पक्की सड़क पर धूल उड़ाती आ रही उन वाहनों के पीछे गाँव के बच्चे भी उनके गति से प्रतियोगिता करते दौड़ रहे थे। कुछ महिलाएँ धीमी गति से उनके पीछे आ रही थीं। अधवैष पुरुष और गाँववालों में समाचार फैल चुका था कि मुखियाजी को जो बीमारी बताई जा रही है, उसमें कोरोना के लक्षण ही हैं। पिछले दिनों जब मुखियाजी न पंचायत भवन, न गाँव के अपने दो-तीन अड्डों पर दिख नहीं रहे थे, एक सरपंच महिला शोभा दूबे उनके घर, उनके घरवालों से मुखियाजी का अता-पता पूछने आई थी। उसने मुखिया शैलेंद्र यादव की पत्नी से पूछा, "मुखियाजी, कई दिनों से दिख नहीं रहें? कहीं बाहर गए हैं क्या?"

मुखियाजी की पत्नी ने आँगन में खटिया पर बैठी हुक्का पी रही, अपनी सास की ओर इशारा किया। इशारे की भाषा समझ गईं शोभा दूबे। वह था, "उनसे पूछिए। वही जानती हैं।"

शोभा दूबे का उस घर में निरंतर आना-जाना होता था। इसलिए वे जानती थी कि उस परिवार में बिना माताजी की आज्ञा के एक पत्ता भी नहीं हिलता था। वे आने-जानेवाले किसी हाकिम हुकुम को भी अपना ज्ञान देती रहती थीं। उनके ज्ञान की परिधि में बीमारी, राज-काज, सास-बहू संबंध से लेकर सारी लोकरीतियों के व्यवहार सम्मिलित थे। गाँव में मुंडन, उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार से लेकर किसी की मृत्यु पर भी संस्कार उनसे ही पूछकर होता था। राजपरी देवी उस गाँव के वंश वृक्ष में सबसे ऊपर स्थान रखती थीं। वे ज्यादातर बच्चों की परदादी ही थीं, इसलिए सब उन्हें 'दादी' कहकर ही पुकारते थे। मात्र दो पुरुष और चार स्त्रियाँ थीं, जो उन्हें 'चाची' कहकर पुकारतीं थीं। इस ऊँचे पद के तकाजा के अनुसार भी वे सबको सीख देती रहती थीं।

राजपरी देवी के पिता अपने इलाके के बड़े वैद्य थे। प्रातःकाल छह बजे से बीमार लोग उनके दरवाजे पर बैठने लगते। उसी समय से उनके दरवाजे के पीछे पाँच लोग दवाइयाँ कूटना प्रारंभ करते। इलाज कराने आनेवाले लोगों की भीड़ इसलिए भी बढ़ जाती, क्योंकि कोई भी मरीज अकेले नहीं आता था। स्त्री हो या पुरुष, उसके साथ एक या दो लोग उनके आत्मीय आते ही थे। दूर-दूर के गाँवों से भी मरीज आते थे। वैद्यजी


सुप्रसिद्ध कथाकार एवं समाजधर्मी। कहानी और उपन्यासों के अलावा मृदुलाजी बदलते भारतीय परिवेश में महिलाओं के समक्ष उपस्थित सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर निरंतर लिखती रही हैं। लगभग एक सौ पुस्तकों का लेखन। अनेक रचनाएँ मराठी और अंग्रेजी में भी अनूदित। 'पाँचवाँ स्तंभ' मासिक की संस्थापक संपादक। गोवा की पूर्व राज्यपाल।

को सुबह-सुबह नहाने-धोने, पूजा-पाठ करने में थोड़ी देर हो ही जाती, जबतक दरवाजे पर बैठे मरीजों के तीमारदारों के बीच घर-गृहस्थी, खेती-बाड़ी से लेकर गाँव, राज्य तथा राष्ट्रीय राजनीति पर भी चर्चा होती रहती। अकसर दो विचारधाराओं के बीच शब्दों से लेकर हाथापाई की नौबत आ जाती। राजपरी मिडल स्कूल में पढ़ती थी। उस दिन वह स्कूल नहीं गई थी। उसके पिता स्नान-ध्यान में लगे थे, दरवाजे पर शोर होने लगा। वह बाहर जाकर खड़ी हो गईं। थोड़ी देर दो गुटों में अभद्र शब्दों का आदान-प्रदान होते सुना।

वह उनकी द्वंद आवाज को मात देती हुईं उच्च स्वर में बोली, "आप लोग बाहर चले जाइए। पिताजी आपके मरीजों को नहीं देखेंगे।"

वातावरण में निस्तब्धता छा गई। सब एक-दूसरे की आँखों में अपनी आँखे डालकर पूछने लगे, "ऐसा हुक्म चलानेवाली यह कौन है?"

राजपरी को कोई नहीं पहचानता था। लेकिन उसकी आज्ञा सबने मान ली। इसी बीच वैद्यजी भी बाहर आ गए। उन्हें दरवाजे की शांति की छुअन से बड़ा आश्चर्य हुआ। एक कोने से दूसरे कोने तक नजर खिलाते देखते रहे। जो जहाँ था, वहीं बैठा रहा। वैद्यजी के पास आने की धरम-धकेली भी नहीं हुई। वह वहाँ तबतक खड़ी रही, जबतक एक-एक कर सभी वैद्यजी से अपना नब्ज पढ़वाकर पीछे की तरफ दवा लेने चले गए।

दोपहर का भोजन समय से कर रहे थे वैद्यजी। उन्होंने अपने आश्चर्य चिंतन की गाँठ भोजन परोस रही पत्नी के आगे खोली। पूछा, "आज तो आश्चर्यजनक बात हो गई। सब रोगी पंक्तिबद्ध होकर मेरे पास आते गए। अपनी बीमारी संबंधित चिरौरी भी नहीं की। मैंने परचे पर दवा लिखी और परचा लेकर वे औषधालय जाते रहे। इतना व्यवस्थित और शांत कभी नहीं रहा हमारा मरीज। स्कूल के बच्चों जैसे ही थे सारे मरीज। वैसी ही बनी

थी उनकी पंक्ति।"

पत्नी मुसकराती हुई बोली, "सामने बरामदे पर हेड मास्टरनी जो खड़ी थी, उसे देखकर वे शांत और व्यवस्थित कैसे नहीं होते?"

वैद्यजी की भृकुटी तन गई, "कौन हेडमास्टरनी?"

"अरे! अपनी राजपरी थी।"

"अच्छा। उसकी बात सबने मान ली!"

"इसकी बात नहीं। उसका इशारा मान लिया।"

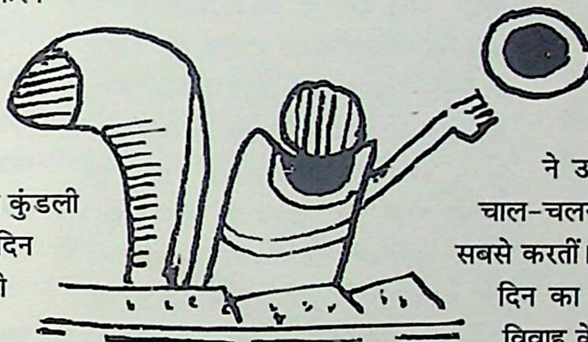
"अच्छा।"

वैद्यजी आश्चर्यचकित थे। उन्होंने रात्रि को अपनी पत्नी से कहा, "अपनी राजपरी को इसी काम पर लगा देते हैं।"

"क्यों, उसको पढ़ना-लिखना है कि नहीं?"

"पढ़-लिखकर भी क्या करेगी? उसे वैद्यगीरी ही पढ़ा लूँगा।"

उनकी पत्नी चुप रही। राजपरी ने पिता की बात मान ली और सुबह-सुबह रोगियों को व्यवस्थित कराने का काम करने लगी। वह औषधालय में जाकर औषधियों की मात्रा भी व्यवस्थित करती। पिताजी से जड़ी-बूटियों की पहचान सीखने लगी। कुछ-कुछ उनके गुण भी।



लेकिन थी तो लड़की की जात। उसकी कुंडली में पिता के साथ रहना कहाँ लिखा था! एक दिन पड़ोस के गाँव से एक सज्जन आए, उनकी रुपरेखा निरखकर सर्वप्रथम राजपरी ने ही उन्हें बाहरवाली कोठरी में बैठाया था। उन्होंने उससे उसका नाम पूछ लिया। सोमवार दिन था। आज का दिन वैद्यजी के लिए भी छुट्‌टी का दिन होता था। संभवत: यह ध्यान में रखकर ही वे सज्जन आए थे।

राजपरी ने अपने पिताजी को उस सज्जन के आने की सूचना दे दी। वैद्यजी उस कमरे में आकर उक्त सज्जन को पहचानने की चेष्टा करने लगे। सज्जन ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। अपना परिचय दिया। उक्त सज्जन श्रीप्रकाशजी ने बिना किसी भूमिका के कहा, "वैद्यजी। मेरा बड़ा बेटा मधुकर विवाह के योग्य हो गया। पढ़-लिखकर एम.ए. करने के बाद भी खेती-बाड़ी में ही मन लगाता है। ईश्वर की कृपा और हमारे बाप-दादा के कठिन परिश्रम और सूझ-बूझ से कृषि योग्य जमीन और बाग-बगीचे बहुत हैं। परिवार बैठकर खा ही नहीं सकता, अपनी सारी प्राथमिक आवश्यकताएँ भी पूरी कर सकता है। इनसे जितनी आमदनी होती है, उतना किसी आई.ए.एस. ऑफिसर की भी कमाई नहीं। मैंने भी बेटे से कहा, हमारे पूर्वजों ने तो "उत्तम खेती, मध्यम बाण, निसिद्ध चाकरी, भीख निदान' कहा है। तुम्हारा मन इस काम में लगता है, तो हमारे लिए इसमें बड़ी क्या बात होगी? तुम्हारे और छोटे तीन भाई हैं। उन्हें भी स्वयं जीविका का चुनाव करने दूँगा।"

वैद्यजी बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहे थे। पूछा, "आपकी तबियत तो ठीक है न?"

"बिल्कुल। अब तक कोई बीमारी नहीं लगी। मैं एक विशेष कार्य से आया हूँ। आज से सात वर्ष पूर्व मैं आपके पास अपनी पत्नी को लेकर आया था। उसी दिन आपकी बिटिया को देखा। कमाल की शक्ति दी है ईश्वर ने उसे। उम्र भी ११-१२ वर्ष की होगी। उसने कैसे नियंत्रित कर लिया था भीड़ को! मुझे बहुत सुखद आश्चर्य हुआ। मेरी पत्नी को आपकी बिटिया तभी भा गई थी। बेटा तब कम उम्र का ही था। कुछ दिनों से जब उसके विवाह की चर्चा होने लगी है, पत्नी ने आपकी बिटिया की याद दिलाई। मैं इसीलिए चला आया हूँ। आपकी बिटिया भी तो ब्याहने योग्य हो गई।"

वैद्यजी के मुख पर हर्ष का भाव छलक आया था। पत्नी और इकलौती संतान राजपरी से राय-विचार करना आवश्यक था। उन्होंने दो-तीन दिन की मोहलत माँगी। श्रीप्रकाशजी को नाश्ता-पानी कराकर वापस भेज दिया। उन्हें विदा करने वैद्यजी स्वयं कुछ दूर तक गए। इस बीच दोनों ने एक-दूसरे से उनके परिवार के बारे में पूछताछ कर ली।

राजपरी ब्याह कर श्रीप्रकाशजी की बहू और रामकुमार की पत्नी बन गई। सास ने उसका स्वागत बड़े अह्लाद से किया। बहू के चाल-चलन, व्यवहार और घरेलू कार्य दक्षता की चर्चा सबसे करतीं। ससुराल की रीत भी सिखातीं, लेकिन अधिक दिन का बहू-सुख उनके नसीब में नहीं था। बेटे के विवाह के एक वर्ष बाद ही स्वर्ग सिधार गईं।

राजपरी के कुशल गृहिणी होने की खूशबू गाँव में फैलती रही। गाँव की लड़कियाँ उसके पास आकर सिलाई, कटाई, बुनाई और भोजन बनाना भी सीखती थीं। वे ही राजपरी के स्वभाव, शील और गुणों की प्रचारिकाएँ बन गईं।

दिन बीतते कहाँ देर लगती है! रामकुमार बड़े मन ध्यान से खेती करवा रहा है। राज्य सरकार से हर वर्ष उसे खेती कार्य के लिए पुरस्कार मिलता। राजपरी पति के काम में भी मदद करती। राजपरी विवाह के छह वर्ष बाद माँ बननेवाली थी। नौ माह पूरे होने पर एक सुंदर-सलोने बेटे ने जन्म लिया। उसके बाद हर दो वर्ष बाद तीन बच्चे हुए। दो बेटे, एक बेटी। उन्हें भी बढ़ते कहाँ देर लगी। बड़ा बेटा मधुकर पिता पर गया था। पढ़-लिखकर भी खेती करना उसे भी भा गया। संस्कारी था ही। उसका विवाह भी पड़ोस के एक अच्छे परिवार में हुआ। बहू घर-परिवार का काम देखने लगी। राजपरी पोता-पोती की सेवा। तीनों बच्चे ब्याह लिये गए।

राजपरी की उम्र ढलने लगी, मन नहीं। मन का साहस बरकरार था। एक दिन दरवाजे पर गाँव के लोग आकर उसके बेटे मधुकर का मान-मनौवल कर रहे थे। उसने अपने छोटे बेटे नीरज से पूछा, "गाँववाले क्या कह रहे हैं?"

"माँ! वे लोग चाहते हैं कि भैया मुखिया के लिए चुनाव लड़ें।" थोड़ी देर के लिए राजपरी अपने मन में मुखिया के पद को तौलने लगी।

नीरज से बोली, "ठीक तो है। खेती-बाड़ी के साथ गाँववालों की सेवा भी करेगा।"

गाँववालों के आग्रह और माँ के आशीष से मधुकर मुखिया बन गए। भारी मतों से जीत हुई थी। गाँववालों ने ही बड़ा जश्न मनाया। पंचायत का कार्य ठीक ढंग से चल रहा था। उपज के क्षेत्र में ही अगुआ होने के कारण उस पंचायत को दो बार राजकीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इस बार भी धान की फसल बहुत अच्छी हुई थी। गाँव के सभी खेतों में लहलहाती धान की बालियों को देख-देखकर सभी किसानों के दिल में पुनः पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा जागृत् हुई थी। अचानक एक भयंकर बीमारी के फैलने की खबर आ गई। शहर, जिला, राज्य और देश में ही नहीं, विश्वभर में इस महामारी ने पर फैला लिए। राजपरी का अधिकांश समय टेलीविजन के आगे ही बीतता। समाचार सुनती, गुनती और गाँव में लोगों को बीमारी से बचने के उपाय बताती। अपने आँगनवाले चूल्हे पर गिलोय, अदरक, तुलसी, हल्दी के साथ और भी कई चीजें मिलाकर बड़े पीतल के पतीले में काढ़ा बनता रहता। आने-जानेवालों को पिलाती, उसका गुण बताती नहीं थकती थी राजपरी।

एक दिन अपने बड़े बेटे मधुकर, जो मुखियाजी के नाम से ही जाने जाते थे, को छींकते और खाँसते हुए सुना राजपरी ने। सिर पर हाथ रखकर देखा, जल रहा था सिर᠁राजपरी ने छूत की बीमारीवाले मरीज को रखने के लिए एक कमरा अलग रख छोड़ा था। वह था भी आँगन के अंतिम छोर पर। उसकी साफ-सफाई करवाई। कच्ची फर्श को गोबर से लिपवाया। खाट धुलवाई। दिन भर उस कमरे की व्यवस्था में एक पुरुष और एक महिला सेवाधारी को लगाए रखा। सायंकाल मुखियाजी को उस कमरे में सुलाया। घर के एक-एक सदस्य को समझाकर कहा, "किसी के पूछने पर मुखियाजी के बारे में कुछ नहीं बताना है। वे कहाँ गए, कहाँ हैं, कुछ नहीं। कोई जानने की जिद्द करे तो मेरे पास भेज दो।

एक दिन अपने बड़े मधुकर, जो मुखियाजी के नाम से ही जाने जाए लगे थे, को छींकते और खाँसते हुए सुना राजपरी ने। सिर पर हाथ रखकर देखा, जल रहा था सिर...राजपरी ने छूत की बीमारीवाले मरीज को रखने के लिए एक कमरा अलग रख छोड़ा था। वह था भी आँगन के अंतिम छोर पर। उसकी साफ-सफाई करवाई। कच्ची फर्श को गोबर से लिपवाया। खाट धुलवाई। दिन भर उस कमरे की व्यवस्था में एक पुरुश और एक महिला सेवाधारी को लगाए रखी। सायंकाल मुखियाजी को उस कमरे में सुलाया। घर के एक-एक सदस्य को समझाकर कहा, "किसी के पूछने पर मुखियाजी के बारे में कुछ नहीं बताना है। वे कहाँ गए, कहाँ हैं, कुछ नहीं। कोई जानने की जिद्द करे तो मेरे पास भेज दो।"

"और हाँ! एक बात और गाँठ बाँध लो। उसके कमरे में कोई नहीं जाएगा। इसकी घरवाली भी नहीं और तुम लोग अपने आँचल और गमछे से ही नाक-मुँह ढँककर रखो। बाहरवालों को भी घर-आँगन में नहीं आने दो।" सबने ध्यान से सुना और राजपरी की बात न मानने का सवाल ही नहीं उठता था।

तीन दिन ही बीते थे। गाँव में हल्ला हो गया, मुखियाजी कहीं चले गए। अव्वल तो इस खबर पर किसी को विश्वास ही नहीं हुआ। कुछ लोगों ने अवश्य आशा जताई, "कोरोना की बीमारी में गाँववाले बीमारों के लिए इंतजाम, उनकी दवा की देखरेख करते, ऊपर से दिन में तीन बार आते पुलिसवालों और डॉक्टरों को इंतजाम की जानकारियाँ देते-देते थक गए होंगे। किसी रिश्तेदारी में गए होंगे आराम करने।" जितने लोग उतनी अटकलें। अंत में मुखियाजी के घर में साफ-सफाई करनेवाली भूलनी ने किसी एक को यह कहकर सच्चाई बता दी कि किसी और को नहीं बताना, तुम्हें मेरी कसम, "मुखियाजी अपने घर में ही हैं। माताजी स्वयं सेवा करती हैं। काढ़ा पिलाती हैं। कुछ जड़ी-बूटी पीसकर भी देती हैं।"

भूलनी से सुननेवाली ने किसी और को, "किसी और को नहीं बताना," तुम्हें मेरी कसम, कहकर मुखियाजी के बारे में बता दिया। फिर क्या था! शाम होते-होते समाचार फैल गया कि मुखियाजी को कोरोना हुआ है और वे अपने घर में ही माताजी के संरक्षण में हैं।

दूसरी सुबह ही पुलिस, डॉक्टर, नर्स एक सरकारी गाड़ी भरकर मुखियाजी के दरवाजे पर जम गए। पुलिस ने दरवाजे पर बैठे घर के दो नौजवानों से पूछा, "मुखियाजी कहाँ हैं?"

"हमें नहीं मालूम। हमारी दादी से पूछिए।"

"दादी कहाँ है? बुलाओ उन्हें।"

वे बाहर नहीं आएँगी। आप में से कोई एक जाइए। आँगन में बैठकर हुक्का पी रही हैं।"

दारोगाजी अंदर गए। राजपरी के कानों में जूते की खटर-पटर सुनाई दे रही थी। दारोगा ने उनके पास जाकर पूछा, "मुखियाजी कहाँ है?"

"जहाँ रहना चाहिए।" राजपरी ने बिना उसकी ओर देखे जवाब दिया।

"क्या मतलब? वे कोरोना पीड़ित हैं न?"

"मुझे नहीं मालूम। कोरोना पीड़ित हैं कि मलेरिया पीड़ित! मैं डॉक्टर तो नहीं हूँ।"

"हमारे साथ डॉक्टर भी आए हैं। हम उनकी जाँच करेंगे।"

"नहीं। अब जाँच की जरूरत नहीं है। वह ठीक हो रहा है।"

"आप कैसे कह सकती हैं? यह तो डॉक्टर ही बता सकता है।"

"मैं भी वैद्य की बेटी हूँ। मैंने जब वैद्यगीरी सीखी, तुममें से किसी का जन्म भी नहीं हुआ था, तब से अपने बड़े परिवार में किसी के बीमार पड़ने पर डॉक्टर के पास नहीं ले गई। चार दिन तो केवल गरम पानी पर रखती रही। फिर वार्ली या कोई फल। शरीर से बिल्कुल बीमारी के निकल जाने पर ही अन्न खाने के लिए देती थी। सर्दी, बुखार की तो बात छोड़ दो, मेरे घर में किसी को हैजा, किसी को चेचक जैसी बीमारियाँ भी हुई, सब मेरे इलाज से ठीक हुए। झाड़-फूँक करनेवालों को भी बुला लेती थी। इसी बेटे को छोटी माता हो गई थीं। केवल नीम की पत्तियों से बदन सहलाती

रही। बिना हलदी का सादा भोजन देती थी। दो माली को बुलाकर मैया का भजन जरूर सुनवाती थी।

"ठीक हो गया। इस बार के मुखिया को मात्र सर्दी, खाँसी और थोड़ा बुखार हुआ। सब ठीक हो जाएगा। आप लोग जाइए। गाँववालों को देखिए।"

उन सबों की जिद्द, राजपरी की जिद्द के आगे पानी भरने लगी। वे चले गए।

राजपरी मुखियाजी के कमरे में गई। मुखियाजी ने कहा, "माँ! कम-से-कम डॉक्टर और नर्स को तो जाँच करने देतीं।"

"ना बाबा ना। घर जैसा वातावरण कहाँ मिलेगा अस्पताल में! सुना है, बेड नहीं रहने के कारण जमीन पर सुलाया है मरीजों को। किसी-किसी अस्पताल में तो चार शव पड़े हुए हैं। मैं कहती हूँ कि अस्पताल ही बीमारी फैलाने का सबसे बड़ा स्थान है। तभी तो डॉक्टर, नर्स और पुलिसवाले भी संक्रमित हो रहे हैं। सरकार को चाहिए कि जाँच में कोरोना पाने पर मरीज को घरों में ही रखें। घरवालों को हिदायतें दें।"

मुखियाजी की अपनी माँ के आगे एक न चलती थी। हर समस्या के निदान की उनकी अपनी दलीलें थीं। इतना ही नहीं, गाँव में किसी महामारी से जूझनेवालों की पूरी फेहरिश्त थी उनके पास। कितनों को उनकी खरबिरवा दवाओं ने बचा लिया था।

तीसरे दिन भी डॉक्टर और नर्स आईं। उन्होंने थोड़े कड़े शब्दों में कहा, "इस बीमारी से पीड़ित किसी को घर में बंद रखना जुर्म है, आपको सजा भी मिल सकती है।"

"प्रधानमंत्री तो डॉक्टर, नर्स, पुलिसवालों को सलाम करने के लिए कह रहे हैं। उनको कोरोना वॉरियर कह रहे हैं। मैं तो डॉक्टर, नर्स और पुलिस तीनों की भूमिका निभा रही हूँ। आप सबको मुझे सलाम कहना चाहिए। प्रति शाम घंटी, शंख और थाली भी बजाती हूँ। इनसे भी बीमारी के कीटाणु मरते हैं। देखो! क़मरे की दीवारों पर नीम की नन्हीं डालियाँ टाँग रखी हूँ।"

थोड़ा थमकर बोलीं, "मैं स्कूल, कॉलेज में नहीं पढ़ी तो क्या, चिकित्सा मेरा पैतृक ज्ञान है।"

डॉक्टर और नर्स बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहे थे। माताजी हलदी, अजवाइन, गिलोय, एलोवेरा और अदरक से किए गए इलाज का प्रसंग सुनाती रहीं।

उन्होंने कहा, "गाय का घी, दूध, मूत्र, गोबर सब दवाएँ हैं। इनका महत्त्व जाननेवाले उपयोग करते-कराते हैं। बीमारियाँ छूट भी जाती हैं। सरसों के तेल का सेवन भी गुणकारी है। एक बात और जान लो, मेरी उम्र अस्सी की हो गई। मुझे कभी कोई बीमारी छू तक नहीं पाई। मैं प्रतिदिन सरसों का तेल मलकर नहाती हूँ, सादा भोजन करती हूँ। रात्रि को सोने के पहले तलवे और पाँव के नाखूनों में सरसों के तेल मलती हूँ। नाभि और नाक के दोनों छिद्रों में बूँद-बूँदभर तेल डालकर सोती हूँ। अपने घर के सभी बच्चों और समाज से ऐसा ही करवाती हूँ। सूर्य की धूप का सेवन हर मौसम में करती-करवाती हूँ। गरम पानी ही पीती-पिलाती हूँ। क्या ये सब मेरा जुर्म है? किसी भी जज को बुला लाओ। मेरी दिनचर्या बता दो। उसके बाद मेरे लिए सजा सुनाने के लिए कहो, मैं सजा भुगत लूँगी।"

"ये बातें तो ठीक हैं। लेकिन आप मरीज को हमें देखने तो दीजिए।"

"ठीक है, दो दिन बाद आ जाना।"

इस बार जब सेवाधारियों की टीम दरवाजे पर आई, मुखियाजी सुबह-सुबह नहा-धोकर आँगन में ही बैठे थे। नर्स अंदर आकर देख गई। राजपरीजी से पूछकर डॉक्टर को भी अंदर बुला लाई।

डॉक्टर ने मुखियाजी को भला-चंगा देखकर पूछा, "क्या आपकी जाँच कर लें?"

मुखियाजी ने कहा, "क्या मैं आपको बीमार दीख रहा हूँ? मेरी माँ ने खरबिरवा दवा से ही मुझे ठीक कर दिया।"

"ये खरबिरवा दवा क्या होती है?"

"जो प्रकृति में उपलब्ध है। पत्ती, फूल, जड़, छाल, दूब, तुलसी और भी अनेकानेक प्राकृतिक चीजें। गिलोय, एलोवेरा और अश्वगंधा का नाम अब सब जान गया, इनसे बीमारियाँ जड़ से समाप्त होती है। व्यक्ति पूर्णरुपेण स्वस्थ हो जाता है। आपको जाँच करनी ही है तो कर लीजिए।"

डॉक्टर खुश हुए। मुखियाजी की जाँच हुई। दूसरे दिन खबर आई- "मुखियाजी की जाँच में कोरोना निगेटिव तो है ही, उनकी इम्यून शक्ति भी बहुत मजबूत है।"

बात यहीं तक समाप्त नहीं हुई। जिलास्तर पर ऐसे लोगों को सम्मानित करने का कार्यक्रम बनाया गया। पत्र राजपरी देवी को भी आया। मुखियाजी उन्हें लेकर शहर गए। राजपरी देवी का पहला नाम था। उन्हें एक कुरसी पर बैठा दिया गया। स्वास्थ्य-मंत्री सम्मानित करने के लिए उठे।

राजपरी देवी भी उठीं। माइक हाथ में लेकर बोलीं, "मंत्रीजी! सर्वप्रथम मुझे वचन दो कि जैसे मैंने अपने बेटे की बीमारी छुड़ाई है, वैसे ही जनता में प्रचार करोगे। झूठ-मूठ का इलाज का लाम-काफ करते हो। इतना खर्च करने की जरूरत नहीं है। मेरा कहा मानोगे, तभी मुझे सम्मानित करो। सम्मान किसी व्यक्ति का नहीं, उसके विचार और काम का होता है। मेरे पिताजी कहते थे, भारत जैसे देश में इलाज सस्ता होना चाहिए। प्रकृति में सारी दवाइयाँ भरी पड़ी हैं, उनका इस्तेमाल करो।"

मंत्री के साथ-साथ सभी उपस्थित जन ध्यान से सुन रहे थे राजपरी को।

राजपरी सोच रही थी, वह सम्मान उसे नहीं, उसके पिता का सम्मान है। हिंदुस्तानी पद्धति से इलाज का सम्मान है। तालियाँ देर तक बजती रहीं। डॉक्टर, नर्स और पुलिस ने भी तालियाँ बजाना बंद किया ही नहीं। मानो खरबिरवा दवा की खोज में निकले हों। वैक्सीन मिले, न मिले, जड़ी-बूटियाँ तो मिल गईं।

सा अ

पी.टी.-६२/२०
कालकाजी, नई दिल्ली

भारतीय भाषाओं और साहित्य में समरसता और एकात्मता के सूत्र

कुमुद शर्मा



लेखिका समीक्षक, मीडिया विशेषज्ञ और स्त्री विमर्शकार। स्त्री विमर्श और मीडिया पुस्तकों पर भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, साहित्यश्री सम्मान, बालमुकुंद गुप्त साहित्य सम्मान तथा प्रेमचंद्र रचनात्मक सम्मान से सम्मानित। 'साहित्य अमृत' की पूर्व संयुक्त संपादक। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर तथा निदेशक, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

हमारे देश के मूल स्वभाव में सहिष्णुता और समन्वयात्मकता है। भारतीय जीवन-दर्शन मुक्त भाव से आत्मीयता की पुकार लगानेवाला, सबको आत्मसात् कर लेनेवाला दर्शन है। उसकी सर्वसमावेशी दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मूल मंत्र से जुड़ी हुई है। जिसमें 'अहिंसा परमो धर्म', 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' जैसे मानव मूल्य सन्निहित हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में विविधता तथा अनेकता में जो एकत्व है, उसकी अनुभूति हमारे विविध भारतीय भाषाओं के रचनाकार कराते रहे हैं।

भारतीय रचनात्मकता के लंबे इतिहास में विविध भारतीय भाषाओं और साहित्य में समरसता और एकात्मता के संधान का सूत्र हमारा सांस्कृतिक बोध है। एक समग्र अखंडित और संपूर्ण चेतना की संवाहिका भारतीय संस्कृति की जीवनधारा समूचे भारतीय साहित्य में समाहित है। हम अलग-अलग प्रांतों में बसते हैं, हमारे खान-पान, हमारी बोली, हमारी वेशभूषा में भिन्नता है, लेकिन हम सब अपने देश की महान् और जीवंत परंपराओं से, अपने देश के गौरवशाली इतिहास से, अपने पौराणिक और सांस्कृतिक मिथकों से और स्मृतियों से एक जैसा जुड़ाव महसूस करते हैं। इन सबसे हमारा एक ही जैसे ही नाता है, इसीलिए विभिन्न प्रांतों और जातियों के वैशिष्ट्य के बावजूद एक केंद्रीय जीवन दृष्टि के समग्रता बोध ने साहित्य के फलक पर भारतीयता के स्वरों की संवाद चेतना को निरंतर जीवंत बनाए रखा। भारतीय रचनाकारों की आत्मसजगता सांस्कृतिक अनुभवों से पुष्ट हैं। जहाँ परंपरा और स्मृति के असंख्य सूत्र समाविष्ट हैं। इतिहास, मिथक और संस्कृति की जमीन पर भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य की सृजनात्मकता अपना वैशिष्ट्य निरूपित करती है।

हमारे सांस्कृतिक बोध में, हमारे जीवन दर्शन में समरसता और एकात्मता के सूत्र बिखरे पड़े हैं। इन्हीं सूत्रों से भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य नैतिक संवेदन और मानवीय विवेक के बिंदुओं का स्पर्श करते हुए हमें जाग्रत् करता है। बराबर संकेत करता चलता है कि तुम यहाँ कहाँ गलत हो, यहाँ सही हो।

भाषाओं के बीच एकात्मता का महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि भारतीय भाषाओं का उद्गम संस्कृत से हुआ है। हमारे चिंतक भारतीय भाषाओं में एकात्मता का कारण उनके 'मूल सांस्कृतिक संस्कारों' को मानते हैं, जिनकी निर्मिति में संस्कृत की केंद्रीय भूमिका रही है—"चिंतन, तत्त्वज्ञान और दर्शन के क्षेत्रों में संस्कृत एक जीवंत माध्यम के रूप में भारतीय भाषा के साहित्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पोषित करती रही। विभिन्न भारतीय भाषाओं के भीतर एक ही सांस्कृतिक धारा प्रवहमान होती रही।" (निर्मल वर्मा)

यह ध्यान आकर्षित करनेवाली बात है कि सभ्यताओं का इतिहास लिखनेवाले विश्व प्रसिद्ध अमेरिकी इतिहासकार, चिंतक विल ड्यूरेंट संस्कृत और उससे निःस्पृत संस्कृति के प्रति कैसी कृतज्ञता व्यक्त की है— "India was the motherland of our race. And Sanskrit the mother of Europe's languages: she was the mother of our philosophy; mother, through the Arabs, of much of our mathematics; mother through the Budha, of the ideals embodied in Christianity; mother, through the village community, of self government and democracy. Mothe India is in many ways the mother mother of us all."

इस संदर्भ में ब्रिटेन के विश्व प्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेन की भावना को भी देखा जाना चाहिए—"India is the cradle of the human race, birthplace of human speech, mother of history, grandmother of legend and the great grandmother of traditions. Our most valuable and instructive materials in the history of man are treasured up in India only."

इन दोनों विश्व प्रसिद्ध चिंतकों, लेखकों के इन उदाहरणों को यहाँ प्रस्तुत करने की खास वजह है। हिंदुस्तान में प्रचलन यह हो गया है कि

जो संस्कृति की बात करता है, उसे प्रतिगामी या प्रतिक्रियावादी कह दिया जाता है। इन उदाहरणों को पढ़कर समझा जा सकता है कि ये किसी भावुक भारतीय के दावे नहीं हैं। समूची दुनिया में यह माननेवालों की कमी नहीं है कि जितने भी अच्छे मूल्य हैं, मानवीय दर्शन है, उसकी जननी संस्कृत और भारत है।

हमारे भाषा वैज्ञानिक मानते आए हैं कि भारत केवल बहुभाषी देश ही नहीं है, वरन् उसके पास 'समुन्नत साहित्यिक' भाषाएँ भी हैं—"जिस प्रकार भारतीय भाषाएँ अपनी रूप रचना में भिन्न होते हुए भी आर्थी संरचना में समरूप हैं। उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि अपने जातीय इतिहास, सामजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यिक संरचना के संदर्भ में भारतीय साहित्य एक है, भले ही वह विभिन्न भाषाओं के अभिव्यक्ति माध्यम द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।"

संस्कृत से जनमी प्रांतीय भाषाओं ने अपनी विकास यात्रा की कहानी अपने-अपने तरीके से लिखी है, उनका अपना-अपना वैशिष्ट्य भी है, लेकिन सारी भारतीय भाषाओं का मूल स्वभाव, उनका मूल चरित्र एक ही है। है। सभी भारतीय भाषाओं ने सृजनात्मक स्रोतों की तलाश में वेद, पुराण, उपनिषदों की तरफ दृष्टि दौड़ाई है। हमारी सांस्कृतिक प्रक्रिया में मानवीय, सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकारों की, जो उद्भावना है, उसी से भारतीय साहित्य जुड़ा हुआ है। सामयिक जीवन की जटिल स्थितियों में समरसता और एकात्मता की भूमि तलाशता है। विविध भारतीय भाषाएँ में रचित भारतीय साहित्य अपने मूल स्वभाव में परस्पर ऐसी 'मानवीय साहचर्य' प्रणाली में विश्वास व्यक्त करता आया है, जिस साहचर्य प्रणाली में मनुष्य ही नहीं प्रकृति भी हमारी सहचर बनकर आती है। विदेशी मूल्यों की तरह हम प्रकृति का शोषण नहीं करते, उसके उपभोक्ता नहीं बनते, बल्कि सहयात्री बनते हैं।

'समता' हमारे संविधान का केंद्रीय तत्त्व है। संविधान में समता के परिपार्श्वों को खोलते हुए सभी को समानता का अधिकार प्राप्त है। समता का अधिकार तो दे दिया गया, लेकिन संविधान के मनुष्य और व्यावहारिक स्तर पर जीनेवाले मनुष्य के बीच फासला बना रहा, यानी संवैधानिक मूल्यों को हम व्यावहारिक स्तर पर उतार नहीं पाए। व्यावहारिक स्तर पर समरसता की बात की जाए तो कहना पड़ेगा कि समता लाने के लिए समरसता लाना जरूरी है। कोई यह दावा भी नहीं कर सकता कि समता होने पर समरसता आ ही जाएगी, लेकिन स्वस्थ समाज की परिकल्पना के लिए समरसता की भावना जरूरी है।

वैश्विक स्तर पर मानवता का पाठ अगर कोई पढ़ा सकता है तो वह है भारतीय संस्कृति और साहित्य को एक सांस्कृतिक कर्म माननेवाले रचनाकार। जो सृष्टि में चर-चराचर के बीच समरसता का भाव लिये आनंद की मनोभूमि को सींचते हैं, फिर इस आनंद में डूबकर शब्दों में इस तरह अभिव्यक्त होते हैं—

'समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार घना था
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।'

जयशंकर प्रसाद की कृति 'कामायनी' की इन पंक्तियों में जैसे—हमारी भारतीय आत्मा की, हमारी जीवन पद्धति की, हमारे चिंतन की, हमारे सांस्कृतिबोध के संगीत की धुन बज उठती है। जो हमें बार-बार स्मरण कराती है कि हम अखंड भाव से जीनेवाले लोग हैं। समग्रता-बोध में जीते हैं। जीवन को समग्रता में स्वीकार करनेवाले लोग हैं। समरसता और प्राणी मात्र के बीच ही नहीं संपूर्ण प्रकति के बीच, संपूर्ण सृष्टि में देखते हैं। इस लोक में प्रकृति भी हमारी सहयात्री है।

साहचर्य प्रणाली में समरसता और एकात्मता के भाव की पोषक है। समरसता के बारे में कहा जाता है—"जब हम इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि मैं और पर का व्यर्थ है, मन आनंद में लीन होकर समरस हो गया है। तब इस स्थिति को समरसता कहते हैं।" सरल शब्दों में समरस को इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है कि द्वैत भावना की समाप्ति पर समरसता के धरातल पर आनंद की प्राप्ति होती है।

'समता' हमारे संविधान का केंद्रीय तत्त्व है। संविधान में समता के परिपार्श्वों को खोलते हुए सभी को समानता का अधिकार प्राप्त है। समता का अधिकार तो दे दिया गया, लेकिन संविधान के मनुष्य और व्यावहारिक स्तर पर जीनेवाले मनुष्य के बीच फासला बना रहा, यानी संवैधानिक मूल्यों को हम व्यावहारिक स्तर पर उतार नहीं पाए। व्यावहारिक स्तर पर समरसता की बात की जाए तो कहना पड़ेगा कि समता लाने के लिए समरसता लाना जरूरी है। कोई यह दावा भी नहीं कर सकता कि समता होने पर समरसता आ ही जाएगी, लेकिन स्वस्थ समाज की परिकल्पना के लिए समरसता की भावना जरूरी है। समरसता एक ऐसा भावतत्त्व है, जिसमें बंधुत्व पर बल रहता है। बाबा साहेब आंबेडकर का कहना था कि बंधुता यही स्वतंत्रता और समता का आश्वासन है। समरसता की स्थिति में सभी को अपने समान समझते हैं।

सामाजिक समरसता की अवधारणा भी है, जिसका अभिप्रेत है कि समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य सौहार्द हो, सबको न्याय मिले, समावेशीकरण (social inclusion)। दरअसल सामाजिक समरसता की मूल भावना यही है कि समाज में परस्पर एक-दूसरे के प्रति प्रेम, सौहार्द, सम्मान और समानता का व्यवहार हो। समाज में जाति, लिंग और वर्ग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। हर व्यक्ति गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। हमारे संविधान की मूल भावना भी यही है।

सामाजिक समरसता का संबंध केवल छुआछूत या जाति के प्रश्नों से ही नहीं रह गया है, बल्कि आज पीड़ित, वंचित, उपेक्षित तबका फिर चाहे वह स्त्री हो, दिव्यांग या अशिक्षित हो उन्हें भी मुख्यधारा में कैसे लाया जाया, उनके प्रति समान व्यवहार की साहचर्य प्रणालियों को कैसे

विकसित किया जाए ये प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों और धर्मों के लोग अपनी-अपनी आस्थाओं, अपने-अपने विश्वासों को जीते हुए भी साहचर्य प्रणाली में समरसता की भावभूमि पर कैसे अवस्थित हों? परिवार और राष्ट्र को समाजशास्त्रियों ने हमारे चिंतकों ने साहचर्य प्रणाली के सबसे सशक्त रूप में देखा है। एकात्मता मानव समाज में परस्पर सामंजस्य को व्यक्त करनेवाला भाव है। जहाँ संपूर्ण समाज एकरस हो।

इस दृष्टि से समूचे भारतीय साहित्य में भक्तिकालीन संतों का स्वर आज भी भाषा और काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर एकात्मकता के स्वरों से विभेद और वैमनस्य की दीवारों को ढहाने के लिए समरसता की स्वर लहरियों से प्रेरित करता है। वर्ण व्यवस्था में जब जड़ता ओर विसंगति आने लगी, तब भक्तिकाल में प्रश्न उठाए गए। हर भाषा के रचनाकारों ने अपनी-अपनी भाषा और अपनी-अपनी शैली में वर्ण व्यवस्था और जाति के प्रश्नों को भारतीय चिंतनधारा से जुड़कर उठाना शुरू किया। अपनी शैली, अपनी भाषा, वेशभूषा, खान-पान, जैसी विभिन्नताएँ के बीच मानव मात्र की एकात्मकता की प्रेरणा को जगाया। नानक जब कहते हैं—'कीरत करो, नाम जपो, वांद छकों' तो यह आश्चर्यजनक रूप से वेदों की शिक्षा है, जो सारे भारतीय संतों में है। भारतीय संतों का मूल है—'सत्य, अहिंसा और वैश्विक परिवार।' कबीर, दादू, नानक, नामदेव, रैदास ने सामाजिक स्तर भेद मिटाने के लिए प्रयत्न किए। वंचित, पीड़ित, दलित के उत्थान के लिए उनमें आत्मविश्वास भरते हुए उन्हें उठाने और जाग्रत् करने की कोशिशें की। 'एक ज्योति से सब उत्पन्ना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा' जैसे स्वरों से हिंदी साहित्य के फलक पर सामाजिक समरसता का पर्याय बन गए कबीर हैं तो तेलुगू साहित्य के पास ऐसे ही स्वरों से सामाजिक स्तर भेद का विरोध करनेवाले पास संत वेमना हैं। इन्हें आंध्र प्रदेश का कबीर कहा जाता है। सिंधी साहित्य में साईं झूलेलाल, संत सादाराम तथा संत फकीर दरवेश हैं। कबीर अगर 'दुर्बल को न सताइए' कहकर पीड़ित, वंचित के पक्ष में खडे हैं तो सिंधी के 'संत फकीर दरवेश' दुलराइ जी नगरीअ वॉगुर नास दी वेंदे' कहते हुए उनके पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। कबीर के साथ महाराष्ट्र के तुकाराम भी समरसता और सौहार्द के भावों की जुगलबंदी करते हैं। कबीर की तरह विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों ने समरसता का पाठ पढ़ाया। संत रविदास को तो समाजिक समरसता का पर्याय ही माना जाता है। अपने भजनों से जाति और वर्ण व्यवस्था पर चोट करते हुए उन्होंने सदाचार, समाजिक हित और परोपकार जैसे गुणों से समरसता की सीख दी। रैदास भेदभाव रहित ऐसे राज की कल्पना करते हैं, जहाँ सभी की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी हो, सभी को रोटी, कपड़ा और मकान मिले। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भेद समाप्त हो—

"ऐसा चाहों राज, जहाँ मिले सबन को अन्न। छोट बड़ों सभ सम बसैं, रैदास रहे प्रसन्न।"

ओडिशा के संतकवि दासिया वाउरी, बंगाल के चैतन्य, असम के शंकरदेव ने साहित्यक और सामजिक दृष्टि से कबीर और नानक की भाँति अपने व्यक्तिगत प्रयासों से समाजिक समरसता लाने के लिए यात्राओं के कई दौर चलाए। संकल्प और निष्ठा के साथ गैर-बराबरी के ढाँचे को समाप्त कर समाज को समरस बनाने की कोशिश की। कश्मीर की संत लल्लेश्वरी ने भी इसी दृष्टि से संपन्न रचनाएँ दी। संघर्षात्मक परिप्रेक्ष्य को प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य बनाकर समाज को किस तरह सहयोग, समन्वय और सांमजस्य की आधारशिला पर चलाया जा सकता है, इसके लिए भारतीय संत साहित्य ने अपने वाणी द्वारा पाठशाला चलाई।

ओडिशा के संतकवि दासिया वाउरी, बंगाल के चैतन्य, असम के शंकरदेव ने साहित्यक और सामजिक दृष्टि से कबीर और नानक की भाँति अपने व्यक्तिगत प्रयासों से समाजिक समरसता लाने के लिए यात्राओं के कई दौर चलाए। संकल्प और निष्ठा के साथ गैर-बराबरी के ढाँचे को समाप्त कर समाज को समरस बनाने की कोशिश की। कश्मीर की संत लल्लेश्वरी ने भी इसी दृष्टि से संपन्न रचनाएँ दी। संघर्षात्मक परिप्रेक्ष्य को प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य बनाकर समाज को किस तरह सहयोग, समन्वय और सांमजस्य की आधारशिला पर चलाया जा सकता है, इसके लिए भारतीय संत साहित्य ने अपने वाणी द्वारा पाठशाला चलाई।

हिंदी में तुलसी का रामचरितमानस मानव-मूल्यों की रोशनी में समरसता के अध्याय रचता है, राम का शबरी के झूठे बेर खाने का प्रतीक, भरत के द्वारा 'निषाद राज को गले लगाने' का प्रसंग अपने आप में समरसता की गूढ़ व्यंजना की ही अभिव्यक्ति है। इसी तरह तेलुगू के रचनाकार रंगनाथ अपनी 'रंगनाथ रामायण' में भारतीय जीवन मूल्यों की आचार संहिता रचते हैं। तेलुगू में स्त्री रचनाकार मोल्ला ने 'मोल्लारामायण' लिखकर में लोकभाषा में रामायण का प्रणयन किया और समरसता की मनोभूमि पर रामराज्य के आदर्शों की ही आधारशिला रखी।

यह कम आश्चर्यचकित कर देने वाली बात नहीं है कि मुसलिम कवियों ने हिंदू देवी-देवताओं के प्रतीकों में भक्ति का रसपान कराया। हिंदी कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा की कृष्ण भक्ति के तानाबाने में स्त्री-विमर्श के सूत्र तलाशते हुए विद्रोह और विरोध के स्वर देखे जा सकते हैं। तमिल में कृष्णभक्ति परंपरा में आण्डाल है, जो मीरा के निकट हैं। आण्डाल मीरा के इस भजन की संगत करती है

'मेरी उनकी प्रीत पुरानी उन बिन पल न रहाऊँ।'

मीरा और आण्डाल दोनों ही साहित्य में स्त्री चेतना को ऐसे मोड़ पर ले आती हैं, जहाँ स्त्री के जीवन जीने में चयन का अधिकार उसके पास हो। भक्तिकालीन भारतीय साहित्य के संदर्भ में यह भी विचारणीय है कि स्त्री अस्मिता, दलित अस्मिता के प्रश्न जो उत्तरआधुनिकता जीवन में विविध कोणों से, विविध परिपार्श्वों से उठाए जा रहे हैं। उस समय के साहित्य में भी अस्तित्व में रहे हैं।

भक्तिकाल में विभिन्न भारतीय भाषाओं में भक्ति की धारा समरसता और एकात्मता की जमीन पर उर्वर बनी रही। भक्तिकालीन साहित्य किसी भी भारतीय भाषाओं का हो वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन खड़ा कर देता है।

आजादी के आंदोलन में विविध भारतीय भाषाओं में अद्‍भुत एकात्मता देखने को मिली सबने अपने अपने सृजनात्मक फलक पर में राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह किया। हिंदी मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' तमिल में सुब्रह्मण्यम भारती की 'पांचाली शपदम' गहरे राष्ट्रीय बोध से जुड़ी हुई कृतियाँ हैं। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने 'आनंद मठ' उपन्यास और 'वंदे मातरम्' गीत रचना कर राष्ट्रीय चेतना का के ज्वार को जन-जन तक पहुँचाया। रवींद्रनाथ ठाकुर ने १९०५ के बंग-भंग के विरोध में रक्षाबंधन के त्योहार को भाईचारे के संदेश का प्रतीक बनाकर 'मातृभूमि वंदना' कविता लिखी। तेलुगू में गुरजाड़ा अप्पाराव ने 'सारंगधर', 'पूर्णम्म' लिखकर राष्ट्रबोध का परिचय दिया। तमिलनाडु में सुब्रह्मण्यम भारती ने अपनी कृतियों और अपने व्यवहार से सामाजिक समरसता का प्रतिमान खड़ा किया। टी.वी. कल्याण सुंदरम का नाम भी इसी श्रेणी में है। कन्नड़ में कवि वेटगिरि कृष्णमूर्ति 'गांधी गीत सप्तक' जैसी रचनाएँ देकर गांधीजी के नेतृत्व में विश्वास व्यक्ति करते हुए राष्ट्रबोध का संचार किया। कन्नड़ के ही रचनाकार कनकदास ने 'मोहन तरंगिणी' में विजयनगर की समृद्धि का वर्णन से अतीत के गौरव का गान कर राष्ट्रीय चेतना को जगाया।

मराठी साहित्य में हरिभाऊ के नाम से प्रसिद्ध हरिनारायण आपटे ने भी अपनी कृतियों से राष्ट्र जागरण में अवदान दिया। पंजाबी के लोक साहित्य की भूमिका भी अविस्मरणीय है—

'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा पगड़ी सँभाल ओए
हिंद है मदर तेरा तू इस दा पुजारी ओए'

आधुनिक काल के रचनाकारों ने यथार्थवाद की नींव को सशक्त करते हुए सामजिक विद्रूपताओं और समस्याओं को चित्रित किया। ऐसे यथार्थबोध को अभिव्यक्ति किया, जिसे उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव और सामजिक प्रामाणिकता के बीच पाया। उन्होंने साहित्य को केवल समाज का दर्पण ही नहीं बनाया, बल्कि एक सही, संतुलित भाव दृष्टि को भी उसमें निरूपित किया। सामाजिक समरसता के लिए पाठक की चेतना में प्रेम, सद्‍भाव और सौहार्द जैसे भावों के उद्रेक के लिए साहित्य की अंतर्धारा में स्वस्थ जीवन-दृष्टि का विवेक भरा। किसानों की समस्या को भारतीय साहित्य में गहरी संवेदनशीलता के साथ उठाया गया। हिंदी में मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और बाद में किसान की समस्या को प्रेमचंद ने बड़े मार्मिक ढंग से उठाया। मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, सनेही स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में किसान को नायकत्व प्रदान कर रहे थे, क्योंकि स्वाधीनता आंदोलन में नए नायक की संभावना पैदा हो गई थी, नायक वही हो सकता था, जो संघर्ष को वहन कर सकता हो। ये रचनाकार किसान की समस्याओं को भी चित्रित कर रहे थे और उसी में नायकत्व की संभावनाओं को भी ढूँढ़ रहे थे। हिंदी में प्रेमचंद बड़ी गंभीरता से किसान समस्या को उठाते हैं, उड़िया साहित्य में किसानों की समस्या को उठाया फकीर मोहन सेनापति ने। उन्होंने किसान समस्या पर उपन्यास लिखकर किसान समस्या को मानवीय दृष्टिकोण से देखा। जिन्हें उड़िया साहित्य के प्रेमचंद ही कहा जाता है। व्यास कवि की उपाधि दी गई थी (ओड़िया साहित्य और संस्कृति, सं. अजय कुमार पटनायक, पृ. ८९)। तेलुगू के रचनाकार उन्नलक्ष्मीनारायण का उपन्यास 'मालापल्ली' पढ़िए तो गोदान का किसान होरी वहाँ भी मौजूद है। सभी रचनाकार पाठक की चेतना में मानवीय सरोकारों को जगाकर सामाजिक समरसता की प्रेरणा देते हैं। समाज को समरस बनाने की कोशिश में मानवीय सरोकार, राजनीतिक सरोकार वहीं है, जो प्रेमचंद के हैं।

आज अस्मितामूलक विमर्शों के दौर में दलित अस्मिता, स्त्री अस्मिता और आदिवासी अस्मिता से जुड़ा विविध भाषाओं के रचनाकारों का कथ्य लगभग एक जैसा है। हिंदी के ओमप्रकाश वाल्मीकि के उपन्यास 'जूठन' की तरह तेलुगू उपन्यासकार मुप्पाल्ला रंगनायकम्मा का उपन्यास 'बलिपीठम्' जाति भेद की दीवारों को मिटाकर समरसता की प्रेरणा देनेवाला उपन्यास है।

इस तरह विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य समान संवादधर्मिता से रचा गया है। संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित जिन भाषाओं का उल्लेख है, उनमें रचित साहित्य का अध्ययन अन्वेषण निश्चित ही इस तथ्य को प्रामाणित करेगा कि ऐतिहासिक क्रम में आए बदलावों के साथ इनमें एक जैसे बदलाव आए। अपने देश के साथ विविध भारतीय भाषाओं के रचनाकारों के भावों का रिश्ता एक जैसा ही रहा।

आज भी सामाजिक, मानवीय और राष्ट्रीय सरोकारों को अपनी रचनाधर्मिता का अभिन्न हिस्सा मानने वाले विविध भारतीय भाषाओं के रचनाकारों की चिंताएँ एक जैसी है, उनके सरोकार एक जैसे हैं। उनकी निष्ठाएँ एक जैसी हैं। भाषा के जरिए मनुष्यत्व को बचा लेने की जिद भी एक जैसी है। भाषा और साहित्य दोनों का प्रयोजन सबको एक स्वस्थ साझेदारी के लिए तैयार करना होना चाहिए। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों की सोच में सांस्कृतिक साझेदारी की उत्कंठा बनी रहे। सब परस्पर अपनी संवाद चेतना में समान भाव से हम समरसता और एकात्मता के भाव का संवर्द्धन करते रहे। साथ ही समभाव से राष्ट्र के सांस्कृतिक एकत्व की अवधारणा को सुदृढ़ करें।

आज जरूरत इस बात की है कि हम विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में निहित दार्शनिक विवृत्तियों को खोलें, उसकी केंद्रीय संवेदनाओं को, मूल्यपरक अनुभव सत्ता का विश्लेषण करें। उनमें निहित एक समान सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अप्रतिम उदाहरणों से समझने की कोशिश करें और जाने कि हमारी विविधता प्रकृतिजन्य है, वह केवल परिधि पर है, केंद्र-स्थल तो एक ही है।

सा
अ

१८८ नेशनल मीडिया सेंटर
NH-८, गुरुग्राम-१२२००२
दूरभाष : ९८११७१९८९८

ढल रहा है दिन

● रामदरश मिश्र



हिंदी के मूर्धन्य कवि-साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने रचनात्मक अवदान से समृद्ध किया है। 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों की धूम रही। कविता-संग्रह 'आम के पत्ते' 'व्यास सम्मान' से अलंकृत। इसके अतिरिक्त भी अनेक विशिष्ट सम्मान प्राप्त।

फूल

दोस्त,
तुम फूल की बात बहुत करते हो
किंतु फूल को जानते भी हो?
तुम्हारे लिए तो फूल
बटन-होल में सजाने की चीज है
काश,
ऊपर-ऊपर देखनेवाली आँखें
देख पातीं कि फूल
रूप-रस-गंध के लिए
धरती की अँधेरी परतों में जूझनेवाला
एक नन्हा सा बीज है।

स्पर्श

बबूल की टहनियाँ हिल रही हैं
काँप रही हैं पत्तियाँ
सरोवर का जल थरथरा रहा है
धान की फसल के सागर में
लहर-पर-लहर फिसल रही है
यानी कि ठंडी पुरवा हवा चल रही है।
प्रतीक्षा में हूँ
कि अभी मुझमें भर जाएगा
उसका ठंडा-ठंडा स्पर्श
लेकिन बीच में शीशे की दीवार है
और इस बंजारन हवा को क्या पड़ी है
कि शीशे के अंदर झाँके
वह मचलती हुई पास से निकल जाती है
खेतों के बीच कब से खड़ी है गाड़ी
ए.सी. डिब्बे में कैदी सा बैठा हूँ
ठंडी हवा तो अंदर भी है
लेकिन वह भी कैद है
मेरे साथ डिब्बे में
मैं खिड़की के शीशे से बाहर
हवा को देख रहा हूँ
और तरस रहा हूँ
उसके एक ठंडे स्पर्श को।

ढल रहा है दिन

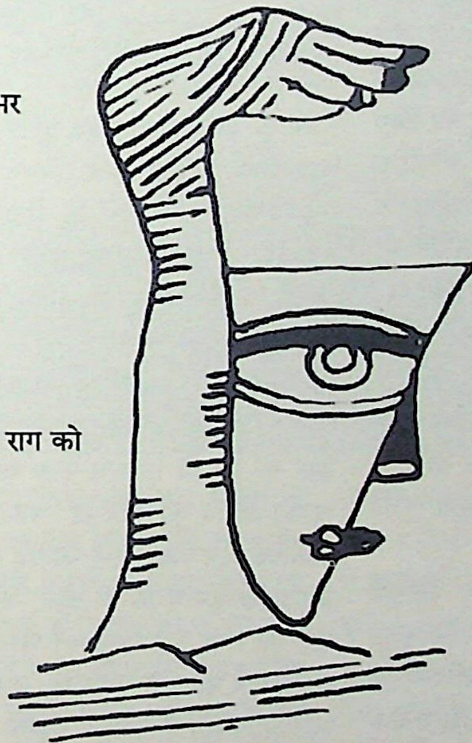
ढल रहा है दिन
धूप मंद पड़ती जा रही है
और रगों में उतर रही है ठंडे अँधेरे की आहट
आँखों में बुझती जा रही हैं
रंग-बिरंगे फूलों की आभाएँ
थोड़ी देर में शाम आएगी
और थके-हारे लोग
दहशत भरी चुप्पियों में डूब जाएँगे
सामने पड़ी होगी लंबी ठंडी रात
मौत की घाटी की तरह।
लेकिन कैसे हैं पंछी
जो दिन उगते समय भी गाते हैं, चहचहाते हैं
उड़ते चले जाते हैं पंखों पर धूप बिछाए हुए
जीवन के अनंत विस्तारों में
और दिन डूबने के समय भी
गाते हैं, चहचहाते हैं
उत्सव मनाते हैं
फिर चुपके से उतर जाते हैं रात की घाटी में।

नदियाँ

नदियाँ उमंग से बहती जाती हैं
सागर से मिलन का सपना लिये हुए
नदियों का वह संगीत
जो फसलों, पेड़ों, पंछियों, मनुष्यों के
बीच से गुजरता था, उन्हें गुंजित करता हुआ
वह तटों पर सिर पटकते समुद्र के शोर में
मिल जाता है
नदियाँ हमारी माँ हैं
सौंदर्य हैं, पूजा हैं, संगीत हैं, उत्सव हैं
उनका अस्तित्व गाँव की जिंदगी है
लेकिन जब वे सागर में मिल जाती हैं
तब फैल जाती हैं इस दिशा से उस दिशा तक
खारा जल बनकर
वे किसी और की क्या प्यास बुझाएँगी
खुद ही प्यासी-प्यासी फिरती हैं
कितना दुःखद होता है
महान् में मिलकर अपना अस्तित्व खो देना!

एक पंछी

बहुत दिनों बाद आज उस घर में आया
जिसके कमरों की खिड़कियाँ दोनों ओर खुली थीं
और दूर-दूर तक खड़े थे छोटे-बड़े पेड़
आज बहुत दिनों बाद खुली खिड़की के पास सोया
बादल बरसते रहे
उनका झर-झर संगीत पेड़ों से छन-छनकर
इस खिड़की से आता रहा
उस खिड़की से निकल जाता रहा
मुझे भिगोता हुआ
एक पंछी जिसका नाम नहीं जानता
रात भर विचित्र वायलित स्वर में बोलता रहा
रह-रहकर
न जाने उस स्वर में क्या था
मिलने का उल्लास था
कि वियोग का दर्द था
कि मौसम का स्वागत था
कि भीगने की अनुभूति थी
वह स्वर मेरी चेतना में तिरता रहा रात भर
मेरी नींद में उतरता रहा रात भर
फिर दिन को भी वही स्वर
मैं उसे नहीं जानता
हरियाली में डूबे उस पंछी को
कभी देखा भी नहीं
लेकिन क्यों लगता है कि
'वह' मेरा बहुत अपना है
उसने छेड़ दिया है मेरे भीतर के आदिम राग को
और मैं लगातार बज रहा हूँ
सुख में, दु:ख में
लगता है, वह मैं ही हूँ
जो न जाने कब से
रंगीन पत्थरों की भीड़ में खो गया था
जो अपने ही भीतर
अपने से अलग होकर सो गया था।



बादल कवि है

बादल समुद्र का खारा जल लेकर
उड़ते हैं आकाश में
और उसे अपनेपन के स्पर्श से मीठा कर देते हैं
फिर वह जल बरसाते हैं, यहाँ से वहाँ तक
प्यासी धरती हरी-भरी और गीतमय हो जाती है
मनुष्य, पशु, पक्षी सभी में
यह जल जीवन बन जाता है
बादल नदियों के द्वारा वह जल
सागर को लौटा देते हैं
और खुद खाली हो जाते हैं
सच्चे कवि हैं ये बादल।

बाग में

बाग में आम, महुआ, कटहल पुष्पित होकर
बावरे हो गए थे
उनकी खुशबुएँ एक-दूसरे में समाकर
मत्त कर रही थीं आसपास के अवकाश को
बाग के एक कोने में
पंद्रह-बीस बाँसों की एक कोठी थी
बाग के पेड़ों ने मुसकराकर उनसे व्यंग्य से कहा,
"वसंत आ गया है, किंतु तुम लोग मनहूस से खड़े हो
न फूलना, न फलना, हमेशा ठूँठ बने रहना।"
तभी कहीं से उठकर
बाँसुरी की रागिनी फैल गई चारों ओर
और बाग की खुशबुओं का स्वर बन गई
बाग बोला—
"कहाँ से आ रही है यह मादक धुन"
बाँस मुसकराए
और उनका मुखिया बोला—
"वह झोंपड़ी देख रहे हो न!
हमसे बनी है
और हम उसमें भरे हुए हैं तरह-तरह के सामान बनकर
और यह स्वर जो गूँज रहा है, हमारा ही है
न जाने कब से गूँजता आ रहा है
घरों में, खेतों में, बाग-बगीचों में
दिन को, रात को
और उन स्वरों में
कृष्ण की साँसों की महक समाई हुई है
तुम लोग तो कल इस तरह नहीं रहोगे
लेकिन हम तो लोगों को घर देते रहेंगे
और उसमें बजते रहेंगे
वसंत का उल्लास
और पावस का दर्द बनकर।"

सा अ

आर-३८, वाणी विहार
उत्तम नगर, नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ७३०३१०५२९९

श्रीराम के भारत का भूमिपूजन

• प्रदीप कुमार राव



सुप्रसिद्ध लेखक एवं संस्कृति-विचारक। अब तक कुल बारह पुस्तकें प्रकाशित, नौ पुस्तकों का संपादन, तेईस शोध-पत्र भी। नाथपंथ एवं भारतीय संस्कृति पर विशेष अध्ययन 'हिंदवी' के पूर्व संपादक, 'योगवाणी' के प्रबंध संपादक; विमर्श एवं मानविकी, अंतः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका के संपादक। संप्रति : महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर में प्राचार्य।

५ अगस्त, २०२० भावी भारत की आधारशिला रखे जाने की तिथि है। यह तिथि इक्कीसवीं सदी के 'भव्य-भारत : दिव्य भारत' के पुनर्निर्माण के उद्घोष की तिथि है। यह तिथि प्रतीक है—वैश्विक मंच पर 'सबका साथ-सबका विकास' मंत्र अर्थात 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' की सुस्थापना का। सनातन भारतीय संस्कृति के युगानुकूल आधुनिक स्वरूप की पुनर्प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, समर्थ-समृद्ध भारत, संस्कार और सामर्थ्य युक्त नवोदित भारतीय समाज के उन्नतोन्मुख होने, मर्यादाओं के साथ उनके आत्मसातीकरण की इक्कीसवीं सदी में प्रस्थान बिंदु की तिथि है। यह तिथि नर से नारायण बनने की लोक-यात्रा, समरस-सामूहिक जीवन-पद्धति की स्वीकारोक्ति, लोक-कल्याण मार्ग की श्रेष्ठता के अंगीकार-भाव, अतीत को वर्तमान से जोड़कर बेहतर भविष्य निर्माण की आधारशिला रखने की तिथि है। शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परोपकार, क्षमा, दया, समता, वैराग्य, संतोष, दान, बुद्धि, विज्ञान, निर्मल एवं अचल मन-यम-नियम-अहिंसा-आस्था जैसे गुणों से युक्त नागरिकों के समाज-निर्माण की दिशा में भारत के पदचाप को सुनने की तिथि है। और अंततः रामराज्य की पुनर्स्थापना के प्रतीक श्रीराम मंदिर के भूमि-पूजन की तिथि है। भावी राष्ट्र-मंदिर के पुनर्निर्माण के भूमि-पूजन की तिथि है।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक एवं 'धर्म' के साक्षात् प्रतिमूर्ति मर्यादापुरुषोत्तम की जन्मभूमि पर बननेवाले भव्य मंदिर का भूमि-पूजन भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा किया जाना सामान्य घटना नहीं है। पंथनिरपेक्ष संविधान की शपथ लेकर भारतीय लोकतंत्र के प्रतीक संसद् की चौखट पर माथा टेकनेवाले प्रधानमंत्री का मर्यादापुरुषोत्तम 'श्रीराम' के समक्ष साष्टांग होना मात्र अपने ईष्ट का अभिवादन नहीं हो सकता, वह भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता के प्रतीक के समक्ष राम-राज्य की स्थापना की संकल्प-सिद्धि की प्रतिबद्धता का प्रतीक था, अपनी गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत पर भावी भव्य भारत के नवनिर्माण के यात्रा-पथ का चुंबन था; वह प्रतीक था मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के समक्ष भारत-माता की गोद में लेटकर प्रतिज्ञाबद्ध होने का।

भारत के इस यशस्वी प्रधानमंत्री ने श्रीराम मंदिर निर्माण के भूमि पूजन के बाद भारत सहित दुनिया के समक्ष दो टूक शब्दों में कह दिया कि श्रीराम का देश अब श्रीराम के पद-चिह्न पर चल पड़ा है। उन्होंने एक-एक कर 'श्रीराम' के आदर्शों पर भारत के आगे बढ़ने की दिशा का बोध करा दिया। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने जब अपना उद्बोधन 'रामकाजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम' से प्रारंभ किया, तो 'श्रीराम' को जानने-समझनेवाले भारत सहित दुनिया के करोड़ों लोग यह समझ रहे थे कि भारत अपने सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के बल पर लोक-कल्याणकारी राज्य की पुनर्स्थापना के साथ अपनी तरफ निगाह उठानेवाले देशों को उनकी लक्ष्मण-रेखा बताने को तैयार हो चुका है। 'रामकाजु' अर्थात् श्रीराम का कार्य तो 'राम-राज्य' की स्थापना एवं उसके मार्ग की आंतरिक एवं बाह्य सभी बाधाएँ दूर करना है। इस अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री श्रीराम की ही नीति 'भय बिनु होइ न प्रीति' का उल्लेख करना नहीं भूले। यह उद्घोषणा नए अभ्युदित भारत का स्वर था, इक्कीसवीं सदी में नवोदित भारत का स्वर था, समर्थ-सशक्त-आत्मनिर्भर हो रहे भारत का स्वर था, भारत के यशस्वी नेतृत्व का स्वर था और सब मिलाकर 'श्रीराम' के भारत का स्वर था।

श्रीरामजन्मभूमि पर भव्य श्रीराम मंदिर निर्माण के भूमि-पूजन के अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहन भागवत और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री गोरक्षपीठाधीश्वर महंत योगी आदित्यनाथजी महाराज समवेत स्वर से इस समारोह को यदि 'राष्ट्र-मंदिर' के भूमि-पूजन का समारोह कह रहे थे, तो उसका स्पष्ट निहितार्थ था। श्रीरामजन्मभूमि आंदोलन, उसके स्वरूप और उसके परिणाम से इसे समझा जा सकता है।

सन् १९४७ में खंडित भारत आजाद हुआ। 'हिंदू-मुसलमान दो राष्ट्र हैं' के सिद्धांत पर भारत का बँटवारा हुआ। पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) एवं पश्चिमी पाकिस्तान (पाकिस्तान) जैसे अवैज्ञानिक विभाजन के बाद भारत ने पंथनिरपेक्ष राष्ट्र के अपने अतीत के वैचारिक अधिष्ठान पर ही आगे बढ़ने का निर्णय किया। दुर्भाग्यवश आजाद भारत का राजनीतिक नेतृत्व सत्ता-केंद्रित होता गया। स्वतंत्रता संग्राम की अगुवा कांग्रेस पर 'एक परिवार' का कब्जा हो गया। सत्ता प्राप्त करने के लिए 'वोट-बैंक' की राजनीति को इसलामिक तुष्टीकरण का ऐसा रोग लगा कि भारत में 'हिंदू' एवं भारतीय संस्कृति को सांप्रदायिक और कट्टर इसलामी सांप्रदायिकता को 'धर्मनिरपेक्ष' घोषित कर दिया गया। भारतीय राजनीति 'मुसलिम वोट बैंक' की गिरवी हो गई। इसलाम के नाम पर पाकिस्तान-बांग्लादेश देकर भी भारत में 'हिंदू' अपमानित, अधिकारविहीन और इसलामिक आतंकवाद का शिकार होने लगा। हिंदुओं के संविधान विरुद्ध धर्म-परिवर्तन पर सरकार का मौन, किंतु गो-वध पर रोक लगाने की शांतिप्रिय ढंग से माँग करनेवाले संत-महात्माओं पर गोली चलवाने के आदेश विस्मयकारी थे। अपने ही देश में 'जम्मू-कश्मीर' एक नए पाकिस्तान के रूप में पाला जाने लगा।



भारत की राजनीति एवं शिक्षा-व्यवस्था पर हिंदू समाज एवं भारतीय संस्कृति को गाली देनेवालों का वर्चस्व बढ़ता गया। कांग्रेस ने राजनीति पर तथा वामपंथियों ने देश के शिक्षण-प्रशिक्षण प्रतिष्ठानों पर समझौतापूर्वक अधिकार कर लिया। स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारियों को आतंकवादी पढ़ाया जाना, भारतीय समाज की आस्था का मजाक बनाना, भारत-विरोधी इतिहास लेखन, भारतीय संस्कृति को भावी पीढ़ी के समक्ष अत्यंत पिछड़े-पोंगापंथी रूप में प्रस्तुत करना भारत में बुद्धिजीवी एवं अकादमिक होने की शर्त बन गया। जो भारत एवं भारतीय संस्कृति को जितना अपमानित करे, उसे उतनी अधिक प्रतिष्ठा मिलना सुनिश्चित किया गया। अस्सी के दशक तक भारत के सभी सरकारी बौद्धिक-वैचारिक-शैक्षिक संस्थान वामपंथियों के भारत-विरोधी वैचारिक आतंकवाद के शिकार हो गए। इन विषम परिस्थितियों में भारत की जनता को संगठित करना, उन्हें वास्तविकता से परिचित कराना और देश पर कब्जा कर चुके स्वार्थी-भ्रष्टाचारी नेतृत्व एवं मार्क्स और माओत्से-तुंग के नाम पर रूस-चीन के पालतू वामपंथियों के षड्यंत्रकारी हाथों से भारत को बचाना एक बड़ी चुनौती थी।

भारतीय संस्कृति के उपासक विविध प्रयत्न कर थक चुके थे। राजनीतिक विकल्प दे पाना असंभव लगने लगा था। विश्व-मानवता के लिए योग्य मार्गदर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति से आप्लावित भारत-राष्ट्र को खड़ा करने का स्वप्न लेकर सन् १९२५ से सेवा-साधना के बल पर अनवरत कार्य कर रहे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सन् १९८४ में राष्ट्र-रक्षा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की शरण में माथा टेक दिया। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजन्मभूमि पर भव्य मंदिर निर्माण को राष्ट्र-मंदिर निर्माण का प्रतीक बनाया गया। श्रीराम एक ऐसा नाम था जिस पर पूरा भारत खड़ा हो सकता था। 'श्रीराम' भारतीय समाज के सर्वमान्य आराध्य देव के रूप में मान्य हैं। श्रीराम भारतीय संस्कृति के प्रतीक तो हैं ही, वे भारतीय समाज के आस्था के केंद्रबिंदु है। 'श्रीराम' का जीवन भारतीय संस्कृति का साक्षात् प्रतिमान है। वे साक्षात् धर्म के विग्रह हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 'श्रीराम' के हाथ में ही राष्ट्र-रक्षा के संघर्ष की कमान सौंपकर निष्काम भाव से कार्य प्रारंभ किया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तपस्वी प्रचारक विश्व हिंदू परिषद् के नेतृत्व में इस अभियान के हिस्सा बने। अशोक सिंहल जैसे तपस्वी प्रचारक को विहिप का दायित्व मिला। देश के साधु-संत भी राष्ट्र-रक्षा अभियान में भगवान् श्रीराम के भव्य मंदिर निर्माण हेतु आगे आए। दिगंबर अखाड़ा के महंत परमहंस रामचंद्र दास, गोरक्षपीठाधीश्वर महंत अवेद्यनाथजी महाराज एवं मणिराम छावनी के महंत नृत्य गोपालदासजी महाराज ने देश भर के साधु-संतों को जोड़ने का दायित्व सँभाला। राजनीति में सक्रिय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में 'राजनीति' के मोर्चे पर थे। अंततः श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन ने दुनिया के सबसे बड़े जनांदोलन का इतिहास बनाया। श्रीरामजन्मभूमि पर खड़ा ढाँचा भारतीय राजनीति के पाखंड का, विकृत धर्मनिरपेक्षता का, मुसलिम तुष्टीकरण का और भारतीय संस्कृति के विरोधी स्वरों का प्रतीक बन गया। ६ दिसंबर, १९९२ को भारत की जनता ने बेनकाब हो चुके इस प्रतीकात्मक ढाँचे को ध्वस्त कर दिया। ६ दिसंबर को भारतीय राजनीति के विकृत धर्मनिरपेक्षता का ढाँचा ध्वस्त हुआ, भारतीय राजनीति के पाखंड का ढाँचा गिरा दिया गया, मुसलिम तुष्टीकरण की राजनीति का ढाँचा गिरा, वामपंथ के वैचारिक क्रांतिकारियों के भ्रम का ढाँचा ढह गया। इस प्रतीकात्मक ढाँचे के ढहने के साथ ही भारत-माता के राष्ट्र-मंदिर के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज को झकझोरकर

एक साथ खड़ा कर दिया। इस आंदोलन ने हिंदू समाज के सभी पंथ-विचार के लोगों को एक मंच पर एकत्रित कर दिया। संन्यासियों-साधु-संतों-महंतों को अपने-अपने इष्टोपासना के साथ-साथ राष्ट्रोपासना का मंत्र पढ़ा दिया। खतरे में पड़ी राष्ट्रीय अस्मिता का बोध करा दिया। इस आंदोलन ने भारत का राजनीतिक प्रतिमान बदल दिया। 'हिंदू वोट बैंक' की अवधारणा को काल्पनिक माननेवाले हाशिए पर चले गए। अनेक उठा-पटक के बाद श्रीरामजन्म भूमि मुक्ति आंदोलन की परिणति सन् २०१४ में श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में 'हिंदुत्व और राष्ट्रीयता' के मुद्दे पर आजाद भारत में पहली बार एक दल की पूर्ण बहुमत की गैर-कांग्रेसी सरकार के रूप में हुई। सामाजिक जागरण के साथ राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर इस आंदोलन ने एक नए भारत की विकास-यात्रा का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा-सरकार पहली बार सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद पर दृढ़ता से आगे बढ़ी। मोदी-सरकार टुकड़े-टुकड़े गैंग तथा पुरस्कार वापसी गैंग जैसे विविध प्रतिरोधों की परवाह किए बिना एक-एक कर अपने एजेंडे लागू करती रही। सन् २०१७ के उत्तर प्रदेश के चुनाव में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और मजबूत होकर निखरा। श्री नरेंद्र मोदी ने जातिवादी राजनीति की प्रयोगशाला बन चुके उत्तर प्रदेश के चुनाव में हिंदुत्व के प्रखर समर्थक भगवा वस्त्रधारी महंत योगी आदित्यनाथ को चुनाव-प्रचार में उतारकर बड़े बहुमत से उत्तर प्रदेश में न केवल सरकार बनाई, अपितु सरकार की बागडोर उसी हिंदू संन्यासी को सौंप दी। भारतीय राजनीति के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का रंग और चटक हो गया।

उल्लेखनीय है कि महंत योगी आदित्यनाथ उसी श्रीगोरक्षपीठ के पीठाधिपति एवं महंत हैं, जिसके पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन महंत अवेद्यनाथ श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति के आजीवन अध्यक्ष रहे। सन् १९४८ में श्रीरामजन्मभूमि पर 'रामलला के प्राकट्य' में महंत योगी आदित्यनाथ के ही दादागुरु महंत दिग्विजयनाथ की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। महंत योगी आदित्यनाथ के उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनने पर दुनिया भौंचक थी। राजनीति के पंडितों का गणित गड़बड़ा चुका था। मोदी सरकार भारतीय राजनीति के नए प्रतिमान गढ़ने में एक कदम और आगे बढ़ चुकी थी। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और मजबूत होकर निखरा। दुनिया के समक्ष यह प्रमाणित हो गया कि हिंदू संन्यासी लोक-कल्याण-पथ का पथिक होता है। उसका जीवन मानव-मात्र के कल्याण तक ही नहीं अपितु चर-अचर सभी के कल्याण को समर्पित होता है। योगी आदित्यनाथ के रूप में मोदी-सरकार ने 'हिंदुत्व' और 'राष्ट्रीयता' की वैश्विक-ब्रांडिंग की। आज दुनिया देख रही है कि हिंदू जीवन-दृष्टि से किसी को खतरा नहीं अपितु वह 'सबका-साथ सबका विकास' तथा सबके कल्याण का वाहक है।

मोदी सरकार को उसके 'हिंदुत्व एवं विकास' के एजेंडे पर २०१९ में दूसरी बार पूर्व से अधिक बहुमत के साथ भारत की जनता ने नेतृत्व सौंप दिया। माना जाता है कि तीन-तलाक से मुक्त मुसलिम महिलाओं का भी समर्थन मोदी-सरकार को प्राप्त हुआ। श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन से प्रारंभ भारतीय राजनीति में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भारत की जनता का यह समर्थन इस बात का स्पष्ट उद्घोष था कि अब रामराज्य स्थापित करने के पक्ष में भारत की जनता खड़ी हो चुकी है। भारत के इस स्वर को श्री नरेंद्र मोदी सुन चुके थे। ५ अगस्त, २०१९ को जम्मू-कश्मीर की राजनीतिक समस्या का दृढ़तापूर्वक समाधान एवं नागरिकता संशोधन बिल जैसे बड़े निर्णय भारत की जनता के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति समर्थन के स्पष्ट स्वर का ही परिणाम था। भारत के राष्ट्रमंदिर निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

भारत के प्रधानमंत्री का यह उद्घोष स्पष्ट संकेत था कि १५ अगस्त जिस प्रकार राजनीतिक आजादी का प्रतीक है, उसी प्रकार श्रीराम मंदिर का भूमि-पूजन सांस्कृतिक आजादी या सांस्कृतिक पुनर्प्रतिष्ठा का प्रतीक है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने अपने उद्बोधन में आगे कहा कि श्रीराम भारतीय संस्कृति के आधार हैं। श्रीराम का यह मंदिर हमारी संस्कृति का आधुनिक प्रतीक बनेगा, हमारी शाश्वत आस्था का प्रतीक बनेगा, हमारी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बनेगा।

राष्ट्रमंदिर का प्रतीक श्रीरामजन्मभूमि पर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के भव्य मंदिर निर्माण के लिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा थी। यद्यपि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ अयोध्या को वैश्विक स्तर पर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की नगरी के रूप में पहचान दिलाने तथा अयोध्या को राममय बनाने के अभियान को पंख लगा चुके थे। दीपावली की पूर्व संध्या पर अयोध्या में वर्ष-दर-वर्ष दीपोत्सव का वैश्विक रिकॉर्ड-पर-रिकॉर्ड बनता गया। भगवान् श्रीराम के वनगमन के पश्चात् राजकीय विमान (पुष्पक विमान के रूप में) से अयोध्या आगमन, मुख्यमंत्री द्वारा स्वयं भगवान् श्रीराम जगज्जननी-सीता एवं श्रीलक्ष्मण का स्वागत जैसे भव्य आयोजन श्रीरामजन्मभूमि पर भव्य मंदिर के निर्माण की ही पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे। अयोध्या के रेलवे स्टेशन का भव्य स्वरूप, अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा के साथ-साथ पर्यटन एवं संस्कृति विभाग द्वारा अयोध्या के बहुमुखी विकास तथा भारत सरकार द्वारा 'श्रीराम सर्किट' की महत्त्वाकांक्षी योजना से स्पष्ट था कि 'अयोध्या' भारत सरकार एवं उत्तर प्रदेश सरकार की वरीयता सूची में शीर्ष पर है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आते ही श्रीरामजन्मभूमि पर भव्य मंदिर के निर्माण की सभी बाधाएँ दूर हो गईं।

५ अगस्त, २०२० को राष्ट्र-मंदिर के भूमि पूजन की तिथि निर्धारित हुई। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने श्रीरामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट का आमंत्रण स्वीकार कर नए भारत के राष्ट्रमंदिर के प्रतीक बन चुके श्रीराममंदिर का भूमिपूजन किया तथा नए युग के नवोन्मेषी भारत के निर्माण की उद्घोषणा की।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने भूमि-पूजन के पश्चात् देश-दुनिया के

लोगों को संबोधित करते हुए कहा कि भारत आज भगवान् भास्कर के सान्निध्य में सरयू के किनारे एक स्वर्णिम अध्याय रच रहा है। टाट और टेंट के नीचे रह रहे हमारे रामलला के लिए अब भव्य मंदिर का निर्माण होगा। गुलामी के कालखंड में कोई ऐसा समय नहीं था, जब आजादी के लिए आंदोलन न चला हो, देश का कोई भू-भाग ऐसा नहीं था, जहाँ आजादी के लिए बलिदान न दिया गया हो। १५ अगस्त का दिन उस अथाह तप का, लाखों बलिदानों का प्रतीक है। भारत की स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा एवं स्वातंत्र्य भावना का प्रतीक है। ठीक उसी तरह श्रीरामजन्मभूमि की मुक्ति एवं उस पर भव्य मंदिर के निर्माण के लिए कई-कई सदियों तक कई-कई पीढ़ियों ने अखंड-अविरत एकनिष्ठ प्रयास किया। आज का दिन उसी तप, त्याग और संकल्प का प्रतीक है। श्रीराम मंदिर के लिए चले आंदोलन में अर्पण भी था, तर्पण भी था, संघर्ष भी था, संकल्प भी था। भारत के प्रधानमंत्री का यह उद्घोष स्पष्ट संकेत था कि १५ अगस्त जिस प्रकार राजनीतिक आजादी का प्रतीक है, उसी प्रकार श्रीराम मंदिर का भूमि-पूजन सांस्कृतिक आजादी या सांस्कृतिक पुनर्प्रतिष्ठा का प्रतीक है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने अपने उद्बोधन में आगे कहा कि श्रीराम भारतीय संस्कृति के आधार हैं। श्रीराम का यह मंदिर हमारी संस्कृति का आधुनिक प्रतीक बनेगा, हमारी शाश्वत आस्था का प्रतीक बनेगा, हमारी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बनेगा। यह उद्घोषणा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के वैचारिक अधिष्ठान पर खड़े होनेवाले भावी भारत का संकेत है तथा दीनदयाल उपाध्याय के 'राष्ट्र' की संकल्पना को साकार करने का संकल्प भी।



जब तक राष्ट्रीय अस्मिता बनी रहती है, राष्ट्र जीवित रहता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम इसी भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक हैं, और इसी राष्ट्रीय अस्मिता के भाव के जनजागरण का प्रतीक है—'श्रीराम मंदिर'। कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रत्येक व्यक्ति के अंत:करण में भारत के अनंत, अति प्राचीन राष्ट्र-जीवन को युगानुकूल जाग्रत् करना राष्ट्रीय अस्मिता के लिए आवश्यक है। भारत का राष्ट्र जीवन हिंदू जीवन है, इस सत्य को ध्यान में रखकर ही भारत को खड़ा किया जा सकता है तथा सामर्थ्यशाली भारत बनाया जा सकता है। श्रीराम मंदिर इसी अभियान का प्रतीक है।

श्रीराम भारत की सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने भी श्रीराम मंदिर निर्माण को भारत की सामाजिक एकता के निर्माण एवं प्रगति के अभियान का आधार-बिंदु माना है। उन्होंने कहा कि 'जिस तरह गिलहरी से लेकर वानर और केवट से लेकर वनवासी बंधुओं को भगवान् राम की विजय का माध्यम बनने का सौभाग्य मिला, उसी प्रकार आज घर-घर, गाँव-गाँव से श्रद्धापूर्वक पूजी शिलाएँ, देशभर के धामों और मंदिरों से लाई गई मिट्टी और नदियों के जल से निर्मित श्रीराम मंदिर में भारत के कण-कण की संस्कृति का समावेश है। श्रीराम को तेज में सूर्य के समान, क्षमा में पृथ्वी के तुल्य, बुद्धि में बृहस्पति के सदृश्य, यश में इंद्र के समान माना गया है। श्रीराम का चरित्र सबसे अधिक जिस केंद्र-बिंदु पर घूमता है, वह है सत्य पर अडिग रहना। इसीलिए श्रीराम संपूर्ण हैं। उन्होंने सामाजिक समरसता को अपने शासन की आधारशिला बनाया था। यही कारण है कि श्रीराम हजारों वर्षों से भारत के लिए प्रकाश-स्तंभ बने हुए हैं। श्रीराम प्रजा से एक समान प्रेम करते हैं, लेकिन गरीबों और दीन-दुखियों पर उनकी विशेष कृपा रहती है। इस प्रकार श्रीराम मंदिर भारत की सामाजिक समरसता एवं एकता का मार्ग भी दिखाएगा।

श्रीराम की वैश्विक स्वीकृति भारत की वर्तमान युग में वैश्विक स्वीकृति को मजबूत आधार प्रदान करेगी। प्रधानमंत्री का यह कहना कि श्रीराम मंदिर अनंत काल तक पूरी मानवता को प्रेरणा देगा, भारतीय संस्कृति के लोक-मंगल सर्वव्यापकता का संदेश था। भगवान् श्रीराम का संदेश, हमारी हजारों सालों की परंपरा का संदेश पूरे विश्व में पहुँचाने का संकल्प बताता है कि श्रीराम मंदिर भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रसार का आधार बनेगा। भगवान् श्रीराम का मंदिर भारत की वर्तमान पीढ़ी, भावी पीढ़ी एवं विश्व को भारतीय ज्ञान-परंपरा एवं जीवन-दृष्टि का ज्ञान कराएगा एवं उन्हें प्रेरित करता रहेगा।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने श्रीराम जैसे नीतिवान शासक को आदर्श बताते हुए दुखी-गरीब मुक्त भारत, नर-नारी की समानता का भारत, सुखी किसान एवं पशुपालकों का भारत, रक्षित बुजुर्ग, बच्चे और चिकित्सकों का भारत, शरणागत की रक्षा करनेवाला भारत, शक्ति-संपन्न 'शक्तिशाली' शांतिप्रिय भारत का खाका खींचा तो दूसरी तरफ श्रीराम के समान समय, स्थान और परिस्थितियों के हिसाब से बोलने-सोचने-करने तथा समय के साथ बढ़ने एवं चलने का संदेश दिया। प्रधानमंत्री जब कह रहे थे तो वे

यही कह रहे थे कि आत्मनिर्भर-स्वावलंबी और अत्याधुनिक बनने की तरफ भारत के बढ़ते कदम अब रुकनेवाले नहीं हैं। उन्होंने दो-टूक कहा कि श्रीराम के आदर्शों के साथ भारत आज आगे बढ़ रहा है। सँभलते, उठते और बढ़ते भारत के इसी स्वरूप का प्रतीकात्मक भूमिपूजन भी श्रीराम मंदिर के साथ हुआ।

भारत के सांस्कृतिक जीवन को राममय बनाने का संदेश देते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहन भागवत ने भी यह संकेत कर दिया कि श्रीराम के भव्य मंदिर का निर्माण तो प्रतीक है, हमें भारतीय संस्कृति मय समाज की रचना की दिशा में अब आगे बढ़ना है। उन्होंने कहा कि भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जिस आत्मविश्वास एवं आत्मभान की आवश्यकता थी, उसका सगुण-साकार अधिष्ठान का शुभारंभ आज हो रहा है। आध्यात्मिक दृष्टि के अधिष्ठान की स्थापना हो रही है। सारे जगत् को अपने में देखने और अपने को सारे जगत् में देखने की भारतीय जीवन-दृष्टि, जिसके कारण प्रत्येक भारतीय का व्यवहार आज भी विश्व में सबसे अधिक सज्जनता का है, और भारत का सामूहिक व्यवहार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का होता है। ऐसे स्वभाव से निर्मित अपने कर्तव्य का निर्वाह करने, व्यावहारिक जगत् की माया की दुविधा में से रास्ते निकालते हुए, जितना हो सके सबको साथ लेकर चलने की जो एक विधि बनती है, उसके अधिष्ठान का आज यहाँ भूमि-पूजन हुआ है। परम वैभव संपन्न और सबका कल्याण करनेवाले भारत के निर्माण का शुभारंभ आज हो रहा है।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने श्रीराम जैसे नीतिवान शासक को आदर्श बताते हुए दुखी-गरीब मुक्त भारत, नर-नारी की समानता का भारत, सुखी किसान एवं पशुपालकों का भारत, रक्षित बुजुर्ग, बच्चे और चिकित्सकों का भारत, शरणागत की रक्षा करनेवाला भारत, शक्ति-संपन्न शक्तिशाली शांतिप्रिय भारत का खाका खींचा तो दूसरी तरफ श्रीराम के समान समय, स्थान और परिस्थितियों के हिसाब से बोलने-सोचने-करने तथा समय के साथ बढ़ने एवं चलने का संदेश दिया।

श्री मोहन भागवत आगे कहते हैं कि सबके राम हैं और सब में राम हैं। ऐसे श्रीराम की नगरी अयोध्या और उनके मंदिर का पुनर्निर्माण तो हो ही रहा है, हमारा कार्य है कि प्रभु श्रीराम का बसेरा अपने हृदय में करें। हम सब लोगों को अपने मन की अयोध्या को सजाना-सँवारना है। प्रभु श्रीराम जिस धर्म के विग्रह माने जाते हैं, वह जोड़नेवाला, धारण करनेवाला, ऊपर उठानेवाला, सबकी उन्नति करनेवाला, सबको अपना माननेवाला धर्म है। उस धर्म-ध्वजा को अपने कंधे पर लेकर संपूर्ण विश्व को सुख-शांति देनेवाला भारत खड़ा करने के लिए हमें अपने मन की अयोध्या बनानी है। श्रीराम मंदिर के पूर्ण होने से पहले हमारा मन-मंदिर बनकर तैयार रहना चाहिए। सभी दोषों से, विकारों से, द्वेषों से, शत्रुता से मुक्त, दुनिया की माया कैसी भी हो, उसमें सब प्रकार के व्यवहार करने के लिए समर्थ और हृदय से सब प्रकार के भेदों को तिलांजलि देकर संपूर्ण जगत् के अपनाने की क्षमता रखनेवाला इस देश का व्यक्ति और समाज गढ़ने का कार्य भी चलता रहना चाहिए। इस कार्य की प्रेरणा देनेवाला श्रीराम मंदिर खड़ा होने जा रहा है। श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन के सूत्रधार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक का यह उद्बोधन यह समझने के लिए पर्याप्त है कि श्रीरामजन्मभूमि मुक्ति आंदोलन वैचारिक गुलामी से मुक्ति का आंदोलन था तथा श्रीराम मंदिर का निर्माण भारतीय संस्कृति के मंदिर का निर्माण है।

उत्तर प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने भी श्रीराम मंदिर के निर्माण को राष्ट्र-मंदिर का निर्माण ही माना। उन्होंने भूमिपूजन समारोह में कहा कि आज का कार्यक्रम केवल श्रीराम के भव्य मंदिर निर्माण के कार्यक्रम का शुभारंभ ही नहीं वरन् उस भारत को दुनिया के सामने प्रस्तुत करने के शुभारंभ का भी अवसर है, जिसे आज से छह वर्ष पहले आदरणीय प्रधानमंत्रीजी ने 'रामराज्य' की अवधारणा को चरितार्थ करने के लिए आगे बढ़ाया था। उस भारत को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत करने के अवसर का शुभारंभ है, जिस भारत में जाति के नाम पर, क्षेत्र के नाम पर, भाषा के नाम पर, लिंग के नाम पर, कोई भेदभाव नहीं होगा। ऐसा भारत, जो दुनिया को एक श्रेष्ठतम हिंदू जीवन-पद्धति का प्रतिमान प्रस्तुत करेगा। ऐसा भारत, जो मानवता एवं लोककल्याण का पथ-प्रदर्शक होगा। 'सबका साथ-सबका विकास' की भावना को चरितार्थ करते हुए जिस भारत के पुनर्निर्माण कार्यक्रम को छह वर्ष पूर्व प्रारंभ किया गया था, भगवान् राम का भव्य और दिव्य मंदिर, भगवान् राम की यश और कीर्ति के अनुरूप उस भारत की यश और कीर्ति को भी देश और दुनिया के अंदर इसी रूप में आगे बढ़ाने का कार्य करेगा।

श्रीरामजन्मभूमि अयोध्या को वैश्विक स्तर पर आध्यात्मिक पर्यटन केंद्र के रूप विकसित करने की योजना उत्तर प्रदेश सरकार की योगी-सरकार ने अपने शपथ-ग्रहण के दिन से ही प्रारंभ कर दी। अयोध्या और उसके आस-पास जिस प्रकार दिन-प्रति-दिन विकास की नई लकीर खींची जा रही है, उससे भावी अयोध्या के गौरवपूर्ण अध्याय का अंदाजा लगाया जा सकता है। विश्व की सबसे ऊँची भगवान् श्रीराम की प्रतिमा के साथ वास्तुकला की दृष्टि से श्रीराम मंदिर का जारी स्वरूप भव्य-दिव्य भारत की झाँकी है। भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत के उत्कर्ष के साथ इक्कीसवीं सदी के नए भारत की रचना में बढ़ चला है। परमवैभव भारत संपूर्ण मानव जाति की सुख-शांति तथा सृष्टि के कल्याण का मार्ग लेकर विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने को तैयार हो रहा है। हम इस पुण्य कार्य में सहभागी होने का सौभाग्य प्राप्त करें।

भारत माता की जय!

प्राचार्य, महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज
जंगल धूसड़,
गोरखपुर-२७३०१४ (उ.प्र.)



रंग भरो या खाली छोड़ो

● माधव कौशिक



प्रसिद्ध साहित्यकार एवं गजलकार। ३० पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें बारह गजल-संग्रह, दो खंड काव्य, तीन नवगीत-संग्रह, तीन कविता-संग्रह, दो कहानी-संग्रह, दो बाल साहित्य तथा दो आलोचना ग्रंथ प्रमुख हैं। संप्रति : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष।

: एक :

कितने-कितने जुर्म किए हैं सत्ता के गलियारों ने,
मेरे हिस्से का सूरज भी छीन लिया अँधियारों ने।

सच तो यह है कि नंगी लाश मिली थी सड़कों पर,
मगर खुदकुशी कहकर उसको छाप दिया अखबारों ने।

बेशक कोई साजिश कहकर पतझर को बदनाम करे,
गुलशन को नीलाम कर दिया गुलशन के हकदारों ने।

क्या जाने क्या खोज रहे हैं इब बेमानी दुनिया में,
सूरज को भी थका दिया चल-चल कर बंजारों ने।

खिड़की-दरवाजों पर पहरे लाख बिठाए मौसम ने,
घर की सारी बातें कह दीं दुनिया से दीवारों ने।

: दो :

सभी की आँख में आँसू तो हैं सपने नदारद हैं,
तुम्हारे शहर के लोगों के क्यों चेहरे नदारद हैं।

सफर में धूप इतनी है कि जलते हैं बदन सबके,
मगर हैरान हूँ जिस्मों के क्यों साये नदारद हैं।

अधूरी ख्वाहिशें, बेचैनियाँ, बीमार उम्मीदें,
दिलों में क्या नहीं बस खून के कतरे नदारद हैं।

कहाँ जाकर उतारें कश्तियाँ अपने खयालों की,
जमीं पर रेत ही बस रेत है, झरने नदारद हैं।

मुसाफिर के लिए साया, न पंछी के लिए पानी,
ये कैसे पेड़ हैं, जिनके सभी पत्ते नदारद हैं।

खुदा जाने कहाँ जाकर रुकेगा कारवाँ दिल का,
यहाँ तो मंजिलों की राह के रस्ते नदारद हैं।

: तीन :

रंग भरो या खाली छोड़ो, यह अधिकार तुम्हारा है,
तुमने इसकी रचना की है, यह संसार तुम्हारा है।

चुपके-चुपके सेंध लगाकर खुद ही चोरी करते हो,
क्या तुमको मालूम नहीं है, घर-बार तुम्हारा है।

अपनी नासमझी का कारण, जाने किस दिन समझोगे,
ये बस्ती भी नहीं पराई और अंगार तुम्हारा है।

विद्रोही को सिवा मौत के और भला क्या देंगे आप,
मैं भी खाली हाथ खड़ा हूँ और दरबार तुम्हारा है।

सच तो यह है कलम तुम्हारी सच लिखना भी भूल गई,
अब जो जी में आए छापो हर अखबार तुम्हारा है।

: चार :

हमें रखती है जिंदा इस कदर हर बार उम्मीदें,
गिरा देती है नफरत की हरेक दीवार उम्मीदें।

किया है खोखला जिसकी जड़ों को शक के दीमक ने,
कहाँ लगती हैं ऐसे पेड़ पर फलदार उम्मीदें।

मैं साहिल पर सुरक्षित लौट आया हूँ, जहाँ वालो,
भँवर में बन गई थीं जीस्त की पतवार उम्मीदें।

अँधेरा नाउम्मीदी का हमें जब घेर लेता है,
उठा लेती है हिम्मत का तभी हथियार उम्मीदें।

इन्हें हक है अधूरी जिंदगी में रंग भरने का,
हमारी जिंदगी की हैं असल हकदार उम्मीदें।

मैं किस उम्मीद पर इस शहर को अपना कहूँ 'माधव',
यहाँ बिकने लगी हैं अब सरे-बाजार उम्मीदें।

: पाँच :

सदियों बाद हमारे मन में जागा है विश्वास नया,
वक्त मिला तो हम भी यारो लिख देंगे इतिहास नया।

मुरझाए फूलों की कीमत खिले फूल से क्यों आँकें,
पतझर के मौसम को हमने समझा है मधुमास नया।

चलो सृजन की धूप छाँव से, रंग भरें आवाजों में,
धरती बिल्कुल नई-नई है, है निर्मल आकाश नया।

बेहतर है हर एक मुसाफिर चले अँधेरी राहों पर,
कहीं पुरानी पगडंडी पर उग आए ना घास नया।

पिछली पूरी रात अँधेरों से लड़ने में बीत गई,
बुझे चिरागों को छूने से होता है अहसास नया।

सा
अ

३२७७, सेक्टर-४५ डी
चंडीगढ़-१६००४८ (पंजाब)

साहित्य, संगीत और कलाओं का आत्मसंवाद

● यतींद्र मिश्र

अभिव्यक्ति की दुनिया में फिर चाहे वह साहित्य हो या संगीत, अभिनय हो या अन्य कोई प्रदर्शन का माध्यम, वह अनुकरण बनकर कला में समाती है। कला इस लिहाज से भावनाओं को दूसरे पर प्रतिष्ठित करने का साधन भी है। शायद इसी कारण वह विविधरंगी और उन्मुक्त है। यह देखना साहित्य के लिए भी बहुत चुनौती का काम है कि किस तरह वह अपनी स्वायत्तता को बचाए रखते हुए कलाओं की दुनिया से साझा करता है और स्वयं के चरित्र में कोई फर्क नहीं आने देता। कई बार इसीलिए कला के सौंदर्य की अभिव्यक्ति में कलाकार, कवि, नर्तक, गायक, शिल्पकार या अभिनेता अपनी मौलिक पहचान को बनाए रखने के संघर्ष से जूझता रहता है। यह देखना भी कलाओं और साहित्य के आपसी सामंजस्य में अध्ययन का विषय हो सकता है कि किस तरह दोनों एक-दूसरे के साथ जुड़कर अपनी अभिव्यक्तियों के अनुभूत सत्य को अप्रतिहत रख पाते हैं।

समस्त प्रदर्शनकारी कलाओं पर यदि हम एक व्यापक दृष्टि डालें तो पाएँगे कि एक कला समाज को अन्य दूसरे, तीसरे कला-जगत् ने नए फलक हासिल कराए हैं। वे सामासिक रूप में ऐसी नई कला-सभ्यता का निर्माण करते हैं, जो बहुस्तरीय व अनेकार्थी रही है, मगर उसमें कलात्मकता, विचार और प्रतिरोध सभी एकमेव होकर ज्यादा जीवंत हो उठे हैं, फिर वह चर्चा रंगमंच की हो या संगीत की, साहित्य की दुनिया में बोलियों और भाषा का उत्तरदायित्व हो, चाहे चित्रकला में रंगों की अनिवार्यता—सभी कुछ सहयोगी की तरह एक-दूसरे को बरतते हुए एक ऐसे समावेशी संसार की आधारशिला रखते हैं, जो कहीं ज्यादा व्यापक और स्वीकार्य के योग्य जान पड़ती है।

कला माध्यमों, खासकर संगीत और नृत्य में साहित्य का संतरण होता हो, यह जानने से पहले इस तथ्य को टटोलना भी अति आवश्यक है कि साहित्य की मुखर उपस्थिति से ही नृत्य व संगीत कला का स्वरूप बनता है। यदि भक्ति पद, बानियाँ, भजनावलियाँ, सूक्तियाँ, छंद, श्लोक, मंत्र आदि न हों, तो आप कल्पना कीजिए कि संगीत में गायन किस चीज का संभव होगा? ध्रुपद और तराना को छोड़कर, जहाँ अमूर्तन द्वारा ध्वनियों या अक्षरों की अपरिमित लड़ियों से संगीत पैदा किया जाता है—बाकी के कार्यों के लिए तो संगीत कला सदैव से साहित्य की मुखापेक्षी



सुपरिचित कवि; संगीत और सिनेमा के अध्येता। लता मंगेशकर और बेगम अख्तर पर पुस्तकें चर्चित। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार 'स्वर्ण-कमल' (२०१६) से सम्मानित।

रहती आई है, फिर वह संस्कृत के नाटकों की परंपरा हो या कि कोई महाकाव्यात्मक प्रबंध। साहित्य के माध्यम से ही संगीत का रूपाकार खड़ा होता है। यदि गोरखनाथ, कबीर, पलटूदास या अधिसंख्य भक्त और सूफी कवियों, वाग्गेयकारों के पद साहित्य में उपलब्ध न होते, तो हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि शास्त्रीय, अर्धशास्त्रीय और लोक संगीत की दुनिया इस ढंग से समृद्ध हो सकती थी।

(१)

साहित्य और कलाओं की मैत्री की जब हम बात करते हैं, तब यह आसानी से नजर आता है कि लगभग सारी कलाओं की मूल आवाज या गूँज के रूप में साहित्य मौजूद रहा है। यह नहीं हो सकता कि साहित्य के बगैर हम व्यापक स्तर पर संगीत, रंगमंच, नृत्य और सिनेमा को विकसित होता हुआ देख सकें। यह अलग बात है कि संगीत में भी कई बार ध्रुपद गायन एवं शास्त्रीय वाद्यों के बजाने आदि में साहित्य की बहुत भूमिका नहीं होती, बावजूद इसके अपनी संक्षिप्ति में भाषा मौजूद रहती है। उससे बनने वाले शब्द, अलंकार और ध्वनियाँ संगीत और वादन को प्रभावित करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि Literature is the voice of the medium.

(२)

कुछ ऐसे फनकार भी हैं, जिन्होंने भक्तिकाल की बंदिशों को सर्वथा नए अर्थ देते हुए कुछ अभिनव प्रयोग किए, जैसे *कुमार गंधर्व* ने *कबीर के पदों* को शास्त्रीयता से दूर *मालवी लोकधुनों* पर रचकर गाया। इसी तरह *एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी* ने *मीराबाई* के पदों का गायन शुद्ध *दाक्षिणात्य शैली* में किया, जबकि मीरा के पद ठेठ राजस्थानी बोली में रचे हैं और वहाँ की लोकशैली *कुरजाँ* में लोक गायकों द्वारा गाए जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इससे कविता में एक नए प्रकार की शक्ति आती है और इसके अर्थों

में नए प्रकार के लालित्य रचने का कार्य करती है, जो शायद इस तरह के प्रयोगों के न होने पर संभव न होता।

(३)

इधर पिछले तकरीबन पचास वर्षों में कबीर एक ऐसे सर्वग्राही वरेण्य कवि के रूप में विकसित हुए हैं, जिनकी जितनी शाखाएँ और पंथ इस देश में फैली हैं, उसी के अनुपात में कबीरपंथियों के गायन की उतनी ही लोक शैलियाँ भी विकसित हुई हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य इस संदर्भ में यह है कि जैसे तमाम प्रकार के कबीरपंथी संप्रदायों में कबीर के पद बहुतेरे पाठ भेदों के साथ हमारे सामने आते हैं, उसी तरह बहुतेरे नए प्रयोगों, रागों और गायन शैलियों द्वारा यह सारे पद भी कबीरपंथी गायन के रूप में स्वीकृत होकर लगभग प्रतिष्ठित हो चुके हैं। *कुमारगंधर्व की मालवी शैली के कबीर गायन के अलावा मधुप मुद्गल, प्रहलाद सिंह टिपान्या, शरीफ इद्दू दादे, मुख्तियार अली, पं. छन्नूलाल मिश्र, लंगा व मंगणयार समूह, शेखर सेन, आबिदा परवीन, वारसी बंधु रामपुर, वडाली बंधु, अल्लाह जिलाई* बाई सहित पाकिस्तान के *कई मूर्धन्य गायक-कौव्वाल* आज परिदृश्य पर सक्रिय हैं। यह सांगीतिक फैलाव भी इस बात की सफलतापूर्वक निशानदेही करता है कि कबीर की भक्ति का संगीत के साथ विलयन कितनी मनोहारी और विवधवर्णी चमक पैदा कर सकता है।

(४)

इसी तरह कुछ प्रसिद्ध निर्गुण भजनों को दादरा एवं ठुमरी अंग में बाँधकर गाया जाता है। इन निर्गुणों का वैसा पाठ नहीं किया जाता, जिस तरह का पाठ अन्य निर्गुण पदों एवं भजनों को प्राप्त है। बावजूद इसके यह सारे ठुमरी और दादरा में समाए हुए गीत अपनी गेयता और पारंपरिक घरानेदारी के चक्कर में आज लगभग बहुश्रुत और प्रचलित माने जाते हैं।

संगीत इस मायने में दैनिक आपाधापी के जीवन से अलग एक आयोजन या कलात्मक संयोजन भी है, जो हमको सुकून और राहत देता है, जिसे हम अलग से उस अस्थायी जीवन में महसूस करते हैं, जो हमारी चेतना के स्तर पर कहीं सक्रिय रहता है। इस अर्थ में शास्त्रीय संगीत आधुनिक से अलग एक्सपेरीमेंटल के ज्यादा नजदीक हो सकता है। वह स्वानुभूति का ऐसा औचक निरीक्षक भी है, जिससे यह समझने में मदद मिलती है कि वह किन समयों या परिस्थितियों में, हमारी कल्पना को प्रासंगिक अर्थों से भरेगा। संगीत इस बात के लिए आश्वस्त भी करता है कि वह जिस आनंद की सृष्टि का कारक है, उसका प्रखरतम रूप कैसा है।

उदाहरण—

संय्या निकस गए मैं न लड़ी थी
कहत कमाली कबीर की बेटी
ऐसी ब्याही से कुँआरी भली थी
संय्या निकस गए मैं न लड़ी थी —*पूरब अंग की ठुमरी*
(कमाली का पद)

(५)

ढेरों प्रदर्शनकारी कलाएँ, खासकर नृत्य आदि के असंख्य विभेदों में, जिनमें प्रमुख रूप से लोक-नृत्य, ऋतु-नृत्य, श्रम-नृत्य एवं युद्ध-नृत्य शामिल हैं—का अपना काव्यशास्त्र या संगीत की ज्यामिति अलग-अलग ढंग से कला प्रदर्शन में व्यवहार करती है। एक हद तक कलाओं की जो जनतांत्रिक व्यवस्था है, उसमें एक ही कला अथवा एक ही विधा के अंतर्गत व्यक्त होने वाली विभिन्न अभिव्यक्तियों का हृदय प्रदेश अलग-अलग होता है। यही उनका अपना अभिनव स्वदेश भी है, जिसके चलते उनकी समकालीन संदर्भों में प्रासंगिकता भी बची हुई है। इस समकालीनता में उन विशिष्ट परंपराओं की लोकाराधन क्षमता, विशिष्ट अभिनेयता और शास्त्रीय पक्षधरता का समन्वय भी अर्थ रखता है। यह न हो, तो यह स्पष्ट कर पाना बेहद उलझाव भरा काम होगा कि *तेरा ताली* नृत्य में झाँझ के ताली की तरह बजने की क्या उपयोगिता है? या कि *चुर्कुला* में किस प्रासंगिकता के चलते, जलते हुए दीयों को सिर पर रखकर नाचा जाता है? *चुर्कुला* और *तेरा ताली* की तरह भारतीय लोक-नृत्यों में मशहूर कुछ अन्य नृत्यों मसलन—बैगा जनजाति का पतझड़ के मौसम का नृत्य *बिल्मा,* उड़ीसा का ऋतु-नृत्य—*चैती घोड़ा नाटा,* केरल का युद्ध कौशल दरशानेवाला लोकप्रिय नृत्य—*कलरिपयत्तू* एवं आनुष्ठानिक नृत्यों में सर्वोपरि माना जानेवाला मणिपुर का *लाइ हरोबा* को हम उनकी शास्त्रीयता, अभिनयधर्मिता एवं लोक वैशिष्ट्य के कारण हमेशा परंपरा में न सिर्फ याद रखते हैं, बल्कि उनकी अपनी विशिष्ट स्वायत्तता और देशज व्याप्ति के चलते उनकी शर्तों पर ही स्वीकारते हैं।

(६)

शास्त्रीय संगीत को लेकर 'आधुनिकता' का सवाल कुछ इस तरह उठाया जाता है, मानो संगीत भी तमाम अन्य चीजों की तरह अगर 'आधुनिक' नहीं है, तो उसका कोई मूल्य नहीं। यह एक तरह की ज्यादती का मामला है कि हम आधुनिकता को बिल्कुल सतही रूप में इस तरह देखते और उससे आक्रांत बने रहते हैं कि संगीत जैसी कला के इस बुनियादी गुण को ही भूल जाते हैं कि उसका काम या स्वरूप सिर्फ हमारी वर्तमान जिंदगी तक ही महदूद नहीं रहता, बल्कि वह उस जिंदगी में भी विचरण करता है, जिसे हम अपनी मानसिक बुनावट के स्तर पर कल्पना में भी अकसर जीते हैं। संगीत इस मायने में दैनिक आपाधापी के जीवन से अलग एक आयोजन या कलात्मक संयोजन भी है, जो हमको सुकून और राहत देता है, जिसे हम अलग से उस अस्थायी जीवन में महसूस करते हैं, जो हमारी चेतना के स्तर पर कहीं सक्रिय रहता है। इस अर्थ में शास्त्रीय संगीत आधुनिक से अलग एक्सपेरीमेंटल के ज्यादा नजदीक हो सकता है। वह स्वानुभूति का ऐसा औचक निरीक्षक भी है, जिससे यह समझने में मदद मिलती है कि वह किन समयों या परिस्थितियों में, हमारी कल्पना को प्रासंगिक अर्थों से भरेगा। संगीत इस बात के लिए आश्वस्त भी करता है कि वह जिस आनंद की सृष्टि का कारक है, उसका प्रखरतम रूप कैसा है। किस तरह वह उस मौन को ध्वनित करता है, जिससे वह स्वयं घिरा हुआ है और जिसे बार-

बार खंडित एवं आंदोलित करके वह अपनी नैसर्गिक स्थिति को रचता है।

(७)

कलाओं के माध्यम से समय के साथ मनुष्य का जो रिश्ता बनता है, उसका विस्तार इस पर भी निर्भर करता है कि उसकी चेतना कितने विस्तृत और विविध ऐतिहासिक अनुभवों को अपने में समेटे हुए है। कलाएँ, तत्काल से पलायन नहीं, बल्कि तत्काल का कलाओं के मिथक-समय में विस्तार हैं। वह एक ऐसे मायालोक का स्वप्न हैं, जहाँ जीवन की मनोहारी छवियाँ प्रमुखता से अपना अस्तित्व तलाशती मिलती हैं। इसी वजह से एक कलाकृति या कला प्रेरणा यथार्थ से बहुत दूर होती है, जबकि यथार्थ कभी भी मोहक या जादुई नहीं हो पाता। सौंदर्य एक मूल्य है, जो काल्पनिक पर ही लागू हो सकता है। कलाओं की परिपूर्णता के लिए कल्पना का विशेष महत्त्व है। कलाओं के लिए कल्पना का मतलब ही होता है—संसार के बुनियादी ढाँचे का अस्वीकार।

शायद इसी कारण, कला निर्मित समय की सांगीतिक प्रस्तुतियाँ, मसलन—उर्स एवं दरगाहों पर होने वाली नात एवं कव्वालियाँ, बाऊल लोगों की असंभव आत्मीय पुकार और वैष्णवता के आँगन में रचा-बसा सगुणोपासना का भजन-कीर्तन; सभी कुछ संसार के वर्तमान स्वरूप का अस्वीकार तथा निषेध करके ही अपना उत्कर्ष प्राप्त करते हैं।

(८)

ग्रामीण अंचलों से मंदिरों तक लोकगायन एवं लोकसंगीत की, जो विविधता उपलब्ध है, उसने रचनाशील शास्त्रीय गायकों को बार-बार आकृष्ट किया है। यह आकर्षण इस बात पर भी निर्भर है कि एक गायक अपनी समझ व रुचि के अनुसार किस प्रकार की शैली का चुनाव अपने प्रयोगों के लिए करता है।

अभंग और बाऊल संगीत की दुर्लभ तन्मयता और भक्ति भावना हो या कृष्णोपासना की ठाकुरबाड़ी के बीच से निकलने वाला हवेली संगीत—सभी के विविधवर्णी प्रभावों ने कलाकारों की गायिकी को एक नया आयाम दिया है। ध्रुपद अगर उत्तर भारत के मंदिरों से जुड़ा रहा, तो खयाल गायन में कई रागों की अदायगी सर्वथा दाक्षिणात्य संगीत परंपरा से उपजती रही है। इसी तरह टप्पा की जटिल लयकारी दूर मरुस्थल के लोकसंगीत की ऋणी है।

संगीत इस मायने में ऐतिहासिक रूप से विविधता से भरा नहीं होता, बल्कि इतिहास की एक परिपाटी के रूप में वर्तमान में जीवित रहता है और प्रयोगों के लिए स्वतंत्र होता है। ध्रुपद आज भी उतना ही कलात्मक रूप से वैभवशाली है, जितना कभी वैदिककालीन भारत में अथवा अकबर के दरबार में उन्नत रहा होगा। यह परंपरा अगर बक्शू नायक और गोपाल नायक से होती हुई आज वर्तमान में उस्ताद नसीर मोइनुद्दीन डागर एवं उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर तक, पिछली पाँच-छह शताब्दियों से अहर्निश निभती रही, तो वह परंपरा होते हुए वर्तमान में ऐतिहासिक एवं वैविध्यपूर्ण बन पाई है। वह एक लंबे कालखंड के बीत जाने के कारण ऐतिहासिक नहीं हुई, वरन् एक परंपरा के रूप में बहते हुए अकबर के दरबार से चलकर डागर घराने की दहलीज तक आकर वैभवपूर्ण और प्रयोगधर्मी हुई है।

सा
अ

राजसदन
अयोध्या-२२३००२ (उ.प्र.)

गुरु का सम्मान

• शिवकुमार गोयल

श्रीराम कथा की विशिष्ट काव्य शैली में रचना करनेवाले पंडित राधेश्याम कथावाचक संत-महात्माओं के सत्संग के लिए लालायित रहा करते थे। संत उड़िया बाबा, श्री हरिबाबा, आनंदमयी माँ तथा संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के प्रति वे अनन्य श्रद्धा भाव रखते थे। प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी की प्रेरणा से उन्होंने महामना पंडित मदनमोहन मालवीय को अपना गुरु बनाया था। पंडित राधेश्यामजी मालवीयजी के श्रीमुख से भागवत कथा सुनकर भाव-विभोर हो उठते थे। मालवीयजी को भी राधेश्यामजी की लिखी रामायण का गायन सुनकर अनूठी तृप्ति मिलती थी। वे समय-समय पर उन्हें बरेली से काशी आमंत्रित कर उनकी कथा का आयोजन कराते थे।

एक बार गुरु पूर्णिमा के अवसर पर पंडित राधेश्यामजी ने संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के साथ काशी पहुँचकर अपने गुरु मालवीयजी को एक कीमती शॉल व मिठाइयाँ भेंट कीं। मालवीयजी को आग्रहपूर्वक शॉल ओढ़ाया गया। यह शॉल उन्होंने विशेष रूप से गुरु दक्षिणा के लिए तैयार कराया था। कुछ समय बाद अचानक हिंदू विश्वविद्यालय के दक्षिण भारतीय संस्कृत शिक्षक मालवीयजी के दर्शन के लिए आ पहुँचे। मालवीयजी उनके विरक्त व तपस्वी जीवन से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने शिक्षक की ओर संकेत कर राधेश्याम कथावाचक से कहा, 'इन्होंने कठोर साधना कर असंख्य छात्रों को देववाणी और धर्मशास्त्रों का अध्ययन कराया है। ऐसे तपस्वी शिक्षक हमारे आदर्श हैं।' कहते-कहते उन्होंने वह शॉल उन्हें ओढ़ा दिया।

राधेश्यामजी उनकी विरक्ति भावना और आदर्श शिक्षक के प्रति श्रद्धा देख दंग रह गए।

सा
अ

('२२२ शिक्षाप्रद बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

नतीजा

• चित्रा मुद्गल

पुरबी दी के सामने उद्विग्न भाव से रूमा ने 'होम' की बच्चियों की छमाही परीक्षा के कार्ड सरका दिए। नतीजे पहली कक्षा के थे। 'होम' में कुल सत्ताईस बच्चियाँ थीं, जिन्हें लगातार डेढ़-दो वर्षों के माथाफोड़ परिश्रम के उपरांत नगरपालिका के स्कूल में दाखिल कराया जा सका था।

सबसे पहला कार्ड पुरबी दी ने पियासी का खोला। नंबरों पर घूमती नजर के साथ ही उनके दिपदिपाए चेहरे पर विषाद अचानक सँवलाई बदलियों-सा गहरा आया, "पियासी में जरा भी सुधराव नहीं आया, बाकियों का क्या हाल है?"

"बहुत बुरा। प्रिंसिपल ने बुलवाया था। वहीं से आ रही हूँ।"

दूसरे कार्ड पर अंकित शून्यों से गुजरते हुए पुरबी दी ने पल भर को कार्ड पर से आँखों को अलग कर चिंतित भाव से रूमा की ओर देखा, "क्या कहा?"

"चिड़चिड़ा रही थीं। दाखिल क्यों कराया है आपने इन बच्चियों को, जो पढ़कर देने को राजी नहीं?"

"पिछली बार महीने के टेस्ट में बिजली ने काफी कुछ ठीक किया था। इस बार उससे पहले से बेहतर की उम्मीद थी···" रूमा ने वाक्य पूरा नहीं किया।

"फिर?" पुरबी दी की आँखें दूसरे कार्ड पर लिखी क्लास टीचर की निराशाजनक तीखी टिप्पणी से किरकिरा आईं।

"दी, खुद ही देख लें।"

पुरबी दी ने आगे प्रति-प्रश्न नहीं किया। नतीजे का अंतिम कार्ड बड़ी-बड़ी आँखोंवाली सलोनी बच्ची शिवानी का आया उनके सामने। सभी विषयों के सामने तीखी चोंच खोले सतर्क गिद्ध से शून्य के गोले बैठे हुए नजर आए। क्या होगा शिवानी का? सोना गाछी की एक अँधेरी, सड़ाँध भरी कोठरी में उसकी माँ 'एड्स' की चपेट में है। माँ की लाख मिन्नतों के बावजूद उन्होंने माह में एक बार बेटी को देख लेने की उसकी ललक को निष्ठुरता से ठुकरा दिया था। अस्पताल में भरती हो जाए, इलाज कोई चमत्कार दिखलाए, तभी वे शिवानी को उसे निकट से नहीं, दूर से दिखा सकेंगे। ऐसे ही उसे सब्र करना सीखना होगा।

माँ की याद में रह-रह हुड़कनेवाली शिवानी ने माँ से मिलने को कम हठ नहीं किए। एक दफे तो वह चौकीदार की आँख में धूल झोंके



सुप्रसिद्ध साहित्यकार। सौ से अधिक कहानियाँ तेरह कहानी-संकलनों में प्रकाशित। कहानियाँ अनेक विश्व-भाषाओं में अनूदित। प्रथम उपन्यास 'एक जमीन अपनी'। बहुचर्चित उपन्यास 'गिलिगडु' उर्दू, पंजाबी, मलयालम, इटालियन तथा अंग्रेजी में अनूदित। उपन्यास 'आँवाँ', 'व्यास सम्मान' से समादृत और अनेक भारतीय भाषाओं में अनूदित। सहस्राब्दि के पहले अंतरराष्ट्रीय 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' से विभूषित। संप्रति : स्वतंत्र लेखन और सामाजिक कार्यों में रत।

गेट से बाहर होने में सफल हो गई। गनीमत हुई कि 'होम' की ओर आती हुई रूमा की नजर उस पर पड़ गई। छह वर्ष की नन्ही बच्ची का साहस देख सभी स्तब्ध रह गए!

तीन दिन तक पुरबी दी शिवानी को गौरेया सी सीने से चिपकाए, उसकी सुबकियों के मोती आँचल में चुनती रहीं। समझाती रहीं—अब 'होम' ही उसका घर है—अन्य बच्चियाँ उसकी बहनें।

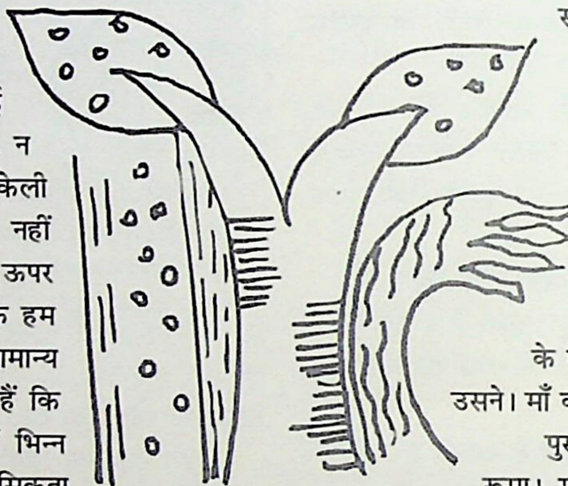
नतीजों को मेज के एक ओर सरका, वे अपनी कुरसी की पिछाड़ी पर शिथिल-सी टिक गईं। नतीजों के शून्य उनकी आँखों में उतर आए। सवाल कुतरने लगे। एक भी बच्ची उत्तीर्ण नहीं हुई। अधिकांश ने सभी विषयों में शून्य ही अर्जित किया है। ऐसा नहीं कि स्कूल में दाखिले से पूर्व उनकी प्रारंभिक तैयारी नहीं करवाई गई। डेढ़ वर्ष से रूमा निरंतर उन्हें पढ़ा रही है। अब भी दो-अढ़ाई घंटे पढ़ाती है। स्कूल में दिए गए होमवर्क करवाती है। आगे के पाठों की पहले से ही तैयारी करवाती है, ताकि स्कूल में पढ़ाए जाने पर उन्हें दिक्कत न हो। बच्चियाँ अक्षरों को पहचान सकें, शब्दों को उच्चार सकें।

रूमा ने उन्हें बाहर खींचा, "आपके नाम प्रिंसिपल साहब ने खत भेजा है, पढ़ लें, दी।"

"ओऽहाँ।"

पुरबी दी ने अन्यमनस्कता को झटक पत्र खोल लिया। पत्र क्या था, जहरीली शिकायतों का पुलिंदा। हर वाक्य चाबुक की शक्ल में उन पर बरसने लगा कि उन्हें नहीं लगता कि ये बच्चियाँ तीन साल में भी पहली कक्षा पार कर पाएँगी। अजीबोगरीब हरकतें करती रहती हैं। प्रत्येक कक्षा

में उन्हें पाँच-छह दफे पेशाब लगती है। छुट्टी न दी जाए तो जहाँ बैठी हैं, वहीं मूत लेती हैं। छुट्टी देने पर पाखाने से कक्षा में नहीं पलटतीं। पेड़ों के नीचे फुगड़ी खेलती नजर आती हैं या कंकरियाँ बटोर गिटकें खेलने बैठ जाती हैं। क्यारियों के फूल इनके चलते टहनियों पर नहीं खिल सकते। पानी के नल खुले छोड़ देंगी या अँजुरी में पानी भर एक-दूसरे को छीपेंगी। सवाल के जवाब में गूँगी-बहरी सी हो, टुकर-टुकर ताकती खड़ी रहेंगी। न स्लेट पर कुछ लिखेंगी, न कॉपी में। डाँटने पर जंगलियों की भाँति रो-चीख पूरे स्कूल को सिर पर उठा लेंगी और अन्य बच्चियों की पढ़ाई में बाधा डालेंगी। परले दरजे की उद्दंड, जिद्दन हैं। इनकी कॉपियों में टीचरों को होमवर्क स्वयं लिखने पड़ते हैं। मुश्किल यह है, इनकी देखा-देखी शेष बच्चों में भी अनुशासनहीनता पनप रही है। कृपया ध्यान दें। दूसरे बच्चों की शिकायत है कि ये उनकी चॉक, पेंसिलें, रबड़ें चुरा लेती हैं। हालाँकि टीचरों को सख्त आदेश है कि वे अन्य बच्चों के मुकाबले उनसे कोई भेदभाव न बरतें। न उन्हें हेय दृष्टि से देखें, न बेवजह प्रताड़ित करें। प्रश्न यह है कि अकेली टीचर केवल इन्हीं बच्चियों के आगे-पीछे नहीं दौड़ सकती। पूरी कक्षा की जिम्मेदारी उसके ऊपर है। यह सब कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम यह मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ असामान्य बच्चियाँ हैं। इतना जरूर मानकर चल रहे हैं कि ये बच्चियाँ अन्य बच्चियों के परिप्रेक्ष्य में भिन्न परिवेश की उपज हैं। इन बच्चियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने की जिम्मेदारी आपकी है। कृपया इस दिशा में विशेष परिश्रम करें। मात्र उन्हें उस परिवेश से मुक्त करा, समाज के सामान्य वर्गों के बीच ला, खड़ा कर देने भर से ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती।



मेरी बातों को अन्यथा न लें। किसी रोज आकर मिलें, या मुझे 'होम' बुला लें। यकीन मानिए, मैं हर तरह से सहयोग की आकांक्षी हूँ। आपके क्रांतिकारी उद्देश्यों में मेरी गहरी रुचि है। मगर मैं यह भी नहीं भूल पाती कि मैं नगरपालिका के एक बहुत बड़े स्कूल की प्रधानाचार्या हूँ। विद्यार्थियों में अनुशासन बनाए रखना मेरा प्रथम कर्तव्य है···।

पत्र लिफाफे में सरका पुरबी दी ने एक दीर्घ धुआँया निःश्वास भरा।

"होम चलते हैं। तुरंत एक मीटिंग रखते हैं।"

पुरबी दी का आशय भाँप रूमा ने दबी जुबान में प्रतिवाद किया, "कल रख लेते हैं दी, बाकी सब तो होंगी··· बरुआ दी से भेंट शायद न हो पाए।"

पुरबी दी की भौंहें चढ़ीं, "क्यों?"

"सुबह बता रही थीं कि रवींद्र भवन में उनके नए नाटक की स्टेज रिहर्सल होनेवाली है। साढ़े चार के आसपास। तीन बज रहे हैं।"

"नाटकों में उनकी दिलचस्पी इधर कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। बच्चियों की काउंसलिंग में मन नहीं लग रहा लगता।"

"बात यह नहीं···"

"प्रिंसिपल ने बच्चियों की उद्दंडताओं का जो ब्योरा लिख भेजा है, उस रामायण से तो यही लग रहा है···जितना समय उन्हें दिया जाना चाहिए, नहीं दिया जा रहा।"

"समय और तवज्जो में कोई कटौती नहीं बरुआ दी की ओर से। हाँ, दिक्कतें हैं उनकी। बड़े दिनों से शायद उनसे आपकी कोई बातचीत नहीं हुई।"

"नौकरी कोई है नहीं उनकी। पेंशन मिलती है नाममात्र की। उससे तो ट्राम से 'होम' आने-जाने का किराया तक नहीं निकल पाता उनका।"

"नाटकों में काम किए बिना···" रूमा बरुआ दी की पैरवी में सन्नद्ध हुई।

"क्यों···बेटी मदद नहीं करती?"

"करती थी।"

"थी, यानी?"

"जगदलपुर, मध्य प्रदेश में है वह आजकल।"

"तबादला हो गया?"

"नहीं। नौकरी छोड़ किसी अनवर नाम के युवक के संग ब्याह रचा, घर-बार बसा लिया उसने। माँ की फिक्र छोड़ दी है।"

पुरबी दी क्षणांश मौन हो आई। गलत नहीं है, रूमा। मीडिया, संगठनों, संगोष्ठियों, दानदाताओं के मतलब-बेमतलब उलझावों से घिरी हुईं, वे इधर 'होम' की अपनी सहयोगिनों से लगभग कट सी गई हैं। आपसी संवाद मात्र निर्देशों और आदेशों तक सिमट-सिकुड़ रह गया है।

"चलें! औरों से मिलते हैं।"

रूमा ने लक्ष्य किया। सदैव तनी रहनेवाली पुरबी दी की देह चाबी कम हो रही गुड़िया सी उठते हुए डगडगाई।

'होम' में आज किसी की खैर नहीं। न केतकी दी की, न सुतपा की, न मालिनी की; बच जाएँगी केवल बरुआ दी। पेशी उनकी भी कल जरूर होगी। मगर तब तक भीतर व्यापी तरेड़ की तीव्रता निश्चित ही कुछ सुस्थिर हो चुकी होगी।

अबोध बच्चियों की मानसिकता में दबे-जड़े कुसंस्कारों को धोने-पोंछने की महती जिम्मेवारी एकमात्र बरुआ दी की है। प्रिंसिपल का पत्र चिपकाया हुआ नहीं था। पुरबी दी के सामने रखने से पूर्व वह उसे पढ़ चुकी थी। अनुशासन बनाए रखने के नाम पर प्रिंसिपल बच्चियों को किसी भी बहाने स्कूल से बाहर कर सकती हैं। दाखिले के समय कम तेवर नहीं दिखाए उन्होंने। पुरबी दी का ही जिगरा था कि कानून और सरकार—दोनों को नंगा कर कटघरे में ला पटका उन्होंने। लिखित आदेशों के समक्ष

झुकना लाचारी थी प्रिंसिपल की। पुरबी दी का हठ था। बच्चियाँ सामान्य स्कूलों में सामान्य बच्चों के बीच उनके साथ ही पढ़ेंगी···।

पुरबी दी करवटों में नींद तलाश रहीं। आँखें मींचें नींद का मनुहार करना अब उनके लिए असाध्य हो रहा।

रह-रहकर प्रश्न खूँद रहा। ऐसा कैसे हो सकता है कि उनकी एक भी बच्ची सवालों के जवाब न दे पाई हो। आधा-अधूरा—कुछ तो प्रयत्न किया ही होगा किसी ने!

प्रिंसिपल के खत में विनय के बावजूद पूर्वग्रह अपना मुँह नहीं छिपा पा रहा था। दोष उनका नहीं। उनके पास व्यवस्था और अनुशासन की अभेद भित्ति है, जिसकी आड़ में वे जब चाहें अपनी शिक्षिकाओं की अक्षमता और लापरवाही उनके मत्थे से अलग कर औरों के सिर मढ़ दें! उनकी मासूम बच्चियों के लिए तो यह काम और भी आसान है···।

रही शिक्षकों की बात, तो उनकी जिंदगी का उद्देश्य महीने की शुरुआत में तनख्वाह का लिफाफा हासिल करना भर मात्र रह गया है।···

मीटिंग में काफी खुलकर बातचीत हुई थी। अकेली वे ही क्षुब्ध नहीं थीं। पढ़ाई में बच्चियों की घोर अरुचि और नतीजों को लेकर सभी सहयोगिनों के मन में दुःख और तनाव का वितान तना हुआ था। उन बच्चियों की तईं विशेष, जिन्हें वय के मुताबिक दूसरी या तीसरी कक्षा की छात्राएँ होना चाहिए था। प्रिंसिपल की चिट्ठी सुनकर तो सभी के दिल और बैठ गए। उन्होंने सख्त स्वर में सभी को फटकारा। सभी निष्ठभाव से अपने-अपने काम में संलग्न हैं तो उस श्रम का परिणाम नजर क्यों नहीं आ रहा? वे तो लगातार इस कोशिश में रही हैं और हैं कि 'होम' में कलकत्ते के कोने-कोने से वे बच्चियाँ रहने-पढ़ने आएँ, जिन्हें माँ की मजबूरी तले अपना बचपन घोंटना पड़ रहा। स्वस्थ परिवेश और स्वस्थ वातावरण में वे पल-पुस सकें। भविष्य बना सकें।

केतकी दी की आँखें गीली हो आईं। फटकार की अवमानना से नहीं, प्रयत्नों की निष्फलता अनायास घुमड़ आई। 'होम' की देखरेख की पूरी जिम्मेवारी उनके जिम्मे हैं। दिन-रात वह बच्चियों के संग रहती हैं। उन्हें क्या खाना है, क्या पहनना है, कब नहाना है, किसे नहीं नहलाना है, किसे दूध पिलाना है सोने से पूर्व, किसे नहीं देना है! खाँसी-सर्दी के चलते सबके प्रति सतत चौकन्नी दृष्टि रखनी पड़ती है उन्हें। बच्चियाँ उन्हें 'दीदी माँ' कहकर पुकारती हैं। पुरबी दी ने ही सिखलाया है उन्हें।

विधवा होने के ठीक तीसरे वर्ष बच्चों से नाता तोड़ केतकी दी 'होम' को समर्पित हो गई थीं। चारों बहुओं की चाकरी करने की बनिस्बत उन्होंने शेष जीवन मथुरा, वृंदावन में गुजारने के बजाय जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाने का निश्चय किया। उनके विरक्त ऊबे तन-मन को प्रेरित करने का श्रेय पूर्णरूपेण पुरबी दी को ही जाता है। उन्होंने ही समझाया था—अपना घर-संसार वे भोग चुकीं। बहू-बेटों को अपना घर-संसार अपनी लाग-लगन के संग भोगने दें। वे आएँ और उन लोगों से जुड़ें, जिनको उनकी जरूरत है। देह-व्यापार के नरक में पड़ी सड़ रही निर्वासित दुर्गाओं की बच्चियों को पालें। देवी माँ की सेवा में मोहपाश खोलें। असली भक्ति करें···।

पुरबी दी सोदाहरण खड़ी थीं उनके सामने। दिवंगत पति के मित्र साहा साहब की ही तो इकलौती बेटी थी पुरबी दी! पुरबी दी ने न घर-संसार बसाया, न केतकी दी ने उन्हें कभी ब्याह न करने और स्वयं का घर-परिवार न रचने-गढ़ने पर बिलखते-संतप्त होते ही पाया। बस, एक ही धुन उनके सिर रात-दिन चढ़ी दिखी। देह-व्यापार में लिप्त मजबूर स्त्रियों की संतानों को, विशेष रूप से लड़कियों को उस नरक से बाहर खींच उन्हें भविष्य की समर्थ, दक्ष, विवेकपूर्ण, आत्मनिर्भर स्त्री बनाना है, जो अपने होने का रजिस्टर स्वयं आप बनें। पूँजी के अभाव में पुरबी दी ने अपने दो तल्ले के मकान को 'होम' में परिवर्तित कर स्थान की समस्या से छुटकारा पाया। बाबा वकील थे। टालीगंज में उनके छोटे से चैंबर को उन्होंने अपना दफ्तर बना लिया। उसी के नीचे एक कमरा स्वयं के रहने-खाने के लिए किराए पर ले लिया। 'लेक गार्डन' के पड़ोसियों और नाते-रिश्तेदारों ने उनके सामाजिक परोपकार की भावना को घर-फूँक तमाशा माना और बिन ब्याही युवती की सनक। आगे चलकर उसके विश्लेषणों में कुछ मौलिक अध्याय और जुड़े। मसलन, यह भी कि इसके पीछे सेवा-भावना कम, प्रचार पाने और सुर्खियों में बने रहने की महत्त्वाकांक्षा मुख्य पेंच है।

पुरबी दी ने न घर-संसार बसाया, न केतकी दी ने उन्हें कभी ब्याह न करने और स्वयं का घर-परिवार न रचने-गढ़ने पर बिलखते-संतप्त होते ही पाया। बस, एक ही धुन उनके सिर रात-दिन चढ़ी दिखी। देह-व्यापार में लिप्त मजबूर स्त्रियों की संतानों को, विशेष रूप से लड़कियों को उस नरक से बाहर खींच उन्हें भविष्य की समर्थ, दक्ष, विवेकपूर्ण, आत्मनिर्भर स्त्री बनाना है, जो अपने होने का रजिस्टर स्वयं आप बनें। पूँजी के अभाव में पुरबी दी ने अपने दो तल्ले के मकान को 'होम' में परिवर्तित कर स्थान की समस्या से छुटकारा पाया।

चादर देह से खींच पुरबी दी उठ बैठीं।

करवटों के अधीन निष्क्रिय पड़े रहना उन्हें वक्त को नाली में फिजूल उँड़ेल नष्ट कर देने जैसा कष्टकर लगा। सोचा, कॉफी बना लें और चैतन्य हो पढ़नेवाली मेज पर जा बैठें। संग ही रहनेवाली नौकरानी बूढ़ी मौसी को नींद से जगाना उचित नहीं लगा। यह अलग बात है कि उनकी आहट से कभी-कभार मौसी की नींद उचट जाती है और वे जिदिया जाती हैं कि वे ही उनके लिए कॉफी बनाएँगी। रसोई में चूहों की खटर-पटर ने याद दिलाया। मौसी ने न जाने कब से उनसे कह रखा है, एक चूहेदानी मँगवाने को। वे हैं कि उन्हें व्यस्तता में स्मरण ही नहीं रहता कि 'होम' में ही किसी के हाथ पैसे पकड़ा दें और चूहेदानी लाने का जिम्मा उसे थमा दें।

सुतपा ने शिकायत भरे लहजे में उन्हें टोका था—बच्चियों को समय के साथ जोड़ने के चक्कर में उनसे बहुत बड़ी गलती हुई है। जिस रोज से 'होम' में टी.वी. आया है, लड़कियों के लक्षण दिन-प्रतिदिन रंग बदल रहे। पियासी बड़ी है। उनकी सरदारी भी वही करती है। टी.वी. चलाना भी सीख गई है। उनका आदेश है कि रात खाना खाने के उपरांत बच्चों को दूरदर्शन समाचार सुनवाए जाएँ और एकाध ज्ञानवर्धक कार्यक्रम भी उन्हें दिखाए जाएँ। लेकिन केतकी दी के लाख मना करने के बावजूद लड़कियाँ नियम का पालन नहीं करतीं। फिल्मी नृत्य और गाने देखने का हठ ठान लेती हैं। एक बार तो उसने रात नींद उचटने पर देखा कि हॉल में टी.वी. चल रहा है और सभी फूहड़ अंग्रेजी गानों पर नाचनेवालों का अनुकरण करती हुईं, कमर मटका, छाती हिला रही हैं।

रूमा को उसने बहुत पहले यह बात बताई थी कि जो लड़कियाँ उसके लाख प्रयत्नों के बावजूद बाँग्ला का ककहरा ठीक से बोल-लिख नहीं पातीं, वे टी.वी. पर प्रदर्शित नृत्य और गीतों को इतनी जल्दी पकड़ लेती हैं कि देखकर दाँतों-तले उँगली दबा लेनी पड़ती है।

सुतपा का टी.वी. हटवा देने का प्रस्ताव पुरबी दी को तर्कसम्मत नहीं लगा था, न समस्या का हल। पढ़ने-लिखने की लगन अपनी जगह है, टी.वी. अपनी। पढ़ाई को लेकर और लगाव जब तक बच्चियों में पैदा नहीं होगा, पैदा नहीं किया जाएगा, तब तक पढ़ना उनके लिए जरूरत नहीं बन पाएगा। फिर देश, समाज, विश्व की सूचनाओं से उन्हें वंचित कैसे किया जा सकता है? उनके लिए यह भी जानना अनिवार्य है कि उनकी असली दुनिया और समाज कौन सा है। वह नहीं, जो आँखें खोलते ही उन्होंने अपनी माँ के इर्द-गिर्द देखा-पाया।

पियासी को वह किस मुश्किल से निकालकर ला पाई हैं!

माँ के दलाल ने उसे तीन हजार में एक ऐसी औरत को बेच दिया था, जो उसका धर्म-परिवर्तन कर, उसे 'जरीना' नाम देकर अपने संग 'जद्दा' ले उड़ने की तैयारी कर रही थी। पियासी की ही भाँति उसने तीन अन्य बच्चियों का सौदा कर रखा था। जद्दा में वह चकला चलाती थी। वहाँ के सख्त कानून के भय से वह बच्चियों को अपनी गोद ली बच्चियाँ बनाकर संग ले जा रही थी। पियासी की माँ ने ही पुरबी दी को गुहार लगाई थी। पुलिस की मदद से पुरबी दी ने पियासी समेत अन्य तीनों को भी छुड़ाकर अपने कब्जे में ले लिया था। पुलिस के हत्थे चढ़ते ही उस औरत ने सच्चाई कबूली थी कि वह युवतियों को खरीदकर अपने संग नहीं ले जाना चाहती। वे किसी भी भारतीय या पाकिस्तानी ग्राहक के संग मेल-मिलाप बढ़ाकर उसे छोड़ चंपत हो सकती हैं। लड़कियाँ उसी के संरक्षण में पलेंगी-बढ़ेंगी तो उसके नियंत्रण में रहेंगी।

मालिनी ने बताया—शिवानी और सुरंजना पढ़ती हैं या नहीं, मगर उसके कांथा और ब्लॉक प्रिंटिंग के प्रशिक्षण में वे गहरी रुचि ले रही हैं। अपनी नन्ही उँगलियों से सुरंजना जिस फुरती से सुई में धागा डालती है और कांथा के टाँके उठाती है, उसके लिए अचरज का विषय है। उसे तो यही लगता है कि सुरंजना टाँकों में कुछ और पारंगत हो जाए तो निश्चित ही देश की संभवत: सबसे छोटी कांथा कलाकार होगी।

सुनकर पुरबी दी के चेहरे पर क्षणांश संतोष की पुलक कौंधी। अगले ही पल तनाव के झुटपटे में बिला भी गई।

"वह तो सब ठीक है मालिनी! यह उनका अतिरिक्त गुण हो सकता है, मगर···पढ़ाई···पढ़ाई का क्या होगा?"

"अपना 'होमवर्क' यह स्वयं लिखकर क्यों नहीं लाती? समझाती नहीं रूमा, उन्हें तुम?" अपने स्वर की उग्रता उन्हें स्वयं चुभी थी।

"रोज ही समझाती हूँ। गौरी और शिवानी को छोड़कर शायद ही कोई और लड़की अपना होमवर्क स्वयं लिखकर लाती हो।···एक-एक के पीछे पड़ती हूँ, दी।

"सच तो यह है कि सभी को मैं उतना समय नहीं दे पाती, जितना दिया जाना चाहिए। कुछ दुष्ट भुच्च-सी निष्क्रियता ओढ़े प्रतीक्षा में ही बैठी रहती हैं कि मैं कब औरों से निपटूँ तो उनकी बारी आए!"

"मौखिक में भी कुछ नहीं करके आई हैं। सामने खूब कविताएँ सुनाती हैं···" रूमा की आवाज हताशा में थर्रा आई थी।···

उनका संघर्ष व्यर्थ जाता? नचनियाँ बनेंगी। चेहरे लीप-पोत माँ की भाँति चौराहों पर खड़ी हो ग्राहक फँसाएँगी? रिक्शे-ताँगेवालों से फँस बच्चे जनेंगी···उफ्···कुछ नहीं बदल पाएँगी वह···कुछ नहीं!

पुरबी दी के पाँव नदी के बीचोबीच उखड़ गए हैं। वे ऊभ-चूभ हो रही हैं। कोई टहनी हाथ नहीं लग रही कि जिसके सहारे वे लटक लें, बच लें।

कुछ लिखने लगी हैं, वे अपनी मेज पर बैठते ही।···डायरी के सीने में सिर रख रही हैं शायद! वही तो एक ठिकाना है—बाबा-माँ के न रहने पर, जहाँ उन्हें सहलाहट और थपकियाँ नसीब होती हैं।

कानून उनका विषय नहीं रहा। बाबा का विषय था। बाबा का सान्निध्य जैसे उनकी कक्षाएँ हो गईं। कम लड़ाई लड़ी उन्होंने इन बच्चियों को स्कूल में भरती करवाने के लिए! कब पैदा हुई, बाप कौन है इनका, माँ इन्हें लेकर खुद क्यों नहीं आती स्कूल? क्या उनके मन में ललक नहीं कि उनकी बच्चियाँ पढ़ें?

···अभागियों को 'सेक्स वर्कर' माना जाए। कानूनी मान्यता मिले 'सेक्स वर्करों' के रूप में। नागरिक सुविधाएँ मिलें। राशन कार्ड बने। पानी मिले। टट्टी मिले। चिकित्सा सुविधा मिले। वोट डालने का अधिकार मिले। सरकार की राजनीति लहलहाए। नए वोट-बैंक मिलें। वह तो पुरबी दी विरोध में कूद पड़ीं। नागरिक सुविधाएँ उनका बुनियादी अधिकार है। उसके लिए उन्हें 'सेक्स वर्कर' का तमगा पहनाने की कतई जरूरत नहीं। उनका अलग समुदाय बनाने की कोई जरूरत नहीं। वैसी परिस्थिति में 'सेक्स वर्करों' की औलादों का समाज की मुख्यधारा में विलय संभव होगा?

आम, इमली घूरे पर उगने से आम या इमली नहीं रह जाते? इसी समाज की वे हैं। उसी का अंग, अंश—तो उनकी औलादों को समाज से बहिष्कृत कैसे किया जा सकता है?

उन मजबूरियों के जबड़े तोड़ना जरूरी है, जो औरत के सामने देह का विकल्प परोसते बाज नहीं आते। पुरबी दी उसे ही तोड़ने निकली हैं।'''

कुछ ने स्वेच्छा से अपनी बेटियों को उनकी गोद में डाल दिया। कुछ अब भी अविश्वास से घिरी अपनी बेटियों को अपनी सीली छाती से चिपकाए अपने होने की ऊष्मा से सेंक रहीं। उन बस्तियों के बजबजाते अँधेरों को काटने वे लगभग रोज ही वहाँ पहुँच रही हैं। उन्हें मना-समझा रही हैं। अपनी जिंदगी के फंदे तो वह अपने मुताबिक बुन नहीं पा रहीं। बेटी-बेटों की बुन पाएँगी? कितने बेटों को पुरबी दी ने ले जाकर अनाथाश्रम में प्रवेश दिलाया है। वहीं रहें, पढ़ें, सीखें। वहाँ के अभाव उन अभावों से कहीं अधिक सुवासित हैं। कम-से-कम वहाँ किसी भविष्य का ककहरा तो है उनकी पाटी पर!

कुछ ने स्वेच्छा से अपनी बेटियों को उनकी गोद में डाल दिया। कुछ अब भी अविश्वास से घिरी अपनी बेटियों को अपनी सीली छाती से चिपकाए अपने होने की ऊष्मा सेंक रहीं। उन बस्तियों के बजबजाते अँधेरों को काटने वे लगभग रोज ही वहाँ पहुँच रही हैं। उन्हें मना-समझा रही हैं। अपनी जिंदगी के फंदे तो वह अपने मुताबिक बुन नहीं पा रहीं। बेटी-बेटों की बुन पाएँगी? कितने बेटों को पुरबी दी ने ले जाकर अनाथाश्रम में प्रवेश दिलाया है।

उमड़न का लावा अचानक यों ही तो नहीं फूट रहा। हाथ आँखें काँछने उठे पुरबी दी के।

—बेवकूफ बच्चियाँ नहीं जानतीं कि उनका फेल होना मात्र उनका फेल होना भर नहीं है, उनका फेल होना है'''उनके मोरचे का ढहना है'''वे स्वयं को कहीं रोप नहीं पाएँगी तो अँकुआएँगी कैसे''' ?

शायद सुपता का कहना गलत न हो। भोंडे नाच-गानों का अनुकरण करते देर नहीं लगती बच्चियों को! '''शायद यह भी सही हो कि देहों की भी किस्में होती हैं और वे अपनी किस्म को लेकर ही जनमती हैं, फलती-फूलती हैं।

आगे कलम निःशब्द हो रही है पुरबी दी की!

मटकती हैं तो कलम उनका ऐसे ही साथ छोड़ देती है'''

सुबह देर से आँख खुली पुरबी दी की।

मौसी ने पुकार मचाई। अचरज से भर। हारी-बीमारी में भी नियम टूटते कभी देखा जो नहीं, "ऊपर दफ्तर में नहीं बैठना आज?"

"इच्छा नहीं हो रही मौसी।"

"तबीयत तो ठीक है?" मौसी को मात्र उनकी इच्छा की बात सही नहीं लगी।

"कैसी हूँ, क्या बताऊँ!"

"राजरहाट जाना था न आज! कांथावाली औरतों की संगत करने।"

"सब व्यर्थ का आडंबर है।" वितृष्णा स्वर में दबंग हुई।

कुछ समझ में नहीं आया मौसी को। सवेरे की टहल में उलझ गईं वे। उलझे हुए ही पूछा, "दोपहर में खाओगी क्या?" दोपहर में छठे-छमासे ही उनके लिए रसोई बनती है। मौसी का पूछना अस्वाभाविक नहीं था।

"अपने लिए जो चाहो, सो बना लो। मुझे केवल एक कप कॉफी भर की जरूरत होगी। दूध मत डालना।" पुरबी दी ने कहकर आँखें मूँद लीं। उठने की शक्ति हो, तब तो उठ पाएँ।

पड़ी रहीं बिस्तर पर। कॉफी घुटकने भर के लिए उठीं। फिर लुढ़क गईं। दिमाग में रेत उड़ रही है। तूफानी आँधी चल रही है। रेत उन्हें जबरन समाधि दे देगी। वे समाधि ले लेना चाहती हैं। अपने आपको और कहाँ छुपाएँ? गले में बाँध टूट रहे। ऐसे लीलते दिनों से सामना होगा, सोचा नहीं था उन्होंने। यह टूटे बाँध आँखों के रास्ते बह रहे'''बाबा, बाबा! वे पुकार रही हैं अँधेरे में। बाबा का हाथ हाथ में नहीं आ रहा'''

दोपहर अढ़ाई के आसपास घर की घंटी ने बेसब्री दरसाई, तो मौसी को सने भात से हाथ खींच उठना पड़ा। झल्लाहट कुंडी खोलते ही अंतर्धान हुई—सामने खिली-खिली सी रूमा को खड़े पाया।

"पुरबी दी को तो बारह तक वापस लौट आना था राजरहाट से, ताला पड़ा हुआ है ऊपर दफ्तर में?"

मौसी ने बिस्तर की ओर इशारा किया, "घर छोड़ती, तब न पहुँचती।"

रूमा सिरहाने आ टिकी चिंतित-सी, "दी'''दी तबीयत?"

"उठना ही नहीं चाहती हूँ'''उठकर करूँ क्या?" पुरबी दी ने आत्मालाप-सा किया आँखें खोल।

अधीर रूमा अपनी बात पर आना चाहती थी। पूछा, "दी, आपने सभी लड़कियों के नतीजे के कार्ड गौर से देखे थे?"

"हाँ, अ ऽ-ऽ-ऽ-"

"गौरी और रत्ना का कार्ड भी देखा था?"

"सबके पढ़े तो उनका भी पढ़ा ही होगा।"

"नहीं पढ़ा। मेरा भी ध्यान नहीं गया आवेश में।"

"क्या मतलब?"

"रत्ना और गौरी का कार्ड उसमें था ही नहीं। उन्हें मिला ही नहीं था। कल उनकी क्लास-टीचर ही नहीं आई थी। आज मिले हैं उनके नतीजे के कार्ड। देखिए!"

कार्ड खोलकर रूमा ने उनकी आँखों के सामने फैला दिए। अनिच्छा से पुरबी दी की आँखों ने नंबरों पर दृष्टि डाली, "अरे ऽ-ऽ-ऽ, बच्चियाँ पास हो गईं।" पुरबी दी देह से चादर फेंक झपाटे से उठ बैठीं। पलंग पर तिरछे हो, उन्होंने रूमा को विह्वल हो अंक में भर लिया। आँखें 'भल' बहने लगीं। होंठ अस्फुट से बुदबुदा उठे, "मैं पास हो गई रूमा'''पास हो गई मैं'''!"

सा अ

जी-५७, मेधा अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेज-१ एक्स.
दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९८६३१२३२३६
chitramudgal1943@gmail.com

वह मेरा पिता...

• सूर्यबाला



जानी-मानी कथाकार तथा व्यंग्यकार। प्रमुख कृतियाँ हैं—'अग्निपंखी', 'यामिनी कथा', 'दीक्षांत' (उपन्यास), 'थाली भर चाँद', 'कात्यायनी संवाद' (कथा-संग्रह) तथा 'अजगर करे न चाकरी' व 'धृतराष्ट्र टाइम्स' (व्यंग्य)। बच्चों के लिए लिखा गया उपन्यास 'झगड़ा निपटारक दफ्तर' भी बहुत चर्चित हुआ। प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्याम दास सर्राफ पुरस्कार तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा आदि अनेक प्रसिद्ध संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

यह पिता दुर्धर्ष ऊर्जा का धनी था। यह बाँसुरी पर अल्हैया विलावल और हारमोनियम पर राग पीलू की बंदिशें निकालता था। अछूत कन्या, चंडीदास जैसी फिल्मों और जद्दन बाई जैसी उस जमाने की गायिकाओं की गाई बंदिशें भी निकालता था। पुरानी फिल्मों और शास्त्रीय गीतों के बीसों रिकॉर्ड भोंपूवाले ग्रामोफोन पर बजाता था। उसकी बच्चियाँ बड़े चाव से चारों तरफ बैठकर सुनती थीं। यह पिता हमारे साथ कैरम, बैगाडेल और साँप-सीढ़ी खेलता था। खेलते हुए माँ को भी आकर शामिल होने की आवाज लगाना कभी नहीं भूलता था।

दीवाली के हफ्ते भर पहले से गली में 'ले...दीया दीयली' की आवाज लगाकर मिट्टी के दीये बेचनेवालियों के टोकरे उझलवाकर सारे दीयों को पहले नादों में धुलवाता, फिर सूखने के लिए रखवाता था, जिससे दीवाली की रात हमारे कटावदार मेहराबों वाले तिमंजिले मकान की चारों तरफ की मुँड़ेरों पर सैकड़ों दीयों की कतारे जगमगा उठें।

अगली सुबह हम बच्चियाँ उन जल चुके दीयों को बटोरकर टिकुरी से तीन-तीन छेद करके मोटे धागे डालकर तराजू के पलड़े बनातीं, मोटी सीक की डंडी...और दीवाली पर आए खील, बताशों की दुकानें लगा, तौल-तौलकर बेचतीं। महीनों तक चलता यह खेल।

यही पिता दीवाली से तीन-चार दिन पहले रात में अपनी पलंग पर ताँबे के पैसों की ढेरी लगा, हम बच्चियों में बराबर-बराबर बाँटकर हमें तीन पत्ती, फ्लश सिखाता कि 'पेयर' से बड़ा 'फ्लश' और फ्लश से बड़ा 'रन'...और सबसे बड़ा, तीन इक्कोंवाला ट्रायो...

ऐसा नरम, ऐसा सख्त और ऐसा ममतालु कि हर रोज सुबह अपनी बेटियों को जगाने का एक नया तरीका ढूँढ़ता। बेतुकी ही सही, तुकबंदियाँ जोड़ता और गा-गाकर अपनी बुलंद आवाज में जगाता...

जागो मीनोल (मिन्नी...यानी मैं),
(अब तो) आँखें दे खोल...
कुएँ में ढोल,...ढमाढम बोल

और मैं आँखें मुलमुलाती, मगनमन मुसकराती उठ जाती।

स्त्रीवाद और कन्याभ्रूण हत्या के आतंकित कर देनेवाले इस समय में ऐसी सलोनी सच्चाइयाँ किसी अतींद्रिय करव सी ही लगती हैं, जबकि है यह एक अति सामान्य मध्यवर्गीय परिवार के पिता का सच।

वह समय या यह समय, दोनों हमारे ही तो बनाए हुए हैं...पता नहीं क्या, कैसे, शायद हम ही समय के हाथों अवश, अशक्त होते चले गए।

हाँ, बहुत सीधी, संतिनी-सी बड़ीवाली लाड़ली बेटी को जगाने के लिए कोमल छुई-मुई सी पंक्तियाँ बनाते, तो मँझली तेज-तर्रार जाँबाज मँझली बहन के लिए हंटर वाली नुमा एक पूरी मसखरी स्क्रिप्ट...कि—

'जानती हो तुम लोग? जब हमारी झाँसी की रानी जैसी सुलक्षणा, सविता, ससुराल जाएगी और अपनी आदरणीया सासूजी की किसी गलती पर धाड़ से बेलन चला देगी न!...तो कराहते-कराहते बेचारी औरत जो खत मुझे लिखेगी, उसका मजमून कुछ इस तरह का होगा कि—

'श्रीमान बाबू डिप्टी साहेब बहादुरजी के चरणों में सादर दंडवत्...प्रणाम...आगे समाचार यह है कि मेरे बेटे 'झगड़ू की दुलहिन ने' मुझ बेकसूर को दो बेलन मारा है—हल्दी-चूना लगाकर पड़ी दर्द से कराह रही हूँ।

अब आपसे करबद्ध विनती है कि मुझ पर रहम करिए। खत को 'तार' समझिए, जल्दी-से-जल्दी आइए और अपनी बेटी को ले जाइए, गलत मत समझिए। मैं वादा करती हूँ कि जरा ठीक हो जाऊँगी तो बल्कि वापस पहुँचा जाइएगा...'

हा-हा ही-ही की किलकारियों से सारा घर नहा उठता और दबंग मँझली ताबड़-तोड़ बाबूजी की पीठ पर छोटे-छोटे मुक्के मारने लगती...हाँ, मुक्त-विनोद के उन प्रहसनी क्षणों में यह सबकुछ माफ, सबकुछ की मंजूरी हुआ करती थी।

आँखों में आँसू और जुबान पर पैरोडियाँ

यह पिता मेरी माँ से जी भरकर नोक-झोंक किया करता। मखौल उड़ाता नहीं, मखौल करता। कभी उनको मिर्जापुरी कजलियों की पंक्तियाँ सुनाकर खिजलाता, तो कभी माँ की किसी पुरानी सखी को लेकर चिढ़ाता···जिसके बादामी पोस्टकार्ड में माँ के लिए 'सखीजी', तो पिता के लिए 'सखाजी' लिखा होता। सारा कुछ इस तरह कि चौंतीस की माँ से लेकर हम चार, छह, आठ बरस की बच्चियाँ तक उसमें शामिल हो लेते।

गंभीर शेरो-शायरी से लेकर रामचरित मानस की चौपाइयों तक की जाने कितनी द्विअर्थी पैरोडियाँ उनकी जबान पर होतीं। एकाध तो मुझे अभी तक याद हैं, जैसे—

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवश नरक अधिकारी॥'
को-जा, 'सुराज'। प्रिय प्रजा दुखारी··
'हेसुराज!' वापस जाओ··)

कहकर इस तरह बुलंद आवाज में तरन्नुम से सुनाते कि सुननेवाले लहालोट···

यह पिता जितनी वाक्पटुता से छतफोड़ ठहाके लगवाता, उतनी ही मृदुता से नरोत्तम दास का सुदामा-चरित पढ़कर अपनी आँखें डभाडभ कर लेता···जहाँ कृष्ण परात के पानी से नहीं, अपने आँसुओं से सुदामा के काँटों बिंधे पैर धो रहे होते हैं—

देखि सुदामा की दीन दसा,
करुना करि कै करुणा निधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहीं,
नैनन के जलसों पग धोये।

उर्दू के किसी कवि का एक ऐसा 'सुदामा-चरित' हमारे घर में था, जिसमें द्वारपाल द्वारा सुदामा के आने की सूचना पाकर कृष्ण का सुध-बुध भूल, विह्वल हो दौड़ पड़ना उनका सबसे प्रिय प्रसंग था। जब-तब गा उठते—

श्रीकृष्ण से प्रथम सुदामा,
या श्रीकृष्ण सुदामा से पहले-
लेखनी नहीं बतला सकती,
दोनों में कौन मिले पहले··

सस्वर गाई इन पंक्तियों पर पति-पत्नी दोनों की बावड़ी, पोखर सी आँखें आज तक मेरे अंदर जस-की-तस फ्रीज हैं।

अपना नाम रखनेवाला बच्चा-पिता

इस पिता के जन्म की कहानी और भी दिलचस्प है। अपने माता-पिता का एकमात्र 'जी गया' बच्चा था यह। जिया भी कैसे कि पैदा होते ही मालिश वाली नाइन को एक छेदवाले ताँबे के पैसे में बेच दिया गया। अपना न सही, नाइन का बच्चा होकर ही जी जाए। नाइन से ही नाम रखवाया गया, तो उसी छेदवाले पैसे की तर्ज पर उसने रखा—छेदी लाल।

लेकिन जब स्कूल में दाखिला कराया गया और मास्टर द्वारा नाम पूछने की बारी आनेवाली थी तो अचानक दिमाग में कौंधा—बाकी लड़कों के एक-से-एक शानदार नामों के आगे अपना भी कोई गँवारू-सा नाम हुआ। इसलिए चट्ट से बोल दिया, 'वीर प्रताप सिंह', यानी नेम के साथ 'सरनेम' भी··

खुद को दिए इस नाम के अनुरूप अपने हौसले भी इतने बुलंद रखे कि विधवा माँ के साथ बेमरम्मत होते जा रहे खँडहरनुमा घर में रहते हुए भी अपनी वकृतत्वता और जिंदादिली की वजह से शहर के नामचीनों के जोड़ीदार हो लिये। काशी के रइसों में राय साहब टोडरमल के छोटे भाई बीरबल बनाम बीरू और हिंदी हास्य-व्यंग्य के शिखर पुरुष कृष्णदेव प्रसाद गौड़, (बेढब बनारसी) उर्फ 'किसुन देव' का नाम भी उनके दोस्तों में शुमार था। एक जैसी गोल कत्थई टोपियों और हाथों में मूँठदार छड़ी लेकर बाकायदे स्टूडियो में खिंचवाया दोनों का चित्र बहुत दिनों तक हमारे घर की अलमारियों में सजा रहता।

बताती तो माँ यह भी थीं कि एक बार अपने दोस्त 'किसुन देव' की तंगी में अपनी माँ (दादी) का एक हाथ का सोने का 'बेरवा' (कड़ा) बेच आए थे या गिरवी रख आए थे। पर यह 'सदियों' पुरानी बातों के सिलसिलों के झूठ-सच का परिवारों से फायदा? उलटे 'वंशजों' के रोष का भय···इस घनिष्ठता में चुनार रियासत के पास का मानसिंह परिवार भी शामिल था, जिनके साथ शिकार के यादगारियों के रूप में दर्जनों बारहसिंगे की सींगें और चीते की खाल हम बड़ी शान से अपनी बैठक में सजाए रहते थे।

मध्यवित्तीय दुर्धर्ष योद्धा सजीला पति··

सुंदर कलात्मक वस्तुओं के संग्रह का शौक इतना कि परिचितों में, जो भी जिस शहर जा रहा होता, वहाँ की मशहूर वस्तुओं के लिए बाबूजी का 'ऑर्डर' पहले से उसके पास बुक होता। पता चलता कि किसी जमाने में माँ के लिए जूड़े के काँटे और जाली भी कलकत्ते से मँगवाई जाती थी। कश्मीरी कढ़ाईवाली 'ऊनी' साड़ी और हम बहनों की 'सर्ज' की ऊनी फ्रॉकें श्रीनगर से। सिर्फ मँगवाई नहीं जातीं, बल्कि बड़ी सावधानी से ठंड बीतने के बाद धूप दिखाकर नेफ्थलीन की गोलियों के साथ सुरक्षित रखी भी जाती थीं। इसलिए भी कि बड़ी बहन की छोटी हुई फ्रॉकें छोटी 'बहनें' पहन सकें। जूते, सैंडिलें और चप्पलें तक। बहुत मेहनत की जाती, जुटाई हुई चीजों की साज-सँभाल की। आखिर थी तो यह एक मध्यवित्तीय गृहस्थ की ही चादर, जिसके बाहर पैर फैलाने का हश्र वह बखूबी जानता था। इसीलिए सपने देखने और उन्हें पूरे करने की तरकीबें निकालना उसने सीख लिया था। पहनने की पोशाकों तक में चुन्नटदार बाँहों वाले कुरते, अचकन, शेरवानी से लेकर तरह-तरह के डिजाइन के सूट, हैट और टोपियों तक कोई ऐसा शौक और फैशन न था, जो उन्होंने न आजमाया हो, लेकिन घर फूँक तमाशा देखने की हिमाकत कभी नहीं की। पता नहीं कितनी बरक्कत थी उनकी हाथ की रेखाओं में!

इस सुदर्शन, दुर्धर्ष और संजीदे व्यक्ति ने लड़ाइयाँ भी कुछ कम नहीं लड़ीं, अपनी कुल पचास-बावन साल की जिंदगी में।

विभागीय साजिशों से लेकर सड़कछाप गुंडों तक से अपनी तरह से निपटे। मुकदमों की तारीखों-पर-तारीखें पड़ती रहतीं। दफ्तर के बाद पसीना पोंछते, इक्के रिक्शे पर दौड़-भाग होती रहती, लेकिन डटे रहे हर मोरचे पर। कभी कहीं से हारकर नहीं लौटा यह योद्धा।

अम्माँ को नाज था, अपने इस अनुशासनप्रिय, शालीन और दबंग बेशक गुस्सैल भी पति पर…जो जवानी में मुद्गर भाँजता रहा था और पचास की पकी उम्र में चिढ़ाने के लिए ही सही, ठुमके लगा सकने के संकेत भी दे दिया करता था। घर या बाहर मर्दानों में बैठे हैं, लेकिन ध्यान अंदर जनाने में हो रहे गीतों और ढोलक की थाप पर…किसी स्त्री ने जरा बेताली ढोलक बजाई नहीं कि बाहर से फरमाइश आ जाती कि ढोलक फलानी (माँ) के हाथ में दे दी जाए। बेसुरा, बेताल संगीत किसी हालत में बरदाश्त नहीं।

बाकी जीवन के सुर-ताल भी साधकर ही चले। उसूलों से नहीं डिगे कभी, चाहे अंग्रेजी शासन के जमाने में अपनी मध्यवित्तीय आजीविका पर मुअत्तली की गाज तक गिरने की नौबत क्यों न आ जाए।

तभी तो गरमी में दौरे पर आए कमिश्नर साहब को बर्फ का ठंडा पानी न पिला पाने पर 'सस्पेंडेड' का ऑर्डर बेधड़क स्वीकार लिया था…क्योंकि इस उसूल के पक्के जाँबाज डिप्टी इंस्पेक्टर ने महकमे की गाड़ी सिर्फ बर्फ लाने के लिए दूसरे शहर भेजने से इनकार कर दिया था। यह नियम विरुद्ध जो था।

बहुत बड़ा करिश्मा घटा था यह उन वर्षों के सरकारी नौकरियों के इतिहास में…कि 'सस्पेंशन' का आदेश वापस ले लिया जाए…कारण? इस पिता के समर्थन में उनके विभाग के आधे से ज्यादा कर्मचारियों ने विभाग को अपने 'इस्तीफे' सौंप दिए थे। और स्थानीय अखबारों ने एक ईमानदार तथा बेदाग कॅरियरवाले शिक्षाधिकारी के सस्पेंशन की भर्त्सना खुली टिप्पणियों के साथ प्रकाशित की थी।

यह प्रसंग हमें माँ ने बताया था और बचपन के तीस वर्ष बाद अनायास लिख गई मेरी कहानी 'होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!' के शीर्षक से 'सारिका' के विजयदशमी विशेषांक (वर्ष?) में प्रकाशित हुई थी। पाठकों ने बहुत सराहा था इस कहानी को।

सा
अ

बी/५०४ रुनवान सेंटर,
गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार चेंबूर,
मुंबई-४०००८८ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०९९३०९६८६७०

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

जड़ें और शीर्ष

• उषाकिरण खान



सुपरिचित लेखिका। हिंदी में चार उपन्यास, पाँच कथा-संग्रह प्रकाशित, सौ से अधिक लेख एवं रिपोर्ताज (असंकलित), तीन पूर्णकालिक नाटक मंचित, दो बाल नाटक, कई नुक्कड़ नाटक मंचित, बाल उपन्यास एवं कथाएँ प्रकाशित। राष्ट्र-भाषा परिषद्, बिहार का 'हिंदी-सेवी सम्मान', 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' तथा 'राष्ट्रकवि दिनकर पुरस्कार' से सम्मानित। सेवानिवृत्त (विभागाध्यक्ष), बी.डी. कॉलेज, मगध विश्वविद्यालय। संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

अन्नपूर्णा और विनयजी ने मिडल स्कूल से साथ ही विदाई ली। अन्नपूर्णा रामदेव कन्या मध्य विद्यालय की प्रधानाचार्या और विनयजी सारंग मध्य विद्यालय के गणित शिक्षक। दोनों खुशी-खुशी विदा होकर अपने छोटे से दो कमरों के घर में लौटे। घर के आगे बहुत ही छोटा सा खुला स्थान था, जहाँ कुछ फूल-पौधे लगे थे, जो समयाभाव के कारण खाद-पानी को तरसते रहते। आते ही विनयजी ने एक प्यार भरी नजर बगीचे पर डाली। सोचा, अब सबसे पहला काम इन्हें सँवारना है। घर साफ-सुथरा तो था, पर कई सालों से मरम्मत नहीं होने के कारण जर्जर दिखाई पड़ता था। चौके की हालत सबसे दयनीय थी। लकड़ी और लोहे की जालीवाली अलमारी जर्जर हो गई थी। एक पुराना फ्रिज था, जिसकी मरम्मत करा काम लिया जा रहा था। अन्नपूर्णाजी ने माला, चादर, बैग, उपहार बैठक के तख्त पर रखे और चाय बनाने चौके में घुस गईं। विनयजी ने भी अपने सारे उपहार तख्त पर ही रखे तथा नलके पर हाथ-मुँह धोने लगे। अन्नपूर्णाजी चाय के साथ मठरी लेकर आ बैठीं। थोड़ी देर दोनों चुपचाप चाय की चुस्कियाँ लेते बैठे रहे। फिर विनयजी ने कहा, "हम अब इत्मीनान से जागा करेंगे, बागवानी करेंगे, किताबें पढ़ेंगे। कोई जल्दबाजी नहीं रहेगी।"

अन्नपूर्णा मुसकराईं, "हूँ, आपके मुफ्ती छात्रों का क्या होगा?"

"वे आते रहेंगे।" हँसकर बोले।

विनय बाबू ने अपने बेटे की तरह अनेक जरूरतमंद छात्र-छात्राओं को मुफ्त में ट्यूशन पढ़ाया। पर वर्ष में दो-चार से अधिक नहीं लेते। उनके पढ़ाए छात्र सदा सफल रहते। यह भी नहीं था कि वे परीक्षण करके छात्र लेते। पहले आओ, पहले पाओ का टेक था। जैसे इनका बेटा आई.आई.टी. उत्तीर्ण प्रबंधन में महारत प्राप्त कर बड़ा अधिकारी बन गया, वैसे ही अन्य छात्र भी बैंक से लेकर इंजीनियरिंग तक में प्रवेश पा गए। आज के जमाने में ये अजब दंपती रहे। अन्नपूर्णाजी प्रिंसिपल रहते हुए अनेक विकासात्मक कार्य करती हुई अकिंचन् रहीं। दूसरे लोगों की तरह पुस्तक, खेल-सामग्री, इमारत निर्माण, फर्नीचर वगैरह खरीद में हिस्सा न लिया। गणित के शिक्षक कोचिंग कर लाखों का वारा-न्यारा करते, सो न कर मुफ्त पढ़ाते। बेटी को पढ़ाकर विवाह करने और बेटे को ऊँची पढ़ाई कराने में सारे प्रोविडेंट फंड खाली हो गए। अन्नपूर्णाजी के कान, गला, कलाई सूने हैं। सोने-चाँदी के सारे गहने, जो भी मायके-ससुराल से मिले थे, बेच डाले। सोना-चाँदी की जगह मोती-मनके पहनतीं। काँच की चूड़ियाँ शोभा थीं अन्नपूर्णा की कलाई की। पर अपनी बेटी तथा बेटे के सफल, सुखी संसार से संतुष्ट थे ये दंपती।

दोनों मनोयोग से अपने पुराने घर को सँवारने में लग गए थे। फूल, घास, पेड़ लगाते विनय बाबू और घर के परदे सिलती, बदलती, साग-सब्जी उगाती अन्नपूर्णा। आजू-बाजू की सहेलियों के लिए भी वक्त था। वर्ष भर सब ठीक रहता, बरसात में घर चूने लगता कई कोनों से। दोनों को जो अत्यल्प रिटायरमेंट का लाभ मिला, उससे छत की मरम्मत करा सुकून आ गया था। बाहर-भीतर दीवारों पर साधारण चूना करवा पाए, जिससे 'फील गुड' तो हुआ। दिन सुख से गुजर रहे थे। स्कूल के पुराने साथी जब आते तो तरह-तरह के उपाय सुझाते—

"यार विनय, पुराना पलस्तर झाड़कर नया करवा लो। पी.ओ.पी. करवा लो, बढ़िया पेंट करवा लो। ऊपर एक फ्लैट बनवा लो। किराए पर लगा देना।" विनय सुनते रहते।

"अन्नपूर्णाजी, आपका बेटा और बहू इतनी बड़ी नौकरी में हैं, उन्हें कैसा लगता होगा यहाँ आकर, क्यों नहीं घर पूरा तोड़कर नए डिजाइन का बनवा लेती हैं?" एक जनी कहती।

"कब तक भाईसाहब स्कूटर घसीटते रहेंगे, गाड़ी क्यों नहीं खरीद लेते हैं? बेटा इतना बड़ा आदमी हो गया।" दूसरी कहती।

"नया फ्रिज ले लीजिए, किचन ठीक कर लीजिए।" तीसरी कहतीं।

विनय कुमार दंपती गंभीर थे, सो चुपचाप सुनते। एक दिन एक पड़ोसी मित्र आए। यह छोटी सी सरकारी कॉलोनी थी, सभी रहवासियों का प्लॉट ढाई कट्ठे का था, आगे-पीछे के गलियारे को इस्तेमाल कर पौने तीन कट्ठे का हो गया। पड़ोसी मित्र ने बड़ी शाइस्तगी से इसे समझाया

कि हम दोनों क्यों न मकान बिल्डर को दे दें, कुछ आमदनी भी हो जाएगी। विनय बाबू को धक् से लगा।

"यह ठीक रहेगा? जमीन चली जाएगी, आकाश में टँगे रहेंगे।"

"हमने भी यही सोचा था, विनय बाबू। अपने हाथ का लगाया अमरूद, आम फल रहा है। फूल-पत्ती शोभा बढ़ा रहा है, मोह लगा था। पर देख रहे हैं कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ रही है, अगोरना कठिन हो गया है। अमरूद और आम के समय कब कोई ढेला आकर आपका सिर तोड़ दे, सो ठिकाना नहीं। फूल-पत्ती अपने घर के देवताओं को कभी चढ़ा नहीं पाते। असुरक्षा भी बढ़ गई है सिंगल घर में।" पड़ोसी ने मायूस होकर कहा।

"सोचता हूँ।" कहकर विनयजी चुप हो गए, मित्र चले गए। दिन भर उदास रहे वे। पत्नी ने लक्ष्य किया और पूछा कि क्या हुआ है? इन्होंने चुप रहना मुनासिब समझा।

"क्या सोचा विनय बाबू?" आपके खंड में कम-से-कम चार तल्ला होगा चार फ्लैट का, सोलह पूरा। ८ फ्लैट तो पक्का, बात विचार कर एक और हो सकता है। रहिएगा एक ही फ्लैट में, बाकी बेचकर फिक्स कर दीजिएगा रुपया, नया घर होगा, गाड़ी सवारी ले लीजिए, एन्जॉय कीजिए; कभी देवघर चले जाइए, कभी थावे।" बोलकर हँसने लगे। विनय बाबू को भी हँसी आ गई।

"आप अच्छे विक्रेता हो सकते हैं। थे ऑडिटर, पर खरीद-बिक्री खूब समझते हैं।"

"अरे मास्टरजी, सरकार में जो रहता है, यही तो सीखता है।" हें-हें कर हँसने लगे पड़ोसी।

विनय बाबू ने अन्नपूर्णाजी को सारी बात बताई। अन्नपूर्णाजी पहले से जानती थीं। उन्हें भी मुहल्ले की औरतों से पता चला कि इस पुराने मुहल्ले की ओर भी बिल्डर की नजर है। तीन-चार प्लॉट मिलाकर बड़ी बिल्डिंग बन जाएगी मल्टी स्टोरी। विनय बाबू को आश्चर्य हुआ।

"तुमसे भी प्लॉट देने की बात की किसी ने पूछा?"

"नहीं, वह नहीं पूछा, परंतु ऐसा विचार चल रहा है, लाभ-हानि क्या है, यह स्त्रियाँ बातें कर रही थीं। चमकदार नई टाइलें और लिफ्ट सबको आकर्षित कर रहा है। आर्थिक लाभ भी है।"

"तुम क्या सोचती हो?"

"मुझे अपना घर तो प्यारा लगता है, पर जैसा ठीक समझिए, कीजिए।"

"वाह, मैं अकेला क्यों सोचूँ?" विनयजी ने कहा, वह हँस पड़ी। ऐसे ही समय बेटे संजीव और बहू नंदा का फोन आ गया कि उन्होंने एक घर खरीदा है। गृह-प्रवेश है, अतः माँ-बाबूजी अवश्य आएँ। उन्हें ही गाँठ जुड़वाकर गृह-प्रवेश लेना है। बेटे ने कहा, "बाबूजी, मुझे दुनियादारी नहीं आती, आपका ही बेटा हूँ। माँ आएँगी तो सब कायदे से हो जाएगा।"

बहू ने कहा, "अम्माँजी, घर आपके लिए ही खरीदा है। अम्माँ, रीता दीदी और जीजाजी को भी बुलाया है।" तुरंत बेटी रीता का फोन आया। उसका बोलते-बोलते गला भर आया। आज मेरा भाई संजीव बेंगलुरु में घर खरीद रहा है। अम्माँ सब तुम्हारे सत्र का फल है, वरना पापा जैसा औघड़ इनसान से गृहस्थी चलती?"

"नहीं बेटी, आखिर पढ़ाया उन्हीं का है, मैं तो घर और स्कूल की नौकरी करती रही।"

"अम्माँ, आप गले में धागों की माला पहनती हैं, कान-कलाई सब में काँच और मोती। अपना सारा गहना बेचकर संजीव को लायक बनाया। अब समय आया है, वह करेगा अम्माँ।" बेटी के उछाह को लगाम लगाने की गरज से बात बदल दी थी। सचमुच बड़ा भव्य अपार्टमेंट था और चार कमरों वाला इनका फ्लैट। खुला-खुला सा बालकॉनी वाला। तीन साल का बेटा पूरे फ्लैट में दौड़ लगाता रहा। अन्नपूर्णाजी के लिए पीली दक्षिणी कांजीवरम् साड़ी जड़ी किनारेवाली खरीदी थी बहू नंदा ने। चूड़ियाँ खुद लेकर आई थी सासूमाँ। विनय बाबू सिल्क का कुरता और पीतांबरी धोती में सज रहे थे। नंदा के बेंगलुरु में बस रहे इंडस्ट्रियलिस्ट माता-पिता तथा भाई-बंधु और संगी-साथी आए थे। एहतियातन नंदा ने अन्नपूर्णा को नया सोने का कड़ा और हार पहना दिया। कान में हीरे का बुंदा पहनाते वक्त बहू से कहा, "इसकी क्या जरूरत है?"

"अम्माँ, आप हमारी अम्माँ हैं, ऐसे ही रहना है आपको।"

सकुचाती रही अम्माँ ने गृह-प्रवेश की विधियाँ पूरी कीं। बेटी अपलक माँ को देख रही थी। पूजा समाप्त होने के बाद वह अपना नेग-न्योछावर लेकर लौट गई। एक हफ्ते बाद विनय बाबू ने बेटे से लौटने की चर्चा की।

"नहीं पापा, यह चार कमरे का घर आप लोगों के लिए ही तो लिया है। वहाँ कहाँ जाइएगा?" बेटे ने मनुहार से कहा।

"हाँ, पर घर जैसे-तैसे छोड़ आए हैं।"

"घर बेच लीजिए न, हमारे लोन चुकाने में भी आसानी होगी।"

विनय बाबू का कलेजा धक् से रह गया।

"ठीक है, उसके लिए भी जाना होगा न!"

लौटने का टिकट बन गया। लौटने से पहले बहू ने अम्माँ के सारे गहने उतरवा लिये।

"कहाँ ले जाएँगी अम्माँ, चोरी-चकारी हो जाएगी।" अन्नपूर्णा ने सारे गहने उतारकर दे दिए। धागा-मोती ही फिर पहन लिये। मन दोनों का बेहद खिन्न था। शुक्र था कि हवाई यात्रा थी। जल्दी घर पहुँच गए। इत्मीनान की साँस ली। अपना घर, जिसकी ईंट-ईंट में संघर्ष की दास्तान चिनी हुई है, उसकी बात ही कुछ और है। यह हरियाली, उमस, सीलन जाना-पहचाना है। विनय बाबू और अन्नपूर्णा बेंगलुरु से आकर अधिक चुप्पे हो गए। इन दिनों दो बड़े और दो छोटे छात्र पढ़ने आते। वे छोटे बच्चों को अधिक मनोयोग से पढ़ाते। गणित के अलावा छोटे छात्रों को अन्य विषय भी पढ़ाने लगे।

एक दिन बरामदे से उतर रहे थे कि पैर उलटा पड़ गया। मुड़ जाने से गिर गए। उठने में तकलीफ हो रही थी, जमीन पर पैर रख ही न पा रहे थे। तभी इनके अहाते में दोनों बड़े बच्चे पढ़ने आ रहे थे, वे दौड़े, 'क्या हुआ सर को?'

"आंटीजी, आइए।" एक चिल्लाया, उन्होंने बरजा।

"पैर मुड़ गया है, उठ नहीं पा रहा हूँ। सहारा दे दो।" दोनों छात्र सहारा देकर उठा रहे थे कि अन्नपूर्णा आ गईं। स्थिर स्वभाव की अन्नपूर्णा भी घबरा गईं। तीनों ने उठाकर बरामदे में पड़ी कुरसी पर बिठा दिया।

अन्नपूर्णाजी ने दर्द निवारक दवा लगाई। कोई फर्क नहीं पड़ा। सूजन बढ़ रही थी। गरम पानी ले आईं, उसमें विनयजी का पैर डाला। उसी समय दो पड़ोसी आ गए।

"मुझे लगता है कि डॉक्टर के यहाँ चलें, एक्स-रे करा लें।" एक पड़ोसी ने कहा।

"नहीं भाई, गरम पानी से छूट जाएगा दर्द।" विनयजी ने आना-कानी की।

"नहीं भाईसाहब, डॉक्टर के यहाँ ले चलिए।" अन्नपूर्णाजी ने प्रतिवाद किया, "जाओ मुन्ना, रिक्शा ले आओ।"

रिक्शा आया। विनयजी को सँभालकर पड़ोसी बैठे। छात्र और अन्नपूर्णा विनयजी के स्कूटर से चले। वहाँ जाना कितना जरूरी था, यह जाने पर पता चला। एक्स-रे हुआ। विनयजी के पैर में हेयरलाइन फ्रैक्चर था।

"इस आयु में सिर्फ क्रेप बैंडेज से काम नहीं चलेगा सर।" विनयजी के पूर्ववर्ती छात्र डॉक्टर ने उन्हें समझाया। ना-नुकुर के बाद भी डॉक्टर ने प्लास्टर चढ़ा दिया, छह हफ्ते के लिए। दो-चार दिनों तक दर्द में रहे, फिर धीरे-धीरे ठीक हो गया। सुबह होते ही अन्नपूर्णाजी खाट बरामदे में लगा देतीं, फाइबर की कुछ कुरसियाँ और टेबल लग जाता। विनय बाबू की गप-गोष्ठी चलती, पठन-पाठन चलता रहा। कभी के छात्र रहे डॉ. सुभाष आते रहते। एक दिन पूछा, "सर, संजीव को खबर कर दी?"

"क्यों, तुम हो न, उसे इतनी छोटी बात के लिए कहना जरूरी है क्या?"

"मैं तो हूँ सर, पर वह बुरा मानेगा। न हो तो उसका फोन नंबर दें, मैं बात कर लूँगा, यह भी कह दूँगा कि चिंता की कोई बात नहीं।" वैसे चिंता की बात थी, विनय बाबू का गिरना अनायास नहीं था, उनका ब्लड प्रेशर बेहद बढ़ा हुआ था। यह बहुत दिनों का रोग होगा। डॉ. सुभाष ने पूरा इलाज अपने जिम्मे कर लिया। विनयजी को कभी पता नहीं चला कि डॉक्टर से संजीव की क्या बात हुई। वह नाराज था कि 'बेकार अम्माँ-पापा गाँव लौटे। उसे और उसकी पत्नी को स्टेट्स एक बड़े कॉन्फ्रेंस में जाना था। अब बच्चा छोटा है। फुलटाइम मेड है घर में, पर उस पर छोड़कर जाना रिस्की होता है; गाँव में क्या रखा है? अब अभी मैं तुरंत लौटकर आया हूँ, आप लोग देख ही रहे हैं, ठीक है।'

एक दिन बेटी रीता किसी स्कूल में प्रैक्टिकल की एक्सटर्नल बनकर आई थी, घर आना स्वाभाविक था। पापा को प्लास्टर चढ़ा देखकर रोने लगी।

"आप लोगों से रोज बात होती है अम्माँ, कहा क्यों नहीं?"

"ऐसा क्या हुआ रीता, तुम कमजोर तो नहीं इतनी।" पापा ने हँसकर कहा। माँ भी मुसकराती रहीं।

"मैं अब जाऊँगी ही नहीं।"

"ऐसा नहीं होता है? घर है, स्कूल है?"

"स्कूल मेरे बिना चलेगा और घर भी।" चार-छह दिन रीता रह गई। माँ-पापा ने समझा-बुझाकर विदा किया। रीता हर महीने आने का कहकर रुखसत हुई।

लगभग एक माह बाद बेटे का फोन आया, "पापा कैसे हैं? प्लास्टर कटा?"

"अच्छा तो रीता ने तुम्हें बता दिया? कोई खास बात नहीं है।" हँसकर बोले विनयजी।

"नहीं पापा, सुभाष भैया ने बताया था।"

"अच्छा?" विनय बाबू की सारी चहक चुप हो गई। इसे पता था पहले दिन से और यह अब हालचाल ले रहा है। सुभाष ने मुझसे जिक्र तक नहीं किया। बेटे ने आने में असमर्थता जताई। उनका बड़ा कॉन्फ्रेंस बेंगलुरु में होनेवाला था, जिसका प्रबंध देखना था, चुपचाप सुनते रहे विनयजी।

अगला हफ्ता प्लास्टर कटने, फिजियोथैरैपी करने में बीता। छड़ी लेकर फ्लैट में टहलने लगे विनयजी। सबकुछ पहले जैसा जान पड़ता। परंतु नीचे जाकर बागवानी का शौक खत्म सा हो गया। बरामदे पर तख्त वैसे ही बिछा था, कुरसियाँ लगी थीं। विनयजी टहल-घूमकर बैठे थे। बगीचे के जामुन की फुनगी विदा लेते सूरज की आभा से अरुण हरित दिख रही थी। तभी पड़ोसी मित्रगण आए, कुशल पूछा।

"तख्त पर बैठकर पहली बार हरे को सुनहरा, फिर लाल होते देख रहा हूँ भाई।" विनयजी ने कहा। शीर्ष की ओर देखा।

"पहली बार क्यों?"

"सदा धरती की ओर देखता रहा, वृक्ष की जड़ें देखीं, फुनगी की शोभा कहाँ देखी?"

"बड़ी गहरी बात कह गए। इससे लगता है कि आप पूर्ण स्वस्थ हो गए हैं।"

"बिल्कुल।"

"सोचने का अच्छा वक्त मिल गया होगा। बिल्डर मात्र आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। नक्शा बनाकर बैठा है। हम लोगों को तब तक के लिए शिफ्ट करने के लिए फ्लैट खाली रखे हुए हैं। अब तो निर्णय लीजिए।" मित्र ने कहा

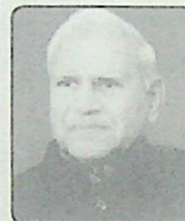
"मैं भी अपनी जमीन दूँगा मित्र, कल सुबह कागजात सौंप दूँगा। एग्रीमेंट लेकर बिल्डर को आने को कह दीजिएगा।" विनयजी ने कहा।

मन पर से बोझ हट गया। विवाह के कुछ वर्षों बाद ही इस कॉलोनी का निर्माण हुआ था, बेटी स्कूल जाने लगी थी, बेटा गोद में था। अन्नपूर्णाजी की कमाई से घर चलता, विनयजी की सारी कमाई बैंक लोन में कट जाती। घर अपना हो गया था, जहाँ जामुन और आम अमरूद के पेड़ लगे हैं। ओड़हूल, कनेल और हरसिंगार है। संध्या, बेली-चमेली भी हैं। छोटे से आँगन और बगीचेवाला यह घर था, अब बहुमंजिली इमारत का हिस्सा होगा, जहाँ गमलों में बोनसाई उगाए जा सकेंगे। परंतु यह रात विनयजी को गहरे सुकून की निस्वप्न गहरी निद्रा दे गई। (सा अ)

१, आदर्श कॉलोनी,
श्रीकृष्ण नगर, पटना-८०००१
दूरभाष : ०९३३४३९१००६

तेरी मजबूरियाँ समझता हूँ

● बालस्वरूप राही



जाने-माने रचनाकार। मूलतः गीतकार। 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण', 'जो नितांत मेरी हैं', 'जिद बाकी है' (गीत-संग्रह), 'राग-विराग' (ऑपेरा), 'राही को समझाए कौन' (गजल-संग्रह), 'दादी अम्माँ मुझे बताओ', 'हम जब होंगे बड़े', 'बंद कटोरी मीठा जल', 'हम सबसे आगे निकलेंगे', 'गाल बने गुब्बारे', 'सूरज का रथ' (बाल-गीत-संग्रह हिंदी व अंग्रेजी में)। उत्कृष्ट लेखन के लिए 'प्रकाशवीर शास्त्री पुरस्कार', 'साहित्यकार सम्मान', 'अक्षरम् सम्मान', 'परंपरा पुरस्कार' सहित अन्य अनेक सम्मान।

: एक :

गर न ये किस्से सँभाले जाएँगे,
पुस्तकों तक में हवाले जाएँगे।

हो गए हैं सब अँधेरे की तरफ,
अब कहाँ बचकर उजाले जाएँगे।

बुद्धिजीवी फिर इकट्ठे हो गए,
फिर जरूरी प्रश्न टाले जाएँगे।

जिनकी कोशिश है कि कुछ बेहतर करें,
नाम उनके ही उछाले जाएँगे।

आँकड़े उनको पढ़ेंगे बैठकर,
लोग कंप्यूटर में डाले जाएँगे।

यंत्र-मानव में बदल दें जो हमें,
सब उन्हीं साँचों में ढाले जाएँगे।

बेजुबानी का जमाना आ गया,
अब यहाँ खरगोश पाले जाएँगे।

ये शहर दोजख सही पर देखना,
हम यहाँ से भी निकाले जाएँगे।

मिल गया राही सच्चाई का सिला,
पेट में सूखे निवाले जाएँगे।

: दो :

वक्त के कुछ ऐसे पैमाने रहे,
खूब मालामाल तहखाने रहे।

लोग तो परदेस तक पर छा गए,
हम मोहल्ले में भी अनजाने रहे।

अजनबी क्योंकर हमें पहचानते,
हम तो अपनों में भी बेगाने रहे।

जाने-महफिल की शमा, छाई रही,
हम तो परवाने थे परवाने रहे।

वाहवाही लूट ली मक्कार ने,
सीधे लोगों पर तो जुर्माने रहे।

अब नशा है, पहले होता था सरूर,
अब न वो मैकश, न पैमाने रहे।

माँ पड़ी बीमार तो माँगा यही,
मेरा बच्चा मेरे सिरहाने रहे।

शौक सौ-सौ पालता है आदमी,
हम तो बस तेरे ही दीवाने रहे।

सादगी का साथ छोड़ेंगे नहीं,
हम ये जिद हर हाल में ठाने रहे।

सब हकीकत ढूँढ़ते राही जनाब,
आप तो बस एक अफसाने रहे।

: तीन :

जब भी बेहद बढ़ी परेशानी,
सूखे पौधे को दे दिया पानी।

तेरी मजबूरियाँ समझता हूँ,
मुझको होती नहीं है हैरानी।

छोड़ तुझको किसे मैं अपनाऊँ,
कौन दुनिया में है तेरा सानी?

हम तो मासूमियत समझते हैं,
लोग कहते हैं जिसको नादानी।

भोला बचपन भी हो गया चालाक,
जब हकीकत समाज की जानी।

आप ही को बहुत मुबारक हो,
ये बिना बात की मेहरबानी।

जो बताते महात्मा खुद को,
असली सूरत है जानी-पहचानी।

दोस्त क्योंकर खफा है मन-ही-मन,
मैंने कब की किसी से मनमानी!

राह मंजिल की ही चुनेंगे हम,
हमने हर मोड़ पर यही ठानी।

इसको शेरों में ढाल दो राही,
बेशकीमत है आँख का पानी।

: चार :

शायरी है नौजवानी की अदा,
हो गया बूढ़ा जो, वो शायर है क्या!

मीर, गालिब, जौक, मोमिन हो कोई,
जिंदगी को आखिरी दम तक जिया।

अक्ल से परहेज लाजिम हो गया,
इश्क में जब भी हुआ दिल मुब्तिला।

कह दिया मैंने कि गरदन दुख रही,
जब कहा हालात ने आ, सर झुका।

हाले-दिल कह तो दिया, कह तो दिया,
क्या कहूँ मैं, क्यों कहूँ मैं सौ दफा ?

सुन के मेरा शेर उसने दाद दी,
मुँह से निकला मेरे सहसा या खुदा!

उसका चेहरा अधढका था जुल्फ से,
फूल उसको देखकर आधा खिला।

मुद्दतों से अपना मुँह देखा न था,
दोस्तों ने आईना दिखला दिया।

साथ दो जिसका दो बड़ी शिद्दत से दो,
दिल ने राही के हमेशा ये क्या कहा।

: पाँच :

इतना बुरा तो तेरा भी अंजाम नहीं है,
सूरज जो सवेरे था वही शाम नहीं है।

पहचान अगर बन न सकी तेरी तो क्या गम,
कितने ही सितारों का कोई नाम नहीं है।

आकाश भी धरती की तरह घूम रहा है,
दुनिया में किसी चीज को आराम नहीं है।

पीने को मिले मय तो तकल्लुफ है कहाँ का,
पी ओक से किस्मत में अगर जाम नहीं है।

मत सोच कि क्या तूने दिया तुझको मिला क्या,
शायर है जमा-खर्च तेरा काम नहीं है।

ये शुक्र मना इतना तो इंसाफ हुआ है,
तुझ पर ही तेरे कत्ल का इलजाम नहीं है।

माना वो मेहरबान है, सुनता है सभी की,
मत भूल कि उसको भी करम आम नहीं है।

उठने दे जो उठता है धुआँ दिल की गली से,
बस्ती वो कहाँ है जहाँ कोहराम नहीं है।

टपकेगा रुबाई से तेरी खून या आँसू,
राही है तेरा नाम तू खैयाम नहीं है।

सा अ

डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल
मॉडल टाउन, दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

मनोबल

दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

राजा का एक हाथी था, जिसे राजा बहुत प्रेम किया करता था। सारी प्रजा का भी वह प्रिय पात्र था। उसकी प्रिय पात्रता का कारण उसमें अनेक गुण थे। वह बुद्धिमान एवं स्वामिभक्त था। अपने जीवन में उसने बड़ी यशोगाथा प्राप्त की थी। अनेक युद्धों में अपनी वीरता दिखाकर उसने राजा को विजयी बनाया था। अब वह हाथी धीरे-धीरे बूढ़ा हो गया था। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया, जिससे वह युद्ध में जाने लायक नहीं रहा।

वह एक दिन तालाब पर पानी पीने गया। तालाब में पानी कम होने से हाथी तालाब के मध्य में पहुँच गया। पानी के साथ तालाब के बीच में कीचड़ भी खूब था। हाथी उस कीचड़ के दलदल में फँस गया। वह अपने शिथिल शरीर को कीचड़ से निकाल पाने में असमर्थ था। वह बहुत घबराया और जोर-जोर से चिंघाड़ने लगा। उसकी चिंघाड़ सुनकर सारे महावत दौड़े। उसकी दयनीय स्थिति को देखकर वे सोच में पड़े कि इतने विशालकाय हाथी को कैसे निकाला जाए? आखिर उन्होंने बड़े-बड़े भाले भौंके, जिसकी चुभन से वह अपनी शक्ति को इकट्ठी करके बाहर निकल जाए, परंतु उन भालों ने उसके शरीर को और भी पीड़ा पहुँचाई, जिससे उसकी आँखो से आँसू बहने लगे।

जब यह समाचार राजमहल में राजा के कानों में पड़ा, वे भी शीघ्र गति से वहाँ पहुँचे। अपने प्रिय हाथी को ऐसी हालत में देखकर राजा के आँखों से आँसू बह निकले। कुछ सोचकर राजा ने कहा, "बूढ़े महावत को बुलाया जाए।" बूढ़े महावत ने आकर राजा को सलाह दी कि हाथी को बाहर निकालने का एक ही तरीका है कि बैंड लाओ, युद्ध का नगाड़ा बजाओ और सैनिकों की कतार इसके सामने खड़ी कर दो। राजा ने तुरंत आदेश दिया कि युद्ध का नगाड़ा बजाया जाए और सैनिकों को अस्त्र-शस्त्र के साथ सुसज्जित किया जाए। कुछ ही घंटों में सारी तैयारियाँ हो गईं। जैसे ही नगाड़ा बजा और सैनिकों की लंबी कतार देखी। हाथी को एकदम से स्फुरणा हुई और वह एक ही छलाँग में बाहर आ गया। नगाड़े की आवाज ने उसे भूला दिया कि मैं बूढ़ा हूँ, कमजोर हूँ और कीचड़ में फँसा हूँ। नगाड़े की आवाज ने उसके सुप्त मनोबल को जगा दिया। युद्ध के बाजे बज जाएँ और वह रुका रह जाए, ऐसा कभी नहीं हुआ था।

जीव में मनोबल ही श्रेष्ठ है। जिसका मनोबल जाग्रत् हो गया, उसको दुनिया की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। जो मन से ही कमजोर है, वह किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता।

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

खिड़की

• गोविंद मिश्र



सुप्रसिद्ध साहित्यकार। दस (उपन्यास), तेरह (कहानी-संग्रह), पाँच (यात्रा-वृत्तांत), छह (संस्मरण), पाँच (साहित्यिक निबंध), एक कविता-संग्रह एवं ग्यारह विविध विषयों की पुस्तकें, एक जीवनी तथा कई कृतियों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित। प्रेमचंद पुरस्कार, व्यास सम्मान, सुब्रमण्यम भारती पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, भारत-भारती सम्मान, सरस्वती सम्मान से अलंकृत।

अपने पति रोहित और उसके बीच बात को तो वहीं खत्म कर दिया सुधा ने···लेकिन उथल-पुथल उसके भीतर दूर तक चलती गई, चलती रही। कहाँ तक जाएगी वह इस रास्ते? उसकी अपनी पारिवारिक सीमाओं और जनार्दन बाबू की अपनी प्रतिष्ठागत सीमाओं की वजह से अगर वह जनार्दन बाबू के साथ स्थायी रूप से रहने से बची रही तो भी बीच कहीं कितनी ऐसी, मिलती-जुलती परिस्थितियाँ हो सकती हैं—अभी वह दिन-दिन में ही वहाँ होती है, कभी अँधेरे तक रुकना पड़ा तो, रात को जाना पड़ा तो··· ? वे कभी बीमार हुए तो क्या रात को भी उनके यहाँ रुक जाएगी वह? जनार्दन बाबू का कोई भी कहना नहीं टाल पाती···अगर उन्होंने ही कहा···

मना कर सकती है क्या वह उन्हें?

रिनोवेशन का काम खत्म हुआ। मजदूर लोग पिछली शाम अपना सामान समेटकर चले गए थे। दूसरे दिन सुधा ने जनार्दन बाबू के यहाँ पहुँचते ही सीधे अपने कमरे जाकर नोटबुक उठाई और रसोईघर से शुरू किया—एक-एक कमरे में जाकर मिलान करेगी, उस कमरे के मुतल्लिक जो-जो चीजें उसकी नोटबुक में दर्ज थीं, वे हुई या नहीं।

जनार्दन बाबू अपने बेडरूम में खिड़की के नीचे रखी आरामकुरसी पर अधलेटे से बैठे एक किताब में व्यस्त थे। सुधा उस कमरे में पहुँची तो बोले, "आओ···आओ सुधा। भई तुमने तो घर की कायापलट करवा दी।"

"अच्छा लगता है न अब?"

"हाँ, चीयरफुल! मेरे इस कमरे की तो तुमने इतनी शक्ल बदल दी है कि अब यहाँ से उठने का ही मन नहीं करता। बाहर स्टडी में तभी जाता हूँ, जब किसी से मिलना होता है। मेरे एक-एक टेस्ट का खयाल रखा तुमने और मुझसे बिना पूछे। कैसे जान गईं तुम?···"

सुधा झेंप गई···जितना वह जानती है जनार्दन बाबू को, दूसरा और कौन जानता होगा···वह हलके गर्व से भर गई।

"एक-दो दिन जब यहाँ काम चल रहा था, आपको दूसरे कमरे में रहना पड़ा···"

"अरे, वह कुछ नहीं। आओ बैठो···यहीं बैठकर कॉफी पीते हैं। कमरे के नए 'लुक' को सैलीब्रेट किया जाए···" जनार्दन बाबू ने कॉफी वहीं लाने के लिए रामू को आवाज लगा दी।

बड़ी आरामकुरसी जिस पर जनार्दन बाबू तब थे, उसके सामने एक छोटी कॉफी टेबल—ये तो सुधा की लिस्ट में थे, कॉफी टेबल के सामने, इस तरफ यह आधी आरामकुरसी रखी है न, एकदम खड़ी, जैसी कुरसियाँ दफ्तर में हैं···न ही पूरी आरामदेह···जैसी वह जो सामने थी, जिस पर जनार्दन बाबू बैठे थे। यह दफ्तरवालियों से थोड़ा बड़ी··· बीच में आरामदेह— कट···उसने अपनी नोटबुक पर उड़ती-उड़ती नजर डाली···हाँ···उसकी लिस्ट में यह भी थी, इसी डिजाइन की। क्या यह उसने अपने लिए? मतलब, वह जानती थी कि वही इस पर बैठा करेगी—जनार्दन बाबू पूरी रिलैक्स मुद्रा में बड़ी कुरसी पर सामने, आधा आरामदेह इस कुरसी पर वह···मंत्रालय में उनकी पुरानी सलाहकार, अब उनके ट्रस्ट की डायरेक्टर। दोनों के रिटायरमेंट के बाद अब घर में साथी भी—कंपेनियन!

सुधा उस कुरसी पर बैठ गई।

"इस कमरे की सजावट···सजावट नहीं···वह तो यहाँ है ही नहीं··· बिछावट कहिए, जब पहली बार देखी तो लगा कि तुम मुझे जितना समझती हो, उतना जीवन में किसी ने नहीं समझा। मैं यही···इतना ही चाहता था। कोई दूसरा होता तो मुझे खुश करने की खातिर या ज्यादा उत्साह में इसे फूहड़ सजावट से भर देता। यह कमरा तुमने इतना प्रीतिकर बना दिया। कमरे का भी व्यक्तित्व होता है, वह भी एक दोस्त की तरह तुम्हारा साथ दे सकता है। यहाँ रहकर, इस खिड़की से बगीचे···वहाँ

पौधे⋯हरियाली और दूर के पेड़⋯इन्हें देखते हुए जिंदगी काटी जा सकती है। अच्छा सुधा! तुम्हें नहीं लगता, जरूरत से ज्यादा सजावट नहीं, सादा सजावट है, जो आदमी का सहारा बनती है।"

"उसे हमारे स्वभाव से मेल खाता हुआ भी होना चाहिए।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यही है जो मेरे स्वभाव से⋯"

"मैं नहीं जानूँगी तो और कौन जानेगा!"

एक लहर जनार्दन बाबू के भीतर, नीचे उन्हें सिहरन से भरते हुए उतर गई। कहाँ थी यह⋯थी तो, लेकिन पहले कभी इसमें यह नहीं दिखा कि वह उन्हें इतना समझती है और उसके अनुसार इतना खयाल रख सकती है!

"और क्या-क्या जानती हो मेरे बारे में?"

"एक-एक करके गिना तो नहीं सकूँगी⋯जरूरी भी नहीं है। आज जितना जरूरी है, वह जानती हूँ⋯कल जो जरूरी होगा, उसे अपने में से निकाल लाऊँगी। वह मेरे अंदर अभी भी है, भले उसे इस तरह न जानती होऊँ, जैसे आप बताने को कहते हैं।"

रामू कॉफी की ट्रे ले आया, साथ में दो अजवाइन स्ट्रा, जो सुधा ने रसोई में खास रखवाए थे—जनार्दन बाबू जब भी चाय या कॉफी लें, साथ में ये जरूर रखे जाएँ। खाली पेट चाय-कॉफी कतई नहीं। जब पहली बार रामू ये स्ट्रा चाय के साथ लेकर आया था, तभी जनार्दन बाबू ने समझ लिया था कि जरूर रसोई में यह सुधा का जोड़ा हुआ आइटम होगा।

"अच्छा सुधा!" रामू के चले जाने के बाद जनार्दन बाबू ने कहा, "घर तो तैयार हो गया। अब आगे मुझे क्या करना है⋯यह बताओ?"

"आप बेहतर समझते हैं।"

"पिछले दिनों मैं यह सोचता रहा हूँ कि मेरी जिंदगी का ज्यादा हिस्सा राजनीति में बीता है, शायद इसीलिए मैं बाकी जिंदगी भी उसी से, उसके आसपास की चीजों से भरने की सोचा करता हूँ⋯जबकि संसार में, जीवन में इसके अलावा और कितनी चीजें हैं। क्यों हम वही-वही करना चाहते हैं, जो करते रहे हैं, क्या उसके अलावा कुछ और जानते नहीं⋯इसलिए?"

"आपने इतना पढ़ा है, दूसरी चीजों के बारे में आप जानते नहीं⋯ यह नहीं माना जा सकता।"

"फिर क्यों मैं उन्हीं-उन्हीं चीजों पर आ जाता हूँ⋯चाहे ट्रस्ट खड़ा करना हो, जिसकी तुम डायरेक्टर हो, चाहे ट्रस्ट का एक गाँव गोद लेने की प्रोजेक्ट हो⋯"

"च्वॉइस की बात है। हम जानते तो कितनी चीजें हैं, करने के लिए कुछ को ही चुनते हैं⋯यह हमारी च्वॉइस है।"

"मुझे हमेशा अपने लिए की जानेवाली चीजों की बनिस्पत समाज के लिए की जानेवाली चीजें ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगीं⋯लेकिन अब लगने लगा है कि बाहर तो सिर्फ खेल है⋯चलता रहेगा, मुझ जैसे कितने आए, चले गए⋯और आएँगे, वे भी चले जाएँगे⋯तो अब वह खेल दूसरों के लिए छोड़ मैं अपना खयाल करूँ, शेष जीवन अपने लिए जिऊँ⋯लेकिन तब लगता है कि उम्र के इस मुकाम पर पहुँचकर वहाँ किया ही क्या जा सकता है, असल तो जा चुका, बचा ही नहीं कुछ?"

"जो बचा है⋯क्या पता वही असल हो?"

"क्या⋯?"

"जीना⋯पहले आप जो सामने था, उसमें इधर से उधर होते थे, वही जीना लगता होगा⋯पर वह था क्या। अब जो चीजें आप अपने लिए सँजो रहे हैं, माने अपने लिए जी रहे हैं। तो जिंदगी और बेहतर ढंग से जिएँ।"

"बेहतर माने⋯?"

"माने जो आपको ज्यादा तृप्ति देता है, ज्यादा प्रीतिकर लगता है वह करें।"

"तुमने इतनी अच्छी दिनचर्या तो बिठा दी है। उसके हिसाब से चल रहा हूँ।"

"वह तो दिनचर्या है, दिन काटने और स्वस्थ रहने के लिए। उसमें अब दिल को भरनेवाली चीजें जोड़िए।"

"वे कौन सी चीजें हैं?"

"यह हमें ही अपने लिए ढूँढ़ना होता है।"

"तुमने ढूँढ़ लीं, तुम्हारे अपने लिए कौन सी चीजें हैं?"

"जो मैं कर रही हूँ। मन की चीजें हमारी दिनचर्या में आ जाएँ तो फिर हमें और क्या चाहिए।"

"तुम तो बड़ी समझदार हो भाई।"

"आपको ऐसा लगता है। आपके जितना पढ़ा नहीं है⋯शायद इसलिए⋯"

जनार्दन बाबू सोच में पड़ गए। सचमुच बहुत पढ़ा-लिखा होना भी बाधा है। इस मायने में महिलाएँ जीवन की बड़ी व्यावहारिक समझ रखती हैं, बुनियादी चीजों से जुड़ी रहती हैं⋯आजीवन। इस तरह जीवन से सटकर चलती हैं।

"अच्छा सच बताओ⋯मेरे लिए जो तुम इतना करती हो, यह अपने मन की वजह से या मुझे उपकृत करने के लिए?"

"उपकृत माने⋯?"

"तुम्हें लगा होगा कि पहले मैंने तुम्हारे लिए इतना किया, अपना विशेष सलाहकार बनाया⋯उसका प्रतिदान करना चाहिए, ऋण महसूस करती हो, उऋण होना चाहती हो।"

"इस तरह अलग-अलग खानों में मैं नहीं सोच पाती⋯सबकुछ मिला-जुला है, जो अब मेरा मन बन गया है। मैं जो भी करती हूँ⋯किसी भी तरह की बाध्यता से नहीं, मन करता है, इसलिए करती हूँ। करती भी क्या हूँ⋯जीती हूँ अपनी जिंदगी⋯यहाँ, इस तरह⋯"

"और जीना सिखा रही हो मुझे⋯" जनार्दन बाबू ने थोड़ा हँसते हुए जोड़ा।

"उस काबिल मैं नहीं हूँ।"

"तुम्हें मुझसे कोई खतरा महसूस नहीं होता?"

"आपके साथ मैं पहले भी सुरक्षित थी, अब भी हूँ।"

"तुम्हारी नजदीकियों से मैं ही खतरा महसूस करता होऊँ तो⋯?"

"उससे खतरा महसूस क्यों हो? जब महसूस हो सकता था, जब हमारी उम्र थी···तब तो महसूस किया नहीं।"

"तब बाहरी समाज, प्रतिष्ठा वगैरह का डर रहा होगा।"

"आप में वह डर कभी नहीं था, न अब है। खतरा-वतरा···ये तो खयाल हैं, जो किताबों से आप तक आते हैं, आपके स्वभाव से नहीं उपजते।"

जनार्दन बाबू सोचने लगे तो सुधा ने उन्हें जो सामने था, उधर खींचा—

"बाकी घर भी देख लूँ। मेरी लिस्ट के हिसाब से सारा काम हो गया कि नहीं, कुछ बाकी रह गया होगा तो मोहन को लिखा दूँगी। वह सी.पी.डब्ल्यू.डी. से बात कर लेगा।"

"मेरा यह कमरा देख लिया?"

"इसके लिए तो सर्टिफिकेट भी मिल गया।"

सुधा हँस दी, कॉफी का आखिरी घूँट लेकर उठ गई।

"गाँव का क्या सोचा?" जनार्दन बाबू चाहते थे, वह और बैठे।

"अगली बैठक में इस बाबत बात करूँगी। अभी यह देख लूँ।"

सुधा चली गई तो कमरे में सूनापन उतर आया। 'तो क्या यह कमरा इसलिए खूबसूरत था कि सुधा यहाँ बैठी थी···बड़ी-बड़ी बातें जो कमरे के बारे में सुधा से कहीं, वे···'

सुधा से यह कौन सा संबंध है, जो उन पर लता की बेल की तरह चढ़ता चला आ रहा है, उनके दिल-ओ-दिमाग को चिपकने के लिए दीवार-सा बनाते हुए। सुधा पिछले कितने वर्षों से साथ रही है···करीब-करीब लगातार। कभी उससे अंतरंग होने का मन हुआ तो जनार्दन बाबू स्टियरिंग को दफ्तर के काम की तरफ मोड़ देते थे, पीछे-पीछे सुधा चली आती···वह भी खुद को काम में डुबो लेती।

तब कुछ नहीं हुआ, क्योंकि जनार्दन बाबू दूसरे नशे की गिरफ्त में थे। सुधा की तरफ से कुछ यों नहीं हुआ, क्योंकि जनार्दन बाबू···का कद इतना बड़ा था, उसे वह हमेशा एक अभेद्य दीवार जैसे खड़े दिखते होंगे। राजनीति का नशा उतरा, वे खाली हो गए तो यह रंग चढ़ना शुरू हुआ, सुधा के लिए दरवाजा खुला तो वह भी चली आ रही है···

क्या यह प्रेम है? उम्र अब प्रेमवाली तो नहीं। सुधा का स्पर्श वह स्फुरण नहीं पैदा करता जैसा कि स्मृति का शरीर छू जाने पर हुआ था। वहाँ झनझनाहट हुई थी, यहाँ थमा-थमा सा सुकून महसूस होता है···क्या इसलिए कि स्मृति युवा है, सुधा उम्र के उतार पर। दोनों ही उनकी बौद्धिकता से प्रभावित हैं, स्मृति तो करीब-करीब फिदा है। दोनों ही विवाहिता हैं। स्मृति के साथ कोई लंबा संबंध बनता नहीं दिखता, जबकि वह विवाहित जीवन से अलग अपना कोई आधार तलाश रही है। सुधा के साथ बन रहा क्या बन गया है, क्या सामीप्य की सुविधा या कि दोनों की उम्र में बहुत फासला नहीं है, इसलिए या इसलिए कि उनका साथ पुराना है!

क्या यह प्रेम है? उम्र अब प्रेमवाली तो नहीं। सुधा का स्पर्श वह स्फुरण नहीं पैदा करता जैसा कि स्मृति का शरीर छू जाने पर हुआ था। वहाँ झनझनाहट हुई थी, यहाँ थमा-थमा सा सुकून महसूस होता है···क्या इसलिए कि स्मृति युवा है, सुधा उम्र के उतार पर। दोनों ही उनकी बौद्धिकता से प्रभावित हैं, स्मृति तो करीब-करीब फिदा है। दोनों ही विवाहिता हैं। स्मृति के साथ कोई लंबा संबंध बनता नहीं दिखता, जबकि वह विवाहित जीवन से अलग अपना कोई आधार तलाश रही है। सुधा के साथ बन रहा क्या बन गया है, क्या सामीप्य की सुविधा, या कि दोनों की उम्र में बहुत फासला नहीं है, इसलिए, या इसलिए कि उनका साथ पुराना है।

जनार्दन बाबू का लाख मन करे···सुधा उनके साथ यहाँ चौबीस घंटे क्या, एक-दो घंटे से ज्यादा नहीं रह सकती। जो वह कर सकती है, कर रही है—घर सँभाल देना, ऐसी व्यवस्था कर देना, जिससे कि उनकी जिंदगी ज्यादा से ज्यादा आरामदेह हो सके। इधर वे हैं कि बढ़े चले जा रहे हैं···आगे···और आगे। आश्रित होने की आदत जिसे एक बार पड़ी तो वह और ज्यादा आश्रित होता चला जाता है, पूरी तरह टिक जाना चाहता है, अपना सारा बोझ साथी पर लाद देना चाहता है।

अगर उनकी जरूरत यह है कि एक महिला उनके साथ यहाँ चौबीसों घंटे रहे तो जनार्दन बाबू अभी भी सुधा को वहीं स्थापित कर दें, जहाँ वह पहले थी, इतने सालों रही। चौबीसों घंटे साथ रहने के लिए कोई दूसरी ढूँढ़ लें···अपनी उम्रवाली, विधवा होगी तो वह और बाहर लोग भी जनार्दन बाबू का उस महिला के लिए उपकार ही मानेंगे। सुधा सालों से साथ है, तभी वह उन्हें इतना समझती है, उसी से यह माधुर्य उपजता है···पूरे समय का साथ सुधा का ही हो सकता है। किसी नए के साथ···वह प्रयोग ही होगा, आज नहीं कल धमाका होगा···तब वे उससे दूर होने की कोशिश करेंगे, हुए तो हंगामा मचेगा···'जनार्दन बाबू इतने क्रूर!'

कितना अजीब···कि राजनीति से छुट्टी पाकर, पत्नी के दिवंगत होने, परिवार के न होने के बाद भी जनार्दन बाबू बँधे हुए हैं···वह भी उन्हीं चीजों से। जैसे कैद में हैं। साधारण जीवन—जिसे जीने का सोचते हैं—उसके लिए भी स्वतंत्र नहीं। सींखचे···थोड़ा दूर पर गड़ी जरूर हैं, अब भी चिलकने लगती हैं···

और सुधा कहती है कि खतरा-वतरा न वे पहले महसूस करती थी, न अब करती हैं···

गलत, जनार्दन बाबू को भले ही उनकी पार्टी ने एक किनारे फेंक दिया हो, जनता में वे अब भी उसी पार्टी के सम्माननीय सदस्य हैं। पब्लिक-फिगर हैं, फ्रेम में जड़े हुए। वृहत्तर समाज या देश में जिनकी पहचान बन जाती है, उन पर बंदिश लगातार रहती है···वे अपने मन का जो चाहे नहीं कर सकते। फिल्मी दुनिया में छूट होती है···यों कि वहाँ उनकी ख्याति-कुख्याति पहले से ही—परदे पर उन्हें बदल-बदलकर किसी के भी साथ देखकर बनी होती है। वहाँ कोई किसी के साथ बिना

विवाह रह सकता है, दूसरा-तीसरा विवाह कर सकता है, पत्नी…बच्चों के होते हुए विवाह कर सकता है…

जनार्दन बाबू ऐसा कुछ नहीं कर सकते; क्योंकि समाज में उनकी एक छवि है।

□

सुधा की तैयारी आज ट्रस्ट संबंधित कई मुद्दों पर बातचीत के लिए थी, लेकिन जनार्दन बाबू का मन नहीं दिखा तो वह उठ गई। खिड़की का परदा उठा दिया तो सामने का भव्य दृश्य कमरे में घुस आया। सुधा मुग्ध…वहीं ठिठकी खड़ी रह गई, सामने के दृश्य में डूबी। बाहर खिड़की के नीचे फूलों की क्यारी, फिर लाल मुरम की पगडंडी…फिर हरी घास का फैलाव…उस पार ऐसा ही…रंग ही रंग। आखिर में एकदम पीछे मझोले दरख्तों की कतार…हवा में झूमते वे पेड़ जैसे पूरे घर में पंखा सा झलते थे…

"कितना खूबसूरत नजारा दिखता है यहाँ से…" बाहर के दृश्य में खोए-खोए सुधा ने कहा।

जनार्दन बाबू भी उठकर पीछे से आ गए। सामने प्रकृति का वह दृश्य, जो खिड़की खोलती थी…बगल में सुधा, जिसने वह खिड़की खोली। प्रकृति सुधा के रास्ते उनमें उतर रही थी।

"हाँ, लेकिन मेरे ध्यान में यह कहीं नहीं थी, इसे जीवित किया तुमने। तुम्हें भले पता न हो…यह विचार कि यहाँ से यह दृश्य दिखेगा, मैं उसे देखा किया करूँगा, उससे मुझे शक्ति मिलेगी…ये तुम्हारे सोचने से नहीं आए। इन्हें तुम्हारा मन लाया…जो तुम मेरे लिए महसूस करती हो वह…सुधा तुम मेरे लिए इतना करती हो…और मैं तुम्हें कुछ नहीं दे पाता…यह पछतावा मुझे छोड़ता नहीं।"

"तुमने यह खिड़की मेरे लिए खोली, इसकी वजह से मेरा यह कमरा भी खिल उठा।"

"खिड़की तो पहले से ही थी।"

"हाँ, लेकिन मेरे ध्यान में यह कहीं नहीं थी, इसे जीवित किया तुमने। तुम्हें भले पता न हो…यह विचार कि यहाँ से यह दृश्य दिखेगा, मैं उसे देखा किया करूँगा, उससे मुझे शक्ति मिलेगी…ये तुम्हारे सोचने से नहीं आए। इन्हें तुम्हारा मन लाया…जो तुम मेरे लिए महसूस करती हो वह…सुधा तुम मेरे लिए इतना करती हो…और मैं तुम्हें कुछ नहीं दे पाता…यह पछतावा मुझे छोड़ता नहीं।"

"मुझे तो मिल जाता है। कितना कुछ…"

"जैसे…"

"जैसे…जैसे…यह स्वतंत्रता ही—कि मैं इस घर को वह रूप दे सकती हूँ, जो मैं चाहती हूँ। मुझे यह घर अपना घर लगता है। यहाँ वह है, जो मेरे उस घर में नहीं है…अपनत्व की सुगंध उठती है यहाँ की दीवारों से…"

"बस…यही…" जनार्दन बाबू उचक गए, जैसे इस शब्द की तलाश उन्हें कब से थी, यह उन्हें सुधा से ही मिलना था! यह उन्हें अपनी पहचान देना था, उसको भी, जो उन दोनों के बीच था।

"हाँ, अपनत्व ही। सुधा! प्रेम से भी बड़ी चीज है यह। प्रेम की आयु इतनी लंबी नहीं होती। प्रेम का तो पता नहीं कितने दिन रहे, रहे न रहे…अपनत्व बराबर रहता है। यह नदी की वेगवती धारा नहीं, मद्धिम गतिवाला स्थायी बहाव है। हमारे बीच यह पहले भी था, सालों…जब तुम मेरे साथ मंत्रालय में रहीं, हमेशा रहा, यहाँ तक चला आया—जहाँ तुम मंत्री की सलाहकार से चलकर मेरे जीवन की सलाहकार हो गई हो।"

सुधा के चेहरे पर लाली बिखर गई। गोरी वह थी ही…चेहरे से जैसे लाल किरणें फूट रही थीं। उन्हें किसी-किसी तरह सँभाले हुए वह अपने कमरे की तरफ चली, जनार्दन बाबू सोचते रह गए…

'सुधा उनके साथ कब से है…पहले कभी इतनी सुंदर नहीं दिखी। किसी व्यक्ति के भीतर का प्रेम ही है, जो उसे हमारे लिए सुंदर बनाता है। गलत थे वे, जो कभी यह सोचते थे कि सुंदरता प्रेम को उकसाती है। सुंदरता…वह होती ही इसलिए है कि वहाँ प्रेम है। सुंदर व्यक्ति में अगर हमारे लिए प्रेम नहीं है तो हमारे लिए साधारण ही है। सुधा कुशल गृहणी की तरह घर का इंतजाम इस तरह करती है, जैसे यहाँ रहती हो…जनार्दन बाबू की सेहत का खयाल रखती है, उनके एक-एक मनोभाव की पहचान है उसे। वह आती है तो घर रोशनी से भर जाता है।'

प्रेम स्थायित्व की माँग करता है—नई आयु हो तो अपने साथी को पूरा पाने, विवाह आदि की तरफ दौड़ता है…और नहीं तो चौबीसों घंटे साथ रहने की चाहना ही…जैसी कि जनार्दन बाबू के मन में अब भी अक्सरान उठ बैठती है। उनके और सुधा के बीच जो है…उसे पहचानने, फिर उसे जीने के लिए जो शिक्षा, समझदारी, प्रौढ़ावस्था चाहिए…वह दोनों के पास है। फिर…

'ऐ जनार्दन बाबू!'

अपनत्व को बचाए रखना है तो उसे प्रेम के पागलपन से दूर रखना होगा, प्रेम के ताप से कहीं वह झुलस न जाए। सुधा में तुम पूरी तरह डूब न जाओ…इससे बचने के लिए जरूरी है कि यह याद रखो कि तुम नेता पहले थे, जीवन भर रहे—सफल या असफल, सवाल यह नहीं है—अब भी वह हो।

नेता को भर्त्सना और तिरस्कारों की नजरों से ही क्यों देखा जाए, जैसी कि आज फैशन है—नेता माने गया-गुजरा, राजनीति माने गंदा काम। क्या कोई नेता तभी है जब वह मंत्री-सांसद-विधायक…या कम से कम किसी पद पर हो…

तुम लिखो। अपने अनुभवों से सीख लेते हुए, देश को दिशा-निर्देश देने के खयाल से, ईमानदारी से, पार्टी विचारधारा से खुद को मुक्त रखते हुए, स्वतंत्र होकर लिखो…

अवकाश प्राप्त, उम्रदराज नेता का वह भी एक काम है।

सा अ

एच.एक्स.-९४, ई-७
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०१४
दूरभाष : ९८२७५६०११०

चार लघुकथाएँ

• बलराम अग्रवाल



जाने-माने लघुकथाकार। 'चन्ना चरनदास', 'दूसरा भीम' (बालकथा-संग्रह), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी। अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद तथा कई संपादित पुस्तकें। बारह खंडों में प्रकाशित 'प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ' में संपादन सहयोग; हिंदी साहित्य कला परिषद्, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को अद्यतन संपादन सहयोग।

पंचर वाला

"जब से ट्यूबलैस टायर चले हैं न साब," पहिए के नट खोलते हुए पंचरवाले ने बात चलाई, "धंधा एकदम आधा रह गया है। पहियों में हवा भरने के सहारे ही चल रही है रोटी।"

"सो तो है!" जनाधार बोला, "नाम क्या है आपका?"

"इस्कूल-मदरसा तो कभी गए नहीं।" वह बोला, "इसलिए, जैसा आप पूछ रहे हैं, वैसा तो कोई नाम नहीं है।"

"वोटिंग कार्ड पर क्या नाम लिखा है?"

"वोट डालने लायक हई कब ये देस!" वह बोला, "ज्यादातर तो बूथ पर हमारे पहुँचने से पहले ही डल चुका होता है!"

"राशनकार्ड, आधार कार्ड पर...?" उसकी शिकायत को नजरअंदाज कर जनाधार ने पूछा।

"कच्छू नईं बनवाए।" पहिए को खोलकर गोल-गोल घुमाते हुए टायर की सतह पर कील-काँटा महसूस करने की कोशिश करता वह लापरवाही से बोला।

"राशनकार्ड नहीं! आधारकार्ड नहीं! वोटरकार्ड नहीं!...कभी अगर जरूरत पड़ गई तो कैसे प्रूव करोगे कि...?"

"प्रूव करने को अड़ोस-पड़ोस है न साब! नए थोड़े न हैं सहर में, कदीमी हैं..."

"सो तो ठीक है, लेकिन कुछ तो होना चाहिए न दिखाने के लिए।"

"दिखाने को दो चीजें हैं साब," पीठ से चिपके अपने पेट को हथेली से थपकता वह बोला, "पालने को चार अदद पेट, कमाने को दो अदद हाथ और यह हुनर!"

पंचर लगाने के बाद पहिए को वापस उसकी जगह कसते हुए उसने कहा, "दो चीजें—वफादारी और ईमानदारी भी हैं, लेकिन उन्हें देखता कौन है!"

जनाधार सिर्फ मुसकराकर रह गया। पंचर लगाने की मजदूरी उसे पकड़ाई और आगे बढ़ गया।

फसाद के बाद

"नौजवान साथियो! दंगों के दौरान मोहल्ले की मसजिद को बचाने के एवज आपको जितना धन्यवाद दिया जाए, कम है।" भीड़ के बीच खड़े, इलाके का मुआयना करने आए प्रमुख राजनीतिक दल के वरिष्ठ नेता ने लगभग चीखते हुए कहा।

"हम लोगों ने अपनी जान पर खेलकर इसकी हिफाजत की सर!..." भीड़ के बीच खड़े एक नौजवान ने गर्व से सीना ठोंकते हुए कहा।

"पहले कुछ लोग मंदिर की ओर बढ़े थे। हम इधर आए तो दंगाइयों की दूसरी टीम मसजिद को नेस्तनाबूद करने के लिए बढ़ गई!" भीड़ के बीच से कोई दूसरा बोला।

"दूसरी टीम मतलब?" नेता ने आश्चर्य से पूछा।

"एक ही ग्रुप था साहब," किसी तीसरे ने कहा, "ध्यान भटकाने को शोर मचाते हुए पहले कुछ लोग मंदिर की तरफ गए..."

"मुहल्ला उधर इकट्ठा हो गया तो बाकी लोग मसजिद ढाने को..." बीच में ही चौथे आदमी ने बात कही।

"ओह!"

"लेकिन हम लोग भी कम चालाक नहीं थे सर!" भीड़ के भीतर से एक अन्य बोला, "हमने पहले से ही चार टीमें तैयार करके रखी हुई थीं।"

"चार क्यों?" नेता ने चौंककर कहा, "दो ही काफी थीं।"

"घर भी बचाने थे न साहब!" कोई एक बोला।

इस पर नेताजी बरबस मुसकरा उठे। कहा, "अरे हाँ, वह तो मैंने सोचा ही नहीं! लेकिन चौथी टीम किसलिए?"

"आप लोगों से बात करने के लिए, सर!" इस सवाल पर लाठी टेकता हुआ एक बुजुर्ग सामने आकर बोला, "मालूम था कि फसाद के बाद नेता लोग तशरीफ लाएँगे जरूर! फर्ज कीजिए, बदमाश लोग आपकी शक्ल में आ जाएँ! बस्ती के रहवासी हम सारे लोग आपसे बातों में मशगूल हों और आपकी दूसरी टीम अपना काम कर जाए!···फिर जाता न मेहनत पर पानी!"

नेताजी ने यहाँ ज्यादा रुकना अब उचित न समझा। भीड़ को चीरते हुए तुरंत जीप में जा बैठे। ड्राइवर से बोले, "चलो!"

मुल्क और हम

संपूर्ण लॉकडाउन का वह ग्यारहवाँ दिन था।

गत दस दिनों के दौरान भी फल-सब्जी बेचनेवाले दो-तीन लोगों को गली में आने दिया जाता रहा था। पूरा मोहल्ला वर्षों से इन्हें जानता था और ये मोहल्लेवालों को। इन सबके आने से न किसी को एतराज रहा, न डर।

आज लेकिन अजीब बात हुई। पहला सब्जीवाला गली में दाखिल हुआ। उसकी पुकार सुन मनोहर बाबू दरवाजा खोलकर बाहर आए। ठेली पर नजर पड़ी तो चौंक गए। सब्जियों के साथ-साथ उस पर मिट्टी के दीये और मोमबत्तियाँ भी थीं!

"अरे आबिद, यह क्या! सब्जी के साथ आज··· ?" उन्होंने पूछा।

"उस दिन-रात के लिए पिरधानमंतरी की कॉल है न बाबूजी।" आबिद ने मुसकराते हुए कहा, "मैंने सोचा कि···"

"अच्छा किया, अच्छा किया!" मनोहर बाबू ने शाबाशी देने के अंदाज में कहा, "कई बार मौजूद होने के बावजूद ये छोटी-छोटी चीजें घर में मिल नहीं पाती हैं।"

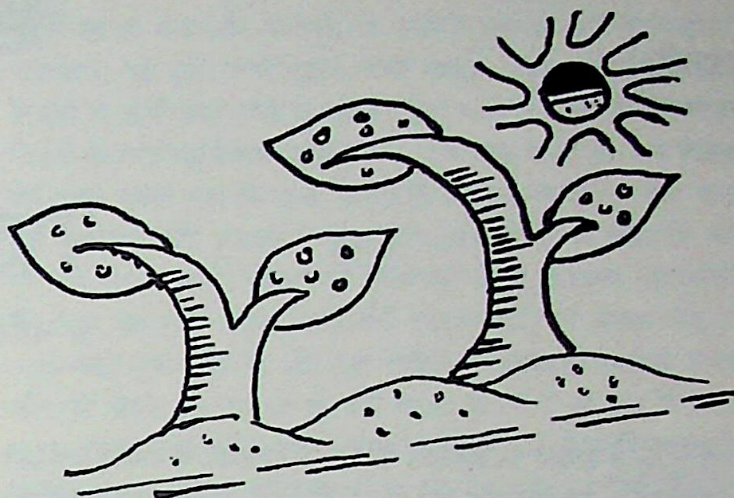
इतने में पड़ोसवाले घर की बालकनी में प्रो. असगर आ खड़े हुए। ठेली पर सब्जी से इतर सामान देखते ही गुर्रा उठे, "सब्जियों के साथ टोटके का सामान भी बेचने लगे, मुल्लाजी?"

उनके सवाल का आबिद ने कोई जवाब नहीं दिया; अलबत्ता मनोहर बाबू ने सिर उठाकर तंज कसा, "सिर्फ पाँच रुपए का आइटम है प्रोफेसर साहब, ले लो। अँधेरे में काम आएँगे।"

"मुफ्त में मिलें, मैं तब भी यह टोटका नहीं करूँगा मनोहर बाबू! जमीन पर दे मारूँगा।" प्रोफेसर पूर्ववत् चिल्लाए, "और सुनिए, घर के सारे बल्ब जलाए रखूँगा। अँधेरा करने को कह रहा नामुराद! अजीब अहमक है!"

"नाराज मत होइए बाबूजी।" इस बार आबिद बोल पड़ा, "मुल्क को एकजुट देखने के लिए ऐसा कहा है।" फिर मनोहर बाबू से कहा, "हमने सोच रखा है बाबूजी, शाम को जितने भी दीवे और मोमबत्तियाँ बच जाएँगे, सब-के-सब हम अपनी खोली के आगे रोशन कर देंगे। दिखा देंगे कि पूरा मुल्क एकजुट है।"

असगर साहब ने सामान्य स्वर में कही उसकी यह बात भी सुन ली। श्राप देते हुए से चीखे, "एक भी नहीं बिकेगा। सारे के सारे बचेंगे, लिख ले!"



"मुल्क से हम और हम से मुल्क है बाबूजी। इसका बहुत कर्ज हमारे सिरों पर है। सारे बचेंगे तो हम सारों को ही कुर्बान कर देंगे। बचाकर नहीं रखेंगे एक भी।" आबिद ने उनकी ओर हाथ जोड़कर गर्वीले अंदाज में कहा, "हम लोग गरीब हैं बाबूजी, कंगाल नहीं हैं।"

कोरोना-महानायक संवाद

"आपका नाम क्या है भाईसाहब?" साक्षात् मृत्यु बनकर सामने आ खड़े हुए उस अदृश्य राक्षस से सदी के महानायक ने पूछा।

"कोरोना!"

"कोरोना भाईसाहब, आप किसकी प्रसन्नता के लिए इस महामारी का कारण बने हुए हो?"

"अपने जनक की प्रसन्नता के लिए।"

"कौन है आपका जनक?"

"आपको इससे क्या?"

"मत बताइए; पर एक काम जरूर कीजिए।"

"क्या?"

"जिनकी खुशी के लिए इतनी भाग-दौड़ कर रहे हैं, एक बार उनसे पूछकर आओ कि सारी दुनिया को मारने के बाद जब वापस पहुँचोगे, तो क्या वह आपको अपना लेगा?"

इस सवाल पर कोरोना चुप रह गया। वाल्मीकि-सप्तर्षि प्रसंग उसने सुन रखा था। अपने जिस जनक की खुशी के लिए वह मारामारी कर रहा है, लौटने पर वह उसे नहीं अपनाएगा, जानता था। हारा हुआ सा महानायक के पास से तो लौट चला; लेकिन···वह रत्नाकर नहीं था, राक्षस-पिता की पैदाइश था। चरित्र को बदल नहीं पाया, जुटा रहा।

सा अ

एम-७०, नवीन शाहदरा
दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ८८२६४९९११५

रफूगर

● नासिरा शर्मा

महामारी के शुरुआत के दिन थे। जरूरत से ज्यादा भय और अहतियात के दिन थे। ये वे दिन थे, तब इनसान घरों में बंद थे और सड़कें वाहनों से खाली आराम की मुद्रा में पड़ी थीं। सभी को पता था कि यह महामारी बिना नाम-पते के, बिन बुलाए मेहमान की तरह एक साथ दुनिया के सभी मुल्कों में दाखिल हो चुकी है और बिना किसी सनद के यह संदेशा दे रही थी कि सुनो इनसानो, तुम सब एक-दूसरे से समय-समय पर अलगाव की जो नीति अपनाते हो, उसे मैं एक झटके से अंजाम दे रही हूँ। अब न हाथ से हाथ मिलाओगे, न गले मिल पाओगे। अपने ही घर में अपने प्यारों के पास जाने से कतराओगे। वह जबान जो बहुत फड़कती, अब उस पर परदा डाले रहोगे।

कुछ ऐसी ही बोलती हुई वह दोपहर थी, जब मैं कमरे से निकल लान में आई और जाने किस झोंक में सामने का दरवाजा खोल घर के बाहर निकल दीवार से लगे गमलों को देखने लगी। अचानक जाली के दरवाजे के बजने की आवाज सुनाई पड़ी तो मैं चौंक गई। दरवाजे से लिपटी मंजू खड़ी थी। पहले से ज्यादा गंदी और दुबली। बिखरे बाल रूखे हो चिड़ियों का घोंसला बन चुके थे। मैंने ताज्जुब से उसे देखा और असहज हो उठी। यह यहाँ क्या कर रही है? पुरानी बातें एकाएक जहन में कौंध गईं।

"कुछ दे दो। भूखे हैं।" उसकी कमजोर खुशामदी आवाज उभरी। मैं चुप रही। समझ नहीं पाई इस समय, इस औरत को लानत समझूँ या यही जो कह रही है उस पर यकीन करूँ?

मुझे चुप अपनी तरफ घूरते हुए देख बोली, "बहुत परेशान हूँ। कुछ काम करा लीजिए, मेहनताना दे दीजिए।"

उसके पीछे छुपी उसकी लड़की सामने आकर खड़ी हो गई। उसे कुछ पल मैं घूरती रही, जैसे नजरों से टटोलकर यह जानना चाह रही हूँ कि यह किस भरोसे से मेरे पास आई है, जैसे उसे पक्का विश्वास हो कि मैं इसकी कुछ-न-कुछ सहायता जरूर करूँगी। लड़की की तरफ नजर घुमाई, उसे देखकर मुँह में कड़वाहट घुल गई। मेरे अंदर एक बहस छिड़ गई कि इसको झिड़क दूँ या फिर कुछ दे-दिलाकर रुखस्त कर दूँ! पुराने अनुभव मुझे कठोर बना रहे थे और मौजूदा हालात पिघला रहे थे। मैं फैसला नहीं कर पा रही थी।

"हम आपका सारा पैसा काम करके चुकता कर देंगे।" उसने हाथ



हिंदी की सुप्रसिद्ध कथाकार तथा विचारक। प्रमुख कृतियाँ हैं–'सात नदियाँ एक समंदर', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मँगनी', 'कुइयाँजान' (उपन्यास), 'इब्ने मरियम', 'सबीना के चालीस चोर' तथा 'खुदा की वापसी' (कहानी-संग्रह)। लेखों और रिपोर्ताज की पुस्तकों के अलावा महत्त्वपूर्ण अनुवाद-कार्य भी। इसके अतिरिक्त नाटक, संपादन और बाल-साहित्य की कई कृतियाँ, टेलीफिल्मों का भी लेखन।

जोड़कर कहा तो मेरे तन-बदन में आग सी लग गई। "घर पर मेहमान आए हैं, वे भूखे हैं।" उसने फिर हाथ जोड़े और घिघियाकर कहा तो मेरे अंदर खौलते गुस्से को राह मिल गई। "ऐसे समय में मेहमान?" मेरा कटाक्ष सुनकर वह माथे का पसीना गंदी साड़ी से पोंछ अजीब नजरों से मुझे देखने लगी। उसकी आँखों की भाषा की कई परतें थीं।

"क्या करते, जब खाने को नहीं था तो पैदल-पैदल गुड़गाँव से आ गए।" उसके चेहरे पर बेबसी की छाया गहरी हो उठी।

"अच्छा!" मैं इतना कहकर अंदर जाने को मुड़ी, तभी मेरे दोनों बच्चे, जो किशोर अवस्था पार कर रहे थे, बाहर निकले और उसे देखकर चौंक पड़े। उनके चेहरों की रंगत बदल चुकी थी।

"यह यहाँ क्या कर रही है?" सुनील ने हैरत से कहा।

"कुछ झूठी कहानी सुनाने आई होगी।" रश्मी ने भाई से कहा।

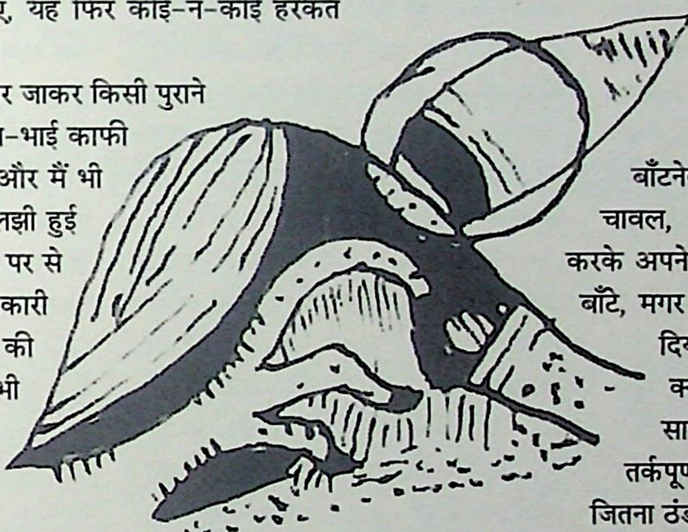
"सुनो, इसको झाड़ू दे दो और अंदर मत आने देना, कहना गली बहोर दे।" इतना कह मैं अंदर चली गई। दोनों बहन-भाई ने आपस में कुछ बातें कीं और झाड़ू बाहर फेंक दी। उसने तेजी से जाली का हुक उठाया और गली में आगे बढ़ गई। मैं खिड़की से उसे देख रही थी, उसके चेहरे पर हलकी मुसकान के चिह्न उभरे तो मेरे दिल में भाव उमड़ा, 'इसकी मजबूरी इसे यहाँ ले आई है। "झाड़ू देकर तुम अंदर मत जाना, वहीं गमले के पीछे रख देना।" सुनील की सख्त आवाज उभरी। मैंने पर्स से कुछ रुपए निकाले और उसे देने के इरादे से बाहर निकली। झाड़ू देने आवाज मेरे घर से दूर होती सुनाई दे रही थी। उसकी लड़की ने गली में मुझे आता देख झाड़ू रोक दी और बेहद ढिठाई से मुझे घूरा। उस दिन की जबानदराजी की हलकी सी झलक उसके चेहरे पर उभरी। "कूड़ा

इधर-उधर मत फेंकना।" मैंने इतना कहा और सौ-सौ के दो नोट उसकी तरफ बढ़ाकर मैं लौटने लगी। उसकी हालत अकाल मरों जैसी हो रही थी। पहले भी वह हड्डियों का ढाँचा थी, मगर अब चमड़ी भी जैसे गायब सी हो गई थी। वह पत्तियों और उड़े प्लास्टिक के थैलों को समेटने लगी। इस बीच उसके पास आटे का खाली बैग भी मुझे नजर आया, जिसमें वह कूड़ा भर रही थी। मैं घर में दाखिल हुई तो महसूस हुआ, जैसे दोनों बहन-भाइयों को मेरा यह अंदाज पसंद नहीं आया। सुनील खामोशी से उठा और अब न कुछ कहे कमरे से बाहर निकल गया। कुछ पल ही गुजरे होंगे कि वह अंदर पलटकर आया औा उत्तेजित हो बोल उड़ा, "मुझे पता था, वह कूड़ा कहाँ फेंकेगी?" फिर थमकर बोला, "आगे गली में उन्होंने जाकर उस थैले को किसी के खाली घर में उलट दिया है।"

सबकुछ सुनकर मैं चुप रही। दिमाग में सवाल उभरा, हमने इस वर्ग से हमदर्दी रखी जरूर, मगर श्रम व नैतिकता की शिक्षा नहीं दी। देते भी कैसे? हममें भी वह गुण कहाँ थे सिवाय नारे लगाने के?"

"मम्मी! इसको मुँह मत लगाइए, यह फिर कोई-न-कोई हरकत करेगी।" रश्मी ने कहा।

"हाँ, कल नहीं आएगी। कहीं और जाकर किसी पुराने मालिक को मूर्ख बनाएगी।" दोनों बहन-भाई काफी परेशान हो उठे थे उसके आगमन से, और मैं भी कहाँ संयत थी! मैं खुद सवालों में उलझी हुई थी। फसाद का जख्म दिल्ली के जिस्म पर से अभी भरा नहीं था कि लॉकडाउन ने बेकारी और भूख को सूप में उछलते अनाज की तरह पछोर दिया था। सवाल तो यह भी था कि ऐसे समय में हमारा व्यवहार दूसरों के साथ कैसा होना चाहिए? पिछला हिसाब-किताब चुकाना चाहिए या फिर समय की माँग पर अपना आचरण बदलना होगा?



तनाव और फिक्र कमर तोड़ रही थी। मजदूरों की भूख और उनकी पैदल यात्रा अलग रीढ़ की हड्डी के छल्लों पर अजीब तरह का दबाव डाल रही थी। एकाएक सारी विपदा एक साथ आन पड़ी थी। उसमें सब खतावार और बेकसूर नजर आ रहे थे, ऐसी मानसिक पीड़ा में जब कलहंसों के डैने दिमाग के आकाश को घेर रहे हों, उस स्थिति में वह औरत, जिसका नाम मंजू था, वह किसी पिन की नोक की तरह हम सबको चुभ रही थी। वह दो दिन बाद फिर आई। वही माँग और हालात के जादू में फँसी मैं उसकी माँग की पूर्ति ऊपरी दिल से करती रही। न आने का बहाना उसके पास था। कभी घाम बहुत थी तो कभी गरमी बहुत थी। इस तरह से हमारे दिन कट रहे थे और वह दो सप्ताहों में हजार रुपया ले चुकी थी। मोहल्ले में आस-पास के अधबने घरों में कुछ मजदूरों को ठेकेदारों ने रोक रखा था इस डर से, कहीं वह फिर लौटें ही न, सो उनको खाना-पानी दे रहे थे, मगर तब, जब लॉकडाउन लंबा खिंचा तो वह ठेकेदार भी गायब हो गया और मजदूरों की परेशानी शुरू हो गई थी। पड़ोस में फलवाले, जो कुछ रुपए मुझसे उधर लेकर अपने घर जाने के लिए निकले थे, उन्हें आधे रास्ते से लौटा दिया गया था। ढाबा भी बंद था। दो नौकरों के सहारे ढाबावाला दुकान छोड़ गाँव चला गया। यह सब देखकर हमें उनसे पूछना पड़ा कि कुछ चाहिए तो बताना। सप्ताह भर बाद बेकार बैठे कामदारों और मजदूरों ने कुछ रुपए माँगे तो उनकी सहायता करते हुए मैंने कहा, 'इसको लौटाने की चिंता मत करना, समझना मोहल्लेदारी है', मगर यह सारी कोमल संवेदनाएँ और हमदर्दी का जज्बा मंजू तब आते-आते चुक जाता था और एक बेदिली व उपेक्षा के भाव से उसकी माँगें पूरी करके मन कसैला सा बना रहता, जो किसी भी तरह से उचित न था। लाख अपने को समझाती, मगर जाने क्यों, उसे देखकर लगता कि उसकी हर बात झूठी है और वह हमेशा की तरह हमें अपनी चालबाजियों से ठग रही है; मगर सवाल यह भी था कि मैं उसे डाँटकर भगा सकती थी। उसे पुरानी बातें याद दिलाकर उसका अपमान कर सकती थी! मगर यह सब न करके मैं अपने को जज्बात की रस्साकशी के बीच फँसी देखकर क्यों अपने को हारता सा महसूस करती हूँ?

घर के पिछले कमरे के कोने में बाँटनेवाले बड़े-बड़े पैकेट के साथ दाल, चावल, आटा सबकुछ है। वह थैले एक-एक करके अपने घर आए तकनीशियन, प्लंबर, दर्जी को बाँटे, मगर एक भी थैला मैंने मंजू को उठाकर नहीं दिया। आखिर मेरे अंदर बैठे दोगलेपन का क्या भेद है? एक बेचारी औरत को अपने सामने इतना शक्तिशाली बनाने का कोई तर्कपूर्ण कारण तो हो? मैं अंदर के संताप को जितना ठंडा करने की कोशिश करती, उतना ही वह मुझे जकड़े रहता और इस सिलसिले के साथ वह सप्ताह बाद आकर रोज काम करने का वायदा कर कुछ रुपए ले जाती है। जो अब पाँच-छह हजार तक पहुँच चुके थे। एक दिन बेटे ने बताया कि मैं जब मजदूरों को दुकान पर चावल तुलवा रहा था तो मंजू की बेटी आई थी, दो सौ रुपयों के छाज के पैकेट लेकर गई थी। उसने मुझे पहचाना भी नहीं।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया, मगर याद सबकुछ आ गया। उसका पंद्रह-पंद्रह दिन काम से गायब रहना। सफाई न करके भी कहना, सफाई कर दी है और काम से निकाले जाने पर मोहल्ले भर की नौकरानियों से बुराई करके उन्हें भयभीत करना कि वह घर में काम न पकड़ना, वह चौगुना काम करवाते हैं और पैसा भी काटते हैं। यह सारी बातें हमारी नेकियों का जवाब न थीं, मगर हम जब उन बड़े-बड़े वायदे करनेवालों को वोट के बाद बदलते देखकर कुछ नहीं कर पाते, सिवाय छटपटाने के, तो यह बेचारी क्यों मेरी कुंठा के केंद्र में खड़ी हो रही है! क्या सिर्फ इसलिए कि वह कमजोर है और हम उसे दबा सकते हैं? या उन्हें हक नहीं है हमें छलने का?

कई दिनों बाद वह फिर अचानक आई। मैंने बच्चों से कहा, "कह दो काम नहीं करवाना है।" फिर भी वह नहीं गई। घंटी बजाई, मगर कोई गया नहीं। फिर वह आवाजें लगाने लगी। सुनील जब उसे डाँटने निकला तो वह खुले दरवाजे को धक्का देकर अंदर घुसी, फिर तेजी से मेरे कमरे का दरवाजा खोलकर मेरे सामने आन खड़ी हुई।

"भगवान् कसम! मैं आपकी पाई-पाई काम करके चुकता कर दूँगी।"

"वह सब ठीक है, मगर तुम्हारे इंतजार में हम भी बाहर की सफाई नहीं कर पाते हैं।" मैं उलझकर फिर फौरन ही सवाल कर बैठी।

"खाना तो सरकार बाँटक रही है न?"

"तो?" मैं चिढ़ गई।

"आने का कोई टाइम नहीं, जब तक पता चलता है, तब तक या तो वह चले जाते हैं या फिर लाइन में लगे-लगे खिचड़ी का डिब्बा खत्म हो जाता है।" इतना कहते-कहते वह हाँफती सी जमीन पर बैठ गई। हमदर्दी उभरी, मगर जाने क्यों उसके वह सारे पैंतरे याद आ गए, जो उसने हमारे साथ दिखाए थे। मुँह से निकला, "तुमको और लोग मदद क्यों नहीं करते?" "करते हैं, मगर अब कहते हैं कब तक? काम भी नहीं करवाते हैं। अब क्या करें हम?"

"बाहर झाड़ दो।" मैंने उसकी पेचीदगी से उलझकर कहा।

"हम पहले की तरह आपके घर का सारा काम करके, बाद में सारा पैसा लौटा देंगे।" उसने उठते हुए कहा। अब तक वह दस-बारह हजार रुपए ले चुकी थी। इसी वायदे पर कि हर रोज वह आकर गली बटोर दिया करेगी, जब तक कोरोना की छुआछात है।

"मम्मी! यह क्यों उलटी-सीधी झाड़ू देती है। हम पूरा घर रोज साफ तो करते हैं न?" सुनील ने मुझे जगाया। मैं चुप रही कि कौन किसके झाँसे में आ रहा है और कौन अपने से लड़ रहा है!

उस दिन बाँटनेवाला पैकेट मैं उसे नहीं दे पाई, जो खत्म हो गया था, मगर स्टोररूम से चने की दाल का एक किलो का पैकेट पैसे के साथ उसे दे दिया तो महसूस हुआ दिल पर रखे सिल का बोझ कम हुआ है।

"यह क्यों?" दोनों ने पूछा

"देकर छुट्टी करो।" मैंने एक तरफ रहने की कोशिश में कहा।

उसे उम्मीद नहीं थी इस व्यवहार की, जो उसके चेहरे के भाव बता रहे थे। लॉकडाउन को खत्म करने व बढ़ने की अफवाहों के बीच सारा काम ठप्प पड़ा था। वह सब हमें सोशल मीडिया दिखा रहा था। जो हमने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। झूठ और सच की टकराहटें तेज थीं। उससे ज्यादा कुदरत का रोष था, जो श्मशान घाट को रौशन और कब्रिस्तान को आबाद कर रहा था। भगदड़ में लाशों की अदला-बदला हो रही थी और अपने सगे को कंधा देनेवाले पहुँच नहीं पा रहे थे। इसके बावजूद दुआ के लिए उठे हाथ माफी की जगह डंडी मारने, नफा कमाने, झूठे प्रचार से बाज नहीं आ रहे थे।

कई दिनों तक मंजू गायब रही। उसके पति के चाय का ठेला तो कब का उठ गया था। एक दिन अचानक मंजू फिर प्रकट हुई। वही हाल-बेहाल। इस बार अपने से भी थके मर्द को साथ लाई थी। लॉन में उगी घास को छिलवाने। खुद बैठी रही, वह काम करता रहा। थक गया थोड़ी देर बाद और काम बीच में छोड़कर चला गया। पता नहीं क्यों, आज मैंने दो की जगह तीन सौ के नोट दे दिए। मैं भी थकी थी। कुछ जगहों पर कपड़ों के पैकेट पहुँचवाने और दवाओं को खरीदवाने में। इतना कुछ करने के बाद भी दिल को न सुकून मिल रहा था, न नेकी कर खुशी मिल रही थी। अवसाद की सिल सख्त पड़ती जा रही थी।

मैं जहनी तौर पर थकती जा रही थी। हर व्यक्ति चिड़चिड़ा और झुँझलाया हुआ था। भूखे मरे कुत्ते का गोश्त खाने पर मजबूर हो उठे लोग स्वयं गली के कुत्ते भूख से दम तोड़ने पर मजबूर हो गए थे। ऐसा नहीं था कि खाना बँट नहीं रहा था, लोग सहायता कर नहीं रहे थे, मगर एकाएक एक विपदा में कुछ भी सँभाले नहीं सँभल रहा था। जो मदद भी करना चाह रहे थे, वह भी कोरोना के भय से घरों का दरवाजा गैरों को छोड़ अपनों के लिए नहीं खोल पा रहे थे। मगर सियासत ने ऐसे मौके पर अपनी मुट्ठी खोल दी और मामूली आदमी को अपने शिकंजे में जकड़ लिया। यह सब होता है। माना कि यह सब होता रहा है, मगर एक साथ...? एक साथ ऐसी बारिश, जिसमें ओले, बर्फ, पानी, भूकंप, तूफान सबकुछ एक ही वेग से इनसान को झिंझोड़ रहा है।

कई दिनों तक मंजू गायब रही। उसके पति के चाय का ठेला तो कब का उठ गया था। एक दिन अचानक मंजू फिर प्रकट हुई। वही हाल-बेहाल। इस बार अपने से भी थके मर्द को साथ लाई थी। लॉन में उगी घास को छिलवाने। खुद बैठी रही, वह काम करता रहा। थक गया थोड़ी देर बाद और काम बीच में छोड़कर चला गया। पता नहीं क्यों, आज मैंने दो की जगह तीन सौ के नोट दे दिए। मैं भी थकी थी। कुछ जगहों पर कपड़ों के पैकेट पहुँचवाने और दवाओं को खरीदवाने में। इतना कुछ करने के बाद भी दिल को न सुकून मिल रहा था, न नेकी कर खुशी मिल रही थी। अवसाद की सिल सख्त पड़ती जा रही थी।

कई दिन इसी तरह कमरे में घुटते हुए गुजर गए। अपने से लड़ते और हालात से जूझते हुए। न कोई अच्छी खबर मिल रही थी और न ही फोन पर बात करने से दिल हलका हो रहा था। संवेदना और विचारों को लेकर जमीर की इमारत की कोई-न-कोई ईंट धसक रही थी। कभी-कभी महसूस होता, अपनी फितरत तो कुदरत ने बदल ली और जो उसकी कायनात में जल-जंगल-जमीन, वनस्पति और चरिंद व परिंद सिसक रहे थे, उनको पनपने का मौका मिल गया। जो जुगनू अँधेरी जगहों को आसमान बना देते थे, वह अब नजर आने लगे, मगर इनसान ने अपनी फितरत नहीं बदली। वह मानवीय चेहरे जाने कहाँ गुम हो गए हैं, जो ख्वाब में भी नजर नहीं आते हैं। न ही वह रफूगर, जो फटे कपड़ों की तरह

बढ़ते दिलों के खोंचों को रफू कर सके। रफूगर की तलाश में जाने कब पलकें झपक गईं। ऊटपटाँग सपने से जब बेदार हुई तो दिल डूबा-डूबा सा लगा।

"वह आ गई है।" सुनील ने कहा।

"ठीक है! क्या वह बाकी घास साफ करेगी?"

"मम्मी! आप उसकी मक्कारी जानती हैं, वह सिर्फ पैसे लेने आई है। उस दिन नाराज हो रही थी कि हम कुत्ते की गंदगी साफ नहीं करेंगे, तो लड़की बोली, मैं कर दूँगी। भगा दूँ उसे?"

"नहीं, मैं जानती हूँ। अब सवाल यह है कि भूख और नफरत में से किसी एक को हमें चुनना होगा।"

"मतलब?" दोनों ने चौंककर मुझे देखा।

"कुछ नहीं।" मैं उन्हें समझा नहीं सकती थी, अपनी बात शायद या फिर खुद उलझी थी। मैंने कल ही शाम को कुछ सामान दुकान से मँगवाया था। सुनील ने पूछा नहीं था कि यह चावल और बाकी चीजें किसके लिए मँगवा रही हैं! जब मंजू झाड़ू देकर जाने लगी तो मैंने उसको बुलवाया और कहा, "यह सब तुम्हारे लिए है, कैसे ले जाओगी?" उसके चेहरे पर कई रंग आए और गए। कुछ देर खड़ी रही, जैसे उसे यकीन न आ रहा हो! जब सदमे से उबरी तो बोली, "मैं ले जाऊँगी।"

पंद्रह किलो के आटे का बोरा जब उसने उठाकर कंधे पर रखा तो मुझे डर लगा, जैसे उसकी सूखी हड्डियाँ चिटखकर अब टूटीं की, तब टूटीं, मगर नहीं। वह सही सलामत दस किलो के चावल का बोरा भी हाथ से घसीट ले गई, फिर मसालों व चाय तेल से भरा बड़ा सा भारी थैला आकर ले गई। उसके बदन की थिरकन और फुरती भरी उमंग को देख मेरे अंदर की सख्त सिल बर्फ की तरह पिघलने लगी। आँखें भर आईं।

उसने पैसा लौटाने की बात नहीं की और वह बड़े विश्वास से कमरे से निकल गई।

कई सप्ताह क्या कई महीने गुजर गए, वह नहीं आई। नौकरों का आना-जाना घरों में शुरू हो गया था, मगर मंजू लौटकर नहीं आई और आती भी कैसे, वह भी तो अपनी फितरत से मजबूर थी।

सा
अ

डी ३७/७५४, छतरपुर हिल्स,
नई दिल्ली-११००७४
दूरभाष : ९८११११९४८९

अभी तो पैसा इकट्ठा करो

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

एक गरीब ब्राह्मण था। खाने-पीने का भी ठिकाना नहीं था। न पहनने को वस्त्र ही थे। 'हे दरिद्रता! तुझे तो नमस्कार है। तूने तो मेरी दशा सिद्ध जैसी कर दी है? सिद्ध भगवान् सब को देखते हैं, पर उन्हें कोई नहीं देखता। वैसे ही मैं भी सबको देख रहा हूँ, पर मुझे कोई नहीं देखता। घर में दो लड़के, दो लड़कियाँ, एक औरत और एक मैं हूँ। गुजारा कैसे होगा?' वह आत्मघात करने का विचार करता है।

ब्राह्मण के पास कुछ नहीं है, वह मरने के लिए एक पहाड़ पर पहुँच जाता है। जैसे ही वह नीचे गिरने का प्रयत्न करता है, पीछे से एक योगी उसे पकड़ लेता है और कहता है, "क्यों भाई! मरने का विचार क्यों करता है? बड़ी मुश्किल से यह मानव जन्म मिला है, उसे अपघात करके नष्ट क्यों करना चाहता है?"

ब्राह्मण बोला, "मरने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। घर में खाने-पीने का ठिकाना नहीं, नौकरी-धंधा भी कुछ नहीं, घर में जाऊँ तो औरत कहती है कि क्या लाए? तब क्या करूँ?" योगी बोला, "घबरा मत। मरने से तो उपाधि बढ़ती ही है, घटती नहीं।"

ब्राह्मण, "क्या करूँ, मुझे तो कुछ सूझता नहीं है।" योगी, "तेरा तो भाग्य ही ऐसा है—स्वर्ग से देवेंद्र भी क्यों न आ जाएँ, पर तेरी किस्मत पलट नहीं सकती। ले, मैं यह पारसमणि देता हूँ। सात दिन का समय है, इससे तू लोहे को छुएगा तो वह सोना हो जाएगा। याद रखना, सातवें दिन सूर्य डूब जाएगा, तब यह मणि मिट्टी का ढेला बन जाएगी।'' ब्राह्मण घर आया। लोहे को मणि से छुआ तो वह सोना हो गया। उसने वह सोना बेचकर लोहा लेना शुरू किया। गाँव का सारा लोहा खरीद लिया। इसमें तीन दिन निकल गए। अब वह और लोहा खरीदने बंबई आया। यहाँ से भी उसने लारियों में लोहा भरकर अपने गाँव भेजा। तीन दिन बंबई में भी निकल गए। सातवें दिन वह टैक्सी करके अपने गाँव के लिए रवाना हुआ। टैक्सी बीच में ही पंचर हो गई। अब वह क्या करे? आज का ही दिन बाकी है। टैक्सीवाले से वह बोला, "जल्दी करो, जल्दी करो। मुझे बहुत जरूरी काम है।" टैक्सीवाले ने जब उसे घर पहुँचाया, तब तक सूर्य डूब जाता है और रात हो जाती है। योगी की दी हुई मियाद पूरी हो जाती है। वह पारस मणि को ढूँढ़ता है, पर वह तो मिट्टी का ढेर बन चुकी होती है। सारा लोहा वैसा ही पड़ा रह जाता है।"

बंधुओ! वह ब्राह्मण लोहा ही इकट्ठा करता रहा। उसमें ही उसने सारा समय निकाल दिया। अगर वह उस पर पारसमणि का स्पर्श भी करता जाता तो वह लोहा सोना बन जाता। पर वह तो सब एक साथ करना चाहता था। उसे पारसमणि से कुछ लाभ नहीं मिला।

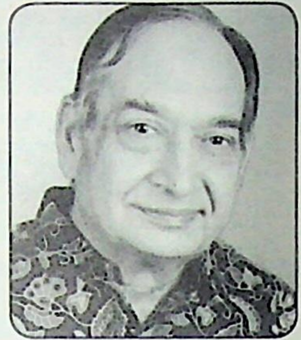
सा
अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)



हाँ में ना का निहित होना

● गोपाल चतुर्वेदी



वे यादों के भूतबँगले में खोए बैठे हैं। समय की खासियत है कि वह सिर्फ आगे चलता जाता है, न किसी के रोके रुकता है, न लौटता है। वह इनसान तो है नहीं कि कुछ वर्ष तक सक्रिय रहे और फिर एक दिन शरीर के पिंजरे को स्थायी समझने के मुगालते में उससे प्राणों का पखेरू फुर्र हो ले। बहरहाल, अभी तो वह बहुत खुश हैं। वह भूतबँगले के अपने शासकीय कक्ष में विराजमान है। यह पूरा इलाका शासकीय गलियारे का अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, यानी लालबत्ती का इलाका है। जब लालबत्ती जले तो बड़का अफसर व्यस्त है, जब हरी 'ऑन' हो तो वह दर्शन देने को प्रस्तुत है। यों वह बहुधा सुबह से शाम तक व्यस्त ही रहता है, कभी मित्रों के साथ गपशप में, चाय की चुस्की लेते हुए पर-चर्चा करते। कभी अपनी कार्य-कुशलता की डींगे हाँकते। "मेरी यहाँ नियुक्ति के पहले कतई रामराज था। यूनियन का ऐसा खौफ कि अफसर और सुपरवाइजर, किसी कर्मचारी को उसके कर्तव्य की याद दिलाते डरें। दफ्तर जैसे कार्य-स्थल न होकर सैरगाह है। पहुँचने और काम प्रारंभ करने का वक्त नौ बजे मुकर्रर है। कोई ग्यारह बजे तक टहलता प्रवेश कर रहा है, कोई लंच खाकर। करना ही क्या है? हाजिरी-रजिस्टर पर चिड़िया ही तो बनानी है। जैसे अनुशासन, कर्तव्य और सरकारी कामकाज को ठेंगा दिखाना ही उनका इकलौता निर्धारित लक्ष्य है। हमें भी कैबिनेट सचिव ने बताया था कि यहाँ हमारी पोस्टिंग इस अजायबघर को फिर से दफ्तर बनाने के लिए की जा रही है। इसके लिए कुछ भी एक्शन लेने की हमें पूरी छूट है।" एक सहयोगी ने जानना चाहा, "यह मुश्किल काम आपने किया कैसे?"

"देखिए, पहले तो हमने कार्यालय नियम संहिता की ओर ध्यान आकृष्ट करते कर्मचारियों से वक्त की पाबंदी का निवेदन किया। फिर निर्देश जारी किया एक हफ्ते बाद कि अपने-अपने सेक्शन का रजिस्टर, अवर सचिव दस बजे तक मँगाकर लेट-लतीफों की सूची ऊपर प्रस्तुत करें। उपसचिव उसकी 'समरी' बनाकर हमें दिखाएँ। एक महीने बाद भी जब कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं नजर आया तो हमने यूनियन के अध्यक्ष और सचिव को बुलाकर सूचित किया कि उपस्थिति में कोई सुधार नहीं नजर आ रहा है, समुचित अवसर दिए जा चुके हैं। अब हम 'एक्शन' लेने पर विवश हैं। वह अपने सदस्यों को सूचित कर दे और इसमें किसी किस्म का अड़ँगा न डालें।" यूनियन के अधिकारी दिखाने को व्यवहार जिम्मेदार होने और सरकारी काम में सहयोग देने का करते हैं। इन दोनों ने भी औपचारिक रूप से कार्यालय की नियत प्रक्रिया का समर्थन करने की बात कही। और कहते भी तो क्या? इसके बाद हमने भी निर्णायक कदम उठाया। हमने फैसला किया कि हम स्वयं इन लेट-लतीफों को मजा चखाएँगे। दस बजे तक आनेवालों को हमारे निजी सचिव के पास जाकर हस्ताक्षर करने की सुविधा दी गई, उसके बाद आधे दिन की छुट्टी की अर्जी के साथ। हमें अधिक समय तक प्रवेश द्वार पर स्वयं रहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। एक सप्ताह के अंदर कर्मचारियों को खुद-ब-खुद समय-पालन का बोध होने लगा। हमें भले ही मन-ही-मन गाली देते रहें, अनुशासन की नदी में उनके बनाए नाव के छेद स्वयं भरने लगे, वह भी उन्हीं के प्रयत्नों द्वारा। अधिकारी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर प्रसन्न थे और सहयोगी पीठ पीछे उनकी इस खोखली उपलब्धि की पोल-पट्टी खोलकर। हर दफ्तर, सचिवालय का यही चलन है। एक-दूसरे के सामने तारीफ से चूकते नहीं हैं और पीठ पीछे आलोचना से। यह शोध का विषय है कि यह पारंपरिक व्यवहार की रीत देसी चरित्र का अंग है या अंग्रेजी शासकों द्वारा हमें भेंट की गई अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत का विदेशी प्रभाव?

इसी भूतबँगले में बैठकर उन्हें अपने कई कल्पित, कई वास्तविक कीर्तिमानों की याद आती है। एक अन्य दिन उन्हें ध्यान आया कि उन्होंने पूरी दफ्तरी जिंदगी में कभी किसी से 'ना' नहीं कहा। मंत्री व नेताओं की हर ऊटपटाँग फरमाइश पर उनका उत्तर सिर्फ 'हाँ' में होता। ऐसा रवैया तो खैर हर प्रगतिशील, यानी तरक्की चाहनेवाला अधिकारी अपनाता है। पर उनका 'हाँ' का चलन कर्मचारियों के साथ भी लागू होता। उनसे मिलना लाल बत्ती के जलते कठिन था, पर असंभव नहीं। उनके निजी सचिव से समय लेकर दो-तीन दिन की प्रतीक्षा करते-करते उनके दिव्य दर्शन प्राप्त हो ही जाते। ऐसे ही एक अवसर पर बाबू ने शोक-संतप्त स्वर में निवेदन किया, "सर, बीस साल से निष्ठापूर्वक सरकार और उसके माध्यम से जनता की सेवा कर रहा हूँ। आज तक मुझे प्रमोशन का इंतजार है। कुछ सहयोगी सवाल पूछते हैं, कुछ हँसी

उड़ाते हैं—'इतनी लगन से सेवा कर हासिल क्या किया?' कुछ को संदेह है कि जरूर मेरे विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कारवाई चल रही है, वरना इतने वर्षों में तो कार्य निष्पादन के गधे-टट्टू भी पदोन्नति पा चुके हैं।" उन्होंने धीरज रख गंभीरता से बाबू की बात सुनी और संबद्ध अधिकारी की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि डाली। उसने तत्काल निवेदन किया, "सर, यह एक कार्य-कुशल कर्मचारी है। इसकी पदोन्नति तो हम भी चाहते हैं, पर क्या करें, पदोन्नति के लिए कोई पद नहीं है।" दोनों पक्षों की बात सुनकर उन्होंने निर्णय सुनाया, "इनकी पदोन्नति होने से हम भी सहमत हैं। इतने समय से प्रमोशन न होना एक हद दर्जे का अन्याय है। कृपया कल तक पद सृजन का प्रस्ताव तैयार कर मेरे अनुमोदन से वित्त विभाग के पास भेजिए। 'फॉलो-अप' भी करते रहें। जल्दी-से-जल्दी पद सृजित करवाकर इन्हें प्रमोट कीजिए।"

जहाँ तक नेता-मंत्री आदि का प्रश्न है, वह उनकी मानसिकता से परिचित हैं। उन्होंने जरूर किसी व्यक्ति विशेष को सुनाने के लिए सिफारिश की होगी। इसमें उनकी व्यक्तिगत रुचि होने का सवाल नहीं है। निर्णय नियमानुसार होना ही उचित है। उनकी 'हाँ' से फर्क क्या पड़ता है? ऐसे अफसर अकसर कामयाबी के शिखर पर पहुँचते हैं। हर जाननेवाला उनका चाहनेवाला बनता है, अनजान नेता तक। इतने बड़े अधिकारी ने उनके सुझाव को बेहिचक मान लिया। ऐसों को क्या पता कि उस पर होना जाना कुछ नहीं है। 'हाँ' केवल उनके लिए केवल एक शब्द है। इसका उच्चारण उनका स्वभाव है, जो अब आदत बन चुका है। वह आज तक न किसी की व्यक्तिगत समस्या से जुड़े हैं, न सुझाव से, उनका जुड़ाव सिर्फ अपनी तरक्की से है।

उनके निर्देशों से बाबू धन्य हो गया। उसने मन-ही-मन अपने इष्ट-देवता और इस अधिकारी का धन्यवाद किया। शाम को मंदिर जाकर प्रसाद चढ़ाया। यह एक सफल भेंट है। यह अफसर कोई सामान्य इनसान न होकर आदमी की काया में देवता है। उनके संपर्क में आए अधिकांश कर्मचारियों-अधिकारियों की यही प्रतिक्रिया है। कुछ तो कहते हैं कि 'ना' का शब्द उनकी डिक्शनरी में है ही नहीं। वह केवल हर दफ्तरकर्मी की मदद करते हैं। यह बात दीगर है कि उनकी सहायता के सुपात्र इंतजार करते-करते सेवानिवृत्ति हो जाते हैं, उनकी नेकनीयती के गुण गाते-गाते। दोष नियति का है, इस देव-पुरुष ने तो हर संभव प्रयास किया। इस सफल व लोकप्रिय अधिकारी की तकनीक सीधी-सादी है। वित्त की खाई से कोई भी प्रस्ताव खुद-ब-खुद निकल पाना कठिन है। नीचे वाले कितनी भी यादें दिलाएँ, ऊपर के स्तर पर कोई संवाद होना असंभव है। कर्मचारी की क्या मजाल कि बार-बार सचिव से मिल पाए? बस इस भूलभुलैया में उस अधिकारी की 'हाँ' ऐसी उलझती है कि 'ना' के बराबर हो जाती है। जानकार बताते हैं कि उनका नजरिया सकारात्मक है, पर उसका नतीजा अधिकतर नकारात्मक ही होता है।

जहाँ तक नेता-मंत्री आदि का प्रश्न है, वह उनकी मानसिकता से परिचित हैं। उन्होंने जरूर किसी व्यक्ति विशेष को सुनाने के लिए सिफारिश की होगी। इसमें उनकी व्यक्तिगत रुचि होने का सवाल नहीं है। निर्णय नियमानुसार होना ही उचित है। उनकी 'हाँ' से फर्क क्या पड़ता है? ऐसे अफसर अकसर कामयाबी के शिखर पर पहुँचते हैं। हर जाननेवाला उनका चाहनेवाला बनता है, अनजान नेता तक। इतने बड़े अधिकारी ने उनके सुझाव को बेहिचक मान लिया। ऐसों को क्या पता कि उस पर होना जाना कुछ नहीं है। 'हाँ' केवल उनके लिए केवल एक शब्द है। इसका उच्चारण उनका स्वभाव है, जो अब आदत बन चुका है। वह आज तक न किसी की व्यक्तिगत समस्या से जुड़े हैं, न सुझाव से, उनका जुड़ाव सिर्फ अपनी तरक्की से है।

ऐसा नहीं है कि 'हाँ' कहनेवाले केवल सरकार में हैं। वास्तव में यह हर क्षेत्र की शोभा हैं। सियासत तो केवल 'हाँ' की सकारात्मकता से चलती है। सरकारी अफसर-कर्मचारी की कामयाबी की भी यही शर्त है। नेता केवल झूठे-आश्वासन और वादे करता है। नामुमकिन है कि उसने किसी की व्यक्तिगत प्रार्थना को अस्वीकार किया हो! जनता उसके स्वभाव का सच जानती है। पर सोचती है कि क्या पता, इस बार सच बोल रहा हो? जीवन में अपवाद तो हर उसूल और सिद्धांत के होते हैं तो क्यों न इनसानों के व्यवहार के भी हों? कौन कहे, इस बार इसका इरादा जनता को उल्लू बनाने का न हो? भूले-भटके इसमें हरिश्चंद की आत्मा जागी हो? इस प्रकार के नेताओं की सफलता से यह सिद्ध होता है कि भारत की जनता कितनी आशावादी है? सालोसाल ठगे जाने के बावजूद वह उम्मीद नहीं छोड़ती है। नेता पर भरोसे के लिए जनता हर तर्क-कुतर्क ईजाद करती है। कभी कहती है कि 'नेता तो ईमानदार है। उसने आश्वासन दिया है तो पूरा करने का प्रयास भी करेगा। पर रास्ते में बाबूशाही के अड़ंगे भी हैं। उनसे पार पाना कठिन है।' क्या पता उनसे कब तक जूझना पड़े? नहीं तो अब तक नल और पानी दोनों आ जाते। हर बेकार गरीब को कोई-न-कोई रोजगार मिल जाता, उसको पेट पालने के साधन उपलब्ध होते। जमीन की सच्चाई भले ही कुछ और कहे, पर नेता ऐसा तोता है, जो बाबूशाही की रंटत फिर भी दोहराता रहता है। एक बार सत्ता मिली तो उसकी आँखों पर दिखाए गए सपनों की पट्टी ऐसी बँधती है कि वह वही देखता है, सुनता है और बोलता है। इस करतूत में प्रमुख भूमिका बाबूशाही की है। वही उन्हें अपनी सुविधा के अनुसार उल्टे-सीधे पाठ पढ़ाती रहती है। हम कैसे मान लें कि राजनीति को इस चतुर खिलाड़ी को कोई अन्य इतनी आसानी से आँख का अंधा, कान का बहरा और जुबान का झूठा बना सकता है? यह कमाल भारत के बाबुओं का है। इसके लिए वह बधाई

के पात्र हैं, जिन्होंने लाखों को साल-दर-साल उल्लू बनाया, कोई उन्हें उसी नस्ल का सिद्ध करे तो वह शर्तिया प्रशंसा का पात्र है।

देखने में आया है कि भारत में जो भी जनता के संपर्क में आता है, उसका यकीन सिर्फ हाँ कहने में है। इसके ज्वलंत उदाहरण देश के जाने-माने समाज-सेवक सेवाराम हैं। उनके समकालीन परिचित बताते हैं कि उन्होंने हर क्षेत्र से निराश होकर सेवा के धंधे में प्रवेश करने का निश्चय किया। किराए के मकान में रहकर एक साइकिल से उसने विधवा कल्याण और बेसहारा महिलाओं का सहारा बनने के निश्चय में जुटकर दर-दर चंदा माँगा। सरकार के एक आला अफसर को उन पर रहम आया। उन्होंने उसे सरकारी ग्रांट दिलवाई। उसके 'बसेरा' संस्थान ने शासन से जमीन हथियाकर संस्था बनाई। अब तो उसकी शाखाएँ किसी भी बाबा-योगी के साम्राज्य से टक्कर लेने को पर्याप्त हैं। सामान्यजन उनका नाम भी सुनते और मीडिया में पढ़ते हैं। बहुत कम हैं, जिन्होंने उनके साक्षात् दर्शन किए हैं, पर ऐसे भी उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, जिन्होंने उसके फोटो टी.वी. अखबार में नहीं देखे हैं। आत्म-प्रचार में उसकी सानी नहीं है। अब वह केवल प्रेस के माध्यम से जनता को सुलभ हैं, उसके विचार भी। अपनी बड़की गाड़ी से वह मंत्रियों और आला-अफसरों के चक्कर काटता है। अपने फार्महाउस में वह कभी संपादकों, तो कभी बड़े बाबू और मंत्रियों को भोजन और मनोरंजन से कृतार्थ करने में उदार हैं। यों वह खास लोगों को बताता भी है कि मनोरंजन के साधन तो उसके आश्रम में ही उपलब्ध हैं। उसने अपनी दूरदृष्टि से हर आश्रम को खर्चे में आत्मनिर्भर बनाया है। कढ़ाई, सिलाई, बुनाई जैसे धंधों से यह सुनिश्चित हुआ है। इतना ही नहीं, हर आश्रम में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आधुनिक मशीनें भी उपलब्ध हैं। किसी भी शातिर अपराधी के समान अब वह देश के सबसे पुराने दल के टिकट पर चुनाव के अखाड़े में कूदने को प्रस्तुत है।

सब परिचित हैं इस तथ्य से कि राजनीति में खतरे भी हैं। जब तक सत्ता है, कोई सोचता भी नहीं है कि यह सारा सुख अस्थायी है। सार्वभौमिक सत्य सिर्फ परिवर्तन है। चुनाव में केवल जनता की चलती है। उसके अनपेक्षित परिणाम भी मुमकिन हैं। न ज्योतिषी इसकी भविष्यवाणी कर सकते हैं, न चुनाव विश्लेषक। सबकी अपनी पसंद है। उसके तुक्के चलते हैं, अधिकतर कौन राजनेता सत्ता-सुख भोगने को प्रस्तुत नहीं है? पर यहाँ भी वह असलियत से कन्नी काटते हैं। चुनाव हारकर मन उदास है, पर चेहरे पर मुसकान खेल रही है, "चुनाव है, जीत-हार तो लगी ही रहती है।" वह राजनीति के धाकड़ हस्ती हैं। हमारे समाज-सेवक तो नौसिखिया है। चुनाव लड़े। छवि के सहारे जीते भी। पर सरकार बदली तो भुगते भी। नई सरकार ने उसकी 'समाज-सेवा' को घोटाला मानकर आश्रमों की जाँच करवाई। अब हर शहर में उसके खिलाफ केस दर्ज हैं। उसकी छवि को भी धक्का लगा है, सच के उजागर होने से अब वह वकील सेवा में व्यस्त है। उसके आश्रम भी बदहाल हैं। सफलता की कीमत सुखद भी है, दुखद भी। आज वह उसके दुःख पक्ष के पीड़ित हैं।

इस अंक की चित्रकार



अनुभूति गुप्ता

हिंदी की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, लघुकथाएँ प्रकाशित; साथ ही रेखाचित्र भी। तीन पुस्तकें भी प्रकाशित। 'माटी कहे कुम्हार से' पुस्तक में रेखाचित्र प्रकाशित।

संपर्क : १०३, कीरतनगर,
निकट डी.एम. निवास, लखीमपुर
खीरी-२६२७०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९६९५०८३५६५

देखने में आया है कि सरकारी कर्मचारी अपने इशारों में अधिक स्पष्ट हैं। वे हाँ और ना कुछ नहीं कहते, बस टालम-टोल की चुप्पी साध लेते हैं। अनुभवी ऐसों के इशारे से वाकिफ हैं। वह जानते हैं कि यह अपने अधिकार क्षेत्र की अहमियत जता रहा है। उसका बाजार मूल्य लगा रहा है। एक बार वसूली हुई तो उसकी सक्रिय 'हाँ' तय है। फिर जो भी काम है, वह फटाफट होगा, बिना किसी बाधा-रुकावट के। इस प्रकार की वसूली में बड़ा पारस्परिक भाईचारा है। लूट में सबका हिस्सा निश्चित है, नीचे से ऊपर तक। लिहाजा शिकायत का सवाल नहीं है। शिकायत है तो समाज-सेवक को है। उसे वकीलों की फीस से परहेज है, न्यायालयों की लंबी प्रक्रिया और सियासी दुश्मनी से। वह कहता भी है, "हमने इतनी विधवाओं और निराश्रित महिलाओं की सेवा की है, उसकी सिला क्या मिला? वकीलों पर निर्भरता, अलग-अलग अदालतों की सुनवाई। रात-दिन का तनाव, जेल का डर, खाकी की लूट। क्या-क्या जुल्म नहीं हो रहा है, एक दल से चुनाव लड़ने और जीतने पर।" सच भी है। घपले-घोटाले इन धंधों में कामयाबी के लिए अनिवार्य हैं। दीगर है कि पकड़े कुछ ही जाते हैं।

कई ज्ञानियों का निष्कर्ष है कि आज के सभ्य और शिष्ट समाज में एक-दूसरे की झूठी तारीफ और हर बात पर 'हाँ' का चलन है। इस 'कान-खुजाऊ' संस्कृति में कान हटे नहीं कि आलोचना की आजादी है। वैसे ही अब हाँ में ना निहित है। 'हाँ' सुनकर सुननेवाले को अच्छा लगता है। परिणाम कुछ भी हो। इतना ही क्या कम है कि दुखी दुनिया में हाँ कहकर किसी ने किसी को पल भर की खुशी तो दे ही दी? हमें उसी के लिए आदतन और रुटीन में 'हाँ' दृष्टिकोणवालों को धन्यवाद देना चाहिए। डर है तो यही है कि कहीं वास्तविकता के प्रभाव में कहीं वह भी 'ना' कहना न शुरू कर दें?

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४६८

घर बैरागन

• ऋता शुक्ल



सुप्रसिद्ध कथाकार। 'अरुंधती', 'दंश', 'अग्निपर्व', 'समाधान', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'शेषगाथा', 'कनिष्ठा उँगली का पाप', 'कितने जनम वैदेही', 'कासों कहों मैं दरदिया' तथा 'मानुस तन' कृतियाँ चर्चित। 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ' कृति भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत। अनेक विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

'कहाँ चूक हो गई मुझसे? क्या आप बताएँगी गुरुमाता!'

तापसी नन्हीं बालिका की तरह बिलखकर रोती हुई मुझसे लिपट गई थी।

पूरे सत्ताईस वर्षों के बाद उससे मेरी भेंट हुई थी। मिथिला के पावन परिसर में रामकथा का भव्य आयोजन था। मेरे बंधु आचार्य पुत्नक शास्त्री ने बड़े आग्रह के साथ न्योता भेजा था—

'मुझे आपकी व्यस्तता का ज्ञान है, लेकिन मेरा विश्वास है कि इस महत्त्वपूर्ण आयोजन के लिए आप थोड़ा समय अवश्य निकालेंगी।'

मेरे गुरुभाई राजेश्वरानंदजी जिला जालौन से पधारने वाले थे। उनके कंठ से रामकथा के रसमय गायन को सुनना, मानस की पंक्तियों के गूढ़ार्थ से अपनी आत्मा को तृप्त करना सचमुच एक सुखद संयोग था।

यात्रा की तैयारी करते समय अनायास तापसी की स्मृतियाँ उभर आई थीं। दरभंगा से राँची आकर छात्रावास में रहती स्नातकोत्तर हिंदी की पढ़ाई पूरी करती तापसी ठाकुर…! विलक्षण प्रतिभासंपन्न थी मेरी यह शिष्या। कक्षाओं में उसकी एकाग्रता देखते ही बनती। उसके संस्कृतज्ञ पिता ने दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया था—

'तापसी को आपके संरक्षण में छोड़ रहा हूँ। अपनी इस बिटिया का पालन-पोषण मैंने सत्कर्मों की तेजोमयता देने का प्रयास करते हुए बड़े सचेष्ट भाव से किया है। आपके सान्निध्य में भाषा और संस्कारों की, सद्विचारों की शुभता प्राप्त करेगी, तो इससे बड़ी भाग्यशालिनी दूसरी नहीं होगी। मैं दरभंगा से बीच-बीच में आता रहूँगा। आप तापसी की अभिभाविका हैं और मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ।'

हिंदी विभाग में तुलसी जयंती का आयोजन था। तापसी और उसकी मित्र मंडली ने बड़े मनोयोग से तैयारी की थी—

'दीदी माँ, एक बार चलकर देख लेतीं न, कहीं कोई त्रुटि…'

मेरे साथ अंग्रेजी विभाग की सुनंदा और ललित कला विभाग की श्रेया भी थीं।

सभागार की साज-सज्जा मनमोहक थी। तुलसी, मीरा, कबीर के भजनों से पूरा परिवेश राममय हो गया था। श्रेया ने मेरा ध्यान बँटाया था।

'दीदी, मंच पर श्रीराम की वह विशाल पेंटिंग देख रही हैं न, इधर आइए न, निकट से देखिए। तापसी, तुम भी मंच पर आओ!'

राम की कोदंड छवि। चित्र आश्चर्यजनक रूप से सुंदर था।

श्रेया ने रहस्य खोला था—इसे आपकी पट्टशिष्या तापसी ठाकुर ने बनाया है। छह महीनों से मेरे साथ जुड़ी थी। चुपचाप यह चित्र बनाती रही और…मैंने देखा था, तापसी अपनी कला गुरु से मौन रहने का निवेदन कर रही थी।

श्रेया ने धीरे से उसके माथे पर हाथ रखा था, 'मुझे बोलने दो तापसी! यह छवि तुम्हारी साधना का प्रतिफल है। तुम्हारी गुरुमाता को जानने का अधिकार है।'

'जानती हैं दी, इस लड़की की निष्ठा ने मुझे बेमोल खरीद लिया है। मेरे कक्ष में जब तक चित्र बनाती रही, फलाहार के सिवा कुछ भी ग्रहण नहीं किया। कहती थी, मेरे माँ-बाबूजी श्रीराम के अनन्य भक्त हैं, मेरा भाई और पूरा परिवार! बाबूजी की चेतावनी है श्रेया दी, मर्यादा पुरुषोत्तम की साधना करनी हो तो मन, वचन, कर्म की शुद्धता अनिवार्य है, साँचे राचे राम! मुझे तो निराहार रहकर ही यह संकल्प पूरा करना है।' विद्यार्थियों के द्वारा आयोजित तुलसी जयंती का सुंदर समारोह देखकर कुलपति अत्यंत प्रसन्न थे। राम वन गमन प्रसंग, अहिल्या उद्धार प्रसंग और राम दरबार की झाँकियाँ प्रस्तुत की गई थीं। पार्श्वगायन तापसी का था—

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार…।

उसके कोमल स्वर ने सबका मन मोह लिया था। अपनी सखी शाश्वती के साथ मिलकर उसने तुलसीदास का भजन प्रस्तुत किया था—

अब लौं नसानी, अब ना नसैहों...
रामकृपा भव निश सिरानी...

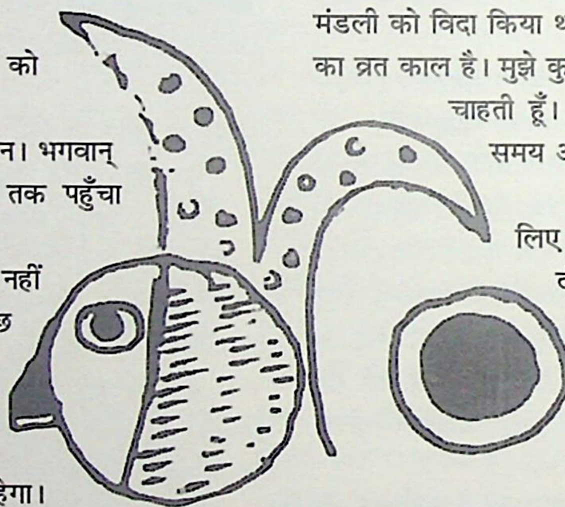
अतिथियों के जाने के पश्चात् वह मेरे पास आई थी—दीदी माँ, आप मौन क्यों हैं? सबकुछ ठीक-ठाक रहा न, मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई? मैंने धीरे से उसके ललाट का स्पर्श किया था—तापसी, तुमने मेरे पीहर का स्मरण करा दिया। मेरे बाबूजी की तुलसी भक्ति, मेरी पितामही की अनन्य आस्था, श्रीराम और माता जानकी के प्रति मेरे पूरे परिवार का वह विलक्षण मोह-छोह! वह रामधुन से भरी-पूरी अँगनाई मेरे सामने साकार हो गई। रामनवमी का उत्सव होता और मेरी मोई के कंठ में सोहर के बोल उमड़ने लगते—

चइत के रामनवमी
श्रीराम जनम लिहले हो
ललना, बाजे लागल अवध बधाव,
महल उठे सोहर हो...।

तापसी मंत्रमुग्ध सुन रही थी। श्रेया ने उसे स्मरण दिलाया था—'अरे रामभक्तिन, कहाँ खो गई?' स्मरण है न, अपनी दीदी माँ को तुम्हें उपहार देना है।

'हाँ-हाँ!' उसने कार्यालय परिचारक को आवाज दी थी—

'वरुण भइया, जरा हमारे साथ आइए न। भगवान् श्रीराम का यह चित्र दीदी माँ के आवास तक पहुँचा दीजिए न।'



तापसी की मनुहार के सामने मेरी एक नहीं चली थी—'आपके सान्निध्य में बहुत कुछ सीखने का सुयोग मिला है दीदी माँ।

'यह अंतिम वर्ष है। परीक्षा होते ही बेनीपट्टी वापस जाना होगा। फिर कब भेंट होगी, राम जानें! यह चित्र आपके पास रहेगा। श्रीराम मेरा स्मरण आपको दिलाते रहेंगे।'

मेरा मन भीतर तक भर आया था, तापसी नन्हीं बच्ची बनकर मेरी गोद में समा गई थी, उसकी वह तरल हँसी...

'बूँद बनकर समुद्र में समा चुकी हूँ। पानी बनकर चंदन के साथ घुल चुकी हूँ। आप चाहें भी तो मैं आपसे अलग नहीं हो सकती दीदी माँ, इस जन्म में तो क्या, किसी जन्म में नहीं...।'

उसके जाने के बाद लगभग एक वर्ष तक कोई समाचार नहीं मिला था। उसके एक सहपाठी ने सूचना दी थी—

'तापसी ठाकुर का विवाह हो गया। उसके पति बिहार के किसी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं।'

तापसी के पिता आचार्य अनुभव शर्मा का पत्र निमंत्रण-पत्र के साथ लगभग एक महीने के बाद प्राप्त हुआ था—'सबकुछ अत्यंत शीघ्रता में सुनिश्चित हुआ। तापसी आपको बार-बार स्मरण कर रही है। आपको आगमन संभव नहीं, आशीष के दो शब्द भेज सकें तो बड़ा अनुग्रह होगा।'

मैंने लौटती डाक से पत्र भेजा था। मुझे देवर्षि नारद के वचन स्मरण हो आए थे। तापसी को शुभकामनाएँ देते हुए वालमीकीय रामायण का वह श्लोक उद्धृत किया था—

'लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्वर्वं जानकी शुभा।
पुन्नाम वाचकं यावत्तत्सर्वं त्वंहि राघव॥

इस विश्व में जो नारी संज्ञा है, वह शुभा जानकी है और जो कुछ पुरुष वाचक है, वह राघव का ही रूप है।

तापसी, मेरी मंगलकामना है, तुम श्रीजानकी के वैशिष्ट्य को साथ लेकर पतिगृह जाओ और दोनों कुलों की मर्यादा का निर्वहण करो।

मेरे गुरुभाई पुलकशस्त्रीजी ने पत्र द्वारा सूचित किया था—

'आपकी शिष्या के घर का अता-पता बड़ी कठिनाई से ढूँढ़ पाया। मेरी छात्र मंडली ने दिन-रात एक किया, तब कहीं...'

विश्वविद्यालय का अतिथिगृह सभी अतिथियों के लिए सुनिश्चित किया गया राजेश्वरानंदजी रात्रि में पधारनेवाले थे। मैंने साग्रह अतिथेय मंडली को विदा किया था—'पुलक भाई, आप सब लोग जाएँ। नवरात्र का व्रत काल है। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं भी थोड़ी देर का एकांत चाहती हूँ। श्री दुर्गा सप्तशती का पाठ करना है। संध्या समय आप लोगों से मिलना होगा।'

आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर जप, ध्यान के लिए मन को एकाग्र करने चली तो क्षणभर के लिए दीपक की लौ कंपित हुई। मुझे लगा, तापसी समक्ष खड़ी 'श्रीदेवी कवच' के मंत्र गुनगुना रही है—

चं चं चिंतयति कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम्

'पूरे मन से माँ भगवती का ध्यान करती हूँ दीदी माँ, तभी तो ऐसे माता-पिता और ऐसी गुरु माँ मुझे प्राप्त हुई हैं। सच, देवी की असीम कृपा है मुझ पर।'

पाठ संपूर्ण कर क्षमा प्रार्थना के मंत्र उच्चारती आसन से उठी थी तभी कमरे की साँकल धीरे से बजी थी।

यह तापसी थी। मुख पर वही निष्पाप हँसी, उस हँसी के भीतर छिपा करुणा का अथाह सागर दूसरे ही क्षण उसकी आँखों में उमड़ लगा था।

'दीदी माँ...।'

उसके संबोधन में वनपांखी का करुण क्रंदन था, हास बाँधकर व दु:ख मेरे सामने खड़ा प्रभंजन की प्रतीति देने लगा था—

'क्या हुआ, तापसी मेरी बच्ची, लो यह जल पियो, शांत हो जा और मुझे सारी बातें बताओ।'

अपने आँसुओं के ज्वार को भीतर समेटने की कोशिश करती

तापसी किसी प्रकार प्रकृतस्थ हो पाई थी—

आपने लिखा था न दीदी माँ, तुम्हें तुम्हारा मनोवांछित वर प्राप्त हो। मैंने भी जीवन भर गौरी-गणेश का पूजन किया। एक भी प्रदोष व्रत मुझसे नहीं छूटा। फिर मेरे साथ यह अन्याय क्यों हुआ? सत्ताईस वर्ष पूर्व आपको आश्रय छूटा था, तभी से मेरे दुर्दिन भी प्रारंभ हुए।

तापसी नियति की जिस क्रूरता का शिकार हुई थी, उसे सुनकर मेरी आत्मा काँप उठी थी। अनुभव शर्मा ने अच्छी तरह परखकर वह संबंध जोड़ने का निर्णय लिया था, अपनी पत्नी से विचार-विमर्श किया था। अन्नपूर्णा ने तापसी को सामने बिठाकर उसके भावी वर के विषय में सबकुछ सूचित किया था—

मेरे बाबूजी का मन उस घर वर के साथ बँध-सा गया है तापसी, लड़का और उसके माता-पिता, भाई-बहन, पूरा परिवार सुसभ्य और संस्कारी है। शीलभद्रजी को तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई या नौकरी आदि के विषय में कोई आपत्ति नहीं है। तुम कहो तो···'

सप्तपदी के सारे वचन पहले दिन ही खोखले प्रतीत हुए थे दीदी माँ, मेरे राम में लेशमात्र भी रामत्व नहीं था। त्रेतायुग के उस शंकालु जीवात्मा ने ही नया कलेवर धारण कर लिया था।

'तुम बात-बात पर हँसती क्यों हो?

इतना बनाव शृंगार किसलिए?

मेरा कोई भी मित्र आए तो चाय-नाश्ता देने के लिए तुम्हें नहीं आना है।

तुम्हारे मायके में मुहल्ले-टोले के लड़कों की जमात लगी रहती है। हुँह···बौद्धिक सम्मेलन के नाम पर वहाँ क्या कुछ होता है, मुझे सब पता है।'

मेरे बाबूजी का मन उस घर वर के साथ बँध-सा गया है तापसी, लड़का और उसके माता-पिता, भाई-बहन, पूरा परिवार सुसभ्य और संस्कारी है। शीलभद्रजी को तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई या नौकरी आदि के विषय में कोई आपत्ति नहीं है। तुम कहो तो··· सप्तपदी के सारे वचन पहले दिन ही खोखले प्रतीत हुए थे दीदी माँ, मेरे राम में लेशमात्र भी रामत्व नहीं था। त्रेतायुग के उस शंकालु जीवात्मा ने ही नया कलेवर धारण कर लिया था।

इतने वर्ष हो गए, दो-दो पुत्रों की माता है आपकी यह तापसी, लेकिन आज भी मेरे पतिदेव का व्यवहार पूर्ववत् है।

मैं अकेली कहीं नहीं जा सकती, मंदिर तक नहीं। मेरे भाग्य में अवध का सुख नहीं, अशोक वाटिका का दुस्सह दुःख लिखा था ईश्वर ने।'

मेरे पास सांत्वना के लिए शब्द नहीं थे। मैं कुछ कहती, इसके पूर्व परदा खिसकाकर वह अपरिचित प्रौढ़ पुरुष भीतर आ खड़ा हुआ था—तापसी धीरे से उठ खड़ी हुई थी।

वह तापसी का पति शीलभद्र था। सुनहले फ्रेमवाले कीमती चश्मे के भीतर से पलकें झपकाते हुए उसने अभिवादन किया था। ये आपका गुणगान करती नहीं थकतीं। समय निकालकर घर पर आएँ। उसने तापसी को देखा और उसका स्वर अनायास रूक्ष हो गया था—'अब घर चलें, बड़े को दवा देने का समय हो गया है।'

मैंने पुलक शास्त्री की ओर से 'रामकथा महोत्सव' का निमंत्रण-पत्र शीलभद्र को देना चाहा था। उसने हाथ के इंगित से मना कर दिया था—'मेरी इन सब आयोजनों में कोई रुचि नहीं। हाँ, आपकी यह पटशिष्या चाहें तो मैं बाधक नहीं बनूँगा, इन्हें आयोजन स्थल तक छोड़ जाऊँगा।'

बलपूर्वक ले जाई जा रही गौ जैसी कातरता क्षणभर के लिए तापसी के मुख पर उभर आई थी। फिर उसने अपने आप को संयत कर लिया था।

'दीदी माँ, कल के आयोजन में आपका व्याख्यान सुनने के लिए मैं अवश्य आऊँगी।'

'राजेश्वरानंदजी ने आते ही मुझसे मिलने की इच्छा व्यक्त की थी—

'बहिन, आपके पिताजी मेरे परम गुरु आचार्य रामेश्वरनाथजी के साथ मठिया पर का वह मानस सत्संग भुलाए नहीं भूलता।'

'श्री बजरंगबली की, सियावर रामचंद्रजी महाराज की, सद्गुरु महाराज की जयकार होती और गुरुदेव का दृप्त कंठ सुंदरकांड का गायन प्रारंभ होता। श्रीराम की दुस्सह विरह वेदना, सीता माता अकथनीय पीड़ा···श्री हनुमान की विगलित कंठ प्रार्थना—जानकी माँ, तुमसे दुगुना मेरे प्रभु श्रीराम का दुःख है।

कहेउ राम वियोग तब सीता
मो कहँ सकल भए विपरीता··
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू
काल निसा सम निसि ससि भानू।

'उन्हीं दिनों आपकी माताजी से गुरुवर का सद्यः वियोग हुआ था। राम का विरह ताप उनकी आत्मा में बसा प्रेमाश्रु बनकर प्रवाहित हो चला था। अद्भुत था वह रामकथा सम्मेलन। आपके सुधर्मा पति के गोलोकवासी होने के पश्चात् मठिया उजाड़ हो गई, मैं दुबारा वहाँ नहीं गया।'

न चाहते हुए भी बार-बार तापसी और उसके पति की आकृतियाँ मेरे समक्ष प्रकट हो रही थीं। मैं एक विचित्र प्रकार की मानसिक क्लांति का अनुभव कर रही थी। मैंने राजेश्वरानंदजी को वह पूरा संदर्भ बताया था। वे तनिक मौन हुए थे, फिर उन्होंने मुझे प्रबोध दिया था—

'आपकी शिष्या का प्रारब्ध यही था बहिन। उसकी भवितव्यता के निर्णायक हम-आप या उसके परिजन कदापि नहीं हो सकते। इतने वर्षों तक उसने ऐसे दुःशील पुरुष के साथ घर-गृहस्थी चलाई, मैं तो उस बिटिया को घर बैरागिन ही कहूँगा।'

दूसरे दिन के उद्घाटन सत्र में भाई राजेश्वरानंद मंच पर शोभायमान थे। तापसी ठीक समय पर आ गई थी—

दीदी माँ, ऐसा समारोह मेरे नगर में और मैं वंचित रह जाती, ऐसा

नहीं हो सकता था न! आश्चर्य की बात तो यह है कि मेरे पति ने पहली बार किसी समारोह में जाने के लिए कोई रोक-टोक नहीं की।

मेरे गुरुभाई की तेजोमयी वाणी श्रीराम नाम का सुमधुर उच्चार करने लगी थी। तापसी ने अपनी नोटबुक निकाली थी और उनके व्याख्यान का एक-एक शब्द सहेजने के लिए कलम की नोक दुरुस्त करती वर्षों पहले की ऊर्जा भरी बालिका के रूप में उसकी परिणति देखकर मैं थोड़ी सहज हुई थी।

सीता स्वयंवर का सरस प्रसंग था—

देखन बाग कुँवर दोउ आए।

सीताजी की सखियों में से एक सखी ने राम-लक्ष्मण को पुष्पवाटिका में देखा है। उसकी दशा कैसी हो गई? वाणी बिना नेत्रों की और नेत्र बिना वाणी के।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

जनक नंदिनी ने श्रीराम की पीतपट छवि देखी, शील, संस्कार के आगार मर्यादा मर्यादा पुरुषोत्तम की प्रतिमा उनके हृदयपटल पर अंकित हो गई।

राजेश्वरानंद भावमग्न थे। श्रोता मंडली उनकी वाणी का सूत्र थामे राजा जनक की मिथिला नगरी की मनोयात्रा करती श्रद्धाविभोर थी।

प्रश्नकाल में तापसी ने एक कागज का टुकड़ा मंच पर भिजवाया था—

'यह कलिकाल है। राम-सीता के आदर्शों की परिकल्पना के बावजूद यदि जीवन में विपरीतता आ जाए। कमलवन कंटकवन हो जाए तो क्या करना चाहिए?'

मेरे मर्मज्ञ भाई ने सबकुछ थाह लिया था—

प्रारब्ध पहिले रची, पाछे रच्यो सरीर¨

तुलसी चिंता त्याग दे, भज ले श्री रघुवीर¨।

'अपने प्रारब्ध को अंगीकार करना होगा और उसे अस्वीकार करते हुए जीवन जीने का सुगम उपचार भी ढूँढ़ना होगा। समग्र विषमताओं के बीच जीवन की अखंड ऊर्जा प्राप्त करनेवाली आस्था का ही नाम सियाराम है। एक बात का सदैव स्मरण रखें—

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता।

तजन कृत करम भोग सुनु भ्राता॥

विगत जन्मों के कर्म विधान चेतना का ग्रंथिबंधन बनते हैं। अतएव, अपने भीतर की अग्नि को चेताना होगा, ताकि समस्त लौकिक विकारों की आहुतियाँ देकर अनमोल मनुष्य जन्म की सार्थकता सिद्ध कर सकें।

तापसी का रोम-रोम पुलकित था। उसके नेत्रों में एक नई आभा थी, 'दीदी माँ, आपके कारण ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।'

दूसरे दिन मेरा व्याख्यान था, 'भारतीय नारी का आदर्श : श्री जानकी का आत्म वैभव।'

'राम का विवेक लोकोत्तर था तो सीता का धैर्य विलक्षण था। राम के पास एक उदात्त दृष्टि थी, जिसने प्रत्येक घटना में शुभता देखी थी, जानकी आजपा जप थीं, जिनके रोम-रोम में राम प्रतिध्वनित थे। रघुकुल गौरव राम मर्यादा की प्रतिमूर्ति थे, सीता अप्रतिम आत्मसौंदर्य की शील स्वाभिमान की साकारता थीं। वे आर्ष संस्कृति के प्राज्ञ पुरुष, ग्राम संस्कृति के कर्म पुरुष विदेह की कन्या थीं, वनवासिसनी राम भार्या ने अपनी स्वावलंबन सामर्थ्य, अपने सुदृढ़ मनोबल को पाथेय बनाकर लवकुश का पालन किया।

आज भी वेदना के निकष कसे हुए नारी जीवन की स्वर्णाभा देखती हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त ऊर्विजाएँ दुःखों को अग्निस्फुलिंग नहीं, चंदन का अवलेप मानकर अपनी जीवन यात्रा को सहज-सुगम बनाती हैं। हर कन्या धरती माता का वरदान ही तो है। वैदेही के कितने जन्म, युग संधियों का अतिक्रमण करती लक्ष कोटि नारी भंगिमाएँ। संसार में फैले हुए निविड़ पातक तम की इति एक स्त्री ही कर सकती है। राम के रामत्व को पुनर्जीवित करने के लिए कौशल्या की कोख का तप चाहिए और जानकी के आत्मबल की उज्ज्वलता भी।'

मेरा व्याख्यान पूरा होते ही तापसी के साथ कई युवतियाँ मंच पर आ गई थीं। दीदीजी, आपने वैदेही की कितनी सटीक व्याख्या की। हमारी इच्छा हो रही थी कि आप थोड़ी देर और बोलतीं। मैंने तापसी को धीरे से बताया था, मुझे आज ही प्रस्थान करना है।

'यह क्या दीदी माँ, हमारे घर नहीं चलेंगी? थोड़ी देर के लिए ही सही।'

अपनी मानस पुत्री का आग्रह टालना मेरे लिए संभव नहीं था। उसने अपने घर को एक तपोवन का रूप दिया था—भगवती का छोटा सा मंदिर, तुलसी चौरा, पारिजात वृक्ष, मिथिल की संस्कृति के अनुरूप छोटा सा तालाब, श्वेत कमल पुष्पों से भरा¨।

'आइए न दीदी माँ, भीतर आइए। वह सीधी बच्चों के कमरे में ले गई थी।

मैं हतवाक् थी। बिस्तर पर मांस का वह लोथड़ा। धीरे से सुगबुगाता, करवट बदलकर बैठने का प्रयास करता हुआ। नासिका नेत्र, श्रवण, होंठ कोई भी अंग स्पष्ट नहीं। लटपटाते स्वर में उसने नमस्ते कहा था।

छोटा बालक स्फूर्त था। उसने पढ़ने की मेज से उठकर झट से मेरे पाँव छुए थे, 'आप हमारी नानी माँ हैं न। माँ हमेशा आपके बारे में बताती रहती हैं। देख रहे हो न भइया, ये वे ही राँचीवाली नानी माँ हैं।'

तापसी बच्चों से मिलाकर मुझे अपने कमरे में ले गई थी।

'यह भी मेरे प्रारब्ध का ही एक अंश है। जन्म के समय से यही स्थिति है। चौदह वर्ष हो गए, मैंने आस नहीं छोड़ी है। दो बार इसके चेहरे की, कानों, नासिका और होंठों की शल्य चिकित्सा हो चुकी है। चिकित्सक कहते हैं, आपके अटूट धैर्य का परिणाम है, बालक कुछ बोलने, सुनने की स्थिति में आ रहा है। मेरे इस पुत्र को जन्म से समय जबरन मृत घोषित करने का प्रयास किया गया था दीदी माँ, पर मैंने हार नहीं मानी। मैं माँ हूँ न, इसे जन्म दिया है तो इसकी जीवन रक्षा का दाय भी तो मेरा ही है न। दिल्ली के चिकित्सक डॉ. भार्गव बड़ी तत्परता

से इसका इलाज कर रहे हैं। अगले वर्ष फिर उनके पास ले जाना है। इसका पुनर्जन्म हो, इसे स्वस्थ काया मिले, इसका जीवन सुधरे, आप प्रार्थना करेंगी।'

बड़े भारी मन से मैंने विदाई माँगी थी, 'तुम्हारा संकट समझ रही हूँ। इस सघन पीड़ा से त्राण मिले, इसके लिए प्रार्थना भर कर सकती हूँ।'

समय जात नहीं लागहिं, देखते ही देखते पूरे ग्यारह बारह वर्ष बीत गए थे। ठीक ही कहा था राजेश्वरानंदजी ने।

'सचमुच घर बैरागन है आपकी यह अंतेवासिनी। इसे देखकर, इसकी जीवन कथा जानकर कहने की इच्छा हो रही है—

हर धिया सिया हो सकती है, लेकिन हर पुरुष राम नहीं हो सकता।

विश्वविद्यालय की सेवा से मुक्ति के बाद अनवरत कलम की साधना का लक्ष्य लेकर जुट गई थी मैं। वैदिक काल की ऋषिकाओं की प्रातिभ जीवन शैली उनका मंत्रदृष्टा, मंत्रस्रष्टा स्वरूप। उन पूर्वजाओं के विषय में सोचते, वैदिक वाङ्मय का अनुशीन करते हुए अद्‌भुत परितोष की अनुभूति मुझे एक नई ऊर्जा प्रदान करने लगी थी।

बीच-बीच में तापसी की याद आती, मन का मेल नहीं, सात भाँवरों का मान कबका तिरोहित हो चुका। शीलभद्र जैसे संशयात्मा के साथ जीवन की डोर बाँधे रखना, पुत्र की अनगढ़ काया को नए सुंदर आकार में ढालने की उसकी जिद…

मैं माँ हूँ…इस बालक की जीवन-दशा को सुधारने के लिए कुछ भी करूँगी। रामनवमी कि दिन था वह।

मेरी गृह सेविका सुमना न जाने कहाँ से ढूँढ़कर वह चित्र निकाल लाई थी।' आप इसे ही खोजने की बात कर रही थी न। देखिए तो, भगवान् श्रीराम की यह फोटो कितनी सुंदर है न! इसे आपके पूजावाले कमरे के सामने बरामदे पर सजा दें।'

मैं सुंदरकांड की चौपाई से जुड़ी थी। राम हनुमान से पूछते हैं—

रहहू लात केहि भाँति जानकी।
रहति करति इच्छा स्वप्रान की॥

कैसे रहती होगी तापसी? उसके पिता अनुभव शर्मा का मर्माहत करनेवाला पत्र प्राप्त हुआ था—'तापसी की इस अवस्था का सारा दाय मुझपर है। शीलभद्र का अंतर्व्यक्तित्व इतना कलुषित होगा, इसका आभास सपने में भी नहीं था। मेरी बच्ची मायके नहीं आ सकती। अन्नपूर्णा दिन-रात आँसू बहाती बिलखती रहती है। मेरा अपराध-बोध मुझे शांतिपूर्वक मरने भी नहीं देगा।'

मैंने उत्तर दिया था—'तापसी से मिलकर भाई हूँ मैं। जीवन-युद्ध में वीरांगना की तरह जुटी है वह। उसके साहस, उसकी कर्मठता के सामने मैं तनमस्तक हूँ। आप अपराध-बोध न पालें। उसकी आस्था प्रबल है, उसमें जिजीविषा का अमृतमय वेग है। दुःख में सुख के संधान का सूत्र पा लिया है मेरी शिष्या ने।'

नवरात्र की पूर्णाहुति के बाद व्रत पूरा हुआ था। प्रसाद वितरण के पश्चात् तनिक क्लांति का अनुभव करती मैं अपने शयनकक्ष में चली आई थी। फोन की घंटी बजी थी। असमय, अनजान नंबर! किसका हो सकता है?

उधर से सर्वथा अपरिचित स्वर में वह भाव-विह्वल संबोधन—'नानी माँ, चरण-स्पर्श करता हूँ। पहचानिए, मैं कौन हूँ?'

'नहीं पहचाना न, मैं तापसी ठाकुर का बड़ा बेटा नीलोत्पल बोल रहा हूँ।'

कितनी स्पष्ट आवाज, कैसा अपनापन! मैं निःशब्द थी। तापसी का तप इस रूप में साकार होगा! मैं इसकी कल्पना तक नहीं कर सकती थी।

'तुम कहाँ से बोल रहे हो नीलू बेटे?'

'अरे वाह नानी माँ, आपको मेरा दुलार नाम याद है?'

उसने अपने विषय में बताया था हिंदी से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त करने के बाद शोधकार्य पूरा करने जा रहा हूँ। अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ नानी माँ। दिल्ली के एक प्रकाशन प्रतिष्ठान के सौजन्य से आपकी यह नई दूरभाष संख्या प्राप्त हुई है।'

मुझे शब्द नहीं सूझ रहे थे। जिस बालक को मैंने देखा था, क्या सचमुच यह वही…नीलोत्पल की मधुर हँसी ने मेरा मन बाँध लिया था।

'मैं दिल्ली में हूँ। आपकी शिष्या वहाँ दरभंगा स्थित अपने घर में। कल उसे आपका नंबर दे दूँगा। अच्छा, अब रखता हूँ।'

सुदृढ़ आत्मविश्वास से भरी तापसी मेरी सामने थी, 'मनुष्य को अपना उद्धारक स्वयं बनना होता है दीदी माँ। अपनी इस संतान की काया को प्राणरस से सींचकर कंचन बनाया है मैंने। आपने जीवन सूत्र थमाया था न, आस्था चिर विजयिनी होती है। मेरे राम की सजीव प्रतिमा को देखना चाहेंगी न आप?'

नीलोत्पल ने अपना एक मुसकराता हुए चित्र मेरे पास भेजा था।

'कठोपनिषद्' की प्रार्थना मेरी साँसों में घुल गई थी—

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।

मेरी दृष्टि में तापसी बहुत बड़ी हो गई थी।

राम नाम के मणिमय दीप को कितनी गहरी तन्मयता के साथ उसने अपनी चेतना में आलोकित रखा था।

उसकी निष्ठा के समक्ष मैं प्रणत थी। मेरा व्रत सार्थक हुआ था।

सा अ

मोराबादी
राँची-८३४००८
दूरभाष : ९४३११७४३११

संस-कृति के चार अध्याय

• अशोक चक्रधर

अध्याय एक

'संस-कृति के चार अध्याय' का
ये है अध्याय एक,
हमारा नायक है धीर, प्रशांत और नेक।
नाम है श्याम लाल प्रयत्नी,
चतुर सयानी दया रानी उसकी पत्नी।
उम्र बयासी साल है इसकी,
पर समझिए अट्ठा…इस की।
समझने में क्या जाता है,
संख्याओं को आगे-पीछे करने से
बयासी का अट्ठाइस ही आता है।

अब हम उनके लिए
'उसकी' नहीं 'उनकी' कहेंगे,
क्योंकि अपना अपमान वो
सह नहीं सकेंगे।
बयासी के है बया-सी, यानी
बया जैसी उड़ान भरते हैं,
समस्याओं का समस्याओं से ही
समाधान करते हैं।

घर में तीन पुत्र, तीन बहुएँ
दो बेरोजगार पोते, दो कुँआरी पोती,
एक ताबेदार डॉगी है मोती।
दो पोतियों की शादी हो गई,
दो नाती बस गए मुंबई।

एक बड़ी खूबी ये है
कि इनको खूब होते हैं इंट्युशन,
रिटायर होने के बाद
इंट्युशन हुआ कि पढ़ाओ ट्यूशन।
सो बीस साल तक कोचिंग सेंटर चलाया,
ठीकठाक पैसा कमाया।
लेकिन इधर दो-तीन साल से
बच्चे नहीं आ रहे हैं,
तो सिर्फ अपने मोती को पढ़ा रहे हैं।

खैर, अभी जो हुआ उसे
अनहोनी कहें या अनहोना,
दिन-रात कोरोना! कोरोना!! कोरोना!!!

प्रयत्नी जी को
रह-रहकर इंट्युशन आते हैं,
वे पूरे विश्वास के साथ
अपने डॉगी मोती को बताते हैं—
बेटा! तुझे यह जानकर हर्ष होगा,
कि दुनिया में जो चीज बचेगी
उसका नाम भारतवर्ष होगा।
किस्से तो देख सौइयों-सौ चले हैं
मुख-चर्चा ये चली कि
सब इस चीन के चोंचले हैं।
मौत हमें चोंच में न ले जाय
इसलिए समझदार भारत में
सबके बंद घोंसले हैं,
और मोती, हमारे भी तो
हैरतनाक हौसले हैं।

बस अब मोती समझ जाता है कि
दादाजी अपनी तारीफों के पुल बाँधेंगे,
और देर तक तकलीफों की
वही पुरानी खिचड़ी राधेंगे।
उसकी आँखों में नींद की खुमारी है,
प्रयत्नीजी का आख्यान जारी है—

धुर जवानी में कभी
हमारी अच्छी कमाई थी,
तब एक कंपनी बनाई थी।
श्याम लाल एंड संस,
लेकिन संस के साथ रख लिया
उनका मामा कंस।
चित्त को पट्ट कर गया,
पट्ठे ने अपनी नई कंपनी खोल ली
हमारी चौपट्ट कर गया।
फिर भी देख अपनी नेकता और



हिंदी व्यंग्य-लेखन के सशक्त हस्ताक्षर, कविताओं के मंच की शोभा, अनेक पुस्तकें प्रकाशित, बहुप्रशंसित, अनेक ख्यातनाम सम्मानों से सम्मानित। हिंदी अकादमी, दिल्ली तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष। विगत तीन दशकों से विभिन्न संचार माध्यमों में सक्रिय।

पारिवारिक एकता के लिए
उसी साले की कंपनी में
मन से करी मैनेजरी।
ट्यूशन भी किए
जब नहीं रही नौकरी।
कोचिंग सेंटर चलाया,
घर में सबसे काम करवाया।

हाथ में हुनर था और कमाने की कला,
हमेशा अच्छा ही गुजारा चला।
बहरहाल, अब जो 'एंड संस' घर में हैं,
तू तो जानता है उनकी क्या कहें!
कभी मामा के यहाँ,
कभी यहाँ-वहाँ हाथ-पैर मारते हैं,
पैसे के लिए अंततः
हमारे आगे ही हाथ पसारते हैं।
बनी रहती है गाड़ी में गति,
आखिर हमारे संस हैं हमारी कृति!
मेहनत और इंट्युशन से
हमने अपनी दिशाओं को मोड़ा है,
दूसरों के भ्रमों को तोड़ा है,
और किसी भी काम में
अगर कोई रोड़ा आया
तो उसे हटाने में कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा है।

जाहिर है अब कुनबे में
कम ही लोग कमाते हैं,
फिर भी सबको

एक साथ खाता-पीता देख
हम फूले नहीं समाते हैं।
घरवाले भी हमारा आदर-मान रखते हैं,
रसोई में कुछ नया बने
तो सबसे पहले हमीं चखते हैं।
फिर···फिर तुझे चखाते हैं,
उसके बाद घरवाले खाते हैं।

मोती सहमति में सिर हिलाता है,
बीच-बीच में कान भी खुजाता है।
वो जानता है कि दादू को आसानी से
कोई बीमारी नहीं होता है,
अगर हो जाए तो सबसे पहले जानकारी
उसी को होती है।
परिवार के बाकी लोग व्यस्त रहते हैं,
अकसर तो सोशल मीडिया में मस्त रहते हैं।

बहरहाल, प्रयत्नी के रहते
हर किसी को हर सुविधा प्राप्त है,
इस प्रकार संस-कृति का
पहला अध्याय समाप्त है।

अध्याय दो

अब संस-कृति का अध्याय दो,
शीर्षक है—जाने क्या हो?

अनपढ़ मोती सत्संग के लिए
दादाजी को ही चुनता था,
उनकी ज्ञान भरी बातों को
गौर से सुनता था—
देख बेटा!
अब हम जड़ी-बूटियों का ताम-झाम
सामने से हटाएँगे,
खरल में घोटी हुई इस दवाई को
प्याले में डालकर
चार चम्मच शहद मिलाएँगे।
तीन खुराक लेंगे,
एक सुबह, एक दोपहर, एक शाम,
और बीमारी का हुआ काम-तमाम।
कम खाने से कोई नहीं मरता है,
जल्दी ठीक होता है
अगर लंघन करता है।
दादी को मत बताना,
मेरे लिए रात में जो खाना आए
तुम भी मेरे साथ खाना।

फिर जी, हुआ एक दिन का टोटल लॉकडाउन,
देश भर के बंद
सारे गाँव, कस्बे और टाउन।
निर्जनता का अभूतपूर्व नजारा,
हमें पहचान में
नहीं आ रहा था देश हमारा?
पूरा भारतवर्ष बंद
खुंदक में नहीं हुजूर सहर्ष बंद!
मेले बंद, मील बंद, धरने, हड़ताल बंद।
दंगे बंद, दारू बंद, मियाँ, महरारू बंद।
रेल, बस, जहाज बंद, सारे कामकाज बंद।
गुटका, तांबूल बंद, सड़क, स्कूल बंद।
मंदिर, दरगाह बंद, मसजिद में पनाह बंद।
चर्च-गुरुद्वारे बंद!
ये सब इस कम्बख्त कोविड के मारे, बंद!
सूनी सड़कें, सूने गलियारे, सूने मोड़,
कहाँ गायब हो गए एक सौ तीस करोड़?

उस दिन जब शाम के पाँच बजे,
तो कोविड योद्धाओं के
सम्मान में एक साथ बजे,
ताली, थाली, घंटी, घंटे, घड़ियाल, शंख
मंजीरा और यहाँ तक कि बच्चे का झुनझुना!
कभी ऐसा देखा? या सुना?

प्रयत्नीजी को लंघन से
मिली होगा ज्यादा प्रोटीन,
उन्होंने स्टूल पर चढ़कर
ऐसी बजाई छत की टीन।
कि पुराने पलस्तर के साथ
पुराना दमा भी उखड़ा,
खाँसते-खाँसते लाल हो गया मुखड़ा।
आँखें चौड़ी हुईं, शरीर ऐंठ गया,
सामने से आवाज आई—
अरे देखो, बुड्ढा बैठ गया।

ये थी सरासर बेहूदगी,
अचानक छत पर ठंड लगी,
तो आई दनादन छींकें,
मोहल्ला हैरान था
पर उनके तीनों संस उन पर झींकें—
आज ही अपनी सारी ताकत दिखानी थी

हम सब के सामने
छत पर ही अपनी बेइज्जती करानी थी।

बिहेव योरसेल्फ पापा,
आपको दिखाई नहीं देता अपना बुढ़ापा?

बच्चों के बस में थीं दया रानी,
छिपाती रहीं अपनी आँखों का पानी।
निकटवर्ती छतो पर निस्तब्धता छाई,
किसी एक छत से आवाज आई—
दादी बंद करो रोना,
लगता है आपकी छत के जरिए
मोहल्ले में आ चुका है कोरोना।

किसकी नजर लगी, कौन ऐसे छल गया,
पड़ोस की छोड़िए
परिवार का व्यवहार
एक पल में बदल गया।

वे सोचते थे कि वे पिता हैं
परिवार में सबसे बड़े हैं।
लेकिन अब देखा कि
स्वयं ठगे से खड़े हैं।
उनकी प्राणप्यारी दया रानी के प्राण भी
अब श्याम लाल में नहीं
बल्कि औलाद
औलाद की औलाद
और औलाद की औलाद की
औलाद में पड़े हैं।
उन्होंने जीवन भर किसके लिए कमाया
अपनी संस-कृति के लिए
वे जाने किस-किस से लड़े हैं।
इसके लिए क्या कभी किसी ने
तमगे जड़े हैं?

फिर खुद से बोले—
अब छोड़ो भी श्याम लला!
बच्चों से कोई लड़ता है भला!!

सब नीचे चले गए उन्हें छोड़कर,
सबकुछ समझा गए
बिना बोले मुँह मोड़कर।
ढीली हो गई धोती!
तभी छत पर दिखाई दिया
छिपा हआ मोती।
मोती मेरे भाई!
जरा तू ही ला दे मेरी देसी दवाई!
कल तेरे सामने ही तो बनाई।

अदरक, नीबू, दालचीनी
और मिर्च काली वाली,
फिर उसमें गिलोय, नीम
तुलसी और हल्दी डाली।
आधा चम्मच जीरा डाला,
जरा से पानी में खूब देर उबाला।
तो प्यारे बन गया था काढ़ा,
फिर शहद डाल के
कर लिया था गाढ़ा।
ला दे, ला दे।
बता, क्यों इतनी तकलीफ झेलूँ?
और हाँ, मैं साथ में अगर
ले लूँ—हर्र, आँवला, बहेड़ा,
तो काढ़े के साथ एक फंकी में
खत्म हो जाएगा बखेड़ा।

मोती दौड़ गया तत्काल,
लेकिन फिलहाल
श्याम लाल का था बुरा हाल।
सब-के-सब कर गए थे अकेला,
चित्त थोड़ा स्थिर हुआ तो याद आया केला।
दो दिन के लंघन के बाद कुछ भूख सी लगी,
नीचे जाने की हिम्मत भी जगी।
बैठ-बैठकर पार किया सीढ़ियों को,
लेकिन हरगिज नहीं कोसा अपनी पीढ़ियों को।

इस बीच उनकी चारपाई लग चुकी थी
पिछवाड़े के टप्पर वाले दालान में।
बड़ा दम था छोटे बेटे के ऐलान में—
डॉक्टर से हो चुका है वार्त्तालाप।
पापा, अब आपको
बिस्तर तक जाना होगा अपने आप।
टीम आएगी लेने को नमूना,
अब आप इधर का प्लीज
कुछ भी नहीं छूना।

दया रानी देख रही थीं
कि स्वामी अजीब तरह से मौन हैं,
स्वामी सोच रहे थे कि
घर में ये सब लोग कौन हैं?
जो नहीं पहचानते हैं
ऐसे अजनबी जैसे मुझे नहीं जानते हैं।
छोटा बेटा बोला—
पापा बुरा मत मानिए
हम सबकी अच्छी भावना है,
गुड़िया बिटिया को खाँसी है
उसे रोग लगने की पूरी संभावना है।

प्रयत्नीजी का मन स्वयं से जूझ रहा था,
लेकिन अब फ्लू के कारण उन्हें
कुछ नहीं सूझ रहा था।
हर किसी को उनसे मिलने की मनाही थी,
ये तो एक नए किस्म की तबाही थी।

बुखार से तप रहे थे,
हनुमान चालीसा जप रहे थे—
भूत, पिशाच निकट नहिं आवैं···
खाना नहीं दे रहे
मेरी देसी दवाई भी नहीं दोगे,
किस जनम का बदला लोगे?

मायूस मोती भी आकर चला गया,
लाख प्रयत्नों के बावजूद
प्रयत्नीजी की चेतना पर अँधेरा छा गया।

खाना बन चुका था और हो चुकी थी
एक युवा पौत्र की मुनादी—
खाना देने जाएँगी दादी।
पौत्री ने कहा—
दादी प्लीज जाओ ना!
छह फीट की दूरी पर रख आओ ना!!

अम्मा ने आठ फीट दूर रखी पानी की बोतल
और नौ फीट दूर थाली,
श्याम लाल देखते रह गए
झटके से लौट गई घरवाली।
चिंता थी तो बस यही थी
कि आगे जाने क्या हो?
और समाप्त हो गया
संस-कृति का अध्याय दो।

अध्याय तीन

अध्याय तीन,
अभी तक बज रही है टीन।

श्रीमान श्याम लाल प्रयत्नी को
थोड़ा सा बोध आया,
तो अल्प से किंचित् न्यून
निरीह निष्प्राण सा क्रोध आया—
ये भी कोई तरीका है?
ऐसा व्यवहार कहाँ से सीखा है?
अरे, मैं चल नहीं सकता, क्या कहूँ
इस थाली को क्या यूँ ही तकता रहूँ?

हाय! क्या मुझे घर से निकाल दिया है,
जो मेरे आगे कुत्तों की तरह
खाना डाल दिया है।

घर में किसी ने नहीं सुना उनका बड़बड़ाना,
तभी हुआ उनके कुत्ते मोती का आना।
उसने देखा असमर्थ है श्याम लाल,
और श्याम लाल ने देखा मोती का कमाल।

मोती ने अपने मुँह से
चारपाई तक बोतल लुढ़काई,
पंजों से थाली सरकाई।
श्यामजी के हाथों ने थाली उठाई,
खाने के बाद बोतल मुँह से लगाई।
उन्हें बड़ी राहत मिल रही थी,
मोती की पूँछ लगातार हिल रही थी।
रात में जब उसने
मुँह से खींचकर चादर ओढ़ाई,
तब तो उन्हें आ गई रुलाई।
मोती के चेहरे पर गिर गए
उनकी आँखों के कुछ मोती,
उस वक्त निगाहों से गिर गए
बीवी-बच्चे, पोते-पोती।
दया करो, दया करो
दया करो, दया रानी!
साँस लेने में हो रही है परेशानी!

असल परेशानी तो ये थी
कि रिपोर्ट पॉजिटिव आ गई,
कुनबे पर मायूसी छा गई।
वे धीरे-धीरे खोते जा रहे थे सैंस,
सायरन बजाती हुई आ गई एंबुलेंस।
स्वास्थ्यकर्मियों ने कुछ कागजों पर
दया रानी के हस्ताक्षर कराए,
अंदर से बेटे पिता की चेकबुक ले आए—
पापा चिंता मत करिए
आप बहुत जल्दी घर आएँगे,
एक ब्लैक चेक पर साइन कर जाइए
दिक्कत हुई तभी भुनाएँगे!

एक मुँहफट स्वास्थ्यकर्मी ने

अस्पताल की हकीकत बताई—

'मेरे भाई! वहाँ कम हैं वेंटीलेटर,
कोई मर गया तो
इन्हें मिल जाएगा सूनर और लेटर।
हकीकत ये है कि
डॉक्टर लोग पहले जवानों को बचाते हैं,
बूढ़ों का नंबर बाद में लगाते हैं।
अभी इनमें थोड़ा सा दम है,
लेकिन हम बता रहे हैं कि
उम्मीद कम है।
वहीं से ले जाएँगे मसान में,
आप लोग घर में ही रहना
वरना रहेंगे नुकसान में!'

वक्त नहीं लिया तैयारियों ने,
अस्पताल के कर्मचारियों ने,
वैन में लिटा दिए दादाजी,
घर से साथ जाने को कोई नहीं राजी।
इस तरह श्याम लाल प्रयत्नी
अस्पताल के लिए
अकेले 'टेक-अवे' हो गए,
घर के लिए गोया 'हैं' से 'थे' हो गए।

कोई इस बात पर भी ध्यान देगा?
दोनों भाई बहस कर रहे थे
कि पापा का कमरा अब किसे मिलेगा!

बहनो और भाइयो,
खवातीनो हजरात!
कोरोना पॉजिटिव था
पर मत सुनिए कोई निगेटिव बात!

उधर देखिए
मोती बड़े-बड़े धावकों को
पीछे छोड़ रहा है,
एंबुलेंस के पीछे दौड़ रहा है।
ऐसी दौड़ तब होती है
जब पीछे कोई शिकारी हो,
या शिकार से बचाने वाला
कोई उपकारी हो।

दौड़ भी क्या थी।
हठीली, गठीली और
तीर सी नुकीली तपस्या थी।
एक निष्ठावान श्वान की
जमीन पर उड़ान थी,
रफ्तार देखकर कुदरत हैरान थी।

आ गया अस्पताल
स्ट्रेचर पर लिटाए गए श्याम लाल,
कर्मचारी एकदम अंदर ले गए,
मोती को दादाजी अपार गम दे गए।
सारे तार तोड़ गए प्यार के,
गार्ड ने भगा दिया डंडा मार के।

श्याम लाल मौत के आगोश में
लगभग झूल गए थे।
कहाँ से चले, कहाँ आए
सब भूल गए थे।
होश ही नहीं
कि उनके साथ क्या हो रहा है,
अर्धमूर्च्छा में देख रहे थे
कि उनका परिवार
कभी हँस रहा है
कभी रो रहा है।

घर में सबकी खोपड़ी में
अभी तक बज रही है टीन,
इस प्रकार समाप्त होता है,
संस-कृति का अध्याय तीन।

अध्याय चार

अंतिम अध्याय चार
श्याम लाल का संस्कार।

साँस लेने में हो रही थी बाधा,
लगा कि जिएँगे नहीं ज्यादा।

फिर लगा कि अब तो सचमुच मर गए,
पता नहीं अस्पताल में हैं
या अपने घर गए।

दस दिन बाद अचानक
उनके कानों में फूटे
ध्वनियों के बुलबुले,
संवाद, गंभीर और चुलबुले—
'वार्ड बॉय! टाइम फॉर जॉय!!
यूज्ड मास्क बिन में फेंको,
जाओ! और देखो!
वो रिपोर्ट लाओ।
ये सीनियर सिटीजन
कोविड से बच गया है
सीटी बजाओ!'

आँखें खोलीं तो पाया
घिरे हैं धवल देव-दूतों से,
कुछ मुँह-नाक बंद नीले भूतों से।
इतने दिन बाद आई थी चेतना,
अब भारी लग रहा था लेटना।
सेहत में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था,
उन्हें दिन-रात इलाज करते
डॉक्टरों से प्यार हो रहा था।

जीवनदाता जो यत्र-तत्र-सर्वत्र थे,
कराहों के जंगल में मंगल नक्षत्र थे।
उनका नाम आ गया था
कोविड सर्वाइवर्स कार्ड में,
तो शिफ्ट कर दिया गया क्वारंटीन वार्ड में।
उन्हें उम्मीद थी कि घर से कोई आएगा,
उनके लिए टिफिन लाएगा।

काश दया यहाँ होतीं,
प्रेम के धागे में मोती पिरोतीं।
पर अब इसी भोजन में
स्वाद आने लगा।
कोचिंग सेंटर याद आने लगा।
मदद करते थे सारे परिवारी,
बेटे भी पढ़ाते थे बारी-बारी।
अरे, कोई खबर भेजो
दादाजी अब हो गए निरोगी,
उधर गुड़िया की खाँसी भी चली गई होगी।
कहाँ हो मेरे संस के डॉटर्स एंड संस?
यहाँ से मुझे ले जाओ ऐट-वंस!

बच्चो की दादी दया रानी!
ओ मेरी रानी!!
मुझे मौत के मुँह से खींच लाई है
तुम्हारी एक तसवीर पुरानी।
यादों की नदियों में बहा हूँ,
तुम सबके बिना इतने दिन
कभी नहीं रहा हूँ!

खाली हाथ मत आना,
डॉक्टरों, नर्सों और
स्वास्थ्य सेवकों के लिए

खूब सारी मालाएँ लाना।
उतनी, जितनी लगाई थी मैंने
तुम सबकी शादी में,
पैसे की फिक्र न करना
बहुत उदारता है तुम्हारी दादी में।

जिंदगी शाद हुई,
इक्कीस दिन बाद हुई
उनकी विदाई,
डॉक्टरों की एक टीम
गेट तक छोड़ने आई।

दूर-दूर तक घरवाला कोई नहीं था,
और वो मोती दिखाई ही नहीं दिया
जो इक्कीस दिन से यहीं था।
बैठा हुआ था एकदम शांत चुपचाप,
उसे पता था दादू के मन का संताप।
और वह भी क्या दिव्य घड़ी थी,
जब श्याम लाल की नजर
मोती पर पड़ी थी।
उनके मुँह से निकला—
अरे, मोती है!

फिर आप मोती को देखते
कि गति क्या होता है!
उसका धड़ द्रुत-वेग झूम रहा था,
पंजों से चरणों को छूते हुए चूम रहा था।
प्रेम उसका, बाहर था आपे से,
आप नाप नहीं सकते थे नापे से।
आलिंगन में भी आत्मीयता का
अलौकिक आवेग था,
संवेदनाओं का संयमहीन संवेग था।
नजारा बेहद हसीन था,
पूरे भरत-मिलाप का सीन था।

सबने देखा कि क्या होता है
मुहब्बत करना
दोनों की आँखों में आँसुओं का झरना।
संवेदनाएँ नहीं कम थीं,
अस्पताल की आँखें भी नम थीं।

एक डॉक्टर ने तो नई मिसाल दी,
अपनी माला मोती के गले में डाल दी।
तभी एक स्वास्थ्यकर्मी आया—
सर, आपको एक कष्ट देना है,
आपकी आज्ञा हो तो
दूसरे मरीजों की प्राण-रक्षा के लिए
आपका ब्लड-प्लाज्मा लेना है।

श्याम लाल बोले—
जरूर देंगे,
शर्त ये है कि मेरे साथ
श्रीमान मोती लाल महाप्रयत्नी भी चलेंगे।

उजाला-ही-उजाला पूर्णतया था!
मनुष्यों के अस्पताल में
पहली बार माला पहने
एक शांत-शालीन श्वान अंदर गया था।

और अंदर से जब बाहर आए
तो अंदर-बाहर सब नया था,
पता नहीं क्या अपने अंदर आया
क्या बाहर गया था।

वे मास्क लगाकर चले आ रहे थे,
मोती से बतिया रहे थे—
बता प्यारे घर चलें या कहीं और,
अपने पास और भी है ठौर!

अब नहीं करेंगे घिसे-पिटे ट्यूशन,
हो रहा है नया इंट्युशन,
कि तू ही तो है कबीर दास,
या तू ही करता था
उनकी आत्मा में वास।
उन्होंने कुत्ते की कितनी साख राखी,
तभी तो सुनाते थे साखी—
'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं,
गले राम की जेवड़ी, जित खींचै, तित जाउं।'
यानी, कबीर तो कुत्ता है राम का,
मोती नाम का।
गले में रामजी की रस्सी है
जिधर खींचोगे, उधर जाऊँगा,
तू अंतर्यामी है तुझे क्या बताऊँगा!
मेरी रस्सी तो तेरे हाथ में है मोती!
उधर चल जिधर है ज्योती।
अच्छा चल, यहाँ से
अपने पैतृक गाँव जाएँगे,
वहाँ प्रकृति-मैत्री यूनिवर्सिटी बनाएँगे।
जगाएँगे नई-नई आशाएँ,
सीखेंगे नेचर की भाषाएँ।
जीव-जंतुओं से प्यार करेंगे,
अपना संस्कार करेंगे।

निकाल देंगे मनुष्य के जीवन से
स्वार्थों के जीन,
तुम बनोगे वाइस चांसलर
मैं रहूँगा डीन!

मोती बोला—कूं,
श्याम बोले—हूँ!
वैसे मोती देख लेना
एक दिन हमें खोजती हुई
आएगी दया रानी,
यूनिवर्सिटी देखकर होगी हैरानी।
फिर एक दिन
शहर के जहर से निजात पाने,
गाँव की शुद्ध हवा खाने,
यहाँ आएँगे बच्चे हमारे
सारे-के-सारे।
हम उनसे माफी माँगेंगे
तुम गलत नहीं थे,
गलत तो हमीं थे।
अरे भई, तुम हमारी गुड़िया को देखते
कि अपने बुड्ढे को,
पुलिया को देखते कि गड्ढे को?
प्रकृति नहीं सहती है कोई अन्याय,
अति हो जाती है
तो आता है नया अध्याय।
मोती प्यारे!
आँसू अब नहीं रहेंगे खारे!
अगले अध्यायों में
हम बनाएँगे अपनी नई तकदीरें,
धरती के कागज पर खींचेंगे
प्यार-मोहब्बत के विकास की नई लकीरें!
उन लकीरों में भविष्य को सहेजेंगे,
गाँव की समृद्धि शहरों को भेजेंगे।
नई होंगी खुशियाँ, नई खुशहाली,
अपने लिए मिलकर बजाएँगे
जोरदार ताली।

सा/अ

जे-११६, सरिता विहार
नई दिल्ली
ashok@chakradhar.com

दोस्तो, बस इतना ही

• कुसुम अंसल



अब तक दो उपन्यास, छह कविता-संग्रह, आठ कहानी-संग्रह, चार यात्रा-वृत्तांत तथा आत्मकथा का प्रकाशन। अनेक कृतियों का पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी, ग्रीक, रूसी तथा बंगला भाषा में अनुवाद। उपन्यास 'एक और पंचवटी' पर बासु भट्टाचार्य द्वारा 'पंचवटी' फिल्म का निर्माण, जो 'पेनोरमा' में चयनित भी हुई। तीन टी.वी. सीरियल 'तितलियाँ', 'इसी बहाने' तथा 'इंद्रधनुष' भी लिखे। दो नाटक 'रेखाकृति' व 'उसके होंठों का चुप' फैजल अलकाजी द्वारा निर्देशित, मंचित तथा प्रशंसित। अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित।

रश्मि,

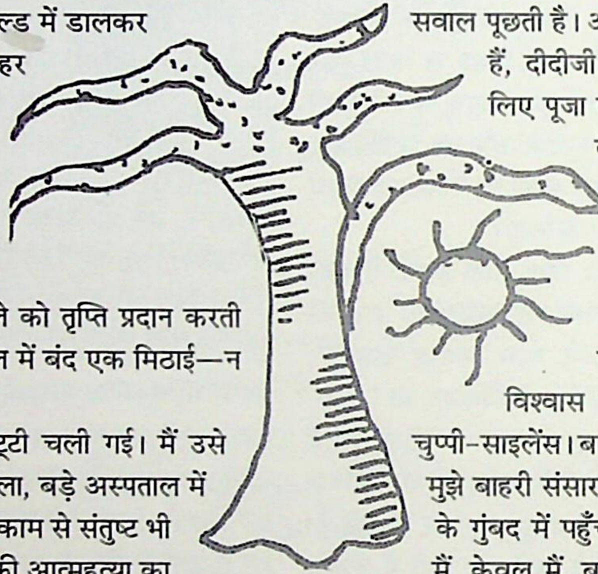
आज बहुत दिनों बाद तुझे पत्र लिख रही हूँ। यह बीमारी, प्रलयंकारी, कोरोना वायरस प्रकोप पूरे विश्व पर काले गहरे बादल-सा छा गया है। पहले तो कुछ समय लगा समझने में। अपने छोटे से फ्लैट में अकेली मैं, कुछ पुस्तकें और यह टेलीविजन, एकमात्र माध्यम अपने भीतरी संसार और बाहरी संसार के मध्य, यह समूचे समाचारों का संवाददाता``आज का मेघदूत—वर्तमान।

यह भी सच है कि एक जमाने में हमारे माता-पिता इस टेलीविजन को 'ईडियट बॉक्स' कहते थे, अब वही बॉक्स सारे सांसारिक ज्ञान का उपदेशक सा, विजेता, अपनी काली स्क्रीन के साथ अकड़ा खड़ा है। हमारा आज का सच यही है—'इ-टेक्नॉलोजी', टेलीविजन या 'आई-पैड' या 'आई-फोन'। भविष्य-वर्तमान सभी कुछ—यह पत्र भी तो तुझे मैं 'स्कैन' करके 'आई-पैड' के माध्यम से ही भेजूँगी। बाहर की सारी दुनिया तो एक अनिश्चित, क्रूर, चुप्पी, अवरोधों के साथ घुट-घुटकर जी रही है। सारे बाजार, दुकानें, सिनेमाघर, गाड़ियाँ, मेट्रो, बसें बंद पड़ी हैं बेचारा 'पोस्टमैन' पुराने समय का डाकिया, जिसके साथ कितनी सारी रोमांचकारी कहानियाँ जुड़ी हुई थीं। कितनी अहमियत डाक में आए एक गुलाबी लिफाफे में बंद होती थी! एक रूमानियत 'प्रेम-पत्र' की कितनी प्रतीक्षा होती थी। पुरानी रूमानियत में रँगा एक कैरेक्टर, जो साइकिल पर टुनटुनाता गली से गुजरता था, वह हमारा डाकिया अतीत के किसी असहज पन्ने पर गुम होता चला गया। प्रगति इसी का नाम है क्या? टेलीविजन पर सरकार नए-नए प्रयोग सिखा रही है, कोविड का आह्वान, कभी तालियाँ बजाकर, कभी थालियाँ बजाकर, फिर कुछ दीए जलाकर पर रोग का प्रपात तो थमा नहीं। हम तो 'लॉकडाउन' के तहत घर में बंद हैं पर बाहर अस्पतालों में लाखों मरीज मृत्यु के घाट उतर रहे हैं और जो सड़क चलते हर शहर में हजारों की तादाद में मजदूर, माइग्रेंट्स हैं, वे भूखे पेट छोटे-छोटे बच्चों को घसीटते अपने-अपने गाँव लौटने के लिए एक महायात्रा पर निकल गए हैं``उनकी बेकसूर मृत्यु! वह क्या किसी कोरोना के प्रकोप से कम है?

रश्मि, तूने देखा होगा आजकल अखबार और टेलीविजन पर बहुत पुराने चित्र दिखा रहे हैं—एक बहुत ही पुरानी भूली हुई दास्तान। सन् १९१८ में भी ऐसी ही भंयकर बीमारी फैली थी, जिसे 'स्पैनिश फ्लू' या 'प्लेग' कहते थे। तब भी लाखों, करोड़ों लोग मृत्यु का ग्रास बन गए थे। हमारे घर में भी बुआ या ताऊजी, किसी ने बताया था कि तीस वर्ष की उम्र में हमारी दादी की असमय मृत्यु, इसी बीमारी से हुई थी। अब आज के इस कोरोना वायरस के मौसम में अकेले बैठकर उन पुराने क्लासिक चित्रों को देखकर लगा, जैसे वह मेरी दादी की मृत्यु के दस्तावेज हैं—(क्योंकि घर में उनका कोई चित्र नहीं था) चाहती थी उन्हें प्रिजर्व कर लूँ, पर अब तो सभी कुछ इस आई-पैड के 'सफारी' या 'गूगल' की मुट्ठी में बंद है, जब जी चाहे खोलकर देख लो! अब तो यही 'आई-पैड' या सेलफोन ही हमारा सब कुछ है—ज्ञानदाता, मित्र, सहायक; पर बहुत मुश्किलें आती हैं इसकी टेक्नोलॉजी को समझने में। अपने इस अकेले फ्लैट में, मैं और मेरी मेड चंदा, बस और कोई होता नहीं जो बता सके। यह नई नकोर टेक्नोलॉजी जीवन का महत्त्वपूर्ण भविष्य बनती जा रही है, पर यह भी सच है कि हमें भी अपने पुराने शहर, पुरानी आदतों की परतों से मुक्त होकर जागना पड़ेगा और इस नए को अपनाना पड़ेगा, चाहे इच्छा हो या न हो।

हाँ रश्मि, पुरानेपन और इस रोग की बात चलते मुझे याद आया, मेरे पापा ने एक बार 'भृगुसंहिता' के संग्रहालय में जाकर परिवार का भविष्य जानना चाहा था। उसमें मेरे भाग्य का एक पृष्ठ भी खुला था, जो कि मेरी भविष्यवाणी थी, वह सच थी या नहीं, यह तो पता नहीं, पर एक वाक्य मुझे याद रह गया था कि मेरी दादी की आत्मा ने मेरे इस शरीर में जन्म लिया है—सरस्वती देवी ने, मेरे, गौरिका, के रूप में, परंतु वे पुरानी मान्यताएँ—पुराने व्यक्ति—जन्मपत्रियाँ बनानेवाले पंडित नौटकियाँ आदि देखते-ही-देखते धुँधला गए। वे मनोरंजन की पुरानी रामलीलाएँ, रासलीलाएँ, सड़क के किनारे डुगडुगी बजाते मदारी, भालू के साथ बंदर-

बंदरिया का नाच, अदाकारियाँ, भोला-भाला सा रोमांचकारी समय! समय के हाथों समेटकर, आउटडेटिड मानकर किसी फालतू पड़ी पिटारी में बंद कर दिया गया है! पर क्यों? शायद इस कारण कि 'निर्माण' अपने आप में बहुत बड़ा शब्द है। विस्तृत और महान्, इतना कुछ निर्मित हो चुका है और इतना कुछ है जो निरंतर निर्मित हो रहा है, कि हिसाब लगाना कठिन है। आजकल सभी कुछ डिजिटल है या इंस्टेंट, एकदम तैयार हो जानेवाला—जादुई-सा समय। कल मेरी बाई चंदा ने एक केक बनाया, माइक्रोवेव में पाँच मिनट में बन गया—इतनी जल्दी···स्वाद भी कुछ बुरा नहीं था। मैं तो हैरान रह गई! याद है, कॉलेज में कुकिंग क्लासेस के समय हमें 'पाईनेपल अपसाइड-डाउन' बनाने को मिला था तो दो दिन सामान जुटाने में लगे थे। वह कमबख्त 'गोल्डन सिरप' बड़ी मुश्किल से 'खान मार्किट' की एक दुकान पर प्राप्त हो पाया था, फिर केक को मोल्ड में डालकर जब बेक होने के लिए ओवन में रखा था तो हर १५ मिनट बाद हम सलाइयाँ डाल-डालकर उत्सुकतावश उसे पकता देखते थे और फिर उसकी महक भी तो कम शानदार नहीं थी; सारे कमरे में फैल गई थी और स्वाद, स्वाद याद है न! आज सोचती हूँ तो लगता है, हमारे केक में अवश्य एक आत्मा थी, जो खानेवाले को तृप्ति प्रदान करती थी और चंदो का केक···निर्जीव, केक के खोल में बंद एक मिठाई—न सुगंध, न स्वाद। मैं भी कहाँ भटक गई!



कल चंदा बहुत मना करने पर भी छुट्टी चली गई। मैं उसे समझाती भी तो क्या? उसकी अपनी भतीजी बेला, बड़े अस्पताल में नर्स का काम बहुत वर्षों से कर रही थी। अपने काम से संतुष्ट भी थी। पगार भी अच्छी मिलती थी, पर कल उसकी आत्महत्या का समाचार उसे ही नहीं, मुझे भी झकझोर गया, क्योंकि वह हमारे घर आती-जाती थी। चंदा के अलावा उसका कोई संबंधी यहाँ नहीं रहता; भाई-भाभी की मृत्यु के बाद चंदा ने ही उसे पाला था। बेला के पति सुरेश ने फोन पर बताया—अस्पताल की छह मंजिला छत से कूद गई वह। वह यह भी बता रहा था, एक महीने से बेला बहुत गहरे डिप्रेशन में जा रही थी—काम भी उसे १४ घंटे करना पड़ता था दो शिफ्टों में, वह भी कोविड के दम तोड़ते मरीजों के बीच। सुरेश बता रहा था, मास्क पहन-पहनकर, प्लास्टिक का चोगे जैसा लिबास पहनकर काम करना वैसे ही बहुत कष्टसाध्य लगता था उसे—ऊपर से प्रतिदिन सात-आठ मौतें···उसी वार्ड में···लाशों के साथ लेटे बीमार, कराहते मरीज। बेला की उँगलियाँ सूज गई थीं और साँस लेना भी कठिन हो रहा था। वह खुद भी अस्थमा की मरीज तो थी, फिर मास्क में घुटन के साथ उतनी कठिन ड्यूटी निभाना बहुत अधिक कष्टकर हो रहा था बेला के लिए—शायद इसलिए भी वह घबराकर आत्महत्या का फैसला ले बैठी थी।

रश्मि, जिस दिन बेला ने आत्महत्या की, उस दिन कोविड की एक मरीज, २३ वर्षीया नवयुवती ने बेटी को जन्म दिया और स्वयं मौत के कुहासे में गुम हो गई, परंतु बच्ची के टेस्ट नेगेटिव थे। बेला अपने नर्स के खोल में कराहती, डिप्रेशन की अँधेरी सुरंग में सरकती अस्पताल की छत से कूद गई। शायद उससे वे सारी यातनाएँ बरदाश्त नहीं हुई थीं। तभी उसका वजूद कोविड से ग्रस्त हुए बिना ही कोविड का ग्रास बन गया। बेला की कुलीग दूसरी नर्स ने यह भी बताया था कि जीवित-स्वस्थ बच्ची को माँ के मृत शरीर के साथ कफन में लपेट दिया गया था। वह सारी घटना एक क्षण के लिए दिखाई गई थी टेलीविजन पर, परंतु उसके पीछे कितना कुछ रहस्यात्मकता में लिपटा हुआ था—बेला का डिप्रेशन, थकान, टूटने, एक हँसता-खेलता परिवार, बेला का छह वर्ष का बेटा, टूटती मानसिकताएँ, विश्वास, सभी कुछ जो कोविड की राजनीति में तिरोहित हो गया। अब चंदा रोज रसोईघर के आले में रखे भगवान् की प्रतिमाओं-चित्रों के सामने खड़ी होकर रोती रहती है—भगवान् से वार्त्तालाप करती है, सवाल पूछती है। आज सुबह कह रही थी, "सारे मंदिर बंद पड़े हैं, दीदीजी; नहीं तो मैं माता के मंदिर जाकर बेला के लिए पूजा करवा देती—सुरेश अकेला है···बच्चा भी माँ के लिए रोता है दिन-रात; बेला की आत्मा तो भटक रही होगी। कोई पूजा-पाठ नहीं हुआ, न तो उसका 'चौथा' हुआ, न 'किरिया'।"

उसे समझाने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं तो, तू जानती है, भगवान् में विश्वास नहीं करती। मेरी प्रार्थना तो है, खामोशी-चुप्पी-साइलेंस। बाहर के आडंबर पूर्व शोर का उमड़ता 'सुनामी' मुझे बाहरी संसार से बचाकर, मेरी आत्मा को एक अकेलेपन के गुंबद में पहुँचा जाता है—जहाँ, उस समय की शांति में, मैं, केवल मैं, बचती हूँ। अकेली, एक भाषाविहीन चुप्पी में साँस लेती हुई अपनेपन में लिप्त, मैं और मेरा मंत्र 'साइलेंस'। मेरे भीतर-बाहर सरसराती गहरी शब्दहीनता—शांति, 'पीस' जो भी कह लो।

आश्चर्य, अभी मेरे फोन पर एक मैसेज आया है रश्मि—

"गॉड इस लाइक ए वाई-फाई
ही इज अवेलेबल एवरी व्हेयर
बट यू हैव टू कनेक्ट टू हिम विद
ए करेक्ट पासवर्ड इज, दैट 'प्रेयर'।"

आजकल की नई सभ्यता को समझाने का सूत्र भी 'वाई-फाई' कनेक्शन है—प्रार्थनाएँ आईपैड के पन्नों पर गोल-गोल चूमती हमारी धार्मिकता का स्रोत। प्रार्थनाएँ सुस्त रफ्तार से गूगल के अद्भुत रोमांच में यात्राएँ करती हैं। आशीर्वाद देते पंडित—दुआएँ, सुरक्षा, गंडे, ताबीज, बाँटते फकीर—सुबह-सवेरे अजान के स्वर, वह सब,···जाने कहाँ खो गए हैं? उनकी अपनी एक अहमियत थी रश्मि—इमोशनल एंकर।

अब चंदा धूप-अगरबत्तियाँ जलाना छोड़कर टेलीविजन पर न्यूज चैनल देखती है। रो-रोकर बता रही थी, "सुरेश उसे बिना बताए बच्चे को साथ लेकर अपने गाँव जाने के लिए बेसहारा मजदूरों तथा माइग्रेंट्स की भीड़ में शामिल हो गया है। आगरा के पास कहीं गाँव है उसका। पैदल

जा रहा है दोस्तों के साथ। कमाई तो उसने कभी की नहीं थी! बेला के सहारे जिंदगी चल रही थी; अब घर में खाने को कुछ बचा नहीं तो निकल गया! देखो दीदीजी···इतनी भीड़ है, खाना कैसे झपटकर खा रहे हैं लोग, भूखे, थके-हारे, छीनते-बटोरते, लूटते-घसीटते लोगों को कैसी बेदर्दी से मार रहे हैं पुलिसवाले···।" चंदा का रोना, वास्तव में दुःख था; 'भूख' ने क्या-से-क्या कर दिया था इनसान को—टेलीविजन पर भी लाइन बार-बार आ रही थी 'व्हाट हंगर हैज डन टु अस।' बार-बार मुझे उस नवजात बच्ची का जीते-जी माँ के साथ कफन में बँधकर मृत्यु के द्वार उतर जाना भी बहुत सैंटी कर रहा था। न जाने कितनी बेटियाँ यूँ ही बेदर्दी से मार दी गई हैं—किसी-न-किसी बहाने, कौन जानता है?

"चंदा, सुरेश को इतनी जल्दी क्या थी घर जाने की, तुमसे कहता—मैं जरूर मदद करती उसकी। बताता तो सही।" मुझसे भी उसका जाना, भटकना, वह भी बच्चे के साथ, बरदाश्त नहीं हो रहा था, पर उसे कैसे ढूँढ़ते हम लोग?

अब लगभग आठ-दस दिनों से चंदा सुरेश से बात भी नहीं कर पाई थी; जब करो, उसका फोन बंद मिलता था। एक सूनी सरसराहट—बेला की मृत्यु, सुरेश का भीड़ में गुम हो जाना, सभी कुछ चंदा को और चंदा के साथ मुझे भी विक्षिप्त-सा कर रहा था। चंदा के साथ मैं भी मजदूरों की भीड़ में टेलीविजन पर सुरेश को ढूँढ़ती थी, पर भीड़ थी कि एक पगलाया तूफान, बिफरती हुई नदी। पहले-पहले मेरे इस फ्लैट में टेलीविजन बहुत कम चलता था, अब सारा दिन चलता है। चंदा—अगर समाचार नहीं देखती तो 'रामायण' के एपीसोड देखती है। मृत्यु का भय चंदा को 'महाभारत' से अधिक राम से जोड़ता है—वह हाथ जोड़े 'जय सियाराम', 'जय-जय सियाराम' या हनुमान चालीसा पढ़ती है···'को नहिं जानत है जग में, प्रभु संकट मोचन नाम तिहारो।' कल वह अलमारी से ढूँढ़कर लाल रंग का मेरा सलवार सूट ले आई···कहने लगी, "दीदीजी, आज 'ईस्टर' है न···आप ये पहनो—उतारो ये काले कपड़े···मैं बेला के साथ, उसकी सहेलियों के साथ जाती थी गिरजाघर। वहाँ सारी लड़कियाँ खूब सज-धजकर आती थीं। बेला भी लाल सूट पहनकर जाती थी। उसके आँसू रोके नहीं रुक रहे थे और मैं देख रही थी—टेलीविजन पर 'रोम के चर्च में फादर सुपीरियर' का उपदेश चल रहा था—क्रॉस पर ईसा का शरीर लटका था, परंतु ईस्टर के उस पर्व में पूरा चर्च खाली पड़ा था। उनका उपदेश सुननेवाला यहाँ कोई व्यक्ति नहीं था—एक गहरा सन्नाटा चर्च के खूबसूरत परिवेश में दबे कदम चल रहा था पर मैंने चंदा की खातिर लाल सूट पहन लिया था। वह खुश होकर बोली, "आप इतनी अच्छी लग रही हैं दीदीजी···निरंजन बाबू देख पाते तो? पर दीदीजी आपने भी तो गर्भपात करवाकर घर छोड़ दिया···आज आपका अपना मुन्ना तीन साल का होता—दीदीजी?" वह कुछ ज्यादा ही बोल गई थी—पुराने बखिए उधेड़कर रख दिए चंदा ने।

मैंने लाल सूट उतारकर फेंक दिया। रश्मि, अब उसे कैसे समझाती कि वह गर्भपात—मुन्ना—कितने अपराधों का प्रतिरूप था—निरंजन की इंपोटेंसी और मेरे सारे कॉम्प्रोमाइज के बावजूद उसकी माँ और उनके वह पूज्य 'मेहरबाबा'···उनकी बेहद गिरी हुई क्रूर मेहरबानियों का परिणाम मेरा निर्धारित गर्भ मेरे लिए अभिशाप बन गया था। सबीना और तू मेरे दो ही तो इमोशनल सपोर्ट थे उस कठिन समय में। तुम लोगों ने साथ नहीं दिया होता तो मैं माँजी के लॉकअप से भागकर मुक्त नहीं हो पाती—उस शर्मनाक स्थिति से। आज के समय में जब दुनिया चाँद पर पहुँच गई है, मुझे जैसी पढ़ी-लिखी लड़की का यह अंजाम; सपने तो टूटते ही हैं! रश्मि, मेरा तो आत्मसम्मान, मेरा वजूद, मेरा सभी कुछ कुचलकर रख दिया मेरी जिंदगी ने। मेरा कसूर क्या था? यही कि पापा के कहने पर उनकी पसंद के लड़के से मैंने सिर झुकाकर शादी कर ली थी। रश्मि, उससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि वास्तविकता की मेरी टूटी किरचों को उठाने में मेरे पापा की उँगलियाँ लहूलुहान नहीं हुई थीं, उन्होंने मेरे लिए सहानुभूति के दो शब्द भी नहीं कहे थे। माँ के मर जाने से क्या पिता का जमीर भी मर जाता है, रश्मि? नई माँ में स्त्री होने का मन नहीं होता क्या? चलो, छोड़ दो···

पर रश्मि छूटता कुछ नहीं है। अब कोविड के इस समय जब पूरे माहौल में ढेर सारी मृत आत्माएँ आसपास भटक रही हैं, नींद तो ठीक से मुझे कभी आई नहीं, परंतु अब, अब तो और भी कठिन होता है सोना। चंदा का दिन-रात का रोना, यही नहीं, अनेकानेक स्त्रियों का क्रंदन···सहना आसान है क्या?

पता नहीं क्यों, हर रात मैं जब भी सोती हूँ तो सपने में शायद किसी भय-चेतना के तहत किसी मृत व्यक्ति के साथ बैठती हूँ, बतियाती हूँ। आज ही सुबह उठी तो याद रह गया—सपने में मैं अपनी मित्र मोना के साथ खाना खा रही थी। मोना जैसी थी, वैसी लग रही थी; जैसी थी, बीमारी से पहले स्मार्ट—बहुत बोलती हुई। अपनी तारीफों के पुल बाँधती हुई सैल्फ ओब्सेस्ड—हाँ, उसकी एक आदत अच्छी थी। वह बहुत पढ़ती थी अच्छे क्लासिक उपन्यास और याद है, बड़े अभिमान से बड़े-बड़े अंग्रेजी के लेखकों के नाम गिनाती थी, जैसे वे उसके सगे-संबंधी थे। अपने इस पैशन को इतनी महानता देती थी, जैसे बाकी सब, हम मित्र, अनपढ़-जाहिल हैं। यह भी एक कटु सच है रश्मि कि मेरी 'बुक-लॉन्च' पर उसने मेरा वह उपन्यास नहीं खरीदा—उपन्यास हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी था तो मैंने भी जान-बूझकर उसे भेंट नहीं किया, क्योंकि मैं जानती थी कि वह उसे कभी नहीं पढ़ेगी। दूसरों को कष्ट देने का उसका अपना अंदाज था। सैडिस्म!

याद है, एक बार मालिनी ने उससे पूछा था, "मोना, तुम ताश खेलती हो न आजकल।" "नो-नोअ···" उसने आँखें नचाकर कहा था, "नो मालिनी आई प्ले ब्रिज, इट्स सम इंटलेक्चुअल गेम!" अपना माथा छूकर उसने अपने इंटलेक्ट/बुद्धिजीवी होने का अहसास दिलाकर कहा था। मालिनी ने धीरे से पूछा, "गौरिका, ब्रिज क्या ताश के पत्तों से नहीं खेली जाती?"

"छोड़ न मालिनी, तुझे क्या लेना-देना है, ब्रिज और ताश से!" और मोना के जाने के बाद हम लोग बहुत हँसे थे।

आश्चर्य···रश्मि, मेरे सपने में भी मोना, मृत मोना अपने उसी पुराने मिजाज के साथ मिली थी। क्या कुछ आदतें मृत्यु के बाद भी नहीं जातीं, रश्मि?

तुझे याद है, उसके मृत शरीर पर उसकी बेटी ने 'गीता' की एक प्रति रख दी थी। जीवन भर उसने चाहे जो भी पढ़ा हो, पर जहाँ तक मुझे याद है, उसने न कभी गीता पढ़ी, न रामायण। शायद रामायण के टेलीविजन पर आते एपीसोड के कारण, मोना मेरे सपने में चली आई। पता नहीं क्या है, यह कोविड की मेहरबानी है, हर रात मेरे सपने में कभी बुआजी आती हैं, कभी सावित्री आंटी! एक दिन प्रमिला भी आई थी। मृत्यु से पहले अपने चेहरे पर कैंसर सहती कितनी बेबस थी वह, तड़प-तड़पकर सालों बिताए उसने, पर जब मुझे मिलने आई तो ठीक थी वह। चेहरा साफ-सुथरा, जूड़े में सफेद फूल भी लगे हुए थे। मंटो का लिखा याद आया, प्रौमिला को देखकर—'मैं ऐसे समाज पर हजार लानत भेजता हूँ, जहाँ यह उसूल है कि मरने के बाद भी हर शख्स के किरदार को लॉण्ड्री में भेज दिया जाए, जहाँ से वो धुल-धुलाकर आए।"

तो क्या प्रौमिला भी मरने के बाद धुल-धुलाकर आई थी मुझे मिलने? पर क्यों? पर रश्मि, मेरा सपना बड़ा रियल था—वास्तविक जैसा— उसके दुपट्टे की सरसराहट अभी भी मेरी उँगलियों में समाई है। क्या मेरे ये स्वप्न, यह सतत बेचैनी क्या मृत्यु का आमंत्रण तो नहीं है मेरे लिए? क्योंकि स्वप्न से जागकर भी लगता है मैं सशरीर स्वप्न में खड़ी हूँ! सबीना को जब मैंने फोन पर बताया कि मैं अब अपने सपनों में अपने मृत मित्रों से मिल रही हूँ। शायद इसी बहाने मेरे लिए मृत्यु अपने द्वार खोल रही है तो सबीना ने परेशान होकर कहा, "गौरिका, हो सकता है तू उस स्थिति में पहुँच गई है, जहाँ लोग मृत आत्माओं से बातें करते हैं, जिसे हमारे वैज्ञानिक 'प्लैचेंट' कहते हैं। प्लीज, अपना ख्याल रख, ऊट-पटाँग मत सोच।"

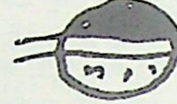
"नहीं सबीना! वह तो एक सुपर नैचुरल एबिलिटी है। मैं तो वास्तविकता में खड़ी हूँ : मेरी जिंदगी क्या थी—एक धूल-धूसरित तसवीर! अब मौत को आ ही जाने दे⋯बूँद को तो सागर में गिरना ही है। हाँ, मेरी अमानत⋯मेरे ये उपन्यास, पुस्तकें, मेरे अल्फाज जैसे लिखे थे—बदलेंगे नहीं—समय चाहे जितना भी बदल जाए—तू और रश्मि—मेरे जीवन के दो सेतु, बस, अब आ जाने दो मृत्यु को। जाना तो सभी को है, हो सकता है मेरा बुलावा आ गया है।"

'भृगुसंहिता' ने ही तो जानकारी दी थी, मेरे शरीर में मेरी दादी सरस्वती देवी की आत्मा है और वह १९१८ के प्लेग या स्पैनिश फ्लू से, बहुत छोटी उम्र में संसार त्याग गई थीं। मैं भी तो तीस वर्ष की हूँ और अब उनके समय का वह रोग फिर से संसार में भयंकर प्रकोप सा फैल आया है। शायद मेरा समय भी आ गया है। मेरे लिए वैसे भी इस संसार में है भी क्या? बचा क्या है जीने के लिए—कुछ भी तो नहीं। मैं भी तो मन-ही-मन चाह रही थी कि मेरा समय आ ही जाए किसी भी बहाने।

मैं सोच रही हूँ पैसिव ईयूथेन्सिया, (Passive Euthensia) या इच्छा-मृत्यु, अपनी मरजी से, अपने अंदाज, अपनी डिग्निटी के साथ मरा जा सकता है, जैसे महाभारत में भीष्म पितामह ने शर-शैया पर कष्ट सहकर प्राण त्यागे थे। एक विस्मयाकुल—कठोर चयन⋯मृत्यु के प्रति जागरूक होकर संसार त्यागना उन्हें दूसरों की दया पर मरने से अधिक उचित लगा था।

मैं भी कोविड की इस वैतरणी में सशरीर उतर जाना चाहती हूँ—अपनी दादी की तरह।

आश्चर्य यह भी तो है कि पापा ने एक बार भी फोन करके नहीं पूछा कि मैं कैसे जी रही हूँ! माँ के मरने की इतनी बड़ी सजा। न ही निरंजन ने पति होने का कोई अधिकार जताया—शायद वह पति कभी हुआ ही नहीं; और माँजी के 'मेहरबाबा'—वह सुना है आजकल जेल में बंद हैं तो इससे अच्छा और कौन-सा समय होगा मृत्यु को स्वीकारने का⋯?



रश्मि, मेरे मरने के बाद तू मेरी औबीच्यूरी, अरे श्रद्धांजलि तो लिखेगी न—हँसना नहीं⋯मैं लेखिका हूँ न; वे पत्रिकाएँ, जो मेरी कहानियाँ छापती हैं, वे उसे अवश्य ही कहीं-न-कहीं छाप देंगी, मेरे शोक समाचार के साथ क्या लिखेगी तू⋯चल, मैं बताती हूँ। खुशवंत सिंहजी ने मृत्यु के बारे में बहुत लिखा था, अपनी आत्मकथा में पर यह कितना सटीक है—"Here lies an Atheist all dressed up. And no place to go." यहाँ एक नास्तिक पूरी तैयारी या सज-धज से लेटा है, पर जाने की जगह कोई नहीं है।

है न सच? ईसाई अपने मृत रिश्तेदारों को बहुत सलीके से तैयार करके ही कॉफिन में बंद करते हैं और हम भारतीय जला देते हैं⋯ 'पंचभूत यह अधम शरीरा, क्षिति जल पावक गगन समीरा।' आत्मा की नियति यही है, असीम संसार कि असीम स्पेस में समा जाना। शायद यही ठीक होता है, क्योंकि कोई कितना याद कर सकता है⋯किसी को, कितने लोग बना सकते हैं ताजमहल? फिर भी मुझे 'कब्र' का या सीमेंटरी गढ़े हुए पत्थर कर तसव्वुर अच्छा ही नहीं, रोमांचकारी भी लगता है। मैंने कहीं पढ़ा था, उस बहुत प्रसिद्ध कार्टून रचियता के बारे में—'मैल ब्लैक' उसका नाम था, वह अपने हर एपीसोड के बाद 'समाप्त' या 'दि ऐंड' की जगह लिखता था 'that's all folks' उसने अपने परिवार से कह दिया था कि उसके मरने के बाद उसकी कब्र पर लिखा जाए—'that's all folks' क्योंकि मृत्यु जीवन का अंतिम एपीसोड होती है। रश्मि, तू भी मेरे लिए लिखना— 'गौरिका एक ऐसा चित्र थी, जिसकी धूल पोंछने का प्रयास किसी ने नहीं किया' या फिर लिखना 'गौरिका फिर जन्म मत लेना।' 'दैट्स ऑल फोक्स।' बस इतना ही।

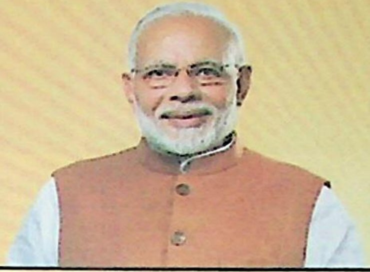
अच्छा विदा

गौरिका



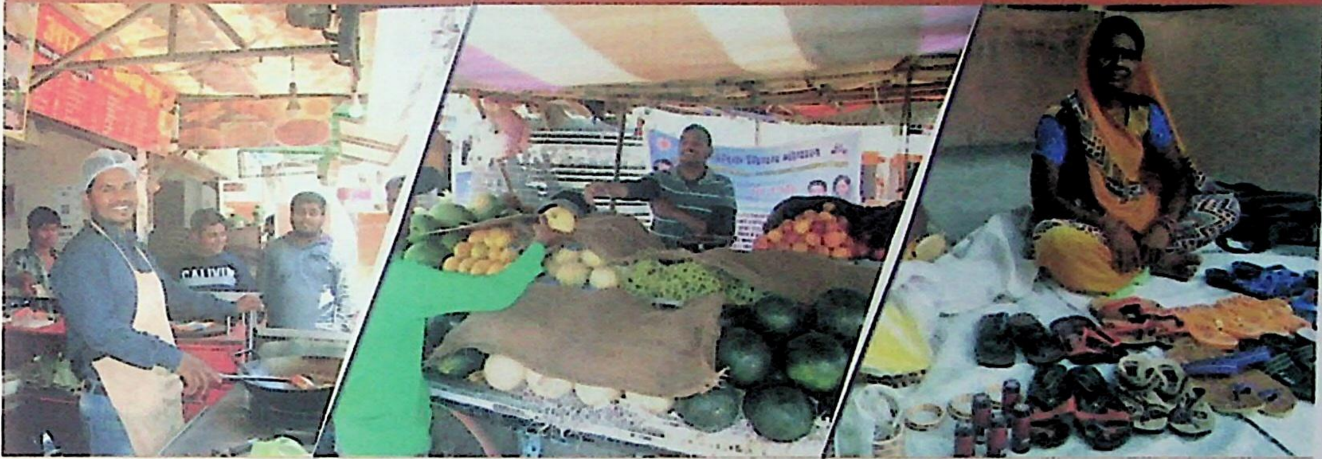
२६, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली-११०००१







'स्व-निधि' से पथ विक्रेता हो रहे आत्मनिर्भर
जरुरतमंदों की मदद के लिये सरकार है तत्पर



- **शहरी और ग्रामीण पथ विक्रेताओं** को मिल रहा 10 हजार रुपये की ब्याजमुक्त कार्यशील पूंजी का ऋण।
- **शहरी पथ व्यवसायी उत्थान योजना** ऋण पर 7% ब्याज अनुदान भारत सरकार द्वारा और शेष ब्याज अनुदान राज्य सरकार द्वारा वहन।
- कुल 8 लाख 78 हजार 12 शहरी पथ विक्रेता पंजीकृत।
- 3 लाख 56 हजार 60 पथ व्यवसायियों को प्रमाण पत्र वितरित।
- 44 हजार 92 हजार 92 हितग्राहियों को ऋण स्वीकृत।
- **पथ व्यवसायी उत्थान योजना** के अन्तर्गत बैंकों से ऋण प्राप्त करने के लिये लगने वाला स्टाम्प शुल्क अधिकतम 50 रुपये करने का निर्णय।

प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर्स आत्मनिर्भर निधि (पीएम स्व-निधि) योजना

प्रदेश के सभी नगरीय निकायों में प्रारंभ, इस योजना के क्रियान्वयन में **देश में मध्यप्रदेश नंबर 1**

- **मुख्यमंत्री स्ट्रीट वेंडर ऋण योजना** प्रदेश के सभी गाँवों में शुरू योजना का लाभ लेने के लिए किसी भी प्रकार का शुल्क, प्रतिभूति अथवा धरोहर राशि नहीं करानी होगी जमा।
- कामगार पोर्टर पर 8,56,697 ग्रामीण पथ विक्रेता पंजीकृत।
- रोज़गार सहायक द्वारा 1,36,175 ग्रामीण पथ विक्रेताओं का पंजीयन के बाद सत्यापन।
- सीईओ जनपद द्वारा 88,891 प्रकरण अनुमोदित।
- 17,535 ग्रामीण पथ विक्रेताओं को प्रमाण-पत्र जारी।

पथ व्यवसायियों की मददगार-मध्यप्रदेश सरकार

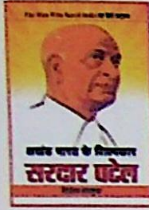
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020



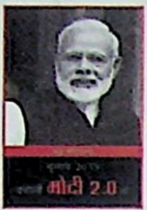
प्रभात

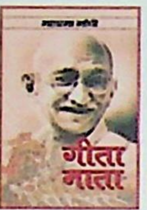
नए प्रकाशन

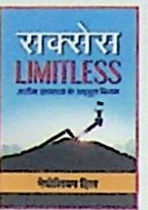


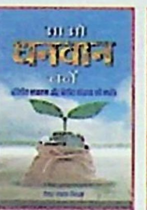


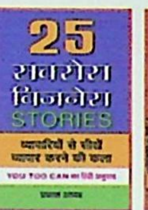










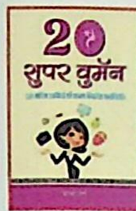




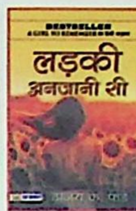


• अखंड भारत के शिल्पकार सरदार पटेल	हिंडोल सेनगुप्ता	700.00
• भूख और भोज के बीच विवेकानंद	शंकर	600.00
• राजयोग : स्वरूप एवं साधना	योगी आदित्यनाथ	300.00
• हठयोग : स्वरूप एवं साधना	योगी आदित्यनाथ	300.00
• योग और आहार द्वारा 100 साल कैसे जिएँ	बिजोयलक्ष्मी होता	500.00
• स्वस्थ रहें, मस्त रहें	मिकी मेहता	350.00
• Diabetes उपचार के 101 टिप्स	डॉ. अनिल चतुर्वेदी	250.00
• नींद : थकान से स्फूर्ति तक	संजय अग्रवाल	150.00
• साल में 1000 Productive घंटे कैसे बढ़ाएँ	संजय अग्रवाल	350.00
• गांधी : एक सत्य	राजेंद्र मोहन भटनागर	400.00
• एकदा भारतवर्षे...	हेमंत शर्मा	700.00
• विकास की राजनीति	डॉ. विनय सहस्रबुद्धे	350.00
• भारतीय जनता पार्टी की गौरवगाथा	शांतनु गुप्ता	800.00
• मोदी-शाह : मंजिल और राह	आर.के. सिन्हा	600.00
• लॉर्ड ऑफ रिकॉर्ड्स	हरीश चंद्र बर्णवाल	750.00
• कहानी मोदी 2.0 की	अकु श्रीवास्तव	600.00
• भारत कैसे हुआ मोदीमय	संतोष कुमार	500.00
• नरेंद्र मोदी होने का अर्थ	डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री	500.00
• राष्ट्र-साधक नरेंद्र मोदी	आर. बालाशंकर	500.00
• मोदी नीति	हरीश चंद्र बर्णवाल	400.00
• मशहूर हुए तो क्या हुआ?	सोहा अली खान	450.00
• शोमैन राज कपूर	रितु नंदा	700.00
• तेंदुलकर की कहानी उन्हीं की जुबानी	सचिन तेंदुलकर	500.00
• तुम कब आओगे श्यावा	सूर्यकांत बाली	400.00
• दीर्घतमा	सूर्यकांत बाली	500.00
• भारत की राजनीति का उत्तरायण	सूर्यकांत बाली	1000.00
• भारत का दलित-विमर्श	सूर्यकांत बाली	600.00
• भारतीय संस्कृति का संवाहक इंडोनेशिया	रमेश पोखरियाल 'निशंक'	400.00
• भारत दर्शन	जगराम सिंह	1500.00
• शिक्षा के द्वंद्व	पवन सिन्हा	350.00
• छुआछूत मुक्त समरस भारत	इंद्रेश कुमार	350.00
• कला और संस्कृति	वासुदेवशरण अग्रवाल	500.00
• माता भूमि	वासुदेवशरण अग्रवाल	500.00
• हमारा संविधान : एक पुनरावलोकन	सं. राम बहादुर राय	700.00
• विलक्षण शब्द चित्र	पु.ल. देशपांडे	500.00
• 5 सरसंघचालक	अरुण आनंद	400.00
• डॉ. आंबेडकर : आयाम दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
• डॉ. आंबेडकर : व्यक्ति दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00

• डॉ. आंबेडकर : जीवन दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
• डॉ. आंबेडकर : राष्ट्र दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
• गीता माता	महात्मा गांधी	400.00
• कर्मयोगी संन्यासी योगी आदित्यनाथ	रहीस सिंह	400.00
• विद्रोही संन्यासी	राजीव शर्मा	400.00
• शिवाजी महाराज द ग्रेटेस्ट	हेमंतराजे गायकवाड	600.00
• सुभाषचंद्र बोस की अधूरी आत्मकथा	शिशिर कुमार बोस	600.00
• नेताजी सुभाष चंद्र बोस युवकों से	सं. राम किशोर	300.00
• मेरी राजनीतिक जीवन यात्रा	पी.ए. संगमा	900.00
• चाणक्य और जीने की कला	प्रस्तुति : बकुल बक्शी	400.00
• सफलता का खजाना	मौलाना वहीदुद्दीन खान	400.00
• गांधी बनाम भगत	नवीन गुलिया	250.00
• सफलता के गुरुमंत्र	नेपोलियन हिल	400.00
• मन में है विश्वास	नेपोलियन हिल	500.00
• सफलता के लिए 13 सर्वश्रेष्ठ आदतें	नेपोलियन हिल	400.00
• सक्सेस Limitless	नेपोलियन हिल	600.00
• Startup सक्सेस स्टोरीज	नीति जैन और गगन जैन	600.00
• द पावर ऑफ फोकस	जैक कैनफील्ड, मार्क विक्टर हैंसन, लेस हेविट	700.00
• कैसे पाएँ जीवन में असीम सफलता	महेश दत्त शर्मा	300.00
• आओ धनवान बनें	राधा रमण मिश्रा	350.00
• 25 सक्सेस बिजनेस Stories	प्रकाश अय्यर	450.00
• आप भी अमीर बन सकते हैं	जोसेफ मर्फी	450.00
• सर्वश्रेष्ठ मन द्वारा सफलता पाएँ	जोसेफ मर्फी	300.00
• विश्वास का जादू	जोसेफ मर्फी	250.00
• अवचेतन मन की शक्ति	जोसेफ मर्फी	500.00
• आकर्षण का नियम	विलियम वाकर एटकिंसन	300.00
• जीवन जीने के Positive मंत्र	लुइस एल. हे	500.00
• सक्सेस की University	ऑग मैंडिनो	600.00
• सुपर सफलता के 25 सुपर नियम	ऑग मैंडिनो	600.00
• सुपर सक्सेस @ NLP	मनोज केशव	600.00
• परवरिश 2.0	एन. रघुरामन	250.00
• नए-नए बिजनेस आइडिया नया भारत	एन. रघुरामन	300.00
• नेक बनें, श्रेष्ठ बनें	एन. रघुरामन	250.00
• पुनर्जन्म	वॉल्टर सेम्किव	800.00
• कारगिल	रचना बिष्ट रावत	500.00
• मिशन एवरेस्ट 1965	कैप्टन एम.एस. कोहली	600.00
• गदर आंदोलन का इतिहास	भैरव लाल दास	900.00
• बटुकेश्वर दत्त और क्रांतिकारी आंदोलन	भैरव लाल दास	500.00



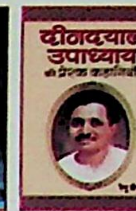

















• काँच विज्ञानी डॉ. आत्माराम	शिवगोपाल मिश्र	400.00
• नोबेल पुरस्कृत डॉ. हरगोविंद खुराना	दिनेश मणि	300.00
• सेनापति तात्या टोपे	रंजना चितले	300.00
• शिक्षा : विकल्प एवं आयाम	अतुल कोठारी	400.00
• तीन तलाक	ज़ियाउस्सलाम	350.00
• संपूर्ण बाल नाटक	विष्णु प्रभाकर	500.00
• गूगल निर्माता : सर्गेई & लैरी	प्रदीप ठाकुर	400.00
• बेंजामिन ग्राहम के इन्वेटस्मेंट मंत्र	प्रदीप ठाकुर	350.00
• नेटवर्क मार्केटिंग से अमीर बनिए	प्रदीप ठाकुर	350.00
• जयप्रकाश! तुम लौट आओ (उपन्यास)	ममता मेहरोत्रा	400.00
• प्यार तो होना ही था (उपन्यास)	हिमांशु राय	400.00
• क्या मुझे प्यार है? (उपन्यास)	अरविंद पाराशर	300.00
• मेरे सपनों की लड़की (उपन्यास)	दुर्जोय दत्ता	500.00
• द ब्वॉय हू लव्ड (उपन्यास)	दुर्जोय दत्ता	600.00
• हमारी अधूरी कहानी (उपन्यास)	अर्पित बगेरिया	300.00
• आखिरी ख्वाहिश (उपन्यास)	अजय के. पांडे	300.00
• लड़की अनजानी सी (उपन्यास)	अजय के. पांडे	300.00
• अविनाश जिंदा है (उपन्यास)	आनंद शर्मा	300.00
• आखिरी बाजी (उपन्यास)	एस. हुसैन जैदी	500.00
• न तीन में, न तेरह में मृदंग बजाए डेरे में	आनंद प्रकाश / विनीता चांडक	300.00
• वो मुझे हमेशा याद रहेंगे	आनंदीबेन पटेल	500.00
• कॉरपोरेट योगी	डॉ. अरविंद लाल	495.00
• यादों का कारवाँ	दीपक महान	200.00
• पैराडाइज टावर्स	श्वेता बच्चन-नंदा	300.00
• नौकरशाह ही नहीं	अनिल स्वरूप	400.00
• अहंकार को करें बाय-बाय	राजेश अग्रवाल	300.00
• उलटा लटका राजा (कहानियाँ)	सुधा मूर्ति	350.00
• सपनों भरे दिन (कहानियाँ)	रामदरश मिश्र	350.00
• एक टीचर की डायरी (कहानियाँ)	भावना शेखर	300.00
• तुम याद आओगे लीलाराम (कहानियाँ)	प्रकाश मनु	350.00
• चलें गाँव की ओर (कहानियाँ)	एम.डी. मिश्रा 'आनंद'	350.00
• पठार शिविर की सूखी नदी (कहानियाँ)	रतन लाल शांत	300.00
• रैवन की लोककथाएँ (कहानियाँ)	सुषमा गुप्ता	350.00
• आभार तुम्हारा (कहानियाँ)	मीनू त्रिपाठी	350.00
• देशप्रेम, प्रकृति और पहाड़	डॉ. रमा	300.00
• जम्मू-कश्मीर : सच तो सही है (कहानियाँ)	आशा नैथानी दायमा	250.00
• त्वमपि मया सह चल और जीवनपथे	रमेश पोखरियाल 'निशंक'	300.00
• जीवन एक दर्पण	रवींद्र नाथ प्रसाद सिंह	400.00
• कहानी एक IAS परीक्षा की	के. विजयकार्तिकेयन	300.00
• ई.वी.एम. की सच्ची कहानी	आलोक शुक्ला	400.00
• दीनदयाल उपाध्याय की प्रेरक कहानियाँ	रेनू सैनी	400.00
• लौहपुरुष सरदार पटेल के प्रेरक प्रसंग	रेनू सैनी	400.00
• शास्त्रीजी के प्रेरक प्रसंग	रेनू सैनी	400.00
• अपने चाणक्य स्वयं बनें	रेनू सैनी	350.00
• परछाईं का सच	नर्मदा प्रसाद उपाध्याय	350.00
• भ्रष्टाचार की विषबेल	सदाचारी सिंह तोमर	500.00
• राष्ट्र गौरव सम्राट हेमचंद्र विक्रमादित्य	परशुराम गुप्त	250.00
• एक भारतीय की जापान यात्रा	ऋषि राज	350.00
• 20 सुपर वुमॅन	प्राची गर्ग	400.00
• 50 महान् स्वतंत्रता सेनानी (जीवनी)	ऋषि राज	600.00
• इमरजेंसी का कहर और सेंसर का जहर	बलबीर दत्त	900.00
• साधो ये उत्सव का गाँव	सं. अभिषेक उपाध्याय	500.00
• रागगीरी	शिवेंद्र कुमार सिंह और गिरिजेश कुमार	450.00
• पं. सूर्यनारायण व्यास प्रतिनिधि रचनाएँ	राजशेखर व्यास	700.00
• कबीरा बैठा डिबेट में (व्यंग्य)	पीयूष पांडेय	250.00
• दूर के ट्रोल सुहाने (व्यंग्य)	आशुतोष उज्ज्वल	350.00
• रिश्वत महादेवी की जय! (व्यंग्य)	यशवंत कोठारी	350.00
• शेयर मार्केट शब्दकोश	ए. सुल्तान	300.00
• Share Market में निवेश और ट्रेडिंग के सीक्रेट्स	स्वामीनाथन अन्नामलाई	300.00
• शेयर ट्रेडिंग करो और अमीर बनो	इंद्रजीत शांतराज	350.00
• स्टॉक मार्केट में सफल होने के 41 टिप्स	महेश चंद्र कौशिक	250.00
• परवरिश करें तो ऐसे करें	वीना श्रीवास्तव	400.00
• खिलखिलाता बचपन : आदतें और संस्कार	वीना श्रीवास्तव	400.00
• English सीखें और सफल बनें	जगदीश नारायण सिंह	700.00
• English में पाएँ अधिकतम Marks	गो.द. पहिनकर	350.00
• इनोवेशन, कानून और गरीबी	रॉबर्ट डी. कूटर, हंस-बर्नड शेफर	700.00
• सुप्रीम कोर्ट में रामलला	पवन कुमार	300.00
• अमरफल	राघवजी माधड	400.00
• मैं आर्यपुत्र हूँ	मनोज सिंह	600.00
• शिखंडी	डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग	300.00
• जनसरोकार के पत्रकार हरिवंश	डॉ. आर.के. नीरद	700.00
• दिशोम गुरु, शिबू सोरेन	अनुज कुमार सिन्हा	500.00



प्रभात प्रकाशन
नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23257555
इ-मेल : prabhatbooks@gmail.com
हेल्पलाइन नं. ✆7827007777



डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी

(गुजरात सरकार द्वारा स्थापित)

"ज्योतिर्मय परिसर" डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी मार्ग,
एस जी हाइवे, छारोड़ी, अहमदावाद -382481.
E-mail : info@baou.edu.in ; Website : www.baou.edu.in
टोल फ्री नं : 1800 233 1020



प्रवेश सुचना २०२०

जुलाई - २०२० सत्र हेतु आनलाइन प्रवेश प्रारंभ

बाह्य (एक्सटर्नल) विद्यार्थी तथा ज्ञानाभिलाषियों के लिए शिक्षा प्राप्ति का अमूल्य अवसर

स्टूडेंट लर्नर सपोर्ट सेंटर द्वारा लागू नवीन योजनाएँ

★ शहीदों की पत्नियों और उनकी संतानों के लिए निःशुल्क शिक्षा योजना
★ जेल के कैदियों के लिए निःशुल्क शिक्षा योजना
★ ट्रांसजेंडर हेतु शिष्यवृत्ति योजना
★ दिव्यांगों हेतु सुलभ शिक्षण योजना

अन्य विश्विविद्यालय के विद्यार्थी क्रेडिट ट्रान्सफर द्वारा डां बाबासाहेब आम्बेडकर ओपन यूनिवर्सिटी में SY/TY-UG/PG की कक्षाओं में प्रवेश ले सकते हैं

UGC के परिपत्र के अनुसार विद्यार्थी नियमित डिग्री के साथ-साथ डिस्टेंस लर्निंग के द्वारा भी एक और डिग्री प्राप्त कर सकता है, यह सुविधा डां बाबासाहेब आम्बेडकर ओपन यूनिवर्सिटी में उपलब्ध हैं

स्नातक पाठ्यक्रम

★ बेचलर आफ़ आर्ट्स/ कला संकाय (B.A)
★ गुजराती, हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास, अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र, समाजशास्त्र, लोक प्रशासन (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन)
★ बेचलर आफ़ लायब्रेरी एंड इन्फार्मेशन साइंस (BLIS)
★ बेचलर आफ़ कामर्स/ वाणिज्य संकाय (B.COM)

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

★ मास्टर आफ़ आर्ट्स (M.A.)
• गुजराती, अंग्रेजी, हिंदी, समाजशास्त्र
★ मास्टर आफ़ लायब्रेरी एंड इन्फार्मेशन साइंस (MLIS)

सरकारी नौकरी प्राप्त करने तथा सरकारी अधिकारियों / कर्मचारियों के पदोन्नति हेतु सरकारी मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम

★ Certificate in Computer Concepts (CCC-BAOU)
(छः महीने का कंप्यूटर पाठ्यक्रम प्रमाण पत्र)

सरकारी अधिकारियों / कर्मचारियों के पदोन्नति हेतु सरकारी मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम

★ CCC (वर्ग-3 के कर्मचारियों हेतु)
★ CCC (वर्ग-1 तथा वर्ग-2 के कर्मचारियों हेतु)

अन्य डिप्लोमा तथा सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम

पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन डिस्टेंस एजुकेशन (PGDDE)

UGC द्वारा मान्यता प्राप्त Ph.D डिग्री

Ph.D की खाली जगहों तथा अन्य संबंधित जानकारी हेतु यूनिवर्सिटी की वेबसाइट देखें

नये शुरु किये गये पाठ्यक्रम

* Post Graduate Diploma in Mobile Application Development (PGDMAD)
* Post Graduate Diploma in Cyber Security (PGDCS)
* Post Graduate Diploma in Cyber Law (PGDCL)
* Diploma in Multimedia and Animation (DMA)
* Diploma in Journalism and Mass Communication (DJMC)
* Diploma in Fashion Designing (DFD)
* Certificate in Sound, Audio and Video Technology (CSAVT)
* Certificate in Journalism and Mass Communication (CJMC)
* Certificate in Fashion Designing (CFD)

Vocational & Professional Courses

DIPLOMA PROGRAMME

● Diploma in Business Administration (DBA)
● Diploma in Computer Application (DCA)

POST GRADUATE DIPLOMA PROGRAMME

● Post Graduate Diploma in Business Administration (PGDBA)
● Post Graduate Diploma in Finance (PGDF)
● Post Graduate Diploma in Marketing (PGDM)
● Post Graduate Diploma in Human Resource (PGDHR)
● Post Graduate Diploma in Computer Application (PGDCA)

BACHELOR PROGRAMME

● Bachelor of Computer Application
● Bachelor of Computer Application (Multimedia)
● Bachelor of Business Administration
● Bachelor of Business Administration (Air Travel Management)

MASTER PROGRAMME

● Master of Social Work (MSW)

Contact Details for Regular Courses : Ph.+91 79 29796223 / +91 2717 297170 | Email : admission.info@baou.edu.in
Contact Details for Vocational & Professional Courses : Mo. 99784 08684, 90999 94484 | Email : kmro@baou.edu.in

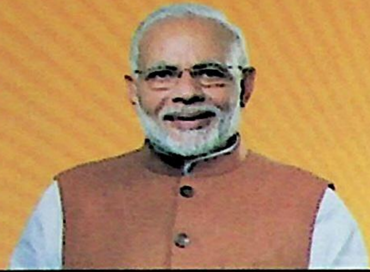
रजिस्ट्रेशन के लिए यूनिवर्सिटी की वेबसाइट से E-PIN मिलने के बाद विद्यार्थी विविध पाठ्यक्रमों हेतु फार्म भर सकेंगे

E-PIN रजिस्ट्रेशन शुल्क (रेग्युलर कोर्स : 100/- रु) (वोकेशनल एंड प्रोफेशनल कोर्स: 300/- रु)

प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थी स्वयं अथवा यूनिवर्सिटी/ अभ्यास केन्द्र से प्रवेश फार्म भर सकेंगे।
(इस हेतु अलग से कोई शुल्क निर्धारित नहीं हैं।)

प्रवेश सम्बन्धी अन्य सूचना एवं जानकारी यूनिवर्सिटी की वेबसाइट www.baou.edu.in पर उपलब्ध है।

का. कुलसचिव







प्रदेश के गाँव बन रहे आत्मनिर्भर... मध्यप्रदेश सरकार पुनः लेकर आई 'पंच परमेश्वर'...

52 हजार से अधिक गाँवों में विकास की धारा बहाने के लिए सरकार ने पंच-परमेश्वर योजना को पुनः किया प्रारंभ

1,555 करोड़ रुपये की राशि 14वें वित्त आयोग तथा 996 करोड़ रुपये की राशि 15वें वित्त आयोग द्वारा जारी



इस राशि में से 75 प्रतिशत राशि नवीन अधोसंरचना कार्यों में

10 प्रतिशत पेयजल व्यवस्था संबंधी कार्यों में

7.5 प्रतिशत संधारण कार्यों में

7.5 प्रतिशत राशि कार्यालयीन व्यय पर खर्च की जा सकेगी।



प्रशासकीय मद में उपलब्ध राशि का उपयोग प्रवासी श्रमिकों एवं अन्य निराश्रितों एवं असहायों के भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिये 70 करोड़ रुपये से अधिक की राशि जारी।

गाँवों की प्रगति की बढ़ी रफ्तार, विकास के लिये प्रतिबद्ध - मध्यप्रदेश सरकार

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

गंगा घाट

• चंद्रकाता

सुरेंद्रजी गंगा घाट की सीढ़ियों से कुछ ऊपर बैठे भीगे मन से गंगाजी का अविरल प्रवाह देख रहे हैं। सुन रहे हैं, विशाल जलराशि में हवा की थपकियों से लहरों के अंतर में बजते संगीत का अनहद नाद! मर्म को छूता करुण राग!

सदानंद पंडा आयुष-अस्मी को पृथ्वी पर गंगावतरण की कथा सुना रहे हैं कि कैसे महाराज भगीरथ अपने पूर्वज सगर के शापग्रस्त पुत्रों की मुक्ति के लिए ब्रह्मलोक में विराजती गंगा को पृथ्वी लोक पर ले आए, कैसे कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए सगर पुत्रों को गंगा माँ ने शाप-मुक्त कर जीवन दान दिया, कैसे अनंत काल से हरिद्वार की इस धरती पर बहती पापनाशिनी माँ गंगा पितरों को मुक्ति प्रदान करती आई है!

अनेक रूपा गंगा! इधर गंगा का जल कुछ मटमैला सा दिख रहा है। गंगा सफाई अभियान तो चल रहा है, शायद बारिश की वजह से तटबंधों की मिट्टी नदी में रिसकर गंगा को मटियाला रंग दे गई हो। सुरेंद्रजी ने कई साल पहले गंगा का एक और अनूठा रूप-रंग देखा था, तब प्रभा उनके साथ थी। बर्फ ढके पर्वत शिखर, झरझर बहता पानी और आकाश छूते वृक्ष देख खुशी से बौरा जानेवाली प्रभा! तब वे गुलार डोगी, डिस्ट्रिक टिहरी गढ़वाल में गंगा किनारे, घने साए वाले क्रीपरों, नीबू, मौसमी और बेशुमार फलों से झुक जाते पेड़ों के बीच बैठी, एक इकमंजिली हट में रुके थे। आँखों की सीध में कद्दावर पहाड़ों के बर्फ से सजे गर्वीले शिखर थे और शिखरों से बेरोक उतरती गंगा! दौड़ती, भागती, संगमरमरी झागीले प्रवाह में, उछल-उछल तटों को पानी की बौछारों से भिगोती, किनारों के ढोक-चट्टानों से लड़ियाती मनचली गंगा! किनारे के उथले पानी में घुटनों तक उतरी प्रभा गंगा की शफ्फाक लहरों से देर तक भीगती रही थी। सुरेंद्रजी के 'सर्दी हो जाएगी, बचपना छोड़ पानी से बाहर आओ' की ताकीद पर प्रभा हँस पड़ी थी, "ना-ना, सर्दी-वर्दी कुछ नहीं, गंगा की यह शीतल फुहार, कितनी पारदर्शी! तपते तन-मन को कैसा सुकून दे रही है, कितना रोमांचक है गंगा का स्पर्श, मेरे साथ भीगो तो महसूस करोगे इसका जादू! मेरा मन तो कर रहा है कि कुछ वक्त यहीं गुजारूँ, मनचली गंगा का निर्बाध वेग देखती रहूँ।



हिंदी की वरिष्ठ कथाकार। प्रमुख रचनाएँ हैं—'सलाखों के पीछे', 'ओ सोनकिसरी', 'कोठे पर कागा', 'काली बर्फ' (कहानी-संग्रह), 'अपने-अपने कोणार्क', 'यहाँ वितस्ता बहती है' तथा 'कथा-सतीसर' (उपन्यास)। प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान' के अलावा जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी; मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, हरियाणा साहित्य अकादमी तथा हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

देखो तो, ऊपर आकाश पर घूमते ये भरे-भरे धौले-सुरमई बादल भी कैसे मनमाने खेल खेल रहे हैं, कभी अपनी आकाश ढाँप ओढ़नी से हिमशिखरों को ढक देते हैं, कभी ओढ़नी हटा श्वेत ताज धरे हिमालय के विराट् सौंदर्य से वातावरण को शीतल उजास से भर देते हैं। आपने देखा नहीं प्रोफेसर साहब, कैसे पर्वतों के बीच से आर-पार रास्ता बनाकर बादल वेग से बहती गंगा को छूने, धीरे-धीरे नीचे उतर रहे हैं? पर गंगा किसी के रोके रुकी है? निराश होकर मुँह लटकाए वापस लौट जाते हैं बादल अपने घर! प्रकृति का यह विराट् सौंदर्य तो मंत्रमुग्ध कर देता है! मन के सारे ताप और द्वंद्व हर लेती है गंगा!

"कितने खुशकिस्मत हैं इधर रहनेवाले लोग...!"

"पहले पासवाले मंदिर में देवी के दर्शन तो कर लो, हो सकता है कि वहीं तुम्हारे सवालों का जवाब मिल जाए।" सुरेंद्रजी ने प्रभा के लंबे खिंचते मुग्ध आलाप पर विराम देने की कोशिश की।

गंगा किनारे छोटा सा मंदिर, भीतर लाल साटन से सजाई चारेक फुट की वेदी पर बैठी माँ गंगा, संगमरमर की तराशी कलाकृति! सामने थाली में कुछ फल-फूल, अक्षत, चंदन के साथ ताम्रपात्र में चरणामृत, और श्रद्धालु विहीन मंदिर में पोथी पर झुका निरीह-सा दिखता अकेला पुरोहित। प्रभा-सुरेंद्रजी ने झुककर पहले देवी माँ को, बाद में पंडितजी को प्रणाम किया। पंडितजी ने सोत्साह पूजा करवाई, दोनों ने पंडितजी के स्वर में स्वर मिलाकर गंगाजी की स्तुति की, चरणामृत लिया और दक्षिणा दी। जाते-जाते प्रभा ने गंगाजी के मोहक सौंदर्य की प्रशंसा करते

पूछा, "आप यहीं रहते हैं?"

"जी, पीढ़ियों से यहीं गंगाजी की सेवा कर रहे हैं।"

'भाग्यवान' हैं आप, गंगा माँ के इस मनोहारी पवित्र स्थान में रह रहे हैं। पॉल्यूशन फ्री, स्वच्छ निर्द्वंद्व वातावरण में!"

पंडित का चेहरा उतर गया, "हाँ माताजी, सो तो है, पर हमारे बाल-बच्चे अब यहाँ नहीं रहते, गाँव छोड़कर शहर चले गए हैं, रोजी-रोटी कमाने!"

भाग्यवान शब्द ने पंडितजी की कोई दुखती रग छू दी थी, "पहाड़ियों का जीवन बड़ा कष्टकर होता है, माता। इधर दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना भी मुश्किल होता जा रहा है! अब पहलेवाली बात नहीं रही। अब तो यहाँ सैलानी आते हैं, श्रद्धालु नहीं। लोग आते हैं सैर-सपाटे के लिए। नजारे देखते हैं, फोटो-शोटो खींचते हैं और लौट जाते हैं। पूजा-अर्चना कोई विरला ही करता है। मैं भी कब तक यहाँ रह पाऊँगा, कह नहीं सकता।"

□

"पापा!" कंधे पर अस्मि का स्पर्श सुरेंद्रजी को गुलार डोंगी के श्रद्धालु विहीन मंदिर से भीड़ भरे गंगा घाट पर ले आया, "आइए यजमान, हवन की तैयारियाँ हो गई हैं।" सदानंद पंडा पिंड के लिए पके चावल, हवन सामग्री, अक्षत चंदन, फल-फूल आदि के साथ दान के लिए वस्त्रादि करीने से सजा प्रभा का श्राद्ध संपन्न कराने के लिए तैयारी कर चुके हैं। अभ्यास बनी रीति-नीतियाँ नाम-कुल-गोत्र पूछने के साथ श्राद्ध विधिपूर्वक शुरू हो रहा है। घाट पर गहमा-गहमी है। कई लोग छोटी-छोटी टोलियों में बैठे पिंडदान करा रहे हैं। सुरेंद्रजी के साथ आयुष भी माँ का श्राद्ध कर रहा है। पुरोहित श्लोक पढ़ते निर्देश दे रहा है और बेटा उँगलियों में दूर्वादल की पवित्री पहने पिंड के छोटे-छोटे लोंदे बनाकर पिंडदान कर रहा है। सुरेंद्रजी का मन हवन कुंड से उठते धुएँ से बेटे की लाल हुई आँखें देख करुणा से भीग जाता है। कर्मकांडों और तर्क से परे आस्थाओं में विश्वास न रखने के बावजूद वैज्ञानिक सोचवाला बेटा किसलिए इन अनुष्ठानों में भाग लेने की तवालत उठा रहा है? क्या मन की किसी ग्रंथि से मुक्त होने के लिए कि माँ से घर लौटने का वादा वह पूरा न कर सका और विदेश में बसकर उसने माँ को कहीं निराश कर दिया? क्या इसलिए कि किसी करिश्मे से प्रभा के मन का अनकहा मलाल मिट जाए? या सगर-पुत्रों की तरह उसके श्राद्ध से माँ को भी मुक्ति मिले? सुरेंद्रजी भी तो कर्मकांडों में रुचि न रखने पर भी प्रभा का श्राद्ध कर रहे हैं, क्या अवचेतन में दुबककर बैठा कोई तर्कहीन विश्वास उनसे यह कर्म करा रहा है कि शायद प्रभा की आत्मा को कोई राहत मिले?

शरीर छोड़ने के बाद आत्मा कहाँ जाती है, उसकी अवस्था क्या होती है, कितने दिनों तक घर में रहती है? पुनर्जन्म कब लेती है! इसके बारे में सहज जिज्ञासा के कारण उन्होंने शास्त्रों को खँगाला जरूर है, कुछ स्वनाम धन्य शास्त्र के जानकारों से इस विषय से संबंधित प्रश्न भी पूछे हैं, पर अंततः श्रीमद्भागवद्गीता के संदेश 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः' पर ही उनकी आस्था बनी रही है।

फिर भी…।

सुरेंद्रजी स्वर्ग के मोह या नरक के भय से कोई अनुष्ठान नहीं करते। अपने माता-पिता की बरसी पर भी वे बड़े आयोजन नहीं करते, वंचितों-जरूरतमंदों को यथाशक्ति दान जरूर देते हैं। लेकिन किसी की श्रद्धा या विश्वास पर आलोचना भी नहीं करते! जानते हैं कि बड़े-से-बड़ा वैज्ञानिक भी ग्रह-नक्षत्रों की खोज में, आकाशी स्पेस को खँगालने की कोशिशों के बावजूद मृत्यु से जुड़े रहस्यों को जान नहीं पाया है।

परिजनों और आयुष के दोस्तों ने पुष्प गुच्छों से प्रभा को गरिमापूर्ण विदाई दी। डॉ. परिहार के पूछने पर कि विधि के अनुसार पूजा-आरती के लिए क्या पंडितजी को बुलाएँ, एक पूजा-पाठ के जानकार पंडित हैं यहाँ? सुरेंद्रजी ने मना किया, "पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है, प्रभा तो शिवत्व में लीन हो गई है। हम-आप ही शिव शंकर की आरती कर इन्हें विदा करेंगे!"

इलेक्ट्रिक क्रेमेटोरियम ले जाने से पहले अस्मी, आयुष, तन्वी और आयुष के दोस्तों ने सुरेंद्रजी के साथ स्वर मिलाकर शिव की आरती की, दिन भर की थकान से सुस्त सूर्य ने हवाओं में गूँजते, शिव शंकर, शिव शंकर, हरु में हरु द्वरितम के अँसुआते स्वर सुने और उदास होकर क्षितिज के पार उतर गया!

क्रेमेटोरियम में पल भर में राख हुई माँ की अस्थियों में से अस्मी ने मुट्ठी भर राख उठाकर डिब्बे में सहेजकर रख ली। बाकी अस्थियाँ आयुष ने लेक के शीतल जल में प्रवाहित कर दीं। सुरेंद्रजी ने आँसुओं में उफन आते दुःख को पलकों में रोककर बेटी को देखा, पापा का दुःख से विवर्ण चेहरा देख अस्मी की आँखें बरस पड़ीं, "पापा, हरिद्वार में गंगा का स्पर्श माँ को शांति देगा न?"

पापा ने आयुष-अस्मी को गले लगाया। कहा कुछ नहीं, सिर हिलाकर सहमति दी, बोलते भी कैसे, अव्यक्त दुःख से उनका गला जो रुँध गया था!

सुरेंद्रजी मानव मनोविज्ञान को समझ सकते हैं, फिर भी मन में प्रश्न उठा कि आज के वैज्ञानिक सोच के युवा ने विधिवत् श्राद्ध करने की यह तवालत क्यों उठाई?

शरीर छोड़ने के बाद आत्मा कहाँ जाती है, उसकी अवस्था क्या होती है, कितने दिनों तक घर में रहती है? पुनर्जन्म कब लेती है! इसके बारे में सहज जिज्ञासा के कारण उन्होंने शास्त्रों को खँगाला जरूर है, कुछ स्वनाम धन्य शास्त्र के जानकारों से इस विषय से संबंधित प्रश्न भी पूछे हैं, पर अंततः श्रीमद्भागवद्गीता के संदेश 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः' पर ही उनकी आस्था बनी रही है।

आयुष ने माँ की मुट्ठी भर अस्थियाँ, भरी आँखों कलश में भरकर गंगा की गहरी धारा में विसर्जित कर दीं। अस्मी, आयुष दोनों ने दीन, दुःखी, अपंगों को कंबल बाँटे और भूखे-नंगे बच्चों-बूढ़ों को भरपेट भोजन कराया।

अनुभवी नजर से दान-दक्षिणा के वजन का अनुमान कर प्रसन्नचित्त सदानंद पुरोहित ने आयुष-अस्मी को 'जीवै त्वम शरदः शतम्' का आशीर्वाद दिया। सुरेंद्रजी के पुरखों की बही निकाल उस पर हस्ताक्षर करवाए। मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की कि उन्होंने बच्चों को अच्छे संस्कार दिए हैं! आज आपकी धर्मपत्नी और बच्चों की माता को मुक्ति मिल गई यजमान!

सुरेंद्रजी ने उत्तर में हाथ जोड़कर प्रणाम किया, कहा कुछ नहीं, सोचा जरूर कि—

'मुक्ति तो प्रभा को उसी दिन मिली थी, विदेशी धरती पर घर से सात समंदर दूर रहते बेटे आयुष के घर में, जहाँ से वह पति और दूर बैठे बेटे के परिवार का मनचाहा स्पर्श पाकर अपनी अंतिम यात्रा पर निकल पड़ी थी! तीसेक साल अपने घर लौटने का इंतजार कर, आखिरकार उसने मन-बेमन से मान लिया था कि उसका घर वहीं है, जहाँ उसके बाल-बच्चे हैं! जाने से पहले वह बच्चों के बीच खूब खुश थी। आयुष और बच्चों से मिलकर अंतिम समय उनके हाथ से मुँह में दो बूँद जल पाकर उसकी अंतिम आस-अरदास पूरी हो गई थी!'

लौटते वक्त यात्रियों से खचाखच भरी अब उलटी, तब उलटी धूल उड़ाती बसों और काले धुएँ का जहर उगलती ट्रकों ने साँस लेना मुहाल कर दिया। आयुष खाँसते-छींकते बेहाल हो रहा था, अस्मी ने पर्स से दो मास्क निकाल पापा और भाई के हाथ में दे दिए और खुद दुपट्टे से सिर और चेहरा ढक सिर्फ दो आँखें खुली रख लीं। मुँह-नाक ढके तीनों जन भीड़ में से रास्ता निकाल, सड़क पार कर टैक्सी तक पहुँच गए।

लौटते वक्त यात्रियों से खचाखच भरी अब उलटी, तब उलटी, धूल उड़ाती बसों और काले धुएँ का जहर उगलती ट्रकों ने साँस लेना मुहाल कर दिया। आयुष खाँसते-छींकते बेहाल हो रहा था, अस्मी ने पर्स से दो मास्क निकाल पापा और भाई के हाथ में दे दिए और खुद दुपट्टे से सिर और चेहरा ढक सिर्फ दो आँखें खुली रख लीं। मुँह-नाक ढके तीनों जन भीड़ में से रास्ता निकाल, सड़क पार कर टैक्सी तक पहुँच गए।

"पता नहीं इस बाहर-भीतर के पॉल्यूशन से हमें कब छुटकारा मिलेगा?" अस्मी का प्रश्न था या हताशा?

"बाहर का पॉल्यूशन कम करने की कोशिशें तो हो रही हैं, सरकार भी इसके लिए गंभीर है, लेकिन जनता को भी इसके लिए प्रयास करने होंगे।" सुरेंद्रजी ने भीतर के पॉल्यूशन की बात नहीं की, उन्होंने जो दाएँ-बाएँ बैठे पंडों-पुरोहितों को श्राद्ध कराने आए यजमानों को पूर्वजों की बही दिखाकर अधिक-से-अधिक दान-दक्षिणा देने के लिए विवश करते देखा था, क्या आयुष-अस्मी ने नहीं देखा होगा? एक तरफ आस्था और श्रद्धा के भावपूर्ण आयोजन, दूसरी ओर मृतकों के श्राद्ध कर्म में भी ज्यादा-से-ज्यादा वसूलने की संवेदनहीन वास्तविकताएँ—

'यजमान, यह देखिए, आपके पिताजी के हस्ताक्षर। यहाँ देखिए, इधर आपके तायाजी के, नीलकंठ राजदान, पहचान तो गए होंगे हस्ताक्षर, यह रकम भी दर्ज है इधर, क्या महादानी सज्जन थे! आप उनके लिए हाथ तंग रखेंगे, तो क्या उनकी आत्मा को शांति मिलेगी? हाँ, आप ही बताइए...?'

सुरेंद्रजी को अपने बाबूजी याद आ गए। वे कहा करते थे कि दादाजी के श्राद्ध-कर्म में उन्होंने यथाशक्ति जो भी दान-दक्षिणा पंडों-पुरोहितों को दी थी, उन्होंने उसे बिना देखे, माथे से लगाकर आशीर्वाद दिया था।

तब की बात! और अब? इन धार्मिक समझे जानेवाले कृत्यों में भी मोल-भाव के बाजार ने घुसपैठ कर दी थी। गंगा घाट पर एक ओर दान-सामग्री बटोर पंडे चौकन्नी नजरों से, नए यजमानों की आहटें टोह अपनी ओर खींचने के प्रयासों में लगे थे, दूसरी तरफ अवश बूढ़े, अपंग, लूले-लँगड़े कटोरा लिये, पंक्तियों में बैठे, दाताओं से हलवा-पूड़ी पाने का बेताबी से इंतजार कर रहे थे!

सुरेंद्रजी इस समय की विसंगतियों में जीने के लिए तमाम दंद-फंद करनेवालों के लिए मन-ही-मन माँ गंगा से प्रार्थना करने लगे, 'जडानंधान पंगुन् प्रकृतिवधिरा मुक्ति विकलान...!'

—हे अंबे, जन्म से बहरे, लँगड़े, गूँगे, अंधे और जिनके पापों के छुटकारे के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए हैं, उनका तुम उद्धार करो!

प्रार्थना करते अजाने ही सुरेंद्रजी के आगे आश्चर्य सा घट गया। अचानक घाट अदृश्य हो गए और सामने कद्दावर पहाड़ों के शिखरों से वेग से धरती पर उतरती, ढोक चट्टानों से लड़ियाती, साफ-शफ्फाक गंगा प्रकट हुई और तट के उथले पानी में जी भर भीगती प्रभा के शब्द कानों में गूँजने लगे, 'आह! कितनी शीतल, कितनी पारदर्शी है गंगा! तन-मन के सारे ताप हर लेती है। मेरा मन करता है कि कुछ वक्त यहीं पर गुजारूँ!'

सुरेंद्रजी क्या स्वप्न देख रहे थे, दिवास्वप्न?

'तुम्हारे बच्चे तुम्हें गंगा के पास ले आए, प्रभा!'

सुरेंद्रजी ने गंगा के विशाल पाट को देखा, मन-ही-मन कहा, 'थोड़ा रूप बदला है, समय तो अपना रंग दिखाता है न, पर गंगा वही है, तन-मन के ताप हरनेवाली तुम्हारी गंगा!

सा|अ

हाउस नं.-३०२०
सेक्टर-२३, गुड़गाँव-१२२०१७
दूरभाष : ०९८१०६२९९५०







भुल्लन चाचा इंडिया गेट पर

• प्रकाश मनु

भुल्लन चाचा को अभी दिल्ली आए कुछ ही दिन हुए थे। यहाँ की सरोजिनी विहार कॉलोनी में वे निक्का के साथ दो-चार दिन इधर-उधर टहले और घूमे भी थे। प्राण भैया के घर के पासवाले एक बड़े से पार्क, जिसे बच्चे 'झूला पार्क' पुकारते हैं, में भी उनका कभी-कभार जाना शुरू हो गया था। पर दिल्ली अब भी उनके लिए अनजानी ही थी।

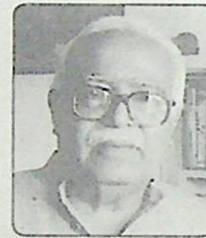
गाँव से कितनी हसरत लेकर आए थे कि भैया-भाभी, निक्का और गौरी के साथ जमकर दिल्ली देखेंगे। ये देखेंगे, वो देखेंगे, वो-वो देखेंगे। पर भैया की व्यस्तता का हाल देखा तो कुछ कहते ही न बनता था। हाँ, निक्का के साथ घूमने में उन्हें जरूर मजा आने लगा था। निक्का उनसे कोई चार-पाँच बरस छोटा था, पर दिल्ली को तो उनसे कहीं अच्छी तरह जानता ही था। और था भी दिलखुश। हर वक्त चहकता-खिलखिलाता रहता था। फिर उसके साथ भुल्लन चाचा भी क्यों न चहकते?

एक दिन की बात है। भुल्लन चाचा निक्का और अड़ोस-पड़ोस के उसके दोस्तों के बीच घिरे बैठे थे। बातें, और बातें, और बातें चल रही थीं। भुल्लन चाचा भी थोड़े दिल्ली के रंग-ढंग से परच गए थे। सो अब खूब चहक रहे थे। बीच-बीच में गाँव के दो-चार देसी लतीफे भी उन्होंने सुनाए और सबका दिल खुश कर दिया।

इसी बीच दिल्ली के दर्शनीय स्थलों की चर्चा चल पड़ी। तभी अचानक पड़ोस के नटखट आशु ने पूछ लिया, "अरे भुल्लन चाचा! आप दिल्ली आ तो गए, पर कभी इंडिया गेट भी घूमने गए हो या नहीं?"

सुनते ही भुल्लन चाचा चौंके, "इंडिया गेट···?" उनका चेहरा उतर गया। अब कैसे बताएँ कि इंडिया गेट तो क्या, उन्होंने दिल्ली का कोई गेट देखा ही नहीं। यहाँ तक कि इतने दिनों में दिल्ली का कोई दर्शनीय स्थल देखने घर से निकल ही नहीं पाए। कारण वही, भैया की व्यस्तता।

'लेकिन इंडिया गेट···! दिल्ली का इंडिया गेट···?' भुल्लन चाचा ने थोड़ा माथा खुजाया तो यकायक उनके दिमाग का बल्ब जला। उन्हें याद आ गया कि उनकी पाँचवीं की हिंदी की किताब में दिल्ली पर एक



वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह प्रकाशित। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' विशेष उल्लेखनीय कृति। साहित्य अकादेमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती पुरस्कार' तथा हिंदी अकादेमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

कविता थी, जिसमें यह लाइन भी थी कि 'है बड़ी शान से खड़ा हुआ इंडिया गेट यह प्यारा!' उसी में दिल्ली के इंडिया गेट का चित्र था। उन्होंने देखा था, और उन्हें अच्छी तरह याद भी था।

पर इंडिया गेट क्या घूमने की जगह है, यानी···यानी···यानी··· भुल्लन चाचा थोड़े अचकचाए।

उन्हें उलझन में देखा तो आशु ने ही उससे उबारा। बोला, "अ… भुल्लन चाचा, वहाँ इतनी दूर-दूर से लोग आते हैं कि क्या कहने! … को तो अच्छा-खासा मेला लग जाता है। बस, यहाँ घूमो, वहाँ घूमो, खाओ-पियो और रंग-रंग की चीजें देखो। लोगों को खुश-खुश और चहकते हुए देखो। बड़ा अच्छा लगता है।···खासकर छोटे बच्चों की तो मौज ही रहती है। हाथों में रंग-बिरंगे गुब्बारे और बाजा लिये छन-छन छनकते हुए यहाँ-वहाँ घूमते हैं। उन्हें देख-देखकर सब खुश होते हैं।"

भुल्लन चाचा ने सोचा, 'अरे वाह, फिर तो कभी इंडिया गेट घूमने जाना चाहिए। बड़ा अच्छा है कि आशु ने बता दिया। ऐसे ही दुनिया-जहान की चीजों का पता चलता है।'

खुश होकर बोले, "ठीक है आशु, जाऊँगा।···जाऊँगा मैं भी क… देखूँगा, वहाँ का नजारा।"

"और क्या, जाओ भुल्लन चाचा···कभी जरूर जाओ। इन दिनों तो वहाँ खासा रौनक मेला लग जाता है। मैं पिछले हफ्ते गया था पापा के साथ। बड़ा मजा आया था। वहाँ खूब सारे खिलौने बिक रहे थे। बड़े ही अजब-गजब खिलौने। साथ ही बड़े-बड़े रंगीन गुब्बारे, और तरह-तरह के बाजे भी। खूब बढ़िया-बढ़िया रंग-बिरंगी कैप भी मिल रही थीं। कुछ भालू, कुछ मंकी जैसी। और एक तो बिल्कुल जोकरवाली कैप। खूब लंबी सी। ऊपर फुँदने। उसे देखके ही मेरी तो हँसी छूट गई।···बच्चे वहाँ एक-से-एक विचित्र कैप लगाकर तुन-तुन बाजा बजाते हुए घूमते हैं तो बहुत मजा आता है। और···और हाँ···!" बात अधूरी छोड़कर आशु हँसने लगा।

"और क्या बता रहे हो तुम?" भुल्लन चाचा की उत्सुकता थम नहीं रही थी।

"और भुल्लन चाचा, जब हम गए थे, तब तो ना, वहाँ एक प्यारा सा हाथी भी था। खूब बड़ी सी सूँड़वाला अप्पू हाथी। वह हँस-हँसकर सारे बच्चों से हाथ मिला रहा था। बच्चे इसके साथ फोटो खिंचवा रहे थे। मैंने भी खिंचवाया। सच्ची, बड़ा मजा आया!" आशु ने बताया।

"अरे वाह, अप्पू हाथी···! बहुत रोबदार होगा वह तो?" भुल्लन चाचा की आँखों में कौतुक था।



"अरे, ऐसा रोबदार कि मजा आ गया···! वह हाथी असल में क्या है, एक लड़का ही तो है, जो अप्पू हाथी का मुखौटा पहने हुए है। नीचे पैंट, जूते, चम-चम करते। पर जब वो अप्पू हाथी बनता है न, तो हमेशा हँसता ही रहता है, हा-हा-हा···! और उसे देखकर बच्चे भी हा-हा-हा करके हँसते हैं। बड़ा मजा आता है।···फिर वहाँ खाने-पीने की इतनी दुकानें, ऐसे-ऐसे चाट, दही-भल्ले के ठेले और गोलगप्पेवाले कि मुँह में पानी भर आता है। और हाँ, खूब रोशनी भी होती है, खूब झलर-मलर रोशनी। सच्ची, बड़ा मजा आता है। लगता है, घर जाएँ ही नहीं, रात यहीं काट दें।"

बस, अब तो भुल्लन चाचा के लिए खुद को रोक पाना मुश्किल था। उन्होंने तय कर लिया कि जाना है। एक बार तो इंडिया गेट पर जाना ही है। देखें तो, वहाँ दुनिया आती किसलिए है?

□

उसी शाम भुल्लन चाचा ने निक्का और गौरी से बात की। सुनकर निक्का तो उछल ही पड़ा। बोला, "चलो चाचा, चलो। अभी चलो!"

गौरी भी खुश थी और खूब चहक रही थी, 'अरे वाह, इंडिया गेट देखेंगे! वहाँ एक नई दुनिया देखने को मिलेगी···दुनिया का नया रंग-ढंग!'

और फिर जोश और उत्साह में फटाफट इंडिया गेट जाने का प्रोग्राम बन गया।

भुल्लन चाचा ने निक्का व गौरी को साथ लिया और पूरे जोर-शोर से घर में ऐलान कर दिया, "जा रहे हैं भाभी, जरा हम लोग इंडिया गेट जा रहे हैं।···थोड़ा देर हो जाए तो आप घबराना मत, भाभी। काये से, कि इंडिया गेट पर तो शाम को ही मेला लगता है, जो देर रात तक चलता है।···और फिर, मैं तो हूँ ही ना साथ में, तो फिर चिंता काहे बात की?"

"हाँ-हाँ, सो तो ठीक है भैया।···पर देखो, देर मत करना भुल्लन। काये से, कि कल बच्चों को स्कूल भी जाना है।" भाभी ने हँसते हुए अपने ठेठ गँवई देवर की नकल की।

इस पर भुल्लन चाचा ही नहीं, गौरी दीदी की और निक्का की भी खूब हँसी छूटी। हँसते-हँसते ही वे बस स्टॉप पर भी जा पहुँचे।

इंडिया गेट वाली बस में बैठे तो कोई आधे घंटे के भीतर यहाँ-वहाँ चक्कर काटने के बाद कंडक्टर ने उन्हें इंडिया गेट के सामनेवाले बस स्टॉप पर उतार दिया। बोला, "यही है इंडिया गेट, उतरो जल्दी!"

पहले तो भुल्लन चाचा को समझ में ही नहीं आया कि अरे भैया, यहाँ सड़क पर कहाँ है इंडिया गेट? पर जब मुड़कर पार्क की ओर नजर डाली और फिर उनकी निगाह पार्क के बीचोबीच बड़ी शान से खड़े इंडिया गेट पर गई, तो समझ में आ गया माजरा, "अरे, वह तो रहा इंडिया गेट। किताबों में कितनी बार तो देखा और पढ़ा है इसके बारे में। आज सच्ची-मुच्ची देख लिया!"

इंडिया गेट पर घूमते हुए भुल्लन चाचा को सचमुच अच्छा लग रहा था। एक रंग-बिरंगी दुनिया उनके चारों ओर बिखरी हुई थी। और हँसी-खुशी, मुसकानें···! खिले-खिले चेहरे। बच्चे-बड़े, स्त्री-पुरुष सब। देखकर उनका मन खुश हो गया।

पर इस सबके बीच अचानक भुल्लन चाचा पर अपना कमाल दिखाने का खब्त सवार हो जाएगा, यह कोई नहीं जानता था। खुद भुल्लन चाचा भी नहीं।

पर हुआ ऐसा ही। और हुआ भी कुछ ऐसे ढंग से कि आसपास खड़े सारे लोग चौंके। वे बड़ी अजीब निगाहों से भुल्लन चाचा की ओर देख रहे थे।···लेकिन ऐसे मौकों पर भुल्लन चाचा को दीन-दुनिया का कुछ होश ही कहाँ रहता है! वे पूरी तरह अपने आप में खो जाते हैं। और वही यहाँ भी हुआ।···

यानी भुल्लन चाचा देखते-ही-देखते अपने पूरे रंग में आ गए। फिर कुछ-न-कुछ तो होना ही था।

□

असल में भुल्लन चाचा निक्का और गौरी के साथ यहाँ-वहाँ घूमते हुए, एक जगह खड़े होकर एक बड़े से गुब्बारे का कमाल देख रहे थे। वह इतना विशाल था कि देखने पर जादुई गुब्बारा लगता था। वह कभी ऊपर जाता, कभी नीचे, कभी बीच हवा में गोते खाने लगता। उस पर जोकरनुमा टोपी पहने हँसते हुए बच्चों के चित्र छपे थे। बीच में लाल चोगा पहने एक जोकर भी। देखकर सब हँस रहे थे।

गुब्बारेवाला भी खुश था। इस बहाने उसके बहुत से गुब्बारे बिक रहे थे। सौ रुपए का था एक विशाल गुब्बारा, पर उसे लेने के लिए लोग टूटे पड़ रहे थे।

भुल्लन चाचा टकटकी लगाए इसी जादुई गुब्बारे का कमाल देख रहे थे कि अचानक उनका ध्यान मैली सी साड़ी पहने एक गरीब स्त्री पर गया। काले रंग की एक दुबली सी स्त्री। गोदी में लाल झग्गा पहने एक बच्चा। दुबला, कमजोर। कुछ बीमार सा। वह स्त्री छोटे-छोटे सात रंगीन गुब्बारों का एक गुच्छा बेच रही थी, "पाँच रुपए में ले लो बाबू साब, पाँच रुपए में···सतरंगी गुब्बारे। आपके बच्चे खेलेंगे। नाती-पोते खेलेंगे। खूब खुश होंगे। ले लो बाबू साहब···ले लो मेम साहब!" वह अपनी पतली, करुण सी आवाज में जैसे मिन्नतें कर रही थी।

गोदी में बच्चा बीच-बीच में रोने लगता। इस पर वह स्त्री और भी परेशान हो जाती। एक हाथ से बच्चे को थपकियाँ देती, दूसरे हाथ में गुब्बारे लिये और भी करुण आवाज में गुहार लगाती, "ले लो जी, ले लो, गुब्बारे ले लो···रंग-बिरंगे गुब्बारे ले लो। आपके बच्चे खेलेंगे, खूब खुश होंगे···ले लो जी, ले लो···!"

यहाँ तक आते-आते उसकी आवाज रोने-रोने को हो उठती। जैसे कह रही हो, "अगर गुब्बारे नहीं बिके तो मेरा बच्चा भूखा मर जाएगा, बाबूजी। ले लो, ले लो ये गुब्बारे, ले लो···!"

उसके गुब्बारे नहीं बिक रहे थे। जबकि दूसरी औरतें, जो गुब्बारे बेच रही थीं, थोड़े अच्छे कपड़ों में थीं। चेहरे पर खिली-खिली सी मुसकान। शायद इसी का जादू था कि उनके गुब्बारे खूब बिक रहे थे।

यहाँ-वहाँ घूमते वह गरीब औरत भुल्लन चाचा के पास आकर खड़ी हो गई। बड़ी दीनता से बोली, "भैयाजी, इन छोटे बच्चों के लिए ले लो, ये सात रंग के गुब्बारे। पाँच रुपए के सात गुब्बारे। आप ले लोगे तो दो रोटी का इंतजाम हो जाएगा।···"

सुनकर भुल्लन चाचा का दिल पिघल गया। उन्होंने पूछा, "अब तक तुम्हारे कितने बिक गए गुब्बारे?"

"बस, दो ही बिके हैं, बाबूजी।" उस औरत ने थोड़ी मायूसी से बताया। साथ ही अपनी मजबूरी भी बताई, "बच्चा बीमार है। इसकी दवा भी लानी है, बाबूजी।"

"तो ठीक है। लाओ, दे दो।" भुल्लन चाचा ने गुब्बारों का एक गुच्छा खरीदा और पाँच रुपए दे दिए। वह गुच्छा निक्का के हाथ में पकड़ा दिया।

पर निक्का ने देखा, भुल्लन चाचा कुछ उदास से हैं। साथ ही लगा कि जैसे वे किसी उधेड़बुन में हैं और मन-ही-मन कुछ सोच रहे हैं।

अचानक भुल्लन चाचा ने उस गुब्बारेवाली स्त्री को बुलाया और उसके पास आने पर बोले, "सुनो, तुम्हारा नाम क्या है?"

"रामंती, बाबूजी।" उस स्त्री ने बताया।

"रामंती, मैं तुम्हारे गुब्बारे बेच दूँ?" भूल्लन चाचा ने पूछा।

"आप···आप बेचोगे बाबूजी?" रामंती हैरत में थी। उसे बिल्कुल समझ में नहीं आया कि भुल्लन क्या कहना चाहते हैं? कहीं यह मजाक तो नहीं कर रहे। या कहीं ऐसा तो नहीं कि ये गुब्बारे बेचें और फिर सा पैसे लेकर रफू-चक्कर ही हो जाएँ!

"क्यों, झटपट बेच दूँगा।···फिर पैसे हो जाएँ तो दवा ले आना।" भुल्लन चाचा ने बड़ी सहानुभूति से कहा।

अब गुब्बारे बेचनेवाली रामंती को यकीन हो गया कि यह लड़क कुछ अलग है। पर उसकी आँखों में असमंजस अब भी था, "ठीक है बाबूजी, पर आप···?"

उसे लगता था कि गुब्बारे बेचना तो गरीब-गुरबा लोगों का पेश है। तो फिर ढंग के कपड़े पहने हुए कोई पढ़ा-लिखा और भले घर क लड़का गुब्बारे बेचे, यह भला कैसे हो सकता है?

फिर भी भुल्लन चाचा की बातों में कुछ था कि उसे यकीन हो गया कुछ देर वह भुल्लन चाचा के चेहरे पर टकटकी लगाए देखती रही। फि बोली, "ये तो कुल बीस हैं, भैया। बाकी मैं उधर रख आई हूँ।"

"वो कितने होंगे?" भुल्लन चाचा ने पूछा।

"सारे मिलाकर सौ होंगे शायद···!" रामंती ने कहा।

"ले आओ, मैं सारे बेचकर अभी आधे घंटे में पैसे तुम्हें देता हूँ।" भुल्लन चाचा ने पूरे आत्मविश्वास से भरकर कहा।

रामंती ने ऐसा अपने जीवन में तो नहीं देखा था। पर जाने कैसे उ यकीन हो गया था कि यह लड़का झूठ नहीं बोल रहा। कुछ-न-कु अलग बात है इसमें जरूर।

उसके चेहरे पर पहली बार उम्मीद की एक किरण चमकी। आँखे में खुशी के छोटे-छोटे दीये झलमलाए। वह झटपट गई और पाँच मिन में अलग रखे गुब्बारे भी ले आई। भुल्लन चाचा प्यार से बोले, "रामंत बहन, तुम यहीं बैठो इन बच्चों के साथ। मैं अभी आया।···बाकी के गुब्बारे भी अपने पास रखो। मैं आ-आकर लेता रहूँगा।"

फिर निक्का और गौरी की ओर मुड़कर बोले, "सुनो निक्का गौरी! तुम लोग यहीं रहना। यहाँ से कहीं जाना मत। बस, मैं जरा सी दे में रामंती बहन के ये गुब्बारे बेचकर अभी आया। फिर यहाँ से और भ गुब्बारे ले जाऊँगा।"

"पर···पर भुल्लन चाचा आप···?" गौरी पता नहीं क्या कहन चाहती थी। उसे अंदर-ही-अंदर कुछ डर लग रहा था।

"अरे गौरी, रामंती मौसी हैं न, यह तुम्हारा खयाल रखेंगी। मैं ब गया और झटपट आया।" भुल्लन चाचा जैसे किसी लहर पर सवार थे

रामंती ने सुना तो उसकी आँखें भीग गईं।

☐

यों भुल्लन चाचा का यह नया रूप निक्का और गौरी को भी अच्छ लग रहा था। फिर भी वे जाने लगे तो निक्का ने जोर से पुकारकर कह "भुल्लन चाचा, आप दूर नहीं जाना, पास ही···!"

"हाँ-हाँ, ज्यादा दूर नहीं, आसपास ही घूमूँगा। तुम बिल्कुल चि मत करना। एक आवाज दोगे तो मैं दौड़कर आ जाऊँगा।" भुल्लन चा बड़े इत्मीनान से मुसकराए।

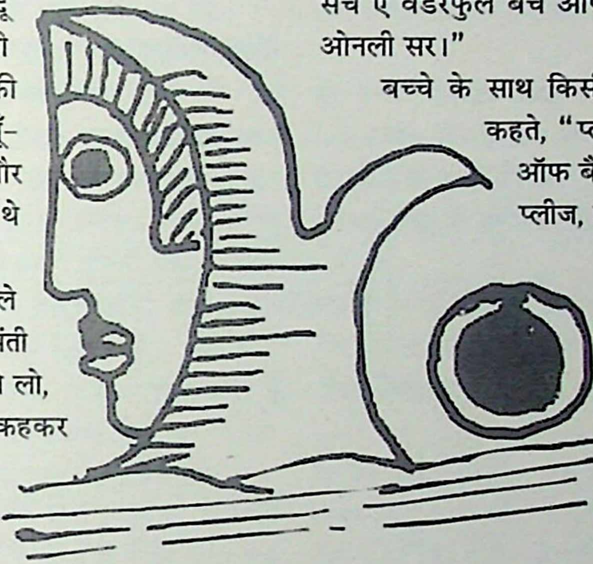
और फिर भुल्लन चाचा का वही जाना-पहचाना तरीका। उन्

झटपट अपनी पसंदीदा एक सुंदर सी जोकर छाप टोपी खरीदी। तूँ-तूँ-तूँ बाजा खरीदा। फिर गले में खूब सारे सतरंगे गुब्बारों के गुच्छे लटकाए, और अपने इस विचित्र मनमोहक रूप में तूँ-तूँ-तूँ बाजा बजाते चल पड़े।

और बस, देखते-ही-देखते जैसे जादू हो गया।

लोगों ने समझा कि सच्ची-मुच्ची कोई जादूगर आ गया। कुछ रोज पहले जादूगर शंकर ने यहीं अपने जादू का कमाल दिखाया था। फिर उन्होंने हँसते-हँसते लोगों से कहा था, 'अभी आपने मेरे गुरु जग्गी घोष के जादू के कारनामे नहीं देखे। देखते तो हँसते-हँसते बेहोश हो जाते!'

लोगों ने सोचा, 'आहा, यह तो अवश्य ही जादूगर शंकर के उस्ताद जग्गी घोष दादा प्रकट हो गए हैं और अपनी मनमोहक अदाओं से रिझा रहे हैं।' लिहाजा वे दौड़-दौड़कर भुल्लन चाचा के आसपास घिर आए। इतने विशाल इंडिया गेट पर जैसे उनका जादू चल गया हो। हर किसी की निगाहें उनकी ओर घूम गई थीं। उनके शानदार बाजे की 'तूँ-तूँ''तूँ-तूँ' के साथ ही लोग मुँह से 'तूँ-तूँ''तूँ-तूँ-तूँ''' बोल रहे थे, नाच रहे थे और खुश होकर भुल्लन चाचा की ओर देख रहे थे कि वे अगला क्या कारनामा करनेवाले हैं।



और भुल्लन चाचा''' ? वे तो बड़े सुरीले ढंग से गाना गाते हुए, अपनी गरीब रामंती बहन के गुब्बारे बेच रहे थे। "ले लो जी, ले लो, जादूवाले गुब्बारे, हाँ जी, प्यारे गुब्बारे''' !" कहकर मजे में बाँहें फैलाए, दाएँ-बाएँ घूमते हुए, वे झूम से रहे थे। बीच-बीच में अजब ढंग से गरदन नचाते, होंठ फड़काते, यहाँ-वहाँ नजरें घुमाते हुए वे बिल्कुल सरकस के जोकर की तरह हाव-भाव बनाकर लोगों के पास जाते और पुकार लगाते—

अजी, अजी हाँ, ये गुब्बारे,
ओहो, ओहो, ये गुब्बारे''
जादूगर दादा लाए हैं
कलकत्ता से ये गुब्बारे,
इंद्रधनुष ये इतने सारे
सात रंग के प्यारे-प्यारे,
ले लो, ले लो जी गुब्बारे,
पाँच रुपए में ले लो, ले लो—
सात-सात बढ़िया गुब्बारे
ले लो, ले लो, ले लो सारे''
ओहो, ओहो ये गुब्बारे'' !
जादूवाले ये गुब्बारे'' !!

उन्होंने देखते-ही-देखते एक खूबसूरत कविता बना ली थी। और पता नहीं कि यह उनके गाने का कमाल था या कि उनकी अलबेली मस्ती का, देखते-ही-देखते गुब्बारे बिक रहे थे, बिकते जा रहे थे!

लोग दौड़-दौड़कर आते और हाथों में पैसे लिये पुकार लगाते, "दादा, हमें भी दो, हमें भी''हमें भी''' ! हमें पहले देना दादा, हमें पूरे चार गुच्छे''हमें पाँच''' !!"

बिल्कुल मामूली लोग हों या पैसेवाले, सब देखते-ही-देखते भुल्लन चाचा के दीवाने हो चुके थे। हालाँकि इस वक्त वे भुल्लन चाचा नहीं, जादूगर दादा बने हुए थे और अपनी मोहिनी से उन्होंने सचमुच सब पर जादू डाल दिया था।

फिर भुल्लन चाचा सुर बदलने में भी उस्ताद थे। सो किसी पढ़े-लिखे आदमी को देखते, तो पूरे पक्के अंग्रेजीदाँ हो जाते। हर किसी के पास जाकर मुसकराते हुए कहते, "फाइव रुपीज ओनली।'''सर, यु सी, सच ए वंडरफुल बंच ऑफ बैलून्स!! ओनली, ओनली, फाइव रुपीज ओनली सर।"

बच्चे के साथ किसी सजी-धजी माँ को देखते तो मुसकराकर कहते, "प्लीज मैम, प्लीज''' ! सी दिस ब्यूटीफुल बंच ऑफ बैलून्स, विच इज लाइक ए कलरफुल मैजिक। प्लीज, हैव वन फॉर योर बेबी, वॉण्ट यू?"

और सचमुच उनकी बातों का जादू जैसा असर होता। गुब्बारे खूब धड़ाधड़ बिकते जा रहे थे, और वे बार-बार रामंती के पास जाकर और गुब्बारे ले आते।'''

अब तक लोगों की अच्छी-खासी भीड़ उनके आसपास जमा हो गई थी। वे सबसे खूब हँस-हँसकर बात करते, और फिर गुब्बारों का गुच्छा आगे बढ़ा देते। लड़कियों, औरतों को देखते, तो किसी को दीदी कहकर बुलाते, किसी को बहनजी, और किसी को आंटी। शानदार साड़ी पहने एक मोटी सी आंटी उत्सुकता से पास आई तो वे बोले, "आंटी, ले लो ना प्लीज। मैं किसी की हेल्प के लिए कर रहा हूँ।'''इट वुड हेल्प अ पुअर लेडी। उस गरीब औरत का बच्चा बीमार है!"

आंटी बोलीं, "ओह, तभी तो''' ! तुम गुब्बारे बेचनेवाले तो नहीं लगते?"

"जिस लेडी के ये गुब्बारे हैं, उसको पैसों की जरूरत है, इसलिए मैं ये बेच रहा हूँ।"

इस पर वह आंटी पिघल गई, "अरे-अरे, ऐसी बात है तो, चलो दो दे दे। एक मैं किसी को दे दूँगी।"

और सचमुच आधे घंटे के भीतर कोई सौ गुब्बारे बेचकर भुल्लन चाचा ने पाँच सौ रुपए रामंती के हाथ में रखे, तो उसकी आँखें गीली थीं। उसने भुल्लन चाचा को भरपूर असीसें दीं। निक्का और गौरी के सिर पर भी बार-बार हाथ फेरा। बोली, "तुम लोग खुशकिस्मत हो। ऐसे प्यारे-प्यारे भुल्लन चाचा तुम्हें मिले हैं। लाखों में एक!"

भुल्लन चाचा ने दस रुपए का नोट अपनी जेब से निकालकर

रामंती को देते हुए कहा, "ये भाई के हिस्से के दस रुपए भी उनमें जोड़ लो।" फिर बड़े मुलायम स्वर में बोले, "खाना खा लो और इसका ढंग से इलाज कराना, ठीक?"

गुब्बारे बेचनेवाली रामंती असीसें देती चली गई।...

□

अब निक्का और गौरी भुल्लन चाचा के साथ घूमने निकले। भुल्लन चाचा ने अपनी टोपी अभी तक नहीं उतारी थी। लिहाजा उन्हें दूर से ही देखकर लोग पास आ जाते। कुछ विदेशी भी उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे।

"वेयर इस योर बंच ऑफ बैलूंस विद कलरफुल मैजिक...? प्लीज गिव मी वन।" जर्मनी से आए एक खुशमिजाज पर्यटक विल्सन ने हँसते हुए कहा।

"ओह सर, नाउ दे आर फिनिश्ड...!" कहकर भुल्लन चाचा हाथ हिलाते हुए आगे बढ़ गए।

"पर...पर तुम बरा अच्छा लरका है। कभी जरमनी आना, तो मेरे घर पर भी। यह मेरा विजिटिंग कार्ड...इसमें पता है...मैं राइटर हूँ... विल्सन लोत्से...!" कहते हुए उसके चेहरे पर भुल्लन चाचा के लिए जो कोमल प्यार झलक रहा था, उसे देखकर भुल्लन चाचा ही नहीं, निक्का और गौरी के चेहरे भी खुशी से खिल गए।

जर्मनी के उस नेक और खुशदिल शख्स को धन्यवाद देकर भुल्लन चाचा आगे बढ़े, तो उनके होंठों पर किसी फिल्मी गाने की पंक्तियाँ थीं, "मेरा जूता है जापानी, यह पतलून इंगलिस्तानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी...!"

कुछ भी हो, उस दिन इंडिया गेट पर बस भुल्लन चाचा का ही जलवा था। हर कोई प्यार से उनसे मिल रहा था और उन्हें मिलनेवाले प्यार का एक हिस्सा निक्का और गौरी को भी मिल जाता था। सो उनकी खुशी का भी ठिकाना न था।

उसी का नतीजा है कि जब निक्का और गौरी ने भुल्लन चाचा के साथ एक चाटवाले से चाट खाई, तो उसने पैसे लेने से इनकार कर दिया। बोला, "हमने इतने अच्छे लोग पहली बार देखे हैं साब। हम आपसे पैसे लेंगे तो आत्मा कलपेगी।"

भुल्लन चाचा ने बहुत कहा, पर वह माना नहीं। बोला, "नहीं भाई, आप तो फरिश्ता हो। एक गरीब औरत की ऐसी मदद...!"

काफी देर तक भुल्लन चाचा के साथ निक्का और गौरी इंडिया गेट की धूमधाम का आनंद लेते रहे।

एक जगह बच्चों के गाने की प्रतियोगिता चल रही थी। भुल्लन चाचा के कहने पर निक्का और गौरी ने भी उसमें हिस्सा लिया। इसमें दोनों ने मिलकर वही गीत गा दिया, जिसे उन्होंने न जाने कितनी बार भुल्लन चाचा से सुना था, और उन्हें खूब अच्छी तरह याद भी हो गया था, 'मेरा जूता है जापानी, यह पतलून इंगलिस्तानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, पर दिल है हिंदुस्तानी...!'

गौरी उसे बहुत अच्छा गाती थी। निक्का ने भी पूरा साथ दिया, और फिर दोनों ने खूब रंग बाँध दिया। उनके साथ आसपास खड़े लोग भी तालियाँ बजाते हुए, साथ-साथ गा रहे थे।

और सचमुच निक्का और गौरी की जोड़ी को उस गाने पर एक सुंदर मैडल मिल गया। खुशी के मारे उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे।

□

"भुल्लन चाचा अब घर लौटें? मम्मी-पापा परेशान होंगे!" गौरी ने याद दिलाया।

भुल्लन चाचा भी अब लौटना ही चाहते थे कि सामने से दौड़ता हुआ अप्पू हाथी नजर आ गया। देखकर भुल्लन चाचा का जी खुश हो गया। बोले, "अरे वाह! अप्पू हाथी, देखो-देखो अप्पू हाथी...यही तो है अप्पू!"

इस पर गौरी दीदी तो इतनी खुश हो गई कि जोर-जोर से तालियाँ बजाने लगी, "अप्पू हाथी, अप्पू हाथी, मेरे साथी अप्पू हाथी!"

पर अप्पू हाथी पास आया तो पता चला कि वह तो हमें ही ढूँढ़ता हुआ दौड़ा चला आ रहा है। आते ही बोला, "अरे भुल्लन चाचा, भुल्लन चाचा, और निक्का, गौरी...! आप लोग अच्छे हैं, बहुत अच्छे। इसीलिए तो मैं आपको इतनी दूर से ढूँढ़ता हुआ, दौड़ा चला आया। मुझे रामंती दीदी ने सब बताया...सबकुछ। बताया कि एक भुल्लन चाचा हैं और उनके साथ दो बच्चे। वे तीनों बच्चे बिल्कुल फरिश्ते हैं।...तो मैं आपसे कैसे हाथ न मिलाता? मुझे किसी ने इशारा करके बताया कि वहाँ खड़े हैं और बस मैं दौड़ा चला आया!" कहकर उसने बड़े प्यार से पहले भुल्लन चाचा से हाथ मिलाया। फिर निक्का और गौरी से भी।

आश्चर्य! भुल्लन चाचा तो खुद ही अप्पू हाथी के इंतजार में थे। सोच रहे थे कि इंडिया गेट से घर लौटें, इससे पहले कम-से-कम एक बार अप्पू हाथी से हाथ तो मिलाना चाहिए। पर क्या पता था कि वह भी इस कदर बेसब्री से हमसे मिलने दौड़ा-दौड़ा चला आएगा!

देखकर भुल्लन चाचा की आँखें नम थीं, अप्पू हाथी की भी।

और फिर जब भुल्लन चाचा वहाँ से वापस जाने के लिए मुड़े, तो जाने क्या सोचकर अप्पू यकायक चिल्लाया, "रुकिए...रुकिए, रुकिए भुल्लन चाचा!"

उन्होंने हैरानी से देखा। भला अब क्या कहना चाहता है अप्पू हाथी? तब अचानक अप्पू मुसकराते हुए बोला, "आप...आप तीनों लोग प्लीज, थोड़ी देर के लिए सामने खड़े हो जाइए!"

और जब भुल्लन चाचा निक्का और गौरी के साथ खड़े हुए, तो उनके बिल्कुल ठीक सामने अप्पू खड़ा था। उसने बड़े आदर से सूँड़ उठाकर उन्हें सलामी दी। और जोर से कहा, "भुल्लन चाचा जिंदाबाद!"

"भुल्लन चाचा जिंदाबाद...!" गौरी और निक्का के मुँह से भी निकला। और वे वहाँ से चलने के लिए मुड़ते, इससे पहले ही एक और चमत्कार!

देखा तो एक फोटोग्राफर ने, जो कहीं आसपास ही था, 'क्लिक...!' करके यह शानदार तसवीर खींच ली थी। भुल्लन चाचा कुछ समझ पाते, इससे पहले ही वह बोला, "अगर आप लोग पाँच मिनट रुकें, तो अप्पू

के साथ अपनी यह तसवीर भी साथ लेते जाइए, प्लीज!"

और सचमुच पाँच मिनट में उसने तसवीर भुल्लन चाचा के हाथ में पकड़ा दी, जिसमें अप्पू हाथी सूँड़ उठाकर उन्हें सलामी दे रहा था।

भुल्लन चाचा ने खुश होकर फोटोग्राफर से कहा, "अंकल, कितने पैसे··· ?"

"नहीं, नहीं···!" वह हँसा, "आपसे पैसे कौन लेगा, हम समझ गए, आप तो कुछ अलग ही तरह के इनसान हैं। जिंदगी में बहुत लोग देखे, पर आप जैसा कोई नहीं!"

इतने में और भी गुब्बारे और खिलौने बेचनेवाले लोग वहाँ आ-आकर इकट्ठे हो गए। शायद रामंती ने बताया होगा। सभी प्यार से हाथ हिलाकर भुल्लन चाचा, निक्का और गौरी को विदा कर रहे थे।

□

उस दिन घर लौटे तो भुल्लन चाचा खुश थे, बहुत खुश! पर उनसे भी ज्यादा खुश थे निक्का और गौरी, जो लगातार चहक रहे थे। तीनों के सिर पर जोकर कैप देखकर मम्मी हँसीं, "लगता है, तुम तीनों किसी सरकस से चले आ रहे हो!"

"सरकस से नहीं, भाभी, इंडिया गेट से···यानी द ग्रेट इंडियन सरकस!" भुल्लन चाचा हँसे।

और उसी समय निक्का और गौरी ने भुल्लन चाचा को एक साथ सलामी देकर नारा लगाया, "भुल्लन चाचा जिंदाबाद, भुल्लन चाचा इज ग्रेट···!"

मम्मी-पापा को पता चला पूरा किस्सा तो उनके होंठों पर भी एक मीठी-मीठी हँसी छलक पड़ी, जिसमें भुल्लन चाचा के लिए एक छिपा हुआ प्यार था। सचमुच भुल्लन चाचा अब हमारे हीरो बन चुके थे।

सा अ

५४५, सेक्टर-२९, फरीदाबाद (हरियाणा)
पिन-१२१००८
दूरभाष : ०९८१०६०२३२७

संत दर्शन से लाभ

● दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

साधु-संतों का जब हम दर्शन करते हैं तो वे हमें कुछ व्रत नियम लेने की प्रेरणा देते हैं। एक बार एक गाँव में एक संत चातुर्मास हेतु आए। बहुत से लोग उनका व्याख्यान सुनने को पहुँचे। व्याख्यान बहुत रोचक और प्रभावशाली थे। महात्मा ने सबको कुछ नियम लेने को कहा। बहुत से भक्तों ने प्रतिदिन संत दर्शन का संकल्प लिया। एक सेठ पहली बार ही आया था। उसने कहा, "मैं संत दर्शन का नियम तो नहीं ले सकता हूँ, पर मेरे घर के पड़ोस में एक कुम्हार रहता है, उसके सिर के बाल उड़ गए हैं। मैं उसके सिर के दर्शन रोज करता हूँ, उसका नियम ले सकता हूँ।" संत ने कहा है, "ठीक है, उसका नियम ले लो। केवल एक ही शर्त है कि यह व्रत कभी खंडित नहीं होना चाहिए।" संत ने इस नियम की प्रतिज्ञा करा दी।

समय बीतने लगा। वह व्यक्ति प्रतिदिन प्रातः उठते ही कुम्हार के घर की तरफ झाँकता। उसका घर नीचे था। अतः उसका सिर दिखाई देता और उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जाती।

एक दिन कुम्हार चार बजे ही गधों को लेकर मिट्टी लाने के लिए तीन-चार मील दूर खदान पर चला गया। वह गहरे गड्ढे में उतरकर मिट्टी खोदने लगा। देवयोग से कुम्हार को मिट्टी खोदते हुए एक घड़े की नोक दिखाई दी। उसने थोड़ा और खोदा तो उसको घड़े में सोने की अशर्फियाँ नजर आईं। उसने सोचा, 'अब मेरी दरिद्रता धुल जाएगी।'

उसी समय कुम्हार का पड़ोसी अपने घर में उठा। उसने कुम्हार के घर की ओर झाँका, पर कुम्हार नजर नहीं आया। उसने कुम्हारिन से पूछा कि आज कुम्हार कहाँ चला गया? उसने कहा कि वे तो आज खदान में मिट्टी लाने चले गए और दोपहर तक लौटेंगे।

वह भक्त चक्कर में पड़ गया। उसकी बिस्तर से उठते ही चाय पीने की आदत थी। कुम्हार की प्रतीक्षा करना बहुत कठिन था। वह घोड़ा लेकर कुम्हार की खोज में निकला। इधर भक्त का खदान के पास जाना हुआ और उधर कुम्हार का घड़ा लेकर निकलना हुआ। भक्त ने उसका सिर देखकर कहा, "देख लिया, बस देख लिया।" कुम्हार ने सोचा कि भक्त ने मेरा घड़ा देख लिया है। उसने कहा, "रुको, रुको! शोर क्यों करते हो, आधा मेरा और आधा तुम्हारा।" सेठ फौरन समझ गया कि बात कुछ और है। पास गया तो उसको कुम्हार के पास घड़े में अशर्फियाँ नजर आईं। सेठ ने कहा, "ठीक है, यह बात किसी को बताना नहीं। हम दोनों माला-माल हो जाएँगे।" दोनों घर पर आए और उन्होंने अशर्फियाँ बाँट लीं।

दूसरे दिन वह सेठ संत के पास गया और कहा, "मुझे प्रतिदिन संत दर्शन के नियम करा दें।" संत के पूछने पर सेठ ने सारी घटना सुनाई। तात्पर्य है कि प्रतिदिन नियम लेने और उसका पालन करने से बहुत लाभ होता है।

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

स्त्रियों की बदलती स्थिति

• आरती मालवीय



लगभग चालीस वर्ष पूर्व लिया गया यह साक्षात्कार, जैसे आज लिया गया सा प्रतीत होता है। आज चालीस साल बाद भी स्थितियाँ ज्यों-की-त्यों हैं। स्त्रियाँ आज भी सताई जा रही हैं, बल्कि पहले से कहीं ज्यादा उनकी जिंदगी दूभर हो गई है। स्त्रियों को स्वाभिमान के साथ संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा देता यह संवाद प्रस्तुत कर रही हूँ— महादेवीजी (दादीजी) से एक बार साक्षात्कार के माध्यम से बातचीत।



इतने लंबे अरसे के साहित्यिक जीवन में स्त्रियों की समस्याओं के बारे में क्या सोचा ?

मेरे इस प्रश्न को सुनकर महादेवीजी एक क्षण के लिए एकदम खामोश हो गईं और उनके चेहरे से स्पष्ट रूप से एक दुःखी भाव झलकने लगा। बोलीं, "क्या करें भाई, हमने तो हमेशा नारी जागरण की बात सोची है, बापू भी मानते थे कि यदि महिलाएँ मेरे साथ स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित नहीं होतीं, तो देश को अभी अगले सौ वर्षों तक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी। यही कारण था कि परदे में रहनेवाली तमाम औरतें गांधीजी के आह्वान पर बाहर आईं, और इस स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया।

"एम.ए. पास करने के बाद मुझे विदेश जाने की छात्रवृत्ति मिली थी। और मैं बापू से यह पूछने गई कि जाऊँ या न जाऊँ। गांधीजी ने कहा, 'हमारी लड़ाई चल रही है और तू बाहर जाएगी ?' उन्होंने कहा, 'अपनी मात्र भाषा के माध्यम से अपनी गरीब बहनों को शिक्षा दो।' बापू के आदेश का पालन करते हुए एक पेड़ के नीचे कुछ बालिकाओं को एकत्र कर उन्हें पढ़ाना शुरू किया, तब कोई भी साधन नहीं था। बाद में विद्यापीठ का निर्माण हुआ और नारी शिक्षा में उसका कितना बड़ा योगदान रहा है। यह बात किसी से छिपी नहीं है। विदुषी विद्याविनोदनी, सरस्वती भर्ती, आदि उसकी परीक्षाएँ थीं, जिन्हें पास कर आज भी देश के कोने-कोने में नौकरी करती हुई महिलाएँ मिलती हैं। लड़कियों के पाठ्यक्रम में गृह विज्ञान की पढ़ाई, जिसमें गृहस्थ जीवन-संबंधी तमाम बातों को सिखाया जाता था। सबसे पहले विद्यापीठ के ही पाठ्यक्रम में हमने शुरू की थी, बाद में जिसका अनुसरण अन्यत्र हुआ। इसी प्रकार भाई सीताराम सेकसरिया, जो कि नारी जागरण के लिए जीवनपर्यंत प्रयत्नशील रहे और उन्होंने महिलाओं के विकास के लिए कलकत्ते में 'श्रीशिक्षायतन' नामक एक बहुत बड़ा शिक्षा संस्थान खोला, जो आज भी अपनी पूरी गरिमा के साथ चल रहा है। इसी प्रकार प्रसूत गृह के रूप में श्री सदन नामक संस्था भी उन्होंने खोली थी। शृंखला की कड़ियाँ, जो कि सन् '४२ में प्रकाशित हुई, में भी मैंने नारी विषयक समस्याओं को लेकर ही लेख लिखे थे। 'चाँद' पत्रिका के संपादन काल में भी संपादकीय लेखों में मैं निरंतर नारी जागरण, उत्थान, उसकी समस्याओं, समाधान के बारे में लिखती रही हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि नारी जीवन को लेकर मैं प्रारंभ से ही चिंतित रही हूँ और आज भी अपने जीवन की इस सांध्य वेला में भी आश्वस्त नहीं हो सकी हूँ।"

भारतीय नारी मुक्ति आंदोलन के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं ?

महादेवीजी इतनी बात कहने के बाद भी सहज नहीं हो पाई थीं कि मेरे इस प्रश्न ने उन्हें जैसे बहुत दूर अतीत में लौटा दिया और बहुत ही गंभीर होकर बोलीं कि भाई, अब तो आंदोलनों का ही युग आ गया है। फैशन की तरह अब हमने बाल वर्ष, महिला वर्ष, विकलांग वर्ष, युवा वर्ष आदि मनाने शुरू कर दिए हैं और ये सारे आंदोलन अखबार, रेडियो, टी.वी. आदि के प्रचार रूप में ही होकर समाप्त ही जाते हैं। नारी मुक्ति आंदोलन विशेष रूप महिला दशक, जो कि समाप्त भी ही गया, लेकिन उसके अंतर्गत कोई उपलब्धि मुझे नहीं दिखी। ऐसा नहीं लगा कि इस महिला दशक के पूर्व की महिला और दशक के बाद की महिला में कोई विशेष अंतर आया हो। नारी-मुक्ति के आंदोलन का नारा अवश्य खूब प्रचारित हुआ, किंतु मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता से पहले नारी जागरण के क्षेत्र में हम लोग अधिक मुक्त थे।

तब के नारी-मुक्ति आंदोलन और मौजूदा मुक्त नारी आंदोलन में जो बुनियादी अंतर आया हो, कृपया उसे बताने का कष्ट करें।

मुझे ऐसा लगता है कि तब हम लोगों की मुक्ति का आंदोलन भीतर

से था और आज नारी ऊपर से मुक्त होना चाहती है। दरजी के सिले हुए कपड़ों की भाँति नारी-आंदोलन भी फैशन की वस्तु हो गया है और उसी में वह अपने को मुक्त मानती है। पहले जब हम लोग शराब की दुकानों में जाकर धरना (picketing) करते थे तो अच्छे-अच्छे पीनेवालों के होश भी गायब हो जाते थे। और आज की लड़की ऐसी वेशभूषा पहनकर, बन-ठनकर चलती है कि बिना पीए हुए लोगों को भी नशा आ जाता है, मानो मानसिक रूप से उसे मुक्ति नहीं मिली।

शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों का क्या दायित्व रहा? समाज और सरकार ने किस हद तक प्रोत्साहित किया है?

चूँकि हमारी पूरी शिक्षानीति ही अंग्रेजों की बनाई हुई शिक्षा-पद्धति पर ही चल रही है, अत: महिलाओं के लिए कुछ विशेष होने की बात क्या कही जाए। स्वतंत्र होने के बाद हमें अपनी भाषा, संस्कृति, कला, मूल्य, दर्शन आदि को विशेष महत्त्व देते हुए शिक्षा-पद्धति बनानी चाहिए थी, किंतु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो सका। मैं इसके लिए बार-बार अधिकारियों से लड़ती रही हूँ, किंतु उन लोगों ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। परिणामत: आज जैसी मूल्यहीन शिक्षा है, उसी का परिणाम है कि आज के युवक-युवतियों में कोई आस्था, विश्वास, नैतिकता, धर्म के दर्शन ही नहीं मिलते। स्वतंत्रता-प्राप्ति के इतने दिनों बाद भी अभी तक हम अपनी भाषा की समस्या को भी नहीं सुलझा सके, इससे बड़ी दुर्भाग्य की बात और क्या होगी कि राष्ट्र के पास वाणी ही नहीं है, अर्थात् राष्ट्र गूँगा है। अभी तक हिंदी के विरोध में अंग्रेजी थी और अब तो शासन ने उर्दू को भी उसके समकक्ष लाकर एक नई समस्या पैदा कर दी। चूँकि हमारे यहाँ इस प्रकार की कोई सामाजिक जागृति चेतना है ही नहीं, अत: सरकार जो भी करती है, उसका विरोध जिस व्यापक धरातल पर होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। अत: समाज की ओर से बहुत कुछ होने की संभावना नहीं है और सरकार करना ही नहीं चाहती।

मेरा यह मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में वैसा कुछ नहीं हुआ, जो किसी भी स्वतंत्र देश की शिक्षा के लिए होना चाहिए। अब सुन रही हूँ कि कुछ नई शिक्षा नीति सरकार ने बनाई है, लेकिन अभी तक उसका पूरा स्वरूप में समझ नहीं सकी। इसी बीच कुछ महिलाएँ निश्चित रूप से विभिन्न क्षत्रों में अपनी पूरी प्रतिभा के साथ आई हैं और विभिन्न क्षेत्रों में कार्य भी किया है, और पुरुषों से अच्छा कार्य किया है। लेकिन ऐसा नहीं है कि उन्हें कोई विशेष शिक्षा दी गई हो। हमारे यहाँ प्राचीन काल में मातृसत्तात्मक परंपरा रही है, इसीलिए वंशकुल भी माता के नाम से चलते थे, जैसे कुंती से कौंतेय, मैत्री से मैत्रेय, गार्गी से गार्गेय आदि उस युग की अनेक महिलाओं के नाम गिनाए जा सकते हैं, जो हर क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष थीं। बाद में धीरे-धीरे हमारे यहाँ पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था हुई और नारीशक्ति कमजोर हुई, जो कि आज तक है। और जैसी स्थितियाँ हैं, उससे अभी कोई सुधार होने की आशा नहीं लग रही है।

पिछले कुछ वर्षों से दहेज को लेकर न जाने कितनी महिलाओं की हत्या हुई है। पुरुष जाति की इस नृशंसता के बारे में आपका क्या कहना है?

मेरे इस प्रश्न को सुनकर महादेवीजी उत्तेजित सी हो गईं और साफ दिखाई दे रहा था कि दहेज को लेकर महिलाओं की हत्या के लिए उनके मन में कितना क्रोध है। थोड़ी देर रुककर सामान्य होने की चेष्टा करते हुए बोलीं, "मुझे ऐसा लगता है कि दहेज के पीछे हो रही हत्याओं में केवल पुरुष ही नहीं, महिलाओं का भी हाथ होता है। क्योंकि प्राय: सुनने में आता है कि कभी लड़के की माँ, कभी बहन भी उसमें सम्मिलित रहती हैं। फिर भी सबसे अधिक दोषी मैं उस लड़के को ही मानती हूँ, जो अग्नि को साक्षी बनाकर हर प्रकार से पत्नी की सुरक्षा करने का वचन देकर ले आता है और फिर उसकी रक्षा नहीं करता। परिवार के अन्य लोगों के संबंध उस लड़की से वैसे नहीं हो सकते, जिस भावनात्मक स्तर पर पति का होता है। कभी-कभी तो लगता है कि आज समाज अर्थ पिशाच हो गया है, उसे मात्र पैसा चाहिए। सुनने में तो यहाँ तक आता है कि कुछ लोगों ने ब्याह को व्यापार बना लिया है। एक ब्याह हुआ, लाखों दहेज लिया और फिर पत्नी को मार डाला और दूसरा ब्याह किया। इस प्रकार कुछ लोगों ने चार-चार ब्याह किए हैं। (महादेवीजी जब यह बात कह रही थीं तो उनके चेहरे से कुछ इस प्रकार के भाव उभरकर आ रहे थे कि जैसे ऐसे व्यक्तियों को समाज द्वारा ऐसी सजा मिलनी चाहिए कि दूसरा व्यक्ति ऐसी नृशंसता का कभी साहस ही न कर सके।) विचित्र समाज में हम लोग जी रहे हैं। मैं तो लड़कियों से कहती हूँ कि नीलामी पर चढ़े लड़कों के साथ, जिनकी बोलियाँ चीजों की तरह लग रही हैं, तुम लोग शादी मत करो।

लड़कियों में इस तरह की जागृति आनी बहुत ही आवश्यक है, तभी कुछ हो सकता है। शुरू में कुछ कठिनाइयाँ आएँगी अवश्य, किंतु धीरे-धीरे उनका भी संगठन इतना समर्थ हो जाएगा कि ऐसी समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी। हमारे यहाँ पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी दया की पात्र बनकर रह जाती हैं। मैं तो कहती हूँ कि अन्याय का प्रतिकार करो और अपने में वह शक्ति, ऐसी ज्वाला लाओ, ताकि पुरुष की नृशंसता को भस्म कर सको। हमारे यहाँ नारी शक्ति की महिमा अद्भुत थी, यही कारण है कि विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती हुईं, धन की लक्ष्मी और शक्ति की सिंहवाहिनी दुर्गा। इस प्रकार विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, ओज शक्ति सभी रूपों में नारी को स्थान मिला। आज समय आ गया है, जब उसे पुन: अपनी शक्ति को जगाना है और अपने को स्थापित करना है।

महिला समाज के भविष्य के बारे में आपका क्या कहना है?

मेरे इस प्रश्न को सुनकर महादेवीजी थोड़ी उत्साहित होती हुई बोलीं कि हम निराशावादी व्यक्ति नहीं हैं। स्थितियाँ इस समय अनुकूल नहीं हैं, फिर भी हमारा दृढ़ विश्वास है कि एक-न-एक दिन अवश्य ऐसा आएगा, जब नारी स्वत: अपनी शक्ति को पहचान सकेगी और तब पुरुष वर्ग द्वारा भी उसे पूर्णरूपेण सम्मान प्राप्त होगा। धीरे-धीरे महिलाएँ हर क्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं और कई स्थानों पर तो पुरुषों से अच्छा कार्य कर रही हैं।

सा अ

रामेश्वरम ए-१११ मेंहदौरी कॉलोनी
इलाहाबाद-२११००४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९५५५८४८५०६

हमारे स्कूल की नायाब टीचरें

• मृदुला गर्ग



हिंदी की सुप्रसिद्ध साहित्यकार। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, यात्रा, साहित्य, स्तंभ लेखन, व्यंग्य आदि में प्रचुर लेखन। नौ उपन्यास, ११ संग्रहों में प्रकाशित नब्बे कहानियाँ, 'संगति-विसंगति' नाम से दो खंडों में संगृहीत। 'उसके हिस्से की धूप' को 'वीरसिंह पुरस्कार' व 'जादू का कालीन' को 'सेठ गोविंददास पुरस्कार', उपन्यास 'कठगुलाब' को २००४ में 'व्यास सम्मान' और 'मिलजुल मन' को २०१३ में 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' मिला। १९८८ में हिंदी अकादमी, दिल्ली से 'साहित्य सम्मान', २००१ में 'न्यूयॉर्क ह्यूमन राइट्स वॉच' से हैलमन हैमट ग्रांट व २०१४ में उ.प्र. हिंदी संस्थान से 'राम मनोहर लोहिया सम्मान' प्राप्त।

मैं दिल्ली के लेडी इर्विन स्कूल में पढ़ी हूँ। मिशनरी स्कूलों से बिल्कुल अलग। उन दिनों दस+दो क्लासों का चलन नहीं था। नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं कक्षाओं के फाइनल इम्तिहान एक साथ होते और उसे हायर सेकेंडरी कहा जाता। अजीम और अलहदा शख्सियत की मालकिन हमारी प्रिंसिपल मिस सेनगुप्त इन क्लासों को उच्च गणित पढ़ाती थीं। जिन लोगों ने मेरी तरह साइंस के बजाय आर्ट्स अनुशासन चुना था, वे भी एक विषय की तरह उच्च गणित चुन सकती थीं। मजे की बात थी कि उसका विकल्प होम साइंस या गृह विज्ञान था, यानी गृहणी बनने की ट्रेनिंग लेनेवाली लड़कियों के लिए गणित की जानकारी जरूरी नहीं थी। उच्च गणित की मेरी क्लास में कुल १२ लड़कियाँ थीं। हम खुद को होम साइंस की लड़कियों से अलहदा ही नहीं, बेहतर समझती थीं। इस बड़प्पन की एक वजह यह भी थी कि खुद प्रिंसिपल साहिबा हमें पढ़ाती थीं। जहाँ बाकी छात्राओं को बमुश्किल उनके दर्शन होते, हम रोज उनसे रूबरू रहते। उनकी रोबीली शख्सियत गणित की जटिल थ्योरम की याद दिलाती थी, जो सामनेवाले को उलझन में डाल देती थी। वह उनकी तरफ आकर्षित भी होता था और भय भी खाता था। हम उनके संसर्ग में कई जटिल थ्योरम हल कर चुके थीं, लिहाजा औरों के मुकाबले कम भय खाते थे।

मिस सेनगुप्त सिर्फ गणितज्ञ नहीं थीं, उनकी दिलचस्पी अपनी छात्राओं के व्यक्तित्व को हर कोण से निखारने में थी। जहाँ बाकी सभी स्कूलों में छात्रों के लिए यूनिफॉर्म अनिवार्य थी, हमारे स्कूल में कोई यूनिफॉर्म नहीं थी। मिस सेनगुप्त चाहती थीं, हम कपड़े पहनने की तमीज सीखें। ऐसी पोशाक चुनें, जो सुंदर हो, पर इतनी चटख या शोख नहीं कि स्कूल में अटपटी लगे। अगर कोई लड़की बिल्कुल फूहड़ या चटकीला लिबास पहनकर आ जाती तो छात्राओं की हेड गर्ल उससे बात करती, उसे सलाह देती, कोई टीचर हस्तक्षेप नहीं करती।

फिर अन्य स्कूलों से एकदम अलहदा हम सुबह नौ बजे से लेकर शाम पाँच बजे तक स्कूल में रहती थीं। सुबह प्रार्थना के बाद सबसे पहला काम होता था तकली कातना। मैं जब पाँचवीं क्लास में पहुँची तो देश आजाद हो गया। पर हमारा तकली कातने का कार्यक्रम वैसे ही चलता रहा। वह सिर्फ प्रतीकात्मक नहीं था। सैकड़ों लड़कियाँ तकली काततीं; उनसे जो सूत निकलता, खादी का कपड़ा बनाने के लिए भेजा जाता। उसे बेचकर जो पैसा मिलता, उससे कुछ गरीब बच्चों की पढ़ाई करवाई जाती। बाद में समझ में आ गया कि उसके लिए काफी और पैसा जमा किया जाता होगा। पर उन दिनों हमें यकीन था कि हमारे बलबूते पर ही इतने बच्चे पढ़ाई कर पाते थे। हमें अपना कद कहीं बढ़ा हुआ महसूस होता था। हर हाल, जो काम किया जा रहा था, उसमें हमारी शिरकत थी।

उसके अलावा दिल्ली में हमारा लड़कियों का पहला स्कूल था, जहाँ आधुनिक उपकरणों से लैस, एक पूरा जिम था। मेरे लिए तो न के बराबर था; मैंने अपनी इच्छा से उसके भीतर कभी कदम नहीं रखा। कभी किसी खेलकूद में हिस्सा नहीं लिया। यों हम पाँच बहनों में से कोई भी खेलकूद में माहिर नहीं था, पर मैं सबसे फिसड्डी थी। बाकी बहनें कामचलाऊ कर लेती थीं; मैं वह भी नहीं। स्कूल के नियम-कायदों के तहत क्लास में जाना जरूर पड़ता था, पर जल्द ही उससे भी छुटकारा मिल गया। हुआ यह कि मेरी पी.टी. टीचर साहिबा से कुछ बहस हो गई, जिसमें कसूर मेरा नहीं माना गया। यानी हमारी अलहदा शख्सियत की मालकिन मिस सेनगुप्त ने नहीं माना। पी.टी. टीचर मिस गुहा थीं तो ऐंग्लोइंडियन, पर मानती खुद को शुद्ध अंग्रेज थीं और उनके देश छोड़ जाने के बाद भी जबरदस्त अंग्रेजपरस्त बनी रही थीं। हम 'इंडियंस' को वे एकदम जाहिल समझती थीं। जहाँ तक उनकी क्लास में मेरी भूमिका का सवाल था, यह

समझ वाजिब थी। बहस तब हुई, जब उन्होंने मुझे 'इंडियन इडियट' के खिताब से नवाजा। बीमारी के चलते मैं पाँचवीं, छठी और सातवीं क्लास में स्कूल नहीं गई थी। बस इम्तिहान दे देती थी और अगली क्लास में पहुँच जाती थी। इसलिए पी.टी. मैंने कभी कीं न थी और मुझे उसका क-ख मालूम न था। आठवीं क्लास में जब अचानक करनी पड़ी तो मैं पूरी तरह ताल-बेताल थी। इडियट कहलवाना मैं बरदाश्त कर लेती, पर इंडियन इडियट मेरे आजादीपरस्त जेहन को वह मंजूर न था। सोचे बगैर मैंने पलटकर पूछा, "एंड व्हाट काइंड आर यू?" जाहिर है, इस हिमाकत के लिए वे मुझे पकड़कर प्रिंसिपल के पास ले गईं और मेरे लिए कड़ी-से-कड़ी सजा की माँग करने लगीं। मिस सेनगुप्त ने पूरा वाकया सुना, मेरे पिछले तीन सालों के रिकॉर्ड को परखा और तय किया कि मेरा नाराज होना जायज था। खुद मुझे अचरज हुआ, जब उन्होंने मुझे पी.टी. क्लास से आजाद कर दिया। उस क्लास के दौरान मुझे क्लास लाइब्रेरी बनाने और सँभालने का काम सौंप दिया। वाह! मेरी तो ईद-दीवाली रोज मनने लगी।

मैं चित्रकारी में भी उतनी ही बेकार थी, जितनी पी.टी. में। आर्ट की टीचर मुझसे बराबर नाराज रहती थीं। उनका कहना था कि हाथी बनाने को कहो तो तुम चूहा बना देती हो। सही-सही चूहा दिखे तो चलो बरदाश्त कर लिया जाए पर···तह···आख़िर यह है क्या? आठवीं क्लास में गई तो संस्कृत और आर्ट के बीच विकल्प चुनना था। उन्होंने मुझसे बाकायदा इल्तिजा की कि मैं संस्कृत ही लूँ। पता नहीं क्यों मुझे काफी बुरा लगा। मैं जानती तो थी कि मेरे हाथी चूहे जैसे लगते हैं, पर इस हद तक नहीं कि मुझे क्लास में आने से मनाही कर दी जाए! तब मेरे दिमाग में एक अफलातूनी खयाल आया। मैं दोनों में से किसी की क्लास में नहीं जाती। खुशकिस्मती से दोनों क्लास आधी छुट्टी के बाद होती थीं। उसमें हम स्कूल के लॉन में बैठकर खाना खाती थीं। उसके बाद स्कूल के बड़े अहाते में यहाँ-वहाँ घूमकर वक्त काटा जा सकता था। इस खरदिमाग हरकत में साथ देने को एक सहेली नीता भी पट गई। फिर क्या था, करीब-करीब वह पूरा साल हमने बिना क्लास में जाए बतियाते-घूमते बिता दिया। दोनों टीचर्स ने सोचा कि हम दूसरी क्लास में होंगे। पता नहीं कैसे हम पकड़ी नहीं गई और छुट्टी घूमती रहीं। पर बकरे की माँ कब तक खैर मनाती, कभी तो भांडा फूटना था। इम्तिहान से कोई महीना भर पहले हमारा राज खुल गया। फिर भी जरा सोचिए, कैसी रही होंगी हमारी प्रिंसिपल सेनगुप्त कि हमें स्कूल से निकाला नहीं! हमारे माँ-बाप को बुलाकर शिकायत भी नहीं की। की जाती तो पता नहीं नीता का क्या हश्र होता! उसका कहना था कि अगर उसके पिता को उसकी हरकत की खबर हो गई, तो वे शर्तिया उसे जान से मार देंगे; उससे अच्छा था, वह खुदखुशी कर ले।

मिस सेनगुप्त के अनोखे व्यक्तित्व की वजह से वह नौबत नहीं आई। उन्होंने हमसे कहा कि हमें दोनों में से एक विषय में इम्तिहान देना होगा। पास हो गए तो ठीक, फेल हो गए तो पूरी तरह फेल! आर्ट टीचर ने हमारे उस इम्तिहान में शिरकत करने पर इस कदर लानत भेजी कि हमें संस्कृत का सहारा लेना पड़ा। पूरा महीना संस्कृत घोटते बीता। नीता के पिताजी बहुत खुश हुए। बोले, "यही तो वे चाहते थे, आगे चलकर वह संस्कृत में बी.ए ऑनर्स कर सकती थी।" मेरा वैसा कोई इरादा नहीं था, पर आठवीं दुबारा करना फाँसी की सजा से कम खौफनाक न था। खैर, हम जैसे-तैसे संस्कृत में पास हो गए। एक फॉर्मूला हमने यह लगाया कि चूँकि जो सवाल आएँगे, उनके जवाब उनके भीतर ही होंगे, यानी ऑब्जेक्टिव किस्म का परचा होगा, इसलिए अगर हम एक-दो-तीन-चार के हिसाब से हाँ-ना लिखते गए तो पास हो जाएँगे। वही हुआ। हम नौवीं में पहुँच गए। उसके बाद मैंने संस्कृत या आर्ट को हाथ नहीं लगाया। नीता ने अलबत्ता संस्कृत पढ़ी और खूब पढ़ी।

कई बार अपने पक्ष में उनका जलवा देख लेने और पूरी तरह मिस सेनगुप्त की मुरीद होने के बावजूद दसवीं क्लास में जो पंगा मैंने उनके साथ लिया, कुछ ज्यादा ही गुस्ताख था। पता नहीं उनकी दरियादिली पर यकीन था या नियम तोड़ने की मेरी आदत, मैं वह गुस्ताखी कर गुजरी। हुआ यों कि एक दिन देखा, होम साइंस की लड़कियाँ तर-पर-तर माल पकाए जा रही थीं। पूछा, माजरा क्या है तो पता चला, वे पिकनिक मनाने लोदी गार्डन जा रही हैं। खासतौर पर वह पकाने को कहा गया था, जो आसानी से पिकनिक पर ले जा सकें और खा सकें। चुनाव उन्हें करना था; वह टेस्ट का हिस्सा था। तो उन लोगों ने बनाए थे, लूची के साथ तले मसालेदार आलू और चटपटे छोले, समोसे, दो तरह की सैंडविच और गुलाबजामुन। मैंने तमाम ब्यौरा गणित की अपनी सहपाठियों को सुनाया, तो सभी के मुँह में पानी आ गया। "हमें उन लोगों के साथ जाना चाहिए," मैंने कहा। "पर हमारी तो गणित की क्लास है।" हममें से सबसे पढ़ाकू लड़की बोली। "क्लास कैसे हो सकती है, जब दसवीं की सब लड़कियाँ पिकनिक पर जा रही हैं?" मैंने दृढ़ता से कहा, जैसे मुझे पूरी जानकारी हो। "तुम्हें कैसे पता?" उन्होंने शंका जाहिर की तो मैं जाकर होम साइंस की एक सहेली को बुला लाई। उससे पूछा गया तो वह बोली, "बिल्कुल। हमारी मिस पांडे कह रही थीं कि गणित वाली लड़कियाँ खाएँगी, तभी न पता चलेगा कि खाना कितना बढ़िया बना। वरना हम तो सब पकानेवाले ठहरे।"

लड़कियों ने ज्यादा ना-नुकर नहीं की। आखिर सबका मन पिकनिक मनाने पर आया हुआ था। उस दिन मिस पांडे का मूड बढ़िया था, उनके काम से खूब खुश थीं। तो चंद चंट लड़कियों ने उनसे कहलवा लिया कि हम १२ लड़कियों को वे बतौर मेहमान पिकनिक में बुला रही हैं। हम पिकनिक पर गए, खूब मजे किए, वह भी बिना कुछ पकाए। हाँ, तारीफ करने में कोर-कसर नहीं छोड़ी। यहीं नहीं, सब के जूठे बरतन माँजने-धोने का जिम्मा भी ले लिया। हमारा मजाक तो बना कि अब आया ऊँट पहाड़ के नीचे, पर दुर्भावना से नहीं। सो सब राजी-खुशी गए और राजी-खुशी लौट आए। स्कूल बंद होने से पहले वापस पहुँच गए। बसें वैसे ही चलीं, जैसे रोज चलती थीं और हम वक्त पर घर पहुँच गईं। पर मेरे मन में अगले दिन को लेकर धुकड़-पुकड़ शुरू हो चुकी थी। मैं कुछ ज्यादा ही पंगा ले बैठी थी। असली इम्तिहान तो अगले दिन होना था, जब मिस सेनगुप्त क्लास लेने आतीं। सुबह तक मेरी हालत पतली हो चुकी थी, पर सोचा, सब मिलकर कोई राह ढूँढ़ लेंगी।

कहाँ के सब? मिस सेनगुप्त सीधे मुद्दे पर आईं। पूछा, "कल

गणित की क्लास छोड़कर पिकनिक पर जाने का सुझाव किसका था?" ग्यारह उँगलियाँ एक साथ मेरी तरफ उठ गईं। अपना जुर्म स्वीकारती मैं चुपचाप गरदन झुकाकर खड़ी हो गई।

मिस सेनगुप्त ने सिर्फ एक शब्द कहा, "क्यों?"

मुझे लगा, कोई बहाना बनाना मुमकिन नहीं था। इसलिए सच उगल दिया, "उनका खाना देखकर मन ललचा गया था।"

उन्हें शायद इस जवाब की उम्मीद नहीं थी। उन्होंने कहा, "सिर्फ तुम्हारा?"

मैं चुप रही। अब बाकी की लड़कियों का जमीर जगा। दो-तीन ने फुसफुसा करके कहा, "हमारा भी।"

मिस सेनगुप्त ने संजीदगी से धीमी आवाज में कहा, "इसका तो एक ही उपाय है। आप लोग उच्च गणित छोड़कर होम साइंस ले लें। उच्च गणित पढ़ने के लिए जिस निष्ठा की जरूरत है, आपमें नहीं है।"

पूरी क्लास में 'नहीं मिस, प्लीज मिस, वी आर वेरी सॉरी मिस' का नारा व्याप गया।

"प्लीज, मिस," मैंने प्रमुख अभियुक्त की तरह पैरवी की, "और जो चाहें सजा दें, बस यह नहीं। कल की क्लास में जो काम किया जाना था, हम एक घंटा रुककर पूरा कर लेंगी। हम निष्ठा के साथ पढ़ेंगी, आपको दुबारा शिकायत का मौका नहीं देंगी।"

मिस सेनगुप्त ने गलती धर पकड़ी, बोलीं, "एक घंटा रुकोगी तो घर कैसे जाओगी? बस तो रुकेगी नहीं।"

सबको साँप सूँघ गया। क्या कहते; कुछ कहने को होता, तो न कहते। उन्होंने उसी गंभीर लहजे में जोड़ा, "बात वही कहनी चाहिए, जो कर सको। बेपर की उड़ाने का कोई फायदा नहीं होता।"

उसके बाद उन्होंने बिना कुछ कहे क्लास ली, फिर ढेर सारा होमवर्क दिया और कहा, "कल इसे पूरा करके लाओ। सही हुआ तो गणित पढ़ना, वरना होम साइंस।" उस शाम हम लोगों ने किसी तरह अपने माँ-बाप को राजी किया और सबसे पढ़ाकू लड़की के घर इकट्ठा होकर देर रात तक सवाल हल करती रहीं। हम नहीं चाहती थीं कि उस चुनौती में एक भी लड़की नाकाम हो। हमारी समझ में आ गया कि ग्यारह उँगलियाँ एक पर उठें, उससे बेहतर है कि बारह उँगलियाँ एक साथ काम करें।

हमारा गणित पढ़ना जारी रहा। हमारे माँ-बाप को मेरी पहल पर की गई शरारत के बारे में पता नहीं चला। मिस सेनगुप्त बात-बात पर माँ-बाप को घसीटने की कायल नहीं थीं। उन्हें यकीन था कि छात्राओं से ताल्लुक रखते हर मसले को वे खुद सुलझा सकती थीं। वाकई।

एक कहावत है, बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह। हमारे स्कूल पर वह बिल्कुल फिट बैठती थी। प्रिंसिपल सेनगुप्त तो जो थीं, थीं; इतिहास की टीचर मिस दासगुप्त शख्सियत की अलहदगी में उनसे दो कदम आगे थीं। इतिहास पढ़ाने के अलावा तकली कतवाने से लेकर खादी का कपड़ा बनवाने और गरीब बच्चों को पढ़वाने के काम की जिम्मेवारी उन्हीं की थी। जिम्मेवारी क्या, पूरी योजना उन्हीं की दिमाग की उपज थी। कमाल का उपजाऊ दिमाग था उनका। पर उसमें सबसे लहलहाती फसल थी, हमारी आजादी की लड़ाई और दूसरी, खुद्दारी। उनमें तो वह आसमान छूने की बुलंदी पर थी ही, पर उनकी कोशिश थी कि हममें भी वह अंकुरित होकर हरियायी लता बने। उनकी सख्त ताकीद थी कि हम अपने माँ-बाप से किसी किस्म की मदद नहीं लेंगी। मुझे लगता है कि उनकी सोहबत ने मेरी सोच और आगे चलकर लेखन पर काफी असर डाला। हालाँकि स्कूल में रहते हुए, वे हमें काफी खिसकी हुई मालूम पड़ती थीं। पर जल्दी ही समझ में आ गया था कि कुछ कर गुजरने के लिए खिसका होना निहायत जरूरी सिफत थी। आप जानते ही हैं कि स्कूल में लड़कियाँ हर टीचर को कोई-न-कोई लतीफेबाज उपनाम दिए रहती हैं। हम मिस दासगुप्त को 'तोती' कहते थे। ठीक से पता नहीं क्यों; शायद उनके चेहरे की बनावट ऐसी थी। या शायद सिर्फ इसलिए कि एक दिन वे एकदम तोतई रंग की साड़ी पहनकर आ गई थीं और उनके माथे की चौड़ी लाल बिंदी ने साथ मिलकर वह नाम सार्थक कर दिया था। अपने निर्देशों को बार-बार दुहराने की उनकी आदत भी एक वजह रही होगी। जो नाम दिए जाते थे, उनके पीछे कोई लंबा-चौड़ा तर्क नहीं रहता था, बस हँसने का बहाना चाहिए था। कोई लड़की खी-खी करके एक नाम उचारती और वह सबकी जबान पर चढ़ जाता।

मैं और बहन मंजुल दोनों स्कूल में दो क्लास के अंतर से पढ़ती थीं। वह ग्यारहवीं में, तो मैं नवीं में। दोनों क्लासों को इतिहास मिस दासगुप्त पढ़ाती थीं। बाकी सब विषय अपनी-अपनी कक्षा में पढ़ाए जाते थे। पर मिस दासगुप्त को भला वह कैसे रास आता! उन्होंने इतिहास के लिए एक अलग कमरा मुकर्रर करवाया हुआ था; हायर सेकेंडरी की हर क्लास की छात्राओं को वहीं जाकर इतिहास पढ़ना होता था। कमरे की दीवारें, ऐतिहासिक विषयों पर उनके खुद के बनाए बेहद कलात्मक; और सिर पर खड़े हो, डाँट-पीटकर हमसे बनवाए कम पेशेवर चार्ट और नक्शों से सुशोभित थीं। सबसे ज्यादा चार्ट स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुख दृष्टांतों को उकेरनेवाले थे; चंपारण आंदोलन, जलियाँवाला बाग, भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की २३ मार्च, १९३१ की फाँसी, दांडी मार्च वगैरह। जाहिर है, उन्हें बनाने में मेरी कतई हिस्सेदारी नहीं थी। कुछ दिन माथापच्ची करने के बाद उन्होंने मुझे 'बोका' घोषित कर दिया था। चार्ट बनाने में भले बोका रही हूँ, पर उन्हें समझाने में, बल्कि समूचे इतिहास की जानकारी में

एक कहावत है, बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह। हमारे स्कूल पर वह बिल्कुल फिट बैठती थी। प्रिंसिपल सेनगुप्त तो जो थीं, थीं; इतिहास की टीचर मिस दासगुप्त शख्सियत की अलहदगी में उनसे दो कदम आगे थीं। इतिहास पढ़ाने के अलावा तकली कतवाने से लेकर खादी का कपड़ा बनवाने और गरीब बच्चों को पढ़वाने के काम की जिम्मेवारी उन्हीं की थी। जिम्मेवारी क्या, पूरी योजना उन्हीं की दिमाग की उपज थी। कमाल का उपजाऊ दिमाग था उनका। पर उसमें सबसे लहलहाती फसल थी, हमारी आजादी की लड़ाई और दूसरी, खुद्दारी।

मैं अव्वल रहती थी, इसलिए मिस दासगुप्त बारी-बारी से मुझसे भीषण नाराज और भीषण खुश रहती थीं। भीषण से कम उनका कोई भाव रहता न था। कोई नहीं जानता था, कब वे ढेला उठाकर आपका सिर फोड़ने की धमकी दे देंगी और कब आपको भीषण इंटेलिजेंट गर्ल का तमगा।

मंजुल के लिए वे कई बार ढेला उठा चुकी थीं, पर चलाया कभी न था। मंजुल उन्हीं की तर्ज पर कलात्मक थी। पेंटिंग पर भी हाथ चला चुकी थी। अंततः पेशेवर तरीके से पेंटिंग की नहीं तो बकौल खुद उसके, वजह काफी दिलचस्प थी। यह कि उसकी समझ में नहीं आता था कि कब रंग लगाना बंद करे, इसलिए भली-चंगी बनी पेंटिंग बरबाद हो जाती थी। तो एक दिन जब इतिहास के लिए नई कॉपी बनाने का मौका आया, तो उसने उस पर सूफियाना हलके नीले रंग का कवर चढ़ाया; बेहद कलात्मक केलिग्राफी में नाम : मंजुल जैन, विषय : इतिहास, कक्षा : ग्यारह लिखा और मिस दासगुप्त के सामने पेश की। देखकर उनका चेहरा खिल उठा। "अहा, भीषण आर्टिस्टिक गर्ल," मंत्रमुग्ध स्वर में उन्होंने कहा। मंजुल के चेहरे पर मोटी मुसकान खिल आई। क्लास में बैठी लड़कियों को दिखलाकर मिस दासगुप्त ने जोड़ा, "सीखो तुम लोग। यह आर्ट होता।" कहकर उन्होंने कॉपी खोली। एक-दो सफे पलटे। सब कोरे। किसी पर कुछ नहीं लिखा था। मंजुल ने कॉपी सजा तो ली थी, पर काम कुछ नहीं किया था। न क्लास में पढ़ाए गए पाठ पर नोट्स थे, न होमवर्क पर एक शब्द। मिस दासगुप्त का चेहरा तमतमा गया। उन्होंने कॉपी घुमाकर मंजुल के सिर पर फेंकी। मंजुल ने झुककर डक किया और कॉपी खुली खिड़की को पार करती हुई, नीचे अहाते में जा गिरी। इससे पहले कि वे कुछ कहतीं, मंजुल जोर से चीखी, "हाय, मेरा आर्ट वर्क!" मिस दासगुप्त उठ खड़ी हुईं। पुचकारकर बोलीं, "जाओ-जाओ, लेकर आओ।" हँसी छिपाकर मंजुल नीचे भागी और अपने गुस्से पर पछताती वे वापस कुरसी पर ढह गईं। आर्ट वाकई उनके लिए इज्जत की चीज थी।

पर उनका सबसे चहेता विषय था—स्वाधीनता आंदोलन। उससे उनकी जिंदगी और रूह का वास्ता था। कुछ दोस्तनवाज टीचर्स से सुना था कि उनके दो भाई और मंगेतर उस लड़ाई के अलग-अलग पड़ावों पर शहीद हुए थे। उसके बाद उन्होंने शादी नहीं की थी।

मंजुल और मुझे, दोनों को एक ही इतिहास की किताब पढ़ाई जाती थी। अध्याय अलग रहते थे। तो हमने दो किताबें खरीदने की जहमत नहीं उठाई; हालाँकि माँ ने पैसे दो के दिए थे। एक से काम चलाया और बचे पैसों से चौलाई के लड्डू खा लिये। उस किताब की सिलाई ऐसी बेकार थी कि पन्ने अलग हो जाते थे, जो हमारे लिए मौजू था। हमने तमाम पन्ने अलग किए और जिस बहन को जो पन्ने चाहिए होते, उन्हें लेकर क्लास में चली जाती। एक दिन मंजुल से उसके पन्ने इतिहास के कमरे में छूट गए। हमने सोचा कि अब तो नई किताब खरीदनी ही पड़ेगी। पर कमाल मिस दासगुप्त का। मैं इतिहास कक्ष में पहुँची, तो बिल्कुल संजीदा चेहरे के साथ कहा, "जैन सिस्टर, योर बुक", और वे चंद पन्ने मुझे पकड़ा दिए। मैं भौचक्का खड़ी रही, लड़कियाँ हँसने लगीं तो उन्होंने डाँटकर कहा, "चोऽप! हँसता क्यों?"

उस किताब की सिलाई ऐसी बेकार थी कि पन्ने अलग हो जाते थे, जो हमारे लिए मौजू था। हमने तमाम पन्ने अलग किए और जिस बहन को जो पन्ने चाहिए होते, उन्हें लेकर क्लास में चली जाती। एक दिन मंजुल से उसके पन्ने इतिहास के कमरे में छूट गए। हमने सोचा कि अब तो नई किताब खरीदनी ही पड़ेगी। पर कमाल मिस दासगुप्त का। मैं इतिहास कक्ष में पहुँची, तो बिल्कुल संजीदा चेहरे के साथ कहा, "जैन सिस्टर, योर बुक", और वे चंद पन्ने मुझे पकड़ा दिए। मैं भौचक्का खड़ी रही, लड़कियाँ हँसने लगीं तो उन्होंने डाँटकर कहा, "चोऽप! हँसता क्यों?"

मेरी याददाश्त में उनसे ताल्लुक रखता १९५२ का एक दिन ऐसे बसा हुआ है, जैसे कल घटा हो। तब मैं दसवीं क्लास में थी। एक दिन सूचना आई कि चार दिन बाद, ब्रिटिश काउंसिल से कुछ प्रमुख इतिहासकार एक मोटे अनुदान के संबंध में हमारे स्कूल का निरीक्षण करने आ रहे हैं। तय हुआ कि मिस दासगुप्त इतिहासकारों के उस दल के सामने क्लास लेंगी।

आप जानते ही होंगे कि उन दिनों इतिहास की सभी पुस्तकों में १८५७ की क्रांति को हिंदुस्तानी फौज की म्युटिनी या अस्थायी विद्रोह यानी गदर कहा जाता था। मगर स्वतंत्रता प्राप्ति के पाँच साल बाद के उस दिन मिस दासगुप्त ने उसे स्वतंत्रता का पहला संग्राम कहा। उन्होंने किया यह कि इतिहास की पाठ्य-पुस्तक बंद करके एक तरफ रख दी और मुँहजबानी १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के विषय में, जो किसी हाल गदर नहीं था, पढ़ाना शुरू कर दिया। अब तो खैर ज्यादातर इतिहासकार सबूतों के साथ उनके मत से सहमत हो चुके हैं। पर तब मैंने पहली बार समझा था कि यहाँ-वहाँ बिखरे, छिटपुट विरोध-विद्रोह भी क्रांति का रूप अख्तियार कर सकते हैं, बशर्ते उनका घटित होना, लोकमानस में व्यक्तिगत और राष्ट्रीय छवि में बड़ा बदलाव ला पाए। १८५७ के विद्रोह ने वह कर दिखाया था। शायद इसीलिए इस तथ्य के बावजूद कि उससे पहले भी कई विद्रोह हो चुके थे, उसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' का नाम दिया जाना उचित था। १८५७ के बाद पहली बार भारतवासियों ने अपने देश को धर्म, समुदाय और प्रदेशों से अलग, एक संपूर्ण स्वतंत्र इकाई के रूप में और खुद को उसके नागरिक की तरह देखना शुरू किया था।

मिस दासगुप्त ने सिक्कों, डाक टिकटों व चित्रों की मदद से हमसे बेहद कलात्मक ही नहीं, चोटिल चार्ट बनवाए थे, जो चारों तरफ दीवारों पर सजे थे। उनमें ब्रिटिश राज, उससे पहले की खुशहाली और जलियाँवाला बाग के नरसंहार का विस्तृत खाका दर्ज था। यह काम पिछले दिनों उनके निर्देश पर क्लासें खत्म होने के बाद, देर शाम तक ठहरकर प्रिंसिपल की मर्जी से या बिना बतलाए हम सबने मिलकर किया था। जो कला या हाथ के काम की जानकार थीं, उन्होंने सिक्कों को रखने के लिए क्रोशिया करके थैलियाँ बनाई थीं, चार्ट्स पर चित्रकारी की थी और मेरी जैसी पढ़ाकू लड़कियों ने उन पर उस पाठ

की सुर्खियाँ लिखी थीं, जो वे पढ़ानेवाली थीं।

शायद ही कभी वयस्क, प्रख्यात इतिहासकारों ने दसवीं कक्षा में पढ़ाया गया पाठ उतनी तल्लीनता से सुना होगा। मुझे जिस तथ्य ने गहरे आलोड़ित किया, वह यह था कि पहले-पहल उनके चेहरों पर जो विस्मय का भाव उभरा, वह धीरे-धीरे अभिभूत होने में बदल गया, असहमति में नहीं। पाठ खत्म होने पर दबी जुबान से उनके प्रमुख ने इतना जरूर कहा था, "क्या यह सब भूल जाना बेहतर नहीं है?" मिस दासगुप्त ने उत्तर नहीं दिया था, सिर्फ हमारी तरफ देखा था। तब हममें से एक लड़की ने निर्भीक भाव से, उस सरंजाम के दौरान उनका हमसे कहा कथन दुहरा दिया, "सर, जो देश अपने नायकों को याद नहीं रखता, उसकी स्वतंत्रता सार्थक नहीं होती।" शायद उस लड़की का नाम काजल था।

यही वह दिन था, जब मेरी समझ में आया कि उपनिवेशवाद का संबंध मानसिकता से है; देश के परतंत्र होने से नहीं। यह उपनिवेशी मानसिकता राजनीतिक व आर्थिक आजादी मिलने के बाद भी कायम रह सकती है और देश के परतंत्र रहते, छोड़ी जा सकती है। यह वह मानसिकता है, जो सभ्यता के हर क्षेत्र में, चाहे वह संस्कृति से ताल्लुक रखता हो या सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक कर्मक्षेत्र से, हमें खुद को अन्यों से हीन या कमतर महसूस करवाती है और उनका अनुमोदन व अनुकरण करने पर मजबूर करती है। रवींद्रनाथ ठाकुर के उपन्यास *'गोरा'* में महिम के शब्द याद कीजिए, 'अरे भई, इतना याद रखो, वे ठहरे राजा लोग। उनके सामने सिर झुकाने में कैसा अपमान?'

१९८० में प्रकाशित मेरे उपन्यास *'अनित्य'* में १९५४ में जी रही एक पात्र कहती है, "जब हम गुलाम थे तो कानून तोड़ते थे, जेल जाते थे, यह दिखलाने को कि हमारा मन गुलाम नहीं है और आज जब हम आजाद हैं तो हमारा मन गुलाम हो गया है। सिर्फ बाह्य शक्तियों का नहीं, अपनी भ्रष्ट कारसाजी का भी।" उसका नाम भी काजल था। मैंने यह नाम क्यों रखा? क्या क्लास की काजल बनर्जी को याद करके? या महज इस अहसास से कि मेरी किरदार जरूर मिस दासगुप्त की क्लास में पढ़ी होगी।

एक और टीचर की बात कर लूँ। हमारी हिंदी की टीचर। नाम मुझे याद नहीं, शायद मिसेज गोयल था। पर हम सभी उन्हें 'बहनजी' कहती थीं। पता नहीं क्या मार थी कि जहाँ बाकी सब टीचरों को हम मिस कुछ-न-कुछ कहकर पुकारते, हिंदी की टीचर कोई हो, 'बहनजी' ही कहलाती थीं। तो गोयल बहनजी ऐसी टीचर थीं, जिनका असर मुझ पर जैसा वे चाहती थीं, उससे ठीक उलटा पड़ा। वे उन लोगों में से थीं, जो हरदम नाराज रहते हैं, क्यों, किससे, पता नहीं चलता। पर मुझसे वे खासतौर पर नाराज रहती थीं, इसमें शकोशुबह नहीं था। क्यों का पता नहीं था। कई वजह हो सकती थीं। एक यह कि हमारी खूबसूरत और युवा अंग्रेजी की टीचर मुझसे खुश रहती थीं; कभी-कभार स्टाफ रूम में मेरे लिखे निबंध की तारीफ भी कर देती थीं कि लीक से हटा मुद्दा हो तो दिलचस्प लिखती है। अंग्रेजी की डिबेट वगैरह में भी मैं हिस्सा ले लेती थी। वैसे मैं टीचर्स पेट किस्म की लड़की बिल्कुल नहीं थी। एक दिन उन्होंने मेरी पीठ से कहा, "एक गिलास पानी लाना।" मैं मुड़ी तो मेरा चेहरा देख बोलीं, "सॉरी, मैंने सोचा उषा है।" मैं ऐसी कमबख्त कि यह न हुआ, पानी ले आती। जाकर उषा को बुला लाई। उनकी इनसाफपरस्ती की दाद देनी होगी कि अंग्रेजी तहरीर के परचे में सबसे ज्यादा नंबर मेरे आए, उषा के नहीं। पर उन्हें मेरी अहमकाना फितरत का अंदाजा हो गया होगा।

दूसरी यह कि मेरे बाल घने घुँघराले थे, जिनकी दो चोटियाँ बनाकर मैं सामने लटकाकर रखती थी। उनकी हालत कुछ उलझी हुई रहती थी, जिस पर वे कई बार टिप्पणी कर चुकी थीं कि ठीक से तेल लगाकर क्यों नहीं रखती बालों को! गलत नहीं कहती थीं। सच यह था कि पिछले एक बरस से मैंने फैशनेबल बनने के चक्कर में मंजुल की तरह सुवर्णा आया से बालों में तेल लगवाना छोड़ दिया था। मैं जितनी दूर तक उलझे बालों की चोटी गूँथ सकती थी, गूँथ लेती, नीचे खुले छोड़कर रिबन बाँध लेती। उन्हें देखकर कोई भी माँ, जो अपनी बेटियों के बालों में खूब तेल डालती हो, खीज सकती थी। नाराजगी की वजह और भी रही होंगी, ठीक से कभी पता नहीं चलीं।

अंग्रेजी की टीचर मिस चौधरी के लीक से हटे निबंधों पर टिप्पणी के कुछ दिन बाद, गोयल बहनजी क्लास में आईं और मुसकरा दीं। सब सहम गए। हमेशा की अपनी बिसूरती आवाज को तनिक खुशदिल बनाकर बोलीं, "आज निबंध के लिए आपको एकदम नया विषय दे रही हूँ। भिखारी की आत्मकथा।"

सब लड़कियों ने सोचा कि चलो, हवाई जहाज की यात्रा, गरमी की छुट्टियाँ कैसे बिताईं, जैसे विषयों से तो बेहतर है।

मैंने विषय पर सोचा तो दिमाग सरपट दौड़ निकला। अपनी समझ में मैंने काफी जोरदार निबंध लिखा; निबंध क्या, कहानी थी। मेरा भिखारी एक लेखक था, जो दिन में भीख माँगता था और रात में लिखता था। भीख से इतनी आय हो जाती थी कि गुजर-बसर कर ले और बिना कोई समझौता किए मनचाहा लेखन कर ले। मैंने खूब विस्तार से, मजे लेकर लेखक की जिंदगी के दोनों पहलुओं पर लिखा था। गोयल बहनजी ने पढ़ा तो आग-बबूला हो गईं। कहा, "यह क्या बकवास है! लेखक भिखारी कैसे हो सकता है और...और एक बेचारा भिखारी लिख कैसे सकता है?"

"वह बेचारा नहीं है, मजे में भीख माँगता है, पेशे की तरह।" मैंने कहा।

"तुमने लेखक और भिखारी, दोनों का अपमान किया है।"

"एक का तो समझ में आता है बहनजी, दोनों का कैसे हो सकता है?" मैंने बड़ी मासूमियत से पूछा।

"अब तुम गुरु का भी अपमान कर रही हो!"

"मैं समझी नहीं।"

"हाँ बहनजी, कुछ समझ में नहीं आ रहा।" एक-दो लड़कियों ने उकसाया।

"अभी आ जाएगा। मृदुला जैन, इधर आओ, कहानी पढ़कर पूरी क्लास को सुनाओ। तभी इनकी समझ में आएगा।"

वाह! मुझे कोई उज्र न था।

मैं उनके पास जा खड़ी हुई और पुरजोर आवाज में कहानी पढ़ दी। लड़कियों ने गौर से सुनी और बीच-बीच में हँसती भी रहीं।

"आया कुछ समझ में ?"

"जी, बहनजी," कहकर उन्होंने ताली बजा दी।

"ताली किसलिए बजा रही हो ?" उन्होंने डपटकर कहा।

"कहानी बहुत मजेदार है, बहनजी।"

"मजेदार! यह कार्टून नहीं है। इसका प्रयोजन क्या है ?"

"यह दिखलाना कि लेखक अपनी रचनात्मकता को जीवित रखने के लिए कुछ भी कर सकता है।" एक लड़की ने कहा।

"भीख माँगने में बुराई नहीं है। भिक्षा माँगना हमारी परंपरा है, संस्कृति है।" एक लड़की ने जोड़ा।

"भीख ही माँगिए आप लोग। आप उसी लायक हैं।" रजिस्टर जोर से मेज पर पटककर उन्होंने कहा, "घंटी बजने तक चुपचाप बैठकर 'हमारे नैतिक मूल्य' पर निबंध लिखिए।" और क्लास छोड़कर चली गईं।

"वे इतनी कुपित क्यों हो गईं ? हो-न-हो, इनके परिवार में कोई भिखारी होगा!" मैंने ज्ञान बघारा और निबंध छोड़ हम सब हँसी-मजाक में लग गईं।

सा अ

ई-४२१ (भूतल), जी.के.-२
नई दिल्ली-११००४८
mridula.garg7@gmail.com

लघुकथा

उचित फीस

• नीरज त्यागी

लॉकडाउन के समय में अपने बच्चों की पढ़ाई खराब होने का डर शर्माजी को लगातार हो रहा था। फिर कुछ खबर आई कि बच्चों की पढ़ाई ऑनलाइन होगी। अब शर्माजी को कुछ तसल्ली हुई। उन्हें लगा, शायद अब बच्चों का एक साल खराब होने से बच जाएगा। ऑनलाइन पढ़ाई शुरू होने के कुछ दिनों बाद ही फीस की स्लिप भी मिल गई। फीस स्लिप को देखकर शर्माजी की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा, फीस की स्लिप तो केवल ११००० रुपए की है, जबकि पिछले साल तो एक क्वार्टर की फीस १२००० रुपए थी।

शर्माजी बहुत खुश थे कि चलो लॉकडाउन में स्कूलवालों ने कुछ तो फीस कम कर दी। तभी अचानक शर्माजी का माथा ठनका। उन्होंने पिछले साल की स्कूल की फीस की स्लिप निकाली और उसमे १२००० रुपए की पूरी डिटेल देखने के बाद उन्हें समझ में आया कि वह तो बेकार ही खुश हो रहे थे। १२००० रुपए क्वार्टर की फीस में २००० रुपए तो बस की फीस थी। बच्चे जब स्कूल नहीं जाएँगे और घर पर ही पढ़ाई करेंगे। तो स्कूल की फीस के अलावा बस की फीस तो जाएगी ही नहीं, इसका मतलब इसकी स्लिप तो १०००० रुपए की आनी चाहिए थी। जो कि ११००० रुपए की थी। शर्माजी अपनी शिकायत लेकर स्कूल की प्रिंसिपल से मिलने के लिए स्कूल पहुँचे।

उन्होंने प्रिंसिपल से पूछा, 'मैडम, अगर बस की फीस नहीं जानी है तो उसे काट के तो एक क्वार्टर की फीस केवल १०००० रुपए ही बनती है। यह आपने हजार रुपए किस बात के बढ़ा दिए ?' प्रिंसिपल साहिबा अचानक शर्माजी के सवाल से सकपका गईं। उन्होंने शर्माजी को समझाने की कोशिश की, 'देखिए सर, बच्चों की पढ़ाई तो हो ही रही है। हर साल की तरह सभी टीचरों की सैलरी तो वैसी-की-वैसी ही देनी है और आपको पता ही है कि हर साल सभी को इंक्रीमेंट भी देना होता



दैनिक जागरण, भोपाल एवं पंजाब केसरी, करनाल सहित अनेक समाचार-पत्रों में कविताएँ एवं लघुकथाएँ प्रकाशित। 'प्रणाम पर्यटन' एवं 'चाणक्य वार्त्ता' दिल्ली सहित लगभग १०० मासिक पत्रिकाओं में भी लेख प्रकाशित।

है। सभी बातों को ध्यान में रखते हुए फीस तो बढ़ानी ही पड़ती है।'

'मैडम, मेरी बड़ी बहन भी आपके स्कूल में टीचर है और जहाँ तक मुझे जानकारी है। इस साल आपने कोरोना की वजह से अपने किसी भी अध्यापक को इंक्रीमेंट देने से मना किया है।

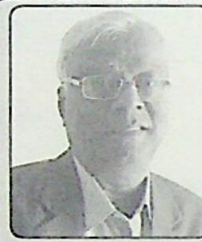
'अगर ऐसा है तो आप किस बात के लिए फीस बढ़ा रही हैं ? जबकि हम सभी के काम दो माह बंद रहे हैं।' प्रिंसिपल साहिबा से कोई जवाब न बन पाया और फीस में हुई इस वृद्धि का कोई भी जवाब न होने के कारण उन्होंने शर्माजी से कहा, 'आपका दिल करे तो आप बच्चों को यहाँ पढ़ा लीजिए, वरना उन्हें कहीं और पढ़ा लीजिए। फीस तो कम नहीं होगी।' शर्माजी प्रिंसिपल साहिबा की इन बातों को सुनकर अपने आप को ठगा हुआ सा महसूस कर रहे थे। लेकिन कोरोना की इन परिस्थितियों में अब वह किसी और स्कूल में बच्चों का एडमिशन भी नहीं करा सकते थे। इसलिए बिना मतलब ही फीस वृद्धि का थप्पड़ गाल पर खाकर वे अपना गाल सहलाते हुए फीस भरकर अपने घर वापस आ गए।

सा अ

६५/५ लाल क्वार्टर, राणा प्रताप स्कूल के सामने,
गाजियाबाद-२०१००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९५८२४८८६९८

धागे मजबूत

• रामदेव धुरंधर



मॉरीशस के हिंदी लेखकों में एक चर्चित नाम। स्थानीय रेडियो में तीन सौ से अधिक स्वलिखित एकांकियों की प्रस्तुति। दूरदर्शन पर धारावाहिकों का प्रसारण। 'वसंत', 'रिमझिम' और 'निर्माण' पत्रिकाओं का संपादन। अनेक रचनाओं का फ्रेंच में अनुवाद। पाँच उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, तीन लघु कथा-संग्रह, चार व्यंग्य-संग्रह, एक नाटक (फ्रेंच में अनूदित) तथा पत्रिकाओं में पचास से अधिक कहानियाँ और दर्जनों लेख प्रकाशित। संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

अन्या ने बड़ी मुश्किल से मोबाइल पाकर अपने पति विरद को फोन किया। वह जान-प्राण से रो रही थी। विरद का ध्यान तो उसी में लगा हुआ था। अपनी मोबाइल बजते ही उसने कान से लगाया। उसने अन्या की आवाज सुनने पर हकलाते स्वर में पूछा, "तुम घर लौटी नहीं अन्या, कहाँ से फोन कर रही हो?"

अन्या बोली, "घर कैसे लौटती, घर लौटने का मेरा रास्ता तो मुझसे छीन लिया गया था!"

अन्या को जो मालूम था, वह सिसकी भरी साँसों और बिफरी आवाज से उतना ही बता सकी। एक खेत में फूस से बनाई गई झोंपड़ी में वह चार मानवी दरिंदों की गिरफ्त में थी। बहुत पुराना ढहता सा एक बँगला उधर पड़ता था, जिसके नष्टप्राय गेट में फ्रेंच में लिखा हुआ था, 'मॉरिशस मेरा स्वर्ग।'

अन्या के लुटेरे पास में शराब पी रहे थे कि देख लिया था कि वह फोन कर रही है। उसके हाथ से फोन छीन लिया गया था और बेरहमी से उसके साथ नए सिरे से नोंच-खसोट शुरू हो गई थी। चार आततायियों में से एक, जिसका मोबाइल अन्या के हाथ पड़ जाने से उसने अपने पति को फोन किया था, उसके तीनों साथी उसे गाली देने लगे थे। सजा के तौर पर उससे कहा गया था, लूट के माल पर अब उसे हाथ लगाने नहीं देंगे। यह सुनने पर वह तड़प उठा था। उसके सामने अपहृत औरत का शोषण हो रहा हो और वह उस शोषण में सम्मिलित न होकर देखने भर का पात्र हो, यह तो जैसे उसके प्राण उड़ जाने की सजा थी। इतने बड़े अपराध में सब बराबर थे, तो उसका दावा हुआ अपराध का आनंद उठाने से उसे वंचित किया नहीं जा सकता। उसके मित्र होशियार निकले। आपसी फूट से उनका एक साथी टूटने का मतलब होता, जिस अपराध पर उनका अधिकार था, वह अपराध पलटकर उनके गले के लिए फाँस बन जाता। उन्होंने हँसकर अलग छोड़े जा रहे मित्र को अन्या पर कहर बरपाने के लिए साथ मिला लिया था।

अन्या की शादी के तीन सप्ताह बीत रहे थे। वह सरकारी दफ्तर में क्लर्क थी। उसका पति विरद वन विभाग में उच्चाधिकारी था। पति को लंबी छुट्टी न मिलने से शादी भर के लिए वह घर रह पाया था। शादी के तीन दिन बाद वह नौकरी पर जाने लगा था। अब अन्या की छुट्टी खत्म होने पर वह तैयार होकर बस द्वारा नौकरी पर पहुँचने के लिए बस स्टॉप जा रही थी।

उनका घर एक सँकरी गली में था। बस स्टॉप पहुँचने के लिए दूर तक चलना पड़ता था। अन्या ने देखा था, उसके सामने से एक मोटर आ रही थी। गली भीतर दूर तक जाती थी। अन्या की समझ में दो बातें एक साथ आई थीं। मोटर के लोग यहीं के होने से अपने घर लौट रहे होंगे या हो सकता था कि कहीं से लोग इस गली में रहनेवाले किसी के यहाँ आ रहे होंगे। अन्या जहाँ पहुँची थी, वहाँ किनारे में जंग लगा हुआ एक लंबा लोहा फेंका गया था। लोहा बेतरतीब घास से आधा ढका हुआ था। उस लोहे के कारण किनारे हटने में अन्या को परेशानी हुई थी। परेशानी का एक कारण यह भी था कि सुबह का वक्त होने से शीत की बूँदें अभी सूखी नहीं थीं। जंग लगे हुए लोहे पर हावी घास शीत की बूँदों से चमक रही थी। अन्या को ऐसी परिस्थिति की जानकारी थी। वह घास से सटती तो शीत की बूँदों और जंग से कपड़े भीग जाने के साथ मैले हो जाते। अन्या दफ्तर में काम करनेवाली महिला हुई। एक बात यह हुई कि वह शादी के बाद पहले दिन नौकरी पर जा रही थी। जाहिर था, उसने अपने कपड़ों पर पूरा ध्यान दिया था। चेहरे के सौंदर्य में निखार के लिए तो उसे खास ध्यान देना पड़ता, जो उसने समर्पित भाव से निभाया था। ऐसे में जंग से भरा एक लोहा उसके सामने था, जिस पर घास हावी थी और घास पर शीत की बूँदें चमक रही

थीं। पर दूसरा रास्ता भी तो नहीं था। अन्या जैसे-तैसे किनारे हटी थी। शुक्र था कि कपड़े को बचाया तो वह बच ही गया था।

मोटर आगे निकल जाने पर अन्या अपने को आश्वस्त महसूस करने लगी थी। पर वह अभी उस गली से निकलकर पक्की सड़क में आई नहीं थी कि वही मोटर उसके पीछे आ रही थी। उसे फिर से यही तो करना पड़ता कि गली के किनारे खड़ी हो जाती और मोटर के निकल जाने के बाद वह अपने गंतव्य पर सक्रिय हो जाती। गली के दोनों ओर घर तो बहुत थे। कहीं-कहीं गन्ने के खेत भी थे। अब अन्या जहाँ पहुँची थी, यहाँ गन्ने का खेत था। पर खेत की ठीक से देखभाल की नहीं गई थी। ऐसी हालत में जितने गन्ने थे, उससे कहीं अधिक दूर-दूर तक लंबी घास थी।

अन्या को सहसा लगा था, गली तो बड़ी भयावह है। पर गली जैसी भी थी, अपने जीवन की डोर इस गाँव में बँध जाने से इसी गली से उसका आना-जाना लगा होता। एक बात तय होती कि इस गली में चलनेवाले बहुत से लोग हुआ करते थे। अपना घर यहाँ होने से लोगों के लिए यह गली मानो साथिन थी। अन्या के लिए भी आनेवाले दिनों में यह गली खूब जानी-पहचानी साथिन हो जाती। पर उसके लिए तो पहले ही दिन बहुत ही बुरा वक्त आया। जो मोटर भीतर गई थी और अब लौट रही थी। वह मोटर अन्या के पास रुक गई थी। अन्या को अब पता चला था कि उस मोटर में चालक को लेकर चार लोग थे। अन्या का दुर्भाग्य ऐसा हुआ कि उस गली में उस वक्त वह अकेली थी। गली में बहुत से लोग होते तो अन्या को चुरा ले जाने का इरादा करनेवाले मर्द आगे निकल जाते। पर विशाल तकदीर में एक बिंदी की कमी पड़ जाए, तो प्रकाश भी अँधेरा बन जाए। अन्या की तकदीर का यही अँधेरा पक्ष हुआ।

अन्या के साथ बुरा न होता और यहाँ के वातावरण से उसका साझा बैठता जाता तो हो सकता था कि उसका पति उससे कहता या यहाँ के किसी के कहने से उसे मालूम होता कि उस गली के पिछले घर में शरीर का सौदा करनेवाली दो-तीन औरतें रहती थीं। उस मोटर के लोगों के हाथों में जकड़ जाने पर उनकी बातों से अन्या को पता चला था, वे लोग औरत के लिए वहीं जा रहे थे कि उसे देखने पर मोटर लौटाकर उसके हँसते-गाते जीवन में दुःख का सैलाब पोत दिया!

मोटर से दो मर्द उतरे थे और अन्या को कसकर मोटर में बिठा दिया था। मोटर में जाने पर उसके बचने का अब कोई उपाय न रहा। एक मर्द मोटर चला रहा था और तीन मर्दों ने मिलकर उसे दबोच रखा था।

□

विरद ने तत्काल पुलिस से संपर्क किया। उसकी मोबाइल में वह नंबर था, जिस मोबाइल से अन्या ने उसे फोन किया था। पुलिस को उस नंबर के माध्यम से जगह का पता लगाने में सहजता होती। अन्या की ओर से नष्टप्राय बँगले का दिया हुआ 'मॉरिशस मेरा स्वर्ग' नाम भी हालात का पता लगाने में बहुत सहायक होता। बहुत जल्द पुलिस उन आततायियों के दुर्ग में पहुँच गई। पर वे पकड़ में न आकर भाग गए। उनकी मोटर वहीं छूट गई। पुलिस ने मोटर को अपने कब्जे में कर लिया।

अगले रोज अन्या पर हुए हादसे और उस मोटर से संबंधित सूचना रेडियो से प्रसारित हुई। वह चोरी की गई मोटर थी। मोटर में नकली नंबर चढ़ाया गया था।

पुलिस ने अन्या को अस्पताल पहुँचा दिया था। उस पर घटित घटना का हवाला आम हो जाने से मीडिया अस्पताल में उससे मिलने आने लगी, लेकिन उसने अपने मुँह से कुछ नहीं कहा। इतनी बड़ी घटना और स्वयं घटना की शिकार औरत ही न बोले, यह मीडिया जगत् में पचने लायक बात नहीं थी। अन्या के यहाँ लिखने के लिए कुछ न मिलने से उसके पति से मिला गया। उससे बहुत सारे प्रश्न पूछे जाने के बीच यह बात बार-बार दोहराई जाती रही कि उसकी पत्नी अभी अस्पताल में है। जाहिर है, स्वस्थ होने पर उसे अस्पताल से छुट्टी मिल जाएगी। तो क्या, उसका पति उसे अपने घर में स्वीकार करेगा?

विरद ने मीडिया के प्रश्नों में पाया था कि उससे अन्या के बारे में नकारात्मक बातें निकालने की कोशिश की जा रही हैं। पर नकारात्मक बात हो, तब तो वह कह पाता। उसे तो यहाँ तक डर लगा था कि कहीं उसके कहे का मुखड़ा ही न बदल दिया जाए। जो छपा था, उसमें कहीं-कहीं उसे ऐसी गंध मिली भी थी। एक अखबार में लिखा गया था कि उसने अपनी पत्नी को अपनानेवाले प्रश्न का उत्तर करने में काफी वक्त लिया था। पर इसे अन्यथा नहीं लिया जा सकता। मनुष्य की प्रकृति ऐसी होती है। मनुष्य बड़ी सावधानी से अपने यश-अपयश का खयाल रखा करता है।

यदि इस लिखे को विरद की विपरीत सोच और आनेवाले दिनों में उसकी नकारात्मक तैयारी मानने की गलती कर दी जाए, तो उसे लगता कि उसने अपने घर की व्यथा को स्वयं बड़ा बना दिया। पर अपना जीवट अपना होने से उसे अपने आप पर विश्वास था। उसे किसी से न किसी प्रकार का आतंक महसूस होता और न वह किसी का जवाबदेह होना अपने लिए जरूरी मानता। उसके हृदय में अन्या की जो तसवीर अंकित थी, वह तसवीर नकारात्मक और अव्यवस्थित हो, तो यह उसके लिए जरूर आत्म ताप का कारण बन जाता। अस्पताल में टी.वी. था। अन्या की आपबीती की सूचना टी.वी. में आई थी। अन्या और अस्पताल की बीमार महिलाओं और उस वॉर्ड के कर्मचारियों ने देखा होगा। अन्या वहाँ थी तो उस समाचार से उसका सरोकार मानकर उससे बात तक की गई हो। अन्या पढ़ी-लिखी महिला थी। उसे सबकी बातों का गुणन करना आता है।

विरद जब अस्पताल गया था, तब दोनों के बीच टी.वी. वाले समाचार की चर्चा हुई थी। अन्या बोली थी, "समाचार 'घटना' पर आधारित तो थी, लेकिन समाचार होने से समाचार की झलक उसमें बहुत थी। पर मेरे लिए यह मान्य है। कोई किसी का दुःख अपनी हथेली पर लेकर बता तो नहीं सकता कि दुःख ऐसा है। मैं मानती हूँ कि मेरी घटना से भी समाचार को चलना था और वह खूब चला।"

विरद अपनी माँ द्वारा पकाया खाना लेकर गया था। अन्या तत्काल तो न खाती, लेकिन विरद उससे यह कौल तो लेता खाने में उसे ध्यान देना होगा। बिस्कुट, फल वगैरह अन्या की दराज में पड़ा हुआ था। विरद ने सबकी जाँच की थी और उससे कहा था, "खाने में बहुत पीछे हो।"

अन्या मौन जैसे स्वर से बोली थी, "ऐसी बात नहीं है।"

दोनों के बीच अब दूसरी बातें होने लगी थीं। पर विरद इस कोशिश में बराबर लगा हुआ था कि अन्या इस कोण पर लौटे, आदमी खाएगा नहीं तो जिएगा कैसे? इसी बीच विरद उससे सुनने के लिए जैसे कान सचेत किए हुए था। उसकी कल्पना में था कि अन्या के शब्द इस तरह से हों, 'घर आने पर खाने की भरपाई कर लूँगी।' पर विरद के भी अपने शब्दों की भूमिका होना आवश्यक होता। काश वह कह पाता, 'घर आओ, तब मैं देखता हूँ कि कैसे खाने में रुचि नहीं लेती हो!'

विरद मीडिया से अपने को अब भी परेशान पाता था, तो यहाँ भी हालत वही थी। अन्या ने उससे कहा था कि मीडिया उसके पास इस प्रश्न के साथ अब भी आ रही है, कुछ स्वस्थ हो जाने पर बोलने की स्थिति में तो होगी? पर अन्या को न तब कुछ बोलना था और न अब उसे बोलने की चाह थी। उसे नहीं लगता कि उसके न बोलने से देश का किसी प्रकार का अहित हो रहा है। न बोलने से अपना भी अहित होनेवाला नहीं है। हित की बात तो बहुत दूर पड़ जाती है। हाँ, अन्या पुलिस से भरपूर सहयोग करती। पुलिस शक की बिना पर किसी अपराधी का चित्र दिखाकर उससे जानना चाहे कि कहीं यही तो नहीं, अन्या चित्र में आँखें बराबर गड़ाकर पहचानने का प्रयास करती।

कहा जाता है कि अपना मॉरिशस अच्छी बातों में तरक्की कर रहा है, लेकिन क्या ऐसा भी होना तय है कि देश को विकृति में तरक्की करने की सनक चढ़ी हुई है? अन्या ने जिस विकृति को झेला, ऐसी विकृति अब बहुत बढ़ती चली जा रही है। इस पर रोक कहाँ है?



सच कहें तो अन्या के जीवन में मानो एक अतिरिक्त काम निकल आया था। चारों बलात्कारी अभी न मिलें तो अन्या उन्हें पहचानने के लिए अपनी आँखों की कोरों को दूर-दूर बिछाए रखेगी। वह पोर्ट लुईस में एक सरकारी ऑफिस में काम करती है। वह बस से आती-जाती है। लोगों के रेले-मेले में उसकी उपस्थिति बने रहने से अपने अपराधियों को पहचान लेना उसके जैसे बाएँ हाथ का काम हो। अन्या के विद्रोही मन में यहाँ तक आ गया था कि उसे अपने साथ कटार रखनी होगी। अपने किसी अपराधी को देख ले तो खून की धारा बहाने से उसे कौन रोक सकेगा? उन चारों के अत्याचार के बाद अस्पताल में दाखिल होकर लोगों के तरह-तरह के प्रश्नों से जूझना, लोगों के कटाक्ष और मनमाने संवाद का एक दयनीय सा पुतला हो जाना, क्या इसी हालात से गुजरने के लिए उसने जन्म पाया था? माँ-बाप ने पढ़ाया, बेटी को नौकरी मिलने का उनका सपना पूरा हुआ, बेटी की शादी हो जाने से उन्हें अपनी जिम्मेदारी पूरी होने सुखद अहसास हुआ, लेकिन विकृत मानसिकता रखनेवाले चार नराधमों के कारण आज अपनों को रोना पड़ रहा है!

अन्या के अपने जीवन के केंद्र में अब तो उसका पति था, सास थी। इन्होंने क्या इसी दिन के लिए अन्या को पसंद किया और शादी से उसे अपने घर ले आए। सारी परिस्थितियों के केंद्र में खड़ी अन्या क्या अपने भाग्य के मामले में इतनी गई-बीती थी कि आज हाहाकार के कारण वह ऐसी होकर रह गई!

□

विरद की अंतरात्मा में अपने परिवार का एक दर्दनाक इतिहास जिंदा था, मानो उस जिंदा इतिहास को कुरेदा गया था। तब तो जो स्थिर था, उसमें न जाने कैसी भीषण हलचल आ गई थी। विरद का परदादा भारत से था। बेटे का यहाँ जन्म हुआ था। उसका नाम बनराज था। वह बागी स्वभाव रखता था। उन दिनों वैसा स्वभाव बहुत आवश्यक था। फ्रांसीसी गोरों का अत्याचार पराकाष्ठा पर होता था। उनसे अपना हक पाने के लिए मानो जान हथेली पर लिये फिरना पड़ता था। गोरे चाहे अपने दबदबे से मजदूर तबके के लोगों का जीवन नारकीय बनाते रहते, लेकिन इन लोगों का अपना पारिवारिक रुतबा तो होता था। ये लोग शादी करते थे और इनका परिवार बढ़ता जाता था। बनराज की भी शादी हुई थी। उसकी पत्नी का नाम नीरा था। पर पति-पत्नी के जीवन में तो जैसे आग का झोंका उमड़ने पर आया था। नीरा पर नापाक आँखें गड़ाई जाने लगी थीं। रोटी के लिए मजदूरी करें, लेकिन मानो रोटी ही अपनी न हो। इसी तरह मान-सम्मान से जीना चाहें, लेकिन मान-सम्मान ही अपना न हो। बनराज की पत्नी नीरा ने सिर झुकाए मजदूरी पर जाने का अपना धर्म बनाया था, लेकिन मानो उसके धर्म पर छपाक से कँटीले पत्थर बरसाए गए थे। यह था इन लोगों का नरक! पत्थर हो तो कँटीला।

गोरा मेलों ने भारतीय खून के दलाल रूका से कहा था अन्या को पटाए। गोरों ने रूका को परखकर देख लिया था, वह तो उनके मन के लायक काम का आदमी था। बस उसे थोड़ी सुविधा देने की आवश्यकता पड़ती। उसे कुछ मजदूर देकर खेतों में काम करवानेवाला 'सरदार' बना दिया गया था। कोई गोरा घोड़े पर हो तो उसके साथ कोड़ा होता था। यह उनके लिए शान और मजदूरों के चीत्कार का जैसे मानो प्रतीक हो। रूका 'सरदार' हुआ, लेकिन गोरा तो न हुआ। मानो गोरों के स्तर से बहुत नीचे पायदानी की अपनी दलाली देह रखने से उसके हाथ में डंडा होता था। डंडा हिला-हिलाकर वह मजदूरों पर रोब झाड़ता रहता था। डंडा पीठ में गड़ाता भी था, डंडे से मारता भी था।

मेलों ने रूका से नीरा के बारे में जो कहा था, उसके लिए मानो उसके ही जैसे उसके अपने वीभत्स भगवान् की ओर से उसका वरदान हो गया था। नीरा को पटाने के लिए उसे सुबह के वक्त कहा गया था और दोपहर का वक्त आते-आते वह अपनी धोती झुलाते नीरा के सामने जा खड़ा हुआ था। उसने नीरा से कहा था कि 'मेनों सहेबवा की देह सेंकने चल, गहनों से लद जाओगी।' रूका और उसके जैसे दूसरे दलालों की औरतों के लिए गहना उनके लिए मानो दूसरा प्राण हो। गहने रूपी प्राण और शरीर के साक्षात् प्राण दोनों में समन्वय हो, तभी उन औरतों की देह में चमक आए।

रूका गहनों के उसी मामले से नीरा को आँक रहा था। गहनों का

मामला तो बाद के लिए होता। इससे पहले रूका की खबर ली जाती। नीरा मजदूरी से लौट रही थी। उसके कंधे पर कुदाल थी। उसने रूका को कुदाल से पीटकर पास के गड्ढे में ढकेल दिया था। हाय-हाय करते वह बड़ी विद्रूपता से वहाँ मर सकता था। वह पूरे प्राण से न मरा, तो मानो आधे प्राण से जिया। एक दिन बाद लोगों को पता चला था कि रूका गड्ढे में अधमरा पड़ा हुआ है। दो-तीन दिन बाद चलने-फिरने के जोग होने पर उसने जाकर मेलों के उलटे-सीधे कान भरे थे। उसके कहने में मुख्य रूप से यह था कि उस औरत ने कहा है, उसे झाड़ू से पीटेगी। नीरा ने ऐसा न भी कहा हो, लेकिन अपनी बात पुष्ट करने और मेलों का क्रोध भड़काने के लिए मानो यह उसका राक्षसी ब्रह्मास्त्र हुआ।

नीरा कुएँ से पानी लाने गई थी। मेलों के आदमी वहीं से उसे उठाकर खेतों के रास्ते से चले गए थे। यह इतनी चालाकी से किया गया था कि कोई देख न पाया था। अय्याशी के लिए गोरों की अपनी जमींदारी के पर्वत में उनका अपना बँगला था। तीन-चार गोरों ने सप्ताह भर नीरा का वहीं शोषण किया था। नीरा वहाँ से किसी तरह भागने में सफल हुई थी, पर वह बस्ती की ओर न आकर जंगल में भाग गई थी। घसहारिनों से उसकी मुलाकात हुई थी। नीरा उन लोगों से बोली थी, 'उसे कहीं बंद करके रखा गया था। वहाँ से भागने पर वह जंगल में आ गई है। घर लौटने पर उसके पति से कह दें कि शरीर दागदार हो जाने से वह लौटनेवाली नहीं है। वह जंगल में या तो आत्महत्या कर लेगी या ऐसे ही भटकते-भटकते एक दिन मर जाएगी।' उसके दागदार शरीर के लिए अपने ही हाथों सजा का यह क्रंदन उसकी आत्मा से आ रहा है!

औरतें उसकी दशा देख रोने लगी थीं। आँचल फैलाकर बड़े ही अनुनय से उससे कहा था कि घर चल, लेकिन वह लौटी नहीं थी। औरतों ने घास काटना भुलाया था। वे भागते गाँव आई थीं और थोड़ी ही देर में बात फैल गई थी कि नीरा को कहाँ देखा गया है। वह जिंदा है, लेकिन मरने का निश्चय उस पर सवार है। लोग उसे ढूँढ़ने तो तत्काल निकल पड़ते, लेकिन सवाल यह होता कि मिल जाने पर उसे लाया जाता तो क्या उसका पति उसे स्वीकार करता?

बनराज को भी मालूम हो गया था कि उसकी नीरा को जंगल में देखा गया है। उसने किसी से कहा नहीं था, लेकिन उसे पता था कि मेलों की ओर से यह सब हुआ है। नीरा ने उससे कहा था कि मेलों सहेबवा के दलाल रूका ने उससे क्या कहा और उसने उस सूअर की कैसी हालत की। नीरा के लापता हो जाने पर बनराज ने रूका को बहुत खोजा था, लेकिन वह मिलता नहीं था। एक बार दिखा, लेकिन बहुत दूर से। नीरा की मार के परिणाम में वह लँगड़ाते और बनराज से बच-बचाव करते दूरी बनाए भागा चला जा रहा था।

नीरा ने अपने पति से तो कहा ही था कि उसके साथ क्या होने की तैयारी चल रही है। नीरा खो गई तो स्वयं मेलों ने बनराज से कहा था। मेलों अपने घोड़े पर था। उसकी पीठ में बंदूक लटकी थी। अपने इसी हथियार के बल पर उसका गुमान था, बनराज उसके सामने मेमना के अलावा और कुछ नहीं है। उसने कहा था कि चिराग लेकर भी ढूँढ़ो, तो तुम्हारी औरत तुम्हें मिलनेवाली नहीं है। मेलों ने उसे कुली मालबार और भी न जाने क्या-क्या कहते और माँ-बहन की गाली देते, उसके गले में बंदूक की नली छुआकर कहा था कि उसे कुआँ खोदने के लिए भेजेगा। कुएँ की खुदाई आधे पर पहुँचेगी तो उस पर बंदूक की गोलियाँ बरसाने आ जाएगा।

मेलों ने यह भी कहा था कि उसकी औरत बोली थी, उसे झाड़ू से पीटेगी। इसी बात का उससे प्रतिकार लिया गया है। झाड़ूवाले प्रतिकार की बात को हटा दें तो गोरों की यही मनोवृत्ति थी। माँ-बहनवाले मजदूर उनके ऐसे आतंक के कारण काँपते थे।

बनराज ने धैर्य रखकर मेलों को पूरा सुना था। सुनने से ही उसे अगली काररवाई का सही ज्ञान आता। वह ज्ञान उसकी अपनी आत्मा से था। ठीक वैसे ही, जैसे नीरा उसकी अपनी अंतरात्मा से थी।

लोग नीरा की खोज में जाने से पहले बनराज से बात करके देख लेते कि वह क्या कह रहा है। पर उससे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बल्कि उसने स्वयं कहा कि उसकी औरत को ढूँढ़ने में उसका साथ दें। लोग गए और नीरा मिली। वह ईख के झुरमुटे में सोई पड़ी थी। उसके पति बनराज ने उसे प्यार से जगाया। दोनों बहुत रोए। लोगों की आँखें भी नम हुईं। नीरा अब भी घर लौटना नहीं चाहती थी, लेकिन बनराज उसे लाता। थकी निढाल सी नीरा चल न पाती। बनराज खेत, नाले, जंगल सब पार करता, उसे अपनी पीठ पर ढोकर लाया था। सब-के-सब साथी बनराज के उस प्रेम के साक्षी थे।

बनराज अपना इरादा पूरा करने के लिए वक्त ढूँढ़ता रहा, लेकिन वक्त उसके अनुकूल बनता ही नहीं था। अचानक पता चला था कि मेलों अगली सुबह अपने पितृ देश फ्रांस जानेवाला है। तब तो बनराज के लिए आज का ही दिन शेष था।

बनराज को अपना इरादा पूरा करने के लिए अपने विश्वसनीय मित्रों का भरपूर सहयोग मिला था। किसी मित्र ने छिपकर टोह ली कि मेलों किस रास्ते से आनेवाला है। कोई पता लगाने में लगा रहा कि गोरों के रूका जैसे दलाल जानने की कोशिश तो न कर रहे हैं कि इन सबके चेहरे क्यों इस तरह तने हैं और लगता है कि ये आपस में आँखों-आँखों कोई भीषण बात कर रहे हैं। दिन में मेलों खेतों की ओर आता दिखाई नहीं दिया था। अगली सुबह उसे जाना था, तैयारी में लगा होगा। बस एक शाम की अपेक्षा की जा सकती थी। जमींदारी के मालिक मोसेन घोड़ा बग्गी में और दूसरे गोरे घोड़े में इधर आ सकते थे। हवाखोरी के लिए उनका यही वक्त होता था। तो क्या आशा की जा सकती थी कि कल यहाँ से जानेवाला मेलों अपने लोगों की तरह खुली हवा में भ्रमण करने आएगा? वह घोड़े पर आया, लेकिन वह अपने गोरे बांधवों के साथ था। उनके दुर्ग को बेधना आसान न था। तभी देखा गया था कि पोके नाम का गोरा पैदल चला आ रहा है। उसके साथ पाँच कुत्ते थे। सभी लोग जानते थे कि पोके बहुत बड़ा शिकारी है। सभी कुत्तों के गले में चेन थी। पोके ने चेन का एक किनारा अपनी मुट्ठी में पकड़ रखा था। कुत्ते उसकी पकड़ से छूटकर भागने के लिए मचलने के साथ भौंक रहे थे। वे छूटते ही खेतों-जंगलों में घुसते और खरगोशों का शिकार करके अपने मुँह में दबाए अपने मालिक के पास लौट रहे होते।

बनराज के मित्रों ने जान पर खेलने का संकल्प तो ले ही रखा था। गोरे उन्हें देख लेते और उनका इरादा समझ लिया जाता तो उन्हें पकड़ने के लिए पहरेदारों को बुला लिया जाता। पकड़े जाने पर लोगों को बड़े साहेब मोसेन के कैदखाने में बंद कर दिया जाता। मार से इनका कुछ न्याय यहाँ होता और बागी की परिभाषा से इन्हें अंग्रेज सरकार की पुलिस के हवाले कर दिया जाता। पर अब जो भी होता, लोग पीछे हटनेवाले नहीं थे। लोगों के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि बनराज के हाथ में चमचम धारदार गँड़ासा था, जिससे उसे मेलों को खत्म करना था। मेलों के खून का प्यासा उसका गँड़ासा खाली न जाए!

लोग किसी तरह लंबे गन्नों के खेत से होते पोके के करीब आए थे और दनादन कुत्तों पर पत्थर चलाने लगे थे। लोगों ने एक और दृश्य चलायमान किया था। ईख को हाथ से पकड़कर इस तरह हिलाने लगे थे, मानो मानवी बवंडर का उत्पात मचा हो। लोग आवाज बदलकर भुतहा आवाज भी मुँह से निकाल रहे थे। भूत के प्रति गोरों की मानसिकता जानने से ऐसा किया जा रहा था। किसी गोरे के बँगले के सामने सुबह कटा हुआ नीबू देखने को मिल जाए, तो जमींदारी के पूरे गोरे समुदाय में भयावहता छा जाती थी। यही कारण रहा कि भूत, प्रेत, ओझा, डायन वगैरह का ढोंग फलता-फूलता चला जा रहा था। गोरा अपने यहाँ पैठे हुए भूत को भगाने के लिए किसी ओझा को बुलाए तो उस ओझा की पाँचों उँगलियाँ मानो घी में हों। उसे खेती के लिए जमीन मिल जाए या उसके बच्चों को अच्छी नौकरी मिलने की संभावना बन आए।

पत्थर चलाना, बवंडर पैदा करना, भूत का समा बाँधना यह सब गोरों को डराने और कुत्तों को विचलित करने के लिए था। एक पत्थर पोके को लगने से वह 'माई-बाप' करते चिल्लाने लगा था। उसके हाथ से कुत्तों की सारी चेन छूट गई थीं और कुत्ते भौंकते भागने लगे थे। घोड़ों को विचलित करने का लोगों का उद्देश्य सार्थक हुआ था। घोड़े हिनहिनाए थे और गोरों को अपनी पीठ पर लिये इधर-उधर भागने लगे थे। मेलों का घोड़ा तभी भाग सका था, जब उस पर सवार उसके मालिक को खींचकर नीचे गिरा दिया गया था। अपनी-अपनी चिंता प्रमुख होने से दूसरे गोरे देख न पाए थे कि उनके एक गोरे बांधव पर क्या बीत रही है!

बनराज ने मेलों को गँड़ासे से टुकड़ों में काटकर खेत के कुएँ में फेंक दिया था। बाद में मेलों का पता चला था। पर तब तक शव आधा सड़ गया था। कीड़े-मकोड़े उसे अपना आहार जानकर बूँद-बूँद खाते रहते थे।

बनराज का घर अब नीरा के साथ निष्कंटक बसा था। उनकी पाँच संतानें हुईं। दो बेटे और तीन बेटियाँ। बाद में देश में भारतीय वंशजों को कुछ सुविधा हो जाने से दोनों के बच्चे खूब पढ़े-लिखे।

☐

विरद ने इतिहास के अपने परिवार के बनराज और नीरा के बारे में बहुत सोचा। उन दोनों की तसवीर तो न थी, लेकिन उसे लगा कि तसवीर से बहुत आगे दोनों युगल मूर्ति में जड़े होकर उसके घर में शोभायमान हैं। मानो मारीच देश के राधा-किसन हों, सीता और राम हों। अपने परिवार के बनराज ने अपनी पत्नी को दिनों गोरों के चंगुल में जानकर भी उसे अपनाया था। बनराज पढ़ा-लिखा नहीं था। आज जमाना कहाँ पहुँच गया। उसी बनराज के परिवार में सब लिखे-पढ़े हैं। विरद पढ़ाई की बात को छोड़ दें और पति-पत्नी के स्तर से अपनी शिनाख्त करें तो दोनों के बीच जो हुआ था, वह एक 'हादसा' था। अन्या शादी से अपनी ससुराल आई थी। शादी के बाद पहले दिन वह नौकरी पर जा रही थी। दोनों ने आपस में बात की थी और उनके संवाद के अंतिम शब्द थे, 'शाम को मिलेंगे।' पर शाम को मिल न पाए। अब मिलन में एक दरार मानें तो वह यह है कि अन्या चार मर्दों की हवस की शिकार हो चुकी है।

विरद ने रामायण से जाना था कि सीता निर्दोष थी, फिर भी राम ने उसका त्याग किया था। बस बीच में बाधा का धागा इतना सा था कि एक धोबी ने अपशब्दों से टिप्पणी की थी। रामायण मारीच देश आने से वह टिप्पणी भी आई। वैसे टिप्पणीकारों से आज का मॉरिशस पटा हुआ है। पर टिप्पणीकारों की परिभाषा जानते भी विरद की परिभाषा उसकी अपनी है। अन्या को छोड़ना या अपनाना उसके स्वयं से शुरू होकर स्वयं में पूर्ण होना है।

☐

विरद अन्या को देखने रोज अस्पताल जाता ही था। उसकी माँ दो-तीन बार गई। विरद का पिता न था। भाई-बहन भी नहीं थे। माँ से बात हुई नहीं, अब क्या करना होगा? पर माँ इतना अवश्य कहती थी कि हमारे पुरखे बनराज और नीरा वाली घटना हमारे यहाँ फिर से घटी है। माँ ने यह तो न कहा कि बनराज ने नीरा को न छोड़ा था, तुम भी न छोड़ना बेटे। पर माँ की सकारात्मक दुविधा उसके बेटे को मालूम पड़ती थी। बहू घर आए तो इसमें मानवता होगी और उसे छोड़ें तो बेचारी का दुःख बहुत बढ़ेगा। सही आकलन में पड़ें तो वह इस तरह से होगा कि अन्या के आँसू पोंछने के लिए उसका पति न हो तो और कौन होगा? अपनी सास उसे दुलार न दे तो किस औरत को पड़ी है कि उसे रोककर कहे, अपने घर में तुम्हें शरण देती हूँ? अन्या की अपनी सास और पति के संग में हों, तो हो सकता है कि समझाने-बुझाने से उसका दुःख कम हो। पर यही सब बाहर के लोगों के लिए छोड़ा जाए तो यह ऐसा होगा कि जिसका आँचल मैला जाना, उस पर और छींटाकशी करके उसे मरने के लिए मजबूर कर दिया जाए। अन्या मरे तो लोग यही तो कहेंगे कि उसे सास और पति से दुत्कार मिलता रहा, जिसका परिणाम उसके प्राणांत में देखने को मिल रहा है। हम माँ-बेटे अपने बीच सोच-विचार तो करें कि क्या नीरा पर बाहर में इतना कुछ बीते और हम घर के उसके अपने इन बातों में ध्यान न दें?

□

डॉक्टर ने सुबह अन्या का इलाज करते वक्त उससे कह दिया था कि अस्पताल के उसके दिन पूरे हुए। आज शाम को उसके परिवार के लोग आएँ तो उसे उनके साथ जाना था। घर जाने की प्यारी सी बात सुननेवाली अन्या के चेहरे पर आह्लाद घनीभूत होते-होते बुझ गया। समस्या विकट थी कि उसे जाना था तो कहाँ? पति की बातों से अन्या के लिए अर्थ तो एक ही बनता था कि उसके प्रति विरद की स्वीकारोक्ति संदेह से परे है। पर आज हालत परिवर्तित थी। अस्पताल में मरीजों से मिलने का वक्त होने पर विरद उससे मिलने आता था और जाने का वक्त आने पर वह चला जाता था। अन्या यहीं पड़ी रहती थी। आज विरद को अकेले जाना नहीं होता, क्योंकि अन्या को भी जाना था। पति का स्वभाव जानना उसके लिए अभी शायद अधूरा था। नई-नई शादी का मानो यही फासला हो। एक-दूसरे को समझने के लिए तो अब मानो खाता खुलता, लेकिन बीच में चार नीच लोगों ने उनके जीवन में ऐसी कालिख पोत दी!

अन्या की माँ रोज न आ पाती थी, क्योंकि उसका घर बहुत दूर था। आज वह आती कि न आती, इस दुविधा से परे अन्या ने उसे फोन करके बुला लिया था। यह उसकी अपनी तैयारी थी। जाने का घर उसकी माँ का भी हो सकता था।

विरद अस्पताल पहुँचा। अन्या की माँ को देख उसने नमस्ते किया। आज अस्पताल के कर्मचारी और मरीज, सबकी आँखें अन्या और उसके पति पर होतीं। विरद को मालूम हुआ कि अन्या को अस्पताल से छुट्टी मिल गई है। इस समाचार में मानो उसके अपने किसी जन्म के पुण्य गुंफित थे। उसने अन्या को अपनी बाँहों में कस लिया।

सा अ

मॉरिशस

लक्ष्मी श्रेष्ठ या विष्णु?

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

कहते हैं, एक बार विष्णु और लक्ष्मी में विवाद छिड़ा कि कौन अधिक जनप्रिय है? बस, इस विवाद को निरखने-परखने दोनों मृत्युलोक में चले आए। विष्णु एक संन्यासी के रूप में एक सेठ के आलीशान बँगले में आ गए। नियमित रूप से सत्संग करने लगे। कथा सुनकर सेठ-सेठानी, पुत्र और पुत्रवधू जहाँ अपने भाग्य की सराहना करते थे, वहाँ हजारों लोगों की भीड़ भी झूम उठती थी। प्रतिदिन वृद्धिगत उमड़ते हुए इस जनसमूह को देखकर विष्णु का मन नौ-नौ बाँस उछलता था। एक दिन कथा का मजमा अच्छे ढंग से जमा हुआ था, इतने में लक्ष्मी एक बूढ़ी भिखारिन का रूप बनाकर वहाँ आईं। द्वार पर खड़ी रहकर 'पानी पिलाओ-पानी पिलाओ' चिल्लाने लगीं। सेठानी ने दो-चार बार सुना-अनसुना किया, पर बार-बार उसकी आवाज सुनकर पुत्रवधू से जल पिलाने को कहा। पुत्रवधू भी कथा के सरस प्रसंग को छोड़ना नहीं चाहती थी, पर सास का आदेश जो था। बेचारी करे भी तो क्या? वहाँ से जल्दी-जल्दी उठी, पानी का लोटा भरकर ले आई। जब उसे पिलाने लगी तो भिखारिन रूपी लक्ष्मी ने अपनी झोली में से एक रत्नजटित स्वर्ण कटोरा निकाला और उसमें पानी पिया। "पानी गरम है" कहकर कटोरा फेंक दिया। थोड़ा ठंडा पानी और लाने को कहा।

पुत्रवधू कटोरा देखकर हैरान हो गई। जाकर ठंडा पानी लेकर आई। उसने थोड़ा सा पिया और बोली, "ठंडा तो है, पर खारा है" कहकर पानी गिराकर कटोरा वहीं फेंक दिया। चार-पाँच कटोरों को यों फेंके देखकर बहू की बुद्धि चक्कर खाने लगी। दौड़ी-दौड़ी अंदर गई सास को लेने। सास ने जब आकर देखा तो सोचा कि ये लक्ष्मी ही हैं या कोई भिखारिन? आगे जाती लक्ष्मी का पैर पकड़कर कहा, "ये कटोरे यहाँ छोड़कर कहाँ जा रही हैं?"

"मेरा तो नियम कुछ ऐसा ही है। मैं जहाँ जल पीती हूँ, भोजन करती हूँ, उन रत्नजटित स्वर्ण थालों को-कटोरों को वहीं छोड़ दिया करती हूँ। जिसमें एक बार जल पी लेती हूँ, उसमें दुबारा पीना मेरे धर्म के खिलाफ है।"

सेठानी, सेठ और अड़ोसी-पड़ोसी सब उसे सेठ के यहाँ रहने के लिए आग्रह-भरी प्रार्थना करने लगे। यह अपनी अलमस्ती से बोली, "जिस मकान में साधु ठहरा हुआ है, मैं वहाँ कैसे ठहर सकती हूँ?"

लक्ष्मी की साक्षात् मूर्ति को ठुकराकर लोग स्वर्ग-नरक की चर्चा सुनने उस बाबा को अपने यहाँ रखें, यह भला कब संभव हो सकता था? पड़ने लगे बाबा को धक्के! जल्दी-से-जल्दी उसे घर से बाहर निकाल दिया गया। संन्यासी, ''जाता हूँ, जाता हूँ'' कहता जा रहा था, "मैंने पहले ही कहा था, मैं चार महीने यहीं रहूँगा। तुम अपने वादे से मुकर रहे हो।" पर सुने कौन?

तब भिखारिन बोली, "तुम लोग जब इनसे वचनबद्ध थे, फिर भी इन्हें निकाल रहे हो? तो कल मेरे साथ भी ऐसा ही करोगे! ऐसों के यहाँ मैं भी नहीं रहना चाहती।"

संन्यासी और भिखारिन के रूप में लक्ष्मी ने जाते-जाते विष्णु से पूछ ही लिया, "क्यों, देख लिया न, कौन अधिक प्रिय है?"

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

एक भले आदमी की कहानी

• सुभाष चंदर



प्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं आलोचक। व्यंग्य पर सात पुस्तकों सहित कुल ४१ पुस्तकों का लेखन। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय पुरस्कार, डॉ. मेघनाथ साहा पुरस्कार, अट्टहास सम्मान, हरिशंकर परसाई सम्मान से सम्मानित।

यह कहानी एक दयालु, भले और समझदार आदमी की है।

वह आदमी इतना दयालु था कि सूरज को जल भी चढ़ाता तो वह गरम होता था कि कहीं सूरज भगवान् को जुकाम न हो जाए।

इतना भला था कि बैडमिंटन खेलता था तो शटल को जोर से नहीं मारता था कि कहीं उसे चोट न लग जाए। समझदार भी इतना कि किसी की कार में बैठता तो भी हैलमेट लगाकर बैठता था कि कहीं ऐसा न हो कि बाहर से कोई पत्थर फेंक दे और उसका सर फूट जाए। उसकी जुबान इतनी मीठी थी कि आस-पास के लोगों को डायबिटीज का खतरा हो जाता था। इसी मीठी जुबान से वह कहता था कि रिश्तों में पैसे का लेन-देन नहीं आना चाहिए, वरना रिश्ते खराब हो जाते हैं।

ऐसी बातें वह सिर्फ कहता ही नहीं था, मानता भी था। यही कारण था कि वह चाहे किसी शादी में जाता या जन्मदिन की पार्टी में, सपरिवार जाता था और लिफाफा कभी नहीं ले जाता था। शगुन के रूप में वह हमेशा आशीर्वाद देता था। इसका भुगतान किए बगैर वह कभी खाना नहीं खाता था। उसमें इतनी सारी अच्छाइयाँ थीं, फिर भी लोग उससे नाराज रहते थे। उसके बारे में जाने कैसी-कैसी बातें करते थे। और तो और, धीरे-धीरे लोगों ने उसे शादी-वगैरह में बुलाना भी बंद कर दिया था। वह कहीं दिख जाता तो लोग कतराकर निकल जाते। सामने ही पड़ जाए तो बात अलग थी, उस समय दुआ-सलाम करना मजबूरी थी। भला आदमी सबकुछ देख रहा था, उसे समझ नहीं आ रहा था कि उस जैसे सज्जन पुरुष के साथ लोग ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं? उससे लोग बचके निकले, बात न करें, इसे वह बरदाश्त कर सकता था, पर शादी-ब्याह में न बुलाएँ, वह इसे सहन नहीं कर सकता था। शादियों में जाने का उसका उद्देश्य आशीर्वाद देना ही था, खाना तो बस वह वैसे ही खा लेता था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? उसके आशीर्वाद की गैस उसके गले में अटकी पड़ी थी, जिसे निकलने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा था। वह आशीर्वादों के कारण बेचैन था तो उसके घरवालों को शादी-ब्याह के लजीज व्यंजन बेचैन कर रहे थे। जब काफी दिनों से कोई निमंत्रण नहीं मिला तो उसकी समझदार पत्नी का माथा ठनका। उसने नई साड़ी खरीदी थी, पर उसे दिखाने का मौका नहीं मिल रहा था। सो उसने भले आदमी से शिकायत की, "क्यों जी, अब आप हमें किसी ब्याह-बारात में ना ले जाते। क्या अकेले-अकेले ही दावत मार आते हो?"

पत्नी ने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया। वह दर्द भरे स्वर में बोला, "ना भागवान्, पता नहीं लोगों में किस बात की नाराजगी है? अब कोई बुलाता ही नहीं है। मैं खुद परेशान हूँ, कितने सारे आशीर्वाद तैयार रखे हैं, निकल ही नहीं पा रहे। भगवान् जाने मेरे आशीर्वादों के बिना शादियाँ आगे कैसे चलेंगी? देखो, आज पांडेजी की लड़की की शादी है, उन्होंने भी निमंत्रण नहीं दिया, क्या यह ठीक है, उन्हें भी मेरा आशीर्वाद नहीं चाहिए?" उसने अपना दर्द उँड़ेल दिया।

पत्नी समझदार थी, उसकी पीड़ा समझ गई। वह बोली, "देखो जी, पांडेजी ने नहीं बुलाया तो क्या हुआ। शादी-ब्याह में हजार काम होते हैं। हो सकता है, वे भूल गए हों। वे भूल जाएँ, पर आप तो अपना कर्तव्य मत भूलो।"

यह बात भले आदमी की समझ में आ गई। समझ पर लगे ताले खुल गए। उसने सोचा, सही बात है। लोग निमंत्रण देना भूल जाएँ तो क्या, मैं तो आशीर्वाद देना याद रखूँ। उसने कुछ देर सोचा, फिर पत्नी से कहा, "जाओ बच्चों के साथ तैयार हो जाओ। पांडेजी की लड़की की शादी में जाना है।"

पत्नी प्रसन्न हो गई। उसकी नाक को शादी के लजीज व्यंजनों की महक आने लगी। 'वह नई साड़ी में गोलगप्पे टूँगती हुई कैसी लगेगी', यह सोचती हुई वह बच्चों और खुद को तैयार करने चली गई। उधर भला आदमी दिमाग की डिक्शनरी में से उन शब्दों को खोजकर अलग करने लगा, जो बिना निमंत्रण के कहीं जाने पर प्रयोग में आते हैं। थोड़ी देर में उसके दिमाग में पचासों शब्द आ गए। अब वह निश्चिंत हो गया।

घंटेभर बाद वह अपनी नई शादीशुदा पत्नी और चारों बच्चों के साथ

पांडेजी की बिटिया की शादी में पहुँच गया। सामने ही पांडेजी खड़े थे। भले आदमी को देखकर चौंके। कुछ कहने ही वाले थे कि भले आदमी ने उन्हें रोक दिया, "ना···ना कुछ मत कहो पांडेजी, हम समझते हैं। शादी-ब्याह के हजार काम होते हैं, निमंत्रण देना भूल गए होंगे। पर हम कैसे भूल सकते हैं? हमारे-आपके इतने पुराने संबंध हैं, फिर जैसी आपकी बिटिया, वैसी हमारी बिटिया। भला उसके ब्याह में हम कैसे न आते! सो आशीर्वाद देने चले आए।"

अब पांडेजी के पास 'हूँ, हाँ' करने और खीसें निपोरने के अलावा चारा क्या था?

उन्हें इसी में व्यस्त छोड़कर भला आदमी आगे बढ़ गया। वहीं, जहाँ उसके आशीर्वादों को इंवेस्ट किया जा सकता था, मतलब स्टेज पर। उसने पहले जाकर पांडेजी की बिटिया को ढेर सारे आशीर्वाद दिए, उसके और दूल्हे के सिर पर हाथ रखकर फोटो खिंचाए। इस कार्यक्रम की समाप्ति के बाद वह मय परिवार खाने की मेजों की ओर बढ़ गया। वहाँ से वापसी तभी हुई, जब डकारों ने यह बताना शुरू कर दिया कि अब पेट के गोदाम में तनिक भी जगह नहीं बची है। ज्यादा ठूँसने पर टंकी फट भी सकती है।

उन्हें इसी में व्यस्त छोड़कर भला आदमी आगे बढ़ गया। वहीं, जहाँ उसके आशीर्वादों को इंवेस्ट किया जा सकता था, मतलब स्टेज पर। उसने पहले जाकर पांडेजी की बिटिया को ढेर सारे आशीर्वाद दिए, उसके और दूल्हे के सिर पर हाथ रखकर फोटो खिंचाए। इस कार्यक्रम की समाप्ति के बाद वह मय परिवार खाने की मेजों की ओर बढ़ गया।

उसी रात भले आदमी को अच्छी नींद आई। आखिर उसे आशीर्वादों की खपत का नया रास्ता जो मिल गया था।

काफी दिन तक आशीर्वादों का स्टॉक ऐसे ही काम आता रहा। वह बिना बुलाए ही सपरिवार समारोहों में जाता, पहले बधाई और आशीर्वाद का भुगतान करता, फिर भोजन के साथ न्याय करता।

धीरे-धीरे पूरे शहर में उसके इन क्रिया-कलापों की धूम मच गई। लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें करने लगे। पर उसे फर्क नहीं पड़ा। वह बदस्तूर आशीर्वाद बाँटता रहा। आशीर्वाद के भुगतान के बाद सपरिवार दावतें खाता रहा।

उस शाम को भी ऐसा ही हुआ। शहर के रईस श्रीवास्तवजी के पोते के जन्मदिन की पार्टी थी। वे हर साल बड़ी धूम-धाम से पोते का जन्मदिन मनाते थे। इस बार तो उन्होंने शहर का सबसे बढ़िया बैंक्वेट हॉल बुक किया था, जिसकी प्रति प्लेट कीमत ही डेढ़ हजार रुपए थी। पता चला था कि वहाँ सैकड़ों तरह के व्यंजन बननेवाले हैं। मिठाइयों की ही दर्जनों वैरायटीज थीं।

इतना जानने के बाद तो भले आदमी को वहाँ जाना ही था। सो उसने आशीर्वादों की कई सारी वैराइटी साथ लीं और ठीक टाइम पर पत्नी और चारों बच्चों के साथ कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने वहाँ पहुँच गया।

कार्यक्रम स्थल बहुत शानदार ढंग से सजा था। श्रीवास्तवजी अपनी श्रीमतीजी के साथ मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। उन्होंने जो भले आदमी को उधर आते देखा तो उनकी आत्मा प्रसन्न हो गई। इसी प्रसन्नता में उन्होंने भले आदमी की फौज के सिपाही गिने। पूरे छह थे। उन्होंने हिसाब लगाना शुरू कर दिया कि उन्हें भले आदमी का आशीर्वाद कितने का पड़नेवाला है! हिसाब लगाकर बताया कि आशीर्वाद पूरे नौ हजार का पड़ रहा है। उन्होंने सोचा, सौदा महँगा है। यह सोचते ही उन्हें अपने छोटे बेटे मन्नू की याद आई। ऐसे मौकों पर मन्नू ही काम आ सकता था। वैसे भी मन्नू की ख्याति उसकी कतरनी सी जुबान को लेकर थी। वह 'साफ बोलना, सुखी रहना' में विश्वास करनेवाला बंदा था। साफ बोलने के मामले में वह शालीनता, बड़ों की इज्जत जैसी बेकार की बातों को नहीं लाता था।

श्रीवास्तवजी ने बुलाया। मन्नू आया, उन्होंने पहले इशारे से मन्नू को भला आदमी और उसका परिवार दिखाया। उसके बाद उसके कानों में कुछ फुसफुसाए और फिर संतुष्ट होकर भीड़ में खो गए। उनकी जगह मेहमानों के स्वागत की जिम्मेदारी अब मन्नू ने सँभाल ली।

भला आदमी जैसे ही गेट में घुसा, उसका सीधा सामना मन्नू से हुआ। उसका माथा ठनका। कारण, कि मन्नू की ख्याति की कहानियाँ उसने भी सुन रखी थीं। उसने बचकर निकलने की कोशिश की। पर मन्नू सामने आ गया।

"क्यों अंकल, कैसे आना हुआ?" मन्नू के स्वर में पर्याप्त मात्रा में अक्खड़ता थी।

"हें···हें···हें···बेटा···वो बस···बच्चे को आशीर्वाद देने आया था। बच्चे को मतलब··· तुम्हारे भतीजे को। श्रीवास्तवजी अपने पुराने मित्र हैं, इधर दिखाई नहीं दे रहे। मिलकर उन्हें बधाई तो दे दूँ।" अपनी तरफ से भले आदमी ने बात सँभालने की पूरी कोशिश की। मन्नू से बच निकलने की भी। पर उसका नाम भी मन्नू था।

भले आदमी ने बच निकलने को कदम बढ़ाए ही थे कि वह फिर से रास्ता रोककर खड़ा हो गया। फिर बोला, "अंकल, रुको तो। आप तो घुसे ही जा रहे हो। यह बताओ कि आपको बुलाया किसने था?" उसने सीधा प्रश्न दाग दिया।

सुनते ही भला आदमी अकबका गया।

किसी तरह हकलाते हुए बोला, "बेटा···वो···वो···श्रीवास्तवजी··· श्रीवास्तवजी···।" वह कुछ आगे कहने के लिए शब्द जुटा ही रहा था कि मन्नू ने मौका नहीं दिया।

"अंकल, मैं जानता हूँ, आपको पापा ने नहीं बुलाया। सारे इनवीटेशन मैंने ही बाँटे हैं। आपका नाम उनमें नहीं था। फिर बिन बुलाए आप कैसे आ गए?" मन्नू के स्वर में हिकारत थी।

"बेटा···वो···वो···मैं···मैं···" भला आदमी मिमियाया।

"ये बकरी की तरह में-में करना बंद कीजिए। मेरे सामने ये सब ड्रामे नहीं चलेंगे।" मन्नू भड़क गया। इसके बाद भुनभुनाता हुआ बोला, "पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते हैं बिना बुलाए, बेशर्मों की तरह। शर्म भी नहीं आती।"

और कोई होता तो धरती फटने का इंतजार करता, ताकि शर्म से उसमें समा सके। पर वह भला आदमी था। वह शर्म-वर्म के लफड़े में ज्यादा पड़नेवाला इनसान नहीं था। उसने हिम्मत नहीं छोड़ी। अपने आशीर्वाद की ताकत पर भरोसा किया। उसने थोड़ा सोचा और फिर रिरियाते स्वर में बोला, “बेटा, इतनी दूर से आए हैं। बच्चे को आर्शीर्वाद तो देने दो।”

मन्नू ने सोचा, आशीर्वाद से क्या बिगड़ता है, देने दो।

वह उसे अपने साथ बर्थ डे बॉय के पास ले गया। उनका परिवार पीछे-पीछे अपने आप आ गया। भले आदमी ने बच्चा देखा, उसकी माँ देखी। फिर आशीर्वादों की पोटली खोली दी। ढेर सारे आशीर्वाद दिए। पूरी पोटली खाली कर दी। कनखियों से देखता भी रहा कि मन्नू चला जाए तो आगे की काररवाई पर सोचा जाए।

पर मन्नू भी एक खिलाड़ी था। वह हिला भी नहीं।

भले आदमी की आँखों में निराशा भर आई। उसने फिर भी आखिरी कोशिश की कि आशीर्वाद का मुनाफा मिल जाए। बीवी को घर जाकर खाना न बनाना पड़े। सो वह मन्नू की नजर बचाते हुए खाने के स्टॉल की ओर चलने लगा। बीवी-बच्चे पीछे-पीछे थे ही।

तभी मन्नू ने पीछे से फिर टोक दिया, “क्या अंकल, आपका आशीर्वाद-वाशीर्वाद का ड्रामा तो हो गया न। उधर कहाँ जा रहे हैं, उधर खाना चल रहा है, बाहर जाने का रास्ता इस तरफ है। निकलिए अब, बहुत हो गया।”

“बेटा…वो…वो…थोड़ा…खाना खा लेते, बच्चों को भूख लगी है…” भले आदमी ने स्वर में थोड़ी बेशर्मी और रिरियाहट मिला दी।

पर मन्नू के दिमाग में लगे थर्मामीटर का पारा चढ़ गया। वह भिन्नाकर बोला, “बड़े बेशर्म आदमी हैं आप। एक तो बिना बुलाए घुस आए, ऊपर से आपको खाना भी चाहिए। जानते हैं न डेढ़ हजार रुपए की प्लेट है। खाना है तो नौ हजार रुपए निकालिए, वरना भागिए यहाँ से।”

भले आदमी के पास भलमनसाहत थी, बधाई थी, आशीर्वाद था, रुपए कहाँ थे? वह सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

मन्नू भिनक गया। बोला, “अंकल, ज्यादा नौटंकी मत कीजिए और जाइए यहाँ से। वरना मुझे दरबान को बुलाना पड़ेगा। वही आपको धक्के देकर बाहर निकालेगा।”

मन्नू के वचन सुनते ही भला आदमी घबरा गया।

अब कुछ नहीं हो सकता था।

भले आदमी का शराफत से यकीन उठ गया। वह सपरिवार वापस लौट लिया। उसे बहुत दुःख था। उसे जीवन में पहली बार अपने आशीर्वादों का भुगतान नहीं मिला था।

घर आकर पत्नी को खाना बनाना पड़ा। वह बड़बड़ाती रही। भले आदमी को कोसती रही। पर भला आदमी यही सोचता रहा, ‘हे भगवान्, ये सहारा भी चला गया। उसके बधाइयों और आशीर्वादों के स्टॉक का क्या होगा? वो तो गोदाम में पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा।’

कुछ दिन ऐसे ही कटे।

फिर एक दिन बीड़ी पीते-पीते उसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि शहर में अपने मोहल्ले के अलावा भी तो और मोहल्ले हैं, आस-पास के शहर भी हैं, जिनमें वह आशीर्वादों की खपत कर सकता है।

उसने इस योजना पर काम करना शुरू कर दिया। इससे उसका रिक्शे-ताँगे और बस का खर्च जरूर बढ़ा। इसका भी उसने तरीका निकाल लिया। उसने ऐसी जगहों पर अपने साथ कुछ पॉलीथीन की थैलियाँ ले जानी शुरू कर दीं, जो खाली जातीं, वापसी में पूड़ी, सब्जी, मिठाइयों से भरकर आतीं। आशीर्वाद और खर्च दोनों की समस्या का हल निकल आया।

कुछ साल ऐसे ही गुजर गए। अब तक भले आदमी का बड़ा लड़का जवान हो गया था। अच्छी-भली नौकरी भी कर रहा था। भले आदमी को उसका ब्याह करना था। कई जगह देखने के बाद उसका रिश्ता पक्का हुआ। पहले रिसेप्शन होना था, उसके बाद बारात जानी थी। लड़कीवाले रिसेप्शन में लड़केवालों का स्टैंडर्ड चैक करना चाहते थे। वे लोग अच्छे पैसेवाले थे। उन पर इंप्रेशन मारने के लिए बढ़िया रिसेप्शन जरूरी था, वरना उनके बिदकने का डर था। वे बिदकते तो माँगों का बाजार गिर जाता। जेवर, नकदी, सामान में कटौती हो जाती। भले आदमी कटौती कहाँ बरदाश्त कर पाते हैं?

कुछ साल ऐसे ही गुजर गए। अब तक भले आदमी का बड़ा लड़का जवान हो गया था। अच्छी-भली नौकरी भी कर रहा था। भले आदमी को उसका ब्याह करना था। कई जगह देखने के बाद उसका रिश्ता पक्का हुआ। पहले रिसेप्शन होना था, उसके बाद बारात जानी थी। लड़कीवाले रिसेप्शन में लड़केवालों का स्टैंडर्ड चैक करना चाहते थे। वे लोग अच्छे पैसेवाले थे। उन पर इंप्रेशन मारने के लिए बढ़िया रिसेप्शन जरूरी था, वरना उनके बिदकने का डर था। वे बिदकते तो माँगों का बाजार गिर जाता। जेवर, नकदी, सामान में कटौती हो जाती। भले आदमी कटौती कहाँ बरदाश्त कर पाते हैं?

सो शहर के अच्छे बैंक्वेट हॉल में रिसेप्शन का प्रोग्राम बनाया गया। सौ लोगों का एस्टीमेट था। बीस-पच्चीस लोग तो लड़कीवालों के ही हो जाने थे। बीसेक अपने नजदीकी रिश्तेदार बनते थे, जिन्हें बुलाए बगैर गुजारा नहीं था। पाँच-सात लड़के के दोस्त होने थे। बाकी पचास लोग, वे चुने गए, जो अभी तक आशीर्वाद की भेंट या तो ले नहीं पाए थे या अभी भले आदमी की भलमनसाहत से पूरे परिचित नहीं थे। कहना न होगा कि इस पार्टी में अपने मोहल्ले के लोगों को निमंत्रण नहीं किया गया। पूरे परिवार को हिदायत दी गई कि कोई भी मोहल्ले में इस बात का जिक्र न करे। किसी को कुछ भी पता न लगे। पर मोहल्लेवालों को पता चल गया।

सारे आशीर्वादयाफ्ता लोगों की एक गुप्त मीटिंग हुई। इस मीटिंग में दारोगा मलखान सिंह भी थे, तो इंजीनियर पांडेजी भी। लाला रामदयाल भी

थे तो बदरी पहलवान भी। बैठक में सर्वसम्मति से कुछ निर्णय भी लिये गए।

इसके बाद सभा बरखास्त हो गई। रिसेप्शनवाले दिन बैंक्वेट हॉल में काफी गहमा-गहमी थी। भला आदमी खुद सारी व्यवस्थाएँ देख रहा था। पर उसकी हिदायत के अनुसार खाना लड़कीवालों के आने के बाद शुरू होना था।

सारी व्यवस्था चाक-चौबंद थी। खाना तैयार हो चुका था। खाने की प्लेटें गिनने के लिए उसने छोटे बेटे की ड्यूटी लगा दी थी। उसे सख्त हिदायत दी गई थी कि बच्चों को अलग प्लेट न दे। कोशिश करे कि दो-तीन आदमी एक ही प्लेट में खा लें। उसकी इच्छा थी कि प्लेटें सौ से भी कम उपयोग में आएँ, ताकि कुछ पैसे बच जाएँ। उससे बड़े बेटे की ड्यूटी शगुन के पैसे लिखने की थी। वह खुद गेट पर खड़ा हो गया था, ताकि फालतू के लोग अगर घुसें तो वह पूरी शराफत से उन्हें वापस भेज दे। औरतों के साथ यही सलूक करने की ड्यूटी पत्नी की थी।

भले आदमी ने एक बार सारे इंतजाम का जायजा लिया और बेसब्री से लड़कीवालों का इंतजार करने लगा। तभी गेट के पास एक पुलिस जीप आकर रुकी।

उसमें से पहले दारोगा बीरपाल सिंह उतरे और उनके पीछे-पीछे पाँच पुलिसवाले। भले आदमी का उन्हें देखते ही सौ मिलीलीटर खून सूख गया। चेहरे पर मुर्दनी सी छा गई। वह कुछ कहने ही वाला था कि तभी दारोगा ने आते ही उसके कंधे पर हाथ मारा और बोले, "क्या भाई, हमें बुलाना भूल गए। अरे हम तो तुम्हारे पुराने चाहनेवाले हैं, क्यों?"

भले आदमी ने खीसें निपोरने की कला का प्रदर्शन किया। हें…हें… करके बात शुरू करने की कोशिश की ही थी कि दारोगाजी ने बात काट दी।

हँसते हुए बोले, "हम समझते हैं, भूल गए होंगे। शादी-ब्याह में लाख झंझट होते हैं पर देखो, हम नहीं भूले। कैसे भूलते, इतने सालों का साथ रहा है। सो आशीर्वाद देने चले आए। ठीक किया ना?"

इस समय भले आदमी का काम चुपचाप गरदन हिलाना ही बचा था। सो वह हिलाता रहा और दारोगा और सिपाहियों को खाने के काउंटरों की ओर बढ़ते देखता रहा।

एकाएक उसे कुछ याद आया। सो वह हिम्मत करके दारोगाजी को टोकते हुए बोला, "दारोगाजी, उधर कहाँ जा रहे हो? पहले शगुन तो लिखा लो। अपना भी और सिपाहियों का भी। खाना-वाना तो बाद में भी होता रहेगा। हें…हें…हें…।"

दारोगाजी इस बात पर जोर से हँसे, फिर शगुन की कॉपी लिये बैठे उसके लड़के से बोले, "अबे गुल्लू, दारोगा बीरपाल सिंह का आशीर्वाद लिख लियो बे। और हाँ…पाँचों सिपाहियों का भी। भूलियो मत बे।" फिर सिपाहियों से बोले, "अबे तुम क्या देख रहे हो, शगुन हो गया, चलो अब खाना खाओ।" कहकर वे खाने के काउंटरों की ओर बढ़ गए। यह देख भले आदमी की इच्छा बुरा आदमी बनकर उसकी पिटाई करने की हुई। पर उसका हश्र सोचते ही वह फिर से भला आदमी बन गया और चुपचाप प्लेटों का हिसाब लगाने लगा। उसने हिसाब लगाया—दारोगाजी, और सिपाहियों का आशीर्वाद उसे पूरे अड़तालीस सौ का पड़नेवाला था।

अभी वह नुकसान की भरपाई का जुगाड़ बैठा ही रहा था कि तभी बसेसर पांडे और रस्तोगी साहब आते दिखाई दिए। उसकी आत्मा कलप गई। वह भिनककर बोला, "कहिए, कैसे आना हुआ? आपको बुलाया किसने था?"

पांडेजी हँसते हुए बोले, "अरे साहब, बधाई हो आपको। हम तो आशीर्वाद देने आए थे।" कहकर वह रस्तोगी समेत खाने की टेबल की ओर बढ़ लिये।

भले आदमी का गुस्से के मारे बुरा हाल हो गया। उसमें हिंसा की प्रवृत्तियाँ सर उठाने लगीं। वह अपने लड़कों से कहकर उन्हें धक्के मारकर बाहर निकलवाने ही वाला था कि तभी उसने भीड़ का एक रैला अंदर घुसते देखा। उसमें मोहल्ले के अधिकांश मर्द थे। शुक्लाजी, गुप्ताजी, कनौजिया, विन्नू साइकिलवाला और भी जाने कितने। भले आदमी को चक्कर आ गए। वह कुरसी का सहारा लेकर बैठता चला गया। कुछ ही देर में उसने देखा, हर व्यक्ति पहले उसके पास आता। उसे बधाई देता। फिर वहीं से चिल्लाता—"भैया, हमारा आशीर्वाद लिख लियौ रे।" इतना कहकर वह खाने की टेबलों की ओर बढ़ जाता। ऐसे उसने लगभग डेढ़ सौ लोग तो गिने होंगे।

एक सौ इक्यावन की गिनती पूरी होते-होते वह बेहोश हो चुका था।

दो घंटे बाद जब उसकी बेहोशी टूटी और उसने अपने आस-पास नजर डाली तो उसे सारा बैंक्वेट हॉल उजड़ा हुआ युद्ध का मैदान नजर आया। वहाँ गुलाबजामुन की परात औंधी पड़ी थी। दही-भल्लों के डोंगे लुढ़के हुए थे। शाही पनीर के डोंगों की तलहट में लगी चिकनाई रो रही थी। दाल-सब्जी सबके पतीले उलटे पड़े थे। और तो और, कॉफी की मशीन तक लड़ाई में हार गई थी।

यह दृश्य देखकर उसका दिल बैठने को हुआ। उसने आँसू भरी नजरों से अपनी सगी बीवी की ओर देखा तो वह बोली, "मोहल्ले के सारे कमीने आ गए थे। ढाई-तीन सौ तो होंगे ही। मरजानों ने कुछ नहीं छोड़ा। लड़कीवाले भी बेचारे भूखे रहे। नाराज होकर लौट गए। इन मोहल्लेवालों ने तो हमें कहीं का न छोड़ा। मैं तो कहूँ, कीड़े पड़े दुष्टों के। भगवान् ऐसे राक्षस पड़ोसी किसी को न दे।" उसने पत्नी का वक्तव्य सुना। उसके बाद पूछा, "अच्छा ये बता, वे लोग कुछ देकर भी गए क्या शगुन में?"

पत्नी कलपकर बोली, "हाँ देकर गए न! आशीर्वाद देकर गए। पूरी कॉपी आशीर्वादों से भरी पड़ी है।"

यह सुनकर भला आदमी फिर से बेहोश हो गया।

बीवी ने सुना, बेहोशी में भी वह कुछ 'आशीर्वाद', 'आशीर्वाद' जैसा बड़बड़ा रहा था।

सा/अ

जी-१८६ ए, एच.आई.जी.
प्रताप विहार, गाजियाबाद-२०१००९
दूरभाष : ९३११६६००५७

और कोई होता तो धरती फटने का इंतजार करता, ताकि शर्म से उसमें समा सके। पर वह भला आदमी था। वह शर्म-वर्म के लफड़े में ज्यादा पड़नेवाला इनसान नहीं था। उसने हिम्मत नहीं छोड़ी। अपने आशीर्वाद की ताकत पर भरोसा किया। उसने थोड़ा सोचा और फिर रिरियाते स्वर में बोला, "बेटा, इतनी दूर से आए हैं। बच्चे को आशीर्वाद तो देने दो।"

मन्नू ने सोचा, आशीर्वाद से क्या बिगड़ता है, देने दो।

वह उसे अपने साथ बर्थ डे बॉय के पास ले गया। उनका परिवार पीछे-पीछे अपने आप आ गया। भले आदमी ने बच्चा देखा, उसकी माँ देखी। फिर आशीर्वादों की पोटली खोली दी। ढेर सारे आशीर्वाद दिए। पूरी पोटली खाली कर दी। कनखियों से देखता भी रहा कि मन्नू चला जाए तो आगे की काररवाई पर सोचा जाए।

पर मन्नू भी एक खिलाड़ी था। वह हिला भी नहीं।

भले आदमी की आँखों में निराशा भर आई। उसने फिर भी आखिरी कोशिश की कि आशीर्वाद का मुनाफा मिल जाए। बीवी को घर जाकर खाना न बनाना पड़े। सो वह मन्नू की नजर बचाते हुए खाने के स्टॉल की ओर चलने लगा। बीवी-बच्चे पीछे-पीछे थे ही।

तभी मन्नू ने पीछे से फिर टोक दिया, "क्या अंकल, आपका आशीर्वाद-वाशीर्वाद का ड्रामा तो हो गया न। उधर कहाँ जा रहे हैं, उधर खाना चल रहा है, बाहर जाने का रास्ता इस तरफ है। निकलिए अब, बहुत हो गया।"

"बेटा...वो...वो...थोड़ा...खाना खा लेते, बच्चों को भूख लगी है..." भले आदमी ने स्वर में थोड़ी बेशर्मी और रिरियाहट मिला दी।

पर मन्नू के दिमाग में लगे थर्मामीटर का पारा चढ़ गया। वह भिन्नाकर बोला, "बड़े बेशर्म आदमी हैं आप। एक तो बिना बुलाए घुस आए, ऊपर से आपको खाना भी चाहिए। जानते हैं न डेढ़ हजार रुपए की प्लेट है। खाना है तो नौ हजार रुपए निकालिए, वरना भागिए यहाँ से।"

भले आदमी के पास भलमनसाहत थी, बधाई थी, आशीर्वाद था, रुपए कहाँ थे? वह सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

मन्नू भिनक गया। बोला, "अंकल, ज्यादा नौटंकी मत कीजिए और जाइए यहाँ से। वरना मुझे दरबान को बुलाना पड़ेगा। वही आपको धक्के देकर बाहर निकालेगा।"

मन्नू के वचन सुनते ही भला आदमी घबरा गया।

अब कुछ नहीं हो सकता था।

भले आदमी का शराफत से यकीन उठ गया। वह सपरिवार वापस लौट लिया। उसे बहुत दुःख था। उसे जीवन में पहली बार अपने आशीर्वादों का भुगतान नहीं मिला था।

घर आकर पत्नी को खाना बनाना पड़ा। वह बड़बड़ाती रही। भले आदमी को कोसती रही। पर भला आदमी यही सोचता रहा, 'हे भगवान्, ये सहारा भी चला गया। उसके बधाइयों और आशीर्वादों के स्टॉक का क्या होगा? वो तो गोदाम में पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा।'

कुछ दिन ऐसे ही कटे।

फिर एक दिन बीड़ी पीते-पीते उसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि शहर में अपने मोहल्ले के अलावा भी तो और मोहल्ले हैं, आस-पास के शहर भी हैं, जिनमें वह आशीर्वादों की खपत कर सकता है।

उसने इस योजना पर काम करना शुरू कर दिया। इससे उसका रिक्शे-ताँगे और बस का खर्च जरूर बढ़ा। इसका भी उसने तरीका निकाल लिया। उसने ऐसी जगहों पर अपने साथ कुछ पॉलीथीन की थैलियाँ ले जानी शुरू कर दीं, जो खाली जातीं, वापसी में पूड़ी, सब्जी, मिठाइयों से भरकर आतीं। आशीर्वाद और खर्च दोनों की समस्या का हल निकल आया।

कुछ साल ऐसे ही गुजर गए। अब तक भले आदमी का बड़ा लड़का जवान हो गया था। अच्छी-भली नौकरी भी कर रहा था। भले आदमी को उसका ब्याह करना था। कई जगह देखने के बाद उसका रिश्ता पक्का हुआ। पहले रिसेप्शन होना था, उसके बाद बारात जानी थी। लड़कीवाले रिसेप्शन में लड़केवालों का स्टैंडर्ड चैक करना चाहते थे। वे लोग अच्छे पैसेवाले थे। उन पर इंप्रेशन मारने के लिए बढ़िया रिसेप्शन जरूरी था, वरना उनके बिदकने का डर था। वे बिदकते तो माँगों का बाजार गिर जाता। जेवर, नकदी, सामान में कटौती हो जाती। भले आदमी कटौती कहाँ बरदाश्त कर पाते हैं?

कुछ साल ऐसे ही गुजर गए। अब तक भले आदमी का बड़ा लड़का जवान हो गया था। अच्छी-भली नौकरी भी कर रहा था। भले आदमी को उसका ब्याह करना था। कई जगह देखने के बाद उसका रिश्ता पक्का हुआ। पहले रिसेप्शन होना था, उसके बाद बारात जानी थी। लड़कीवाले रिसेप्शन में लड़केवालों का स्टैंडर्ड चैक करना चाहते थे। वे लोग अच्छे पैसेवाले थे। उन पर इंप्रेशन मारने के लिए बढ़िया रिसेप्शन जरूरी था, वरना उनके बिदकने का डर था। वे बिदकते तो माँगों का बाजार गिर जाता। जेवर, नकदी, सामान में कटौती हो जाती। भले आदमी कटौती कहाँ बरदाश्त कर पाते हैं?

सो शहर के अच्छे बैंक्वेट हॉल में रिसेप्शन का प्रोग्राम बनाया गया। सौ लोगों का एस्टीमेट था। बीस-पच्चीस लोग तो लड़कीवालों के ही हो जाने थे। बीसेक अपने नजदीकी रिश्तेदार बनते थे, जिन्हें बुलाए बगैर गुजारा नहीं था। पाँच-सात लड़के के दोस्त होने थे। बाकी पचास लोग, वे चुने गए, जो अभी तक आशीर्वाद की भेंट या तो ले नहीं पाए थे या अभी भले आदमी की भलमनसाहत से पूरे परिचित नहीं थे। कहना न होगा कि इस पार्टी में अपने मोहल्ले के लोगों को निमंत्रण नहीं किया गया। पूरे परिवार को हिदायत दी गई कि कोई भी मोहल्ले में इस बात का जिक्र न करे। किसी को कुछ भी पता न लगे। पर मोहल्लेवालों को पता चल गया।

सारे आशीर्वादयाफ्ता लोगों की एक गुप्त मीटिंग हुई। इस मीटिंग में दारोगा मलखान सिंह भी थे, तो इंजीनियर पांडेजी भी। लाला रामदयाल भी

थे तो बदरी पहलवान भी। बैठक में सर्वसम्मति से कुछ निर्णय भी लिये गए।

इसके बाद सभा बरखास्त हो गई। रिसेप्शनवाले दिन बैंक्वेट हॉल में काफी गहमा-गहमी थी। भला आदमी खुद सारी व्यवस्थाएँ देख रहा था। पर उसकी हिदायत के अनुसार खाना लड़कीवालों के आने के बाद शुरू होना था।

सारी व्यवस्था चाक-चौबंद थी। खाना तैयार हो चुका था। खाने की प्लेटें गिनने के लिए उसने छोटे बेटे की ड्यूटी लगा दी थी। उसे सख्त हिदायत दी गई थी कि बच्चों को अलग प्लेट न दे। कोशिश करे कि दो-तीन आदमी एक ही प्लेट में खा लें। उसकी इच्छा थी कि प्लेटें सौ से भी कम उपयोग में आएँ, ताकि कुछ पैसे बच जाएँ। उससे बड़े बेटे की ड्यूटी शगुन के पैसे लिखने की थी। वह खुद गेट पर खड़ा हो गया था, ताकि फालतू के लोग अगर घुसें तो वह पूरी शराफत से उन्हें वापस भेज दे। औरतों के साथ यही सलूक करने की ड्यूटी पत्नी की थी।

भले आदमी ने एक बार सारे इंतजाम का जायजा लिया और बेसब्री से लड़कीवालों का इंतजार करने लगा। तभी गेट के पास एक पुलिस जीप आकर रुकी।

उसमें से पहले दारोगा बीरपाल सिंह उतरे और उनके पीछे-पीछे पाँच पुलिसवाले। भले आदमी का उन्हें देखते ही सौ मिलीलीटर खून सूख गया। चेहरे पर मुर्दनी सी छा गई। वह कुछ कहने ही वाला था कि तभी दारोगा ने आते ही उसके कंधे पर हाथ मारा और बोले, "क्या भाई, हमें बुलाना भूल गए। अरे हम तो तुम्हारे पुराने चाहनेवाले हैं, क्यों?"

भले आदमी ने खीसें निपोरने की कला का प्रदर्शन किया। हें···हें··· करके बात शुरू करने की कोशिश की ही थी कि दारोगाजी ने बात काट दी।

हँसते हुए बोले, "हम समझते हैं, भूल गए होंगे। शादी-ब्याह में लाख झंझट होते हैं पर देखो, हम नहीं भूले। कैसे भूलते, इतने सालों का साथ रहा है। सो आशीर्वाद देने चले आए। ठीक किया ना?"

इस समय भले आदमी का काम चुपचाप गरदन हिलाना ही बचा था। सो वह हिलाता रहा और दारोगा और सिपाहियों को खाने के काउंटरों की ओर बढ़ते देखता रहा।

एकाएक उसे कुछ याद आया। सो वह हिम्मत करके दारोगाजी को टोकते हुए बोला, "दारोगाजी, उधर कहाँ जा रहे हो? पहले शगुन तो लिखा लो। अपना भी और सिपाहियों का भी। खाना-वाना तो बाद में भी होता रहेगा। हें···हें···हें···।"

दारोगाजी इस बात पर जोर से हँसे, फिर शगुन की कॉपी लिये बैठे उसके लड़के से बोले, "अबे गुल्लू, दारोगा बीरपाल सिंह का आशीर्वाद लिख लियो बे। और हाँ···पाँचों सिपाहियों का भी। भूलियो मत बे।" फिर सिपाहियों से बोले, "अबे तुम क्या देख रहे हो, शगुन हो गया, चलो अब खाना खाओ।" कहकर वे खाने के काउंटरों की ओर बढ़ गए। यह देख भले आदमी की इच्छा बुरा आदमी बनकर उसकी पिटाई करने की हुई। पर उसका हश्र सोचते ही वह फिर से भला आदमी बन गया और चुपचाप प्लेटों का हिसाब लगाने लगा। उसने हिसाब लगाया—दारोगाजी, और सिपाहियों का आशीर्वाद उसे पूरे अड़तालीस सौ का पड़नेवाला था।

अभी वह नुकसान की भरपाई का जुगाड़ बैठा ही रहा था कि तभी बसेसर पांडे और रस्तोगी साहब आते दिखाई दिए। उसकी आत्मा कलप गई। वह भिनककर बोला, "कहिए, कैसे आना हुआ? आपको बुलाया किसने था?"

पांडेजी हँसते हुए बोले, "अरे साहब, बधाई हो आपको। हम तो आशीर्वाद देने आए थे।" कहकर वह रस्तोगी समेत खाने की टेबल की ओर बढ़ लिये।

भले आदमी का गुस्से के मारे बुरा हाल हो गया। उसमें हिंसा की प्रवृत्तियाँ सर उठाने लगीं। वह अपने लड़कों से कहकर उन्हें धक्के मारकर बाहर निकलवाने ही वाला था कि तभी उसने भीड़ का एक रैला अंदर घुसते देखा। उसमें मोहल्ले के अधिकांश मर्द थे। शुक्लाजी, गुप्ताजी, कनौजिया, विन्नू साइकिलवाला और भी जाने कितने। भले आदमी को चक्कर आ गए। वह कुरसी का सहारा लेकर बैठता चला गया। कुछ ही देर में उसने देखा, हर व्यक्ति पहले उसके पास आता। उसे बधाई देता। फिर वहीं से चिल्लाता—"भैया, हमारा आशीर्वाद लिख लियौ रे।" इतना कहकर वह खाने की टेबलों की ओर बढ़ जाता। ऐसे उसने लगभग डेढ़ सौ लोग तो गिने होंगे।

एक सौ इक्यावन की गिनती पूरी होते-होते वह बेहोश हो चुका था।

दो घंटे बाद जब उसकी बेहोशी टूटी और उसने अपने आस-पास नजर डाली तो उसे सारा बैंक्वेट हॉल उजड़ा हुआ युद्ध का मैदान नजर आया। वहाँ गुलाबजामुन की परात औंधी पड़ी थी। दही-भल्लों के डोंगे लुढ़के हुए थे। शाही पनीर के डोंगों की तलहट में लगी चिकनाई रो रही थी। दाल-सब्जी सबके पतीले उलटे पड़े थे। और तो और, कॉफी की मशीन तक लड़ाई में हार गई थी।

यह दृश्य देखकर उसका दिल बैठने को हुआ। उसने आँसू भरी नजरों से अपनी सगी बीवी की ओर देखा तो वह बोली, "मोहल्ले के सारे कमीने आ गए थे। ढाई-तीन सौ तो होंगे ही। मरजानों ने कुछ नहीं छोड़ा। लड़कीवाले भी बेचारे भूखे रहे। नाराज होकर लौट गए। इन मोहल्लेवालों ने तो हमें कहीं का न छोड़ा। मैं तो कहूँ, कीड़े पड़े दुष्टों के। भगवान् ऐसे राक्षस पड़ोसी किसी को न दे।" उसने पत्नी का वक्तव्य सुना। उसके बाद पूछा, "अच्छा ये बता, वे लोग कुछ देकर भी गए क्या शगुन में?"

पत्नी कलपकर बोली, "हाँ देकर गए न! आशीर्वाद देकर गए। पूरी कॉपी आशीर्वादों से भरी पड़ी है।"

यह सुनकर भला आदमी फिर से बेहोश हो गया।

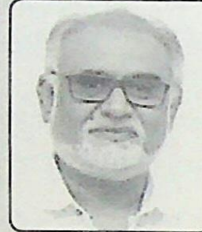
बीवी ने सुना, बेहोशी में भी वह कुछ 'आशीर्वाद', 'आशीर्वाद' जैसा बड़बड़ा रहा था।

सा अ

जी-१८६ ए, एच.आई.जी.
प्रताप विहार, गाजियाबाद-२०१००९
दूरभाष : ९३११६६००५७

ट्रेन मामा

● सच्चिदानंद जोशी



पत्रकारिता एवं संचार के साथ-साथ संप्रेषण कौशल, व्यक्तित्व विकास, लैंगिक समानता, सामाजिक सरोकार और समरसता चिंतन तथा लेखन के मूल विषय। कविता, कहानी, व्यंग्य, नाटक, टेलीविजन धारावाहिक, यात्रा-वृत्तांत, निबंध, कला-समीक्षा आदि विधाओं में विपुल लेखन। विश्वविद्यालय के कुलसचिव और कुलपति होने का गौरव प्राप्त। संप्रति : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य-सचिव।

किरण को घर में बाँधकर रखना वैसे ही बहुत कठिन होता है, उस पर यह लॉकडाउन और सोशल डिस्टेंसिंग ने तो और आफत मचा रखी थी। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इस उक्ति को किरण ने मानो चरितार्थ करने का बीड़ा उठाया हुआ था। उसकी सामाजिक सक्रियता घर के बाकी सदस्यों पर भारी पड़ती थी। सभी उससे भयाक्रांत रहते थे। बच्चे तो अकसर कहते थे, "मम्मी, हमारे घर की पी.आर.ओ. है।"

लेकिन ऐसा नहीं था कि किरण के इस संपर्क का घर को कोई लाभ नहीं होता था। उस दिन पृथा की सहेली को, जो लॉकडाउन के कारण जयपुर में फँस गई थी, भोपाल लाना किरण के संपर्क के कारण ही संभव हो पाया था। उस सहेली के माता-पिता ने कितनी दुआएँ दी थीं किरण को, और पृथा को। किरण के मुँह बोले भाई, भाभी, दीदी, जीजाजी, भानजे, भतीजे इनकी सूची खासी लंबी थी और वह पूरे भारत में फैले थे। सबसे मजे की बात थी कि किरण का संदेश मिलते ही सब अपना काम-धाम छोड़कर किरण के हुक्म की तामील में लग जाते थे। हम सबकी उदासीनता देखकर किरण कभी-कभी तो चिढ़कर कहती भी थी, "सारे घर का काम भी देखो और ऊपर से ये संबंध भी निभाओ।" बच्चे मम्मी की बात सुनते और मुसकराकर रह जाते। मैं तो मुसकराने की स्थिति में भी नहीं होता, क्योंकि इन सभी रिश्तों को लेकर किरण बहुत संवेदनशील थी।

अब उसी दिन की बात है। लॉकडाउन के कारण सारे बाजार, दुकानें बंद थीं। नीचेवाली आंटी को कुछ जरूरी दवाइयाँ चाहिए थीं, जो पासवाले मेडिकल स्टोर में नहीं थीं। पहले किरण ने बच्चों से कार लेकर न्यू मार्केट जाने को कहा। लेकिन वहाँ जाने को न पार्थ राजी हुआ, न पृथा। पृथा ने तो ताना भी जड़ दिया, "फोन कर दो न ट्रेन मामा को। उनके पास तो हर मर्ज की दवा रहती है।" बात पृथा ने मजाक में ही कही थी, लेकिन किरण को बात लग गई और उसने सचमुच प्रभात को फोन कर डाला। उसका घर हमारे घर से पंद्रह किलोमीटर दूर था और वह शहर का दूसरा कोना था। मैं सोच में था कि इस लॉकडाउन में वह कैसे दवा लाकर पहुँचा पाएगा? लेकिन आश्चर्य कि दवाई लेकर दो घंटे के अंदर एक बंदा हाजिर था। पता नहीं उस भले आदमी ने कैसे मैनेज किया होगा यह सब! पृथा का चेहरा लटक गया था और किरण गर्व से कह रही थी, "चैलेंज मत किया करो, कमाल का है मेरा भाई।"

पृथा को हारकर कहना पड़ ही गया, "ओके मम्मी, हैट्स ऑफ टू ट्रेन मामा।"

ट्रेन मामा, हाँ, यही नाम दे दिया था घर के बच्चों ने उसे। और इस नामकरण की भी एक मजेदार सी कहानी है। कोई दस साल पहले की बात होगी। हम दीवाली मनाने बड़े भाईसाहब के यहाँ मुंबई जा रहे थे। पार्थ और पृथा की छुट्टियाँ पहले ही शुरू हो गई थीं और वह दोनों अपनी दादी के साथ चले गए थे। दादी के साथ जाने का एक अतिरिक्त आकर्षण यह भी रहता था कि घुटनों के दर्द के कारण माँ इन दिनों रेल से यात्रा नहीं कर पाती थीं और उन्हें विमान से यात्रा करना पड़ती थी, जिसमें वह अकसर अपने साथ किसी को ले जातीं। इसलिए बच्चे उनके साथ जाने के लिए हमेशा लालायित रहते। यात्रा के दौरान दादी से जेब खर्च मिलता था सो अलग।

हम दोनों ही थे, इसलिए हमने भी रईसी में सेकंड एसी में टिकट बुक करवा लिये थे। भाग्य से दोनों को नीचेवाली ही बर्थ मिल गई थी, जिससे यात्रा का आनंद दोगुना हो जानेवाला था। ट्रेन शाम को भोपाल से चलती थी, इसलिए किरण ने रात का खाना और सुबह का नाश्ता साथ में रख लिया था। मेरा विचार तो था कि सुबह-सुबह इगतपुरी या कल्याण में गरमा-गरम आलू-वड़े खाए जाएँ, लेकिन गलती यह हुई कि यह विचार मैंने जोर से बोलकर दिखा दिया और किरण ने षड्यंत्रपूर्वक सुबह का नाश्ता भी साथ रख लिया।

ट्रेन चलने को हुई तो हमारे दोनों सहयात्री भी आ गए। एक युवा था पच्चीस-छब्बीस साल का, जो आते ही ऊपर अपनी बर्थ पर चला गया

और कान में श्रवण यंत्र ठूँसकर लेट गया। उससे संवाद का अब कोई प्रश्न ही नहीं था। दूसरे सज्जन थोड़े उम्रदराज थे। मुझे लगा, अब वह मुझसे नीचेवाली बर्थ देने के लिए आग्रह करेंगे। उन्हें मना करने का कौन सा बहाना ठीक रहेगा, इस उलझन में इतना फँस गया कि उनकी 'हेलो' का ठीक से उत्तर भी नहीं दे पाया। आश्चर्य तो तब हुआ, जब उन्होंने नीचेवाली बर्थ के लिए कुछ कहा ही नहीं। बस इतना पूछ लिया, "आप लोग तो जरा देर बाद सोएँगे न। जरा देर बैठ सकता हूँ यहाँ?"

मैं अपनी लोअर बर्थ न देने के गुनताड़े में इतना खो गया था कि उनके सवाल का ठीक से जवाब ही नहीं दे पाया और किरण को मोरचा सँभालना पड़ा।

"आप कैसी बात कर रहे हैं, भाईसाहब? सीट तो आपकी ही है। आराम से बैठिए, हम लोग तो अभी सोनेवाले नहीं, कम-से-कम दो घंटे।" किरण बोली और वह किरण के पास वाली सीट पर बैठ गए। अब सामने बैठे थे तो बातचीत करना लाजिमी था। बातचीत में मालूम पड़ा कि उनका नाम देवकीनंदन त्रिपाठी है और वे जल संसाधन विभाग से रिटायर हैं। ईदगाह हिल्स पर उनका मकान है और रिटायरमेंट के बाद किसी फर्म के लिए काम करते हैं। मुंबई फर्म के काम के सिलसिले में ही जा रहे थे। जल संसाधन विभाग सुना तो मेरे कान खड़े हुए। पिताजी उसी विभाग से रिटायर हुए थे। हालाँकि उन्हें रिटायर हुए कई साल हो गए थे, लेकिन कोई कॉमन परिचय तो निकल ही सकता था। हमें हैरत हुई कि खासी मशक्कत के बाद भी एक भी कॉमन परिचय नहीं निकला। इस पर त्रिपाठीजी ठहाका मारकर हँसे और बोले, "अच्छा है भैया! एकाध संबंध तो ऐसा हो, जहाँ कोई पिछला इतिहास न हो। और कोई संबंध न मिले तो ही ठीक। समझूँगा मुझे मेरे छोटा भाई-भाभी मिल गए।" यह बात उन्होंने इतनी आत्मीयता और निश्छलता से कही थी कि हम दोनों ही बिछ गए उसके आगे। मैंने तो मन-ही-मन निश्चय भी कर लिया था कि अगर वह माँगेंगे तो मैं लोअर बर्थ भी दे दूँगा।





बात-बात में उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी को कैंसर है और उनके एक ही बेटा है। पत्नी की इच्छा के कारण बेटे की शादी जल्दी करनी पड़ी। बेटे की इलेक्ट्रॉनिक गुड्स की एजेंसी है और उसकी एक बेटी है।

खाने का समय हुआ तो किरण ने उनसे खाने के लिए पूछा। बोलने लगे, "नहीं-नहीं! घर खाकर चला हूँ। लेकिन हाँ, आपका खाना हो जाए तो उस डिब्बे में से एक लड्डू जरूर खाना चाहूँगा।" उन्होंने साथ रखे 'गागर' के पैकेट की ओर इशारा करते हुए कहा।

"लेकिन आपको कैसे मालूम कि उसमें लड्डू ही हैं?" मैंने पूछा तो ठहाका मारकर बोले, "अजी साहब, भोपाल से कोई गागर का पैकेट लेकर जाए और उसमें लड्डू न हो, ऐसा हो सकता है भला!"

बात उनकी एकदम सही थी। दरअसल हम लोग भोपाल से दीवाली के लिए मिठाइयाँ बनवाकर ले जा रहे थे। सारा सामान पैक कर अंदर डाल दिया था। स्टेशन की ओर आ ही रहे थे कि पार्थ की फरमाइश आ गई, 'गागर के लड्डू जरूर लेकर आना।' बेटे की फरमाइश थी और श्रीमतीजी का पुत्र-प्रेम उमड़ आया। रास्ते में गाड़ी रोककर लड्डू बँधवाने पड़े। सोचा कि लक्ष्मी पूजन वाले दिन भोग लगा देंगे, लेकिन त्रिपाठीजी ने अभी ही दृष्टि भोग लगा दिया था।

खाना खाने के बाद जैसे ही किरण ने डिब्बा खोलकर उनके आगे बढ़ाया तो एक लड्डू उठाते हुए वह बोले, "इच्छा तो हो रही है कि तीन-चार उठा लूँ, लेकिन लूँगा एक ही। डायबिटिक हूँ न।"

डायबिटिक शब्द सुनकर किरण चौंकी। उसने उनका हाथ पकड़ कहा, "भाईसाहब, शुगर है तो पूरा मत लीजिए। कुछ तकलीफ हो गई तो! वो तो हमारी पहचान नई है और आपने एक लड्डू उठा लिया है, वरना मैं तो आपको उतना भी नहीं लेने देती।"

त्रिपाठीजी एकदम खिलखिलाकर हँसे और बोले, "एकदम मेरी छोटी बहन नीतू की तरह डाँट रही हो बिटिया।" फिर आधा लड्डू डिब्बे में वापस डालकर बोले, "अब बिटिया कह दिया है तो उसकी आज्ञा का पालन भी करना होगा।"

खाने के बाद काफी देर तक त्रिपाठीजी से गप्पें होती रहीं। गप्पों का परिणाम यह निकला कि अपना स्टेटस छोटे भाई से दामाद का हो गया और किरण ने बिटिया की जगह हथिया ली। गनीमत है कि बाप-बेटी के रिश्ते में भी मेरी लोअर बर्थ बची रही और त्रिपाठीजी ऊपर जाकर सो गए।

टाइम टेबल के हिसाब से सुबह आठ बजे मुंबई आ जाना चाहिए था। लेकिन रात को कहीं डिरेलमेंट हो गया था और इस कारण ट्रेन दो-ढाई घंटे लेट हो गई थी। घड़ी सात बजा रही थी और हम सोच ही रहे थे कि अभी उठें या नहीं। तभी लगा कि ऊपर से त्रिपाठीजी बुला रहे हैं। मैंने उनकी ओर देखा तो कमजोर आवाज में बोले, "रात को जो आधा लड्डू रखा था न, वह दे दीजिए। लगता है, शुगर लो हो गई है। ट्रेन पहुँचने में तो अभी वक्त लगेगा।"

मैं उठूँ, इससे पहले ही किरण ने उठकर उन्हें लड्डू दिया और साथ में थोड़ी मठरी भी। दोनों चीजें खाने के बाद वह थोड़े संयत हुए और बोले, "ऐसा हो जाता है कभी-कभी। थोड़ी देर बाद ठीक भी हो जाता अपने आप।"

उसके बाद हम लोगों ने साथ में नाश्ता किया। किरण के टिफिन सजाने से लेकर अचार-पूड़ी तक सबकी तारीफ करते हुए त्रिपाठीजी ने नाश्ता किया और किरण को ढेर सारा आशीष दिया।

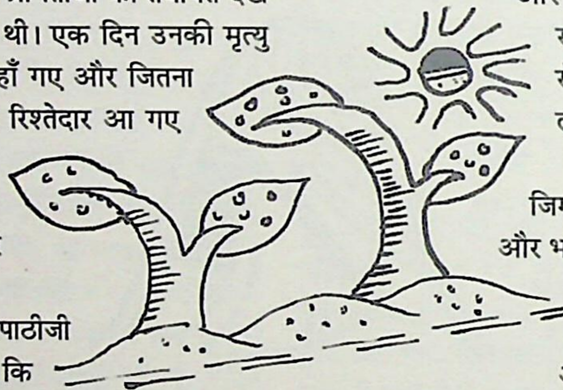
मुंबई आने से पहले हमने एक-दूसरे के नंबर लिये और फिर मिलने का वादा करते हुए एक-दूसरे से विदा ली। हम सभी जानते हैं कि ऐसे वादे सिर्फ वादे ही रहते हैं और लोग बाद में एक-दूसरे को याद भी नहीं रखते।

लेकिन मुंबई से लौटने के पंद्रह दिन बाद एक दिन त्रिपाठीजी का फोन आया कि शाम को आना चाहते हैं। शाम को जब वह आए तो साथ

में 'गागर' से ढेर सारी मिठाई और नमकीन लेकर आए। उनके साथ उनका बेटा भी था। उन्होंने परिचय करवाया, "यह मेरा बेटा है प्रभात। रॉयल मार्केट पर इसकी एजेंसी है। हरफनमौला है। आप कभी भी किसी भी काम के लिए कहिए, मना नहीं करेगा।" अपने बेटे के बारे में बताते हुए वह गर्व से फूले नहीं समा रहे थे। साथ ही प्रभात से बोले, "यह किरण दीदी है और यह जीजाजी। तुम्हें बताया था न इनके बारे में। बस अब इनका खयाल रखना। और हाँ, पहली बार यहाँ लाने का काम मेरा। अब बाद में रिश्ता तुम ही निभाना।"

मुझे आश्चर्य था कि बाप-बेटे के बीच बहुत अच्छा संवाद था और बेटा अपने पिताजी की हर बात का खयाल रख रहा था। बात-बात में त्रिपाठीजी ने बताया कि जब से प्रभात की माँ को कैंसर हुआ है, पिता-पुत्र मित्र की तरह हो गए हैं और हर बात एक-दूसरे से शेयर करते हैं। मुझे थोड़ा बुरा भी लगा कि पार्थ और मेरे बीच वैसा मित्र भाव कभी नहीं बन पाया।

उसके बाद त्रिपाठीजी का और प्रभात का बीच-बीच में आना जारी रहा। जब आ नहीं पाते, तो फोन करके हालचाल जरूर जान लेते। हम लोग भी एक-दो बार उनके यहाँ जाकर उनकी श्रीमतीजी की तबीयत देख आए। हालात तो उनकी निरंतर बिगड़ ही रही थी। एक दिन उनकी मृत्यु का भी समाचार आ गया। हम लोग उनके यहाँ गए और जितना बन पड़ा, सहयोग किया। त्रिपाठीजी के सभी रिश्तेदार आ गए थे। सब लोगों के साथ उनके संबंध और व्यवहार इतना अच्छा था कि कभी-कभी हमें अचरज होता कि वह इन सबसे और हमारे जैसे जोड़े हुए संबंधों से निभा कैसे लेते हैं!



पत्नी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद त्रिपाठीजी की भी तबीयत बिगड़ने लगी। पता चला कि उन्हें भी लीवर का कैंसर है। हम सकते में थे। हम जानकारी मिलते ही उनके घर पहुँचे। प्रभात घर पर नहीं था। उसकी पत्नी प्राची ने हमारा स्वागत किया और हमें त्रिपाठीजी के कक्ष में ले गई। हमें देखते ही त्रिपाठीजी के चेहरे पर मुसकान तैर गई। वह काफी कमजोर हो चुके थे। इतनी जल्दी इतनी गिरावट, देखकर दुःख हुआ।

"नहीं, यह अचानक नहीं हुआ। उस वक्त जब हम पहली बार ट्रेन में मिले, तब ही इसकी आहट मुझे मिल चुकी थी। मैं टाटा में दिखाने ही जा रहा था। प्रभात को भी उस समय कुछ नहीं बताया था। वह तो बेचारा टूट ही जाता। फिर आप लोग मिले और पता नहीं क्यों ऐसा लगा कि आप लोगों से हमारी अच्छी निभेगी। मुझे प्रभात की चिंता ज्यादा है। मेरे जाने के बाद एकदम अकेला हो जाएगा। रिश्तेदार-दोस्त बहुत हैं और सभी उसे प्यार करते हैं। लेकिन सोचा एक संबंध तो ऐसा हो, जो उसका अपना बनाया हो और जहाँ कोई स्वार्थ न हो। मुझे खुशी है कि आपने प्रभात को अपने छोटे भाई सा प्यार दिया है। आगे भी उसे सँभाल लेना।" कहते-कहते उनका गला भर आया था। आँखें तो हमारी भी नम हो आई थीं।

वह हमारी त्रिपाठीजी से आखिरी मुलाकात थी, जिसमें वह हमसे बात कर पाए थे। उसके बाद तो उनका बोलना धीरे-धीरे बंद हो गया। बस सूनी आँखों से हमें देखते और मुसकराने की कोशिश करते। एक दिन उस मुसकराहट का भी अंत हो गया।

हम लोग प्रभात को जितना सहारा दे सकते थे, देने का प्रयास करते। वह कभी अकेले, कभी प्राची और बिटिया के साथ आ जाता। हम उसकी कितनी मदद कर पाते, यह तो कहना कठिन था, लेकिन वह हमारे लिए हर मर्ज की दवा बन चुका था। जितने जिंदादिल और समझदार त्रिपाठीजी थे, उतना ही जिंदादिल और समझदार प्रभात भी था। बस एक बार किरण दीदी कुछ कह भर दें, फौरन वह काम हुआ ही समझो।

प्रभात हमारे घर का इतना अभिन्न हिस्सा बन गया था कि इस बात को ढूँढ़ पाना कठिन हो गया था कि हमारे रिश्ते की उत्पत्ति कैसे हुई थी?

किरण की सबसे छोटी बहन कंचन की शादी तय हुई थी। लड़का जयपुर से था और लड़केवालों की जिद थी कि शादी जयपुर में ही आकर की जाए। किरण तीन बहनों में बड़ी थी। किरण से बड़े भाई और किरण के बाद वाली बहन दोनों अमेरिका में थे और ऐन शादी के समय ही उनका आना हो सकता था। किरण के पिताजी दिल के मरीज थे और उनसे ज्यादा दौड़-धूप की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। कंचन की शादी वैसे ही थोड़ी देर से हो रही थी, इसलिए अब जरा सी बात पर लड़केवालों को नाराज करना भी ठीक नहीं था।

लब्बोलुआब यह कि शादी की पूरी जिम्मेदारी हमारे ऊपर थी। खर्च किरण के पिताजी और भाई ही उठा रहे थे, लेकिन सारी दौड़-धूप करके व्यवस्थाएँ जमाने की जिम्मेदारी हमारे ऊपर ही थी। राजस्थान का राजपूत परिवार था और अपने गढ़ जयपुर में शादी करवा रहा था हमसे। व्यवस्थाओं की लिस्ट खत्म ही नहीं होती थी। शादी को अभी एक माह बचा था और हमारी हालात अभी से खराब हुई जा रही थी। तभी खयाल आया प्रभात का और मैंने उसे शाम को घर बुला लिया।

सारा मामला जानकर पहले तो उसने जमकर हमें डाँट लगाई कि हमने उसे पहले क्यों नहीं बताया या बुलाया! और उसके बाद शादी के सारे सूत्र अपने हाथ ले लिये। उसके बाद पूरा महीना कैसे बीता, हमें पता ही नहीं चला। किरण के परिवारवालों को भी लगा ही नहीं कि वह लड़की की शादी कर रहे हैं। वे सब इतने बेफिक्र हो गए कि एक दिन मुझे मजाक में किरण को कहना पड़ा, "तुम्हारे पिताजी को याद है न कि कंचन उनकी ही बेटी है।" हम सबकी व्यवस्था, बारात की व्यवस्था, रिसेप्शन की व्यवस्था से लेकर ब्यूटी पार्लर, म्यूजिक, संगीत सारी व्यवस्थाएँ प्रभात ने कर दीं और हम सबको इन चिंताओं से मुक्त कर दिया। कभी मदद के लिए पूछा भी तो उसने कह दिया, "सब हो जाएगा। आप तो शादी एन्जॉय करो, जीजाजी।" किरण के भाई तो हमेशा से ही बाहर रहे और बस पैसे देने के अलावा उनकी और कोई सहयोगी भूमिका कभी नहीं रही, लेकिन प्रभात के कारण बाकी सब रिश्तेदार भी निश्चिंत बने रहे।

जब कंचन की विदाई हो गई और घर के सब लोग रिलैक्स होने के मूड में थे, तब सबको अहसास हुआ कि शादी की सारी जिम्मेदारी जिस शख्स ने उठा रखी थी, उससे तो उनका ठीक-ठाक परिचय हुआ ही नहीं। सब बस उसे किरण का भाई इस नाते ही जानते थे। वह यह भी भूल गए कि किरण का भाई उनका भी तो भाई हुआ।

"अरे यार प्रभात, शादी की हड़बड़ी में तुम्हारा ठीक से परिचय तो हुआ ही नहीं। तुम किरण के भाई हुए, तो हमारे भी भाई हुए। लेकिन तुम कब और कैसे पैदा हो गए, इसकी कोई खबर ही नहीं है!" किरण के बड़े भाई ने कहा।

प्रभात के हमारे साथ रिश्ते की थोड़ी-बहुत अंतर्कथा सबको मालूम थी। लेकिन इससे पहले कि किरण या प्रभात कुछ कहते, पृथा बोल उठी, "यह हमारे ट्रेन मामा हैं। बड़े मामा जैसे आपको नानी ने पैदा किया है, इसलिए आप हमारे मामा हो, वैसे ही प्रभात मामा को ट्रेन ने पैदा किया है।"

पृथा की इस मासूमियत भरी मजेदार कैफियत पर सब ठहाका लगाकर हँस पड़े और उस दिन से प्रभात हमारे पूरे खानदान के लिए 'ट्रेन मामा' बन गया।

किसी ने सच ही तो कहा है कि रिश्ते तो ऊपरवाला ही बनाकर भेजता है। कम-से-कम 'ट्रेन मामा' के बारे में तो यह बात सच ही साबित होती है।

सा अ

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र
११, मानसिंह रोड, नई दिल्ली-११००११
दूरभाष : ९२०५५००१६४
sjoshi09@yahoo.com

सत्य दृष्टि

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास लाखों की संपत्ति थी और भरा-पूरा परिवार था। सब तरह की सुख-सुविधाएँ थीं। अभाव न किसी वस्तु का था, न व्यक्ति का। इतना सबकुछ होते हुए भी उसका मन हमेशा अशांत रहता था। कोई-न-कोई चिंता उसके मन में बनी रहती थी।

कुछ दिन तो उसने अपने जीने का तरीका इस तरह से बनाया कि जो भी इच्छा मन में जाग्रत् होती, वह उसकी पूर्ति कर लेता। परंतु एक चाह की पूर्ति दूसरी चाह पैदा करके ही दम लेती थी। अत: थोड़े दिनों में उसकी चिंता और भी बढ़ती चली गई।

जब दिनोदिन उसकी सेहत गिरने लगी तो लोगों ने मिलकर उसे सलाह दी कि आपकी बीमारी को कोई वैद्य या डॉक्टर ठीक नहीं कर सकेगा। यदि आप शांति पाना चाहते हैं तो अमुक साधु के चरणों में चले जाएँ, वह तुम्हें अवश्य मार्ग बताएगा। सेठ को लोगों की बात जँच गई। दूसरे ही दिन वह साधु के चरणों में पहुँच गया। श्रद्धाभाव से नमन करके उन्हें अपना कष्ट बताकर प्रार्थना की कि "महाराज! जैसे भी हो, मेरी अशांति दूर कीजिए।"

साधु ने उसकी बात ध्यान से सुनी और कहा कि अमुक नगर में एक बहुत बड़ा धनी रहता है, उसके पास जाओ, वह तुम्हें रास्ता बताएगा तथा शांति की विधि भी बता देगा।

सेठ ने सोचा, साधु उसको बहका रहा है। उसने साधु से कहा, "स्वामीजी! मैं तो आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूँ। आप ही मेरा उद्धार कीजिए।" लेकिन साधु ने दोबारा वही बात दोहरा दी।

संत-वचन तर्क से रहित होता है, यह सोचकर सेठ उस नगर की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर वह देखता क्या है कि उस धनपति का कारोबार चारों ओर फैला हुआ है। लाखों का व्यापार है और उस धनिक का चेहरा फूल की तरह खिला हुआ है। वह एक ओर बैठ गया और सोचने लगा, 'यह धनी, जो लाखों की माया में फँसा हुआ है, अनेकों झंझटों से घिरा हुआ है, अत: यह क्या मुझे रास्ता बताएगा?'

इतने में एक आदमी आया, उसका मुँह उतरा हुआ था। घबराते हुए उसने कहा, "मालिक! हमारा जहाज समुंद्र में डूब गया है और लाखों का नुकसान हो चुका है।"

उद्योगपति ने मुसकराकर कहा, "मुनीमजी, इसमें परेशान होने की क्या बात है? व्यापार में तो ऐसा होता ही रहता है।" इतना कहकर वह अपने साथी से उसी तरह बात करने लगा।

थोड़ी देर में एक दूसरा आदमी आया, जिसके चेहरे पर खुशियों की तरंगें थीं। वह बोला, "सरकार! रूई के दाम बढ़ गए हैं। हमें लाखों का फायदा हो गया है।"

धनिक ने कहा, "मुनीमजी! इसमें खुश होने की क्या बात है? व्यापार में तो ऐसा होता ही रहता है।"

सेठ को अपनी समस्या का समाधान मिल गया। उसने समझ लिया कि शांति का स्रोत वैभव में नहीं, अपितु मन की समता में है।

चाहते तो हम भी हैं कि मन में समता जागे। किंतु चाहने मात्र से समता नहीं आ जाएगी। समता साधना के लिए हमें अपने मन को मार्गदर्शन देना होगा कि जीवन में अच्छा-बुरा जो भी हो रहा है, वह अपने ही कर्मों का प्रतिफल है। इस तरह का चिंतन मन में समता दीप को प्रज्वलित कर सकता है।

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

सत्यसेल्स और सेल्ससत्य की कहानी

• आलोक पुराणिक



सुप्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक। हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में नियमित व्यंग्य लेखन तथा कवि सम्मेलन के मंचों से व्यंग्य-गद्य का पाठ। 'आज तक' और 'सहारा समय' टी.वी. चैनलों के लिए हास्य-व्यंग्य आधारित कार्यक्रमों का स्क्रिप्ट लेखन। एक व्यंग्य-संग्रह 'नेकी कर अखबार में डाल' प्रकाशित।

स्मार्ट डिपार्टमेंटल स्टोर में दो सेल्समैन काम किया करते थे। एक का नाम था सत्यसेल्स और दूसरे का नाम था सेल्ससत्य। सत्यसेल्स नामक सेल्समैन का मानना था कि सेल्स का आधार सत्य होना चाहिए और कस्टमर से हमेशा सत्य ही बोलना चाहिए। उसका मानना था कि सत्य के आधार पर की गई सेल से कस्टमर परमानेंट बनते हैं, इसलिए हमेशा कस्टमर के हितों को ही सर्वोपरि माना जाना चाहिए। इसलिए वह हमेशा कहा करता था कि सत्य ही सेल्स का आधार है।

उधर सेल्ससत्य नामक सेल्समैन का मानना था कि सेल्स ही परम सत्य है, क्योंकि सेल से ही सारे खेल होते हैं। मुनाफा सेल से ही आता है। इसलिए जैसे भी हो, सेल करनी चाहिए। सेल्ससत्य का मानना था कि कोई कारोबारी दुकान अपने मुनाफे के लिए खोलता है, न कि कस्टमर के मुनाफे के लिए।

सेल्ससत्य का मानना था कि आखिर दुकान का उद्देश्य कमाई करना होता है। और रही बात कस्टमर सेटिस्फेक्शन की, तो उसका मानना था कि भारतवर्ष की जनसंख्या बहुत ज्यादा है। सबको बारी-बारी से बेवकूफ बनाया जाए, तो भी आसानी से पूरी जिंदगी मुनाफे कमाए जा सकते हैं।

पेपर सोप से वीसीडी प्लेयर

एक बार दो कस्टमर स्मार्ट स्टोर में आए।

एक सत्यसेल्स के काउंटर पर गया और उसने पेपर सोप माँगा, सत्यसेल्स ने पेपर सोप दे दिया और वह कस्टमर वापस चला गया।

दूसरा कस्टमर सेल्ससत्य के काउंटर पर गया और उसने पेपर सोप माँगा। सेल्ससत्य ने कहा, "हेलो, आप कैसे हैं? ओह, पेपर सोप चाहिए, लगता है कि आप कहीं यात्रा पर जा रहे हैं।"

कस्टमर ने कहा, "मैं नहीं, मेरी बीबी मुंबई जा रही है मायके, गरमी की छुट्टियों में।"

सेल्ससत्य बोला, "ओह, फिर तो आपको अकेला रहना पड़ेगा। एक महीने का टाइम कैसे काटेंगे? इधर टी.वी. चैनलों के प्रोग्राम तो बहुत बेकार से आते हैं। आप कहें, तो एक ऑप्शन बताऊँ।"

कस्टमर बोला, "क्या?"

सेल्ससत्य बोला, "देखिए स्मार्ट कंपनी ने नया वीसीडी प्लेयर लॉञ्च किया है, इसे ले लीजिए। इसके साथ आपको बीस सीडी मुफ्त में दी जाएँगी। आपका टाइम आराम से कट जाएगा।"

कस्टमर बोला, "पर मैं तो इसके लिए पैसे नहीं लाया।"

सेल्ससत्य ने कहा, "कोई बात नहीं। यहाँ पर फाँसू बैंक का बंदा बैठा है, यह अभी आपको लोन दे देगा, बाकी की फॉर्मेलिटी ये आपके घर में जाकर करवा लेगा। डोंट वरी।" सो साहब, जो कस्टमर सिर्फ पेपर सोप खरीदने निकला था, वह एक वीसीडी प्लेयर और बीस सीडी लेकर निकला।

उधर फाँसू बैंक के सेल्समैन ने भी करीब पाँच सौ रुपए का कमीशन सेल्ससत्य को दिया।

स्मार्ट स्टोर का मालिक इस पूरे कारनामे को देख रहा था, वह सेल्ससत्य के पास आकर बोला—"ग्रेट, ऐसा सेल्समैन नहीं देखा, जो पेपर सोप खरीदनेवाले को वीसीडी प्लेयर भी चेप दे।"

इस पर सत्यसेल्स ने कहा, "वैसे यह तो अनुचित है। हमें कस्टमर को वही माल बेचना चाहिए, जो उसे चाहिए होता है, इस तरह से लोन दिलवाकर माल बेचना तो ठीक नहीं है।"

ऐसा सुनकर स्मार्ट स्टोर के मालिक ने सत्यसेल्स को डाँटा, "अबे तू मेरा एंप्लाय है या उस कस्टमर का एंप्लाय? जा फूट, मैंने तुझे नौकरी से निकाल दिया और सेल्ससत्य का प्रमोशन करके मैं इसे चीफ सेल्समैन बनाता हूँ।"

शाम को रोते हुए सत्यसेल्स से चीफ सेल्स ऑफिसर सेल्ससत्य बोला, 'हे मूरख! बेच, सिर्फ बेच। ऐसे भी बेच, वैसे भी बेच, कैसे भी बेच। ईमान, सत्य की बातें तब करना ठीक है, जब इनकी कीमत ठीक

मिलती हो। बेटा, आजकल सत्य-ईमान की बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले बाबा लोग भी मौका-मुकाम देखकर अपने चेलों को कैसेट, चूरन-चटनी, शैंपू, दवाइयाँ बेच रहे हैं। बंदा मोक्ष पाने के लिए बाबा के यहाँ आता है, और कैसेट व हर्बल शैंपू लेकर वापस जाता है। इसलिए बेच, कस्टमर की चिंता मत कर।"

सत्यसेल्स उसके वचन सुनकर बोला, "अगली नौकरी में तेरे ही वचनों का पालन करूँगा। एक रुपए का मोबाइल, सौ रुपए की मोटरसाइकिल।"

सत्यसेल्स को नौकरी से निकाले जाने के बाद उसके बेटे फेयरप्राइज को कृपा-अनुकंपा के आधार पर नौकरी दी गई।

पर फेयरप्राइज भी बाप की तरह से सच बोलने के दुर्गुणों से पीड़ित था।

एक बार दो कस्टमर स्टोर में घुसे। एक कस्टमर फेयरप्राइज की तरफ जाकर बोला, उस वाले मोबाइल की क्या कीमत है?

दस हजार रुपए, टैक्स अलग—फेयर प्राइज ने बताया।

उस वाली मोटरसाइकिल की क्या कीमत है, कस्टमर ने पूछा।

पचपन हजार टैक्स एक्स्ट्रा-फेयरप्राइज ने बताया। फेयरप्राइज का कस्टमर वापस भाग गया।

दूसरा कस्टमर सेल्ससत्य के पास गया।

उसे मोबाइल की कीमत बताई गई एक रुपया और मोटरसाइकिल की कीमत बताई गई सौ रुपए। कस्टमर ने रुचि दिखाई। जब वह सहमत सा हुआ तो सेल्ससत्य ने कहा, "पैसे की चिंता बिल्कुल मत कीजिए, हम लोन दिलवा देंगे।" कस्टमर ने कहा, "ओके।"

कस्टमर ने लोन के पेपर पर मजे-मजे में बिना देखे साइन कर दिए, यह सोचकर कि एक रुपया का और सौ रुपए का लोन तो चाहे जब चुका दूँगा। पर जब उसे फाँसू बैंक के सेल्समैन ने बताया कि आपकी महीने की किश्त चार हजार रुपए बनी है, जो आपको पच्चीस महीने तक देनी होगी। आप सारे दस्तावेजों पर साइन कर चुके हैं। इसमें यह शर्त आपने मंजूर की है कि अगर आप लोन लेने से इनकार करते हैं, तो भी आपको एक लाख रुपए प्रोसेसिंग फीस और डिफाल्ट चार्ज के बतौर हमें देने होंगे।

कस्टमर फँस चुका था, वो बोला, "पर आपने तो बताया था कि एक रुपए का मोबाइल और दस रुपए की मोटरसाइकिल।"

सेल्ससत्य इस पर बोला, "महाराज मोबाइल की कीमत तो एक ही रुपया है, पर ९९९९ रुपए उसकी एक्सेसरीज के हैं, हम मोबाइल की डोरी को छोड़कर हर आइटम को एक्सेसरीज मानते हैं। पहले आपको सिर्फ डोरी के पैसे बताए गए थे। ऐसी ही मोटरसाइकिल तो सिर्फ दस रुपए की है, पर बाकी की रकम हम आफ्टर सेल्स सर्विस के लिए लेते हैं।"

एक लाख रुपए डिफाल्ट फीस चुकाने के बजाय कस्टमर ने बेहतर समझा कि एक रुपए का मोबाइल और दस रुपए की मोटरसाइकिल ले ली जाए।

यह पूरा कांड देखकर फेयरप्राइज समझ गया और सेल्ससत्य से बोला—"सर, अब से मैं भी कार सौ रुपए की बेचा करूँगा।" इन कहानियों से हमें निम्न शिक्षाएँ मिलती हैं—

१. बेचो, बेचो! हर सेल्समैन को तमाम बाबाओं को फॉलो करना चाहिए, जो हर तरह का आइटम बेचने पर उतारू हैं। जिनके पास बंदे मोक्ष लेने जाते हैं और हर्बल शैंपू लेकर लौटते हैं।

२. समझदार सेल्समैन हेलीकॉप्टर भी सौ रुपए में बेचता है।

सा
अ

एफ-१, प्लॉट नं. बी-३९
रामप्रस्थ कॉलोनी
गाजियाबाद-२०१०११ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८१००१८७९९

डाकू का हृदय-परिवर्तन

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

एक गाँव में एक रईस रहता था। उसके अस्तबल में बहुत घोड़े थे। उनमें एक सफेद घोड़ा बहुत तेज दौड़नेवाला था। सब लोग उसकी प्रशंसा करते थे। एक दिन एक डाकू की उस पर नजर पड़ी। वह रात को उसके पास आया। उसने कहा, "यह घोड़ा मुझे दे दो।" रईस ने मना कर दिया। डाकू एक दिन लँगड़े वेश में भिखारी बना। जब रईस किसी गाँव जा रहा था, तब वह बोला, "बाबा, मुझे भी अगले गाँव जाना है, आप मुझे छोड़ने की कृपा करें।" रईस ने कहा, "ठीक है, तुम भी पीछे बैठ जाओ।" थोड़ी देर में रईस को प्यास लगी। वह एक प्याऊ के पास रुक गया। इतने में तो वह डाकू घोड़े को लेकर चला गया। रईस ने उसको आवाज दी, लेकिन उसने कहा, "मैं वही डाकू हूँ, जिसने तुमसे घोड़ा माँगा था। तुमने घोड़ा नहीं दिया। क्या कभी सीधी उँगली से घी निकलता है?" रईस ने कहा, "बाबा, यह घोड़ा तो तुम चाहे ले जाओ, लेकिन यह बात तुम किसी को मत कहना।" डाकू ने पूछा, "क्यों?" रईस ने कहा, "फिर कोई किसी लँगड़े भिखारी पर भरोसा नहीं करेगा।"

डाकू के हृदय का भाव बदला। उसने घोड़े को उस रईस को वापस कर दिया।

सा
अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

कारा

● बलराम



प्रख्यात लेखक, पत्रकार, पत्रकार व संपादक। चार कथा संग्रह, एक व्यंग्य-संग्रह, तीन उपन्यास, संस्मरण की दो पुस्तकें, एक यात्रावृत्त, आलोचना की तीन व दो पत्रकारीय कृतियाँ प्रकाशित। 'प्रेमचंद रचनावली' और 'विश्व लघुकथा कोश' का संपादन। 'रविवार', 'करंट', 'सारिका' के संपादक मंडल से संबद्ध रहे। 'नवभारत टाइम्स' के मुख्य उपसंपादक रहे। 'लोकायत', 'शिखर' और 'शब्दयोग' के संपादक रहे। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से विभूषित। संप्रति : साहित्य अकादेमी की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' के संपादक।

कमला ने सत्य प्रकाश पर अचूक तीर चलाया था और उसका वार खाली नहीं गया। तीर सही निशाने पर बैठकर सत्य प्रकाश के जीवन-जगत् को तहस-नहस कर गया। एक ही तीर से कमला ने तमाम शिकार कर उसे चारों खाने चित्त कर दिया। सब लोग जानते हैं कि उसका क्लासमेट रहा रघुनंदन अब डॉक्टर है। कमला के इस आरोप को बड़े भैया अजय प्रकाश ने ही नहीं, सबने सही मान लिया है कि सत्य प्रकाश के कहने पर डॉ. रघुनंदन ने जहर का इंजेक्शन देकर बड़की भाभी को मार दिया, वरना ऐसे कैसे पल में प्रलय हो जाती! कहाँ तो दोपहर की ट्रेन से बड़े भैया अपनी पत्नी को लेकर गाँव लौटनेवाले थे और कहाँ उनकी मिट्टी को फूँक-तापकर खाली हाथ लौटे। यह अनहोनी पलक झपकते इस तरह कैसे हो गई, घर-परिवार और गाँव-जवार के सब लोग अवाक् रह गए थे, हतप्रभ। मन में चाहे जिसने जो भी सोचा पर सत्य प्रकाश पर ऐसा संदेह किसी ने भी नहीं किया था; लेकिन अब तो अपनों और गैरों, सबके मन में संदेह का कीड़ा कुलबुलाने लगा होगा कि हो न हो, बड़की अपनी मौत न मरी हों, उनकी हत्या करवा दी गई हो और यह कुकर्म सत्य प्रकाश ने करवा दिया हो, क्योंकि बचपन में बड़की उसे अपने घर रखने के लिए एकदम तैयार न थीं। सत्य प्रकाश और बड़की के बीच नफरत की खाई कभी पाटी न जा सकी और मौका मिलते ही सत्य प्रकाश ने उसे अपने रास्ते से हटा दिया।

गाँव-घर के लोग अच्छी तरह समझते हैं कि पति की मजबूरी समझकर बड़की उसे अपने घर रखने के लिए मान तो गई थीं, लेकिन उन्होंने सत्य प्रकाश को सहज रूप से कभी स्वीकार नहीं किया, लेकिन दादी के चलते उनके जीते-जी उस घर में उसकी जड़ें जम गईं और वह उसे ही अपना घर समझने लगा। पाँच बरस तक उस गाँव-घर में रहते हुए वहाँ का आसमान उसे अपना लगने लगा था, लेकिन भाभी का वैरभाव नहीं गया तो फिर नहीं ही गया। घर के बेगानेपन को उसने बाहर मिलते रहे अपनेपन से किसी हद तक भले ही दूर कर लिया था, लेकिन जैसे ही मौका मिला, वह वहाँ से भाग निकला और अम्मा-बप्पा के पास पहुँच गया और फिर तभी लौटा, जब बड़की भाभी ने खुद कहा, "लौट भी आ यार। अबकी बार मेरे कहने पर आ, यहाँ तेरी जरूरत है।" सुनकर हुलसता हुआ लौट आया था वह भाई-भाभी के पास, लेकिन कमला की चिट्ठी के इस पाँसे का कोई जवाब नहीं है उसके पास। कमला की चिट्ठी से बही हवा जनमत को अब एकमत कर देगी कि अपनी भाभी का हत्यारा है सत्य प्रकाश और मंजरी से प्रेम के चलते अपनी पत्नी को भी राह के काँटे की तरह हटाने जा रहा था। बड़ी चालाकी से कमला ने ऐसा अंधड़ चला दिया, जिसमें फँसकर सत्य प्रकाश का जीवन और जगत् तहस-नहस हो गया। कमला के माता-पिता ने तो बड़ी आसानी से सबकुछ सच मान लिया होगा। तभी तो उन्होंने उनका तलाक करवा देने का निर्णय ले लिया।

कमला को यह सब इतनी आसानी से कर और करवा लेने की राह पर बढ़ा दिया था चंदू के हँसी-मजाक ने। उसके मजाक ने देखो तो कैसे तिल का ताड़ और कण का पहाड़ खड़ा कर दिया! मंजरी और उसके बीच आपसी समझदारी विकसित जरूर हो गई थी, मगर उसे प्यार नहीं कह सकते। प्यार तो वह किसी और से करती थी और शादी भी उसी से करना चाहती थी, पर चाचा का इरादा उसकी शादी किसी और से कर देने का था। जात-पाँत का लफड़ा भी तो है। इसके अलावा कमला का पति है वह। मंजरी से शादी करने की बात तो सपने में भी नहीं सोच सकता। हालाँकि पहली रात ही कमला से उसका संबंध खराब हो गया था, मगर कमला को प्यार वह अब भी उतना ही करता है, क्योंकि कमला उसकी कामना है, कमला उसकी भावना है, कमला उसकी पत्नी है और है उसकी नई जिंदगी का आधार। मंच से उसे हटते ही उसकी नई जिंदगी की नींव ही हिल जाएगी, आम हिंदुस्तानी की तरह सत्य प्रकाश ऐसा सोचता है। एक

बार को विवाह हो जाने के बाद अब प्रेमिका है तो कमला, प्रियतमा है तो कमला, पत्नी है तो कमला, अर्द्धांगिनी है तो कमला। कमला है, सिर्फ और सिर्फ कमला है, क्योंकि शादी हो जाने के बाद अब कमला उसकी कविता है, कमला ही कहानी और कमला ही अब उसके कर्म-धर्म, सबकी धुरी है, कमला ही उसकी ये है, कमला ही उसकी वो है। मतलब ये कि अब जो कुछ है, सबकुछ कमला में ही निहित है। कमला है तो वह है, कमला नहीं तो वह भी नहीं। उसकी कमला उसी की बनकर रहे तो ही वह जीवित रहेगा, क्योंकि उसके बाद अब वह किसी और का नहीं हो सकता, न ही कोई और अब उसका हो सकता है, लेकिन अपनी इन पवित्र भावनाओं को कमला के साथ एक पल भी कहाँ शेयर कर सका सत्य प्रकाश! कमला ने धीरे-धीरे सबकुछ मिटा दिया। एक-एक कर उसके सारे भ्रम उसने तोड़ दिए और अब बड़े भैया के नाम आई कमला की चिट्ठी का इस तरह जन-जन तक पहुँच जाना! उफ्फ! सत्य प्रकाश ने दीर्घ श्वास छोड़ी और अतीत में खो गया।

जामगाँव से चंद्र प्रकाश आया था। कई दिन रुका और कमला से घुल-मिल गया। कमला उन दिनों श्यामगंज में ही थी। सत्य प्रकाश भी रोज कानपुर से गाँव आ जाता। रविवार का दिन था और सब लोग आँगन में बैठे बोल-बतिया रहे थे कि हर चौथे दिन कमला के मायके चले जाने का प्रसंग आ गया और प्रसंगवश ही चंद्र प्रकाश के मुँह से अनायास निकल गया, "कमला भाभी, ये रोज-रोज मायके भागोगी तो किसी दिन सत्ती भैया दिल्ली चले जाएँगे और मंजरी से शादी कर लेंगे।"

"मंजरी! कौन मंजरी?" कमला के कान खड़े हो गए।

"अरे वही, जिसके साथ सत्ती भैया जामनगर आकर सोशल वर्क करते हैं।"

"अच्छाऽऽऽ।" कमला ने आश्चर्य से कहा, मानो कोई बहुत बड़ा रहस्य उजागर हो गया। चंद्र प्रकाश ने आगे और भी जड़ दिया, "उसने हाथ जोड़ते हुए सत्ती भैया से विनती की है कि गरमी की छुट्टियों में दिल्ली आओ और हमारे साथ सोशल वर्क करो। दिल्ली आकर हमारे साथ रहने से मुझे बल मिलेगा। मंजरी की बात सत्ती भैया काट नहीं सके और फिर आप भी तो इनसे लड़-झगड़कर मायके चली गई थीं उन दिनों। इसीलिए कहता हूँ कि सत्ती भैया को बाँधकर रखो, वरना फिर मत कहना कि चंदू लाला, सबकुछ जानते-बूझते आपने हमें बताया-चेताया नहीं।" चंद्र प्रकाश यह सब एक साँस में कह गया, मानो हमारे हित में उसने कोई तीर चला दिया।

हँसी-मजाक में कही गई चंद्र प्रकाश की यह बात कमला ने सुनी थी और घर की औरतों ने भी। औरतों से होती हुई बात भाइयों तक पहुँची और आज जिस रूप में बड़े-बूढ़ों तक पहुँची है, सत्य प्रकाश के लिए वह अकल्पनीय है। कमला ने किस चतुराई से उसका इस्तेमाल अपने हक में कर लिया। उस मजाक का ऐसा दुरुपयोग हो सकता है, जानता होता तो भूलकर भी ऐसी बात न करता चंद्र प्रकाश।

"चंद्र प्रकाश! कौन चंद्र प्रकाश?" चौपाल में उसका जिक्र आने पर सभापति काका ने पूछा था।

"अरे वही, सिपाही नाना का पोता, जिसके साथ बचपन में सत्ती खेलते-कूदते थे। बहन के लिए लड़का देखने आया था श्यामगंज।" मँझले भैया ने सभापति काका को बताया, "सत्ती को सत्य प्रकाश और चंदू को चंद्र प्रकाश नाम सिपाही नाना ने ही तो दिया था।"

"अच्छा-अच्छा, सत्ती के बचपन का यार है चंद्र प्रकाश।" सभापति काका ने साश्चर्य कहा था और आज वही सभापति काका मंजरी प्रसंग को इस आरोप के साथ जान गए हैं। न जाने किस अर्थ में ले रहे होंगे! आधे-अधूरे प्रसंग से सभापति काका तो क्या, कोई भी कैसा भी अर्थ-अनर्थ निकाल सकता है। मंजरी प्रसंग को सही रूप में किसी को बताया-समझाया भी तो नहीं जा सकता। वह बेचारी तो भावना में बहती चली आई थी जामगाँव, सोशल वर्क का अपना प्रोजेक्ट पूरा करने; लेकिन चाचा ने कहाँ कुछ करने दिया उसे! मंजरी की मोहक छवि और निर्मल मन को याद करते हुए सत्य प्रकाश विषाद के कुएँ से बाहर निकल आया, जहाँ निस्पंद ढहा पड़ा था। उठकर रामलाल के बगीचे की ओर निकल गया।

बगीचे में पहुँचकर सत्य प्रकाश सहज हुआ, सहज से सहजतर होने में कुएँ के आसपास खिले फूलों और उनकी मनभावन महक ने उसकी मदद की। कुएँ की जगत के पास एक झिलंगी खाट थी, बिना बिछी, जिस पर लेटते ही ठंडी बयार के झोंके उसे परिचित-सा सुकून दे गए—किशोरावस्था का जाना-पहचाना सुकून, जब वह रामलाल के साथ बैठकर यहीं पढ़ा-लिखा करता था। अब तो खैर रामलाल एयरफोर्स में है और अरसे से उनकी भेंट नहीं हो पाई, लेकिन वह उसका सबसे प्यारा दोस्त था, लँगोटिया यार। पाँव पसारकर सत्य प्रकाश खाट पर लेटा तो मंजरी की यादों ने उसे फिर से गिरफ्त में ले लिया।

मंजरी का अंतरंग होकर काफी कुछ उसे समझने लगा था सत्य प्रकाश। वह एक प्यारी लड़की थी, प्यारी और समझदार। उसके और मंजरी के बीच जुड़ाव का सूत्र बन गया था जामगाँव। दोनों ही उसी गाँव में पैदा हुए और फिर जन्मभूमि से जुदा हो गए। संयोग से दोनों एक ही समय जामगाँव पहुँच गए। पहुँच ही नहीं गए, टकरा भी गए। उसी टकराहट ने उनमें मैत्रीभाव पनपा दिया था, गहरा मैत्रीभाव।

मंजरी के संग-साथ बीता महीने भर का वह समय रह-रहकर याद आता रहता है सत्य प्रकाश को। उसके गहन सान्निध्य में ही उसने जाना था कि स्त्री-पुरुष के बीच चिर-परिचित पूर्वग्रही रिश्तों के अलावा एक और रिश्ता हो सकता है, मैत्री का, पवित्र, प्यारा और हमदर्द। उस रिश्ते के लिए भी बहुत हुड़कता है सत्य प्रकाश। कोई भी रिश्ता पूरी तरह वह कभी जी ही कहाँ सका। हवा का कोई झोंका आता है और उससे जुड़े किसी भी रिश्ते को उड़ाकर ले जाता है, जैसे उस दिन मंजरी को भी उड़ा ले गया और वह अकेला रह गया, अकेला का अकेला।

"किस उधेड़बुन में हो सत्ती?" सभापति काका की आवाज से सत्य प्रकाश चौंक गया और चारपाई से उठकर खड़ा हो गया। तब तक सभापति काका उसके एकदम करीब आ गए। हड़बड़ाहट में वह कुछ बोल ही न सका तो चारपाई पर बैठते हुए पूछा, "तो तुम दिल्ली जा रहे हो?" सत्य प्रकाश हतप्रभ, मानो रंगे हाथ पकड़ लिया गया। उसकी समझ में नहीं आया कि सभापति काका कैसे जान गए कि लेटा-लेटा वह दिल्ली जा

चुकी मंजरी के बारे में ही सोच रहा है!

"नहीं काका, अभी तो ऐसी कोई योजना नहीं।"

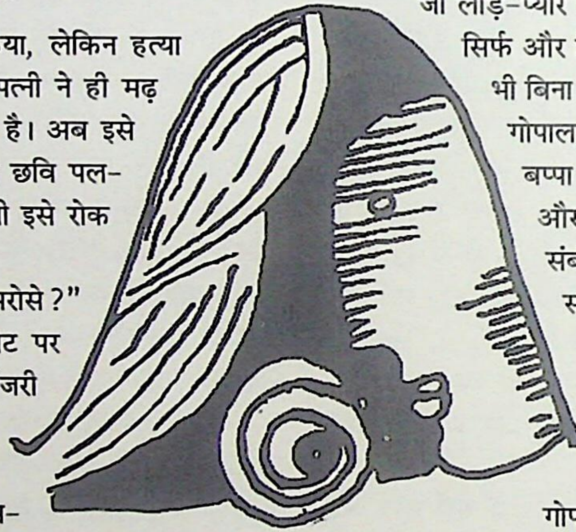
"अभी नहीं तो कभी नहीं।" कहकर सभापति काका ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "यह समय पड़े-पड़े सोचने का नहीं, कुछ करने का है सत्ती बेटे। तुम गाँव में हम लोगों के पास रहते तो हमें बहुत अच्छा लगता। कानपुर में ढंग की नौकरी पा जाते तो उससे भी ज्यादा अच्छा रहता, लेकिन इन हालात में इससे बेहतर कुछ नहीं होगा कि तुम एक बार फिर अपनों से दूर, बहुत दूर, सपनों के अपने देस, दिल्ली चले जाओ।"

"क्यों काका, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?"

"इसीलिए कह रहा हूँ बेटे, कि यहाँ अब तुम्हारा कोई नहीं है।"

"क्यों काका, मैंने ऐसा क्या कर दिया कि अपनों के बीच इस तरह एकदम पराया हो गया? इस एक दिन में ही ऐसा क्या हो गया कि कोई हमारा न रहा और हम किसी के न रह गए?"

"अब तुमने कुछ किया या नहीं किया, लेकिन हत्या का पक्का आरोप तो तुम्हारे सिर तुम्हारी पत्नी ने ही मढ़ दिया, जिसे सबने लगभग सच मान लिया है। अब इसे मिटाना आसान नहीं। तुम्हारी यह कलंकित छवि पल-प्रतिपल हवा की तरह फैलेगी और कोई भी इसे रोक नहीं पाएगा।"



"चला तो जाऊँ काका, मगर किसके भरोसे?" सत्य प्रकाश ने पूछा। सभापति काका खाट पर कोहनी टिकाकर अधलेटे ही बोले, "मंजरी शायद तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

"नहीं काका, मंजरी से मेरा संबंध वैसा नहीं है, जैसा लोग समझ रहे हैं। कम-से-कम आप तो मेरे कहे का यकीन कीजिए।"

"बात मेरे यकीन की नहीं है सत्ती बेटे, चाहकर भी मैं तुम्हें इस समय बचा नहीं पाऊँगा। बाद में भले ही लोग तुम्हारी पूजा करें, लेकिन इस समय तो जिधर जाओगे, नफरत ही नफरत पाओगे।" कहते हुए काका उठकर चल दिए तो सत्य प्रकाश ने लगभग गिड़गिड़ाते हुए विनती सी की, "मेरी बात का भरोसा करो काका, मुझे बचा लो।"

"इस समय खुद को बेगुनाह साबित करने के चक्कर में मत पड़ सत्ती बेटे, मेरी बात मान, घर आ, कुछ पैसे ले और गोली मार गाँव-घर को। यहाँ से भाग और जीवन का नया घरौंदा खींच। उसके भीतर खुद को बचा ले। तू बचा रहेगा तो एक-न-एक दिन सबकुछ ठीक कर लेगा। तेरे ये मूरख भाई नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं, लेकिन हम जानते हैं कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं; और कमला को तो तू भूल ही जा। उसने यह खेल क्यों खेला, हमें नहीं पता, लेकिन तुझे सब पता है, पर किसी को बता नहीं पाएगा तू। तुझ पर मुझे भरोसा है मेरे बच्चे, पूरा भरोसा है। मैं तुझे बचपन से जानता हूँ। जो चींटी तक को नहीं मार सकता, भाभी को कैसे मरवा देगा? लेकिन आज मैं तुझे नहीं बचा सका, कल भी नहीं बचा सकूँगा। इसीलिए कह रहा हूँ कि तेरे लिए इस समय इस नरक से भाग जाना ही अच्छा है। मेरी मान और दिल्ली चला जा।" कहकर काका चले गए तो सत्य प्रकाश के सामने उभर आया था बीस बरस पहले का वह मंजर, जैसे कल की बात हो!

भैंसा जुती गाड़ी चल पड़ी। अपने-अपने दरवाजे खड़े श्यामगंज के लोग देख रहे हैं—भैंसा गाड़ी को हाँकते अजय प्रकाश और उस पर बैठा सत्ती, जो अभी छह बरस का भी नहीं हुआ है। अजय प्रकाश अभी छब्बीस बरस के भी नहीं हुए हैं, लेकिन तीन बच्चों के बाप बन चुके हैं, लेकिन आज एक नई भूमिका में उतारे जा रहे हैं, सत्ती के अभिभावक की भूमिका में। बप्पा ने आज उन पर चौथे बच्चे का दायित्व भी डाल दिया है, जो कहने को तो उनका छोटा भाई है, लेकिन उनके बड़े बच्चे से सिर्फ एक बरस बड़ा। वह उनका भाई जरूर है, मगर उनकी माँ ने उसे जना नहीं। उनकी माँ के मरने के बाद हुई पिता की दूसरी पत्नी का बेटा है, जो लाड़-प्यार में बिगड़कर बहेतू हो गया, जिसे ठीक करने में सिर्फ और सिर्फ अजय प्रकाश सक्षम समझ लिये गए। वह भी बिना उनसे पूछे। गाड़ी में बिठाकर अजय प्रकाश उसे गोपालपुर ले जा रहे हैं। ठीक इसी उमर में एक दिन जैसे बप्पा की बुआ अजय प्रकाश को यहाँ से ले गई थीं और उनसे छूट गया था, उनका गाँव-घर और उनके संबंधी, जिनके बीच वे पल-बढ़ रहे थे। उसी तरह सत्ती से भी सब छूट गया था।

अजय प्रकाश के गोपालपुर जाने की भूमिका महीनों पहले बनी थी और दादी आकर कुछ दिन अजय प्रकाश के साथ रही थीं। जब वे उनसे घुल-मिल गए तो एक दिन उन्हें लेकर वे गोपालपुर चली आई थीं। उसके बाद गोपालपुर ही अजय प्रकाश का गाँव-घर हो गया और धीरे-धीरे वे श्यामगंज को भूल गए, सिर्फ पिता याद रहे, जो अकसर उनसे मिलने आ जाया करते और खेती-बाड़ी की देखभाल भी कर जाया करते, लेकिन उस दिन सत्ती अचानक उन्हें सौंप दिया गया, इस हिदायत के साथ कि इसे पढ़ा-लिखाकर ढंग का आदमी बनाना तुम्हारा काम है। यह काम अजय प्रकाश करना चाहते भी हैं या नहीं, पूछने की जरूरत नहीं समझी बप्पा ने। ऐसा कर देने में कोई बड़ी बाधा थी भी नहीं, इसीलिए अजय प्रकाश ने बिना किसी ना-नुकुर के बप्पा की इच्छा और आदेश को सिर-माथे धर लिया। ऐसा करके वे पिता की नजरों में कुछ और बड़े तो हुए ही, गाँव-जवार में आज्ञाकारी पुत्र माने जाकर रामजी की तरह गणमान्य भी हो गए। लोग उनका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि 'बेटा हो तो अजय प्रकाश जैसा, जिसने बिगड़ैल भाई को काबू कर पिता की बहुत बड़ी समस्या चुटकी बजाते हल कर दी।'

गाड़ी गाँव के मुहाने पर पहुँचने को थी। अजय प्रकाश गाड़ी के अगले हिस्से में और सत्ती उनके पीछे बैठा था, सिर झुकाए हुए। गाड़ी के पीछे-पीछे अम्मा थीं, रोती-बिलखती। सभापति काका के साथ बप्पा आ रहे थे, चुपचाप, सिर झुकाए—छह बरस के अबोध सत्ती को जबरन माँ से दूर भेज देने के अपराधबोध में डूबे। बप्पा की आँखों में भरे आँसू

भी गिरने-गिरने को हो आए थे और अम्मा तो खैर आँसू बहा ही रही थीं, उनका 'कोख पोछना पूत' उनसे बिछड़ रहा था। नाला पारकर नीम की छाँव तले अजय प्रकाश ने गाड़ी रोकी तो अम्मा-बप्पा और सभापति काका भी रुक गए। सत्ती जान गया कि यही है सरहद, जिसके पार उसे जाना है, जिसके बारे में वह जानता कुछ नहीं, सोच भर सकता है। जानता है तो सिर्फ इतना कि वहाँ भाभी हैं, उनके बच्चे हैं और हैं दादी अम्मा, बप्पा की निस्संतान और अकेली रह गईं विधवा बुआ। अंधी और बूढ़ी।

"अब आप लोग लौटि जाव, कहाँ लग चलिहौ!"

"हाँ, जाव बेटा, सत्तेवा क्यार खयाल राखेव, इयो अब तुम्हरे भरोसे है। खाँय-पियें केरि चिंता राखेव अउर मारेव नैं, डांटि-फटकारि कै काबू मा करि लेहेव।" कहते-कहते बप्पा का गला रुँध गया और वे घर की ओर मुड़ चले।

और अजय प्रकाश को सचमुच ज्यादा कुछ करना नहीं पड़ा। सत्ती उनके काबू में आ गया और अब तक रहा, लेकिन आज सब्र की सीमा टूट गई और उसने विद्रोह कर दिया, जिसकी कल्पना तक नहीं कर सके होंगे अजय प्रकाश। तभी तो २७ बरस की भरी जवानी में उन्होंने उसे थप्पड़ मार दिया। थप्पड़ ही नहीं मार दिया, उसके साथ वह भी कर दिया, जो दुश्मन के साथ किया जाता है।

सत्य प्रकाश और कमला के बीच जुड़ा तार इतना कमजोर होगा, यह तो किसी ने सोचा तक न था, न अम्मा-बप्पा ने, न ही अजय प्रकाश और घर के बाकी लोगों ने। खुद बड़े भैया कहाँ चाहते रहे होंगे ऐसा। कमला के पिता ऐसा सोच पाते तो उससे कमला की शादी ही क्यों करते? हाँ, कमला की माँ को जरूर ऐसी आशंका रही होगी। उस सुबह तभी तो वे सत्य प्रकाश के पाँव पड़कर रोई थीं, जिस सुबह सत्य प्रकाश के साथ कानपुर आने की बजाय कमला न जाने किसके साथ, कहाँ चली गई थी। सत्य प्रकाश और कमला के जीवन की वह पहली यात्रा ही उनके चिथड़ा-चिथड़ा जीवन का संकेत दे गई थी। सत्य प्रकाश के दिल में उस दिन ऐसा घाव हुआ, जो फिर कभी भरा ही नहीं जा सका। जीवन भर जिससे खून रिसता रहा और सत्य प्रकाश के वजूद को अहर्निश ऐसी टीस देता रहा कि शादी के बाद एक दिन भी वह चैन की नींद नहीं सो सका। सो भी कैसे सकता था, मिडिल पास करने के एकदम बाद कुलगुरु चैतन्य शास्त्री ने हाथ देखकर उसके भविष्य का ऐसा ही खाका जो खींच दिया था। थोड़ा-बहुत जो बचा था, वसुधा के शाप ने नसा दिया।

आठवीं का रिजल्ट आया ही आया था कि एक दिन कुलगुरु चैतन्य शास्त्री श्यामगंज पधारे और सत्य प्रकाश की चौपाल में डेरा डाल दिया। चार लोगों के बाद सत्ती का हाथ देख चकित हो बोले, "यह बालक तो बड़ा प्रतापी होगा। देश-देशांतर में कुल-गोत्र, गाँव-इलाके और माता-पिता का नाम रोशन करेगा, लेकिन सावधानी न रखी गई तो गड़बड़ भी बहुत करेगा, मगर किसी का कुछ बिगाड़ेगा नहीं। गड़बड़झालों के बीच भी कुछ ऐसा करेगा कि दुनिया देखेगी। शादी न करे तो भविष्य उज्ज्वल-ही-उज्ज्वल है, लेकिन हाथ की रेखाएँ कह रही हैं कि यह कई स्त्रियों का भरतार और कुछ का करतार होगा। रुक्मिणी, सत्यभामा, राधा और मीरा, सब इसके जीवन में होंगी, लेकिन अंत में कोई साथ नहीं होगी। पिछड़े इलाके की सत्यभामा इसके भीतरी और बाहरी संसार को आग लगाएगी तो अगड़े घर की रुक्मिणी प्यार तो बहुत करेगी, लेकिन औरों की ईर्ष्या में इसकी आंतरिक शांति भंग करती रहेगी और दूर बैठी राधा जार-जार रोएगी, लेकिन कर कुछ भी नहीं पाएगी। मीरा दीवानी होगी, मगर इसे हासिल न कर सकेगी। इनमें से कोई एक इस पर हमला करेगी और आत्मरक्षा में भी यह उस पर वार नहीं करेगा और पीछे से कोई इसका शिकार कर लेगा। बियाबान में यह असहाय मरेगा, असहाय और अकेला, जहाँ से इसके मरने की खबर देने भी कोई नहीं आएगा। होने को तो यह सबका होगा, मगर इसका कोई नहीं होगा। सबका होने के फेर में यह किसी का भी न हो पाएगा। कोई बंधु-बाँधव इसे अपना नहीं कहेगा और संतानें इस पर गर्व नहीं करेंगी, लेकिन यह जब मरेगा तो सबका देना-पावना कर चुका होगा और···" कहते-कहते चैतन्य शास्त्री उससे मुखातिब हुए, "सत्ती बेटे, तुम्हारी असमय मृत्यु का कारण तुम्हारी स्त्री ही बनेगी, इसीलिए औरतजात के चक्कर में मत पड़ना। कभी पड़ जाना तो भूलकर भी उससे विवाह मत करना। विवाह करना तो कोई और लफड़ा नहीं पालना, मगर सत्ती बेटे, तुम्हारे हाथ की रेखाओं में जो है, वह तो होकर रहेगा। उसे कोई बदल नहीं सकेगा। मैं लाख मना करूँ और तुम लाख न चाहो, मगर अप्सराएँ तुम्हारा पीछा तो करेंगी और तुमसे उनका विवाह भी होगा। कम-से-कम दो बार तुम ऐसा करोगे और मरोगे···" कहते हुए चैतन्य शास्त्री का स्वर ऊँचा हो गया और चेहरा तमतमा उठा। झटके से उठे, झोला-झंडा उठाया और तेजी से नहर की ओर निकल गए।

केओं···केओं···मोरों की पुकार ने सत्य प्रकाश का ध्यान भंग किया तो उसकी नजर लालिमा बिखेरते सूर्य देव पर पड़ी, जो अस्त होने जा रहे थे और वह! वह सोच रहा था कि उसे तो श्यामगंज के लोगों के वचन-कुवचन सुनने हैं। शहर जाकर अकेलेपन की आग में तपना है। आखिरी बार गोपालपुर जाकर वहाँ भी सबकुछ देखना-सुनना है और फिर तय करना है कि इस महाभारत का विजेता बने या रण छोड़कर भाग जाए? सोचते हुए सत्य प्रकाश को लगा कि सभापति काका ने शायद ठीक ही कहा है, "इस समय खुद को बेगुनाह साबित करने के चक्कर में मत पड़, मेरी बात मान, घर आ, कुछ पैसे ले और यहाँ से भागकर जीवन का नया घरौंदा खींच। जैसे आज तुझे नहीं बचा सका, कल भी नहीं बचा सकूँगा। इसीलिए कह रहा हूँ कि इस समय तो दिल्ली जा।"

दिल्ली की बात सोचते ही मंजरी उसके भीतर एक नए रूप में घर करने लगी। धीरे-धीरे, बहुत धीरे!

(लंबी कथा का एक अंश)

सा अ

६९ उपकार अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ०९८१०३३३९३३
balrampn@gmail.com

शंकर और सोनभद्रा

• आशुतोष राणा



प्रख्यात सिने-अभिनेता व रंगकर्मी। 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' से स्नातकोत्तर। फिल्मों में अनेक स्मरणीय भूमिकाएँ निभाते हुए साहित्यिक लेखन में सक्रिय। दो कृतियाँ 'मौन मुस्कान की मार' (व्यंग्य-संग्रह) व 'रामराज्य' (उपन्यास) प्रकाशित होकर बहुचर्चित व लोकप्रिय हुईं। भाषा की शुद्धता और उच्चारण के प्रति विशेष आग्रही।

रात के करीब १०:३० बज रहे थे, आज कोहरा अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक घना था, उसे बनारस की गलियों में कार चलाते हुए बहुत सावधानी बरतनी पड़ रही थी। उसने विश्वनाथ मंदिर के पास पहुँचकर कार खड़ी की और लगभग भागते हुए मंदिर की ओर बढ़ी, कोहरे के कारण वह लेट हो गई थी। मंदिर के बंद हो जाने की आशंका से उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था, उसे लग रहा था कि आज देवयोग से उसका नियम भंग होनेवाला है। नियम भंग से अधिक पीड़ा उसे इस बात की थी कि उसके गुरुदेव के आगाह करने के बाद भी वह उनके द्वारा निर्देशित आदेश का पालन करने में सफल नहीं हो पा रही थी। वह मन-ही-मन महादेव शिव से याचना कर रही थी कि वे कृपापूर्वक उसके संकल्प की रक्षा करें···

विश्वनाथ मंदिर की शयन आरती की समाप्ति के बाद पुजारी युवक गर्भगृह के द्वार को बंद कर पलटा ही था कि यह श्यामवर्णी षोडशी उससे टकरा गई, जिससे उस रूपसी के हाथ से पूजा का थाल छूट गया; अचानक लगे इस धक्के से युवक चौंका। उसने देखा कि महादेव को अर्पित होने वाले बेलपत्र उसके पैरों पर कुछ इस तरह गिरे हुए हैं, जैसे किसी ने उसे ही ये बेलपत्र श्रद्धापूर्वक अर्पित किए हों···

युवक ने देखा कि वह युवती हाँफ रही थी, जैसे बहुत दूर से दौड़ती हुई आ रही हो! माघ की ठंड में भी उसके प्रशस्त ललाट पर स्वेद कण झिलमिला रहे थे, उसके कपोल रक्तवर्णी हो गए थे, उसके सम्मोहित करनेवाले नेत्रों में चिंता थी, किंतु होंठ निःशब्द हिल रहे थे; होंठों की गति से युवक समझ रहा था कि युवती महादेव के पंचाक्षर मंत्र का जाप कर रही है।

अब पहली बार युवती ने युवक की ओर देखा, उसकी आँखों की भाषा को पढ़ते हुए युवक ने बहुत धीरे से कहा, "पट बंद हो चुके हैं, आपको थोड़ी देर हो गई।"

'पट बंद हो चुके हैं,' सुनकर युवती के नेत्रों से मात्र दो अश्रुबिंदु निकलकर उसकी पलकों में आकर ठहर गए।

युवती बिखरी हुई पूजन-सामग्री को उठाने के लिए झुकी। बेलपत्र को उस युवक पुजारी के चरणों पर गिरा देख उसे असीम संतोष मिला और उसने धीरे से उस युवक के पैर के अँगूठे का स्पर्श किया और हाथ को अपने माथे से लगाया। पलभर को युवक की आँखों में देखा और अपने आप ही उसके दोनों हाथ प्रणाम की मुद्रा में जुड़ गए···युवक उस युवती के मनोभावों को अपलक देख रहा था, मानो वह उसके हृदयप्रदेश में विचरने वाले समस्त भावों को लोप लेना चाहता हो···तभी प्रधान पुजारी की ध्वनि से उसकी तंद्रा भंग हुई। वे उसका नाम लेकर उसे पुकार रहे थे, "शंकर चलो, पट बंद होने के बाद मंदिर में अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिए।"

युवक का नाम शंकर है, यह सुनकर उस युवती ने परम आह्लाद से सशब्द कहा, "महादेव, मैं परम सौभाग्यशाली हूँ! आप सबको गर्भगृह में दर्शन देते हैं, किंतु आपने देखा कि मैं आपकी भक्त, आज सोलहवें सोमवार पर आपके दर्शनों के लिए विलंब से पहुँची हूँ, तो आप दया करके गर्भगृह से बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे, मेरे इस अपराध को क्षमा करते हुए आप मेरी पूजा स्वीकार करें···आपने मेरे संकल्प की रक्षा की महादेव, मैं अनुगृहीत हूँ।"

तभी प्रधान पुजारी ने फिर से आवाज लगाई, "शंकर चलो···" युवक यंत्रचलित-सा बाहर की ओर बढ़ने लगा। वह युवती उसकी अनुवर्ती होकर उसके पीछे-पीछे चलने लगी। अचानक युवक ने अनुभूत किया कि उसने उस युवती के साथ महादेव के मंदिर का पूरा एक चक्कर लगा लिया है।

यह उसकी सप्तपदी थी, जो उसने उस युवती के साथ महादेव को साक्षी मान संपन्न की थी।

युवक पलटा और उसने उस युवती को देखकर कहा, "मैं पूर्ण हुआ देवी, आपका आभार! महादेव सदैव आपका मार्ग प्रशस्त करें, आपका

कल्याण हो, विदा…" और उसने सामने बह रही गंगा में छलाँग लगा दी।

युवती को समझ ही नहीं आया कि यह क्या हुआ? क्यों हुआ? कौन था यह युवक, जो उसके सामने देखते-ही-देखते गंगा के जल में समा गया? युवक से पूर्णत: अपरिचित होने के बाद भी वह कुछ ही पलों में उसके प्रति एक अजीब सी आत्मीयता से क्यों बँध गई थी?

सोनभद्रा के जीवन में १५ वर्ष पूर्व घटित होनेवाली यह दिव्य रहस्यमयी घटना कब स्मृतियों की धुंध में लुप्त हो गई, उन्हें पता ही नहीं चला।

लेह के मिलिट्री हॉस्पिटल के अपने केबिन में कर्नल (डॉ.) सोनभद्रा त्रिपाठी सिंह अपने पति कर्नल आदित्य प्रताप सिंह की प्रतीक्षा कर रही थीं।

कर्नल आदित्य प्रताप सिंह हॉस्पिटल के कॉरिडोर से गुजरते हुए, कर्नल सोनभद्रा त्रिपाठी सिंह के कमरे के सामने आकर रुक गए। अपने हाथ के पंद्रह लाल सुर्ख ताजा गुलाब के फूलों को देखा और संतुष्टि से मुसकरा दिए।

आज उनके विवाह की पंद्रहवीं वर्षगाँठ थी। वह प्रत्येक वर्षगाँठ पर अपने गुलदस्ते में एक फूल बढ़ा देते थे।

आदित्य प्रताप सिंह के व्यक्तित्व को देखकर सहज ही लगता था, जैसे यौवन अपनी पूर्णता के साथ उनके व्यक्तित्व में समाया हुआ है। उन्होंने बहुत अदब से दरवाजे पर थाप दी और अंदर बुलाए जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

□

कमरे से एक मधुर स्त्री स्वर सुनाई दिया, "कम इन प्लीज…" जिसे सुनकर वह कमरे में घुसे और चित्त को हर लेनेवाली मुसकान के साथ नि:शब्द अपनी पत्नी को देखने लगे। सोनभद्रा भी मंद स्मित लिये चुपचाप उनकी मुसकान का प्रत्युत्तर दे रही थीं।

अपनी पत्नी को मन भरकर निहारने के बाद कर्नल सिंह एक प्रेमी के स्वर में बोले, "भद्रा, संसार समय के साथ मुरझाने लगता है, लेकिन आप हैं कि दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही हैं; काल तो जैसे आपका दास है, जो अपने प्रभाव की हलकी सी भी आभा आप पर छोड़ने से डरता है!"

जिस पुरुष की दुनिया दीवानी हो, उसकी अपने लिए वही पहले जैसी दीवानगी देख सोनभद्रा सगर्व मुसकराहट लिये बोल पड़ीं, "आदित्य, काल को कैसे नियंत्रित करना है, यह तो महाकाल जानें; मैं तो बस महाकाल को साधने के यत्न में लगी रहती हूँ। महादेव सधे रहें, फिर सबकुछ अपने आप ही सध जाता है।"

कर्नल आदित्य प्रताप सिंह मुसकराते हुए सोनभद्रा के बिल्कुल करीब पहुँचे और अपने घुटनों पर बैठकर हाथ के गुलाबों को सोनभद्रा के चरणों पर रख दिया। फिर बेहद प्रेम भाव से सोनभद्रा के अत्यंत सुंदर, सुलक्षण पैरों को स्पर्श करते हुए ही बोले, "थैंक यू सो मच भद्रा फॉर कंप्लीटिंग माइ लाइफ…!"

सोनभद्रा ने आदित्य को उनके दोनों कंधों से पकड़कर उठाया और बहुत सम्मान से आम की लकड़ी से बनाए गए आसन पर बैठा दिया। उनके जूते उतारे, उनके पैरों को एक थाल में रखकर उनका पादप्रक्षालन किया, फिर नए वस्त्र से उन्हें पोंछकर केवड़े के इत्र को उनके पैरों पर डाल दिया। अपने पर्स से पाँच बेलपत्र निकालकर उनके चरणों में पंचमाक्षर मंत्र पढ़ते हुए अर्पित किए व अपने दोनों हाथों से उनके पैरों को थामे हुए बोलीं, "थैंक्स टू यू आदित्य फॉर ऐक्सेप्टिंग मी एज अ लाइफ पार्टनर!"



अब दोनों पति-पत्नी आश्वस्ति, समर्पण, विश्वास के सूत्र में बँधे हुए आलिंगनबद्ध हो गए।

आज महाशिवरात्रि थी, उनके विवाह का दिन—उन्होंने परिणय-सूत्र में बँधने के लिए इसी पुण्य दिवस को चुना था। वे प्रतिवर्ष इसी विधि से अपने विवाह की वर्षगाँठ को मनाते थे। इसके बाद वे दोनों सज-धजकर किसी शिव मंदिर में जाकर महादेव के दर्शन करते और फिर सारी रात बैठकर बारी-बारी से सस्वर शिवपुराण का पाठ करते, यही उनका उत्सव था।

□

सोनभद्रा का परिवार शास्त्रोक्त परंपराओं पर चलते हुए गुरु को ब्रह्म माननेवाला अत्यंत संभ्रांत विशुद्ध ब्राह्मण परिवार था, तो आदित्य जमींदारी के माहौल में पले-बढ़े क्षत्रिय परिवार के चिराग थे। दोनों परिवारों की दिशा और दशा में उत्तर-दक्षिण का अंतर था। सोनभद्रा स्कूल के दिनों से ही आदित्य को प्रेम करती थीं और आदित्य तो पहले से ही उनके प्रेम में पगे हुए थे, किंतु बोल कभी न पाते। वे सोनभद्रा से दो साल छोटे थे, अत: उनका संकोच भी आड़े आता था।

आदित्य मिलिट्री स्कूल में पढ़ते थे, सेना में जाना ही उनका लक्ष्य था। सोनभद्रा इस बात को बहुत अच्छे से जानती थीं, तो उन्होंने भी तय कर लिया कि वह भी सेना के लिए ही काम करेंगी। अब समस्या यह कि वे लड़की हैं तो लड़की होते हुए सेना में प्रवेश कैसे किया जाए? किसी मित्र ने मार्ग सुझाया कि चिकित्सा के मार्ग से सेना में प्रवेश लिया जा सकता है, सो सोनभद्रा बिना किसी से कुछ बोले अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जुट गईं।

आदित्य और सोनभद्रा मात्र एक-दूसरे को देखकर ही संतोष कर लिया करते थे, उनके बीच सदैव मौन संभाषण ही हुआ करता था। उन दोनों ने ही कभी एक-दूसरे से किसी किस्म का संवाद स्थापित करने का

प्रयास भी नहीं किया। उनके बीच घटनेवाला प्रत्येक संवाद मौन में ही घटित होता, यहाँ तक कि वे एक-दूसरे से विवाह करने के लिए संकल्पित हैं, इस महती संकल्प की घोषणा भी मौन से ही अभिव्यक्त हुई।

फिर एक दिन वह क्षण आ ही गया, जब सोनभद्रा ने अपने विशुद्ध परंपरावादी संपन्न ब्राह्मण परिवार में अपने पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति में आदित्य प्रताप सिंह से विवाह करने के अपने संकल्प की सस्वर घोषणा कर दी, जिसे सुनकर परिवार का शास्त्र-संपन्न वातावरण शस्त्र-संपन्न माहौल में बदलने लगा। किंतु जहाँ गुरु स्वयं उपस्थित हों, वहाँ शस्त्र भी शास्त्र का आश्रय लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं। गुरुदेव ने सोनभद्रा की कुंडली निकाली और उसका अध्ययन करने लगे।

□

सोनभद्रा के पिता पं. रामभद्र ब्राह्मणवादी विचारधारा के पोषक ही नहीं, रक्षक भी थे। उन्होंने मेधावी, ज्ञानपिपासु, निर्धन, गुणवान, उद्यमी ब्राह्मणों के उद्धार का जैसे बीड़ा ही उठा लिया था, शस्त्र और शास्त्र पर असाधारण अधिकार के साथ-साथ अक्षुण्ण लक्ष्मी के स्वामित्व ने उनके इस अभियान में संजीवनी का कार्य किया था। अपनी वचनबद्धता की ख्याति के चलते पं. रामभद्र का नाम शपथ का पर्याय माना जाता था। इतना सबकुछ होने के बाद भी इस तेजोमय व्यक्तित्व को अहंकार ने जैसे छुआ तक नहीं था। वे प्रत्येक ब्राह्मण को चेतना के स्तर पर एक मानते थे। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण पूरा अंचल उन्हें परशुराम का साक्षात् स्वरूप मानता था। समाज के प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति उन्हें ब्राह्मण राजर्षि पं. रामभद्र त्रिपाठी के नाम से जानता था।

क्रोध और प्रेम, लक्ष्मी और सरस्वती को समानता से साधनेवाला यह तेजपुंज अपने गुरुदेव के समक्ष धरती पर विनत भाव से बैठा हुआ था। अपने पूज्य गुरु को विचारमग्न देख पं. रामभद्र ने उनके ललाट पर चिंता की लकीरों को देखा तो वे जीवन में पहली बार किसी अनजाने भय की आशंका से भर गए। यह भय उन्हें अपनी बच्ची के किसी अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न हुआ था...क्योंकि सोनभद्रा जब पाँच वर्ष की थी, तब ही उनकी सहधर्मिणी परलोक सिधार गई थीं, तब से लेकर अब तक यह तपोनिष्ठ राजर्षि सोनभद्रा के लिए माँ और बाप के कर्तव्यों का निर्वाह पूरी ईमानदारी से करता आ रहा था।

गुरु की उपस्थिति में उन्हें बोलने के लिए विवश करना अशिष्ट आचरण की श्रेणी में आता है, सो पं. रामभद्र एक समर्पित शिष्य के भाव से गुरुदेव के मुखमंडल को शांति से देखते हुए उनके बोलने की प्रतीक्षा करने लगे।

गुरुदेव ने कुंडली से अपनी आँखें उठाते हुए सोनभद्रा की ओर देखते हुए स्नेहसिक्त स्वर में आदेश दिया, "बेटी, क्या तुम कुछ समय के लिए हमें एकांत दे सकती हो?"

सोनभद्रा गुरु के आदेश को, जो आग्रह के स्वर से भरा हुआ था, समझती हुई उन्हें प्रणाम कर कक्ष से बाहर चली गई।

अब कक्ष में मात्र गुरु और शिष्य ही थे... गुरुदेव ने अपने गंभीर नेत्रों से पं. रामभद्र को देखते हुए कहा, "रामभद्र, बिटिया की कुंडली में वैधव्य का योग है।"

अपनी लाड़ली बेटी के भविष्य की हृदयविदारक घोषणा को सुनकर पं. रामभद्र अचल शिला की भाँति अवाक् अपने गुरु के मुखमंडल को देखने लगे। उनके हृदय की धड़कन उन्हें अपने कानों में सुनाई पड़ने लगी। उन्हें लगा, जैसे उनके शरीर से संपूर्ण ऊर्जा का उत्सर्जन हो गया हो। उन्होंने बैठे-बैठे ही अपने दोनों हाथों को धरती पर टिका दिया, ताकि वे स्वयं को गिरने से बचा सकें।

इस भीषण अवस्था में भी उन्हें इस बात का भान था कि गुरु की उपस्थिति में समर्पित शिष्य को कमजोरी शोभा नहीं देती; शिष्य की कमजोरी गुरु के सामर्थ्य को संदेहास्पद बना देती है, इसलिए स्वयं को सँभालते हुए, 'जी गुरुदेव' बोले और चुप हो गए।

गुरुदेव ने उनकी मन:स्थिति समझते हुए उनसे पूछा, "कुछ कहना चाहते हो रामभद्र? अपने मन के द्वंद्व को निस्संकोच प्रकट करो।"

पं. रामभद्र ने स्वयं को संयत किया और बोले, "गुरुदेव, आप सर्वज्ञ हैं, अपने द्वंद्व को प्रकट कर देने का आपका यह आदेश मूलत: मेरे अपरिचित द्वंद्व को मुझसे ही परिचित कराने की प्रक्रिया है। आपकी उपस्थिति में मैं अपने प्रच्छन्न द्वंद्व को कुशलता से अनावृत्त कर पाऊँगा...द्वंद्व तभी तक कष्टकारी होता है, जब तक व्यक्ति स्वयं के द्वंद्व से अपरिचित रहता है। प्रकट होते ही यह स्वमेव समाप्त हो जाता है; जैसे मछली जल में ही जीवित रह सकती है, जल से बाहर आने पर उसका जीवन समाप्त हो जाता है, वैसे ही द्वंद्व भी तभी तक जीवित रहता है, जब तक वह मन में हो।

"गुरुदेव, मैंने अभी तक किसी को बताया नहीं, लेकिन मैंने सोनभद्रा के पति के रूप में एक अत्यंत प्रखर, प्रज्ञावान, किंतु बहुत सामान्य ब्राह्मण परिवार के एक पुत्र का चुनाव कर लिया है। वह लड़का अत्यंत

उन्होंने किंचित् स्वस्थ होते हुए अपने मन की उस दुश्चिंता को अपने गुरुदेव के समक्ष रखा, "गुरुदेव, आपने बताया कि सोनभद्रा की कुंडली में वैधव्य का योग है...तो इस नाते यदि मैंने सोनभद्रा का विवाह उस प्रतिभासंपन्न ब्राह्मण कुमार से कर दिया तो वह युवक सोनभद्रा के प्रारब्ध के कारण काल के गाल में समा जाएगा। अपना इष्ट साधने की इच्छा के वशीभूत होकर मैं उन निर्धन माता-पिता के ही नहीं, अपितु समाज के अनिष्ट का कारक भी हो जाऊँगा। "मैं जो सदैव ब्रह्म समाज के कल्याण की कामना से प्रेरित रहता हूँ, अपने लोभवश समाज के अकल्याण के महापातक की ग्लानि से भरा रहूँगा। गुरुदेव, आपका यह रामभद्र, जो स्वयं को बहुत शक्तिसंपन्न मानता था, आज स्वयं की शक्तिहीनता के बोध से ग्रस्त है।

तेजवान है गुरुदेव, अपने गरीब माता-पिता की एकमात्र संतान है। मुझे लगता है कि वह लड़का संपूर्ण मानव जाति के लिए कल्याणकारी होगा। वह समाज की धरोहर है गुरुदेव, इसलिए बिना किसी को बताए उसके परिमार्जन के लिए पिछले १० वर्षों से सक्रिय हूँ; और मैंने पाया है कि वह मेरी अपेक्षाओं को अपनी विलक्षण चेतना से निरंतर विस्तार देता जा रहा है। वह सोनभद्रा के लिए श्रेष्ठतम सुयोग्य वर होगा।"

गुरुदेव धैर्यपूर्वक रामभद्र की बातों को सुन रहे थे। पं. रामभद्र अब कुछ हद तक प्रकृतिस्थ हो चुके थे। उन्होंने किंचित् स्वस्थ होते हुए अपने मन की उस दुश्चिंता को अपने गुरुदेव के समक्ष रखा, "गुरुदेव, आपने बताया कि सोनभद्रा की कुंडली में वैधव्य का योग है···तो इस नाते यदि मैंने सोनभद्रा का विवाह उस प्रतिभासंपन्न ब्राह्मण कुमार से कर दिया तो वह युवक सोनभद्रा के प्रारब्ध के कारण काल के गाल में समा जाएगा। अपना इष्ट साधने की इच्छा के वशीभूत होकर मैं उन निर्धन माता-पिता के ही नहीं, अपितु समाज के अनिष्ट का कारक भी हो जाऊँगा?

"मैं जो सदैव ब्रह्म समाज के कल्याण की कामना से प्रेरित रहता हूँ, अपने लोभवश समाज के अकल्याण के महापातक की ग्लानि से भरा रहूँगा। गुरुदेव, आपका यह रामभद्र, जो स्वयं को बहुत शक्तिसंपन्न मानता था, आज स्वयं की शक्तिहीनता के बोध से ग्रस्त है। न मैं अपनी प्राणप्रिय पुत्री के दुर्भाग्य से उसे मुक्त कर सकता हूँ और न ही स्वयं को दिए गए वचन और लिये गए संकल्प को पूरा कर सकता हूँ।"

गुरुदेव ने किंचित् मुसकराहट के साथ वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से कभी न विषादग्रस्त होनेवाले अपने उस तेजवान शिष्य को देखते हुए पूछा, "तुम्हारे स्वयं को दिए गए वचन, इस कथन का मर्म नहीं समझा पुत्र, यदि उचित समझो तो कहो।"

पं. रामभद्र भावुक होते हुए बोले, "गुरुदेव, मैंने आपकी पुत्रवधू, अपनी पत्नी को उसके अंतिम समय में सोनभद्रा को श्रेष्ठतम सुखमय जीवन देने का वचन दिया था, जिससे वह निश्चिंत होकर परलोक गमन कर सके। धर्मपत्नी, जो अर्धांगिनी होती है, उससे कहे गए वचन स्वसंकल्प की श्रेणी में ही आते हैं पूज्यवर।"

गुरुदेव पं. रामभद्र के कथन को सुनकर गहन चिंतन में लीन हो गए, रामभद्र को लगा कि जैसे गुरुदेव शून्य में कुछ देख रहे हैं, किंतु उनकी दृष्टि शिवत्व के भाव से भरी हुई थी।

गुरुदेव ने इस सन्नाटे को तोड़ते हुए आदेश दिया, "पुत्र, स्वस्थ मन हो और सोनभद्रा को बुलाओ। मुझे उससे एकांत में कुछ बात करनी है।"

रामभद्र गुरुदेव को प्रणाम करते हुए कक्ष से बाहर चले गए···और कुछ देर बाद सोनभद्रा ने कक्ष में प्रवेश किया और सर्वसमर्थ गुरुदेव को प्रणाम करते हुए उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

□

आदित्य समझ रहे थे कि भद्रा ने बेहद सामान्य शब्दों में जीवन का अर्क निकालकर सामने रख दिया था। उन्होंने भी उतनी ही संजीदगी से जवाब दिया, "भद्रा, जब आपका सहयात्री अमूल्य हो, तो ड्राइवर में यह कुशलता सहज ही आ जाती है। सहयात्री का ड्राइवर के ऊपर विश्वास ही उसे विश्वसनीय बनाता है। इसलिए गाड़ी चलानेवाले से अधिक महत्त्वपूर्ण उसमें बैठनेवाला होता है।" "हम सभी गुण और दोष से भरे हुए होते हैं, कुछ लोग अपने साथी को गुणी बनाने के लिए सदैव उसके दोषों को ही चिह्नित करते हैं, जिससे वह व्यक्ति निर्दोष होते हुए भी दोषयुक्त हो जाता है; किंतु आपने मेरे दोषों को नहीं, मेरे छोटे-छोटे गुणों को चिह्नित करके मुझे गुणवान होने के लिए प्रेरित किया। यह आपकी ही निर्मिति है।"

कर्नल आदित्य प्रताप सिंह और सोनभद्रा लेह में अपने निवास की ओर बढ़ रहे थे, बर्फ से ढँकी हुई पहाड़ियों के बीच सँकरे रास्तों पर आदित्य को बड़ी कुशलता से गाड़ी चलाते देख वह मंद-मंद मुसकराते हुए बोली, "यू आर अ ग्रेट ड्राइवर आदित्य।"

आदित्य हँसते हुए बोले, "थैंक यू सो मच भद्रा, आई अप्रीशीएट···यू ऑल्वेज अक्नॉलेज स्मॉल थिंग्स···बट व्हाय दिस सो?"

भद्रा भी हँसते हुए बोलीं, "यू ड्राइव मी क्रेजी, बट वेरी ब्यूटिफुली···यू ड्राइव मी मैड वेरी एस्थेटिक्ली···" फिर संजीदगी से बोली, "जिस दिन से आपने मेरी जिंदगी का स्टियरिंग अपने हाथ में लिया है जनाब, मुझे बहुत सुकून है। आपने मेरे सफर को बेहद खुशनुमा बना दिया। आप रोड, लोड, कंडीशन ऑफ व्हाइकल का बहुत ध्यान रखते हैं। मुझे विश्वास है कि आप बिना किसी दुर्घटना के मुझे मेरे गंतव्य तक पहुँचा देंगे।"

आदित्य समझ रहे थे कि भद्रा ने बेहद सामान्य शब्दों में जीवन का अर्क निकालकर सामने रख दिया था। उन्होंने भी उतनी ही संजीदगी से जवाब दिया, "भद्रा, जब आपका सहयात्री अमूल्य हो, तो ड्राइवर में यह कुशलता सहज ही आ जाती है। सहयात्री का ड्राइवर के ऊपर विश्वास ही उसे विश्वसनीय बनाता है। इसलिए गाड़ी चलानेवाले से अधिक महत्त्वपूर्ण उसमें बैठनेवाला होता है।"

"हम सभी गुण और दोष से भरे हुए होते हैं, कुछ लोग अपने साथी को गुणी बनाने के लिए सदैव उसके दोषों को ही चिह्नित करते हैं, जिससे वह व्यक्ति निर्दोष होते हुए भी दोषयुक्त हो जाता है, किंतु आपने मेरे दोषों को नहीं, मेरे छोटे-छोटे गुणों को चिह्नित करके मुझे गुणवान होने के लिए प्रेरित किया। यह आपकी ही निर्मिति है।"

सोनभद्रा ने प्रसन्नता से कहा, "स्वयं के गुणों का श्रेय अपने साथी को देना कोई आदित्य प्रताप सिंह से सीखे, बिल्कुल यही आपने मेरे साथ किया है, इसलिए आज मेरा पूरा जीवन धन्यवाद के भाव से भरा हुआ है। आदित्य, पति-पत्नी एक-दूसरे की निर्मिति होते हैं, दोनों ही मिलकर एक-दूसरे को अपने अनुकूल या प्रतिकूल बनाते हैं, marriage is

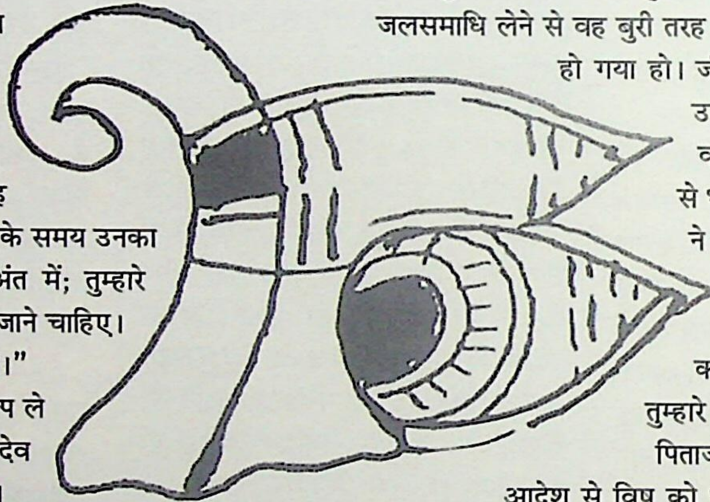
not a matter of change, it's a matter of exchange. Thank you so much for making me richer, wiser and humble."

आदित्य ठहाका मारकर हँसते हुए बोले, "तुमने कहा था कि तुम्हारी कुंडली में वैधव्य लिखा है ? लेकिन देखो, आज देखते-ही-देखते हमारी शादी को पंद्रह साल हो गए, और मैं हूँ कि मरने का नाम ही नहीं लेता।"

आदित्य के हास्य ने सोनभद्रा को करीब सोलह वर्ष पीछे की स्मृति में धकेल दिया।

गुरुदेव ने अपने सामने समर्पित भाव से खड़ी सोनभद्रा को ममत्व से देखा, वह बिल्कुल निश्चिंत दिखाई दी। गुरुदेव ने बेहद तटस्थ भाव से कहा, "बेटी, तुम्हारी कुंडली में विवाह के तत्काल बाद वैधव्य का योग है।"

सोनभद्रा जानती थी कि गुरुदेव ने उसे मात्र उसका विधान बताने के लिए नहीं बुलाया है, अपितु वे उससे निदान की चर्चा करना चाहते हैं। गुरु का अर्थ ही निदान होता, सो इस भीषण घोषणा को सुनने के बाद भी वह अविचलित मुद्रा में गुरुदेव के बोलने की प्रतीक्षा करने लगी।



गुरुदेव बोले, "बेटा, तुम्हें इस सोमवार से लेकर आनेवाले सोलह सोमवार तक महादेव की शयन आरती के समय उनका अभिषेक करना है, वह भी सबसे अंत में; तुम्हारे अभिषेक के बाद मंदिर के पट बंद हो जाने चाहिए। स्मरण रखना कि यह नियम भंग न हो।"

सोनभद्रा ने जैसे उसी क्षण संकल्प ले लिया कि वह बिना व्यवधान के गुरुदेव द्वारा आदेशित संकल्प को पूरा करेगी।

गुरुदेव शून्य में देखने लगे। उनकी आँखों में ऐसा भाव था, जैसे वे भविष्य में घटित होनेवाली घटना को प्रत्यक्ष देख रहे हों, वे फिर बोले, "बेटा, हो सकता है कि अंतिम सोमवार को तुम किसी कारणवश मंदिर में किंचित् विलंब से पहुँचो, किंतु व्यथित मत होना; जो भी अंतिम व्यक्ति गर्भगृह के द्वार पर दिखे, उसे ही महादेव मान उसका पूजन-अर्चन कर पूज्य, भर्ता, करतार के भाव से देखना व उसका अनुवर्तन एक भार्या के भाव से तब तक करना, जब तक वह स्वयं तुम्हारी दृष्टि से ओझल न हो जाए। पुत्री, मेरे आदेश का निःशंक भाव से पालन करो, मुझे विश्वास है कि महादेव तुम्हारा कल्याण करेंगे; अब तुम जा सकती हो।"

सोनभद्रा ने सिर रखकर अपने पूज्य गुरुदेव के चरण स्पर्श किए और प्रसन्न मन से कक्ष से बाहर निकल गई।

हुआ वही था, जैसा गुरुदेव ने कहा था या जैसा गुरुदेव चाहते थे, अंतिम सोमवार को वही पुजारी युवक, जिसे इसके पहले सोनभद्रा ने कभी न देखा था, सोनभद्रा के समक्ष शिवस्वरूप उपस्थित हो गया, जिसके पूजन-अर्चन के बाद सोनभद्रा ने उसका अनुवर्तन किया। अनुवर्तन में उसने पाया कि उसने युवक पुजारी के साथ मंदिर की परिक्रमा संपन्न कर ली थी। जिसकी समाप्ति के बाद वह युवक उसके कल्याण का आशीर्वाद देने के बाद सामने बह रही गंगा की गोद में समाकर उसकी दृष्टि से ओझल हो गया था।

उसके रूप, उसके दिव्यतम व्यक्तित्व की स्मृति आज भी सोनभद्रा के हृदय में एकदम ताजा थी।

सोनभद्रा सोच रही थी, तो क्या वे स्वयं शिव थे, जिन्होंने सद्गुरु की कृपा से साक्षात् प्रकट होकर उसे अपनी भार्या के रूप में कुछ क्षणों के लिए स्वीकार किया था ? और उसके सामने ही जलसमाधि लेकर उसके जीवन भर के वैधव्य के योग को एक पल में समाप्त कर दिया ? भले ही कुछ क्षणों के लिए सही, लेकिन वह उस युवक के प्रति पत्नी के भाव से पूर्णतः समर्पित थी, उस समय उसके लिए उस युवक को छोड़कर सारी दुनिया समाप्त हो चुकी थी। उसे अच्छे से याद था, युवक के जलसमाधि लेने से वह बुरी तरह रो पड़ी थी, जैसे उसका सर्वस्व समाप्त हो गया हो। जीवन में वही एक ऐसा समय था, जब उसे आदित्य बिल्कुल याद नहीं आए थे, वह उस युवक के प्रति गहन संवेदनाओं से भरी हुई थी। तब एक सप्ताह बाद गुरुदेव ने प्रसन्नता से उसकी उपस्थिति में पिताजी को आदेश दिया था कि रामभद्र अब तुम निश्चिंत मन से सोनभद्रा का विवाह आदित्य से करवा दो, महादेव तुम्हारे संकल्प की रक्षा करेंगे।

पिताजी तो उन लोगों में से थे, जो गुरु के आदेश से विष को भी अमृत समझकर पीने के लिए सहर्ष तैयार थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से सभी पूर्वग्रहों से मुक्त होकर आदित्य को अपने दामाद के रूप में स्वीकार कर लिया था।

गाड़ी के रुकने से सोनभद्रा की तंद्रा टूटी; उसने देखा कि वे अपने घर पहुँच चुके हैं। आदित्य ने गाड़ी का दरवाजा खोला और बेहद सम्मान से सोनभद्रा के उतरने की प्रतीक्षा करने लगे, भद्रा के उतरने के बाद दरवाजा बंद कर वे उसके अनुगामी होकर घर में प्रवेश कर गए।

कर्नल आदित्य जब भी अपने घर में प्रवेश करते, तब वे सोनभद्रा के अनुगामी होते थे, किंतु जब कभी वे दोनों एक साथ घर से बाहर निकलते, उस समय वे अग्रगामी होते।

घर में प्रवेश करना एक किस्म की सुरक्षा होती है तो पुरुष का कर्तव्य है कि सबसे पहले स्त्री को सुरक्षित करना चाहिए और घर से बाहर निकलना असुरक्षा माना जाता है, उस समय पुरुष को आगे बढ़कर स्त्री को सुरक्षित रखना चाहिए।

आदित्य का मानना था कि स्त्री की सुरक्षा यानी संसार की रक्षा करना होता है, क्योंकि स्त्री परमात्मा की वह दिव्य कृति है, जो संसार को,

संस्कृति को, शिक्षा को, सभ्यता को, संतति को स्वयं में धारण कर सदैव सृजन के मार्ग पर अग्रसर होती है। सोनभद्रा को आदित्य का यह नियम बेहद भाता था, आदित्य के बिना बोले ही वे उनकी इस संवेदनशीलता को भलीभाँति समझती थीं। प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी कर्नल आदित्य ने स्वयं अपने हाथों से भद्रा का फूलों के आभूषण से श्रृंगार किया, मोगरा, हरसिंगार और चंपा के पुष्पों से बने वेणीबंध, गले का हार, कर्णफूल, कमरबंध, बाजूबंध, कंगन से लेकर पैरों में पहनी जानेवाली पाजेब से सुसज्जित लाल रंग की साड़ी में श्यामवर्णी सोनभद्रा किसी देवकन्या सदृश्य लग रही थीं, और वहीं विशुद्ध भारतीय परिधान में आदित्य किसी देवदूत से कम नहीं लग रहे थे। जब दोनों घर से निकले तो ऐसा लगा, जैसे शिशिर का सूर्य और शरद का चंद्र अनायास ही एक साथ दृष्टिगोचर हो रहे हों।

पंद्रह दिन पहले ही लद्दाख के लेह सेक्टर में उनकी पोस्टिंग हुई थी, सो महादेव के मंदिर का पता न था, किंतु महादेव तो कण-कण में प्रकाशित होते हैं; और फिर यह तो कैलाश का वही क्षेत्र है, जहाँ भोलेनाथ के निवास की बात कही जाती है। इसलिए वे निश्चिंत थे कि उन्हें इस हिमाच्छादित प्रदेश में शिव मंदिर अवश्य ही मिलेगा।

जिप्सी गहरे पहाड़ी कटावों पर बढ़ती जा रही थी, क्षेत्र जनशून्य हो चुका था, आदित्य ने देखा कि बर्फ से लदे हुए पहाड़ पर उनसे करीब हजार फीट की ऊँचाई पर त्रिशूल जैसे ध्वजदंड में एक छोटी सी पताका फहरा रही है, वे तेजी से ऊपर की ओर बढ़ने लगे।

जब वे उस नीरव निर्जन स्थान पर पहुँचे तो देखा कि महादेव के उस छोटे से मंदिर में कोई भी नहीं है, किंतु शिवलिंग के समक्ष अखंडज्योत अवश्य जल रही है। यह इस बात का संकेत था कि निश्चित ही महादेव के साथ उनकी सेवा के लिए इस भीषण परिस्थिति में कोई साधक रहता है।

और तभी उस तपस्वी ने पास में रखे मृदंग को बजाना आरंभ कर दिया, उस घोर नीरवता में संगीत की स्वर लहरी आदित्य को रहस्यमय रोमांच से भर रही थी। आदित्य भारतीय सेना में अपना महत्त्व बखूबी जानते थे, देश की सुरक्षा के लिए बनाई गई बेहद गोपनीय समिति के वे प्रमुख सदस्य थे, उनके पास राष्ट्रीय रक्षा तंत्र की सभी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ थीं। तपस्वी की मृदंग पर पड़नेवाली प्रत्येक थाप में उन्हें अब कूट संदेश सुनाई देने लगे, उन्हें लगा कि मृदंग की थाप से यह व्यक्ति अपने बिखरे हुए साथियों को एकत्र होने के लिए संदेश दे रहा है, ताकि वे सभी घेरकर आदित्य को जीवित पकड़कर बंदी बना सकें।

कुछ देर तक दोनों पति-पत्नी पुजारी की प्रतीक्षा में खड़े रहे, किंतु किसी को भी न देख, वे मंदिर के छोटे से गर्भगृह की ओर बढ़े। वे जैसे ही देहरी पर पहुँचे तो देखा कि एक अवधूत साधक अपने बदन पर मात्र एक वस्त्र धारण किए हुए साधना में लीन है। उन्हें अवधूत का पृष्ठ भाग ही दिखाई दे रहा था। उसका शरीर सीधा तना हुआ एकदम अचल था, उसके बाल कंधे के नीचे तक झूल रहे थे। उसे साधना में मग्न देख, वे दोनों ही गर्भगृह की देहरी पर ही ठिठक गए।

उस तपस्वी के तप से उस समूचे स्थान पर एक कल्याणकारी शांति का अहसास उन्हें हो रहा था। वे दोनों ही अनहद आनंद से भरे हुए ही महादेव के सामने गर्भगृह की देहरी के बाहर ही हाथ जोड़कर सुखासन में विराजमान हो गए, उनकी आँखें स्वत: ही बंद हो गईं, काल और स्थान का बोध ही समाप्त हो गया था।

और तभी 'हर हर महादेव' की घनगर्जन जैसी ध्वनि से हटाट ही उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने देखा कि करीब छह फीट की लंबाई वाला एक अत्यंत सुदर्शन ताम्रवर्णी पुरुष उनके सामने खड़ा है; राग, विराग, अनुराग से रहित उसके दीर्घ नेत्रों से वैराग्य आलोकित हो रहा था। उसके कंधे के नीचे तक झूलते हुए बाल व छाती तक लंबी दाढ़ी मंद हवा से लहरा रही थी, उसके प्रशस्त ललाट पर महादेव का त्रिपुंड था। चौड़ा सीना, वृषभ के जैसे मजबूत स्कंध व सिंह के जैसी क्षिप्र कटि वाला यह शिवपुरुष साक्षात् महादेव ही प्रतीत हो रहा था।

ऐसी दिव्य विभूति को अपने सामने खड़ा देख आदित्य और सोनभद्रा ने अपने सिर को उसके चरणों पर रख दिया, किंतु जैसे ही सोनभद्रा का सिर तपस्वी के चरणों से टकराया!!

वह अवाक् रह गई, उसे लगा, जैसे उसके पूरे शरीर में एक अजीब सी झनझनाहट फैल गई हो। सोनभद्रा को लगा कि वे इस तपस्वी को तो नहीं, किंतु इन चरणों को भलीभाँति पहचानती हैं! ये वही चरण हैं, जिनका अनुवर्तन करते हुए उसने महादेव मंदिर की परिक्रमा पूर्ण की थी। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा, क्या यह वही युवक है, जो उनके देखते-ही-देखते गंगा के गर्भ में समा गया था? क्या नाम था उसका? हाँ, शंकर¨शंकर ही तो नाम था उसका, प्रधान पुजारी ने यही नाम लेकर तो उन्हें पुकारा था¨

सोनभद्रा ने लगभग हाँफते हुए से पूछा, "महात्मन, क्या आपका नाम शंकर है?"

तपस्वी पुरुष पल भर के लिए स्तब्ध हो गया। किंतु शीघ्र ही उसने स्वयं को संयत करते हुए ध्यान से इस दंपती को देखा और निर्विकार भाव से लगभग बुदबुदाते हुए दोहराया, "नाम?"

"हाँ, उसी नाम की खोज में ही हूँ देवी¨" नाम का विस्मरण होने के कारण ही हम इस अनाम संसार में आते हैं, अपनी विस्मृति को स्मृति में रूपांतरित करने के लिए¨स्मृति के आते ही हम सदा के लिए निर्बंध हो जाते हैं।

"भूल से जिसे भूल गया था, अब उसे ही याद करने का अभ्यास कर रहा हूँ देवी¨हमारा भूलना ही तो भवसागर में हमारे भटकाव का कारण होता है।"

आदित्य और भद्रा अचंभित से तपस्वी के विचारों को सुन रहे थे, भद्रा को लगा कि यह वही कंठ स्वर है, जिसने 'मैं पूर्ण हुआ देवी,

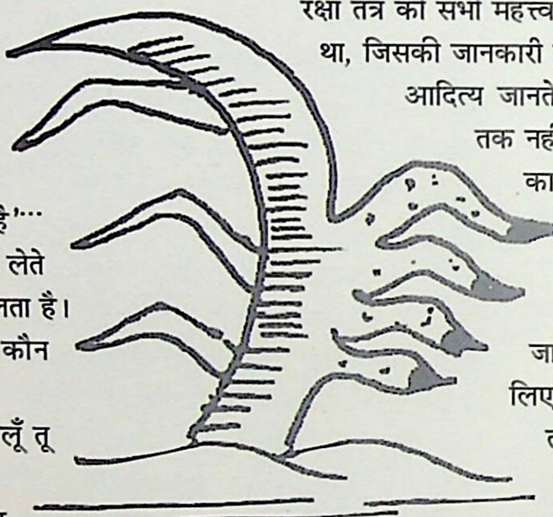
महादेव आपका कल्याण करें···विदा' कहते हुए गंगा में छलाँग लगा दी थी। उसने सत्यापन के लिए फिर पूछा, "क्या आप इससे पहले काशी में वास करते थे?"

"हम काशी में वास करने के लिए नहीं, काशी होने के लिए संसार में भेजे जाते हैं। काशी का अर्थ होता है, जहाँ काया में रहनेवाला ईश्वर वास करता हो।

"प्रयासरत हूँ कि इस पार्थिव देह में पार्थवेश्वर वास कर सकें, उनके आते ही यह काया काशी में बदल जाएगी।"

इस चमत्कृत करनेवाले दर्शन को सुनकर सोनभद्रा ने पूछा, "तो क्या परमात्मा को संसारी होते हुए नहीं पाया जा सकता? उस तक पहुँचने के लिए क्या संन्यास ही एकमात्र मार्ग है?"

अत्यंत गहरी दृष्टि से उन दोनों का अवलोकन करने के बाद तपस्वी बोला, "देवी, आप जिस काशी की बात कर रही हैं, वह 'काया की माया है'···और मैं जिस काशी की बात कर रहा हूँ, वह 'माया की काया है'··· कुछ लोग उसे 'काया की माया' में प्राप्त कर लेते हैं तो किन्हीं को वह 'माया की काया' में मिलता है।



"संसारी चाहता है कि 'तू जान ले मैं कौन हूँ'···

"और संन्यासी चाहता है कि 'मैं जान लूँ तू कौन है'···

"असार में से सार को निकालना या सार में असार को पहचान लेना ही तो संसार है।

"संन्यासी असार में से सार को निकालता है तो संसारी सार में स्थित असार को पहचान लेता है।

"कुछ लोग स्वयं को जानने के प्रयास में उसको जान जाते हैं, तो कुछ उसको जानने के उद्यम में स्वयं तक पहुँच जाते हैं। सबके अपने-अपने मार्ग होते हैं।"

भद्रा को विश्वास हो चला था कि हो-न-हो यह वही पुजारी युवक है, जो आज से करीब सोलह वर्ष पहले मंदिर के गर्भगृह के बाहर मिला था, जिसका अनुसरण उसने गुरुदेव के आदेश से एकनिष्ठ भार्या के रूप में किया था। इस विचार के आते ही वह एक अजीब से संकोच से भर गई, आदित्य की तरफ देखने से भी वह कतराने लगी थी।

तपस्वी की उपस्थिति से अब वह असहज होने लगी थी, आदित्य उनके मन में चल रहे द्वंद्व और असहजता को भलीभाँति समझ रहे थे, उन्होंने विनत भाव से उस शिवमंदिर के साधक से निवेदन किया, "महात्मन, यदि आपकी अनुमति हो, और आपकी साधना में बाधा न पड़े तो क्या हम महादेव का पूजन-अर्चन कर सकते हैं?"

"सहर्ष कर्नल आदित्य···"

कर्नल आदित्य!!! एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति के द्वारा अपने पद और नाम की स्पष्ट घोषणा से आदित्य सिहर गए, पल भर को उन्हें लगा कि कहीं यह दुश्मन देश का कोई छद्मवेशी जासूस तो नहीं है?

वैसे भी इसकी देहयष्टी तपस्वी की कम और एक योद्धा की अधिक लगती है।

आदित्य के अंदर का देशभक्त सैनिक तुरंत सजग हो गया, उन्हें अपनी नहीं भद्रा की चिंता अधिक हो रही थी···और तभी उस तपस्वी ने पास में रखे मृदंग को बजाना आरंभ कर दिया, उस घोर नीरवता में संगीत की स्वर लहरी आदित्य को रहस्यमय रोमांच से भर रही थी। आदित्य भारतीय सेना में अपना महत्त्व बखूबी जानते थे, देश की सुरक्षा के लिए बनाई गई बेहद गोपनीय समिति के वे प्रमुख सदस्य थे, उनके पास राष्ट्रीय रक्षा तंत्र की सभी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ थीं। मात्र यही एक ऐसा रहस्य था, जिसकी जानकारी पत्नी होने के बाद भी भद्रा को नहीं थी।

आदित्य जानते थे कि अपने जीवित रहते वे भद्रा को आँच तक नहीं आने देंगे, उनकी मृत्यु मात्र भद्रा के दुःख का कारण होगी, किंतु किसी दुश्मन देश के हाथ में उनका जीवित पकड़ा जाना पूरे देश के लिए घातक हो सकता है।

वे बुरी तरह द्वंद्व से घिर गए, जीवित पकड़ा जाना वे चाहते नहीं थे, और भद्रा की सुरक्षा के लिए उनका जीवित रहना परम आवश्यक था।

तपस्वी की मृदंग पर पड़नेवाली प्रत्येक थाप में उन्हें अब कूट संदेश सुनाई देने लगे, उन्हें लगा कि मृदंग की थाप से यह व्यक्ति अपने बिखरे हुए साथियों को एकत्र होने के लिए संदेश दे रहा है, ताकि वे सभी घेरकर आदित्य को जीवित पकड़कर बंदी बना सकें। आदित्य ने एक हिसाब से निर्णय-सा ले लिया कि वे किसी भी कीमत पर जीवित तो दुश्मन देश के हाथ में नहीं आएँगे, और अपने प्राण रहते, वे हरसंभव प्रयास करेंगे कि वे भद्रा के मान की रक्षा करते हुए उन्हें यहाँ से सुरक्षित निकाल दें।

और इधर आदित्य के द्वंद्व से बेखबर वह तपस्वी अनहद आनंद से भरकर स्वयं संगीतमय हो चुका था···तपस्वी के व्यवहार और व्यक्तित्व को देख सोनभद्रा का विश्वास पक्का होता जा रहा था कि यह वही युवक है।

आदित्य ने जीवन में पहली बार एक सेनाधिकारी के स्वर में भद्रा से कहा, "चलो भद्रा···" वे उठकर बाहर निकलने को ही थे कि तपस्वी का घनगर्जन जैसा स्वर सुनाई दिया, "ठहरिए कर्नल आदित्य···महादेव के स्थान पर न तो कोई अपनी इच्छा से आ सकता है और न ही उनकी इच्छा के बिना जा सकता है।"

उस तपस्वी का इतना अधिकारपूर्वक उन्हें रोकना आदित्य को अंदर तक हिला गया। वे अचानक ही एक योद्धा की मुद्रा में आ गए, जो अपने आसन्न संकट को देखकर उससे निपटने के लिए स्वयं को तैयार करता

है। आदित्य की भावभंगिमा और पुजारी के रहस्यमय व्यवहार से सोनभद्रा किसी अज्ञात अनिष्ट की कल्पना से कँपकँपा गईं···

तपस्वी ने मर्म को भेद देनेवाली अपनी दृष्टि को सोनभद्रा के नेत्रों में गड़ा दिया, सोनभद्रा को लगा, जैसे किसी ने उनकी इच्छा के बिना उन्हें उसी स्थान पर कीलित कर दिया हो···वे अपने स्थान से हिल पाने में भी असमर्थ अनुभूत कर रही थीं। वे अवश होकर आदित्य को देखने लगीं और तभी उस तपस्वी का स्वर फिर से उसे सुनाई दिया, "देवी सोनभद्रा, अपने इष्ट के समक्ष होते हुए अपने अनिष्ट की कल्पना शुभचित्त का प्रमाण नहीं होता।"

सोनभद्रा भयमिश्रित जिज्ञासा से सोच में पड़ गईं—यह मुझे, मेरे नाम को, आदित्य और उनके काम को कैसे जानता है?

इसे कैसे पता कि मैं किसी अनिष्ट की कल्पना से बुरी तरह ग्रसित हूँ? सोनभद्रा के मन में रहस्य गहराता जा रहा था। आदित्य सोच रहे थे कि कुछ ही समय में सूर्य अस्त हो जाएगा, और फिर अंधकार में इस दुर्गम स्थान से निकल पाना बेहद दुष्कर होगा!!

उन्होंने बेहद शांत भाव से शिवलिंग को देखा, भद्रा के हाथ को अपने हाथ में लेकर वे मन-ही-मन महादेव से भद्रा के मान, उनके प्राण की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। उन्हें लग रहा था कि संभवत: सोनभद्रा के वैधव्य रूपी दुर्योग के फलित होने की घड़ी आ गई है। यह कैसा विचित्र योग है कि आज महाशिवरात्रि के दिन ही, वे और भद्रा महादेव के मंदिर में ही, उनके समक्ष ही विवाह सूत्र में बँधे थे, और आज उसी पुण्य दिवस पर महादेव के मंदिर में ही उन्हीं के समक्ष भद्रा के वैधव्य का यह दुर्योग घटित होनेवाला है?

सोनभद्रा को वे महादेव शिव के द्वारा उन्हें दिया गया प्रसाद मानते थे, सो महादेव शिव की धरोहर सोनभद्रा को महादेव को ही वापस सौंपने के भाव से आदित्य सोनभद्रा को लिये हुए शिवलिंग से लिपट गए।

उनके शिवलिंग से लिपटते ही मंदिर का वह छोटा सा गर्भगृह रंग, गुलाल, भस्म से भर गया। महादेव के साथ-साथ वे दोनों भी रंग-बिरंगे हो गए थे। उठनेवाली धुंध से उनकी आँखों में दिखाई देना मुश्किल हो रहा था। उन्होंने महसूस किया कि भरपूर मात्रा में उड़ाए जानेवाले रंग, गुलाल, भस्म से उन्हें साँस लेने में दिक्कत हो रही है। आदित्य को लगा कि यह उन्हें मूर्च्छित करने का प्रयास है। वे जोर लगाकर भद्रा को सँभालते हुए बाहर की ओर उन्मुख हुए। किंतु बाहर तो जैसे कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा था, बादलों ने उस पूरे प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमाते हुए उसे ढँक लिया था, बादल गर्भगृह में घुसकर महादेव को भी अपने आलिंगन में ले चुके थे। उन्हें लगा, जैसे वे लोग धरती पर नहीं बादलों में विचरण कर रहे हों, बादलों से उत्पन्न होनेवाली इस भयंकर धुंध में उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, तभी उनके कानों में तपस्वी का स्वर सुनाई पड़ा, जिसकी तीव्रता से उनके शरीर का प्रत्येक रोम जैसे स्फूरित हो गया।

□

तपस्वी गैर-परंपरागत शैली में मृदंग बजाते हुए रुद्राष्टक का गायन करते हुए महादेव का रुद्राभिषेक कर रहा था। शिवलिंग के साथ-साथ आदित्य और सोनभद्रा भी रंग, गुलाल, अबीर, दूध, दही, घी, जल, इत्र से पूरी तरह रँग गए थे। वे आनंद और अनिष्ट के द्वंद्वात्मक भाव से आलोड़ित हो रहे थे कि तभी शंख, झालर, मृदंग और मंत्रोच्चार को विराम देते हुए उस अवधूत तपस्वी ने बोलना आरंभ किया, "आज अनुराग दिवस है कर्नल आदित्य, महाशिवरात्रि, सुयोग से यह आपके विवाह की वर्षगाँठ भी है।

"महादेव शिव और आदिशक्ति आज के दिन ही अपना द्वैत भाव छोड़कर अद्वैत की स्थिति को प्राप्त हुए थे। स्त्री के अपने गुण हैं और पुरुष के अपने···ये दोनों ही एक-दूसरे से मिलकर ही पूर्ण होते हैं। दोनों का परस्पर जुड़ना सुकृति की सृष्टि करता है तो दोनों का आपस में लड़ना विकृति को जन्म देता है।

"शिव का शक्ति से विघटन शिव को शव बना देता है तो शव का शक्ति से संगठन उसे शिव बना देता है, इसलिए महादेव शिव ने स्वयं को अर्धनारीश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया।

"महाशिवरात्रि पर शिवशंभु आदिशक्ति माँ पार्वती से सदा के लिए जुड़ गए। विघटित आज संगठित हो गया, वैरागी आज अनुरागी हो गया, प्रलयकारी आज लयकारी हो गया, अलगाव आज लगाव में परिवर्तित हो गया।

"ऐसी पुनीत बेला में आप जैसे शिवांश के हृदय में दुराव शोभा नहीं देता···महादेव शिव शंका के कारण नहीं उसके निवारण के हेतु हैं।"

आदित्य और सोनभद्रा को लगा कि वे विस्मय से मूर्च्छित हो जाएँगे···हिमालय के उत्तुंग शिखर पर बैठा यह तपस्वी, जो उनके लिए पूर्णत: अपरिचित है, जिसे वे अपने जीवन में आज पहली बार देख रहे हैं, वह उनके जीवन को ही नहीं, उनके मन में उठनेवाले विचारों को भी इतनी स्पष्टता से कैसे जान रहा है?

और तभी उस तपस्वी ने उन्हें अचंभित करते हुए कहा, "कर्नल साहब, जासूस और संन्यासी, देखा जाए तो एक ही तल पर काम करते

"मैंने गुरुदेव से पूछा था देवी कि गुरुदेव यदि मेरे भाग्य में विवाह लिखा है और उसके उपरांत मेरी मृत्यु भी निश्चित है तो परमात्मा के इस निश्चित विधान को मैं कैसे पलट सकता हूँ? हम मनुष्यों के हाथ में तो मात्र स्वीकार ही होता है। परमात्मा ने प्रारब्ध के अधिकार अपने पास रखते हुए हम मनुष्यों को मात्र प्रतिक्रिया व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी है, अब यह हमारे ऊपर है कि हम उसे हँसकर स्वीकार करें या रोकर··· "तब गुरुदेव ने बड़ी विचित्र बात कही थी; वे बोले थे, 'शंकर, महादेव की कृपा से यह संभव है। शंकर स्वयं को मिटाकर भद्रा के प्रारब्ध को पूरा करते हुए उसके अखंड सौभाग्य का कारक बनेगा, तो भद्रा स्वयं को लुटाकर तुम्हारे आयुष्य में वृद्धि करेगी।

हैं। जासूस किसी देश के गूढ़ रहस्यों को प्राप्त करना चाहता है तो संन्यासी देह के रहस्यों को सिद्ध करना चाहता है; जासूस के लिए कोई देश एक देह के जैसा होता है, तो संन्यासी के लिए उसकी देह ही एक देश के जैसी होती है। ये दोनों ही छिपकर रहने में विश्वास करते हैं, इसलिए अपने इर्द-गिर्द एक छद्म वातावरण का निर्माण कर देते हैं, ताकि पकड़े ना जाएँ। पकड़े जाने पर इनकी खोज अधूरी रह जाती है, फिर इनका जीवन किसी काम का नहीं रहता।"

अब तपस्वी ने आत्मीयता से कहा, "कर्नल साहब, सर्वप्रथम आप निःशंक होकर स्वस्थ मन से उस कार्य को संपन्न कीजिए, जिसे आप विगत पंद्रह वर्षों से बिना किसी व्यवधान के संपन्न करते आ रहे हैं; फिर मैं आपकी और देवी सोनभद्रा की सभी शंकाओं का समाधान करने का प्रयास करूँगा।"

महादेव के रुद्राभिषेक के बाद वे तीनों शांति से बैठे हुए थे। आदित्य ने देखा कि आसमान बिल्कुल साफ हो चुका था, गर्भगृह के बाहर हलकी सी चमकदार धूप थी। अपने को घेर लिये जाने की जिस आशंका से वे भरे हुए थे, वह निर्मूल सिद्ध हुई थी, क्योंकि वहाँ उन दोनों के अलावा एकमात्र वही अवधूत तपस्वी था, जिसके चेहरे पर तृप्ति का एक दिव्य भाव था। फिर भी आदित्य के हृदय में इस पूरे विलक्षण घटनाक्रम के कारण एक अजीब सी उथल-पुथल मची हुई थी।

सोनभद्रा और आदित्य के हृदय में उठ रहे विचारों को तपस्वी भलीभाँति समझ रहा था— उनकी इस शांति में कौतूहल, कुशंका, अपने इष्ट का ध्यान, साथ ही अपने अनिष्ट की चिंता का अद्भुत समावेश था।

इस मौन को तोड़ते हुए तपस्वी ने बेहद आत्मीयता से बोलना आरंभ किया, "कर्नल साहब, मैं आपको भले ही याद न होऊँ, किंतु आप मुझे भलीभाँति याद हैं···जब आप कक्षा आठ में थे, तब आप एक गरीब शिक्षक के यहाँ शौकिया संस्कृत पढ़ने के लिए आते थे, मैं उन्हीं का पुत्र हूँ।

"देवी सोनभद्रा, आपके पिता पूज्यवर श्री रामभद्रजी का इस अकिंचन पर बहुत स्नेह रहा है, मेरे परिमार्जन में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी थी। वे चाहते थे कि मैं मात्र मेरे ही कल्याण का नहीं, अपितु समाज के कल्याण का कारक बनूँ। किंतु मैं उनकी अपेक्षाओं को पूरा न कर सका और व्यक्तिगत कल्याण की भावना से प्रेरित होकर संन्यास के मार्ग पर बढ़ गया।

"चकित न हों देवी, आप मुझे नहीं जानतीं, आपने मुझे कभी नहीं देखा, किंतु यह सत्य है कि मैंने आपके सिवा किसी अन्य को जानने की कभी चेष्टा भी नहीं की और न ही किसी और की तरफ देखने का प्रयास किया।

"आप मेरे लिए आकाश में चमकता हुआ चंद्र थीं और मैं धरती पर घिसटता हुआ चातक, जो चाँद को देख तो सकता था, किंतु उसे प्राप्त नहीं कर सकता था, इसलिए मैं सिर्फ आपको देखकर ही संतोष कर लिया करता था।

"आप उस पूज्य पुरुष की पुत्री थीं, जिन्होंने मुझे जन्म तो नहीं दिया था, किंतु जो मेरे निर्माण के लिए प्राणपण से सन्नद्ध था, अपने उद्धारक की पुत्री के लिए किसी भी प्रकार का अन्यथा भाव मुझे ग्लानि से भर देता था, किंतु इस चेतना के बाद भी आपके लिए मेरे हृदय में संचित प्रेम समाप्त होने का नाम ही नहीं लेता था।

"आपसे दूर जाने का प्रत्येक प्रयास मुझे आपके और समीप लाकर खड़ा कर देता था! आप कब मेरे लिए प्रेम से प्रेरणा और प्रेरणा से प्राण हो गईं, मुझ दरिद्र को पता ही नहीं चला···देवी, यह संन्यासी आज अपने हृदय को रिक्त कर मुक्त होना चाहता है। आप दोनों ही मेरे लिए शिव और शक्ति का साक्षात् स्वरूप हैं, अतः आपसे निवेदन है कि अपने इस भक्त की अभिव्यक्ति को अपने अपमान और अशिष्टता की श्रेणी में मत रखिएगा।"

"विवाह संस्कार नहीं, संकल्प होता है। यह शरीरी नहीं, अशरीरी घटना है। दो शरीरों के बीच पैदा होनेवाले राग को विवाह नहीं कहा जाता, यह तो परस्पर दो आत्माओं के एक होने से उत्पन्न होनेवाला वैराग्य होता है। "शरीरों का एक-दूसरे के साथ वास करना ही सहवास नहीं होता, अपितु संकल्पों के सहस्तित्व का वरण करना, उनको धारण करना भी सहवास की श्रेणी में आता है। "विवाह तो एक प्रकार का मैत्री भाव है, जिसमें हम परस्पर एक-दूसरे के मन में व्याप्त त्राण को, कष्ट को नष्ट करने का कार्य करते हैं। "विवाह का अर्थ होता है, विशेष उत्तरदायित्व को वहन करना।

"एक दिन आपके पूज्य गुरुदेव अनायास ही मुझ अकिंचन के पास आ पहुँचे, उन्होंने आपके प्रारब्ध में लिखित वैधव्य की जानकारी मुझे दी।

"गुरुदेव तो साक्षात् ईश्वर हैं, उनकी प्रत्येक चर्चा का कुछ हेतु होता है, इस सत्य को जानते हुए मैंने उनसे निवेदन किया कि मेरे लिए क्या आदेश है गुरुदेव?

"तब गुरुदेव ने रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा, 'पुत्र, तुम्हारे संरक्षक रामभद्र ने अपनी पुत्री सोनभद्रा के लिए तुम्हारा चुनाव किया है। मनुष्य के प्रारब्ध परस्पर एक-दूसरे के प्रारब्धों की पूर्ति में सहायक होते हैं, इसलिए सभी योग-संयोग अपने आप स्वतः ही जुड़ते चले जाते हैं, इस संसार में कुछ भी औचक नहीं होता, तुम्हारी आयु अल्प है पुत्र।'

"भद्रा का वैधव्य योग, तुम्हारा अल्पायु होना, रामभद्र के द्वारा अंतःप्रेरणा से भद्रा के लिए पति के रूप में तुम्हारा चुनाव करना—यह सबकुछ उसी विधान के पूरा होने की प्रक्रिया है।

"मैंने गुरुदेव से पूछा था देवी कि गुरुदेव यदि मेरे भाग्य में विवाह लिखा है और उसके उपरांत मेरी मृत्यु भी निश्चित है तो परमात्मा के इस निश्चित विधान को मैं कैसे पलट सकता हूँ? हम मनुष्यों के हाथ में तो मात्र स्वीकार ही होता है। परमात्मा ने प्रारब्ध के अधिकार अपने पास

रखते हुए हम मनुष्यों को मात्र प्रतिक्रिया व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी है, अब यह हमारे ऊपर है कि हम उसे हँसकर स्वीकार करें या रोकर…

"तब गुरुदेव ने बड़ी विचित्र बात कही थी; वे बोले थे, 'शंकर, महादेव की कृपा से यह संभव है। शंकर स्वयं को मिटाकर भद्रा के प्रारब्ध को पूरा करते हुए उसके अखंड सौभाग्य का कारक बनेगा, तो भद्रा स्वयं को लुटाकर तुम्हारे आयुष्य में वृद्धि करेगी।

'तुम भद्रा को जानते हो, किंतु भद्रा तुम्हें नहीं जानती, इसलिए जिस भी दिन तुम्हारी भद्रा से अनायास मुलाकात हो, तुम अपने हृदय में उसके लिए पत्नी का भाव रखते हुए महादेव को साक्षी मानकर उनके इस मंदिर की प्रदक्षिणा करना, प्रदक्षिणा के बाद जो तुम्हारे हृदय में आए उन शब्दों को कहते हुए उससे विदा लेना, और स्वयं को गंगा में समर्पित कर देना। पुत्र, गंगा तुम्हें मारेगी नहीं, अपितु तारेगी। उसे पार करने के बाद गंगा के निर्जन तट पर ब्रह्ममुहूर्त में स्वयं के हाथों स्वयं का पिंडदान करके स्वयं को संन्यास धर्म में दीक्षित करना।'

'संन्यास महामृत्यु का स्वरूप ही होता है, संन्यासी स्वयं के हाथों ही स्वयं को संसार के सभी बंधनों से मुक्त कर लेता है, मनुष्य के हृदय में संसार के मरण से ही संन्यास का जागरण होता है।

'पुत्र, यह बहुत साहस का कार्य है, स्वयं के हाथों ही तुम्हें शंकर का विसर्जन करना होगा, तुम देखोगे कि शंकर के विसर्जित होते ही तुम्हारे अंदर स्वयमेव ही शिव का सृजन हो जाएगा। शंकर की निर्बंध अवस्था ही शिव होती है। भद्रा का जन्म तुम्हें शंकर से शिव में रूपांतरित करने के लिए हुआ है पुत्र'।"

आदित्य और सोनभद्रा भावाभिभूत से उस तपस्वी की बातों को सुन रहे थे।

वह तपस्वी उठा, उसने पूर्ण श्रद्धा से सोनभद्रा के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और बेहद भावपूर्ण स्वर में बोला, "माँ, आपकी कृपा से ही इस नश्वर देह में आज अनश्वर शिव का जागरण हुआ है। स्वयं का तर्पण स्वयं के हाथों से करनेवाला यह संन्यासी, सभी बंधनों को काटनेवाला शंकर अपने हृदय के इस रहस्य को स्वयं में धारण करने के कारण अभी तक पूर्णतः निर्बंध नहीं हुआ था, किंतु आज महाशिवरात्रि के पुण्य अवसर पर आपने कृपापूर्वक यहाँ पधारकर मुझे मुक्त कर सच्चे अर्थों में निर्बंध कर दिया। बंधन-मुक्त होना ही प्रेम का स्वभाव होता है, बंधन-युक्त अवस्था तो मोह का प्रतिरूप होती है। प्रेम, मुख्यतः तीन अक्षरों का योग है—'प' 'र' 'म'। जब ये तीनों जुड़ते हैं तो परम हो जाते हैं। परम अर्थात् पूर्ण। हमारी प्रकृति के भी तीन गुण होते हैं—सत्, रज, तम। हम तीन नाड़ियों से संचालित होते हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना। तीन लोक हैं और तीन ही रोग हैं—वात, कफ, पित्त। तीन देवों की ही धारणा है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। हमारी तीन ही गतियाँ हैं—सृजन, संरक्षण और विसर्जन। हमने काल को भी तीन भागों में ही धारण किया है—भूत, भविष्य और वर्तमान अर्थात् इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह परम सत्ता का 'अंश' ही है। ऐसा अंश, जिसके अंदर पूर्णता की पूरी संभावना है, क्योंकि पूर्ण विखंडित होकर भी पूर्ण ही रहता है, इसलिए प्रेम को ही परम या पूर्ण कहा गया है या जो कुछ भी पूर्ण है, वह प्रेम ही है।

"हम प्रेम की उत्पत्ति के कारण नहीं है, बल्कि प्रेम ही हमारी उत्पत्ति का कारण होता है।

"सामान्य अर्थों में हम मनुष्यों की असीमित चेतना के सीमित चिंतन के कारण अलगाव जब लगाव में बदलता है तो प्रेम हो जाता है। बिखराव जब जुड़ाव में रूपांतरित होता है तो प्रेम कहलाता है। किंतु यदि हम इसे परमसत्ता की दृष्टि से देखें तो पाएँगे कि विखंडित का संगठित उद्घोष भी प्रेम है और संगठित का विखंडित नाद भी प्रेम ही है। प्रेम सँवर के भी प्रेम रहता है और बिखर के भी वह प्रेम ही रहता है। क्योंकि जो परम है, पूर्ण है, उसका न संगठन संभव है, न विखंडन।"

भद्रा ने आश्चर्य से पूछा, "महात्मन, यह कैसा विवाह हुआ? विवाह तो एक संस्कार है, जिसमें सहवास का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हमारे बीच न संस्कार घटित हुआ, न सहवास, फिर यह कैसे मेरे प्रारब्ध को काट सकता है?"

तपस्वी ने बहुत गंभीरता से भद्रा को देखते हुए कहा, "विवाह संस्कार नहीं, संकल्प होता है। यह शरीरी नहीं, अशरीरी घटना है। दो शरीरों के बीच पैदा होनेवाले राग को विवाह नहीं कहा जाता, यह तो परस्पर दो आत्माओं के एक होने से उत्पन्न होनेवाला वैराग्य होता है।

"शरीरों का एक-दूसरे के साथ वास करना ही सहवास नहीं होता, अपितु संकल्पों के सहस्तित्व का वरण करना, उनको धारण करना भी सहवास की श्रेणी में आता है।

"कुछ भोग से योग को उपलब्ध होते हैं तो कुछ योग से भोग को सिद्ध करते हैं।

"विवाह तो एक प्रकार का मैत्री भाव है, जिसमें हम परस्पर एक-दूसरे के मन में व्याप्त त्राण को, कष्ट को नष्ट करने का कार्य करते हैं।

"विवाह का अर्थ होता है, विशेष उत्तरदायित्व को वहन करना। गुरुदेव के आदेश से महादेव को साक्षी मानते हुए मैंने आपके और आपने मेरे उत्तरदायित्वों को वहन नहीं किया क्या?

"जैसे महादेव शिव ने मार्कंडेय को आयुष्य प्रदान किया था, वैसे ही मुझ अल्पायु को आयु प्रदान करते हुए शंकर का विसर्जन करके उसमें शिव का सृजन करना आपका दायित्व था।

"और आपके खंडित सौभाग्य को अखंड सौभाग्य में रूपांतरित करना मेरा दायित्व था। आप अखंड सौभाग्यवती हों, महादेव शिव सदैव आपके सहायक हों।" आशीर्वाद देने के बाद उस अवधूत ने अपना त्रिशूल जैसा दंड उठाया, जिसमें एक डमरू बँधा था और अलख निरंजन कहते हुए उन दोनों को वहीं बैठा छोड़ वह उनकी दृष्टि से ओझल हो गया।

शिवम् भवतु।

३०३-बी, लीला अपार्टमेंट्स
गुलमोहर पार्क के सामने
यारी रोड, वर्सोवा, अँधेरी (पश्चिम)
मुंबई-४०००६
ashutosh.ramnarayan@gmail.com

भाषा को लेकर भ्रांतियाँ

• अनंत विजय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में शिक्षण के माध्यम के तौर पर मातृभाषा को प्राथमिकता देने की बात की गई है। मातृभाषा को प्राथमिकता मिलने से भारतीय भाषाओं में ज्ञान की परंपरा मजबूत होगी, ऐसी उम्मीद की जा सकती है। साथ ही भारतीय भाषाओं को भी मजबूती मिलेगी, लेकिन जब से राष्ट्रीय शिक्षा नीति पेश की गई है, तब से इस बात को लेकर भ्रम फैलाने की कोशिश हो रही है कि इसमें हिंदी को अनिवार्य किया जा रहा है, उसको अन्य भाषा भाषी प्रदेशों पर थोपने की कोशिश हो रही है, आदि-आदि। कई जगह पर छिटपुट राजनीति भी शुरू हो गई है। तर्क पुराने हैं कि हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं को दबा देगी। यह तर्क वर्षों से दिया जा रहा है और जब भी भारतीय भाषाओं को मजबूत करने की कोशिश होती है तो इस तर्क को झाड़-पोंछकर फिर से निकाल लिया जाता है। भाषा के मामले में भी ऐतिहासिक भूलें हुई हैं। संविधान सभा में तय किया गया था और जिसे भारतीय संविधान में रखा भी गया था कि संविधान के लागू होने के अगले पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी चलती रहेगी और अगर १५ वर्ष के बाद भी संसद् की यह राय हो कि विशिष्ट विषयों के लिए अंग्रेजी आवश्यक हो तो संसद् में कानून बनाकर उन विषयों के लिए अंग्रेजी जारी रखी जा सकती थी। बाद में हिंदी के प्रचार, विकास और ठोस जमीन तैयार करने के लिए सुझाव देने के लिए राष्ट्रपति ने बालाजी खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग की स्थापना की, जिसने १९५६ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसके आधार पर राष्ट्रपति ने कई आदेश जारी किए थे, जिसमें एक था वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन। समय बीतता जा रहा था, लेकिन हिंदी को लेकर ठोस काम नहीं हो पा रहा था। गैर हिंदी प्रांतों से हिंदी विरोध की जैसी आवाजें उठ रही थीं, उससे १९६३ तक यह साफ हो गया था कि दो साल बाद, यानी १९६५ में अंग्रजी को हटाकर हिंदी को शासन का माध्यम बनाना मुमकिन नहीं है। ऐसे माहौल में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद् में यह ऐलान कर दिया कि जब तक अहिंदी भाषी भारतीय अंग्रेजी को चलाना चाहेंगे, तब तक केंद्र में भी हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी चलती रहेगी। गड़बड़ी यहीं से शुरू हुई। संविधान में यह तय किया गया था कि इसके लागू होने के पंद्रह साल के बाद अंग्रेजी विशिष्ट कार्यों के लिए ही प्रयोग में लाई जाएगी, लेकिन जो भाषा



सुपरिचित लेखक। अब तक प्रसंगवश, कोलाहल कलह में, विधाओं का विन्यास, बॉलीवुड सेल्फी, लोकतंत्र की कसौटी, मार्क्सवाद का अर्धसत्य प्रकाशित; संपादन : परिवर्तन की ओर, मेरे पात्र। स्तंभ लेखन : दैनिक जागरण, दैनिक ट्रिब्यून, नया ज्ञानोदय, चौथी दुनिया। संप्रति 'दैनिक जागरण' में एसोशिएट एडिटर।

अधिनियम बना, वह संविधान के उस मूल आशय के विरुद्ध था। १९६५ के जनवरी महीने में जब तत्कालीन मद्रास में हिंदी विरोधी आंदोलन शुरू हुआ तो लालबहादुर शास्त्री ने ऐलान कर दिया कि नेहरू की भावनाओं का सम्मान होगा। वही हुआ। सन् १९६७ में कानून पास हो गया। गांधीजी भी शासन की भाषा के तौर पर अंग्रेजी को हटाना चाहते थे, लेकिन वह भी नहीं हो सका। उस वक्त जिस तरह से अन्य भारतीय भाषाओं और हिंदी के बीच माहौल बना, उसमें अंग्रेजी को अपने लिए संभावनाएँ दिखीं और उस भाषा के पैरोकारों ने वे तमाम कार्य किए, जिससे हिंदी और अन्य भारतीय भाषा एक-दूसरे के खिलाफ लड़ती रहें।

इस युक्ति से लगभग पाँच दशक निकल गए और पिछले एक दशक में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ बेहद करीब आने लगीं तो अंग्रेजी के लोगों ने एक नया रास्ता तलाशा कि हिंदी और उसकी उपभाषा या बोलियों को एक-दूसरे से लड़ाया जाए। इस युक्ति के तहत ही भोजपुरी और राजस्थानी आदि स्वतंत्र भाषा के तौर पर मान्यता की माँग करने लगे। अब इस बात की कल्पना करिए कि अगर भोजपुरी के साथ-साथ अंगिका, वज्जिका, मैथिली, मगही आदि को भी हिंदी से अलग करने की माँग उठने लगे तो फिर हिंदी का क्या होगा? राजनीति अगर एक भाषा पर हावी हो गई तो फिर अनिष्ट हो सकता है। दरअसल हिंदी और उसकी बोलियों के लोगों को साथ बिठाकर बातचीत होनी चाहिए और उनकी शंकाओं को दूर करना चाहिए। उनको यह बताया जाना चाहिए कि हिंदी कहीं से भी भोजपुरी या राजस्थानी का हक नहीं मार रही है। राजस्थानी और भोजपुरी को समृद्ध करने की भी तमाम कोशिशें होनी चाहिए। अंग्रेजी के बिछाए जाल में फँसने से बेहतर है कि भारत में हिंदी को मजबूत किया जाए,

ताकि उसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ भी मजबूत हों। हिंदी तो हमेशा से अपनी बोलियों का एक समुच्चय रही है। उसकी बोलियाँ उसकी प्राण रही हैं। हिंदी को उसकी बोलियों से अलग करने का प्रयत्न शरीर से प्राण को अलग करने जैसा कृत्य है। हिंदी का बेहतरीन साहित्य उसकी उपभाषाओं में ही है, चाहे वो अवधी में हो, चाहे ब्रजभाषा में। इन उपभाषाओं का हिंदी के साथ एक रागात्मक संबंध रहा है और कभी भी दोनों में टकराहट देखने को नहीं मिली है। विश्व के भाषाई इतिहास पर अगर हम नजर डालें तो यह एक अद्‌भुत सामंजस्य है। इस सामंजस्य को तोड़ने से किसको लाभ होगा, यह साफ है; बल्कि होना तो यह चाहिए कि हिंदी में इन तमाम बोलियों और उपभाषाओं में प्रयोग किए जानेवाले मुहावरों, कहावतों और शब्दों के प्रयोग को बढ़ाना चाहिए। इसका एक लाभ यह होगा कि जो नई हिंदी बनेगी या हिंदी का जो दायरा बनेगा, उससे वह लोगों के और नजदीक पहुँचेगी। भोजपुरी, अंगिका, मैथिली,अवधी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी आदि के शब्दों को हिंदी में मिलाकर उसके उपयोग को बढ़ाने की कोशिश होनी चाहिए। साहित्यकारों और लेखकों पर भी जिम्मेदारी है कि वे इस तरह के शब्दों को अपनी रचनाओं में लेकर आएँ। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है कि—'चौदहवीं शताब्दी में कवि विद्यापति ने अपनी पदावली में जिस भाषा का प्रयोग किया, वह उत्तर में सर्वत्र समझी जाती थी और उसी भाषा के अनुकरण से ब्रजबुलि (ब्रजबोली) का जन्म हुआ, जिसके कवि बंगाल, असम और ओडिशा में उत्पन्न हुए, बल्कि कहना यह चाहिए कि ब्रजबुलि का जन्म ब्रजभाषा और मैथिली के मिश्रण से हुआ था, अतएव, ब्रजबुलि को लेकर एक समय शूरसेन से लेकर असम तक की भक्ति कविता की भाषा प्राय: एक ही थी।' अत: यह इस समय की माँग है कि इस तरह की रचनाएँ रची जाएँ, जिससे भाषा और उसकी उपभाषा के बीच संबंध और प्रगाढ़ हों।

अंग्रेजी के बिछाए जाल में फँसने से बेहतर है कि भारत में हिंदी को मजबूत किया जाए, ताकि उसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ भी मजबूत हों। हिंदी तो हमेशा से अपनी बोलियों का एक समुच्चय रही है। उसकी बोलियाँ उसकी प्राण रही हैं। हिंदी को उसकी बोलियों से अलग करने का प्रयत्न शरीर से प्राण को अलग करने जैसा कृत्य है। हिंदी का बेहतरीन साहित्य उसकी उपभाषाओं में ही है, चाहे वो अवधी में हो चाहे ब्रजभाषा में। इन उपभाषाओं का हिंदी के साथ एक रागात्मक संबंध रहा है और कभी भी दोनों में टकराहट देखने को नहीं मिली है।

नई शिक्षा नीति के आने के बाद से भाषा पर और उसके अंतर्संबंधों पर जमकर बातचीत हो रही है। हिंदी को लेकर उत्साह भी दिखता है, लेकिन हिंदी को लेकर जितनी गंभीरता से कोशिश होनी चाहिए उतनी कोशिश हो नहीं रही है। छात्रों तक हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जिस तरह के उद्यम की जरूरत है, उतना हो नहीं पा रहा है। पिछले दिनों हम सबने देखा कि उत्तर प्रदेश बोर्ड की परीक्षाओं में हिंदी में करीब आठ लाख छात्र अनुतीर्ण हो गए। अंग्रेजी स्कूलों में हिंदी को लेकर उत्साह नहीं होता है, माता-पिता भी चाहते हैं कि उनके बच्चे फर्राटेदार अंग्रेजी बोलें। इसमें अभिभावकों का भी दोष नहीं है। आजादी के ७३ साल बाद भी हमारे गणतंत्र में अब तक हिंदी को रोजगार की भाषा नहीं बनाया जा सका है। भाषा को लेकर, उसके संवर्धन को लेकर, उसके भूगोल के विस्तार को लेकर जितना काम होना चाहिए उतना हो नहीं पा रहा है। इस पर से बोलियों को हिंदी से अलग करने की कोशिशें भी शुरू हो गई हैं। कई बोलियों को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने का आंदोलन चलाया जा रहा है। बोलियों की अस्मिता जैसे भावनात्मक जुमले गढ़े जा रहे हैं। बोलियों को अलग करने को लेकर चल रही मुहिम ने हिंदी के सामने एक अलग तरह का संकट खड़ा कर दिया है। हिंदी भाषियों को बोलियों के नाम पर बाँटने की कोशिशें शुरू हो गई हैं। ऐसे माहौल में साहित्य में 'नई वाली हिंदी' की बातें जोर पकड़ने लगी हैं। ऐसी किताबें प्रकाशित की जाने लगी हैं, जिसकी मार्केटिंग के लिए इस 'नई वाली हिंदी' का सहारा लिया जा रहा है। इस 'नई वाली हिंदी' में बोलचाल की भाषा को जस-का-तस रखा गया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कई किताबों में आधे-आधे पन्ने अंग्रेजी में लिखे जा रहे हैं और नई वाली हिंदी के नाम पर छप भी रहे हैं। उस पर हिंदी में लहालोट होनेवालों की भी कोई कमी नहीं है, लेकिन इस बात पर गंभीरता से विचार होना चाहिए कि इससे भाषा का कितना नुकसान या फायदा हो रहा है। भाषा को मार्केटिंग का औजार बनाना कहाँ तक उचित है? इसको कई बार भाषा के विस्तार के तौर पर भी समझ लिया जाता है ।

हमें भाषा को मजबूत करने के लिए उसके उपभोक्ता को भी मजबूत करना पड़ेगा। उपभोक्ता यानी भाषा को पढ़ने और अपने लेखन में उसका उपयोग करनेवाले। पाठकों की संख्या बढ़ाने का उपक्रम करना चाहिए। किसी भी भाषा को पढ़ने और लिखनेवालों की संख्या जितनी बढ़ेगी, उतनी ही वह भाषा मजबूत होगी। दरअसल नए जमाने के पाठक बेहद मुखर और अपनी रुचि को हासिल करने को बेताब हैं। नए पाठक इस बात का भी खयाल रख रहे हैं कि वे किस प्लेटफॉर्म पर कोई रचना पढ़ेंगे! अगर अब गंभीरता से पाठकों की बदलती आदत पर विचार करें तो पाते हैं कि उनमें काफी बदलाव आया है। पहले पाठक सुबह उठकर समाचार-पत्र का इंतजार करता था और आते ही उसको पढ़ता था, लेकिन अब वह अखबार के आने का इंतजार नहीं करता है। खबरें पहले जान लेना चाहता है। खबरों के विस्तार की रुचिवाले पाठक समाचार-पत्र अवश्य देखते हैं। खबरों को जानने की चाहत उससे इंटरनेट सर्फ करवाता है। इसी तरह से पहले पाठक पुस्तकों का इंतजार करता था। पुस्तकों की दुकानें खत्म होते चले जाने और इंटरनेट पर कृतियों की उपलब्धता बढ़ने से पाठकों ने इस प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करना शुरू किया। हो सकता है कि अभी किंडल और आईफोन या आईपैड पर पाठकों की संख्या कम दिखाई दे, लेकिन जैसे-जैसे देश में इंटरनेट का घनत्व बढ़ेगा, वैसे-वैसे पाठकों की इस प्लेटफॉर्म पर संख्या बढ़ सकती है। हालाँकि विदेशों में

इ-बुक्स को लेकर होनेवाले सर्वे के नतीजे उत्साहजनक नहीं हैं। अगर संपूर्णता में विचार करें तो पाठकीयता के बढ़ने-घटने के लिए कई कड़ियाँ जिम्मेदार हैं। पाठकीयता को एक व्यापक संदर्भ में देखें तो इसके लिए कोई एक चीज जिम्मेदार नहीं है। इसका एक पूरा ईकोसिस्टम है, जिसमें सरकार, टेलीकॉम, सर्च इंजन, लेखक, डिवाइस मेकर, प्रकाशक, मीडिया सब शामिल हैं। इन सबको मिलाकर पाठकीयता का निर्माण होता है। सरकार, प्रकाशक और लेखक की भूमिका सबको ज्ञात है। टेलीकॉम यानी कि फोन और उसमें लोड सॉफ्टवेयर, सर्च इंजन, जहाँ जाकर कोई भी अपनी मनपसंद रचना को ढूँढ़ सकता है, भी अहम है। पाठकीयता के निर्माण का एक पहलू डिवाइस मेकर भी हैं। डिवाइस यथा किंडल और आई प्लेटफॉर्म, जहाँ रचनाओं को डाउनलोड करके पढ़ा जा सकता है। प्रकाशक पाठकीयता बढ़ाने और नए पाठकों के लिए अलग-अलग प्लेटफॉर्म पर रचनाओं को उपलब्ध करवाने में महती भूमिका निभाता है।

भारतीय भाषाओं में साहित्य की पाठकीयता बढ़ाने के लिए आवश्यक है इस ईकोसिस्टम के संतुलन को बरकरार रखना। इसके अलावा लेखकों और प्रकाशकों को नए पाठकों को साहित्य की ओर आकर्षित करने के लिए नित नए उपक्रम करने होंगे। कोरोना की वजह से पाठकों के साथ लेखकों के बाधित संवाद को बढ़ाना होगा। पहले तो देशभर के अलग-अलग शहरों में आयोजित होनेवाले करीब साढ़े तीन सौ लिटरेचर फेस्टिवल इसमें महती भूमिका निभा रहे थे, लेकिन कोरोना के संकट की वजह से अभी इस तरह के साहित्योत्सवों के आयोजन की संभावना क्षीण नजर आती है। लेखकों को इंटरनेट के माध्यम से पाठकों से जुड़कर संवाद करना चाहिए। इस संवाद में पाठकों की राय का ध्यान रखा जाना चाहिए। लेखकों को अपनी रचनाओं पर फीडबैक लेना चाहिए। अंग्रेजी में प्रकाशित उपन्यास त्रयी 'फिफ्टी शेड्स ऑफ ग्रे' की लेखिका ई.एल. जेम्स ने लिखने के पहले इंटरनेट पर एक सीरीज लिखी थी और बाद में पाठकों की राय पर उसे उपन्यास का रूप दिया। उसकी सफलता अब इतिहास में दर्ज हो चुकी है और उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इन सबसे ऊपर हिंदी के लेखकों को नए-नए विषय भी ढूँढ़ने होंगे। जिस तरह से हिंदी साहित्य से प्रेम गायब हो गया है, उसको भी वापस लेकर आना होगा। आज भी पूरी दुनिया में प्रेम कहानियों के पाठक सबसे ज्यादा हैं। हिंदी में बेहतरीन प्रेम कथा की बात करने पर धर्मवीर भारती की 'गुनाहों का देवता' और मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कसप' ही याद आता है। पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर लिखा जाए और अगर इस पर आपत्ति हो तो पाठकों में रुचि का परिष्कार करने का उपक्रम किया जाए, ताकि उनके अंदर साहित्य पढ़ने का संस्कार विकसित हो सके। हिंदी को इस मामले में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ मिलकर कदम आगे बढ़ाना चाहिए। एक और पहलू है, जिस पर भारतीय भाषाओं के लेखकों को गंभीरता से विचार करना चाहिए; वह है 'बाल साहित्य'। हिंदी में 'बाल साहित्य' की कमी भी पाठकों की कमी का एक कारण हो सकती है। है भी। इस ओर ध्यान देकर गंभीरता से काम होना चाहिए, ताकि भविष्य के पाठक तैयार हो सकें, तभी हमारी भारतीय भाषाएँ मजबूत होंगी।

सा अ

आरटी-२२२, रॉयल टॉवर
शिप्रा सनसिटी, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद-२०१०१४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८७१६९७२४८
anantindelhi@gmail.com

एक लोटा पानी

● दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

सन् १९३८ की बात है। नेहरू परिवार के निवास 'आनंद भवन' में कांग्रेस कार्यसमिति की मीटिंग थी। रोज के नियम के मुताबिक मीरा बहन (मिस स्लेड) ने गांधीजी के सामने मुँह धोने के लिए पानी का एक लोटा रख दिया। उसी समय जवाहरलाल नेहरू कोई जरूरी बात करने के लिए गांधीजी के पास आए। बात करते-करते पानी खत्म हो गया, लेकिन मुँह धोने का काम पूरा नहीं हुआ। मीरा बहन ने दुबारा लोटा भरकर गांधीजी के सामने रख दिया। बातचीत में ही गांधीजी चुप हो गए। चेहरे पर गंभीर मुद्रा छा गई। जवाहरलाल ने पूछा, "बापू क्या हुआ, चुप क्यों हो गए?"

गांधीजी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो जवाहरलाल और उत्सुक हो गए। दुबारा वही सवाल पूछा। तब बापू ने कहा, "आज मुझसे गलती हो गई। रोज मैं एक लोटे पानी से मुँह धोने का काम पूरा कर लेता हूँ, आज बात करते-करते ध्यान नहीं रहा, दो लोटे पानी इस्तेमाल करना पड़ा।"

जवाहरलालजी मुसकराए, "बापू, एक लोटा पानी अधिक खर्च हो गया तो क्या हुआ? इसकी इतनी चिंता क्यों?" यहाँ तो गंगा-जमुना दो-दो नदियाँ बहती हैं।"

गांधीजी बोले, "गंगा-जमुना यहाँ बहती हैं, यह ठीक है, लेकिन वे केवल मेरे लिए नहीं बहतीं। सैकड़ों मील तक उनके दोनों तटों पर जो लाखों प्राणी, पेड़-पौधे हैं, उन सबका हिस्सा इस पानी में है। मेरा धर्म उतना ही पानी इस्तेमाल करने को कहता है, जितना आवश्यक हो।"

सा अ

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

चार गजलें

• जहीर कुरेशी



प्रख्यात गजलकार एवं शायर। दस गजल संग्रह सहित तेरह पुस्तकें तथा 'कुछ भूले-बिसरे शायर' का संपादन और स्वयं पर केंद्रित दो पुस्तकें प्रकाशित। व्यक्तित्व-कृतित्व पर तीन पी-एच.डी. शोध संपन्न एवं अनेक गजलें पाठ्यक्रमों में चयनित। अनेक सम्मानों से अलंकृत।

: एक :

वो ये भी कह रही है सिसकियों में,
बहुत जल बह चुका है नदियों में!
युवा फूलों पे मँडराने को लेकर,
मची है होड़ क्वारी तितलियों में।
धुएँ को चीरकर घुसने लगी है,
हठीली आग गीली लकड़ियों में।
नदी के साथ मीठी मछलियाँ भी,
पहुँच जाती हैं खारी मछलियों में!
कई महलों में रहने योग्य हीरे,
दमकते फिर रहे हैं झुग्गियों में।
ये 'एस.एम.एस.' करनेवाली पीढ़ी,
लिखें विस्तार से क्या चिट्ठियों में?
बहुत से लोग सूरज की चमक को,
छिपाना चाहते हैं बदलियों में।

: दो :

मर्दवादी सोच का चश्मा हटाकर देखते,
उसकी मर्जी से, तुम उस औरत को पाकर देखते!
मुसकराकर हर नवागंतुक से मिलने के लिए,
अपने मन के बीच फुलवारी खिलाकर देखते।

जीतने की जिद अगर होती तो दिखलाते जुनून,
शेष छह गेंदों पे छह छक्के जमाकर देखते!
दूसरों का द्वार जाकर खटखटाने की जगह,
अपने मन के द्वार को भी खटखटाकर देखते।
तब पता चलता कि सचमुच साथ दे सकता है कौन,
पक्ष में यदि तुम समर्थन को जुटाकर देखते!
नींद की गोली की क्यों पड़ती जरूरत आपको,
काम के घंटों में यदि खुद को थकाकर देखते।
साल भर में, सिर्फ कातिक की अमावस पर नहीं,
हर अमावस्या पे दीवाली मनाकर देखते!

: तीन :

कई बरस से वो आकाश में उड़ा ही नहीं,
वो घोंसले की सुरक्षा को छोड़ता ही नहीं!
पड़ोस तक से वो पहचान कर नहीं पाया,
वो आत्म-मुग्ध, किसी और से मिला ही नहीं।
घिसटते रहते हैं बिल्कुल करीब के रिश्ते,
वो हमसफर है, ये मुझको कभी लगा ही नहीं।
जो दृश्य देखा है, जिंदा सबूत है खुद में,
मैं क्या कहूँ, मेरे कहने को कुछ बचा ही नहीं!
घिरा है काँटों से, फिर भी, वो मुसकराता है,
किसी गुलाब को काँटों से डर लगा ही नहीं।
घुमड़ती रहती हैं यादों की बदलियाँ...अकसर,
उदास मन में वो दीपों को बालता ही नहीं।
इसीलिए वे लड़ाई में हार जाते हैं,
है शत्रु कौन, अभी तक उन्हें पता ही नहीं!

: चार :

मोहल्ले भर को जो लगता रहा भला कुछ दिन,
कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा वो गुमशुदा कुछ दिन!
शराब की तरह जल्दी उतर नहीं पाता,
रहेगा प्यार का दोनों तरफ नशा कुछ दिन।
कल आ गया है अचानक ही वो रसोई में,
सजा हुआ था जो बैठक में आईना कुछ दिन।
अनेक स्वार्थ थे, जिनकी वजह से टूट गया,
कुछेक दल का वो गठजोड़ चल सका कुछ दिन!
हरेक देह में वो फल है, जो अलौकिक है,
न जाने तुमने उसे क्यों नहीं चखा कुछ दिन?
उसी की माँगता रहा है माफियाँ...अकसर,
वो अपनी माँ से भी बोला भला-बुरा कुछ दिन।
मैं मुख्य-धारा में सचमुच कभी नहीं आया,
मैं रह गया था स्वयं बन के हाशिया कुछ दिन।

१०८, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने,
गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल-४६२००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५७९०५६५

कहानी दाढ़ी की...

मूल : आबिद सुरती

अनुवाद : परवीन तँवर

नि नो की सही उम्र केवल छह साल है, ऐसा उसके बर्थ सर्टिफिकेट में लिखा है। लेकिन आप उसकी बुद्धि को आजमाकर देखें तो मालूम होगा कि वह कई बच्चों और बूढ़ों से भी सोच में दो कदम आगे है।

हम भी उन बुजुर्गों में शामिल हैं। हमारी उम्र ८३ साल है। वह हमें 'डी जे' कहकर पुकारता है।

डी जे?

यानी डिस्क जोकी?

यानी कि हम गाने-बजानेवाले?

जब उसने पहली बार 'डी जे' कहकर पुकारा तो हम सोच में पड़ गए थे। अंग्रेजी शब्द 'डिस्क जोकी' के प्रथम दो अक्षर डी और जे के प्रयोग करने के पीछे उसकी मंशा क्या हो सकती है? क्या वह नहीं जानता कि हम इंडिया के जाने-माने चित्रकार, साहित्यकार, कार्टूनिस्ट हैं? भला हमें गाने-बजाने से क्या मतलब?

आखिरकार एक रोज हमने पूछ ही लिया, 'हम डी.जे. हैं?'

'अलबत्ता।'

'क्या मतलब?'

'डी.जे. माने दादाजी।'

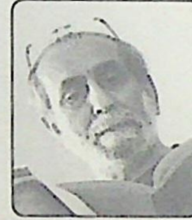
यह तो हमने सोचा ही नहीं था। वैसे डी.जे. माने डब्बूजी भी हो सकता है!

'क्या आप हमारे दादाजी नहीं हैं?'

'दादाजी...' उसके व्यंग्य को अनसुना कर हमने एक चटकारा लिया। फिर जोड़ा, 'कितना मीठा हिंदी शब्द है! क्यों न हम इसे ही इस्तेमाल करें!'

'वह घिसा-पिटा है।' उसने दलील दी, 'डी.जे. में इक्कीसवीं सदी की ठसक है।'

आप उसके किसी भी पसंदीदा विषय को लेकर सवाल उछालिए, उसका जवाब सुनकर आप यकीनन हैरान रह जाएँगे। यदि आप उसे विमान चालक की केबिन में बिजली के उपकरण के बारे में कुछ पूछेंगे तो वह आपको 'एर स्पिड इंडिकेटर' और 'अल्टिमीटर' के बारे में



अब तक अस्सी पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें पचास उपन्यास, दस कहानी-संकलन, सात नाटक, पच्चीस बच्चों की पुस्तकें, एक यात्रा-वृत्तांत, दो कविता-संकलन, एक संस्मरण और कॉमिक्स। पचास साल से गुजराती तथा हिंदी की विभिन्न पत्रिकाओं और अखबारों में लेखन। उपन्यासों का कन्नड़, मलयालम, मराठी, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला और अंग्रेजी में अनुवाद। जल संरक्षण को लेकर सामाजिक चेतना जाग्रत् कर रहे हैं। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत।

भी जानकारी देगा। उसके प्रिय विषयों में केवल हवाई जहाज ही नहीं, एलिवेटर, कंप्यूटर, कार और भारतीय रेल भी शामिल हैं।

पिछली क्रिसमस की छुट्टियों में जब निनो के मम्मी-पापा ने ताजमहल देखने का इरादा जताया तो हम दोनों के साथ निनो की दादी भी प्रसन्न हो उठी। पूछा, 'बेटा निनो, सफर हवाईजहाज से होगा या रेल से?'

'राजधानी से।' ट्रेन के साथ उसने ट्रेन की प्रशंसा के पुल भी बाँध डाले।

हम मुंबई सेंट्रल रेलवे स्टेशन पहुँचे, तब गाड़ी प्लेटफार्म पर लग चुकी थी। थोड़ी दूरी पर मोटरमैन ट्रेन के गार्ड से बतिया रहा था। निनो का ध्यान उस ओर था; बल्कि उसके कदम धीरे-धीरे उसी दिशा में बढ़ने लगे थे। शायद वह मोटरमैन यानी कि इंजनचालक की केबिन देखना चाहता था।

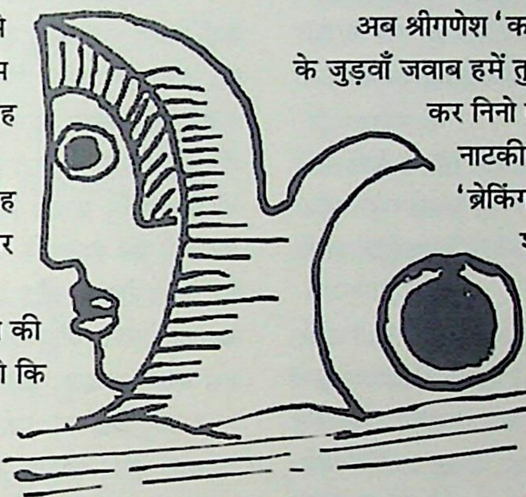
यहाँ हमारी टू-टियर बोगी में सामान चढ़ाया जा रहा था। दादी पहले ही भीतर घुसकर खिड़कीवाली सीट पर पसर गई थी। बेटा और बहू अटैचियों को सीट के नीचे रखने में लगे थे। हम चुपके से खिसक निनो के पीछे चल दिए। वैसे उस पर नजर रखने का जिम्मा भी तो हमारा था।

निनो वहीं जाकर रुका, जैसा कि हमने सोचा था। वह बाहर खड़ा रहकर जिस एकाग्रता और कौतूहल से केबिन का मुआयना कर रहा था वह देख मोटरमैन प्रभावित हुआ। वह मुसकराता हुआ भीतर चला तो उसके पीछे निनो भी घुस गया, ताकि वह छोटे-बड़े सभी गैजिट गौर से देख सके। मोटरमैन ने उसे चंद 'कंट्रोल' के बारे में जानकारी भी दी।

शांति से सबकुछ सुनने के बाद निनो ने पहला सवाल किया, 'इस ट्रेन का इंजन WAP-५ है या ७?' मोटरमैन की आँखें चौड़ी हो गईं। वह होश सँभाले, इससे पहले निनो ने दूसरा धमाका किया, 'दुरांतो ट्रेन में कौन सा इंजन लगता है?'

सच कहूँ तो इस बार हम भी भौंचक रह गए। अब सवाल यह उठता है कि निनो के उपजाऊ दिमाग का राज क्या है? इत्ती सारी जानकारियाँ उसकी खोपड़ी में घुसीं कैसे? उत्तर सरल है, पुस्तकों से।

रात में सोने से पहले दादी से परीकथाएँ सुनना और दिन में घंटा भर श्रेष्ठ किताबें पढ़ना; ये आदतें उसमें पापा ने डाली थीं। (और पापा अलिफ में उसके पापा ने, यानी कि हमने) इसके अलावा इस नन्हीं सी उम्र में उसने इंटरनेट से दोस्ती गाँठ ली थी। उसके भीतर कुलबुलाते हर एक सवाल का जवाब उसे गूगल अंकल से मिल जाता था। जब कभी हम भी उसकी गलती सुलझाने में नाकाम रहते थे, वह तुरंत सर्च-इंजन का सहारा लेता था।



इस मुन्ने में एक और भी खास बात थी। वह कोई भी सफाई, स्पष्टीकरण तब तक नहीं स्वीकार करता, जब तक उसे पूर्ण संतोष न हो।

मसलन, आप अपने विचार उस पर लादने की कोशिश करते हैं, डियर निनो, क्या तुम जानते हो कि इस सुंदर संसार की रचना परमात्मा ने की है? तो वह हल्ला बोल देगा। परमात्मा माने क्या? वह पुरुष है या स्त्री? कहाँ रहता है वह? मैं उससे मिलना चाहूँगा। मुझे उससे कुछ शिकायतें भी हैं। क्या वह बता सकता है, हमारी क्लास के मॉनीटर के दाएँ हाथ में छह उँगलियाँ यानी कि मुझसे एक ज्यादा क्यों है? दूसरा सवाल—एक नन्हे से बीज में से इतना बड़ा बरगद कैसे निकलता है? और हाँ, यह तो बताओ श्रीमान, मेरी प्यारी बिल्ली के प्राण उसने क्यों लिये?

जब तक निनो संतुष्ट नहीं होगा, हमें लगता है, परमात्मा भी सिर खुजलाता रहेगा!

एक रोज यों ही खयाल आया, क्यों न निनो को हमारे पानी बचाओ अभियान 'ड्रोप डेड फाउंडेशन' की मुहिम से जोड़ा जाए?

इस साल पर्याप्त बारिश भी नहीं हुई थी। केवल भारत ही नहीं, सारी दुनिया पर जल-संकट के बादल मँडरा रहे थे। पानी की तलाश में पंख फड़फड़ा रहे परिंदे पके फलों की तरह धरती पर गिर प्राण त्याग देते थे। गाय-बैल और अन्य जीव-जंतु सूखे खेत-खलिहानों में मौत का इंतजार करते हुए खामोश पड़े थे। यही नहीं, गाँववालों ने पानी की तलाश में शहरों की ओर हिजरत शुरू कर दी थी। सूने-सपाट गाँव से भाँय-भाँय कर गुजरती हवाएँ आनेवाले हौलनाक दिनों का संकेत दे रही थी।

हमारा दिल कह रहा था, यदि निनो हमारी बात पर यकीन कर लें तो वह अपने हमउम्र बच्चों को सरलता से प्रेरित कर जलमित्र बना सकता है। हमें भरोसा है, हमारा संदेश गाँठ बाँधकर आज के बच्चे आनेवाले कल को बहतर बना पाएँगे और हम यह भी जानते हैं कि जैसे ही हम अपना मुँह खोलेंगे, निनो अनुपम, बेजोड़ और टेढ़े-मेढ़े भी सवाल-पर-सवाल दागना शुरू कर देगा और इसके लिए हमें पहले से सावधान रहना होगा!

हमने मन-ही-मन तय कर लिया, सबसे पहले हम सोच-विचारकर उन सारे सवालों की सूची तैयार करेंगे, जो निनो की खोपड़ी में से उछलकर हम पर वार कर सकते हैं! दूसरी सूची रहेगी उन्हीं सवालों के जवाब की।

हमारी तोंद में तितलियाँ पंख फैलाने लगीं। हमारा एक पाँव कब्र में है और हम इम्तिहान की तैयारी कर रहे किसी छात्र की भाँति प्रश्नों के जाल में उलझ रहे थे।

अब श्रीगणेश 'कहाँ से और कैसे' किया जाए? इस जुड़वाँ सवाल के जुड़वाँ जवाब हमें तुरंत मिल गए। शुरुआत घर की चहारदीवारी में न कर निनो को नुक्कड़वाले हरियाले, शांत पार्क में ले जाकर नाटकीय अंदाज में यानी कि सूरत मरियल बनाकर 'ब्रेकिंग न्यूज' की घोषणा करना—माई डियर निनो, शायद तुम नहीं जानते। अफ्रीका के 'केपटाउन' शहर में सिर्फ तीन महीनों के लिए पानी बचा है।

तुरंत उसका मुँह खुलेगा तो?

इस एक शब्द के उत्तर से हम भाँप लेंगे कि हमारी जुगलबंदी आगे कैसे बढ़ेगी!

दमभर के लिए सोचो, बेटा। अगर हमें पता चले कि हमारे शहर की झील में केवल तीन माह का पानी बचा है, तब हम सब का हाल क्या होगा?

कुछ भी नहीं।

ऐं''कुछ भी नहीं?

जी हाँ डी.जे., हम बोतल का पानी पीएँगे।

सभी नागरिक तो महँगी-महँगी बोतलें नहीं खरीद सकते! इसके अलावा हमें स्नान करने, कपड़े धोने, खाना पकाने आदि कामों के लिए भी तो पानी चाहिए।

गौर से हमारा चेहरा देख उसने एक नया ही सवाल उछाला''

डी.जे., मान लो, थोड़ी देर के लिए, हमें पता चले कि आनेवाले तीन माह में सुनामी मुंबई शहर पर तबाही मचानेवाला है, तब आप क्या करेंगे?

आपत्ति का मुकाबला करने के लिए हम पूरी तरह तैयार होंगे।

तब हम आज से ही पानी की चिंता क्यों करें? जब हमारी झीलों में चंद माहों का पानी बचा होगा, हम कोई उपाय सोच निकालेंगे। अब तक तो हमें चौबीस घंटे पानी मिल रहा है।

हमारे संवाद पर शायद ऐसे भी परदा गिर सकता है। निनो और भी टेढ़े-मेढ़े सवाल और लाजवाब पहेलियाँ पेश कर सकता है। हमें फूँक-फूँककर कदम उठाने होंगे।

खयाली सवाल-जवाब का सिलसिला आगे बढ़ा—माई डियर, यदि

हम हौलनाक भूकंप और खौफनाक सुनामी का जिक्र करें तो···समय से पहले सूचना मिलने पर हम अपने प्राण और कुछ सामान बचा सकते हैं। लेकिन पानी की समस्या काफी उलझनों से घिरी है। इसे सुलझाने के लिए हमें अभी से तैयारी करनी होगी। क्या तुमने अपनी दादी से नहीं सुना, आग लगने पर कुआँ खोदना मूर्खों का काम है?

मतलब हमें अभी चलकर खुदाई शुरू कर देनी चाहिए! सही?

कई एन.जी.ओ. ने गाँवों में कुएँ खोदना, झीलों की सफाई, नाला बनी हुई नदियों को पुन: जीवित करने जैसे काम शुरू कर दिए हैं।

पर डी.जे., हम तो मुंबई में रहते हैं और यह महानगर ऊँची-ऊँची इमारतों से भरा पड़ा है।

यह भी सही। हम एक टावर में रहते हैं। यहाँ हम कुआँ नहीं खोद सकते, लेकिन बारिश का जो पानी हमारी टैरेस पर गिरता है, उसे तो गटर में बह जाने से रोक सकते हैं! हमारी हाउसिंग सोसायटी के कमेटी मेंबरों ने इस पर काम भी शुरू कर दिया है।

निनो को इस मुकाम तक लाने में हम सफल रहें तो उसे पानी बचाने के और तरीकों की जानकारी भी दे सकते हैं। मसलन रेन वॉटर हार्वेस्टिंग। सरल शब्दों में कहें तो बारिश के पानी को इकट्ठा करके महीनों इस्तेमाल करना।

पुरातन भारत में लोग बारिश का पानी इकट्ठा करने के लिए टाँका (टंकी) बनाते थे और छत पर पड़नेवाले पानी को भी पाईप द्वारा उसी में उतार देते थे। अंत में हम निनो को असली बात यह भी समझा सकते हैं कि जो बालक चंद बूँदें बचाना जान लें तो सालभर में वह सैकड़ों लीटर पानी बचाकर मिसाल बन सकता है।

अब तक हमने निनो के हर संभावित सवाल के जवाब और चर्चा का हर पहलू दिमाग में बिठा लिया था। अब सिर्फ इंतजार था निनो के आने का। शाम में ठीक समय पर स्कूल बस ने निनो को हमारे टावर के गेट पर छोड़ा। हमने सातवीं मंजिल की बालकनी से उसे उछलते-कूदते हुए गेट में दाखिल हो लिफ्ट की ओर बढ़ते देखा।

चंद मिनटों में तो वह घर में दाखिल हो चुका था। अपना स्कूल-बैग सोफे पर फेंक वह हमारे पास बालकनी में आया। आज वह कुछ अधिक ही प्रसन्न लग रहा था।

'डी.जे.'···बगलवाली एक कुरसी पर बैठ जूते का फीता खोलते हुए उसने मुँह भी खोला, 'क्या आप बता सकते हैं, आज मैं खुश क्यों हूँ?'

'लगता है, आज तुमने सौ मीटर की रेस में कप जीता है।'

'जी नहीं, आज स्पोर्ट-डे नहीं था।'

'तो क्या तुम्हारी ड्राईंग टीचर ने तुम्हारा काम देख तुम्हें शाबाशी दी?'

'आप लगभग सही हैं।' वह अपने जूते एक ओर रखते हुए अदा से बोला, 'मैंने जो निबंध लिखा था, उसे बीस में से बीस मार्क मिले। यही नहीं, टीचर ने मुझे वह पढ़कर पूरी क्लास को सुनाने के लिए कहा।'

सहज ही हमें ताज्जुब हुआ। हमने पूछा, 'तुम्हारे निबंध का विषय क्या था?'

'पानी।'

पानी···हमारी हैरानी हमारी आवाज में भी घुली थी। अब तक हम उसे पार्क में ले जाकर गुफ्तगू करने का विचार भूल चुके थे।

'उस लेख में तुमने क्या लिखा था?'

'बच्चे पानी जाया होने से कैसे बचा सकते हैं?'

अब मैं और उलझ गया। 'कैसे?'

'आसान है, डी.जे.। मुंबई में रहकर हम गंगा मैया को तो नहीं बचा सकते, लेकिन चंद बूँदें तो बचा ही सकते हैं।'

'लेकिन कैसे?'

'पॉइंट नंबर वन···' उसने सिलसिलेवार इब्तिदा की, 'अगर आपको कहीं किसी भुलक्कड़ का खुला छोड़ा हुआ नलका दिखाई दे तो उसे तुरंत बंद करें। यदि आप इसे अपनी आदत में शामिल कर लें तो सालभर में काफी पानी नाली में बह जाने से बच सकता है। पॉइंट नंबर टू—स्कूल की छुट्टी होने के बाद जितना भी पानी हमारी बोतल में बचे, उसे कहीं भी फेंकने के बजाय किसी पेड़-पौधे को पिला दें। प्वॉइंट नंबर थ्री—आज से मैंने शावर के बजाय एक बालटी पानी से नहाने का तय किया है। इससे रोजाना पाँच बालटी पानी बचेगा। और हाँ डी.जे., अगर एक बालक रोजाना पाँच बकेट पानी बचा सकता है तो आप जैसे बुजुर्गों को दस बकेट बचाना चाहिए।'

हमें हँसी आ गई। कहा, 'मुन्ने, क्या तुम नहीं जानते कि हमारी पहचान वॉटर वॉरियर यानी जलयोद्धा की है? आखिरी बारह साल से पानी की एक-एक बूँद बचाने के लिए हम जूझ रहे हैं। नोट कर लो, तुम पैदा भी नहीं हुए थे, तब से हम बालटी भर पानी से ही नहाते हैं और नहाने से पहले···?'

'नहाने से पहले···हम दाढ़ी बनाते हैं।'

'कैसे?'

'क्या मतलब?'

'नलका खुला छोड़कर या केवल लोटा भर पानी लेकर?'

हम समझ गए। नलका खुला छोड़कर शेव करने से दो-तीन बालटी पानी जाया हो जाता है। हम खामोश हो गए। सवाल इज्जत का था। कुछ कहना भी जरूरी था। सो कह दिया, निनो की शैली में···

'तो?'

'दाढ़ी रख लो।'

उस रोज से निनो सिर्फ एक बालटी पानी से नहाता है और यकीन मानिए, हमारे चेहरे पर दाढ़ी फब्ती है, ऐसा लोग कहते हैं।

सा
अ

अनुरूप, सी-१६/००३,
सेक्टर-३, निकट स्टेशन शांतिनगर
मीरा रोड (ईस्ट), मुंबई-४०११०७
aabidssurti@gmail.com



दो कविताएँ

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

स्त्री

आसान नहीं होता
बेटी होना
बेटी होने के लिए
बहुत समझदार
और संस्कारी होना पड़ता जहै
जन्म देने के लिए
माता-पिता का
आभारी होना पड़ता है।

आसान कहाँ होता है
पत्नी होना
पत्नी होने के लिए
सहनशील होना पड़ता है
कभी कभी तो मीठी
और कभी-कभी
बहुत खारी झील होना पड़ता है।

आसान नहीं होता
एक बहन होना
बहन होने के लिए
होशियार होना पड़ता है
बहन को
एक माँ की तरह ही
जिम्मेदार होना पड़ता है

आसान नहीं है
एक घर की
बहू बनना
बहू होने के लिए
सर्वगुण-संपन्न
होना पड़ता है
काँटों भरी
गृहस्थी में भी
मधुवन होना पड़ता है

आसान नहीं है
भाभी होना
भाभी होने के लिए
कभी माँ, कभी बहन
तो कभी
सहेली
बनना पड़ता है
घर में सभी के
लिए आसान सी
पहेली
बनना पड़ता है
सबसे अहम और सबसे जरूरी।

बिल्कुल आसान
नहीं होता है
माँ बनना
माँ बनने के लिए
उँगलियों को
चम्मच
हथेलियों को
तश्तरी
होना पड़ता है
माँ बनना आसान
नहीं होता है साहेब!
क्योंकि माँ बनने
के लिए स्त्री होना
होता है साहेब!
स्त्री!
सिर्फ स्त्री!
और स्त्री होना
आसान नहीं होता साहेब!

नक्काश कहीं का

मेरे
दर्द भरे अशआर
खूब पढ़ता है
Facebook पर
और खूब सुनता है
YouTube पर
इंसटेंटली जाता है
insta पर
खूब करता है ट्वीट
खामोशी से मुझे
Twitter पर।
लिंक करता है
अपने दर्द को
मेरे linkedin पर
रोज़ देखता है
मेरे दर्द के
ताज़ा अपडेट
मेरे WhatsApp के
स्टैटस पर

आख़िर वही तो
मेरे दर्द का गुरु है।
क्यूँ ना करे
मुझे follow
अब मेरे
सोशल मीडिया
accounts पर!

मुझे दर्द कहना
दर्द सहना
दर्द लिखना
दर्द पढ़ना
भी तो
सिखाया है उसने।

शिद्दत से
दी हैं उसने
classes!
और मैंने भी
पूरी ईमानदारी से
सीखा है
दर्द को
लिखना
पढ़ना
कहना
सहना
और मुझे
तराशकर
बना दिया
दर्द की
जीती जागती हुई
बहुत ख़ूबसूरत तस्वीर।

नक्काश कहीं का
क्यूँ!
सच कह रही हूँ ना?
यूँ ही तो लोग
अहा!
और
वाह!
नहीं करते।



४/१९ आसफ अली रोड
नई दिल्ली-११०००२
दूरभाष : ९९५८३८२९९९

गोवा-गमन

• हरीश नवल



प्रख्यात व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बांग्ला, पंजाबी और गुजराती में अनूदित।

४

६९ किलोमीटर की पूना-गोवा यात्रा पूर्ण करने में नौ घंटे और चार मिनट लगे। गोवा में ट्रेन 'वास्कोडिगामा' स्टेशन पर पहुँची। बोगी नं. २००३ को वहीं तीन दिन तक रुकना था। यहाँ से सभी को अपना सामान साथ लेकर गोवा की राजधानी पंजिम के 'शांति गेस्ट हाउस' में जाना था।

शांति गेस्ट हाउस की दूसरी मंजिल के हॉल नंबर छह, सात, आठ और नौ दिल्ली के लिए बुक थे। राजीव सहगल के 'डोरमेटरी-प्रबंध' से विद्यार्थी खुश नहीं हुए। वे श्रेष्ठ होटल जैसे कमरों की कल्पना कर रहे थे। यहाँ एक-एक हॉल में ग्यारह-ग्यारह पलंगनुमा चारपाइयाँ बिछी थीं। दो हॉल लड़कों के लिए और दो लड़कियों के लिए तय थे।

प्रो. सुरेश और गिरीश सर को यह जानकर अच्छा नहीं लग रहा था कि गेस्ट हाउस में अटैच्ड बाथरूम नहीं हैं, थोड़ी दूर बरामदे में कॉमन बाथरूम हैं। विद्यार्थियों में भी यही टॉपिक कॉमन हो गया था। राजीव सहगल को घेरकर सब उसे भला-बुरा कहने लगे। उसे भी शांति गेस्ट हाउस पसंद नहीं आ रहा था। उसने कहा, "दोस्तो, कल जगह बदल लेंगे, आज गुजारा कर लो, एक दिन का एडवांस दिया हुआ है। मैं गिरीश सर के साथ ठीक सी जगह ढूँढ़ने जाता हूँ। कोई बात हो तो कमल रुस्तगी यहीं है।"

गिरीश सर और राजीव ने दो-एक होटल और गेस्ट हाउस देखे, कहीं इतने बड़े ग्रुप के लिए जगह नहीं थी, तभी गिरीश सर को वहाँ मुख्य बाजार में अपने एक प्राध्यापक मित्र प्रो. प्रभात कुमार मिल गए, जो अपने कॉलेज के ग्रुप को गोवा टूर पर लाए थे।

उनको गिरीश सर की तलाश के बारे में मालूम हुआ, उन्होंने कहा, "डॉ. साहब, हम 'जहाँगीर होटल' में ठहरे हैं, साफ-सुथरा, सस्ता, सुंदर और टिकाऊ है। हम कल वापस जा रहे हैं, आप वहाँ टिक सकते हैं। वह हमारे एक भूतपूर्व स्टूडेंट का होटल है, आपको डिस्काउंट भी दिला देंगे।"

जब गिरीश सर और राजीव सहगल 'जहाँगीर होटल' बुक करके लौट रहे थे, उन्हें बदहवास, हाँफता हुआ अमर सब्बरवाल मिला।

"सरजी, आपको ही ढूँढ़ रहा हूँ। बड़ी गड़बड़ हो गई है। गेस्ट हाउस में चार गुंडे आ गए हैं, वे भी हमारी यूनिवर्सिटी के एक कॉलेज के हैं, चाकू खोलकर खड़े हैं। कह रहे हैं कि चार लड़कियाँ हमारे साथ भेज दो, कल सुबह उन्हें वापस छोड़ जाएँगे। सर, वीरेंद्र बहल उनसे भिड़ने लगा, उन्होंने उसे पीट दिया। कुछ लड़कियाँ रो रही हैं, सुधि मैम प्रो. सुरेश के साथ कुछ खरीदने गई हैं···"

राजीव की समझ में कुछ न आया कि क्या करे, डिस्मेंटलता से बचने के लिए उसने एक हाथ से अपना सिर पकड़ लिया। गिरीश सर संयत रहे, वे कुछ सोच ही रहे थे कि उन्हें गोवा पुलिस की एक जीप आती दिखाई दी। उन्होंने हाथ देकर उसे रोका। उसमें बैठे पुलिस अफसर ने जीप रुकवाते हुए खिड़की का शीशा नीचे करके पूछा, "हाँ जी, क्या माँगता? एनी ट्रबल?"

गिरीश सर ने संक्षेप में ट्रबल बता दी।

ऑफिसर जीप से बाहर आ गया और बोला, "चलिए, बताइए कहाँ हैं वे बदमाश।"

"जी 'शांति गेस्ट हाउस' में, लेकिन एक निवेदन है आपसे कि आप उन्हें पकड़िए, धमकाइए, हम आठ-दस मिनट बाद आकर उन्हें माफ करने के लिए आपसे गुजारिश करेंगे। प्लीज, उन्हें न बताइएगा कि हमने आपको भेजा है, क्योंकि फिर दिल्ली में ये हमसे बदला ले सकते हैं। ये तो गुंडे हैं···" हाथ जोड़ते हुए अनुभवी गिरीश सर ने निवेदन किया।

"ओ.के., हम समझ गया", कहकर पुलिस अफसर जीप लेकर गेस्ट हाउस की ओर रवाना हो गया।

जब गिरीश सर, राजीव और अमर सब्बरवाल के साथ गेस्ट हाउस पहुँचे, वहाँ का नजारा देखकर हैरान हो गए।

चार लंबे-चौड़े युवक मुरगा बने हुए थे और पुलिस अफसर बारी-बारी उनके उभरे पक्षों पर बेंत का प्रहार कर रहा था। गेस्ट हाउस के

मालिक शांतिलाल 'ओम् शांति-शांति' जप रहे थे। छात्राएँ और छात्र सहमे से यह सीन देख रहे थे, कुछ अन्य यात्री भी तमाशबीन बने हुए थे।

जैसा तय हुआ था, ईमानदारी से वैसा ही हुआ। गिरीश सर ने पुलिस ऑफिसर को रोकते हुए कहा, "सर, मैं प्रोफेसर गिरीश हूँ, मेरे विद्यार्थी ही यहाँ ठहरे हैं। मुझे पता चला है कि चारों नौजवान भी हमारी यूनिवर्सिटी के हैं, इसलिए ये भी हमारे ही हैं, इन्हें प्लीज माफ कर दीजिए, चाहें तो शहर से दूर भेज दें।"

मुरगे मनुष्य में परिवर्तित हुए, उन्हें इनसान बनाने की प्रक्रिया समाप्त हुई। चारों दर्द से कराह रहे थे। उनके चाकू, बटुए, चश्मे आदि पुलिस ने अपने कब्जे में कर लिये थे। उन्होंने गिरीश सर को ऐसे देखा, जैसे भक्त भगवान् की मूर्ति को देखता है। पुलिस अफसर ने चारों से सभी लड़कियों से माफी मँगवाई और सिपाही को आदेश दिया, "इन चारों का सामान इनके होटल से ले लो और इन्हें गोवा के बॉर्डर के बाहर कर आओ।"

सैल्यूट करके सिपाही आदेश का पालन करने निष्ठापूर्वक चारों को लेकर चल पड़ा। जाते-जाते चारों गिरीश सर के चरण-स्पर्श करके गए।

"थैंक्यू सर! आपने बहुत अच्छा काम किया। अब तो हमारी लड़कियाँ गोवा में आराम से घूम लेंगी।" स्वर में विनीतता भरकर गिरीश सर ने पुलिस अफसर से कहा।

छात्र-छात्राओं ने भी बड़े सम्मान से पुलिस ऑफिसर का शुक्रिया अदा किया और जब तक उसकी जीप वापस नहीं आई, वह 'शांति गेस्ट हाउस' में शांतिलालजी की चाय पीता रहा, बटाटा-वड़े खाता रहा।

प्रो. सुरेश, सुधि मैम और कुछ छात्र, जो बाहर गए हुए थे, के आने पर उन्हें पूरा माजरा बताया गया। सबने रोमांचित होते हुए सुना और गिरीश सर की सूझ तथा पुलिस अफसर की बूझ की बहुत प्रशंसा की।

पुलिस अफसर को विदा करने जब गिरीश सर औरों के साथ नीचे गए, जाते-जाते वह रुक गया और उसने गिरीश सर को एक साइड में ले जाकर धीमे से कहा, "सर वो तो चार थे, चार लड़कियाँ माँग रहे थे, अपुन तो अकेला है, एक ही माँगता है, कल आऊँगा, शाम को।"

मिले-जुले भावों से गिरीश सर घिर गए। उन्होंने राम को रावण रूप में आँका, कुछ कह न पाए। पुलिस अफसर के जाते ही कल्पना में उन्होंने पुलिस अफसर को मुरगा बनाकर उसके उभरे और न उभरे सभी पक्षों पर खूब बेंत लगाए...

ज्ञात हुआ था कि अगली शाम पुलिस ऑफिसर 'शांति गेस्ट हाउस' में सिविलियन ड्रेस में सज-धजकर आया जरूर था, लेकिन दिल्ली के विद्यार्थियों का दल वहाँ से शिफ्ट हो चुका था।

पंजिम में 'जहाँगीर होटल' के कमरा नंबर ३०२ में गिरीश सर संजय दीवान की क्लास ले रहे थे। गोवा के विषय में उन्हें पहले से मालूम था कि गोवा कभी पुर्तगाल के अधीन था, यहाँ काजू से बनी शराब, जिसे फैनी कहते हैं और समुद्र की बीचिज, जहाँ परम आजादी है, बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने संजय को अपनी जी.के. का एक बेहतरीन नमूना प्रदान कर इंप्रेस कर दिया। उन्होंने उसे बताया, "संजय, गोवा ईस्ट का रोम है, रोम इटली की राजधानी है, जैसे पंजिम गोवा की। इटली के लिए कहा जाता है कि 'गॉड मेड इटली ब्यूटीफुल, रोमन्ज मेड हर माईटी'।"

गिरीश सर ने कंधे उचकाए और टीकोजी हटाकर केतली से उँड़ेलकर कप में चाय भरी, जिसे होंठों तक पहुँचाने से पूर्व भीगे शब्दों में कहा, "वेल, संजय दीवान। अब बताओ, तुमने गोवा के बारे में क्या जाना?"

संजय दीवान बताता रहा और गिरीश सर चाय के साथ 'संजय-ज्ञान' को सुड़कते गए। कमरा नंबर ३०२ के गिरीश सर के सहआवासी प्रो. सुरेश, जो नारियल पानी पीने सड़क पार गए हुए थे, इस बीच लौट आए और कतिपय ज्ञानतत्त्व उनके हिस्से में भी आ ही गया।

पुर्तगाली इंडिया की पूर्व राजधानी 'ओल्ड गोवा', जहाँ गोवा का सर्वप्रसिद्ध रोमन कैथोलिक चर्च 'बासिलिका ऑफ बोम जीसिस' स्थित है, पंजिम से १०.६ किलोमीटर था। आज भी उसकी दूरी उतनी ही है। यह युवा दल का गोवा में प्रथम दर्शनीय स्थल था, जिसके विषय में गिरीश सर ने नोट करवाया कि 'यह बासिलिका ऑफ बोम जीसिस ६१ फीट ऊँचा चर्च विश्व-प्रसिद्ध है, क्योंकि इसमें सेंट फ्रांसिस जेवियर की 'ममी' सुरक्षित रखी है। इस चर्च के निर्माण में ग्यारह साल लगे। सन् १६०५ में इसका उद्घाटन हुआ। आज ३७० साल बाद भी यह कितना मजबूत और सुंदर है, यह उस समय के शिल्प का चमत्कार है।'

"सर 'बोम जीसिस' का अर्थ क्या है, क्या यहाँ कभी कोई बॉम्ब गिरा था?" रंगा के साथ खड़ी सीमा ने एक सीमित सा सवाल किया।

गिरीश सर ने भलीभाँति इस सवाल को कैच किया और उसे दूसरे पाले में सौंपते हुए पूछा, "बताओ, कौन बताएगा, किसकी स्टडी बैटर है, देखते हैं।"

विद्यार्थियों ने कनखियों से अगल-बगल देखना शुरू किया कि देखें, कौन जवाब देता है?

गिरीश सर ने अति विश्वासपूर्वक संजय दीवान की ओर ताका, जिसका खड़ा हाथ उन्हें खड़े-खड़े दिख रहा था, इससे पहले कि वे संजय को कुछ संकेत करते, रंगा ने बोलना शुरू कर दिया, "सर प्रो. सुरेशजी ने हमें बताया था कि बोलते-बोलते बहुत से शब्द बदल जाते हैं, यह 'बोम' शब्द पहले 'मॉम' होगा, 'मॉम' यानी 'मम्मी'...तो सर आपने अभी बताया कि यहाँ कोई मम्मी है..."

यह सुन कुछ विद्यार्थियों ने प्रशंसा भरी और बहुतों ने ईर्ष्या भरी नजरों से रंगा की ओर देखा। सीमा ने रंगा का कंधा हौले से थपथपाया, रंगा गुलाबी हो उठा।

"सर, पर आपने तो सेंट फ्रांसिस जेवियर की मम्मी बताया था, जीसिस की नहीं।" रेखा बोल पड़ी, भला वह जुड़वाँ से पीछे कैसे रहती?

सुधि मैम का धैर्य डोल उठा, उन्होंने तनिक आवेश में कहा, "बच्चा, कहाँ ध्यान है, यह 'ममी' है 'मम्मी' नहीं। 'ममी' माने डैड बॉडी, जो जिंदा हो। 'जिंदा डैड बॉडी', यहाँ सेंट जेवियर की 'ममी' ताबूत में रखी है।"

चर्च के भीतर जाने से पूर्व 'डैड बॉडी, लेकिन जिंदा?', 'जिंदा है तो डैड कैसे', 'मरनेवाला जीवित' बाहर ऐसे-ऐसे सवाल गूँजने लगे, भयंकर हलचल और तार्किक चर्चा...गिरीश सर ने पुनः संजय पर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली और यों बॉल सही कोर्ट में पहुँच पाई।

संजय दीवान ने बताया, "सर 'बोम जीसिस' का अर्थ है 'भला जीसिस' या 'बालक जीसिस', जैसे हमारे यहाँ कहते हैं न 'बाल कृष्ण' या 'बाल-गणेश'।"

"शाबाश संजय, बिल्कुल सही, मैं 'बाल-गोपाल' कहने ही वाला था, वैल, वैरी गुड, अब कैथेड्रिल के भीतर चलते हैं।" गिरीश सर का आत्मविश्वासात्मक आदेशक स्वर में गूँजा और वे दल-बल सहित अंदर हो गए। बाहर उठे सवाल बाहर ही खड़े रहे।

गोवा के भव्य गिरिजाघरों में 'सेंट कैथरीन' भी बहुत प्रसिद्ध है। विद्यार्थी दल को लेकर राजीव सहगल और कमल रुस्तगी यहाँ भी पहुँचे। इस बार प्रो. गिरीश को टिप्स नहीं मिल पाए थे, अत: कैथेड्रिल में प्रवेश-पूर्व 'ज्ञानकक्षा' का दायित्व टूर नेता राजीव सहगल ने ले लिया था।

राजीव सहगल व्यवहार से ही 'मेंटल' लगता था, लेकिन सिद्धांतत: वह 'टूरमेंटल' था। वह कच्चा काम नहीं करता था। उसने बाकायदा अपने बैग से एक डायरी प्रसवित की और उसमें से पढ़कर 'कक्षा' लेनी आरंभ की। "आदरणीय मैडम, सरों और दोस्तो, सेंट कैथरीन गिरिजाघर 'से कैथेड्रिल' के नाम से जाना जाता है। यह सन् १६४० से अपनी गोयथिक पुर्तगाली शिल्प के लिए प्रसिद्ध है। कृपया सीमा, रंगा या कोई और मुझसे यह न पूछें कि 'गोयथिक' क्या होता है—वस, यह होता है, फर्स्ट ईयर वाले नोट कर लें, फिर दिल्ली जाकर इसका अर्थ समझें। इस गिरिजाघर में आठ चैपल हैं, जो आठ सेंटस या संतों के नाम से हैं। अब प्लीज, मुझसे मत पूछना कि चैपल क्या होता है या सेंट कौन होते हैं? डिग्री कोर्स में जरूरी नहीं होता कि जो एग्जाम में हम लिखते हैं, उसका मीनिंग भी हमें पता हो।"

बीच पर विद्यार्थी नहाने जो उतरे, तो पानी से बाहर निकले ही नहीं, लड़कियाँ भी न थीं। अपने घरों में दबी-घुटी यहाँ गोवा में पंख मिलने से खूब उड़ पा रही थीं, संध्या होने लगी। 'समुद्र का पानी बढ़ता जाएगा, ज्वार आने को है' यह चेतावनी दी जाने लगी, किंतु लड़कियाँ थीं कि सुन ही नहीं रही थीं, लड़के तो निकल आए थे। गाइड ने बताया था, "ज्वार में बहुत ऊँची लहरें उठती हैं, जो सिर से ऊपर निकलकर पीछे से वापस लौटती हैं, उनकी गति इतनी तेज होती है कि वे ढकेलने लगती हैं। अगर ऐसा होता हो तो ऐसे में अपने पंजे रेत में गढ़ाकर पेट के बल लेट जाना चाहिए।"

राजीव सहगल ने थमकर साँस ली, सामने सबको निहारा, फिर कहा, "मुझे यहीं आकर पता चला कि कैथेड्रिल के भीतर स्लीवलैस कपड़े पहनकर नहीं जा सकते, यहाँ का नियम है। देख रहा हूँ कि आप में से कुछ विद्यार्थियों ने स्लीवलैस पहने हुए हैं, वे बाहर ही रहें, शेष विद्यार्थी दस मिनट बाद मेरे पीछे-पीछे चलें।"

वह झटके से मुड़ा, उसकी लाल टाई लहराई। प्रो. सुरेश के मुख से अनायास फूटा, "लाली मेरे लाल की जित देखें तित लाल।"

गिरीश सर ने प्रो. सुरेश से कहा, "क्या बात प्रोफेसर साहब, आज तो आपके पंछी भी लाल हो रहे हैं क्या?" जाने क्या, कहाँ तक सोचकर प्रो. सुरेश सच में लाल हो उठे थे।

कैथेड्रिल में प्रवेश नहीं कर सकेंगी, इसका दु:ख सीमा और रेखा, दोनों को हो रहा था, क्योंकि दोनों के परिधान स्लीवलैस थे। दिल्ली छूटने के बाद उन्होंने स्लीव भी छोड़ दी थीं। अब दोनों दु:खी थीं कि 'गोयथिक शिल्प' नहीं दिखेगा।

उधर रंगा और निशिकांत को लग रहा था कि क्या करें कि भीतर ना जाना पड़े, बाहर घने वृक्षों के साये घूँट-घूँट जी सकें! उन्हें जैसे ही सीमा और रेखा के दु:ख का भान हुआ, उनमें स्वत: महानता के लक्षण पैदा होने लगे। उन्होंने अपनी फुल स्लीव कमीजें उतारीं और सीमा, रेखा से कहा कि इन्हें पहनकर गोयथिक आर्ट खूब देखें।

दोनों ने तनिक असमंजस और संकोच से पुरुष गंध से भरे हुए कपड़े किसी तरह पहने और रंगा, निशि का शुक्रिया अदा करके 'प्रवेश-चैकिंग' पार करने के बाद उतार सहेजकर बैग में रख लिये।

बनियानधारी त्यागी-तपस्वी साधकों, रंगा और निशिकांत ने कैथेड्रिल के एक कोने में अपनी पसंद के एक बोधिवृक्ष के तले तदुपरांत घूँट-घूँट तत्त्व ज्ञान का पान कर अपने जन्म और गोवा यात्रा दोनों को सार्थक किया।

'माजोरदा बीच' गोवा टूर का अंतिम पड़ाव था, जिसके बारे में एक विचित्र किंवदंती बाली ने बताई कि भगवान् राम जब बालक थे, उनका अपहरण करके दानव उन्हें यहाँ लाए थे। यह भी कहा जाता है कि सीता-अपहरण केस के बाद राम उन्हें ढूँढ़ते हुए यहाँ आए थे। राजीव सहगल के अनुसार 'माजोरदा बीच' का माहात्म्य राम के कारण अधिक होने से विश्व में यह 'काबो-डी-रामा' के नाम से भी जाना जाता है।

माजोरदा बीच के पास की दुकानों के बीच सर्वाधिक बिकनेवाली वस्तु 'फैनी' थी। काजू की इस शराब की बोतल, जो तब गोवा में मात्र १८ रुपए की थी, दिल्ली में ८० रुपए में मिलती थी। मेधावी और किफायती विद्यार्थियों ने इस बात का जी भर-भर लाभ उठाया और भर-भर पी। मेधावी विद्यार्थी टाइमिंग-प्रवीण भी थे, तब जब प्रोफेसर लोग दाएँ-बाएँ हों अथवा कर दिए जाएँ, तभी यह शुभ काम संपन्न किया जाता रहा। प्रोफेसरों को पता न चला, तीनों के सिर जुएँ रहित ही रहे और कान सूने।

बीच पर विद्यार्थी नहाने जो उतरे, तो पानी से बाहर निकले ही नहीं, लड़कियाँ भी कम न थीं। अपने घरों में दबी-घुटी यहाँ गोवा में पंख मिलने से खूब उड़ पा रही थीं, संध्या होने लगी। 'समुद्र का पानी बढ़ता जाएगा, ज्वार आने को है' यह चेतावनी दी जाने लगी, किंतु लड़कियाँ थीं कि सुन ही नहीं रही थीं, लड़के तो निकल आए थे। गाइड ने बताया था, "ज्वार में बहुत ऊँची लहरें उठती हैं, जो सिर से ऊपर निकलकर पीछे से वापस लौटती हैं; उनकी गति इतनी तेज होती है कि वे ढकेलने लगती हैं। अगर ऐसा होता हो तो ऐसे में अपने पंजे रेत में गढ़ाकर पेट के बल लेट जाना चाहिए।"

प्रो. सुरेश विद्यार्थियों के पास जा-जाकर उन्हें बचाव की विधि समझा

रहे थे···कि अचानक एक बड़ी लहर विद्यार्थियों के ऊपर से होती हुई पीछे गिरी और तेज बहाव से पानी विद्यार्थियों को सागर की ओर धकेलने को आतुर हो गया। प्रो. सुरेश जैसे समर्थ गुरु से बार-बार सुनी बचाव की तरकीब से सभी रेत में दोनों हाथ गढ़ाए पेट के बल लेटकर बच गए··· सागर से नहाकर लड़कियाँ भी लौट आईं, किंतु प्रो. सुरेश बचाव क्रिया ठीक से नहीं कर पाए और तेज बहाव के कारण माजोरदा के सागर की गोद में गिरने-गिरने को हुए···वह तो शुक्र है कि समीप ही बचाव मुद्रा में लेटी कुछ छात्राओं, जिनमें सुनयना भी थी, ने उन्हें देख लिया और कसके पकड़ा, बल्कि सुनयना ने तो जकड़ लिया···लहर छह सेकंड में विलीन हो गई और प्रोफेसर सुरेश तो बच गए, लेकिन उनकी बाईं टाँग लहर द्वारा बुरी तरह मुड़ने से क्षतिग्रस्त हो गई···वे बहुत दुःखी हुए, उनका दुःख तब-तब और बढ़ता गया, जब-जब विद्यार्थी उन तक आकर बचाव की तरकीब बताने के लिए उनका धन्यवाद व्यक्त करते रहे।

गिरीश सर और संजय दीवान प्रो. सुरेश को फिजियोथैरेपी सेंटर लेकर गए और बाकी सभी 'जहाँगीर' की शरण में लौट आए। सेंटर में प्रो. सुरेश को वैक्स ट्रीटमेंट दिया गया और उनकी बाईं टाँग मेडिकेडिट पट्टी से ढाँप दी गई। उधर थके-माँदे युवा पर्यटक बिस्तरे तोड़ने में जुट गए।

गोवा से विदा लेने का दिन चढ़ा और पंजिम से टूर दल वास्कोडिगामा स्टेशन पर आराम फरमा रही बोगी नं. २००३ के आश्रय में आ गया, जिससे बनवारी और मिसेज भल्ला को बहुत चैन मिला, अन्यथा वे क्रम से बोगी की चौकीदारी करने में ही चैन लुटाते रहे थे।

नई दिल्ली तक का दो हजार दो सौ दो किलोमीटर का रास्ता पूरे पचपन घंटे का था, लगभग ढाई दिन का सफर, वह भी यदि सिग्नल मिलते रहें, पटरियाँ टूटी-टाटी न हों, राह में नेता लोग गाड़ी न ठहराएँ, कहीं कोई चोरी-चकारी या कोई और शुभ-अशुभ व्यवधान न हों। वरना बाजे वक्त उन दिनों चार-चार दिन भी लग जाते थे।

शंटिंग क्रिया-प्रक्रिया में सदा की भाँति झटके-वटके लगे और अंततः बोगी से एक्सप्रेस ट्रेन जुड़ी (अथवा एक्सप्रेस ट्रेन से बोगी—इस बारे में विद्वानों में मतभेद है)।

गाड़ी चल पड़ी और बीस-पच्चीस मिनट में सब व्यवस्थित हो गए। प्रो. सुरेश खिड़की से पीठ टिकाए, दाईं और नीचे चोट खाई बाईं टाँग सीट पर फुलाए गुनगुनाने में मशगूल हो गए। गिरीश सर और सुधि मैम प्रो. सुरेश के सामनेवाली बर्थ पर टूर के अब तक के खर्चे का ब्योरा बनाने में जुट से क्या गए कि सट से ही गए।

छुक-छुक गाड़ी चल रही थी, हिलोरें सी उठ रही थीं—सुनयना और टीटू भविष्य-निर्माण के प्रस्ताव बना रहे थे। कमल और राजीव आईटनरी पर लगाए गए निशानों और डायरी में लिखे विवरणों आदि के तालमेल को बिठाने में लग गए थे। निशिकांत और रेखा कटे-कटे से थे, लेकिन रंगा और सीमा बसे-बसे से खुस-पुस कर रहे थे।

छुक-छुक गाड़ी चल रही थी, हिलोरें सी उठ रही थीं—सुनयना और टीटू भविष्य-निर्माण के प्रस्ताव बना रहे थे। कमल और राजीव आईटनरी पर लगाए गए निशानों और डायरी में लिखे विवरणों आदि के तालमेल को बिठाने में लग गए थे। निशिकांत और रेखा कटे-कटे से थे, लेकिन रंगा और सीमा बसे-बसे से खुस-पुस कर रहे थे।

संजय दीवान 'ऑल इंडिया टूर गाइड' नामक ग्रंथ में घुस गया था, अमर सब्बरवाल कुछ गुनगुनाता हुआ बोगी की दीवार पर थपकी से ताल दे रहा था। सुशील बाली और गोलू ताश खेलने में मगन थे। सुनीता मुंजाल, वीरेंद्र बहल से राजेश खन्ना की चर्चा कर रही थी···तभी सबने पाया कि आलोक मुकर्जी घबराया-सा इधर से उधर तेजी से आ रहा है··· हड़बड़ाता-सा वह अचानक गिरीश सर के पास आया और बोला, "सर, रश्मि दिखाई नहीं दे रही।"

"अरे, तुम्हारे साथ ही तो होती है हमेशा।"

"सर, कल से ही वह कुछ रूठी हुई थी। दस मिनट मैंने सुनीता से बातें क्या कर लीं कि वह गुस्सा गई, मैं भी भड़क गया था, इसलिए उसे अवॉयड कर रहा था। मैं समझा कि वह सुनयना या सीमा के साथ होगी, लेकिन सर, दोनों ने उसे नहीं देखा।"

आलोक बोलते-बोलते रोने लगा, विद्यार्थी रुदन सह नहीं पाए, सुनकर वहीं भागे चले आए। माजरा समझ आया तो वे बोगी से जुड़े सभी डिब्बों में रश्मि की खोज में चले गए। यह तो रेलकृपा थी कि बोगी के दोनों 'डिब्बे जोड़' द्वार खुल भी सकते थे। खोजी लौट आए, रिपोर्ट दी कि रश्मि ट्रेन में नहीं थी। प्रोफेसरों को पसीना आने लगा। गैर-जिम्मेदारी का यह बहुत बड़ा प्रमाण था, जिसका परिणाम सोचकर परेशान से गिरीश सर ने कहा, "गाड़ी रोको, जंजीर खींचो।"

सर का आदेश मिलने की देर थी, जो जहाँ खड़ा था, वहीं पास की जंजीर खींचने लगा। रंगा और बहल जोर लगाने के लिए जंजीर से लटक गए···जर्र र र र र···आवाज आई, रंगा और बहल गिरने को हुए और सारी-की-सारी ट्रेन की जंजीर टूट-खिंचकर वहीं इकट्ठा हो गई···अब गाड़ी कैसे रुके?

सभी को रश्मि की चिंता सताने लगी और रश्मि को सतानेवाले आलोक के प्रति खीझ का भाव बेभाव बढ़ने लगा।

गाड़ी कैसे रुके? अमर सब्बरवाल का पौरुष जाग उठा, उसने सुनीता से चुन्नी माँगकर अपने सिर पर बाँध ली और बोला, "दोस्तो, मैं जाता हूँ इंजन ड्राइवर के पास वीरू बनके, 'शोले' का वीरू बनके।" उन दिनों 'शोले' हिंदी फिल्म का युवाओं पर बेहद आध्यात्मिक प्रभाव था।

अमर बोगी के अगले हिस्से में बने रास्ते से उसके साथ जुड़े इंजन में 'शोले' शैली में पहुँच गया और ड्राइवर को सिचुएशन बतलाई, हैरान ड्राइवर ने कहा, "क्योंकि जंजीर टूट गई है, अब गाड़ी रोकी नहीं जाएगी। अगला स्टेशन मडगाँव है, एक घंटा लगेगा, वहाँ रोक पाएँगे।"

संदेश लेकर अमर बोगी में वापस लौटा। उसका लाल गुलाबी चेहरा इंजन के धुएँ से बेहद काला हो रहा था···दर्जनों उत्सुक नजरें उसकी ओर मुखातिब हुईं। बुझे से आलोक मुकर्जी ने लपककर अमर का धुएँ से लिपटा

हाथ पकड़ा। अमर ने बता दिया कि अब अगले स्टेशन पर ही गाड़ी रुकेगी।

मडगाँव तक का सफर उस दिन गिरीश सर के लिए मानो सैकड़ों और आलोक के लिए हजारों किलोमीटर का हो गया था...दोनों दरवाजे के पास जाकर खड़े हो गए।

स्टेशन लगभग चालीस मिनट बाद प्रकट हुआ, काला सूट पहने कितने ही रेलवे कर्मचारी प्लेटफॉर्म पर खड़े दिखाई दिए, जिनमें एक के हाथ में गत्ते का बड़ा पीस था, जिस पर मोटे अक्षरों में 'गिरीश सर' काँपते हाथ से लिखा हुआ था। गाड़ी रुकी, गिरीश सर, आलोक, राजीव, अमर आदि उतरकर रेलवे अधिकारियों की ओर लगभग भागकर पहुँचे।

"मैं हूँ गिरीश सर", गिरीश सर ने समूह के पास आकर जैसे ही बताया, एक अधिकारी ने हाथ मिलाते हुए कहा, "मैं डगलस, स्टेशन मास्टर, मडगाँव। चलिए मेरे ऑफिस में, आपसे वास्को स्टेशन से एक हीरोइन बात करना चाहती है।"

स्टेशन मास्टर डगलस ने रेलवे फोन की चरखी घुमाते हुए वास्कोडिगामा स्टेशन मास्टर को फोन लगाया, जिसे रश्मि ने ही उठाया और रोती सी आवाज में शक्तिशाली 'हैलो' बोला। डगलस ने 'हीरोइन' कहकर गिरीश सर को फोन देते हुए चौंका दिया। गिरीश सर की भर्राई आवाज निकली, "हैलो रश्मि, ठीक हो? हम वरिड हैं! फिक्र न करना, चाय-वाय पिओ, तुम्हें लेने आते हैं।"

"सर, आप हमें छोड़ गए, हमें तो यही पता था कि ट्रेन शाम को जाएगी, लेकिन आपने सुबह ही चलवा दी। हम रिटायरिंग रूम में बाथ लेते रहे, बाहर निकले तो सर रेलवे का सारा स्टाफ हमें ऐसे देख रहा था, जैसे फिल्मों में प्राण हीरोइन को देखता है। सर, आलोक ने भी...और रश्मि की हिचकियों से गिरीश सर की आँखों में गोवा की माजोरदा बीच का पानी भर गया और उन्होंने आलोक को रिसीवर पकड़ा दिया। खड़े रहने और तेजी से चलने के कारण उनकी टाँग का दर्द बढ़ने लगा था। वे बैठ गए।

आलोक की बात शब्दों में कम, हिचकियों से अधिक हुई। माफीनामे हुए और रंगा ने सार्वजनिक घोषणा कर दी, "लो भई 'रश्मि-आलोक' के गिले-शिकवे मिट गए।"

आगामी योजना रश्मि को लेकर आने की थी। गिरीश सर ने निर्णय दिया, "हमारी गाड़ी अब पूना रुकेगी, जहाँ एक दिन का स्टे है। उसके हिसाब से अभी वास्कोडिगामा से रश्मि को लेने कुछ लोग जाएँ और उसे लेकर पूना पहुँचें। पूना ६१३ किलोमीटर की दूरी हम १५ घंटे में कवर करेंगे। मेरी टाँग ठीक नहीं, इसलिए मैं रश्मि को लेने नहीं जा सकता। प्रो. सुरेश भी मना कर रहे हैं, अब राजीव सहगल आलोक को ले जाएँ और सुधि मैम से राह खर्च के लिए पैसे ले लें। दिल्ली पहुँचकर हिसाब हो जाएगा। हम पूना जंक्शन पर बोगी में ही मिलेंगे।"

रश्मि को लाने के लिए आलोक, टीटू और सुनयना ने बीड़ा उठाया। उन्होंने टैक्सी से जाने का निश्चय किया। राजीव को टूर-ऑपरेशन के लिए छोड़कर वे तीनों मडगाँव से वास्कोडिगामा की ओर रवाना हो गए। 'गोलू-धन' से सुधि मैम ने उन्हें दो हजार की रकम (उस जमाने के हिसाब से 'बड़ी') अदा कर दी।

सा अ

६५ साक्षरा अपार्टमेंट्स

ए-३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३

दूरभाष : ९८१८९९९२२५

harishnaval@gmail.com

सुनो मधुमालती

• नीरजा माधव



उपन्यास, कहानियों, कविताओं, ललित-निबंधों आदि विधाओं की चालीस पुस्तकें प्रकाशित। कई विश्वविद्यालयों और प्रांतीय बोर्ड के पाठ्यक्रमों में कहानियाँ, कविताएँ, निबंध और उपन्यास सम्मिलित। उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा यशपाल पुरस्कार, म.प्र. साहित्य अकादमी पुरस्कार, शैलेश मटियानी राष्ट्रीय कथा पुरस्कार, राष्ट्रीय साहित्य सर्जक सम्मान आदि के साथ लेजिस्लेटिव असेंबली, अलबर्टा (कनाडा) द्वारा मौलिक लेखन के लिए सन् २०१८ में सम्मानित। अनेक कृतियों का कई भाषाओं में अनुवाद तथा शोध कार्य संपन्न।

रात है। धुँधली सी याद की तरह। वह लड़की है। बिल्कुल साफ, चटक, मधुमालती के सफेद नन्हे खिले फूल की तरह। मधुमालती की एक विशेषता होती है, सूरज की रोशनी में उसके फूल गुलाबी रंगत ले लेते हैं तो रात होते ही वे अनगिनत चाँदनी के पुष्प बन जाते हैं। सफेद, तारों की तरह, अँधेरी हरी पत्तियों के बीच टिमटिमाते हुए। उस लड़की की आँखें भी टिमटिमा रही हैं। अरुंधती अपने साथी तारों के साथ उसकी आँखों में उतर आई है। वह लड़की गुनगुना रही है, अपनी माँ का गीत—*मोरे पिछवंरवा लवंगिया का गछिया लवंग चुवै सारी रात, नाजो क सोहाग बढ़े।* लवंग की ठंडी सुरभि उसके चारों ओर हवाओं में घुल रही है। वह मुसकरा रही है। एक मीठी मुसकराहट। उसकी उँगलियाँ ढोलक पर थाप देने की मुद्रा में नृत्य कर रही हैं।

मैं उसे गीत के बीच से खींचकर बाहर लाना चाह रही हूँ, पर वह चुपके से अपनी बाँह छुड़ा कुलाँचे भरती माँ के आगे-आगे दौड़ पड़ी है। गोतिन के यहाँ विवाह पड़ा है। रात में सोहाग गाने के लिए गाँव भर की औरतें इकट्ठा हैं। ये सभी औरतें एक-दूसरे की गोतिन हैं। रिश्ते में देवरानी-जेठानी या सास-ननद भी हो सकती हैं, पर कार-परोजन में ये सभी गोतिन-दयादिन हो जाती हैं। उस लड़की को अच्छा लगता है, माँ के साथ गोतियाउर करना। रात में बाबूजी की आँख बचाकर दूसरे के घर सोहाग गाने जाना। माँ को गर्व होता है कि उनकी लड़की के अलावा गाँव की किसी लड़की को सोहाग पर ढोलक बजाना नहीं आता। यह शऊर तो बस उसी लड़की में है। कई बार उसकी ढोलक की थाप पर नाचने के लिए खड़ी हुई किसी गोतिन की भोंडी मुद्रा पर ठहाकों से रात का गझिन सन्नाटा टूट जाता है। उस समय लड़की की उँगलियाँ ढोलक पर और तेज थाप देने लगती हैं। उसकी अपनी हँसी हथेलियों की गति बढ़ा देती है—जैसे बढ़ती जाती है यादों की तीव्रता समय के साथ। यादें, जो कभी साथ नहीं छोड़तीं। एक नवजात, वह भी नींद में कभी हँसता है, तो कभी होंठों को रोने की मुद्रा में सिकोड़ता है। वह लड़की भी अपने नए-नए पैदा हुए भाई को नींद में बिदुर काढ़ते देख माँ से पूछ रही है—

"यह क्यों रो रहा है?"

"इसे सपना आ रहा है।" माँ अपने आँचल को सँभालते हुए बोल रही थी।

"किसकी याद आ रही है?" लड़की की जिज्ञासा लंबी हो उठी है।

माँ को कल्पना करनी पड़ी है। उस लड़की को कहानी के बिना बात समझ में नहीं आ सकती। झटपट एक लघु कहानी सुना देती हैं, "इसे अपनी पहले जन्म वाली माँ याद आ रही हैं सपने में। भगवान् इससे मजाक में कहते हैं कि तुम्हारी माँ मर गई तो यह बिदुर काढ़कर रोने लगता है और तुरंत ही भगवान् कह देते हैं कि नहीं-नहीं, तुम्हारी माँ जिंदा है, तो नींद में ही यह हँसने लगता है।"

बचपन में सुनी वह कहानी आज तक याद है इस लड़की को। स्मृतियाँ मृत्यु से प्रारंभ होकर मृत्यु तक जाती हैं। मैं डरकर इस लड़की को स्मृतियों से बाहर लाना चाहती हूँ। इसे कोई नाम देना चाहती हूँ। आप भी इसे किसी नाम से पुकार सकते हैं—चंपा, जूही, लिली, गंगा, सृष्टि या कुछ भी। मैं इसे मधुमालती ही पुकार लेती हूँ। एक प्रतीक ही तो होते हैं नाम भी; पहचाने जाने के लिए जरूरी। मधुमालती को भी पहचाना जाता है। अपनी हॉस्टल की दोस्तों के बीच वह एक गाने-बजानेवाली मस्त लड़की के रूप में है, पर रात के एकांत में चुपचाप अपनी किताबें खोल शांत होकर पढ़ाई करनेवाली भी। मधुमालती की तरह ही दिन भर गुलाबी चंचलता ओढ़े, रात होते ही स्निग्ध चाँदनी की तरह शांत और रहस्यमयी। अपनी स्मृतियों में दौड़ लगाती, किसी हिरनी की तरह।

ऐसी ही किसी रहस्यमय और शांत सी रात में मधुमालती अपनी फैलती सुगंध को बटोरकर खड़ी हो जाती है मेरे सामने चुपचाप। मुझसे कुछ फुसफुसाती सी। धुँधली सी यादें, पर साफ-साफ याद हैं मुझे। वह लड़की हॉस्टल में नाच रही है। अपनी कई दोस्तों के साथ माँ का गाया चहका गीत। होली की हुड़दंग में वह खिलंदड़ी तितली की तरह इठला रही है। गर्ल्स हॉस्टल के बड़े से कॉमन रूम में सब ठुमक रहे हैं। चहका के बोल समवेत स्वर में गूँज रहे हैं—पैजनिया हमारी झमक बाजे, पैजनिया…। मधुमालती की देह भी मद्धिम हवा के झोंके संग हिलती कोमल लता की तरह डोल रही है। रह-रहकर वह कोने में पड़ी टूटी मेज पर ढोलक के थाप दे आती है। एक जोश भर जाता है लड़कियों में। तालियाँ लय में बजने लगती हैं। यह जश्न है होली में घर जाने से पहले हॉस्टल वाली होली का। रंग-अबीर से सबके चेहरे रँगे-पुते। मधुमालती के लिए इसमें कई और रंग घुले-मिले हैं। नहीं, प्रेम का नहीं। एक दूसरी छोटी सी खुशी का। उसे ट्यूशन पढ़ाने का काम मिल गया है। किसी सामान्य परिवार में नहीं, राजघराने की युवरानी को ट्यूशन पढ़ाना है। आजादी से पहले सचमुच के राजा। उसे जरूरत है पैसों की। कुछ महँगी किताबें, जिन्हें वह अपने पॉकेट खर्च से नहीं खरीद पाती। बाबूजी से हॉस्टल खर्च के अतिरिक्त और अधिक माँगने में संकोच होता है। कहाँ से लाएँगे बेचारे?

वह खुशी से इतरा रही है। उसके विभाग के एक प्रोफेसर ने उसका नाम राजघराने में भेजा था। राजा साहब पुराने जमाने के महाराज। युवरानी को इंटरमीडिएट की परीक्षा दिलानी है। अपना ही कॉलेज है पास में, पढ़ने भले न जाएँ, पर परीक्षा देने तो जाना ही पड़ेगा। हाथी, घोड़ा, पालकी की आदत अभी भी पूर्ववत्।

मनुष्य अत्यंत आह्लाद के क्षणों में अपनी मिट्टी, अपनी लोक-संस्कृति से ही जाकर जुड़ता है। यह चहका भी पूर्वांचल की मिट्टी का एक लोकप्रिय गीत है। लड़कियों के बहाने भारत का दक्षिण, पश्चिम, उत्तर भी जुड़ रहा है इस मिट्टी से। थिरकने के लिए बस एक धुन चाहिए—बोली भले न समझ में आए। हॉस्टल की सभी लड़कियाँ चाहे वे केरल, पंजाब, गुजरात या जम्मू की हैं, इस गाने की धुन पर थिरक रहीं हैं।

युवरानी को पढ़ाने के लिए कोई संस्कारी लड़की ही चाहिए। प्रोफेसर साहब ने मधुमालती का नाम दे दिया। मधुमालती बहुत खुश है। वह राजघराने की कुलगुरु बन गई है। भले ही कुछ महीनों के लिए। संकोच में ट्यूशन फीस नहीं पूछ पाई। अब राजा खानदान है, तो सामान्य से अधिक तो होगा ही। फिर कौन बहुत दूर जाना है? हॉस्टल के पीछे बहती नदी और उस पर बने पीपा वाले पुल को पार करते ही राजा साहब का किला है। दो घंटे में आना-जाना और पढ़ाना सब हो जाएगा। बस अंग्रेजी ही तो पढ़ाना है। अपनी क्लास भी नहीं छूटेगी।

मधुमालती बहुत खुश है। पहले ही दिन किले में पहुँची तो उसकी भेंट महाराजजी से हुई। युवरानी के पास तक पहुँचने से पहले उस ट्यूशन वाली लड़की का इंटरव्यू होना जरूरी जो था। मधुमालती का हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। डर और खुशी दोनों मिश्रित। जैसे मधुमालती के फूलों की गुलाबी और सफेद दोनों रंगत। राजमहल के गेट पर खड़ी युवरानी की दासी उसे लेकर महाराज के कक्ष में पहुँची थी। चारों तरफ शीशमहल की आभा। शीशे का इतना महीन काम तो उसने किसी फिल्म में ही देखा था। चारों ओर मधुमालती ही फूलों की तरह झिलमिला उठी। एक ओर नक्काशीदार आसन पर महाराजजी विराज रहे थे। दासी ने प्राचीन चिर अंदाज में राजा साहब को सलाम ठोंका और दरवाजे के पास खड़ी हो गई। राजा साहब की सांस्कारिक आँखें मधुमालती से प्रश्न पूछ रही थीं। कुछ देर बाद उनके होंठ भी लरजे—जैसे गुफा के ऊपर उढ़के दो पत्थर किसी ने हटा दिए हों।

"संस्कृत भी जानती हो?"

"जी हाँ, थोड़ा-थोड़ा। बी.ए. में थी।" मधुमालती उनकी आवाज से सहम उठी।

"हूँ। युवरानी को हिंदी भी पढ़ा सकती हो?"

"जी, पढ़ा दूँगी।"

राजा साहब ने दासी को संकेत किया तो वह मधुमालती को अपने साथ लेकर युवरानी से मिलाने चल दी।

कितनी खुश थी वह लड़की! हिंदी भी पढ़ाएगी वह युवरानी को। दोहरी फीस, दोहरी खुशी! मैं हैरान सी देख रही हूँ, उस खिलंदड़ी लड़की को। सामान्य लड़कियों की तरह क्यों नहीं सोच पाई वह? फिल्मों के खलनायक की तरह कहीं राजा उस पर झपट्टा मार देता तो? कपड़े फाड़ देता तो? अकेली ही तो गई थी वह नदी पार करके। किले की छत से फेंक देता नदी में तो? पर वह मुसकरा रही है, थिरक रही है। होली के बहाने अपनी इस छोटी ही सही, खुशी को भी उत्सव की तरह साझा कर रही है वह। डिजर्टेशन में टाइपिंग आदि पर लगभग तीन-चार हजार रुपए खर्च होने हैं। बाबूजी पर अतिरिक्त भार वह नहीं डालेगी। उनके ऊपर पूरे परिवार के खर्च की जिम्मेदारी है। वह ट्यूशन फीस से अपना यह खर्च निकाल लेगी।

हॉस्टल में लड़कियों का होलियाना मूड परवान चढ़ रहा है। सब मिलकर लगभग चिल्लाने वाले बेसुरे अंदाज में चहकर गा रही हैं—मोरे सेजिया से उड़ गए दुइ कागा, मोर सइयाँ अभागा न जागा। कुछ ताली पीटकर इस गाने पर हँस रही हैं। मनुष्य अत्यंत आह्लाद के क्षणों में अपनी मिट्टी, अपनी लोक-संस्कृति से ही जाकर जुड़ता है। यह चहका भी पूर्वांचल की मिट्टी का एक लोकप्रिय गीत है। लड़कियों के बहाने भारत का दक्षिण, पश्चिम, उत्तर भी जुड़ रहा है इस मिट्टी से। थिरकने के लिए बस एक धुन चाहिए—बोली भले न समझ में आए। हॉस्टल की सभी लड़कियाँ, चाहे वे केरल, पंजाब, गुजरात या जम्मू की हैं, इस गाने की धुन पर थिरक रहीं हैं। मधुमालती भी नृत्य की मुद्रा में गोल-गोल घूम रही है। वार्डन के गुस्से की परवाह किसी को नहीं है। मेस के मैनेजर और

रोटियाँ सेंकनेवाली महराजिन भी कॉमन रूम के दरवाजे पर खड़ी होकर यह दृश्य देख रही हैं। उनके मुँह हँसी की मुद्रा में खुले हुए हैं।

मधुमालती ने उन दोनों को पकड़कर भीतर खींच लिया है और अपने दोनों हाथों से उन्हें थामकर नृत्य करवा रही है। मेस मैनेजर मोटा सा अधेड़ आदमी है। वह शरमा रहा है लड़कियों के बीच नाचने में। रजेसरा महाराजिन विधवा हैं, बूढ़ी हैं। अपनी सफेद साड़ी सँभालते वे मधुमालती का मन रखने के लिए दो ठुमके लगा रही हैं और लजाकर फिर से दरवाजे के बीच खड़ी हो गईं। लड़कियों का एक जोरदार ठहाका। रजेसरा महराजिन लाज से दोहरी हुई जा रहीं।

मधुमलती की आँखों में उम्मीद की एक बढ़ी हुई नदी लहरा रही है। उसे याद आ रही हैं युवरानी, जिसे पहले दिन पढ़ाते हुए वह लगातार उनके शरीर पर जगमगाते गहनों को कौतूहल से निहारती रही थी। पहले ही दिन युवरानी ने उसे यह भी बताया कि वे एक अधिकारी की बेटी थीं और राजघराने में विवाह तय होने के बाद बहुत प्रसन्न थीं, पर अब यह सब उन्हें कैदखाने जैसा लगता है। कहीं बाहर निकलकर आजाद घूमने-फिरने का उनका भी मन करता है, पर राजघराने में यह प्रथा नहीं है। वे किले की छत पर भी दासियों के साथ चिब्बी-डाड़ी खेलती हैं। मधुमालती मुसकरा उठी। रानियाँ भी उसकी तरह ही होती हैं। वैसे ही खेल खेलती हैं, जैसे वह। पर वह बंधन में नहीं है, युवरानी बंधन में हैं। उसे युवरानी पर तरस आया।

"कभी बाहर खाने का मन हो, जैसे होटल-वोटल?" वह पूछ बैठी।

"नहीं, घर में ही बनवाकर खाना है। खाना बनानेवाला महाराज आकर पूछ जाता है—क्या खाने का मन है?"

युवरानी उदास थी। मधुमालती भी उदास हो गई उनकी बेचारगी देख।

उस लड़की ने एक दिन पूछ लिया, "क्या पसंद है? मैं बाहर से खरीदकर लेती आऊँगी।"

"नहीं, बाहर वॉचमैन देख लेगा तो बड़े दाऊजी से कह देगा।" युवरानी भोलेपन से बता रही थी। सभी राजा साहब को 'बड़े दाऊजी' ही पुकारते हैं।

"मैं अपने बैग में ले आऊँगी। वॉचमैन मेरा बैग नहीं देखता।"

"अच्छा। तब मेरे लिए रसमलाई ले आइएगा। महाराज अच्छा नहीं बना पाता।"

दूसरे दिन रसमलाई खरीदने के लिए उसने अपनी रूम-मेट से डेढ़ सौ रुपए उधार लिये थे और 'श्रीराम मिष्ठान' से रसमलाई पैक करवाकर राजमहल पहुँची थी। उसकी आँखों में युवरानी को प्रसन्न कर पाने की खुशी थी। रूम-मेट के पैसे तो वह ट्यूशन फीस मिलते ही वापस कर देगी। राजघराने की कुलगुरु है वह। फिर एक मुसकराहट तैर गई है लड़की के होंठों पर। सामान्य परिवारों की तरह दो-चार सौ रुपए थोड़े ही देंगे राजा साहब। इतना तो देंगे ही कि उसके डिजर्टेशन का पूरा खर्च निकल आएगा। कुछ पैसे बच जाएँगे तो माँ के लिए वायल की ही सही, एक साड़ी खरीदेगी। माँ कितनी खुश होंगी! उस दिन भी उस लड़की की आँखों में वही उम्मीद तैर रही थी, जब तीन महीने ट्यूशन पढ़ाने के बाद वह अंतिम बार युवरानी से 'गुडबाय' करके आ रही थी। बाहर राजा साहब के सचिव खड़े थे। उन्होंने एक पॉलीथिन बैग उसे पकड़ाते हुए लिफाफा हथेली पर रख दिया।

"ये तीन महीने की ट्यूशन फीस।"

"जी।" उसका मन चंचल हो रहा था, लिफाफे के भीतर ताक-झाँक करने को।

"और यह आपके लिए एक सूट का कपड़ा। युवरानीजी जयपुर गई थीं, आपके लिए ले आई थीं।"

"जी!" उसने चोर निगाहों से पॉलीथिन में से झाँकते नारंगी और हरे रंग के दो कपड़े देखे थे। कंट्रास्ट कलर। ओह, कितना सुंदर लगेगा सिलकर! नदी के ऊपर बने पीपे के पुल से उस लड़की का ऑटो गुजर रहा था तो उसने अन्य सवारियों की आँखें बचाकर लिफाफे के भीतर झाँका। एक पाँच सौ, एक सौ रुपए का नोट दिखाई पड़ा। उसने सावधानी से फिर देखा। कहीं पॉलीथिन में गिरे तो नहीं हैं? छह सौ रुपए ही थे। उसकी आँखों में तैरती उम्मीद एकाएक नदी की उफनती लहरों में कूदकर आत्महत्या कर बैठी थी।

मैं बेचैन हो उठी हूँ। अपनी मेज पर रखे ग्लोब को यों ही घुमा दिया है मैंने। पूरी धरती अपने सभी सागरों, नदियों, पहाड़ों के साथ मेरे सम्मुख अपनी धुरी पर नाच उठी है। मैं अपनी उँगलियाँ चटकाते हुए उस लड़की की उम्मीदों को बचाने के लिए नदी में कूदना चाहती हूँ, पर वह नदी समुद्र में मिल चुकी है। लड़की अब भी मेरी बगल में आकर खड़ी हो गई है। सुबह की पीली रोशनी में मधुमालती के फूल फिर गुलाबी हो रहे हैं। वह खिलंदड़ी लड़की फिर कुछ याद कर हँस रही है। उन्मुक्त, बेपरवाह! उम्मीद की मृत्यु से पैदा होते एक नवजात उम्मीद की गुलाबी रंगत को निहारते हुए। मैं हैरान हूँ। यह लड़की क्यों खड़ी हो जाती है मेरे पास बार-बार? समझाते हुए कि यादें मृत्यु के पदचाप को चिह्नित करनेवाली दूब से हरियाई एक पगडंडी हैं। मैं देख रही हूँ अब भी उस लड़की को, जो मधुमालती है, धूप में कुछ और, चाँदनी में कुछ और!

सा अ

मधुवन, एस.ए. १४/५९८,
सारंगनाथ कॉलोनी, सारनाथ
वाराणसी-२२१००७
दूरभाष : ९७९२४११४५१

कोई दुश्मन है ही नहीं। सब अपने ही हैं और सबसे ज्यादा अपने तो आप हैं। आपके यहाँ आकर लगता है, अपने मम्मी-पापा के घर में ही हूँ!" कहते-कहते वह भावुक हो गई।

अपने हँसमुख स्वभाव के कारण कोमा ने जल्दी ही आसपास के घरों में अपने परिचय का दायरा बढ़ा लिया। उसके मीठे व्यवहार का जादू लोगों के सिर पर बोलने लगा। अब जो बच्चे उसके पास पढ़ने आते, उन्हीं के माँ-बाप औरों को भी इस अनोखे प्ले स्कूल और कोमा के मधुर स्वभाव के बारे में बताते। टिनी-मिनी प्ले स्कूल बढ़ता चला गया।

एक दिन कोमा ने आकर खुशी-खुशी बताया, "आंटी, आपके आशीर्वाद से मेरे प्ले स्कूल में अब पूरे तीस बच्चे हो गए। मैंने मदद के लिए एक आया भी रख ली है। मैंने सोच लिया है, अब मैं बच्चों को पढ़ाने में अपना पूरा ध्यान लगाऊँगी।"

फिर एक दिन वह आई तो अपने आग्रह की रस्सी से हमें बाँध गई, "आंटी, कल आना है आपको मेरे प्ले स्कूल में। साथ में मनु अंकल को भी जरूर लाइएगा।...मैंने तय कर लिया है, अब से हर शनिवार का दिन किस्से-कहानी के लिए रहेगा!"

अगले दिन पहले-पहल देखा उसका प्ले स्कूल। सच ही सपने जैसा! हम वहाँ गए तो उसके आग्रह पर थे, पर वहाँ इतना आनंद आया कि उठने का मन ही नहीं कर रहा था। बच्चे कविताएँ सुनना चाहते थे, कहानियाँ सुनना चाहते थे, बातें करना चाहते थे। खुद भी खूब-खूब सुनाना चाहते थे।...तो भला कोई घड़ी देखकर वहाँ से कैसे उठ सकता था?

बड़े ही आनंदपूर्ण पल वहाँ बिताकर हम उठे तो बच्चों के दमकते चेहरों पर हमने पढ़ा, "थैंक्यू अंकल...थैंक्यू आंटी!...आप फिर आना।"

और सचमुच तीसरे ही दिन कोमा ने फिर आकर खटखटा दिया, "आंटी, बच्चे इंतजार कर रहे हैं आप लोगों का। बार-बार कहते हैं, मनु अंकल और सुनीता आंटी कब आएँगे, मैम?...अब तो अपना हर शनिवार आप टिनी-मिनी प्ले स्कूल के लिए रख लीजिए।"

फिर बोली, "आंटी, इससे हमें फायदा भी हुआ है। मैं सबसे कहती हूँ, हमारे प्ले स्कूल की एक खासियत यह है कि बच्चों के लिए लिखनेवाले साहित्यकार हमारे यहाँ आकर अपनी मजेदार कविताएँ और कहानियाँ बच्चों को सुनाते हैं। साथ ही, इन बच्चों से बातें भी करते हैं।...इससे बच्चों के मम्मी-पापा बड़े प्रभावित होते हैं।"

फिर उसने हमारे आग्रह पर और लेखकों को भी बुलाना शुरू किया। बच्चे खुश थे लेखकों को अपने बीच पाकर, लेखक खुश थे इतने खुशदिल बच्चों के बीच रचनाएँ पढ़कर।...और कोमा खुश थी कि उसका प्ले स्कूल इस कॉलोनी के और प्ले स्कूलों से अलग है। उसमें बच्चे वाकई खेल-खेल में सीखते हैं। वह कभी-कभी कहती, "मैं तो बच्चों से एक ही बात कहती हूँ कि पढ़ना आनंद की चीज है, सीखना आनंद की चीज है। इसमें डरने और परेशान होने की कोई बात नहीं है।"

सचमुच कोमा को अब कुछ कर दिखाने के लिए एक नया क्षेत्र मिला था और वह इसमें कोई कसर नहीं छोड़ना चाहती थी। फिर इससे घर की हालत भी सुधरी थी। एक दिन उसने उत्साहित होकर बताया, "आंटी, स्कूल के सारे खर्च निकाल देने के बाद कोई चार-पाँच हजार रुपए हमारे पास बच जाते हैं। यह सब आपके कारण ही है। आपने न सुझाया होता तो...!"

मैंने हँसकर कहा, "मैं कैसे न सुझाती, कोमा! मैंने देख लिया था, तुम्हारे अंदर मोहिनी है। जिससे भी बात करो, उस पर तुम्हारी छाप जरूर छूट जाती है। इसी कारण तो इतने सारे लोग जान गए तुम्हारे टिनी-मिनी प्ले स्कूल को।...वह भी केवल छह महीने में!"

सुनकर कोमा कुछ लजा गई। मुझे कोमा के प्ले स्कूल के चल निकलने की तो खुशी थी ही, साथ ही इस बात की भी कम खुशी न थी कि वह घर, जो पहले आर्थिक मुश्किलों से जकड़ा हुआ था, उसमें अब नई चहल-पहल और जीवन का संगीत सुनाई देता।

इसमें कोमा के उदार-हृदय पति संजय की भी मेहनत थी। वह एक बढ़िया सहायक और दोस्त की तरह कोमा के इस प्ले स्कूल में मदद के लिए हमेशा तैयार रहता। कोमा की लोकप्रियता बढ़ रही थी और हर कोई उसके अनोखे प्ले स्कूल की चर्चा करता। इससे संजय की खुशी का ठिकाना न था। हमारे घर दोनों आते तो संजय चुहल करता, "आंटी, अब मैं कभी रास्ते से गुजरता हूँ तो लोग कहते हैं, यह वही संजय है, जिनकी पत्नी ने टिनी-मिनी प्ले स्कूल खोला है।"

सुनकर हम सब हँसते। कोमा भी हँस पड़ती।

आसपास और भी कई प्ले स्कूल थे, जिनमें कई तो खासी भव्य बिल्डिंगों में, अच्छे-खासे साधनों से शुरू किए गए थे। पूरी तरह वातानुकूलित। महँगे खिलौने, झूले और खूब सारा ताम-झाम। उनकी फीसें ऊँची थीं। पर उनमें वह भावना नहीं थी, जो कोमा के दिल में थी। वह जादू भी नहीं था, जो कोमा के दिल में था और बच्चों को मुसकराने पर विवश कर देता था। इसलिए एक छोटे से कमरे में चलनेवाले कोमा के प्ले स्कूल में हर पल बड़ा सरस गुंजार रहता। पढ़ाते समय कोमा की उत्फुल्ल हँसी और खुशी छलक-छलककर बच्चों के दिलों में जा मिलती।

यों कोमा के टिनी-मिनी प्ले स्कूल की प्रसिद्धि का कोई अंत नहीं था। वह खेलने, पढ़ने और सीखने का स्कूल तो था नहीं, पर बच्चे उसे

यों कोमा के टिनी-मिनी प्ले स्कूल की प्रसिद्धि का कोई अंत नहीं था। वह खेलने, पढ़ने और सीखने का स्कूल तो था नहीं, पर बच्चे उसे इस तरह याद करते, जैसे वह उनके लिए हँसी-खुशी का मेला हो। कोमा का मीठा व्यवहार और उसका हर समय मुसकराता चेहरा अपरिचितों को भी उसकी ओर खींचता। न सिर्फ बच्चों से, बल्कि उन्हें छोड़ने व ले जानेवाले माँ-बाप और अभिभावकों से भी वह बड़े अपनत्व के साथ बात करती। सबको लगता कि बच्चों को सुबह-सुबह यहाँ छोड़ देने के बाद उनकी सारी चिंता खत्म।

इस तरह याद करते, जैसे वह उनके लिए हँसी-खुशी का मेला हो। कोमा का मीठा व्यवहार और उसका हर समय मुसकराता चेहरा अपरिचितों को भी उसकी ओर खींचता। न सिर्फ बच्चों से, बल्कि उन्हें छोड़ने व ले जानेवाले माँ-बाप और अभिभावकों से भी वह बड़े अपनत्व के साथ बात करती। सबको लगता कि बच्चों को सुबह-सुबह यहाँ छोड़ देने के बाद उनकी सारी चिंता खत्म।

फिर बच्चों को सिखाने का कोमा का ढंग भी बड़ा रोचक और लाजवाब था। वह बच्चों के बीच सचमुच बच्ची बन जाती। उनके साथ-साथ गाती। यहाँ तक कि उनके साथ-साथ मजे में नाचती भी।

एक दिन उसने आग्रह किया, "आंटी, कल हमारे स्कूल का सांस्कृतिक कार्यक्रम है। स्कूल के सामनेवाले पार्क में कार्यक्रम रखा है। बच्चों के सारे पेरेंट्स आएँगे। आप और मनुजी इसमें विशिष्ट मेहमान होंगे!"

हम लोग थोड़ा जल्दी पहुँच गए तो देखा कि कोमा बच्चों को किसी कार्यक्रम की तैयारी करवा रही थी। बच्चों को साथ-साथ खुद भी डांस करके वह उन्हें गीत और कविताएँ याद करवा रही थी। देखकर हम मुग्ध थे। दूर खड़े चुपचाप देखते रहे, जब तक उसका यह रिहर्सल खत्म नहीं हो गया। फिर पास जाकर मनुजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, "कोमा, तुम परीक्षा में पास हो गईं। एक अच्छे टीचर को ऐसा ही होना चाहिए।"

सुनकर कोमा की आँखें भीग गईं। बोली, "अंकल, आपने पापा की याद दिला दी।"

उस दिन का सांस्कृतिक कार्यक्रम तो अनोखा था ही। बच्चों ने ऐसे कार्यक्रम दिखाए कि लगा, हम किसी और लोक में पहुँच गए हैं। बाद में जब मैंने और मनुजी ने वहाँ उपस्थित लोगों को बताया कि टिनी-मिनी प्ले स्कूल के पीछे कोमा की कैसी मेहनत, कैसी तपस्या है, तो सबने उसके सम्मान में खूब तालियाँ बजाईं।

उस दिन डांस के कई प्रोग्राम थे और सारे अनोखे। कोमा का यह नया हुनर हमने पहली बार देखा। बाद में पता चला कि उसके सिखाए कुछ बच्चों को स्कूलों की नृत्य-प्रतियोगिताओं में शानदार पुरस्कार भी मिले। यही नहीं, उसके पढ़ाए कई बच्चों का शहर के बड़े अच्छे, नामी स्कूलों में दाखिला हो गया। इससे उन बच्चों के माँ-बाप इतने खुश थे कि वे तंगहाली में चलनेवाले कोमा के इस अनोखे प्ले स्कूल की तरह-तरह से मदद करते।

कोमा के प्ले स्कूल में हर वर्ग के बच्चे थे। अमीर भी, गरीब भी। उसके दिल में सभी के लिए प्यार बहता। बच्चे और बच्चे में कोई फर्क वहाँ नहीं था, बल्कि गरीब बच्चों के लिए उसके दिल में कहीं ज्यादा जगह थी। वह उनके दुःख-दर्द और मजबूरियाँ समझती थी। एक दिन उसने खुद ही बताया, "आंटी, इधर मेरे प्ले स्कूल में श्रमिक बस्ती के भी कई बच्चे आ गए हैं। इन बच्चों के पास पहनने को ढंग के कपड़े तक नहीं होते। उनसे मैं बस आधी फीस लेती हूँ। कभी-कभी वह भी नहीं। अपनी तरफ से जितना हो सके, मदद करती हूँ, ताकि जीवन की दौड़ में ये भी किसी से पीछे न रहें।"

सुनकर बहुत अच्छा लगा था। आज की दुनिया में ऐसी बातें, ऐसी सोच… ? पर इससे कभी-कभी अजीब तरह के नाटक हो जाते, जिसका मुझे तो कतई इल्म न था। शायद कभी पता भी न चलता, अगर कोमा ने न बताया होता।

सचमुच कोमा के लिए वह एक कठिन परीक्षा ही थी।…हुआ यह कि कोमा सुबह-सुबह स्कूल में बच्चों के साथ गाते-गुनगुनाते हुए एक प्रसन्न दिन की शुरुआत करनेवाली थी। तभी दनदनाते हुए मिसेज माथुर आ गईं। बढ़िया सिल्क की साड़ी पहने, खाते-पीते घर की एक स्त्री। रुआबदार चेहरे से टपकता अभिमान। उसने बड़ी हिकारत से कोमा से कहा, "आपने भूड़ कॉलोनी के ये गंदे बच्चे क्यों रख लिये? इन्हें निकालिए, नहीं तो हम अपने बच्चों को निकाल लेंगे।"

कोमा हक्की-बक्की, "यह क्या कह रही हैं आप?"

मिसेज माथुर नफरत से नाक चढ़ाकर बोलीं, "जरा कपड़े देखिए इनके।…ये क्या इस लायक हैं कि इन्हें हमारे बच्चों के साथ… ?"

कोमा को गुस्सा तो बहुत आया, पर गुस्से को किसी तरह जज्ब करके उन्हें प्यार से समझाते हुए बोली, "देखिए मिसेज माथुर, बच्चे तो बच्चे हैं। वे गरीब के हों या अमीर के, इससे क्या फर्क पड़ता है? और कपड़ों से क्या होता है?…आपको पता है, ये बच्चे कितने अच्छे और होशियार हैं। कोई महीना भर पहले ये मेरे स्कूल में आए थे और कितना सीख लिया। आपने केवल कपड़े देखे, यह नहीं कि इनके दिल कैसे हैं?"

"आप किताबी बातें खूब कर लेती हैं, मैडम!" मिसेज माथुर ने व्यंग्य किया।

"पर किताबों की बातें जीवन में उतारने का नाम ही तो शिक्षा है।" कोमा शांति से बोली, "मैं इन बच्चों को पढ़ाती ही नहीं हूँ, यह भी सिखाती हूँ कि वे अच्छे बच्चे कैसे बन सकते हैं!…ये बच्चे किसी के साथ बुरा व्यवहार न करें, बड़ों को आदर-मान दें, ये सारी बातें आप इन बच्चों में पाएँगी!"

"हे भगवान्, आप जाने कौन से जमाने की बातें कर रही हैं!" मिसेज माथुर तीखे लहजे में बोलीं, "मैं तो बस एक बात जानती हूँ कि हमारा बच्चा इन गंदे बच्चों के साथ नहीं पढ़ेगा।…बिल्कुल नहीं पढ़ेगा। आप फैसला कर लीजिए कि आपको अपना स्कूल कैसे चलाना है! आपको गंदी बस्ती के बच्चों को पढ़ाना है तो बस उनको ही पढ़ाइए।"

एक क्षण के लिए कोमा सोच में पड़ गई। उसके सामने कड़े फैसले की घड़ी थी। पर अगले ही पल उसने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा, "देखिए मिसेज माथुर, हमारा काम सभी को शिक्षा देना है। एक शिक्षक के रूप में मैं भेदभाव नहीं कर सकती। आप चाहें तो अपने बच्चे को खुशी से अभी ले जा सकती हैं। पर मैं श्रमिक बस्ती के इन बच्चों को नहीं निकालूँगी।"

इस पर बेशकीमती रेशमी साड़ी पहने मिसेज माथुर तमतमाते हुए अपने बच्चे आदित्य की बाँह पकड़कर तुरंत ले गईं।

कोमा को इस बात का थोड़ा दुःख था कि उसके इस निर्णय के कारण उसके प्ले स्कूल का एक बच्चा कम हो गया। आदित्य सचमुच

अच्छा बच्चा था और उसे वह बहुत प्यार भी करती थी। पर अपने भीतर उसने एक आत्म-गौरव भी महसूस किया कि उसने जिंदगी में यह एक नेक काम किया है और सच्चाई का साथ दिया है।

पर दो दिन बाद ही कोमा के सामने जो दृश्य था, उसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उसने देखा कि आदित्य अपनी मम्मी की उँगली थामे, धीरे-धीरे प्ले स्कूल की ओर बढ़ा चला आ रहा है। नखरीले स्वभाव वाली मिसेज माथुर बड़े संकोच के साथ कमरे में आईं और कोमा से बोलीं, "मैडम, इसने तो घर में रो-रोकर बुरा हाल कर रखा है। कहता है, मुझे तो कोमा मैडम के ही स्कूल में जाना है। लो, सँभालो इसे।"

कहते हुए उनकी आँखें नीची थीं। कोमा अचरज से देख रही थी, यह सच है या सपना?

"मैं नहीं जानती थी कि आप हमारे बच्चों को हमसे भी ज्यादा प्यार करती हैं। तभी तो यह कहीं और जाने को तैयार ही नहीं हुआ।" मिसेज माथुर लज्जित होकर कह रही थीं।

इस पर कोमा के चेहरे पर आत्मविश्वास से भरी मुसकान खिल गई। उसने बड़े प्यार से आदित्य के सिर पर हाथ फेरा और उसे पास बिठा लिया। मिसेज माथुर की ओर देखकर बड़े मीठे स्वर में बोली, "आज आदित्य ने एक शिक्षक के रूप में मेरा माथा गर्व से ऊँचा कर दिया, मिसेज माथुर! आदित्य जब बड़ा होगा तो आप महसूस करेंगी कि उसमें औरों से कुछ अलग इनसानियत की एक खुशबू है। तब आपको इस पर गर्व होगा और इस स्कूल की भी याद आएगी, जिसमें हमने उसके व्यक्तित्व और सही शिक्षा की नींव रखी!"

एक छोटी सी घटना थी, पर एक शिक्षक के रूप में सचमुच यह उसकी बहुत बड़ी जीत भी थी।

अपने स्कूल के इन बच्चों के साथ हर रोज बीतनेवाले कोई चार घंटे कोमा के लिए कैसे अजब सुख भरे होते थे, इसे वह अकसर बताया करती थी। इससे उसकी गृहस्थी की गाड़ी तो मजे में चलने ही लगी थी, साथ ही एक अनोखी मानसिक तृप्ति भी उसके चेहरे पर झिलमिलाती रहती थी।

कोमा के प्ले स्कूल ने चार-पाँच बरसों में ही खूब तरक्की कर ली। उसके सामने खूब पैसेवाले लोगों द्वारा बड़े-बड़े साधनों से खोले गए प्ले स्कूल भी फीके पड़ गए, लेकिन कोमा में कभी इस बात का घमंड नहीं आया। जब-जब मुझसे मिलती, वह हमेशा मुसकराकर कहती, "आंटी, कल के एक नए समाज को बनाने में अपनी एक छोटी सी भूमिका मैं भी निभा रही हूँ।"

यह सिलसिला आगे भी चलता रहता, अगर यकायक उसके जीवन में फिर एक आकस्मिक मोड़ न आ जाता। यह भी शायद एक नाटक ही था।...एक आश्चर्यजनक नाटक! इसका पता भी मुझे कोमा से ही लगा।

कोई दस साल पहले संजय ने भागलपुर में एक अच्छी सी सरकारी नौकरी के लिए परीक्षा दी थी। उसका कोई जवाब नहीं आया, तो उसे वह भूल ही गया। सोचा, एक एप्लीकेशन ही तो थी, पता नहीं कहाँ इधर-उधर हो गई होगी। तब से समय की नदी में बहुत पानी बहा। संजय और कोमा कोई ढंग की नौकरी न मिलने पर काम-धाम की तलाश में हमारे शहर आए, तो फिर यहीं के हो गए। और फिर कोमा के टिनी-मिनी प्ले स्कूल ने तो उन्हें हमारी पूरी कॉलोनी का अपना, बहुत अपना बना दिया।

पर फिर अचानक एक पत्र...! पता नहीं कहाँ-कहाँ से घूमता-भटकता वह संजय के पास आया कि उसे भागलपुर में जाकर तुरंत वह सरकारी नौकरी ज्वॉइन करनी है। वहाँ पक्की नौकरी की सुरक्षा थी और वेतन भी अच्छा था। तो तय हो गया कि उन लोगों को जाना ही है। पर कोमा को अपने प्ले स्कूल को समेटने की कल्पना से ही दुःख हो रहा था और संजय को भी। इसलिए कि स्कूल चाहे कोमा चलाती थी, पर उसके प्रबंध का सारा जिम्मा संजय का था। ऑफिस के अलावा जितना भी समय मिलता, वह स्कूल के लिए खुशी-खुशी सारी भागदौड़ करता था।

पर अब संजय और कोमा दोनों के आगे विदा की घड़ी थी। उनके चेहरे पर खुशी के साथ-साथ एक हलकी उदासी भी थी। उनका सुंदर सपनों जैसा टिनी-मिनी प्ले स्कूल पीछे छूट रहा था और वे खिलखिलाते बच्चे भी।...वह स्कूल नहीं, मीठी खुशबूवाला एक पौधा ही तो था, जिसे इतने प्यार और परिश्रम से उन्होंने सींचा था।

आखिर चलते हुए कोमा ने अपनी सहायक अध्यापिका सोनाली को ही वह स्कूल सौंप दिया, ताकि उसके जाने के बाद भी 'टिनी-मिनी प्ले स्कूल' चलता रहे। और सच ही वह चल रहा है आज तलक।

जब कभी अपनी कॉलोनी के पश्चिमी छोर की ओर मेरे कदम बढ़ते हैं, तो एक बड़े से हरे-भरे पार्क के समीप वह सुंदर सा रंग-बिरंगा बोर्ड आँखों में कौंध उठता है, 'टिनी-मिनी प्ले स्कूल।' उस पर खिलखिलाकर हँसते वही दो खरगोश। और तभी संजय और कोमा के हँसते-मुसकराते चेहरे एकाएक आँखों के आगे आ जाते हैं।

मैं कल्पना करने लगती हूँ कि घर का सारा सामान ट्रक में रखवा लेने के बाद पीछे मुड़कर कोमा और संजय ने आखिरी बार अपने किराए के घर के आगे लगे बोर्ड 'टिनी-मिनी प्ले स्कूल' पर एक नजर डाली होगी, तो कैसी गहरी टीस और तृप्ति एक साथ उनके चेहरे पर उभर आई होगी!

मैं आज भी जब कभी उस गली से गुजरती हूँ और उस बोर्ड पर मेरी निगाह जाती है, तो उस अनोखी, सुंदर शिक्षिका के लिए मेरा मन प्यार और आशीर्वाद से भर उठता है।

सा
अ

५४५, सेक्टर-२९, फरीदाबाद (हरियाणा)
पिन-१२१००८
दूरभाष : ०९९१०८६२३८०

चलनी में पानी

● अवध बिहारीलाल श्रीवास्तव



कविता एवं आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय। कविता-संग्रह 'हल्दी के थापे', 'मंडी चले कबीर' तथा 'बस्ती के भीतर'; आलोचना साहित्य संवाद, केंद्र उद्भ्रांत।

बहू का बयान

जितना खिड़की से दिखता है
उतना ही सावन मेरा है।

निर्वसना नीम खड़ी बाहर
जब 'धारो-धार' नहाती है
यह देह न जाने कब कैसे
पत्ती-पत्ती बिछ जाती है।

मन से जितना छू लेती हूँ
बस उतना ही 'धन' मेरा है।

श्रृंगार किए गहने पहने
जिस दिन से घर में उतरी हूँ
पायल बजती ही रहती है
कमरों-कमरों में बिखरी हूँ।

कमरों से 'चौके' तक फैला
बस इतना आँगन मेरा है।

डगमग पैरों से बूटों को
हर रात खोलना मजबूरी
बिन बोले देह सौंप देना
मन से हो कितनी भी दूरी।

हैं जहाँ नहीं, 'नीले निशान'
बस उतना ही तन मेरा है।

खिड़की से जितना दिखता है
उतना ही सावन मेरा है।

मैके की याद

भाभी तेरी ननद दुलारी
भूली यहाँ चौकड़ी सारी

सास अभी से कहे निपूती
ननद कह रही कामचोर है

वे कहते हैं उठ, जा जल्दी
आँगन में हो गई भोर है

देवर माँगे भरे पराँठे
ससुर कहें पूड़ी तरकारी

याद बहुत आता है भाभी
रानी का पनघट पर रोना

चिड़ियों का हौसला बँधाना
चलनी में पानी का ढोना

माँ से मेरे दुःख मत कहना
सुनकर रोएगी बेचारी

बाबू से कहना मझली तो
उनके हाथों फूल-पान है

पायल बजती ही हरती है,
ऊपर-नीचे का मकान है

आँसू पी, भइया से कहना
राज कर रही बहिन तुम्हारी

लड़कियाँ

रोज पीठ में चुभन दृष्टि की
लड़की भीगे आते-आते

वह कोई दैनिक है उसकी पीठ
एक पन्ना है जिस पर

खोज रही कस्बाई आँखें
दुराचार की खबरें दिनभर

आँख चुराकर पढ़ लेते हैं
झूठी खबरें रिश्ते-नाते

रस्ते भर बबूल के वन हैं
काँटे क्या चुभती है छाया

सहती रहीं बेटियाँ कब से
कोई नहीं काटने आया

आँधी में उड़ रहे दुपट्टे
उलट रहे पानी में छाते

पहले मन में फिर हाथों में
उगने लगे हजारों खंजर

निकल रहीं लड़कियाँ घरों से
संकल्पों के कवच ओढ़कर

आग, क्रोध की और भड़कती
जितना पानी डाल बुझाते

रोज पीठ में...

एच-२/३७, कृष्णापुरम्
कानपुर-२०८००७ (उ.प्र.)

नई शिक्षा नीति २०२० : नए भारत की नींव

● वेद प्रकाश

भारतीय चिंतन समूची धरती को अपना परिवार मानते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना करता है, जिसकी प्राप्ति के लिए वह मनुष्यों को परस्पर मिलकर चलने, परस्पर मिलकर बात करने और उनके मन एक समान होकर ज्ञान को प्राप्त करें, उनमें आपसी सामंजस्य बना रहे, इसलिए 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' का मंत्र देता है और उसके फलित रूप में समस्त विश्व अथवा मानवता के सुख 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना करता है। भारतीय चिंतन मनुष्य को उसकी आकृति, प्रकृति, गुण-धर्म, जाति , कुल, गोत्र आदि के रूप में खंड-खंड नहीं मानता, अपितु मूल्य और संवेदनाओं से समन्वित एक उत्कृष्ट कृति के रूप में व्याख्यायित करता है, जिसके अंदर अनंत संभावनाएँ निहित हैं। उन संभावनाओं को समझकर, उन संभावनाओं के सहारे वह ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है और स्वयं ईश्वर अथवा श्रेष्ठ बन सकता है। समस्त चराचर सृष्टि में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है, जो चिंतन की अद्‌भुत क्षमता से समन्वित है, वह एक-दूसरे के कल्याण की कामना और रचना कर सकता है। आज समूचे विश्व में जिस प्रकार का वातावरण है, मानवता हाशिए पर है। व्यक्ति व्यक्ति का शत्रु बन रहा है। निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रकृति एवं पर्यावरण का दोहन और उससे उत्पन्न चुनौतियाँ सबके सामने हैं। अनेक प्रकार की महामारियाँ, प्राकृतिक आपदाएँ मानवता के लिए काल बन रही हैं। परमाणु शक्ति और भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की होड़ लगी हुई है। विस्तारवाद की इच्छा में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्रों का उचित-अनुचित का विवेक खोता जा रहा है। आतंकवाद और अलगाव समूचे विश्व के लिए चुनौती बनता जा रहा है। ऐसे में भारतीय ज्ञान-परंपरा और इस परंपरा में दीक्षित नागरिक समूचे विश्व का कल्याण कर सकता है। क्योंकि उसकी निर्मिति के मूल में परहित की भावना और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना है।

शिक्षा नीति किसी भी राष्ट्र की मूलभूत आवश्यकता होती है। जिसमें अतीत का विश्लेषण, वर्तमान की आवश्यकताएँ, आशाएँ तथा भविष्य की आकांक्षाएँ निहित होती हैं। गांधीजी ने कहा था, "सच्ची शिक्षा वह है, जो बालकों के आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक विकास हेतु प्रेरित करती है।" उसे संपूर्ण बनाने का प्रयास करती है। इसी प्रकार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी कहा था, "शिक्षा केवल आजीविका प्राप्त करने का साधन नहीं है, न ही यह नागरिकों को शिक्षित करने का अभिकरण है, न ही यह



सुपरिचित लेखक। अब तक चार पुस्तकें तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित। मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में विशिष्ट अभिरुचि। संप्रति हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर।

प्रारंभिक विचार है। यह जीवन में आत्मा का आरंभ है, सत्य तथा कर्तव्यपालन हेतु मानवीय आत्मा का प्रशिक्षण है। यह दूसरा जन्म है, जिसे 'दिव्यात्म जन्म' कहा जा सकता है।" आज यह भी विचार करने की आवश्यकता है कि क्या स्वतंत्रता के बाद बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति इन विचारों अथवा मूल्यों को अपने अंदर समाहित कर पाई? क्या नीति-निर्धारकों ने इस दिशा में ईमानदारी से प्रयास किया? क्या भारतवर्ष के नागरिक मैकाले की भारतीयता विरोधी स्वार्थपूर्ण सोचवाली शिक्षा-पद्धति से निकल पाए? क्या उन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में भारतीय चिंतन, भारतीय मूल्य बोध की संकल्पना को समाहित करने का प्रयास किया गया? भारतवर्ष में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की दृष्टि से विडंबना यह दिखाई देती है कि वर्ष १९६८ में पहली और १९८६ में दूसरी शिक्षा नीति के बाद सरकारों के द्वारा शिक्षा का क्षेत्र उपेक्षित छोड़ दिया गया। भारतीय ज्ञान और भारत बोध की संकल्पना कहीं बहुत पीछे ही छूट गई। यद्यपि १९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा के आधुनिकीकरण पर केंद्रित कही जाती है, जिसमें देश में शिक्षा के विकास के लिए व्यापक ढाँचा, शिक्षा के आधुनिकीकरण और बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराने पर जोर देने की बात कही गई थी। किंतु १९९० के दौर में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं में आमूल-चूल परिवर्तन किए, ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीकी में तेजी से बदलाव आया, जिन्हें पूरा करने में यह शिक्षा नीति पूरी तरह से सक्षम नहीं रही। निरक्षरता की दर निरंतर बढ़ती रही। ग्रामीण क्षेत्र उपेक्षित ही रहे। बढ़ती जनसंख्या के कारण विद्यालयों-महाविद्यालयों तक पहुँच से जनसंख्या का बड़ा हिस्सा वंचित रहा। विद्यालय तथा महाविद्यालयों की ढाँचागत एवं अध्ययन-अध्यापन से जुड़ी हुई तमाम परेशानियाँ अभी तक भी देखी जा सकती हैं। वर्ष २०१४ में बहुमत में आई मोदी सरकार के समक्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक बड़ी चुनौती एवं आवश्यकता के रूप में सामने थी। जिसे देखते हुए जून २०१७ में पूर्व

इसरो प्रमुख डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति ने मई २०१९ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने एक व्यापक, दूरदर्शी और लोकतांत्रिक नीति अपनाते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति से संबंधित सभी से सुझाव लेने का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। देश के कोने-कोने से सभी वर्गों के लोगों की राय ली गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की संकल्पना का विस्तार हुआ। सामान्य व्यक्ति को भी यह महसूस हुआ कि वह महत्त्वपूर्ण है। यह शिक्षा नीति उसके विचारों, उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही बन रही है। यह प्रयास सरकार के 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' की भावना पर भी आधारित दिखाई देता है। भारतवर्ष के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि शिक्षा नीति बनाने के लिए देश में व्यापक जन-संवाद हुआ। देश की लगभग २.५ लाख ग्राम पंचायतें, ६६०० ब्लॉक और ६५० जिलों से विचार लिये गए। इसमें शिक्षाविदों, अध्यापकों, अभिभावकों, जनप्रतिनिधियों, समाज-जीवन के सामान्य लोगों एवं व्यापक स्तर पर छात्रों से भी सुझाव लेकर उनका मंथन किया गया। जन आकांक्षाओं के अनुरूप एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों के अनुरूप अब केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा नई शिक्षा नीति २०२० को मंजूरी दी गई है।

इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा, "यह शिक्षा के क्षेत्र में बहुप्रतीक्षित सुधार है, जिससे लाखों लोगों का जीवन बदल जाएगा। एक भारत-श्रेष्ठ भारत पहल के तहत इसमें संस्कृत समेत भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाएगा।" नई शिक्षा नीति को प्रस्तुत करते हुए शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने कहा, "देश के प्रधानमंत्री ने एक नए भारत के निर्माण की बात की है···उस नए भारत के निर्माण में यह नई शिक्षा नीति २०२० मील का पत्थर साबित होगी···यह ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, नवाचार, प्रौद्योगिकी से युक्त, संस्कारक्षम और मूल्यपरक, हर क्षेत्र में, हर परिस्थिति का मुकाबला करनेवाली होगी। पूरी दुनिया के लिए भारत में ज्ञान की महाशक्ति के रूप में यह शिक्षा नीति उभर करके आएगी।"

वास्तव में नई शिक्षा नीति का आना और उसकी व्यापक स्वीकृति शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक, साहसिक एवं दूरगामी दृष्टिकोण वाला कार्य है। यहाँ नई शिक्षा नीति के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करना सर्वथा प्रासंगिक होगा। लगभग १०७ पृष्ठों वाली नई शिक्षा नीति की पूरी संकल्पना मूलत: चार भागों में विभक्त है। 'परिचय' शीर्षक के अंतर्गत शिक्षा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए कहा गया है, "शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है।···अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतम गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।" यहाँ सरकार द्वारा वर्ष २०१५ में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा २०३० के लक्ष्य में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार वर्ष २०३० तक 'सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने' का लक्ष्य भी स्पष्ट किया गया है। परिचय में ही इस बात की व्यापक चर्चा है कि ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है।

बिग डेटा, मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसे क्षेत्रों में हो रहे बहुत से वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के चलते नई शिक्षा-व्यवस्था में प्रयास किए गए हैं। जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण और घटते प्राकृतिक संसाधनों की वजह से हमें ऊर्जा, भोजन, पानी, स्वच्छता आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए रास्ते खोजने होंगे और इस कारण भी जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, कृषि, जलवायु विज्ञान और समाज विज्ञान के क्षेत्रों में नए कुशल कामगारों की जरूरत होगी, इसलिए कौशल विकास पर नई शिक्षा-व्यवस्था बल देती है। शिक्षा-व्यवस्था के माध्यम से युवा वर्ग की नए भारत के निर्माण में भागीदारी भी सुनिश्चित करती है। नई शिक्षा नीति प्रतिस्पर्धा में विकसित हुए इंजीनियर, डॉक्टर, वकील एवं प्रबंधन आदि क्षेत्रों के व्यवसायों से भिन्न अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवसायों के लिए भी मार्ग प्रशस्त करती है। भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर अग्रसर है, इसलिए ऐसे दौर में नई शिक्षा नीति नई आवश्यकताओं, चुनौतियों और आकांक्षाओं के अनुरूप बनी है।

शिक्षा विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करें, इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अतिरिक्त बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और फिटनेस, भाषाओं, साहित्य, संस्कृति और मूल्यों का समावेश भी किया गया है। शिक्षा से चरित्र-निर्माण होना चाहिए, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित होनी चाहिए, साथ ही रोजगार के लिए सक्षम बनना चाहिए। इस दृष्टि से भी नई शिक्षा-व्यवस्था में प्रावधान किए गए हैं। भारतीय ज्ञान, संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्त्व की इस समृद्ध विरासत को आनेवाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेजकर संरक्षित रखने की आवश्यकता है, बल्कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य होने चाहिए, उसे समृद्ध किया जाना चाहिए और उसके नए-नए उपयोग भी सोचे जाने चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण अथवा ऐसी भावना नई शिक्षा-व्यवस्था में सर्वत्र परिलक्षित होती है। बालक आत्मज्ञान के सहारे स्वयं को जाने; भारतवर्ष की श्रेष्ठ परंपराओं को, ज्ञान को जाने और अपनी जड़ों से जुड़ा रहकर ग्लोबल सिटीजन बने; यह भावना समूची नई शिक्षा-व्यवस्था में दिखाई देती है। नई शिक्षा-व्यवस्था परंपरा और आधुनिकता के महत्त्वपूर्ण समन्वय पर आधारित भावी भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप है।

पहला भाग 'स्कूल शिक्षा' है। यह नीति वर्तमान की १०+२ वाली स्कूली व्यवस्था को ३ से १८ वर्ष के सभी बच्चों के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्रीय आधार पर ५+३+३+४ की एक नई व्यवस्था में पुनर्गठित करने की बात करती है। विद्यार्थियों के विकास की अलग-अलग अवस्थाओं के अनुसार उनकी रुचियों और विकास की जरूरतों पर आधारित यह पुनर्गठन महत्त्वपूर्ण है, जिसमें बच्चे की प्रवेश आयु ३ वर्ष है। इसके पश्चात् पहले ५ वर्ष दो भागों में विभाजित है। अर्थात् ३ वर्ष आँगनवाड़ी, बालवाड़ी अथवा प्री-स्कूल। जहाँ पर बच्चे की प्रारंभिक

नई शिक्षा नीति २०२० : नए भारत की नींव

वेद प्रकाश

भारतीय चिंतन समूची धरती को अपना परिवार मानते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना करता है, जिसकी प्राप्ति के लिए वह मनुष्यों को परस्पर मिलकर चलने, परस्पर मिलकर बात करने और उनके मन एक समान होकर ज्ञान को प्राप्त करें, उनमें आपसी सामंजस्य बना रहे, इसलिए 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' का मंत्र देता है और उसके फलित रूप में समस्त विश्व अथवा मानवता के सुख 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना करता है। भारतीय चिंतन मनुष्य को उसकी आकृति, प्रकृति, गुण-धर्म, जाति , कुल, गोत्र आदि के रूप में खंड-खंड नहीं मानता, अपितु मूल्य और संवेदनाओं से समन्वित एक उत्कृष्ट कृति के रूप में व्याख्यायित करता है, जिसके अंदर अनंत संभावनाएँ निहित हैं। उन संभावनाओं को समझकर, उन संभावनाओं के सहारे वह ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है और स्वयं ईश्वर अथवा श्रेष्ठ बन सकता है। समस्त चराचर सृष्टि में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है, जो चिंतन की अद्‌भुत क्षमता से समन्वित है, वह एक-दूसरे के कल्याण की कामना और रचना कर सकता है। आज समूचे विश्व में जिस प्रकार का वातावरण है, मानवता हाशिए पर है। व्यक्ति व्यक्ति का शत्रु बन रहा है। निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रकृति एवं पर्यावरण का दोहन और उससे उत्पन्न चुनौतियाँ सबके सामने हैं। अनेक प्रकार की महामारियाँ, प्राकृतिक आपदाएँ मानवता के लिए काल बन रही हैं। परमाणु शक्ति और भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की होड़ लगी हुई है। विस्तारवाद की इच्छा में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्रों का उचित-अनुचित का विवेक खोता जा रहा है। आतंकवाद और अलगाव समूचे विश्व के लिए चुनौती बनता जा रहा है। ऐसे में भारतीय ज्ञान-परंपरा और इस परंपरा में दीक्षित नागरिक समूचे विश्व का कल्याण कर सकता है। क्योंकि उसकी निर्मिति के मूल में परहित की भावना और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना है।

शिक्षा नीति किसी भी राष्ट्र की मूलभूत आवश्यकता होती है। जिसमें अतीत का विश्लेषण, वर्तमान की आवश्यकताएँ, आशाएँ तथा भविष्य की आकांक्षाएँ निहित होती हैं। गांधीजी ने कहा था, "सच्ची शिक्षा वह है, जो बालकों के आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक विकास हेतु प्रेरित करती है।" उसे संपूर्ण बनाने का प्रयास करती है। इसी प्रकार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी कहा था, "शिक्षा केवल आजीविका प्राप्त करने का साधन नहीं है, न ही यह नागरिकों को शिक्षित करने का अभिकरण है, न ही यह



सुपरिचित लेखक। अब तक चार पुस्तकें तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित। मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में विशिष्ट अभिरुचि। संप्रति हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर।

प्रारंभिक विचार है। यह जीवन में आत्मा का आरंभ है, सत्य तथा कर्तव्यपालन हेतु मानवीय आत्मा का प्रशिक्षण है। यह दूसरा जन्म है, जिसे 'दिव्यात्म जन्म' कहा जा सकता है।" आज यह भी विचार करने की आवश्यकता है कि क्या स्वतंत्रता के बाद बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति इन विचारों अथवा मूल्यों को अपने अंदर समाहित कर पाई? क्या नीति-निर्धारकों ने इस दिशा में ईमानदारी से प्रयास किया? क्या भारतवर्ष के नागरिक मैकाले की भारतीयता विरोधी स्वार्थपूर्ण सोचवाली शिक्षा-पद्धति से निकल पाए? क्या उन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में भारतीय चिंतन, भारतीय मूल्य बोध की संकल्पना को समाहित करने का प्रयास किया गया? भारतवर्ष में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की दृष्टि से विडंबना यह दिखाई देती है कि वर्ष १९६८ में पहली और १९८६ में दूसरी शिक्षा नीति के बाद सरकारों के द्वारा शिक्षा का क्षेत्र उपेक्षित छोड़ दिया गया। भारतीय ज्ञान और भारत बोध की संकल्पना कहीं बहुत पीछे ही छूट गई। यद्यपि १९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा के आधुनिकीकरण पर केंद्रित कही जाती है, जिसमें देश में शिक्षा के विकास के लिए व्यापक ढाँचा, शिक्षा के आधुनिकीकरण और बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराने पर जोर देने की बात कही गई थी। किंतु १९९० के दौर में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं में आमूल-चूल परिवर्तन किए, ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीकी में तेजी से बदलाव आया, जिन्हें पूरा करने में यह शिक्षा नीति पूरी तरह से सक्षम नहीं रही। निरक्षरता की दर निरंतर बढ़ती रही। ग्रामीण क्षेत्र उपेक्षित ही रहे। बढ़ती जनसंख्या के कारण विद्यालयों-महाविद्यालयों तक पहुँच से जनसंख्या का बड़ा हिस्सा वंचित रहा। विद्यालय तथा महाविद्यालयों की ढाँचागत एवं अध्ययन-अध्यापन से जुड़ी हुई तमाम परेशानियाँ अभी तक भी देखी जा सकती हैं। वर्ष २०१४ में बहुमत में आई मोदी सरकार के समक्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक बड़ी चुनौती एवं आवश्यकता के रूप में सामने थी। जिसे देखते हुए जून २०१७ में पूर्व

इसरो प्रमुख डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति ने मई २०१९ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने एक व्यापक, दूरदर्शी और लोकतांत्रिक नीति अपनाते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति से संबंधित सभी से सुझाव लेने का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। देश के कोने-कोने से सभी वर्गों के लोगों की राय ली गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की संकल्पना का विस्तार हुआ। सामान्य व्यक्ति को भी यह महसूस हुआ कि वह महत्त्वपूर्ण है। यह शिक्षा नीति उसके विचारों, उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही बन रही है। यह प्रयास सरकार के 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्‍वास' की भावना पर भी आधारित दिखाई देता है। भारतवर्ष के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि शिक्षा नीति बनाने के लिए देश में व्यापक जन-संवाद हुआ। देश की लगभग २.५ लाख ग्राम पंचायतें, ६६०० ब्लॉक और ६५० जिलों से विचार लिये गए। इसमें शिक्षाविदों, अध्यापकों, अभिभावकों, जनप्रतिनिधियों, समाज-जीवन के सामान्य लोगों एवं व्यापक स्तर पर छात्रों से भी सुझाव लेकर उनका मंथन किया गया। जन आकांक्षाओं के अनुरूप एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों के अनुरूप अब केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा नई शिक्षा नीति २०२० को मंजूरी दी गई है।

इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा, "यह शिक्षा के क्षेत्र में बहुप्रतीक्षित सुधार है, जिससे लाखों लोगों का जीवन बदल जाएगा। एक भारत-श्रेष्ठ भारत पहल के तहत इसमें संस्कृत समेत भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाएगा।" नई शिक्षा नीति को प्रस्तुत करते हुए शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने कहा, "देश के प्रधानमंत्री ने एक नए भारत के निर्माण की बात की है''उस नए भारत के निर्माण में यह नई शिक्षा नीति २०२० मील का पत्थर साबित होगी''यह ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, नवाचार, प्रौद्योगिकी से युक्त, संस्कारक्षम और मूल्यपरक, हर क्षेत्र में, हर परिस्थिति का मुकाबला करनेवाली होगी। पूरी दुनिया के लिए भारत में ज्ञान की महाशक्ति के रूप में यह शिक्षा नीति उभर करके आएगी।"

वास्तव में नई शिक्षा नीति का आना और उसकी व्यापक स्वीकृति शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक, साहसिक एवं दूरगामी दृष्टिकोण वाला कार्य है। यहाँ नई शिक्षा नीति के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करना सर्वथा प्रासंगिक होगा। लगभग १०७ पृष्ठों वाली नई शिक्षा नीति की पूरी संकल्पना मूलत: चार भागों में विभक्त है। 'परिचय' शीर्षक के अंतर्गत शिक्षा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए कहा गया है, "शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है।''अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतम गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।" यहाँ सरकार द्वारा वर्ष २०१५ में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा २०३० के लक्ष्य में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार वर्ष २०३० तक 'सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने' का लक्ष्य भी स्पष्ट किया गया है। परिचय में ही इस बात की व्यापक चर्चा है कि ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है।

बिग डेटा, मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसे क्षेत्रों में हो रहे बहुत से वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के चलते नई शिक्षा-व्यवस्था में प्रयास किए गए हैं। जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण और घटते प्राकृतिक संसाधनों की वजह से हमें ऊर्जा, भोजन, पानी, स्वच्छता आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए रास्ते खोजने होंगे और इस कारण भी जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, कृषि, जलवायु विज्ञान और समाज विज्ञान के क्षेत्रों में नए कुशल कामगारों की जरूरत होगी, इसलिए कौशल विकास पर नई शिक्षा-व्यवस्था बल देती है। शिक्षा-व्यवस्था के माध्यम से युवा वर्ग की नए भारत के निर्माण में भागीदारी भी सुनिश्चित करती है। नई शिक्षा नीति प्रतिस्पर्धा में विकसित हुए इंजीनियर, डॉक्टर, वकील एवं प्रबंधन आदि क्षेत्रों के व्यवसायों से भिन्न अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवसायों के लिए भी मार्ग प्रशस्त करती है। भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर अग्रसर है, इसलिए ऐसे दौर में नई शिक्षा नीति नई आवश्यकताओं, चुनौतियों और आकांक्षाओं के अनुरूप बनी है।

शिक्षा विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करें, इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अतिरिक्त बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और फिटनेस, भाषाओं, साहित्य, संस्कृति और मूल्यों का समावेश भी किया गया है। शिक्षा से चरित्र-निर्माण होना चाहिए, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित होनी चाहिए, साथ ही रोजगार के लिए सक्षम बनना चाहिए। इस दृष्टि से भी नई शिक्षा-व्यवस्था में प्रावधान किए गए हैं। भारतीय ज्ञान, संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्त्व की इस समृद्ध विरासत को आनेवाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेजकर संरक्षित रखने की आवश्यकता है, बल्कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था द्वारा उस पर शोध कार्य होने चाहिए, उसे समृद्ध किया जाना चाहिए और उसके नए-नए उपयोग भी सोचे जाने चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण अथवा ऐसी भावना नई शिक्षा-व्यवस्था में सर्वत्र परिलक्षित होती है। बालक आत्मज्ञान के सहारे स्वयं को जाने; भारतवर्ष की श्रेष्ठ परंपराओं को, ज्ञान को जाने और अपनी जड़ों से जुड़ा रहकर ग्लोबल सिटीजन बने; यह भावना समूची नई शिक्षा-व्यवस्था में दिखाई देती है। नई शिक्षा-व्यवस्था परंपरा और आधुनिकता के महत्त्वपूर्ण समन्वय पर आधारित भावी भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप है।

पहला भाग 'स्कूल शिक्षा' है। यह नीति वर्तमान की १०+२ वाली स्कूली व्यवस्था को ३ से १८ वर्ष के सभी बच्चों के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्रीय आधार पर ५+३+३+४ की एक नई व्यवस्था में पुनर्गठित करने की बात करती है। विद्यार्थियों के विकास की अलग-अलग अवस्थाओं के अनुसार उनकी रुचियों और विकास की जरूरतों पर आधारित यह पुनर्गठन महत्त्वपूर्ण है, जिसमें बच्चे की प्रवेश आयु ३ वर्ष है। इसके पश्चात् पहले ५ वर्ष दो भागों में विभाजित है। अर्थात् ३ वर्ष आँगनवाड़ी, बालवाड़ी अथवा प्री-स्कूल। जहाँ पर बच्चे की प्रारंभिक

बाल्यावस्था देखभाल पर केंद्रित रहेगी, जिसमें बच्चे का खेल, स्वास्थ्य एवं पोषण प्रमुख हैं। अगले २ वर्ष कक्षा एक और दो, अर्थात् फाउंडेशन स्टेज के रहेंगे। जहाँ बच्चा ऐक्टिविटी और खेल पर आधारित क्रियाओं से ज्ञान अर्जित करेगा। इस ५ वर्ष के बाद अगले ३ वर्ष प्रिपेरेटरी स्टेज के रूप में कक्षा ३, ४ व ५ के रहेंगे। तीसरी अवस्था मिडिल स्टेज होगी, जहाँ ३ वर्ष का समय कक्षा ६, ७ और ८ के लिए निर्धारित है। जिसमें बच्चा विज्ञान, गणित, कला, सोशल साइंस और मानविकी में अनुभवजन्य शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ कक्षा ६ से ही बच्चा किसी कौशल अथवा विशेष रुचि के विषय को चुनकर भी आगे बढ़ सकता है।

चौथी स्टेज सेकेंडरी स्टेज होगी, जिसमें ४ वर्ष का समय कक्षा ९, १०, ११ व १२ का रहेगा। जहाँ बच्चा बहु-विषयक अध्ययन, व्यापक सोच, लचीलेपन और अपनी रुचि के विषय में शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ स्वयं करके सीखना और प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाएगा। कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से छात्रों को सशक्त बनाने पर बल दिया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में जो संभव है, उसके अनुसार एक सेमेस्टर या अन्य प्रणाली की ओर बढ़ने पर भी बच्चा विचार कर सकता है। यहाँ प्रत्येक स्टेज पर शिक्षा नीति का समग्र केंद्र बिंदु रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक अनुभव और ज्ञान की ओर ले जाना है। मूल्यांकन की दृष्टि से बच्चा स्वयं, उसके सहपाठी एवं शिक्षक मूल्यांकन करेंगे। यहाँ बच्चे को चरित्र-निर्माण और नई आवश्यकताओं के अनुसार कौशल से सुसज्जित करना भी ध्येय है। बच्चा कक्षा ६ से ही अपने कौशल के अनुसार अथवा अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनकर आगे बढ़ सकता है। यहाँ बड़ा बल इस बात पर भी है कि कम-से-कम कक्षा ५ तक, कक्षा ८ तक और उससे आगे तक भी शिक्षा का माध्यम घर की भाषा यानी मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा होंगी।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है।

अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी और सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी स्कूल इसका पालन करेंगे। नई शिक्षा नीति में महत्त्वपूर्ण यह भी है कि स्कूली व उच्च शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ स्थापित की जाएँगी। विभिन्न संस्थानों की अधिकतम फीस तय करने के लिए पारदर्शी व्यवस्था विकसित की जाएगी, ताकि निजी संस्थान अपनी मनमानी न कर सकें। स्कूल शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एन.सी.एफ.एस.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा-नीति २०२० के सिद्धांतों, अग्रणी पाठ्यचर्या आवश्यकताओं के आधार पर राज्य सरकारों, मंत्रालयों, केंद्र सरकार के संबंधित विभागों और अन्य विशेषज्ञ निकायों सहित सभी हित धारकों के साथ परामर्श करके तैयार किया जाएगा और इसे सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाएगा। ५ से १० वर्ष में इस पाठ्यक्रम की समीक्षा एवं अद्यतनीकरण भी किया जाएगा। आज राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों को देखते हुए परंपरागत ज्ञान एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजाइन थिंकिंग, हॉलिस्टिक हेल्थ, ऑर्गेनिक लिविंग, पर्यावरण शिक्षा, वैश्विक नागरिकता शिक्षा तथा डिजिटल शिक्षा जैसे विविध आयामों से छात्रों का परिचय अनिवार्य है, इसलिए छात्रों के फाउंडेशन या बुनियादी स्तर से ही इन सब की शिक्षा पर जोर दिया गया है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त संख्या ११० में कहा गया है—आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू आस्माँ``सपित्वं पितरो न आसन्। अर्थात् हे मनुष्यो! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश करता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने व पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त (शिक्षक) और दूसरा पड़नेवाला है (विद्यार्थी), उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस काम के बिना कभी विद्या की उन्नति होना संभव नहीं है। पिछले लंबे समय से यह देखा जा सकता है कि शिक्षक का सम्मान, उसकी गरिमा हाशिए पर पहुँच रही है। सरकारी व्यवस्थाओं में उसे टीचर के रूप में देखा गया है। विद्यार्थी भी स्टूडेंट भाव की ओर ही अधिक बढ़ा है। नई शिक्षा नीति में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के सम्मान की भी संकल्पना है, क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट ज्ञान का निष्पादन संभव नहीं है। शिक्षक ही बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं, राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करते हैं।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है। स्कूली शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन की भी संकल्पना है। विश्व के ज्ञान के साथ-साथ भारत का ज्ञान, भारतीय भाषाओं, संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा से परिचय छात्रों के लिए अनिवार्य किया गया है, जिससे बच्चा भारतीय चैतन्य के प्रकाश में अपनी चेतना का विकास करे और आत्मज्ञान की ओर उन्मुख हो।

दूसरा भाग 'उच्चतर शिक्षा' है। नई शिक्षा नीति उच्चतर शिक्षा में भी व्यापक बदलाव के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की संकल्पना करती है, जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा-व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण स्थापित हो सके। नई शिक्षा-व्यवस्था में वर्ष २०४० तक सभी उच्चतर शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य अपने आप को बहु-विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा। वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता, न्यायसंगतता और समावेश के लिए उचित संख्या में उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित और विकसित किए जाएँगे।

वर्ष २०३० तक प्रत्येक जिले में या उसके समीप कम-से-कम एक बड़ा बहु-विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान होगा। इसका उद्देश्य सकल नामांकन अनुपात को वर्ष २०१८ के २६.३ फीसद से बढ़ाकर वर्ष २०३५ तक ५० फीसद करना होगा। बड़ी संख्या में उत्कृष्ट सार्वजनिक संस्थानों के विकास के साथ-साथ निजी संस्थानों का भी विकास होगा। संस्थानों को अपने कार्यक्रमों की सीटें, पहुँच और सकल नामांकन अनुपात बढ़ाने एवं जीवनपर्यंत सीखने के अवसरों को मुहैया कराने हेतु दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन कोर्स को भी संचालित करने का अवसर होगा। उच्चतर शिक्षा-व्यवस्था में विभिन्न विषयों के ज्ञान के लिए अधिकाधिक अवसर देने की संकल्पना है।

डिग्री कार्यक्रमों की अवधि और संरचना में बदलाव किए गए हैं। स्नातक उपाधि की अवधि ४ वर्ष की होगी, जिसमें आवश्यकतानुसार विद्यार्थी को कोर्स छोड़ने, बदलने, पुनः वापसी और विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होगी। स्नातक उपाधि में ०१ वर्ष पूरा करने पर सर्टिफिकेट, ०२ वर्ष पूरा करने पर डिप्लोमा, ०३ वर्ष पूरा करने पर डिग्री और ०४ वर्षीय स्नातक कार्यक्रम पूरा करने पर शोध सहित डिग्री देने की संकल्पना है। स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में ऐसे विद्यार्थियों के लिए, जिन्होंने ०३ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम पूरा किया हो, उन्हें ०२ वर्षीय कार्यक्रम प्रदान किए जा सकते हैं। जिसमें द्वितीय वर्ष पूरी तरह से शोध पर केंद्रित होगा। दूसरा, वे विद्यार्थी जिन्होंने ०४ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम शोध के साथ पूरा किया है, उनके लिए स्नातकोत्तर कार्यक्रम ०१ वर्ष का होगा। पी-एच.डी. के लिए या तो स्नातकोत्तर डिग्री या ०४ वर्षों के शोध के साथ स्नातक डिग्री अनिवार्य होगी। एम.फिल. कार्यक्रम को बंद कर दिया जाएगा। उच्चतर शिक्षण संस्थान स्टार्टअप, इन्क्यूबेशन सेंटर, प्रौद्योगिकी विकास केंद्र, अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्रों के केंद्र, अधिकतम उद्योग-अकादमिक जुड़ाव, मानविकी और सामाजिक विज्ञान अनुसंधान सहित अंतर विषय अनुसंधान की स्थापना करके अनुसंधान और नवाचार पर फोकस करेंगे।

नई-नई चुनौतियों को देखते हुए शोध और अनुसंधान के कार्यों को भी बढ़ावा दिया जाएगा। सीखने के लिए छात्रों को सर्वोत्तम वातावरण प्रदान किया जाएगा, जिसमें उनका सहयोग भी अपेक्षित होगा। उच्चतर शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण की दिशा में भी व्यापक प्रयास किए जाएँगे, जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों के तहत छात्र एक-दूसरे देशों में शिक्षा ग्रहण करने आ-जा सकेंगे। उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए वित्तीय सहायता के प्रावधान भी किए जाएँगे। शिक्षकों की गुणवत्ता के लिए, व्यावसायिक विकास के प्रशिक्षण के लिए स्वयं और दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफॉर्म उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। नई शिक्षा नीति की पूरी संरचना में 'व्हाट टू थिंक' पर फोकस के स्थान पर 'हाउ टू थिंक' को महत्त्व दिया गया है।

तीसरा भाग 'अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे' हैं। इसके अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा, जिसमें कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, विधिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा व तकनीकी शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना, इस विषय पर भी गंभीरता से विचार करते हुए पुस्तकों की ऑनलाइन उपलब्धता, समुदायों एवं शिक्षण संस्थानों में जीवंत पुस्तकालयों को बनाने एवं उनका सफल संचालन सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाएँगे। भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्धन पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। जिसके अंतर्गत भारतीय संस्कृति के समृद्ध भंडार, भारतीय भाषाओं और भारतीय कला के संरक्षण-संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार के प्रयास किए जाएँगे। लुप्त होती जा रही भारतीय भाषाओं पर विशेष रूप से शोध एवं संरक्षण किया जाएगा। भारतीय भाषाओं के शिक्षण-अधिगम एवं प्रचार-प्रसार के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे।

छात्रों द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण व अनुभव विस्तार को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' के तहत देश के १०० पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी। श्रम के महत्त्व की स्थापना और उसके अनुभव के लिए किसानों एवं श्रमिकों के काम को भी पाठ्यक्रम के साथ जोड़ा जाएगा। इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन की स्थापना की जाएगी, जिससे महत्त्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद सब तक पहुँच सके। संस्कृत भाषा के वृहद एवं महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करते हुए संस्कृत का प्रयोग एवं पाठ्यक्रमों में बढ़ावा दिया जाएगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने १५ अगस्त, २०२० के राष्ट्रीय संबोधन में भारतवर्ष के लगभग छह लाख गाँवों को डिजिटल कनेक्टीविटी से जोड़ने का १००० दिन का लक्ष्य तय किया है। इससे डिजिटल इंडिया अभियान को पूरे देश में सशक्त समाज एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में मदद मिलेगी। नई शिक्षा-व्यवस्था में भी ऐसे प्रयासों को बढ़ाया जाएगा। संकट की स्थिति में ऑनलाइन शिक्षा-व्यवस्था के लिए उपयुक्त इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया जाएगा एवं उसके प्रशिक्षण की भी सुविधा की जाएगी।

चौथा भाग 'क्रियान्वयन एवं रणनीति' से संबंधित है, जिसमें नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय, राज्य, संस्था और व्यक्तिगत स्तर पर केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) को सशक्त किया जाएगा। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मंत्रालय द्वारा रोड मैप भी तैयार किया गया है, जिसमें नीति के सभी प्रावधानों को लागू करने की एक समय-सीमा तय की गई है। करीब ७५ फीसद प्रावधानों को वर्ष २०२४ तक लागू करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार बचे हुए प्रावधान भी वर्ष २०३५ तक चरणबद्ध तरीके से लागू किए जाएँगे। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए उच्चस्तरीय कमेटी प्रतिवर्ष समीक्षा करेगी। नई शिक्षा नीति महत्त्वपूर्ण ढंग से योजना के साथ सामने आई है। आज देश और दुनिया में सीखने के साथ-साथ सतत सीखते रहने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति इस बात को भी ध्यान में रखकर आगे बढ़ी है। आज भारत नए रूप में स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, मेड इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास, मेक फॉर वर्ल्ड एवं आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के साथ एक बड़ी महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। नई शिक्षा नीति २०२० इस नए भारत, सशक्त भारत, समृद्ध भारत एवं आत्मनिर्भर भारत के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

सा अ

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : ९९८१८ १९४४३८

बाल्यावस्था देखभाल पर केंद्रित रहेगी, जिसमें बच्चे का खेल, स्वास्थ्य एवं पोषण प्रमुख हैं। अगले २ वर्ष कक्षा एक और दो, अर्थात् फाउंडेशन स्टेज के रहेंगे। जहाँ बच्चा ऐक्टिविटी और खेल पर आधारित क्रियाओं से ज्ञान अर्जित करेगा। इस ५ वर्ष के बाद अगले ३ वर्ष प्रिपेरेटरी स्टेज के रूप में कक्षा ३, ४ व ५ के रहेंगे। तीसरी अवस्था मिडिल स्टेज होगी, जहाँ ३ वर्ष का समय कक्षा ६, ७ और ८ के लिए निर्धारित है। जिसमें बच्चा विज्ञान, गणित, कला, सोशल साइंस और मानविकी में अनुभवजन्य शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ कक्षा ६ से ही बच्चा किसी कौशल अथवा विशेष रुचि के विषय को चुनकर भी आगे बढ़ सकता है।

चौथी स्टेज सेकेंडरी स्टेज होगी, जिसमें ४ वर्ष का समय कक्षा ९, १०, ११ व १२ का रहेगा। जहाँ बच्चा बहु-विषयक अध्ययन, व्यापक सोच, लचीलेपन और अपनी रुचि के विषय में शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ स्वयं करके सीखना और प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाएगा। कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से छात्रों को सशक्त बनाने पर बल दिया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में जो संभव है, उसके अनुसार एक सेमेस्टर या अन्य प्रणाली की ओर बढ़ने पर भी बच्चा विचार कर सकता है। यहाँ प्रत्येक स्टेज पर शिक्षा नीति का समग्र केंद्र बिंदु रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक अनुभव और ज्ञान की ओर ले जाना है। मूल्यांकन की दृष्टि से बच्चा स्वयं, उसके सहपाठी एवं शिक्षक मूल्यांकन करेंगे। यहाँ बच्चे को चरित्र-निर्माण और नई आवश्यकताओं के अनुसार कौशल से सुसज्जित करना भी ध्येय है। बच्चा कक्षा ६ से ही अपने कौशल के अनुसार अथवा अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनकर आगे बढ़ सकता है। यहाँ बड़ा बल इस बात पर भी है कि कम-से-कम कक्षा ५ तक, कक्षा ८ तक और उससे आगे तक भी शिक्षा का माध्यम घर की भाषा यानी मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा होंगी।

अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी और सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी स्कूल इसका पालन करेंगे। नई शिक्षा नीति में महत्त्वपूर्ण यह भी है कि स्कूली व उच्च शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ स्थापित की जाएँगी। विभिन्न संस्थानों की अधिकतम फीस तय करने के लिए पारदर्शी व्यवस्था विकसित की जाएगी, ताकि निजी संस्थान अपनी मनमानी न कर सकें। स्कूल शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एन.सी.एफ.एस.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा-नीति २०२० के सिद्धांतों, अग्रणी पाठ्यचर्या आवश्यकताओं के आधार पर राज्य सरकारों, मंत्रालयों, केंद्र सरकार के संबंधित विभागों और अन्य विशेषज्ञ निकायों सहित सभी हित धारकों के साथ परामर्श करके तैयार किया जाएगा और इसे सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाएगा। ५ से १० वर्ष में इस पाठ्यक्रम की समीक्षा एवं अद्यतनीकरण भी किया जाएगा। आज राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों को देखते हुए परंपरागत ज्ञान एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजाइन थिंकिंग, हॉलिस्टिक हेल्थ, ऑर्गेनिक लिविंग, पर्यावरण शिक्षा, वैश्विक नागरिकता शिक्षा तथा डिजिटल शिक्षा जैसे विविध आयामों से छात्रों का परिचय अनिवार्य है, इसलिए छात्रों के फाउंडेशन या बुनियादी स्तर से ही इन सब की शिक्षा पर जोर दिया गया है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त संख्या ११० में कहा गया है—आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू आस्माँ``सपित्वं पितरो न आसन्। अर्थात् हे मनुष्यो! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश करता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने व पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त (शिक्षक) और दूसरा पड़नेवाला है (विद्यार्थी), उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस काम के बिना कभी विद्या की उन्नति होना संभव नहीं है। पिछले लंबे समय से यह देखा जा सकता है कि शिक्षक का सम्मान, उसकी गरिमा हाशिए पर पहुँच रही है। सरकारी व्यवस्थाओं में उसे टीचर के रूप में देखा गया है। विद्यार्थी भी स्टूडेंट भाव की ओर ही अधिक बढ़ा है। नई शिक्षा नीति में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के सम्मान की भी संकल्पना है, क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट ज्ञान का निष्पादन संभव नहीं है। शिक्षक ही बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं, राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करते हैं।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है। स्कूली शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन की भी संकल्पना है। विश्व के ज्ञान के साथ-साथ भारत का ज्ञान, भारतीय भाषाओं, संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा से परिचय छात्रों के लिए अनिवार्य किया गया है, जिससे बच्चा भारतीय चैतन्य के प्रकाश में अपनी चेतना का विकास करे और आत्मज्ञान की ओर उन्मुख हो।

दूसरा भाग 'उच्चतर शिक्षा' है। नई शिक्षा नीति उच्चतर शिक्षा में भी व्यापक बदलाव के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की संकल्पना करती है, जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा-व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण स्थापित हो सके। नई शिक्षा-व्यवस्था में वर्ष २०४० तक सभी उच्चतर शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य अपने आप को बहु-विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा। वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता, न्यायसंगतता और समावेश के लिए उचित संख्या में उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित और विकसित किए जाएँगे।

वर्ष २०३० तक प्रत्येक जिले में या उसके समीप कम-से-कम एक बड़ा बहु-विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान होगा। इसका उद्देश्य सकल नामांकन अनुपात को वर्ष २०१८ के २६.३ फीसद से बढ़ाकर वर्ष २०३५ तक ५० फीसद करना होगा। बड़ी संख्या में उत्कृष्ट सार्वजनिक संस्थानों के विकास के साथ-साथ निजी संस्थानों का भी विकास होगा। संस्थानों को अपने कार्यक्रमों की सीटें, पहुँच और सकल नामांकन अनुपात बढ़ाने एवं जीवनपर्यंत सीखने के अवसरों को मुहैया कराने हेतु दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन कोर्स को भी संचालित करने का अवसर होगा। उच्चतर शिक्षा-व्यवस्था में विभिन्न विषयों के ज्ञान के लिए अधिकाधिक अवसर देने की संकल्पना है।

डिग्री कार्यक्रमों की अवधि और संरचना में बदलाव किए गए हैं। स्नातक उपाधि की अवधि ४ वर्ष की होगी, जिसमें आवश्यकतानुसार विद्यार्थी को कोर्स छोड़ने, बदलने, पुन: वापसी और विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होगी। स्नातक उपाधि में ०१ वर्ष पूरा करने पर सर्टिफिकेट, ०२ वर्ष पूरा करने पर डिप्लोमा, ०३ वर्ष पूरा करने पर डिग्री और ०४ वर्षीय स्नातक कार्यक्रम पूरा करने पर शोध सहित डिग्री देने की संकल्पना है। स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में ऐसे विद्यार्थियों के लिए, जिन्होंने ०३ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम पूरा किया हो, उन्हें ०२ वर्षीय कार्यक्रम प्रदान किए जा सकते हैं। जिसमें द्वितीय वर्ष पूरी तरह से शोध पर केंद्रित होगा। दूसरा, वे विद्यार्थी जिन्होंने ०४ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम शोध के साथ पूरा किया है, उनके लिए स्नातकोत्तर कार्यक्रम ०१ वर्ष का होगा। पी-एच.डी. के लिए या तो स्नातकोत्तर डिग्री या ०४ वर्षों के शोध के साथ स्नातक डिग्री अनिवार्य होगी। एम.फिल. कार्यक्रम को बंद कर दिया जाएगा। उच्चतर शिक्षण संस्थान स्टार्टअप, इन्क्यूबेशन सेंटर, प्रौद्योगिकी विकास केंद्र, अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्रों के केंद्र, अधिकतम उद्योग-अकादमिक जुड़ाव, मानविकी और सामाजिक विज्ञान अनुसंधान सहित अंतर विषय अनुसंधान की स्थापना करके अनुसंधान और नवाचार पर फोकस करेंगे।

नई-नई चुनौतियों को देखते हुए शोध और अनुसंधान के कार्यों को भी बढ़ावा दिया जाएगा। सीखने के लिए छात्रों को सर्वोत्तम वातावरण प्रदान किया जाएगा, जिसमें उनका सहयोग भी अपेक्षित होगा। उच्चतर शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण की दिशा में भी व्यापक प्रयास किए जाएँगे, जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों के तहत छात्र एक-दूसरे देशों में शिक्षा ग्रहण करने आ-जा सकेंगे। उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए वित्तीय सहायता के प्रावधान भी किए जाएँगे। शिक्षकों की गुणवत्ता के लिए, व्यावसायिक विकास के प्रशिक्षण के लिए स्वयं और दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफॉर्म उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। नई शिक्षा नीति की पूरी संरचना में 'व्हाट टू थिंक' पर फोकस के स्थान पर 'हाउ टू थिंक' को महत्त्व दिया गया है।

तीसरा भाग 'अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे' हैं। इसके अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा, जिसमें कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, विधिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा व तकनीकी शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना, इस विषय पर भी गंभीरता से विचार करते हुए पुस्तकों की ऑनलाइन उपलब्धता, समुदायों एवं शिक्षण संस्थानों में जीवंत पुस्तकालयों को बनाने एवं उनका सफल संचालन सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाएँगे। भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्धन पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। जिसके अंतर्गत भारतीय संस्कृति के समृद्ध भंडार, भारतीय भाषाओं और भारतीय कला के संरक्षण-संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार के प्रयास किए जाएँगे। लुप्त होती जा रही भारतीय भाषाओं पर विशेष रूप से शोध एवं संरक्षण किया जाएगा। भारतीय भाषाओं के शिक्षण-अधिगम एवं प्रचार-प्रसार के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे।

छात्रों द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण व अनुभव विस्तार को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' के तहत देश के १०० पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी। श्रम के महत्त्व की स्थापना और उसके अनुभव के लिए किसानों एवं श्रमिकों के काम को भी पाठ्यक्रम के साथ जोड़ा जाएगा। इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन की स्थापना की जाएगी, जिससे महत्त्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद सब तक पहुँच सके। संस्कृत भाषा के वृहद एवं महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करते हुए संस्कृत का प्रयोग एवं पाठ्यक्रमों में बढ़ावा दिया जाएगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने १५ अगस्त, २०२० के राष्ट्रीय संबोधन में भारतवर्ष के लगभग छह लाख गाँवों को डिजिटल कनेक्टीविटी से जोड़ने का १००० दिन का लक्ष्य तय किया है। इससे डिजिटल इंडिया अभियान को पूरे देश में सशक्त समाज एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में मदद मिलेगी। नई शिक्षा-व्यवस्था में भी ऐसे प्रयासों को बढ़ाया जाएगा। संकट की स्थिति में ऑनलाइन शिक्षा-व्यवस्था के लिए उपयुक्त इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया जाएगा एवं उसके प्रशिक्षण की भी सुविधा की जाएगी।

चौथा भाग 'क्रियान्वयन एवं रणनीति' से संबंधित है, जिसमें नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय, राज्य, संस्था और व्यक्तिगत स्तर पर केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) को सशक्त किया जाएगा। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मंत्रालय द्वारा रोड मैप भी तैयार किया गया है, जिसमें नीति के सभी प्रावधानों को लागू करने की एक समय-सीमा तय की गई है। करीब ७५ फीसद प्रावधानों को वर्ष २०२४ तक लागू करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार बचे हुए प्रावधान भी वर्ष २०३५ तक चरणबद्ध तरीके से लागू किए जाएँगे। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए उच्चस्तरीय कमेटी प्रतिवर्ष समीक्षा करेगी। नई शिक्षा नीति महत्त्वपूर्ण ढंग से योजना के साथ सामने आई है। आज देश और दुनिया में सीखने के साथ-साथ सतत सीखते रहने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति इस बात को भी ध्यान में रखकर आगे बढ़ी है। आज भारत नए रूप में स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, मेड इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास, मेक फॉर वर्ल्ड एवं आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के साथ एक बड़ी महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। नई शिक्षा नीति २०२० इस नए भारत, सशक्त भारत, समृद्ध भारत एवं आत्मनिर्भर भारत के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।



असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : ९९८१८ १९४४३८

बाल्यावस्था देखभाल पर केंद्रित रहेगी, जिसमें बच्चे का खेल, स्वास्थ्य एवं पोषण प्रमुख हैं। अगले २ वर्ष कक्षा एक और दो, अर्थात् फाउंडेशन स्टेज के रहेंगे। जहाँ बच्चा ऐक्टिविटी और खेल पर आधारित क्रियाओं से ज्ञान अर्जित करेगा। इस ५ वर्ष के बाद अगले ३ वर्ष प्रिपेरेटरी स्टेज के रूप में कक्षा ३, ४ व ५ के रहेंगे। तीसरी अवस्था मिडिल स्टेज होगी, जहाँ ३ वर्ष का समय कक्षा ६, ७ और ८ के लिए निर्धारित है। जिसमें बच्चा विज्ञान, गणित, कला, सोशल साइंस और मानविकी में अनुभवजन्य शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ कक्षा ६ से ही बच्चा किसी कौशल अथवा विशेष रुचि के विषय को चुनकर भी आगे बढ़ सकता है।

चौथी स्टेज सेकेंडरी स्टेज होगी, जिसमें ४ वर्ष का समय कक्षा ९, १०, ११ व १२ का रहेगा। जहाँ बच्चा बहु-विषयक अध्ययन, व्यापक सोच, लचीलेपन और अपनी रुचि के विषय में शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ स्वयं करके सीखना और प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाएगा। कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से छात्रों को सशक्त बनाने पर बल दिया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में जो संभव है, उसके अनुसार एक सेमेस्टर या अन्य प्रणाली की ओर बढ़ने पर भी बच्चा विचार कर सकता है। यहाँ प्रत्येक स्टेज पर शिक्षा नीति का समग्र केंद्र बिंदु रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक अनुभव और ज्ञान की ओर ले जाना है। मूल्यांकन की दृष्टि से बच्चा स्वयं, उसके सहपाठी एवं शिक्षक मूल्यांकन करेंगे। यहाँ बच्चे को चरित्र-निर्माण और नई आवश्यकताओं के अनुसार कौशल से सुसज्जित करना भी ध्येय है। बच्चा कक्षा ६ से ही अपने कौशल के अनुसार अथवा अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनकर आगे बढ़ सकता है। यहाँ बड़ा बल इस बात पर भी है कि कम-से-कम कक्षा ५ तक, कक्षा ८ तक और उससे आगे तक भी शिक्षा का माध्यम घर की भाषा यानी मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा होंगी।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है।

अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी और सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी स्कूल इसका पालन करेंगे। नई शिक्षा नीति में महत्त्वपूर्ण यह भी है कि स्कूली व उच्च शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ स्थापित की जाएँगी। विभिन्न संस्थानों की अधिकतम फीस तय करने के लिए पारदर्शी व्यवस्था विकसित की जाएगी, ताकि निजी संस्थान अपनी मनमानी न कर सकें। स्कूल शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एन.सी.एफ.एस.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा-नीति २०२० के सिद्धांतों, अग्रणी पाठ्यचर्या आवश्यकताओं के आधार पर राज्य सरकारों, मंत्रालयों, केंद्र सरकार के संबंधित विभागों और अन्य विशेषज्ञ निकायों सहित सभी हित धारकों के साथ परामर्श करके तैयार किया जाएगा और इसे सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाएगा। ५ से १० वर्ष में इस पाठ्यक्रम की समीक्षा एवं अद्यतनीकरण भी किया जाएगा। आज राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों को देखते हुए परंपरागत ज्ञान एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजाइन थिंकिंग, हॉलिस्टिक हेल्थ, ऑर्गेनिक लिविंग, पर्यावरण शिक्षा, वैश्विक नागरिकता शिक्षा तथा डिजिटल शिक्षा जैसे विविध आयामों से छात्रों का परिचय अनिवार्य है, इसलिए छात्रों के फाउंडेशन या बुनियादी स्तर से ही इन सब की शिक्षा पर जोर दिया गया है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त संख्या ११० में कहा गया है—आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू आस्माँ``सपित्वं पितरो न आसन्। अर्थात् हे मनुष्यो! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश करता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने व पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त (शिक्षक) और दूसरा पढ़नेवाला है (विद्यार्थी), उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस काम के बिना कभी विद्या की उन्नति होना संभव नहीं है। पिछले लंबे समय से यह देखा जा सकता है कि शिक्षक का सम्मान, उसकी गरिमा हाशिए पर पहुँच रही है। सरकारी व्यवस्थाओं में उसे टीचर के रूप में देखा गया है। विद्यार्थी भी स्टूडेंट भाव की ओर ही अधिक बढ़ा है। नई शिक्षा नीति में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के सम्मान की भी संकल्पना है, क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट ज्ञान का निष्पादन संभव नहीं है। शिक्षक ही बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं, राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करते हैं।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है। स्कूली शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन की भी संकल्पना है। विश्व के ज्ञान के साथ-साथ भारत का ज्ञान, भारतीय भाषाओं, संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा से परिचय छात्रों के लिए अनिवार्य किया गया है, जिससे बच्चा भारतीय चैतन्य के प्रकाश में अपनी चेतना का विकास करे और आत्मज्ञान की ओर उन्मुख हो।

दूसरा भाग 'उच्चतर शिक्षा' है। नई शिक्षा नीति उच्चतर शिक्षा में भी व्यापक बदलाव के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की संकल्पना करती है, जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा-व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण स्थापित हो सके। नई शिक्षा-व्यवस्था में वर्ष २०४० तक सभी उच्चतर शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य अपने आप को बहु-विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा। वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता, न्यायसंगतता और समावेश के लिए उचित संख्या में उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित और विकसित किए जाएँगे।

वर्ष २०३० तक प्रत्येक जिले में या उसके समीप कम-से-कम एक बड़ा बहु-विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान होगा। इसका उद्देश्य सकल नामांकन अनुपात को वर्ष २०१८ के २६.३ फीसद से बढ़ाकर वर्ष २०३५ तक ५० फीसद करना होगा। बड़ी संख्या में उत्कृष्ट सार्वजनिक संस्थानों के विकास के साथ-साथ निजी संस्थानों का भी विकास होगा। संस्थानों को अपने कार्यक्रमों की सीटें, पहुँच और सकल नामांकन अनुपात बढ़ाने एवं जीवनपर्यंत सीखने के अवसरों को मुहैया कराने हेतु दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन कोर्स को भी संचालित करने का अवसर होगा। उच्चतर शिक्षा-व्यवस्था में विभिन्न विषयों के ज्ञान के लिए अधिकाधिक अवसर देने की संकल्पना है।

डिग्री कार्यक्रमों की अवधि और संरचना में बदलाव किए गए हैं। स्नातक उपाधि की अवधि ४ वर्ष की होगी, जिसमें आवश्यकतानुसार विद्यार्थी को कोर्स छोड़ने, बदलने, पुन: वापसी और विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होगी। स्नातक उपाधि में ०१ वर्ष पूरा करने पर सर्टिफिकेट, ०२ वर्ष पूरा करने पर डिप्लोमा, ०३ वर्ष पूरा करने पर डिग्री और ०४ वर्षीय स्नातक कार्यक्रम पूरा करने पर शोध सहित डिग्री देने की संकल्पना है। स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में ऐसे विद्यार्थियों के लिए, जिन्होंने ०३ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम पूरा किया हो, उन्हें ०२ वर्षीय कार्यक्रम प्रदान किए जा सकते हैं। जिसमें द्वितीय वर्ष पूरी तरह से शोध पर केंद्रित होगा। दूसरा, वे विद्यार्थी जिन्होंने ०४ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम शोध के साथ पूरा किया है, उनके लिए स्नातकोत्तर कार्यक्रम ०१ वर्ष का होगा। पी-एच.डी. के लिए या तो स्नातकोत्तर डिग्री या ०४ वर्षों के शोध के साथ स्नातक डिग्री अनिवार्य होगी। एम.फिल. कार्यक्रम को बंद कर दिया जाएगा। उच्चतर शिक्षण संस्थान स्टार्टअप, इन्क्यूबेशन सेंटर, प्रौद्योगिकी विकास केंद्र, अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्रों के केंद्र, अधिकतम उद्योग-अकादमिक जुड़ाव, मानविकी और सामाजिक विज्ञान अनुसंधान सहित अंतर विषय अनुसंधान की स्थापना करके अनुसंधान और नवाचार पर फोकस करेंगे।

नई-नई चुनौतियों को देखते हुए शोध और अनुसंधान के कार्यों को भी बढ़ावा दिया जाएगा। सीखने के लिए छात्रों को सर्वोत्तम वातावरण प्रदान किया जाएगा, जिसमें उनका सहयोग भी अपेक्षित होगा। उच्चतर शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण की दिशा में भी व्यापक प्रयास किए जाएँगे, जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों के तहत छात्र एक-दूसरे देशों में शिक्षा ग्रहण करने आ-जा सकेंगे। उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए वित्तीय सहायता के प्रावधान भी किए जाएँगे। शिक्षकों की गुणवत्ता के लिए, व्यावसायिक विकास के प्रशिक्षण के लिए स्वयं और दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफॉर्म उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। नई शिक्षा नीति की पूरी संरचना में 'व्हाट टू थिंक' पर फोकस के स्थान पर 'हाउ टू थिंक' को महत्त्व दिया गया है।

तीसरा भाग 'अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे' हैं। इसके अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा, जिसमें कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, विधिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा व तकनीकी शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना, इस विषय पर भी गंभीरता से विचार करते हुए पुस्तकों की ऑनलाइन उपलब्धता, समुदायों एवं शिक्षण संस्थानों में जीवंत पुस्तकालयों को बनाने एवं उनका सफल संचालन सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाएँगे। भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्धन पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। जिसके अंतर्गत भारतीय संस्कृति के समृद्ध भंडार, भारतीय भाषाओं और भारतीय कला के संरक्षण-संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार के प्रयास किए जाएँगे। लुप्त होती जा रही भारतीय भाषाओं पर विशेष रूप से शोध एवं संरक्षण किया जाएगा। भारतीय भाषाओं के शिक्षण-अधिगम एवं प्रचार-प्रसार के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे।

छात्रों द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण व अनुभव विस्तार को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' के तहत देश के १०० पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी। श्रम के महत्त्व की स्थापना और उसके अनुभव के लिए किसानों एवं श्रमिकों के काम को भी पाठ्यक्रम के साथ जोड़ा जाएगा। इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन की स्थापना की जाएगी, जिससे महत्त्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद सब तक पहुँच सके। संस्कृत भाषा के वृहद एवं महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करते हुए संस्कृत का प्रयोग एवं पाठ्यक्रमों में बढ़ावा दिया जाएगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने १५ अगस्त, २०२० के राष्ट्रीय संबोधन में भारतवर्ष के लगभग छह लाख गाँवों को डिजिटल कनेक्टीविटी से जोड़ने का १००० दिन का लक्ष्य तय किया है। इससे डिजिटल इंडिया अभियान को पूरे देश में सशक्त समाज एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में मदद मिलेगी। नई शिक्षा-व्यवस्था में भी ऐसे प्रयासों को बढ़ाया जाएगा। संकट की स्थिति में ऑनलाइन शिक्षा-व्यवस्था के लिए उपयुक्त इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया जाएगा एवं उसके प्रशिक्षण की भी सुविधा की जाएगी।

चौथा भाग 'क्रियान्वयन एवं रणनीति' से संबंधित है, जिसमें नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय, राज्य, संस्था और व्यक्तिगत स्तर पर केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) को सशक्त किया जाएगा। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मंत्रालय द्वारा रोड मैप भी तैयार किया गया है, जिसमें नीति के सभी प्रावधानों को लागू करने की एक समय-सीमा तय की गई है। करीब ७५ फीसद प्रावधानों को वर्ष २०२४ तक लागू करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार बचे हुए प्रावधान भी वर्ष २०३५ तक चरणबद्ध तरीके से लागू किए जाएँगे। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए उच्चस्तरीय कमेटी प्रतिवर्ष समीक्षा करेगी। नई शिक्षा नीति महत्त्वपूर्ण ढंग से योजना के साथ सामने आई है। आज देश और दुनिया में सीखने के साथ-साथ सतत सीखते रहने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति इस बात को भी ध्यान में रखकर आगे बढ़ी है। आज भारत नए रूप में स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, मेड इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास, मेक फॉर वर्ल्ड एवं आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के साथ एक बड़ी महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। नई शिक्षा नीति २०२० इस नए भारत, सशक्त भारत, समृद्ध भारत एवं आत्मनिर्भर भारत के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : ९९८१८ १९४४३८

बाल्यावस्था देखभाल पर केंद्रित रहेगी, जिसमें बच्चे का खेल, स्वास्थ्य एवं पोषण प्रमुख हैं। अगले २ वर्ष कक्षा एक और दो, अर्थात् फाउंडेशन स्टेज के रहेंगे। जहाँ बच्चा ऐक्टिविटी और खेल पर आधारित क्रियाओं से ज्ञान अर्जित करेगा। इस ५ वर्ष के बाद अगले ३ वर्ष प्रिपेरेटरी स्टेज के रूप में कक्षा ३, ४ व ५ के रहेंगे। तीसरी अवस्था मिडिल स्टेज होगी, जहाँ ३ वर्ष का समय कक्षा ६, ७ और ८ के लिए निर्धारित है। जिसमें बच्चा विज्ञान, गणित, कला, सोशल साइंस और मानविकी में अनुभवजन्य शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ कक्षा ६ से ही बच्चा किसी कौशल अथवा विशेष रुचि के विषय को चुनकर भी आगे बढ़ सकता है।

चौथी स्टेज सेकेंडरी स्टेज होगी, जिसमें ४ वर्ष का समय कक्षा ९, १०, ११ व १२ का रहेगा। जहाँ बच्चा बहु-विषयक अध्ययन, व्यापक सोच, लचीलेपन और अपनी रुचि के विषय में शिक्षा प्राप्त करेगा। यहाँ स्वयं करके सीखना और प्रत्येक विषय में कला और खेल को एकीकृत किया जाएगा। कोर्स चुनाव के विकल्पों में लचीलेपन के माध्यम से छात्रों को सशक्त बनाने पर बल दिया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में जो संभव है, उसके अनुसार एक सेमेस्टर या अन्य प्रणाली की ओर वढ़ने पर भी बच्चा विचार कर सकता है। यहाँ प्रत्येक स्टेज पर शिक्षा नीति का समग्र केंद्र बिंदु रटने की पुरानी प्रथा से अलग वास्तविक अनुभव और ज्ञान की ओर ले जाना है। मूल्यांकन की दृष्टि से बच्चा स्वयं, उसके सहपाठी एवं शिक्षक मूल्यांकन करेंगे। यहाँ बच्चे को चरित्र-निर्माण और नई आवश्यकताओं के अनुसार कौशल से सुसज्जित करना भी ध्येय है। बच्चा कक्षा ६ से ही अपने कौशल के अनुसार अथवा अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनकर आगे बढ़ सकता है। यहाँ बड़ा बल इस बात पर भी है कि कम-से-कम कक्षा ५ तक, कक्षा ८ तक और उससे आगे तक भी शिक्षा का माध्यम घर की भाषा यानी मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा होंगी।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है।

अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी और सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी स्कूल इसका पालन करेंगे। नई शिक्षा नीति में महत्त्वपूर्ण यह भी है कि स्कूली व उच्च शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ स्थापित की जाएँगी। विभिन्न संस्थानों की अधिकतम फीस तय करने के लिए पारदर्शी व्यवस्था विकसित की जाएगी, ताकि निजी संस्थान अपनी मनमानी न कर सकें। स्कूल शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एन.सी.एफ.एस.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा-नीति २०२० के सिद्धांतों, अग्रणी पाठ्यचर्या आवश्यकताओं के आधार पर राज्य सरकारों, मंत्रालयों, केंद्र सरकार के संबंधित विभागों और अन्य विशेषज्ञ निकायों सहित सभी हित धारकों के साथ परामर्श करके तैयार किया जाएगा और इसे सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाएगा। ५ से १० वर्ष में इस पाठ्यक्रम की समीक्षा एवं अद्यतनीकरण भी किया जाएगा। आज राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों को देखते हुए परंपरागत ज्ञान एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजाइन थिंकिंग, हॉलिस्टिक हेल्थ, ऑर्गेनिक लिविंग, पर्यावरण शिक्षा, वैश्विक नागरिकता शिक्षा तथा डिजिटल शिक्षा जैसे विविध आयामों से छात्रों का परिचय अनिवार्य है, इसलिए छात्रों के फाउंडेशन या बुनियादी स्तर से ही इन सब की शिक्षा पर जोर दिया गया है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त संख्या ११० में कहा गया है— आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू आस्माँ``सपित्वं पितरो न आसन्। अर्थात् हे मनुष्यो! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश करता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने व पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त (शिक्षक) और दूसरा पड़नेवाला है (विद्यार्थी), उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस काम के बिना कभी विद्या की उन्नति होना संभव नहीं है। पिछले लंबे समय से यह देखा जा सकता है कि शिक्षक का सम्मान, उसकी गरिमा हाशिए पर पहुँच रही है। सरकारी व्यवस्थाओं में उसे टीचर के रूप में देखा गया है। विद्यार्थी भी स्टूडेंट भाव की ओर ही अधिक बढ़ा है। नई शिक्षा नीति में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के सम्मान की भी संकल्पना है, क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट ज्ञान का निष्पादन संभव नहीं है। शिक्षक ही बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं, राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करते हैं।

नई शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, भर्ती, पदोन्नति व सेवा शर्तें काफी बदलाव के साथ सामने आई हैं। शिक्षकों के लिए सेवाकाल के दौरान कार्य संस्कृति और वातावरण पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षकों के सतत व व्यावसायिक विकास के लिए कई योजनाएँ हैं। व्यावसायिक मानकों में भी व्यापक फेरबदल किए गए हैं। शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता ४ वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री को मंजूरी दी गई है। स्कूली शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और प्रमाणन की भी संकल्पना है। विश्व के ज्ञान के साथ-साथ भारत का ज्ञान, भारतीय भाषाओं, संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा से परिचय छात्रों के लिए अनिवार्य किया गया है, जिससे बच्चा भारतीय चैतन्य के प्रकाश में अपनी चेतना का विकास करे और आत्मज्ञान की ओर उन्मुख हो।

दूसरा भाग 'उच्चतर शिक्षा' है। नई शिक्षा नीति उच्चतर शिक्षा में भी व्यापक बदलाव के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की संकल्पना करती है, जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा-व्यवस्था हेतु एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण स्थापित हो सके। नई शिक्षा-व्यवस्था में वर्ष २०४० तक सभी उच्चतर शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य अपने आप को बहु-विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा। वंचित क्षेत्रों में पूर्ण उपलब्धता, न्यायसंगतता और समावेश के लिए उचित संख्या में उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित और विकसित किए जाएँगे।

वर्ष २०३० तक प्रत्येक जिले में या उसके समीप कम-से-कम एक बड़ा बहु-विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान होगा। इसका उद्देश्य सकल नामांकन अनुपात को वर्ष २०१८ के २६.३ फीसद से बढ़ाकर वर्ष २०३५ तक ५० फीसद करना होगा। बड़ी संख्या में उत्कृष्ट सार्वजनिक संस्थानों के विकास के साथ-साथ निजी संस्थानों का भी विकास होगा। संस्थानों को अपने कार्यक्रमों की सीटें, पहुँच और सकल नामांकन अनुपात बढ़ाने एवं जीवनपर्यंत सीखने के अवसरों को मुहैया कराने हेतु दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन कोर्स को भी संचालित करने का अवसर होगा। उच्चतर शिक्षा-व्यवस्था में विभिन्न विषयों के ज्ञान के लिए अधिकाधिक अवसर देने की संकल्पना है।

डिग्री कार्यक्रमों की अवधि और संरचना में बदलाव किए गए हैं। स्नातक उपाधि की अवधि ४ वर्ष की होगी, जिसमें आवश्यकतानुसार विद्यार्थी को कोर्स छोड़ने, बदलने, पुनः वापसी और विकल्प चुनने की स्वतंत्रता होगी। स्नातक उपाधि में ०१ वर्ष पूरा करने पर सर्टिफिकेट, ०२ वर्ष पूरा करने पर डिप्लोमा, ०३ वर्ष पूरा करने पर डिग्री और ०४ वर्षीय स्नातक कार्यक्रम पूरा करने पर शोध सहित डिग्री देने की संकल्पना है। स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में ऐसे विद्यार्थियों के लिए, जिन्होंने ०३ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम पूरा किया हो, उन्हें ०२ वर्षीय कार्यक्रम प्रदान किए जा सकते हैं। जिसमें द्वितीय वर्ष पूरी तरह से शोध पर केंद्रित होगा। दूसरा, वे विद्यार्थी जिन्होंने ०४ वर्ष का स्नातक कार्यक्रम शोध के साथ पूरा किया है, उनके लिए स्नातकोत्तर कार्यक्रम ०१ वर्ष का होगा। पी-एच.डी. के लिए या तो स्नातकोत्तर डिग्री या ०४ वर्षों के शोध के साथ स्नातक डिग्री अनिवार्य होगी। एम.फिल. कार्यक्रम को बंद कर दिया जाएगा। उच्चतर शिक्षण संस्थान स्टार्टअप, इन्क्यूबेशन सेंटर, प्रौद्योगिकी विकास केंद्र, अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्रों के केंद्र, अधिकतम उद्योग-अकादमिक जुड़ाव, मानविकी और सामाजिक विज्ञान अनुसंधान सहित अंतर विषय अनुसंधान की स्थापना करके अनुसंधान और नवाचार पर फोकस करेंगे।

नई-नई चुनौतियों को देखते हुए शोध और अनुसंधान के कार्यों को भी बढ़ावा दिया जाएगा। सीखने के लिए छात्रों को सर्वोत्तम वातावरण प्रदान किया जाएगा, जिसमें उनका सहयोग भी अपेक्षित होगा। उच्चतर शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण की दिशा में भी व्यापक प्रयास किए जाएँगे, जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों के तहत छात्र एक-दूसरे देशों में शिक्षा ग्रहण करने आ-जा सकेंगे। उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए वित्तीय सहायता के प्रावधान भी किए जाएँगे। शिक्षकों की गुणवत्ता के लिए, व्यावसायिक विकास के प्रशिक्षण के लिए स्वयं और दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफॉर्म उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। नई शिक्षा नीति की पूरी संरचना में 'व्हाट टू थिंक' पर फोकस के स्थान पर 'हाउ टू थिंक' को महत्त्व दिया गया है।

तीसरा भाग 'अन्य केंद्रीय विचारणीय मुद्दे' हैं। इसके अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा, जिसमें कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, विधिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा व तकनीकी शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा और जीवनपर्यंत सीखना, इस विषय पर भी गंभीरता से विचार करते हुए पुस्तकों की ऑनलाइन उपलब्धता, समुदायों एवं शिक्षण संस्थानों में जीवंत पुस्तकालयों को बनाने एवं उनका सफल संचालन सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाएँगे। भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्धन पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। जिसके अंतर्गत भारतीय संस्कृति के समृद्ध भंडार, भारतीय भाषाओं और भारतीय कला के संरक्षण-संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार के प्रयास किए जाएँगे। लुप्त होती जा रही भारतीय भाषाओं पर विशेष रूप से शोध एवं संरक्षण किया जाएगा। भारतीय भाषाओं के शिक्षण-अधिगम एवं प्रचार-प्रसार के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे।

छात्रों द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण व अनुभव विस्तार को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' के तहत देश के १०० पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी। श्रम के महत्त्व की स्थापना और उसके अनुभव के लिए किसानों एवं श्रमिकों के काम को भी पाठ्यक्रम के साथ जोड़ा जाएगा। इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन की स्थापना की जाएगी, जिससे महत्त्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद सब तक पहुँच सके। संस्कृत भाषा के वृहद एवं महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करते हुए संस्कृत का प्रयोग एवं पाठ्यक्रमों में बढ़ावा दिया जाएगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने १५ अगस्त, २०२० के राष्ट्रीय संबोधन में भारतवर्ष के लगभग छह लाख गाँवों को डिजिटल कनेक्टीविटी से जोड़ने का १००० दिन का लक्ष्य तय किया है। इससे डिजिटल इंडिया अभियान को पूरे देश में सशक्त समाज एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में मदद मिलेगी। नई शिक्षा-व्यवस्था में भी ऐसे प्रयासों को बढ़ाया जाएगा। संकट की स्थिति में ऑनलाइन शिक्षा-व्यवस्था के लिए उपयुक्त इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया जाएगा एवं उसके प्रशिक्षण की भी सुविधा की जाएगी।

चौथा भाग 'क्रियान्वयन एवं रणनीति' से संबंधित है, जिसमें नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय, राज्य, संस्था और व्यक्तिगत स्तर पर केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (कैब) को सशक्त किया जाएगा। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मंत्रालय द्वारा रोड मैप भी तैयार किया गया है, जिसमें नीति के सभी प्रावधानों को लागू करने की एक समय-सीमा तय की गई है। करीब ७५ फीसद प्रावधानों को वर्ष २०२४ तक लागू करने का लक्ष्य है। इसी प्रकार बचे हुए प्रावधान भी वर्ष २०३५ तक चरणबद्ध तरीके से लागू किए जाएँगे। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए उच्चस्तरीय कमेटी प्रतिवर्ष समीक्षा करेगी। नई शिक्षा नीति महत्त्वपूर्ण ढंग से योजना के साथ सामने आई है। आज देश और दुनिया में सीखने के साथ-साथ सतत सीखते रहने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति इस बात को भी ध्यान में रखकर आगे बढ़ी है। आज भारत नए रूप में स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, मेड इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, कौशल विकास, मेक फॉर वर्ल्ड एवं आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के साथ एक बड़ी महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। नई शिक्षा नीति २०२० इस नए भारत, सशक्त भारत, समृद्ध भारत एवं आत्मनिर्भर भारत के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

सा अ

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : ९९८१८ १९४४३८

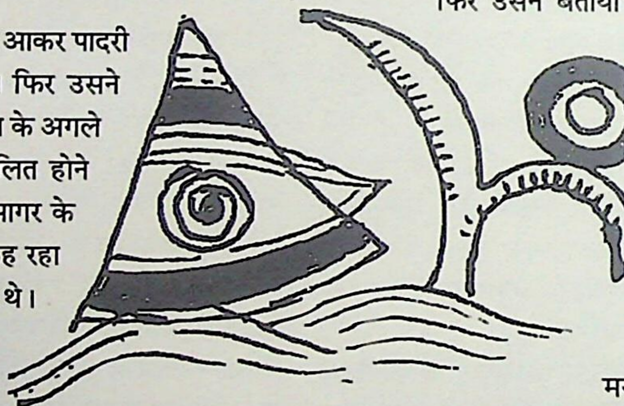
तीन फकीर

मूल : **टॉलस्टॉय**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

आर्चएंजल नगर से सोलोवकी, जो डवीना नदी पर एक बंदरगाह था, के लिए एक पादरी जहाज में सवार हुआ। उसके साथ कई और लोग भी पवित्र मंदिरों की तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे। मंद-मंद वायु चल रही थी, सागर शांत था और आकाश नीला। जैसे-जैसे तीर्थयात्री आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने जहाज की छत पर लेटकर, बैठकर अथवा भोजन करते समय परस्पर बातचीत की।

एक दिन प्रात:काल जहाज की छत पर आकर पादरी ने उसके पिछले भाग में चहलकदमी की। फिर उसने जहाज के कर्मचारियों और यात्रियों को जहाज के अगले भाग में एकत्र होते देखा और उनमें सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़ा। एक छोटा लड़का दूर सागर के ऊपर इशारा कर रहा था और जो कुछ वह कह रहा था, उसके आसपास खड़े लोग उसे सुन रहे थे। पादरी ने क्षितिज का सूक्ष्म निरीक्षण किया, जिसकी ओर लड़का इशारा कर रहा था, परंतु दूर चमकते सागर के अतिरिक्त उसे कुछ भी नजर नहीं आया। यह सुनने के लिए कि लड़का क्या कह रहा था, जब पादरी उसके निकट गया तो एकत्र हुए सभी लोगों ने आदर से उसको सलाम किया।



''मैं तुम्हें टोकना नहीं चाहता, मेरे भाइयो!'' उसने कहा, ''मैं तो केवल वह सुनना चाहता हूँ, जो तुम कह रहे हो।''

''इस सागर का मछुआ, यह लड़का,'' एक व्यापारी ने कहा, ''हमें किन्हीं फकीरों के बारे में बता रहा था।''

''कैसे फकीर? मैं जानना चाहूँगा।'' बाँध के पास अपना स्थान ग्रहण करते हुए पादरी ने कहा, ''तुम किसकी ओर इशारा कर रहे हो?''

''वह छोटा टापू, जो बंदरगाह के अग्रिम भाग में नजर आ रहा है।'' मछुए ने उत्तर दिया—''आत्मोत्थान के लिए वहाँ तीन फकीर रह रहे हैं।''

''परंतु वह टापू है कहाँ?'' पादरी ने पूछा।

''मेरे हाथों के सामने देखो, श्रीमान्! उस छोटे बादल से थोड़ा हटकर बाईं तरफ उसे देख सकते हो।''

पादरी ने सागर के पार देखा, परंतु लंबे-चौड़े फैलाव में कुछ भी नहीं देख सका। ''मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता!'' उसने कहा, ''ये किस प्रकार के फकीर हैं?''

''वे एक प्रकार के योगी लोग हैं,'' लड़के ने उत्तर दिया—''मैंने प्राय: उनके बारे में सुना है और पिछली गरमियों में उनको देखा भी था।''

फिर उसने बताया कि किस प्रकार उलटी हवा उसे टापू के छोर तक ले गई थी। उसे मालूम नहीं था कि वह कहाँ था। उसने टापू को खोजा और मिट्टी से बनी एक निर्जन झोंपड़ी के पास गया। यहाँ उसने फकीरों में से एक को देखा और तत्पश्चात् बाकी दोनों भी झोंपड़ी में आ गए। उन्होंने उसे खाना खिलाया और उसके कपड़े सुखाए तथा मछली पकड़नेवाली उसकी नाव की मरम्मत में उसकी सहायता की।

''वे किस तरह के दिखाई देते थे?'' पादरी ने पूछा।

''श्रीमान्, जिसको पहले झोंपड़ी में देखा, वह बहुत ही बूढ़ा था। मेरा अनुमान है, सौ वर्ष का होगा। वह बहुत ही छोटा था, गोल पीठ थी और पुरानी गंजी पहने हुए था। उसकी दाढ़ी सफेद थी और वह मुसकराता था, श्रीमान्, संत की तरह! दूसरा भी वृद्ध था और उसकी लंबी पीली दाढ़ी थी। वह लंबा था और फटा कोट पहने था। उसका शरीर पुष्ट था और वह अकेला ही मेरी नाव को पलट सकता था। वह उत्साही और प्रसन्नचित्त था। तीसरा अत्यंत लंबा, चाँद की तरह सफेद था। उसकी दाढ़ी घुटनों तक पहुँचती थी। वह देखने में तीक्ष्ण और उदास था। उसकी आँखें गुफा में से चमकती मालूम होती थीं। वह अपने पेट पर पेटी के अतिरिक्त कुछ भी पहने हुए नहीं था।''

''उन्होंने क्या कहा था?''

''उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा, श्रीमान्! वे आपस में भी कम बोलते थे; केवल एक के देखने मात्र से ही दूसरा समझ जाता था। मैंने

लंबे से पूछा कि वे कब से वहाँ थे, तो वह क्रुद्ध हो गया और मुझपर गरजा, परंतु छोटे वृद्ध ने उसका हाथ थाम लिया और मुसकराया; तब लंबा आदमी चुप हो गया। फिर वृद्ध आदमी ने मुसकराकर मुझसे कहा, 'तुम हमें क्षमा करो।' ''

जैसे-जैसे ये बातें चल रही थीं, वैसे-वैसे जहाज भी टापू के निकट पहुँच रहा था। ''वह वहाँ, पूज्य पिता,'' व्यापारी ने पुकारा—''टापू अब साफ दिखाई दे रहा है।'' और सागर के ऊपर इशारा किया। पादरी ने छोटा काला बिंदु देखा, जो वस्तुतः टापू ही था। पादरी ने उसे देर तक देखा और कुछ निश्चय करके जहाज के चालक के पास गया और उससे पूछा, ''उस टापू का क्या नाम है?''

''श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि उसका कोई नाम है। इस सागर में उस जैसे कई टापू हैं।''

''मुझे बताया गया है कि वहाँ फकीर रहते हैं। क्या यह बात सत्य है?''

''जो कुछ भी तुम सुनते हो, उसपर विश्वास नहीं कर सकते,'' आदमी ने उत्तर दिया—''कहा जाता है कि वहाँ फकीर रहते हैं और मछुआरों ने उन्हें देखा है। मैं विश्वास से नहीं कह सकता।''

''मैं किनारे पर जाना चाहता हूँ,'' पादरी ने कहा, ''और फकीरों से मिलना चाहता हूँ। क्या ऐसा किया जा सकता है?''

''ठीक है, आदरणीय। हम जहाज को किनारे पर नहीं ले जा सकते। तुम नाव में बैठ सकते हो, परंतु यह मामला कप्तान के हाथ में है। वह सामने आ रहा है।''

''कप्तान!'' पादरी ने कहा, ''मैं उन फकीरों से अवश्य मिलना चाहता हूँ। क्या किसी तरीके से तुम मुझे टापू के किनारे तक पहुँचा सकते हो?''

इस प्रकार का कोई काम करने के लिए कप्तान सहमत नहीं था। ''यह काफी आसान है, माइ लॉर्ड, परंतु इससे समय नष्ट होगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वे तुम्हारे कष्ट के योग्य नहीं हैं। मुझे बताया गया है कि वे बुद्धिहीन हैं। जो कुछ तुम कहोगे, वे समझ नहीं पाएँगे और न ही स्वयं कुछ कहेंगे!''

''हो सकता है,'' पादरी ने कहा, ''परंतु मैं टापू पर जाना चाहता हूँ; इस कष्ट और फालतू समय के लिए मैं भुगतान करूँगा।''

इतनी प्रतिष्ठावाले आदमी को मना करना कठिन था। आवश्यक आदेश दे दिए गए। जहाज को दूसरी कील पर डालकर शीघ्रता से टापू पर लाया गया। वे पादरी के लिए आसन लाए, जिसके अग्र भाग पर बैठकर उसने ध्यानपूर्वक टापू को देखा, जबकि जहाज के लोग उसके पीछे एकत्र हो गए। शीघ्र ही तीव्र दृष्टिवाले नाविकों ने चट्टानों और छोटी झोंपड़ी को देखा। अंततः उनमें से एक ने कहा कि उसने तीन फकीर देखे हैं। फिर कप्तान ने अपनी दूरबीन उठाई और किनारे का निरीक्षण करने के बाद पादरी को देते हुए कहा, ''वहाँ सामने देखो! किनारे की चट्टान पर तीन आदमी खड़े हैं।'' पादरी ने दूरबीन ले ली और तीनों आदमियों को देखा—एक बहुत लंबा, दूसरा उससे छोटा और तीसरा वास्तव में बहुत ही छोटा था। वे तीनों एक-दूसरे का हाथ थामे तट पर खड़े थे।

फिर कप्तान ने कहा, ''हम आगे नहीं जा सकते, श्रीमान्, हमें यहीं लंगर डालना होगा। यदि तुम अब भी चाहते हो तो जहाज की नाव में किनारे पर जा सकते हो।'' अतः पतवार को नीचे किया गया और जहाज हवा में भागा। लंगर उठा लिया गया और बादबान नीचे कर दिए गए। जहाज सागर की लहरों पर तैरने लगा। नाव को एक तरफ डाला गया था, जिसकी देखभाल मल्लाहों का जत्था कर रहा था। पादरी सीढ़ी द्वारा उतरा और नाव के पिछले भाग में बैठ गया। मल्लाहों ने पानी को काटना शुरू किया और नाव झलुए की तरह अपने रास्ते पर तेज दौड़ने लगी। एक-दूसरे का हाथ थामे तीनों फकीर पास-पास खड़े साफ नजर आने लगे। शीघ्र ही नाव चट्टान के निकट आई। एक नाविक ने कुंडी से उसको पकड़ा और पादरी किनारे पर कूद गया। फकीर आगे आए और झुककर सलाम किया। उसने उनको अपना आशीर्वाद दिया और उन्होंने पुनः सिर झुकाया।

फिर पादरी बोला, ''मुझे बताया गया है कि तुम हमारे लॉर्ड ईसा के अनुयायी बनकर परमात्मा की उपासना और अपनी मुक्ति के लिए काम कर रहे हो। परमात्मा की कृपा से मैं भी लॉर्ड का सेवक हूँ, भले ही मैं अयोग्य हूँ और उसकी भेड़ों के झुंड का चरवाहा कहलाता हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि यदि संभव हो तो मैं तुम्हें कुछ उपदेश दूँ; क्योंकि तुम भी परमात्मा के सेवक हो।''

फकीरों को कहने के लिए कुछ नहीं सूझा, वे केवल एक-दूसरे को ताकते हुए मुसकराए।

''क्या तुम बताओगे कि अपनी मुक्ति कैसे पाना चाहते हो और परमात्मा की सेवा कैसे करते हो?'' पादरी ने पूछा।

दो लंबे फकीरों ने गहरी साँस ली और तीसरे आदरणीय छोटे आदमी की ओर देखा। वह मुसकराया और बोला, ''परमात्मा के सेवक! हम परमात्मा की सेवा के योग्य नहीं हैं। हम अपने लिए भोजन ढूँढ़कर अपनी सेवा करते हैं।''

''परंतु तुम परमात्मा से प्रार्थना कैसे करते हो?'' पादरी ने पूछा। फिर बूढ़े आदमी ने कहा, ''हम जो कहते हैं, वह यह है—तुम तीन हो, हम भी तीन हैं, हम पर दया करो।''

ज्यों ही उसने यह कहा, तीनों फकीरों ने अपनी नजरें आकाश की ओर उठाईं और मिलकर बोले, ''हम तीन हैं, तुम भी तीन हो, हमपर दया करो।''

यह पादरी के हृदय को स्पर्श कर गया और वह मुसकराया।

''तुम्हें पवित्र त्रिमूर्ति की ठीक शिक्षा दी गई है,'' उसने कहा, ''परंतु प्रार्थना करने का यह तरीका नहीं है। तुम्हारी धर्मनिष्ठा ने मुझे प्रसन्न किया है, मेरे बच्चो! यह स्पष्ट है कि तुम परमात्मा की सेवा करना चाहते हो, परंतु करना जानते नहीं। मुझसे सुनो। मैं तुम्हें सिखाता हूँ। तुम्हें मैं अपने शब्दों में शिक्षा नहीं दूँगा बल्कि पवित्र धार्मिक पुस्तकों से बताऊँगा कि

परमात्मा किस प्रकार चाहता है कि तमाम मनुष्य उसकी प्रार्थना कैसे करें।'' तत्पश्चात् उसने फकीरों को पिता परमात्मा, परमात्मा के बेटे तथा पवित्र प्रेम के बारे में सबकुछ बताते हुए दैवी प्रकाश के बारे में बताया और कहना जारी रखा—''परमात्मा का बेटा हम सबको बचाने और प्रार्थना करने के तरीके को सिखाने के लिए पृथ्वी पर आ गया। सुनो और मेरे पीछे इन शब्दों को कहो—हमारा पिता।''

पहले फकीर ने दोहराया—''हमारा पिता!'' और उसके पीछे दूसरे ने और अंत में तीसरे ने भी।

''जो स्वर्ग में है।''

फकीरों ने कहने का प्रयास किया—''जो स्वर्ग में है।'' परंतु उनमें से कोई भी इसे समझ नहीं पाया। लंबे फकीर के होंठ अजीब थे, इस कारण वह बोल नहीं सका। तीनों में से सबसे बूढ़ा फकीर शब्दों को समझ नहीं सका और तीसरे ने शब्दों को निराशाजनक ढंग से आपस में मिला दिया।

निरुत्साहित न होते हुए पादरी चट्टान पर बैठ गया। तीनों फकीर उसके सामने खड़े रहे और वाक्यखंड को दोहराते रहे, जब तक बार-बार कहने से याद नहीं हो गया। रात तक पादरी निरंतर प्रयत्न करता रहा और एक-एक शब्द को सौ-सौ बार दोहराता रहा, जब तक फकीर पूरा वाक्यखंड बोलना सीख नहीं गए। और फिर जैसा कभी-कभी होता है, शब्द परस्पर मिलाए जाने लगे तो पादरी रुक गया और पुनः नए सिरे से शुरू किया। पादरी ने उसको तब तक नहीं छोड़ा, जब तक उन्होंने परमात्मा की पूरी प्रार्थना याद नहीं कर ली और व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर दोहरा नहीं सके।

रात गहरी हो चुकी थी और चाँद सागर के ऊपर आ चुका था। इसके पहले कि पादरी विदा होने के लिए उठे, उन्होंने पहले की तरह झुककर सलाम किया। उसने सिखाए गए तरीके से प्रार्थना करने के लिए कहते हुए उन्हें चूमा। फिर वह पुनः नाव पर बैठ गया। ज्यों ही नाविक उसे जहाज की ओर लेकर चले, 'हमारा पिता' कहते हुए फकीरों की आवाजों ने उसका पीछा किया। जहाज पर चढ़ जाने के बाद वह प्रार्थना की आवाज को सुन नहीं सका, परंतु चाँदनी में तीन बूढ़े आदमी तट पर खड़े थे।

बादबानों को खोल दिया गया और लंगर उठाया गया। जहाज तेजी से अपने रास्ते पर चल दिया। जहाज के पिछले भाग में बैठा पादरी अब भी चट्टानी टापू को निहार रहा था। जल्दी ही फकीर उसकी आँखों से ओझल हो गए और चाँद के चौड़े रास्ते के लिए केवल सागर ही सामने था। तीर्थयात्री सो गए थे और जहाज पर पूरी तरह शांति थी, परंतु जहाज के पिछले भाग में बैठे पादरी की आँखों में नींद नहीं थी। वह फकीरों और उनको दी गई अपनी शिक्षा से आनंदित हो रहा था और परमात्मा को इस बात के लिए धन्यवाद दे रहा था कि वह उनकी सहायता कर पाया।

इस प्रकार सोचता हुआ वह बैठा था और लहरों पर नाचती हुई चाँदनी उसकी आँखों को चुँधिया रही थी कि एकाएक उसे कोई चमकती सफेद वस्तु चाँदनी में उड़ती हुई नीचे आती दिखाई दी। क्या यह कोई बादल था अथवा कोई पक्षी, जो उनका पीछा कर रहा था। पादरी ने सागर को सावधानी से देखा। विचित्र वस्तु शीघ्र ही जहाज पर छा गई। यह बादल नहीं था और न ही कोई पक्षी या बड़ी मछली, परंतु एक विशाल डीलडौलवाले आदमी की आकृति थी। फिर भी यह नहीं हो सकता था, क्योंकि एक आदमी सागर के धरातल पर भला कैसे उड़ सकता है?

पादरी ने जहाज चालक को पुकारा—''देखो, भाई!'' वह इशारा करते हुए चिल्लाया—''वह क्या है?'' परंतु वह पहले ही जानता था। तीन फकीर अपनी सफेद दाढ़ियों के साथ सागर पर उड़ रहे थे और उन्होंने जहाज को ऊपर-नीचे से देखा, जैसे वह लंगर डाले हुए हो। जहाज-चालक ने भयभीत होकर हैंडल को छोड़ दिया और चीखा—''परमात्मा, हमारी रक्षा करो। फकीर, फकीर! वे ऐसे भाग रहे हैं, जैसे भूमि पर भाग रहे हों।''

भयसूचक चेतावनी जहाज के सभी लोगों को जहाज की छत पर ले आई और वे भयभीत हो जहाज के पिछले भाग में एकत्र हो गए। एक-दूसरे का हाथ पकड़े अब भी फकीर, चाँदनी में चमकते सागर पर, जहाज को रोकने के लिए हाथ हिलाते उड़ रहे थे। भले ही वे खुश्क भूमि पर दौड़ते हुए प्रतीत होते थे, परंतु उनके पैर चलते हुए दिखाई नहीं देते थे। इसके पहले कि जहाज हवा को पकड़ता, फकीर वहाँ आ गए और एक ओर सवार हो गए। एकत्र हुए लोगों के सामने खड़े होकर उन्होंने कहा, ''ओ, परमात्मा के सेवक! जो कुछ भी तुमने सिखाया था, हम वह सब भूल गए हैं। जब तक हम उसे दोहराते रहे, वह हमें याद रहा, परंतु जब हमने एक घंटे तक दोहराना बंद कर दिया तो शब्दों में से एक को भूल गए। हम उसको पुनः याद नहीं कर सके और इस प्रकार सब भूल गए। हमें एक भी शब्द याद नहीं है; कृपया हमें पुनः सिखाओ।''

पादरी ने क्रॉस का चिह्न बनाया और फकीरों के सामने घुटनों के बल यह कहता हुआ झुक गया, ''ओ पवित्र फकीरो! परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। अब सिखानेवाली कोई बात नहीं रही। केवल हम पापियों के लिए प्रार्थना करो।'' तत्पश्चात् वह उनके पैरों पर झुक गया।

एक क्षण के लिए फकीर रुके और फिर सागर पर उड़ने के लिए मुड़े। अगले दिन प्रातःकाल जहाज की छत का वह भाग, जहाँ वे खड़े हुए थे, चमक रहा था।

सा अ

(पुस्तक 'रूस की श्रेष्ठ कहानियाँ' से साभार)

उसे घर जाना है

• अनिल जोशी



हिंदी अनुवाद, निबंध, लेख, नाटक, कविता, समीक्षा, ब्लॉग का नियमित लेखन। 'मोर्चे पर', 'नींद कहाँ है' और 'धरती एक पुल' (संपादन—ब्रिटेन के कवियों का संकलन) कविता-संग्रह चर्चित तथा 'प्रवासी लेखन : नई जमीन, नया आसमान'। संप्रति : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के उपाध्यक्ष।

जैसे फूलों में होती है सुगंध
सरसों में पीलापन
आम में मिठास
ओठों पर प्यास
वैसे ही उसकी साँसों में बसा हुआ है घर
इसलिए
उसे तो घर ही जाना है।

'पर तुम्हारा घर तो यहाँ भी है।'
वह रुआँसा हो जाता है
'यहाँ मैं रहता हूँ
किराए का छोटा सा मकान है
मेरा घर गाँव में ही है।'

वह सूनी आँखों से देखता है
दीवारों और
चारों तरफ फैले ईंटों के अनंत विस्तार को
जिसमें उसकी साँसें
रोज कम हो जाती हैं।

उसे यह नहीं पता
कि उसे कोरोना हो गया तो
वह आखिरी साँस कैसे छोड़ेगा?
कौन से सरकारी अस्पताल की बेंच पर
निपट परायों के बीच
दम तोड़ेगा।
उसे घर जाना है।

दरअसल उसे उपचार पर भरोसा नहीं है
उसे लगता है
माँ ने पूजा की है
पत्नी ने रखा है वट-सावित्री व्रत
पिता ने दुआएँ माँगी हैं
दवाई और उपचार से क्या सधेगा!
अगर बचेगा तो
वह
उनकी दुआओं की वजह से बचेगा
उसे घर जाना है।

उसे लगता है
मकान मालिक के लिए है वह सिर्फ
किराएदार
कारखाना मालिक के लिए सिर्फ
मजदूर
सड़क पर चलनेवालों के लिए
—ओए बिहारी

कोरोना बीमारी है
पर मनुष्यता का अपमान
यह तो महामारी है।

उसके लिए कौन यहाँ अपना है?
शहर एक भयावह सच है तो
घर, गाँव एक खूबसूरत सपना है
उसे घर जाना है।

हाय!
राजनीति ने सत्तर सालों में
इतना भी अर्जित नहीं किया विश्वास
कि
मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री
रोकने के लिए खड़े हैं जोड़कर हाथ
सुन नहीं रहा उनकी बात,
वह जिद पर है
उसे नहीं रहना इस कठिन समय में
हमारे संवेदनहीन शहर में,
उसे घर जाना है।

मनुष्यता सड़क पर है
उसे पुलिस ने मुरगा बना रखा है
वह उकड़ूँ चल रहा है
उसे कोई परेशानी नहीं है
शहर में रोज ऐसे ही चलवाते हैं
रेंगना उसकी सामान्य मुद्रा है
पर चाहे जो हो
उसे घर जाना है।

उसे चलना है
पाँच, दस, पचास, सौ, दो सौ, चार सौ कि.मी.
भूख, प्यास, गरमी, तेज धूप, पाँव में छाले
पता नहीं वह कहाँ तक पहुँचता है!
वह जीता है
या मरता है
व्यवस्था को क्या फर्क पड़ता है!
बस, उसे घर जाना है।

यह सभ्यता की शाम है
और
जैसे पंछी लौटते हैं घोंसले में
जैसे पशु लौटते हैं अपनी माँदों में,
अपने विस्तार पर पश्चात्ताप करती
पंख समेट रही है सभ्यता
जिस-जिस को इस सभ्यता ने घर से बेघर कर
दिया था
वे अब जिद पर हैं,
उन्हें घर जाना है।



दूरभाष : ९८९९५५२०९९
anilhindi@gmail.com

मेरे प्रातः स्मरणीय अध्यापकगण

● प्रेमपाल शर्मा

गाँव के जूनियर हाई स्कूल, जरारा से कक्षा आठ में प्रथम स्थान प्राप्त कर मैं आगे की पढ़ाई के लिए अपने गाँव से १०-११ किलोमीटर दूर स्थित बरौली इंटर कॉलेज, बरौली राव में गया। यहाँ पर हमारे जरारा गाँव के श्री हरपाल सिंह राघव जूनियर कक्षाओं के अध्यापक थे। दो साल पहले उन्होंने अपने गाँव के कुछ लड़कों के यहाँ पर एडमीशन करवा दिए थे। वे लड़के ऐसे थे, जिन्हें पढ़ाई-लिखाई से कोई मतलब न था; दादागिरी और मार-पीट करना उनका शगल था। अपने उद्दंड व्यवहार से इन लड़कों ने हरपाल सिंह मास्साब की बड़ी छीछालेदर कराई थी। जरारा गाँव का नाम बहुत बदनाम हो गया था। इसके बाद से बरौली स्कूल के मैनेजमेंट के लिए हमारे गाँव, यानी जरारा जूनियर हाई स्कूल के छात्र-छात्राओं को दाखिला देने में छाछ पीने से भी मुँह जलता था। मैं जब यहाँ दाखिले के लिए पहुँचा तो मुझे भी संदेह की नजर से देखा गया। थोड़ी दिक्कत के बाद मुझे यहाँ कक्षा ९ के कला वर्ग में प्रवेश मिल गया।

मेरे साथ मेरे गाँव मीरपुर के मेरे दो सहपाठी अनुसूचित जाति के, जरारा गाँव के मास्साव हरपाल सिंह के एक भतीजा-भतीजी तथा यहीं के मेरे सहपाठी विनोद सिंह राघव ने यहाँ दाखिला लिया था। जुलाई के शुरू में हमारा दाखिला तो हो गया था, पर पढ़ाई शुरू नहीं हुई थी। उन दिनों जुलाई का पूरा महीना दाखिलों की भेंट चढ़ जाता था। मैं हमेशा पुरानी किताबें आधे मूल्य पर ले लिया करता था। मेरे से पहले के जिन छात्रों ने कक्षा दसवीं पास की थी, उनसे मैंने कक्षा-९ की पुरानी किताबें खरीद ली थीं और उनको पिताजी की गत्ते की एक पुरानी अटैची में करीने से रख दिया था।

उन्हीं दिनों हमारे परिवार पर एक विपत्ति आन पड़ी। मेरी दादी ने पुराने कच्चे कोठरों की जगह छोटे-छोटे तीन पक्के कमरे बनवाए थे, कमरे तो तैयार हो गए थे, पर पलस्तर नहीं हुआ था। उनके आगे फूस का छप्पर डाल दिया था। घर के पिछवाड़े में खेत थे। छोटे चाचाजी की शादी कुछ महीनों पहले हुई थी। चूँकि मेरी दादीजी के कोई भाई न था, सो जो थोड़ी जमीन थी, वह उन्हें मिल गई थी, उसी को बोआई-कटाई के लिए दादी अपने मायके जाती रहती थीं। आज ही दादी मेरे पिताजी को लेकर अपने मायके गई थीं। उसी रात जोरों की आँधी के साथ घनघोर बारिश हुई। वह रात कालरात्रि मालूम देती थी। अनेक पेड़ भूशायी हो गए थे; गरीबों के छप्पर और झोंपडियाँ उड़ गई थीं। उस अँधेरी रात में चोरों ने छोटे चाचाजी वाले कमरे की पिछवाड़े से दीवार फोड़ सब सामान निकाल लिया था।



सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले', 'सचित्र जीवनोपयोगी पेड़-पौधे', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'शुद्ध अन्न, स्वस्थ तन' कृतियाँ चर्चित। 'साहित्य मंडल' नाथद्वारा द्वारा 'संपादक-रत्न' की मानद उपाधि। संप्रति 'सवेरा न्यूज' (साप्ताहिक) का संपादन एवं आयुर्वेद पर स्वतंत्र लेखन।

इसमें चाचाजी के दहेज में मिला रेडियो, कपड़े, जेवर, बरतन सब पर चोरों ने हाथ साफ कर दिया था। इतना ही नहीं, न जाने क्या समझकर चोर मेरी किताबों की वह अटैची भी उठा ले गए और उसे बंबे (राजबहा) के घुटअन पानी में फेंक दिया।

प्रातः जब माँ ने देखा तो शोर मचाया। हम सब लोग घर के पीछे जाकर चोरों के निशान तलाश करने लगे तो खेत की मेंड़ पर पीतल का एक लोटा पड़ा मिला। मुहल्ले का एक व्यक्ति दिशा-मैदान के लिए बंबा पर गया था तो वहाँ उसने अटैची पड़ी देखी। मैं अटैची उठाकर पानी से बाहर लाया। किताबें फूलकर गल गई थीं। मैं तो बस जोरों से रोए जा रहा था। कंगाली में आटा गीला हो गया था। अब मैं कैसे पढ़ पाऊँगा, यही फिक्र सता रही थी। चार भाई-बहनों के परिवार को पालना पिताजी के लिए पहले ही मुश्किल हो रहा था। पिताजी दिन-रात मेहनत करते थे। मेरे मुहल्ले में मेरे एक बाबा लगते थे। नाम तो उनको डी.एल. शर्मा था, पर पूरा गाँव उन्हें 'दरोगाजी' कहता था। मुहल्ले के कोर्ट-कचहरी-थाने के सब काम वे ही निपटाते थे। गाँव के वे सयाने व्यक्ति थे। मेरे प्रति उनका विशेष अनुराग ही था कि एक दिन कहने लगे, 'बेटा, तू चिंता मत कर, मैं तेरे स्कूल चलूँगा और तेरे प्रिंसिपल से बात करूँगा। मैं तेरी पढ़ाई यों रुकने नहीं दूँगा, बस तू हौसला रख।'

और सचमुच एक दिन मुझे साथ लेकर मेरे स्कूल के प्रधानाचार्य आदरणीय मानवेंद्र सिंह राघवजी से मिले। इन दोनों का परिचय बस इतना ही था कि प्रिंसिपल साहब कभी-कभार स्कूल के काम से अलीगढ़ की कोर्ट-कचहरी जाते और इधर दरोगाजी मुहल्ले में चल रहे एक मुकदमे की पैरवी के लिए इस कोर्ट में जाते रहते तो वहाँ दोनों की भेंट हो जाया करती

थी। प्रधानाचार्य महोदय ने बड़ी गर्मजोशी के साथ उन्हें कुरसी पर बैठाया और आने का कारण पूछा। दरोगाजी ने मेरे घर का सारा दुखद किस्सा बयाँ कर कहा, "प्रिंसिपल साहब, यह लड़का बहुत होनहार है। गरीबी की मार से बेहाल है। आप इसकी मदद कीजिए। यह पढ़ने में बहुत होशियार है और मेरा दावा है, यह एक दिन आपके स्कूल का नाम रोशन करेगा।" प्रिंसिपल साहब हमारे यहाँ के लड़कों की शोहरत से पहले ही वाकिफ थे। प्रिंसिपल साहब ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा, "मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ; क्योंकि यह लड़का न तो एस.सी. है और न एस.टी.। जनरल कैटेगिरी में मेरे पास मदद का कोई प्रावधान नहीं है।" लेकिन दरोगाजी अपनी बात पर अड़े रहे। और आखिरकार प्रिंसिपल साहब बोले, "देखो दरोगाजी, विद्यालयों में जनरल कैटेगिरी के विद्यार्थियों के लिए एक व्यवस्था होती है कि त्रैमासिक परीक्षा में जिन विद्यार्थियों का प्रदर्शन अच्छा रहता है, उनकी योग्यता के आधार पर पी.एफ. फंड से चौथाई, आधी या पूरी फीस माफी की सुविधा मिलती है। यह मेरे अधिकार क्षेत्र में है। त्रैमासिक परीक्षा में इस लड़के के अंक अच्छे आए तो मैं इसकी पूरी फीस माफ कर दूँगा। बाकी दो महीने की बात है, तो इसकी फीस मैं अपनी जेब से दूँगा।"

और फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले, "बेटा, जब तुम्हारे क्लास टीचर फीस जमा करते हैं, तब तुम मेरे से फीस लेकर वहाँ जमा करा देना।" एक चपरासी को बुलाकर उसे हिदायत दी—"सुनो, इस लड़के को दो पेन स्याही रोजाना देनी है।" (उन दिनों फाउंटेन पेन से लिखाई होती थी) बाद में स्कूल की लाइब्रेरी से पुरानी कुछ किताबें भी दिलवा दीं। प्रत्येक महीने की १० तारीख को 'फी-डे' होता था। मैं जब फीस लेने उनके ऑफिस में उनके पास जाता था तो वे फीस के पैसे मुझे दे देते और मैं उन्हें अपने क्लास-टीचर के पास जमा करा देता था। ऐसे दयावान और दूसरे के दुःख को समझनेवाले इनसान बिरले ही होते हैं, परंतु मेरे आदरणीय प्रिंसिपल महोदय ऐसे ही थे।

पढ़ाई अब शुरू हो गई थी, मैं बिना नागा पैदल ही स्कूल जाने लगा। स्कूल मेरे गाँव से ग्यारह किलोमीटर दूर है। पाजामा-बुशर्ट पोशाक में नंगे पाँव खेतों की पगडंडी से, रास्ते में पड़नेवाले गाँवों के बीच से शॉर्टकट निकल जाता था। मन में पढ़ाई की ऐसी उमंग थी कि यह सब कष्ट महसूस नहीं होता था। कुछ महीनों बाद पिताजी ने एक पुरानी साइकिल खरीद दी थी, जो अकसर खराब होती रहती थी। मैं पढ़ाई पर पूरा ध्यान दे रहा था, क्योंकि त्रैमासिक परीक्षा में मुझे बेहतर करके दिखाना था। मैं कक्षा नौ के 'ए' सेक्सन में था और मेरे विषय थे—हिंदी, अँगरेजी, गणित, टेक्नीकल ड्राइंग और अर्थशास्त्र। हमारे क्लास-टीचर थे—श्री के.के. गौड़, यानी कृष्ण कुमार गौड़। अत्यंत सौम्य, अत्यंत शांत, पं. दीनदयाल उपाध्यायजी की तरह छोटी मूँछें। ललाट पर तेज देदीप्यमान रहता। खुले मुख मैंने उन्हें कभी हँसते हुए नहीं देखा, उनके होंठों में आनेवाली मुसकान मुझे अभिभूत कर देती थी। वे जरूरत भर के लिए ही बोलते थे।

स्टाफ-रूम से बगल में हाजिरी रजिस्टर दबाए जब वे क्लास-रूम की ओर आते थे तो उनकी चाल में एक लय होती थी, हड़बड़ी बिल्कुल नहीं, भागा-दौड़ी एकदम नहीं। वे अपना सब काम समय पर करने के पाबंद थे। उनका कद लंबा नहीं था, पर टेरीकॉट का धवल कुरता-पाजामा उन पर खूब फबता था। वे बड़े ध्यान और शांतिपूर्वक हमारी हाजिरी लेते। वे विद्यार्थियों को दंड के हिमायती नहीं थे। शायद ही उन्होंने कभी किसी को डाँटा हो; उनकी क्लास में बड़ी शांति रहती थी। वे बड़ी गंभीरता से ब्लैक बोर्ड पर निर्मेय-प्रमेय का आरेख बनाकर समझाते थे। मैं हमेशा अपनी कक्षा के दाहिनी ओर की पहली पंक्ति में सबसे आगे बैठता था; बाईं ओर लड़कियाँ बैठती थीं। पाठ को पढ़ाते और समझाते समय मैं उनकी दृष्टि के केंद्र में रहता था। मैं समझ जाता तो गरदन हिला देता, फिर वे आगे समझाने लगते थे। वे बरौली कसबे के ही किसान परिवार से थे, क्योंकि एक बार मैं रविवार को माँ की दवाई लेने वहाँ गया था, तब मैंने अपने इन मास्साब को सिर पर भूसे की गठरी ढोते देखा था।

श्रीमान हरिस्वरूप पचौरीजी हमें हिंदी पढ़ाते थे। वे बड़े ही विद्वान् और अनुशासनप्रिय अध्यापक थे। वे कुरसी की अपेक्षा मेज पर बैठकर पढ़ाते और पूरी कक्षा पर पैनी नजर रखते। कुछ महीनों बाद उनका तबादला हो गया या उन्होंने खुद करा लिया था। उनका बड़ा ही भव्य विदाई समारोह हुआ। विद्यार्थियों में उनका सम्मान ऐसा था कि जब वे विदा होकर चले, विद्यार्थी उनके पैरों में लोट-लोट जा रहे थे। उनको उठाते-उठाते मास्साब का चेहरा भी आँसुओं से तर हो रहा था, उन्हें एक-एक कदम आगे बढ़ाना मुश्किल हो रहा था। हम सब विद्यार्थी इतने भाव-विह्वल हो रहे थे, जैसे हमारा पिता, हमारा संरक्षक हमें छोड़कर जा रहा हो! कक्षा में न पढ़ानेवाले आरामपरस्त अध्यापक उनसे बहुत चिढ़ते थे। वे पढ़ाते नहीं थे, पाठ को नाना प्रकार से व्याख्या कर दिमाग में उतार देते थे।

उनके बाद साँवले-सलोने श्री अग्रवालजी हमें हिंदी पढ़ाने लगे। वे रोजाना अलीगढ़ शहर से आया करते थे और हमेशा पान चबाते रहते थे। कक्षा में भी वे गाल में पान दबाए रहते, उनका एक गाल कुछ फूला रहता और होंठ लाल। पर वे पढ़ाते बहुत अच्छा थे। पद्य को लय-ताल में सुनाकर उसकी विभिन्न प्रकार से व्याख्या करते। वे भी छात्रों को मारते-पीटते नहीं थे। पढ़ाते हुए भी बड़ी मृदुल मुसकान उनके चेहरे पर रहती थी। उनके सिर के आगे के बाल थोड़े उड़ गए थे, सो उनका पूरा ललाट दमकता रहता, उनकी पेंट-बुशर्ट की क्रीज भी कभी खराब नहीं होती थी।

आदरणीय बी.एस. सिंह हमें गणित पढ़ाया करते थे। उनका कद लंबा नहीं था, एकदम शांत स्वभाव के, पर उनकी आवाज बड़ी ओज भरी और मीठी थी। गणित के वे जादूगर थे। खेल की तरह गणित के कठिन सवाल चुटकी बजाते हल कर देते और हमें सिखा भी देते थे। वैसे तो हम तीसरी कक्षा से ही गणित पढ़ते आ रहे थे, परंतु उनके जैसा गणित का विद्वान् शिक्षक मुझे नहीं मिला था। गणित पढ़ाने में अद्भुत थे वे। बहुत जल्दी ही मैं उनका स्नेहभाजक हो गया था। अभ्यास के एक-दो सवाल समझाकर वे पूरी कक्षा को बोल देते थे कि कोई दिक्कत आए तो प्रेमपाल से पूछ लेना। हम झुंड में बैठकर सवाल करते रहते और वे अपनी कुरसी पर बैठे हमें बड़े शांत भाव से देखते रहते। पर वे क्लास छोड़कर नहीं जाते थे। सर्दियों में वे हमें मैदान में धूप में बैठाकर पढ़ाते थे। मेरे ये मास्साब बड़े ही सहृदय और सदय थे। वैसे कक्षा छह से आठवीं तक मेरे गुरुजनों ने सुंदर लेखन

के लिए मेरी कॉपी पर कई-कई बार गुड-वैरी गुड लिखा था। पर यहाँ इन मास्साब ने मेरी आरेख की कॉपी पर गुड लिखा और पूरी कक्षा को बताया भी कि अपने अब तक के अध्यापक-जीवन में मैंने पहली बार इस छात्र की कॉपी पर गुड लिखा है। एक बार उन्होंने बताया था कि पहले वे बड़े गुस्सैल थे, यहाँ से पहले वाले स्कूल में एक बार थप्पड़ से एक विद्यार्थी के कान का परदा फट गया था, तब से उन्होंने छात्रों को पीटना तो दूर, डाँटना भी छोड़ दिया। अब वे बेहद शांत रहते थे। शायद उन्हें यह अपराध-बोध सताता रहता हो। कबीरजी ने कहा भी है—'गुरु कुम्हार सिस कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट। अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट॥' पर उनसे गलती हो गई थी। उनका शांत चेहरा आज भी मेरी आँखों में चलचित्र सा दिखता है।

श्री शिशुपाल सिंह मेरे अर्थशास्त्र के अध्यापक थे—बड़े ही दिलखुश और छात्रों से दोस्ताना अंदाज में बात करनेवाले। वे इटावा के पास के रहनेवाले थे, बरौली में ही सपरिवार रहते थे। घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी मूँछ, गौर वर्ण के गुरुजी बड़े डील-डौलवाले थे। हम छात्रों को वे 'लला' कहकर पुकारते थे; सच में उनका यह संबोधन हमें बड़ा अपना सा और भला लगता था। आगे कक्षा दस में वे मेरे क्लास टीचर रहे। कभी-कभी उनकी कक्षा में हँसी-मजाक का वातावरण भी बन जाता था। बिना नागा वे कक्षा में पढ़ाते और घर पर याद करने के लिए प्रश्न दिया करते थे। बहुत जल्दी ही मैं उनका सबसे प्रिय विद्यार्थी बन गया। अर्थशास्त्र विषय मैंने दसवीं तक ही पढ़ा, पर जब तक मैं उस स्कूल में रहा, इन मास्साब का मुझे खूब स्नेह मिला।

एक बार उन्होंने बताया था कि पहले वे बड़े गुस्सैल थे, यहाँ से पहले वाले स्कूल में एक बार थप्पड़ से एक विद्यार्थी के कान का परदा फट गया था, तब से उन्होंने छात्रों को पीटना तो दूर, डाँटना भी छोड़ दिया। अब वे बेहद शांत रहते थे। शायद उन्हें यह अपराध-बोध सताता रहता हो। कबीरजी ने कहा भी है—'गुरु कुम्हार सिस कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट। अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट॥' पर उनसे गलती हो गई थी! उनका शांत चेहरा आज भी मेरी आँखों में चलचित्र सा दिखता है।

श्री भीकंबर शर्मा हमारे अँगरेजी के अध्यापक थे। मध्यम कद के, पतले-दुबले, घुँघराले बाल, साधारण वेशभूषा। उनकी उँगलियाँ सिगरेट की तरह पतली थीं। वे अलीगढ़ शहर से नित्य आना-जाना करते थे। उनके पढ़ाने का तरीका बड़ा अनोखा था। कक्षाएँ शुरू होने के प्रथम दो सप्ताह में छात्र-छात्राओं के लिए कयामत के होते थे। इन दो सप्ताह में मास्साब पढ़ाते नहीं थे, बल्कि आठवीं कक्षा में पढ़कर आए अँगरेजी विषय का मौखिक टेस्ट लेते थे। अँगरेजी शब्दों के मीनिंग, स्पैलिंग या टेंस के बारे में पूछते थे, जो नहीं बता पाते थे, उन छात्रों की अच्छी मरम्मत करते थे। कक्षा के दोनों दरवाजे वे पहले ही बंद कर देते। जब वे मारते तो पूरी कक्षा में चीख-पुकार मच जाती। मार के कारण छात्र गाय की तरह डकराते थे, पिटनेवाले को आँसू पोंछने का भी समय नहीं देते थे। पर मैं उनकी मार का स्वाद कभी नहीं चख पाया, एक बार भी नहीं।

इस मार-पीट से होता यह था कि जो विद्यार्थी अँगरेजी विषय को नहीं चला सकते थे, जो अँगरेजी में बहुत कमजोर होते थे, वे तुरंत अँगरेजी छोड़ दूसरा विषय ले लेते थे। जो थोड़ा हिम्मत करके जमे रहते, वे अलगे सप्ताह निश्चित ही पराभूत हो जाते। इन दो सप्ताह में कच्चे-पक्के विद्यार्थियों की भली प्रकार छँटनी हो जाती थी। वे ही छात्र शेष बचते थे, जो अँगरेजी विषय पढ़ने का प्रण किए रहते। इन मास्साब का मार-पीट करने का मकसद भी यही होता था; फिर वे पूरे साल किसी छात्र को उँगली भी नहीं छुआते थे। हाँ, पढ़ाते बहुत अच्छा थे। उनका मानना था कि लद्धड़ छात्र पूरी कक्षा का अहित करते हैं। उनके चलते अध्यापक पढ़नेवाले छात्रों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते, इससे अध्यापक का रिकार्ड भी खराब होता है। पहले दो सप्ताह तो वे छात्रों को जल्लाद दिखाई देते थे। वास्तव में वे बहुत मेहनती और अच्छे इनसान थे, फिर पूरे वर्ष छात्रों की उन्नति में ही लगे रहते थे।

जैसा कि पूर्व में मैंने थोड़ा जिक्र किया है, उन दिनों इस इंटर कॉलेज के प्रधानाचार्य थे आदरणीय मानवेंद्र सिंह राघव। वे बहुत अनुशासनप्रिय, दूरदर्शी एवं सहृदय प्रधानाचार्य थे। यह इस कॉलेज का सौभाग्य रहा कि इसे उनके जैसा प्रधानाचार्य मिला। उनका रोब ऐसा था कि विद्यार्थी तो छोड़िए, कक्षाएँ शुरू हो जाने पर कोई अध्यापक भी क्लास-रूम के बाहर दिखाई नहीं दे सकता था। अपने ऑफिस की शीशे की खिड़की से चारों ओर बराबर नजर रखते थे। छात्र-छात्राएँ उनके ऑफिस के आगे से निकलने की हिम्मत नहीं करते थे। प्रातः प्रार्थना में सभी अध्यापक प्रार्थना-स्थल पर उपस्थित रहते थे। विलंब से आनेवाले विद्यार्थियों को पीछे एक ओर खड़े होने का निर्देश था। विलंब का वाजिब कारण न होने पर मुर्गा बनने की सजा मिलती थी। इनके प्रधानाचार्य रहते इस विद्यालय की ख्याति दूर-दूर तक फैली। उनका कार्यकाल इस विद्यालय का स्वर्णकाल कहा जाता है। मेरे लिए तो वे देवदूत सरीखे थे। मेरे लिए उनके द्वारा किए गए अनुग्रह-उपकारों को मैं कभी भूल नहीं सकता।

दो-तीन महीनों में अपनी लगन और व्यवहार से मैंने इन सब गुरुजनों का दिल जीत लिया था। सितंबर माह में त्रैमासिक परीक्षा संपन्न हुई। जितना सिलेबस पढ़ाया गया था, सब मुझे कंठाग्र था। परीक्षा-परिणाम आया तो मैं ही नहीं, सब सहपाठी भी दंग रह गए। गुरुजनों से पता चला कि इस विद्यालय के इतिहास में इससे पूर्व किसी विद्यार्थी ने उतने अंक प्राप्त नहीं किए थे और न ही उतना साफ-सुंदर किसी ने लिखा था। मेरे अपने-अपने विषय के शिक्षकगण स्टाफ-रूम में मेरी लिखी परीक्षा-कॉपियाँ अन्य अध्यापकों को दिखा रहे थे और मेरी तारीफ कर रहे थे। इससे लाभ यह हुआ कि जो अध्यापक मुझे नहीं पढ़ाते थे, वे भी मुझे पहचान गए। मैं कभी स्टाफ-रूम की तरफ से निकलता और उन्हें दिख जाता तो तुरंत मुझे अपने पास बुला लेते और मेरे घर के बारे में पूछते। इस परीक्षा-परिणाम से सबसे ज्यादा खुश हुए मेरे प्रिंसिपल साहब।

उन्होंने मुझे अपने ऑफिस में बुलवाया। मेरे को शाबाशी देते हुए बोले, "बेटा, दरोगाजी ने तुम्हारे बारे में जो कहा था, तुम उससे बढ़कर हो। विद्यालय को तुम पर नाज है। अब तुम बिल्कुल चिंता मत करो। मैंने

तुम्हारी पूरी फीस माफ कर दी है। तुम्हें किसी तरह की दिक्कत आए तो मुझे जरूर बताना।" वहीं उसी समय मेरी आँखों में आँसू छलक आए—मैं नहीं जानता कि वे दुःख के थे या खुशी के! मेरे शुभचिंतक दरोगाजी और मेरे माता-पिता तो खुश थे ही, मेरी इस उपलब्धि पर और एक व्यक्ति बेहद खुश थे। वे थे इसी विद्यालय में पढ़ानेवाले जरारा गाँव के हरपाल सिंह मास्साब।

स्कूल से छुट्टी होने के बाद मैं घर पहुँचने की जल्दी में रहता था। मेरे गाँव के सहपाठी कस्बे के बाजार में घूमते-टहलते घर लौटा करते थे। एक दिन मैं गाँव से एक-डेढ़ कि.मी. पहले बंबा की पटरी पर अपनी धुन में घर लौट रहा था। पीछे से हरपाल सिंह मास्साब ने अपने भतीजे और भतीजी के साथ साइकिल पर मेरे बराबर आकर साइकिल रोक दी और मेरे से बोले, "बेटा, तुमने विद्यालय में मेरा सिर गर्व से ऊँचा कर दिया है। सब अध्यापक मुझे कहते हैं—'हरपाल भाई, तुम्हारे गाँव का लड़का बड़ा होशियार और विनम्र है।' यह सब सुनकर मुझे कितनी खुशी होती है, तुम्हें कैसे बताऊँ? पहले मैंने अपने यहाँ के जितने भी लड़कों के दाखिले कराए थे, सबने दंगा-फसाद करके मेरी मट्टी पलीद कर दी थी; पर तुमने हमारे गाँव का, स्कूल का नाम रोशन कर दिया।" फिर अपने भतीजे-भतीजी की तरफ इशारा करके बोले कि "इनको अपनी कॉपी दे दिया करो; इनकी थोड़ी मदद कर दिया करो।"

यह बरौली इंटर कॉलेज ऐसा था कि यहाँ आस-पास के गाँवों के पाँच-छह जूनियर विद्यालयों के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। पढ़ाई में हम विद्यार्थियों में कड़ी प्रतिस्पर्धा रहती थी।

एक वाकया है, शायद आपको रोचक लगे। विद्यालय के मेरे रास्ते में एक गाँव था—गाँवरी, जो बरौली से सोमना जानेवाली सड़क के किनारे बरौली कसबे से दो-ढाई कि.मी. पहले है। इस गाँव के पहली कक्षा से बारहवीं तक के विद्यार्थी बरौली के विद्यालयों में पढ़ने जाते थे। यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या सबसे ज्यादा थी। छोटे-बड़े मिलाकर सब करीब ३०-३२ तो होंगे ही। बच्चे क्या, पूरी बेलगाम वानर सेना थी। वे सब पूरी सड़क को घेरकर चलते थे। इन सबके लीडर मेरी कक्षा के जयबीर और बिजेंद्र थे। एकदम अकड़ू और झगड़े पर उतारू। वे सब बच्चे इतने ढीठ थे कि खूब घंटी बजाने पर भी साइकिल सवार को रास्ता नहीं देते थे, बल्कि उन्हें परेशान ही करते थे। मुझे भी उस झुंड के पास आकर साइकिल से उतर पैदल चलकर साइकिल आगे निकाली पड़ती थी। जब मैं त्रैमासिक परीक्षा में प्रथम आया तो ये दोनों लीडर मेरे मित्र बन गए।

अब जब मैं साइकिल पर इनके बराबर में पहुँचता तो सब बच्चे सड़क के दोनों ओर बँट जाते। मैं बड़ा अचंभे में था। अच्छा, साइकिल पर चढ़कर वे मुझे ही निकलने देते थे, न मेरे साथियों को और न दूसरे किसी को। अब ये दोनों लीडर लिखाई का काम पूरा करने के लिए मेरी कॉपी माँगकर ले जाने लगे। हमारी खूब पटने लगी। मैंने एक दिन जयबीर से कहा, 'मेरे भाई, हम सब यहाँ पढ़ने के लिए आते हैं, पर काम अनपढ़ों जैसा करते हैं। इससे तुम्हारे गाँव की कितनी बदनामी होती है, तुमने कभी सोचा है? सब कहते हैं कि गाँवरी के बच्चे बहुत गंदे हैं। आप लोग तो मास्साबजी को भी नहीं बख्शते हो।' जयबीर पर इसका असर हुआ। अगले दिन साइकिल पर जब मैं उनके झुंड के बराबर पहुँचा कि जयबीर ने मुझे रोक लिया और सब बच्चों को भी। उसने कप्तान की तरह सबके आगे खड़े होकर सभी को ललकारकर कहा, 'आज से कोई बच्चा शरारत नहीं करेगा, सब लोग सड़क के किनारे चलेंगे; किसी यात्री को परेशान नहीं करेंगे। जो ऐसा करेगा तो उसकी खैर नहीं।' इतना कहकर उसने मुझे साइकिल पर चढ़ाया और सबसे आगे निकाल दिया।

सर्दियों में मैं रात को ही पढ़ता था। उन दिनों हमारे घर में लालटेन नहीं थी, मिट्टी के तेल के अकेले दीये से सब काम होते थे। खाना खाने के बाद सब लोग सो जाते, तब मैं ओसारे में अपनी खाट बिछाता। मेरी खटिया के पास ही चक्की थी। घर में काई मेज या स्टूल न होने के कारण दीया ऊँचा करने के लिए चक्की पर डालडा घी का खाली डिब्बा, फिर उसके ऊपर एक और डिब्बा रखकर उस पर दीया रख लेता, तब मुझे पर्याप्त प्रकाश मिल जाता, इससे मुझे ज्यादा झुकना नहीं पड़ता था। पहले मैं अपना लिखने का काम निपटाता, फिर पाठ या प्रश्नोत्तर याद करने का। जब तक मुझे याद न हो जाए, तब तक सोता नहीं था। सोने से पूर्व पूरे पाठ या उत्तर को फिर एक बार बिना देखे, मन-ही-मन में दुहराकर देखता था। इस तरह मुझे काफी रात हो जाया करती थी।

हाड़कँपा देनेवाली उन ठंडी रातों में पूरे गाँव में नीम सन्नाटा पसरा रहता। बस कभी-कभी कुत्तों के भौंकने और सियारों के रोने की आवाज ही उस सन्नाटे को भंग करती थी। मैं अपना ज्यादातर काम रात को ही निपटा लेता था, सुबह को कोई झंझट नहीं रखता था। एक बार की बात है। जोरों की सर्दी पड़ रही थी। रात के कोई ग्यारह ही बजे होंगे। मैं तन्मय होकर प्रश्नोत्तर याद कर रहा था कि जोर का शोर उठा—'ले गयौ…ले गयौ रे…'। हमारे गाँव में नाइयों का मोहल्ला गाँव के बाहर पोखर के किनारे पर है। देर रात को पुन्ना (पूरन सिंह) नाई की घरवाली अपने जेठानी के साथ छोटी बच्ची को गोद में ले शौच के लिए पोखर पर गई। दोनों ने बच्ची को अपने सामने बैठा लिया। उस बच्ची को इन दोनों के आगे से भेड़िया उठा ले गया। मुहल्ले के लोग लाठी-बल्लम और लालटेन ले उसे ढूँढ़ने निकले, पर उसका कहीं पता न चला। प्रातः गाँव के बाहर नील की कोठी के पास उस बच्ची के कपड़े तथा शरीर के अवयव मिले। तब भेड़ियों का ऐसा ही आतंक व्याप्त था। इधर शोर सुनकर मेरी माँ-दादी भी जाग गईं और मुझे जल्दी सो जाने के लिए समझाने लगीं।

मेरी पढ़ाई अच्छी चल रही थी। अर्धवार्षिक परीक्षा में भी मैंने किसी को निराश नहीं किया। मार्च-अप्रैल में नौवीं की वार्षिक परीक्षा भी संपन्न हो गई। मैं अच्छे अंकों से पास होकर कक्षा दस में आ गया। दसवीं कक्षा में बोर्ड की परीक्षा होनी थी, सो मैंने पढ़ाई पर पूरा ध्यान दिया। पढ़ाई में बाधा मेरा स्वास्थ्य खराब होने पर आ ही जाती थी। माँ मुझे पढ़ने का ज्यादा से ज्यादा समय देती थीं। मैंने देखा और खूब महसूस किया कि जो बच्चे पढ़ने में होशियार होते हैं, उन्हें अपने गुरुजनों का अतिरिक्त प्यार ब्याज-स्वरूप मिलता है। मेरे गुरुजनों की स्नेहछाया में मेरी पढ़ाई भली प्रकार से चल रही थी। मेरे पीछे बैठनेवालों की कतार बढ़ती जा रही थी।

दसवीं की बोर्ड परीक्षा के फार्म भी भरवा दिए गए थे। उन दिनों उ.प्र. परीक्षाओं में नकल के लिए कुख्यात था। दसवीं कक्षा का हमारा परीक्षा सेंटर सोंगरा गाँव के हाईस्कूल में पड़ा। यह सेंटर मेरे गाँव से उतनी

ही दूरी पर था, जितना कि मेरा यह स्कूल। परीक्षा से पूर्व मुझे मलेरिया हो गया। जैसे-तैसे ठीक हुआ, पर कमजोरी ज्यादा थी, सो सोंगरा गाँव में एक जानकार के यहाँ पर रहकर परीक्षा देने का निश्चिय किया। मेरे सहपाठी सब गाँव से ही परीक्षा दे रहे थे। परीक्षा प्रारंभ हुई। प्रथम दिन से ही खूब नकल चली। मैंने तो पहले से ही निश्चिय कर लिया था कि नकल नहीं करूँगा। और मैंने अपना वचन ईमानदारी से निभाया। प्रथम प्रश्नपत्र के बाद मैं भी गाँव से परीक्षा देने जाने लगा। परीक्षा-केंद्र पर मेले जैसा वातावरण बन गया। जो भी विद्यार्थी परीक्षा दे रहे थे, उनके साथ दो-दो, चार-चार लोग नकल करानेवाले आते थे। आखिरकार परीक्षा समाप्त हो गई और परीक्षा-परिणाम का इंतजार होने लगा।

जून के मध्य में जब दसवीं का परीक्षा-परिणाम आया तो मैं दंग रह गया। जो कक्षा में सबसे फिसड्डी थे, हमेशा गुरुजी की डाँट-फटकार खाया करते थे, वे फर्स्ट डिवीजन में पास हुए थे। यह सब नकल का ही चमत्कार था। मेरी फर्स्ट डिवीजन चार अंक से रह गई थी। नकल की इस बुरी आदत ने विद्यार्थियों का बड़ा अहित किया है और प्रदेश की शिक्षा-व्यवस्था पर कलंक लगाया है। जो विद्यार्थी मेहनत से पढ़ते हैं, उनके साथ नाइनसाफी होती है। वे हतोत्साहित होते हैं। प्रदेश भर में कुछ स्थान तो नकल के लिए बेहद कुख्यात हो गए थे, जहाँ मोटी रकम लेकर छात्रों को नकल करवाकर पास कराया जाता था। पूरे प्रदेश में नकल का यह कारोबार खूब फल-फूल रहा था। स्कूलों के प्रबंधन नकल करवाकर अपने स्कूल की झूठी ख्याति फैलाते थे कि हमारे स्कूल में बहुत अच्छी पढ़ाई होती है और हमारा रिजल्ट बहुत अच्छा रहता है। प्रदेश के बाहर जाकर आगे की पढ़ाई करनेवाले छात्र-छात्राओं को हेय दृष्टि से देखा जाता था। यह नकल का ही दुष्परिणाम था। छात्र भले ही खूब मेहनत कर पास हुआ हो, फिर भी उसे बाहर अपमानजनक स्थिति झेलनी पड़ती थी। मैंने खुद यह अनुभव किया।

उन्होंने मेरी फाइल देखकर पूछा कि 'यह तुमने बनाई है? मैंने कहा, हाँ सर! फिर उन्होंने मेरे से प्रश्न पूछे और पूछते ही गए। लगभग १६-१७ प्रश्न पूछ डाले। मैंने भी बिना किसी विलंब के फटाफट उत्तर दिए। गरदन हिलाकर मुझे बाहर जाने को कहा तो मैं ठिठक गया और बोला, 'सर, आप और भी चाहे जितने प्रश्न पूछ लें, पर मेरा एक भी नंबर न काटें।' परीक्षक महोदय और मेरे गुरुजी, दोनों हँसने लगे। फिर मेरे गुरुजी ने कहा, 'सर, यह हमारी क्लास का सबसे होशियार लड़का है।'

अब मैं ग्यारहवीं कक्षा में आ गया था। मेरे विषय—हिंदी, अँग्रेजी, संस्कृत, भूगोल तथा राजनीति विज्ञान थे। आदरणीय प्रधानाचार्यजी ने बारहवीं कक्षा तक मेरी फीस माफ कर ही दी थी। इन दो-तीन सालों में पढ़ाई के लिए घर पर लैंप की व्यवस्था हो गई थी। मैं रोजाना इसका शीशा राख से घिस-घिसकर साफ करता था। ग्यारहवीं कक्षा में श्री ओ.पी. सोलंकी गुरुजी हमें अँगरेजी पढ़ाते थे। वे बेहद रुआबदार तथा छात्रों के परम हितैषी थे। पूरे विद्यालय में उनकी धाक थी। गुरुजी छह फीट लंबे, तंदुरुस्त तथा चंद्रशेखर आजाद सरीखे आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। वे धाराप्रवाह अँगरेजी बोलते थे और खुर्जा शहर के पास चोला गाँव के रहनेवाले थे। वे हमें घर के लिए बहुत काम देते थे। एक आदर्श शिक्षक के सारे गुण उनमें थे। इस कक्षा में भी श्री अग्रवाल मास्साब हमें हिंदी पढ़ा रहे थे। श्री शास्त्रीजी संस्कृत तो अच्छी पढ़ाते थे, पर मोटापे के कारण उनकी आवाज कम निकलती रघुवंश, कादंबरी, अभिज्ञान शाकुंतलम के अंश हमारे पाठ्यक्रम में थे। शास्त्रीजी अपने हाथों के नर्तन से उनके अर्थ पूरी तरह स्पष्ट करने की कोशिश करते थे। कुरता-पाजामा में वे बिल्कुल संस्कृत के आचार्य लगते थे।

श्री सूरजपाल सिंह मेरे भूगोल के अध्यापक थे। सीधी-सादी वेशभूषा, विनम्र स्वभाव के ये गुरुजी पढ़ाने में गजब के कलाकार थे। इनकी आवाज बड़ी पतली थी, पर वे अपने विषय के आधिकारिक विद्वान् थे। इतनी विस्तृत व्याख्या करके उदाहरण देकर पढ़ाते थे कि मिट्टी के प्रकार, उसकी पहचान और गुण, वनस्पतियों के प्रकार और इनके ऐसा होने के कारण, मानसूनी वन, शंक्वाधारी वन, मरुस्थलीय एवं सागरीय वन इत्यादि इस ढंग से उन्होंने पढ़ाए थे कि आज भी वे सब कंठाग्र हैं। जमीन की माप-तौल, पैमाइश करना, नक्शा बनाना आदि का प्रैक्टिकल ज्ञान हमारे साथ रहकर देते थे। मैंने बहुत ही जल्दी उनके दिल में जगह बना ली थी।

वार्षिक परीक्षा में भूगोल का प्रैक्टिकल होता है। इसके लिए परीक्षक बाहर से आते हैं। सबसे बाद में वायवा होता है। हमारा जब वायवा हुआ तो उन परीक्षक के साथ हमारे ये गुरुजी भी बैठे हुए थे। एक-एक छात्र को कमरे में बुलाया जा रहा था। हम पीछेवाली खिड़की से चुपचाप झाँककर देख रहे थे। अमूमन हर छात्र से पाँच-छह प्रश्न ही वे पूछ रहे थे। छात्र से उसके प्रैक्टिकल की फाइल लेकर उसका काम देख रहे थे। मेरा नंबर आया तो मैं अपनी प्रैक्टिकल फाइल ले उनके सामने उपस्थित हुआ। उन्होंने मेरी फाइल देखकर पूछा कि यह तुमने बनाई है? मैंने कहा, 'हाँ सर!' फिर उन्होंने मेरे से प्रश्न पूछे और पूछते ही गए। लगभग १६-१७ प्रश्न पूछ डाले। मैंने भी बिना किसी विलंब के फटाफट उत्तर दिए। गरदन हिलाकर मुझे बाहर जाने को कहा तो मैं ठिठक गया और बोला, 'सर, आप और भी चाहे जितने प्रश्न पूछ लें, पर मेरा एक भी नंबर न काटें।' परीक्षक महोदय और मेरे गुरुजी, दोनों हँसने लगे। फिर मेरे गुरुजी ने कहा, 'सर, यह हमारी क्लास का सबसे होशियार लड़का है।' इस तरह मुझे प्रैक्टिकल के तीस अंक में से २८ अंक उन्होंने दिए थे। अपनी इस बचकानी हरकत पर आज मुझे हँसी आए बिना नहीं रहती।

श्री आर.बी. सिंह मेरे राजनीति विज्ञान के अध्यापक थे। जब मैं दसवीं कक्षा में था, तब अपने एक सहपाठी के साथ इनकी कक्षा में बैठ जाता था। संसद् के कार्य, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के कर्तव्य, संविधान, मौलिक अधिकार—ये विषय मुझे बहुत लुभाते थे, सो मुझे यह विषय पढ़ने का ऐसा चस्का लगा कि ग्यारहवीं कक्षा में मैंने राजनीति विज्ञान विषय लेकर लिया था। और यह विषय मुझे इतना भाया कि आगे चलकर मैंने राजनीति विज्ञान में ऑनर्स और एम.ए. भी राजनीति विज्ञान विषय लेकर किया। ये गुरुजी पढ़ाते भी बहुत अच्छा थे। इस प्रकार नौवीं से बारहवीं कक्षा तक मैंने विषय बदल-बदलकर पढ़ाई की। अब मैं इन सब गुरुजनों का भी स्नेहभाजक

बन गया। इस विद्यालय में मेरी बहुत अच्छी साख बन गई थी तो इसी वर्ष मेरा छोटा भाई राजकुमार और उसके दो-तीन सहपाठी गाँव से आठवीं पास करके आगे की पढ़ाई के लिए यहाँ आए तो मेरे एक बार कहने भर से इन सब का साइंस साइड में दाखिला हो गया। यहाँ साइंस साइड (विज्ञान वर्ग) में दाखिला लेना टेढ़ी खीर होता था।

इस तरह मैं ग्यारहवीं पास कर बारहवीं में तथा मेरा भाई नौवीं से दसवीं कक्षा में आ गया था। इस बार हमारे स्कूल का बोर्ड परीक्षा सेंटर कासिमपुर पावर हाउस के इंटर कॉलेज में पड़ा। मेरा बारहवीं का और मेरे भाई का दसवीं का सेंटर यहीं था। यह मेरे घर से लगभग २८-३० किमी. दूर है, अत: घर से परीक्षा दे पाना संभव न था, सो इस सेंटर के पास में ही स्थित रामपुर गाँव में हम अपने एक चाचाजी के यहाँ ठहरे। एक महीना यहीं रहकर परीक्षा दी। यह इंटर कॉलेज पूरे इलाके में कड़े अनुशासन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ पर नकल करना तो दूर, कोई छात्र या छात्रा पीछे मुड़कर भी नहीं देख सकता था। जो केवल नकल के भरोसे पढ़ाई करते थे, ऐसे कई छात्रों ने पहले प्रश्न-पत्र के बाद ही पूरी परीक्षा छोड़ दी। इस बार मुझे बहुत अच्छा महसूस हो रहा था। परीक्षा देने के बाद हम जब परीक्षा भवन से बाहर आते थे तो एक-दूसरे से पूछते थे कि कितने प्रश्न किए? तब मैं देखता कि ज्यादातर छात्र सिर पीटते नजर आते थे। नकल न होने के कारण परीक्षा-केंद्र और वहाँ के शिक्षकों को बुरा-भला कहते थे। मेरे पेपर बहुत अच्छे जा रहे थे, मैंने जो सब पढ़ा और याद किया था।

परीक्षा देकर आने के बाद हम अगले पेपर के रिवीजन में जुट जाते थे, अपने कमरे से बाहर तब ही निकलते थे, जब सायं को खाना खाने के बाद छोटे चाचाजी के साथ खेतों की ओर टहलने जाते थे। ये हरिआम चाचाजी बड़े आजाद खयाल और हँसमुख इनसान थे। सबकुछ अच्छा चल रहा था कि अंतिम पेपर की पूर्व रात्रि को मुझे बुखार चढ़ बैठा। शरीर बुखार से तप रहा था, फिर भी मैं कॉपी हाथ में थामे पढ़ने की कोशिश कर रहा था। रात को चाचाजी ने मेरे पूरे शरीर पर विक्स मल दी और बुखार उतारने की एक टिकिया खिला दी। मेरे हाथ से कॉपी छीनकर मुझे लिटाकर कपड़े से ढक दिया। रात को पसीना आकर मेरा बुखार हलका हो गया। लगभग रात्रि के तीन बज रहे थे। मेरा मुँह सूख रहा था, सो पानी पीकर मैंने लैंप जलाया और पढ़ने बैठ गया। प्रात: चाचाजी ने पेपर छोड़ देने के लए काफी समझाया, क्योंकि अभी भी मुझे बुखार था। पर मैं न माना और परीक्षा देने चला गया। मैंने भरपूर लिखा, पूरी परीक्षा में केवल उस दिन मैंने दो बार पानी पिया। जो मैंने पढ़ा था, सब प्रश्न उसी में से आए थे।

जून माह में ही परीक्षा-परिणाम आ गया। मैं परीक्षा-परिणाम देखने अपने विद्यालय गया तो परिणाम देखकर विस्मय में पड़ गया। दसवीं कक्षा में जिन छात्र-छात्राओं की फर्स्ट डिवीजन आई थी, वे सब-के-सब फेल हो गए थे, उनके नाम वहाँ लगाई गई सूची में नहीं थे, पर मैं सेकेंड डिवीजन से पास हो गया था और मेरा भाई भी।

इस विद्यालय के गुरुजनों और अधिकारियों का कितना अनुग्रह और अपनापन मेरे लिए था, यह मैं आपको बता रहा हूँ। मैं आगे की पढ़ाई के लिए दिल्ली आ गया और दाखिले के लिए अप्लाई करने के बाद कई कॉलेजों में मेरा नाम दूसरी सूची में आ गया। पर मैंने जाकिर कॉलेज (सांध्य) को चुना। दिन में मैंने पूसा आई.टी.आई. में स्टेनोग्राफी कोर्स में दाखिला ले लिया था। समस्या यह थी कि दिल्ली में दाखिले जून में ही हो रहे थे, मेरे पास बारहवीं का कोई डॉक्यूमेंट नहीं था। उ.प्र. में स्कूल जुलाई में खुलते थे। विना कागजात के मेरा दाखिला नहीं हो सकता था। मैं तुरत-फुरत गाँव लौटा और अगले दिन ही अपने विद्यालय जा पहुँचा। सभी गुरुजन मुझे जानते ही थे। इस वर्ष प्रधानाचार्यजी ने अपना तबादला अपने गाँव के पास करा लिया था। छुट्टियों में बाइस प्रिंसिपल तथा एक-दो क्लर्क आते थे। मैंने बाइस प्रिंसिपल महोदय को अपनी समस्या बताई कि सर, दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में मेरा दाखिला हो रहा है; इन तीन दिनों में वहाँ दाखिले बंद हो जाएँगे।

वाइस प्रिंसिपल साहब बड़े खुश हुए, बोले—'बेटा, यह तो बड़ी खुशी की बात है, हमारे एक होनहार विद्यार्थी का दिल्ली के कॉलेज में दाखिला हो रहा है। बड़े बाबू (हेड क्लर्क) इन दिनों नहीं आ रहे हैं। वे तो जुलाई से आना शुरू करेंगे। पर मैं चपरासी भेजकर कल बुलवाता हूँ। तुम कल आ जाओ, तुम्हारे सब डॉक्यूमेंट मैं बनवा दूँगा।' बेचारा चपरासी नौ-दस किलोमीटर उनके गाँव जाकर वाइस प्रिंसिपल साहब का संदेश देकर आया। जून का महीना, भयंकर गरमी और तेज लू चल रही थी। अगले दिन बड़े बाबू विद्यालय आए, मैं भी पहुँच गया। मेरी मार्क्सशीट, ट्रांसफर सर्टिफिकेट, करेक्टर सर्टिफिकेट तथा प्रोविजनल सनद बनवाई और वाइस प्रिंसिपल साहब ने स्वयं मुहर लगाकर हस्ताक्षर करके तैयार कर दीं।

मैं ऐसी विभूतियों को कैसे भूल सकता हूँ, जिन्होंने विद्यालय की छुट्टियाँ होने के बावजूद इतनी भीषण गरमी में अपने जरूरी कार्यों को तिलांजलि देकर अपने एक विद्यार्थी की चिंता की? उनके इस विशेष अनुग्रह और उनकी कर्तव्यनिष्ठता के कारण मेरा दाखिला दिल्ली के कॉलेज में हो सका। वे चाहते तो मुझे नियमों का वास्ता देकर जुलाई में विद्यालय खुलने पर आने के लिए कह सकते थे। मेरे ये गुरुजन नियमों से परे जाकर, अपनी सुख-सुविधा को किनारे रखकर अपने विद्यार्थियों का हित-चिंतन करते थे। मेरे लिए यह गौरव की बात है कि मैं ऐसे गुरुजनों का शिष्य रहा। आज मैं जो कुछ भी हूँ, अपने इन दयार्द्र अध्यापकों के कारण, अपने इन विद्या के मंदिरों के कारण हूँ। इन प्रात: स्मरणीय अध्यापकों के उपकारों का कोई मूल्य नहीं हो सकता। इसलिए तो हमारे पौराणिक ग्रंथों में, ऋषि-मुनियों ने गुरु की महिमा का गान किया है; उन्हें ईश्वर से ऊँचा स्थान दिया है। ऐसे परहितकारक, परदु:खकातर, तपोनिष्ठ अध्यापकों के श्रीचरणों में बारंबार प्रणाम निवेदित करता हूँ। कहा भी गया है—

एकमपि अक्षरमस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद् दत्वा ह्यनृणी भवेत्॥

अर्थात् कोई गुरु (शिक्षक) अपने शिष्य (विद्यार्थी) को एक भी अक्षर का ज्ञान देता है तो पूरी पृथ्वी पर ऐसी कोई वस्तु या धन नहीं, जिसे देकर शिष्य अपने गुरु का ऋण उतार सके।

सा अ

जी-३२६, अध्यापक नगर
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

मैं आर्यपुत्र हूँ

• मनोज सिंह

'हे आर्य!'

'हाँ, आर्या।'

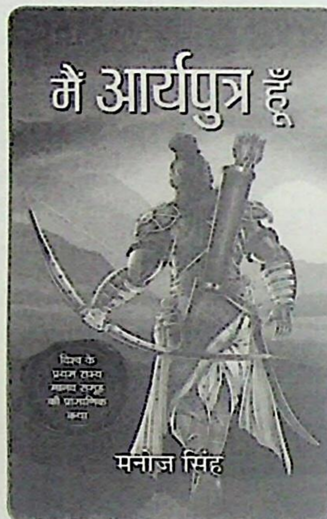
'सुना है, आप आधुनिक युग को हमारी जीवनगाथा सुनाने जा रहे हैं।'

'सिर्फ हमारी नहीं, आर्यपुत्र और आर्यपुत्रियों की भी।'

'कैसे समेटेंगे इतने लंबे मानव इतिहास को?'

'आप साथ दोगी तो संभव होगा।'

'मैं तो सदा आपके साथ हूँ। अगर आपने मन बना ही लिया है तो मेरी इच्छा है कि आप इस कथा को वहाँ से शुरू करें, जब मैं 'पृथ्वी' थी और आप 'आकाश'। फिर हम दोनों ने मिलकर इस सृष्टि को जन्म दिया (ऋ. १.१६०.१, ऋ. १.१६४.३३)।'



'आर्ये, आप तो महान् वेदों के सारगर्भित प्रतीकों की तरह काव्यात्मक हो रही हैं। लेकिन इसे सुनकर अधिकांश समझेंगे कम, भ्रमित अधिक होंगे। इससे पहले कि इन्हें एक और भ्रम आपको और मुझे लेकर प्रारंभ हो, इन्हें पहले यह तो बता दूँ कि आर्य होना होता क्या है?'

'आप सत्य कह रहे हैं आर्य। तो बताइए, आप कौन हैं, जरा मैं भी तो सुनूँ!'

'मैं कौन हूँ? यह मैं जानता रहा हूँ। मगर मुझे दुःख इस बात का है कि कलियुग के मेरे पुत्र ही नहीं जानते कि आर्य होना क्या होता है? ऐसे में 'आर्य कौन थे' जैसे सवाल आधुनिक विश्व में जब पूछे जाते हैं तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। संक्षिप्त में उत्तर देना हो तो आर्य कोई 'रेस' नहीं है। यह उनकी कल्पना है, जो हम आर्यों को भारत में बाहरी और आक्रमणकारी दिखाना चाहते हैं। हम बाहरी नहीं थे, इसका प्रमाण तो मैं आगे विस्तार से दूँगा, लेकिन जो लोग ऐसा कहते हैं, वे इसके माध्यम से असल में अपने एजेंडे को स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन झूठ तो फिर झूठ है, वह देर तक टिक नहीं पाता। इन लोगों को फिर एक झूठ के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। सबसे पहले तो ये झूठ बोलनेवाले लोग अनार्य होने का उत्तम उदाहरण हैं।

आर्य कोई जाति भी नहीं। सीधे-सीधे कहूँ तो आर्य इस विशाल देवभूमि की संतान हैं। फिर सवाल उठता है कि अनार्य कौन थे? वे भी इसी भूमि की संतान थे। लेकिन फिर यह कहते ही पुनः भ्रम हो सकता है। ऐसे में कह सकते हैं कि आर्य सपूत थे और अनार्य कपूत। कहना चाहूँगा कि आर्य होना श्रेष्ठ होना है। अब श्रेष्ठ होना क्या होता है? क्या पढ़ा-लिखा होना या बलशाली होने से इसका संबंध है? नहीं, ज्ञानी तो रावण भी था और शक्तिशाली राजा भी, मगर वह आर्य नहीं है। हाँ, विभीषण आर्य कहलाएगा। रावण की पत्नी मंदोदरी आर्या है। आर्यपुत्र दशरथ की महारानी कैकेयी आर्या नहीं हैं। जहाँ माता सीता होना ही आर्या होने को परिभाषित करता है, वहीं श्रीराम आर्य होने के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। महर्षि वाल्मीकि अपनी रामायण में कहते भी हैं—'रामो विग्रहवान् धर्मः।' (अरण्य कांड, सर्ग-३७, श्लोक-१३) अर्थात् श्रीराम धर्म की प्रतिमूर्ति हैं। उनका संपूर्ण जीवन धर्म पालन पर ही केंद्रित रहा। यही आर्य होना है। वाल्मीकि रामायण (बालकांड, सर्ग-१, श्लोक-१६) में कहा भी गया है कि श्रीराम आर्य थे और अयोध्या कांड (सर्ग-१, २०वें श्लोक) में उन्हें संपूर्ण वेदों का ज्ञाता भी कहा है। संक्षिप्त में कहना हो तो वेदों पर आस्था और धर्म पर चलनेवाले आर्य हैं। उम्मीद करता हूँ कि आर्य होने की परिभाषा कुछ-कुछ समझ आ रही होगी।

कुछ एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा। धृतराष्ट्र आर्यपुत्र होते हुए भी आर्य नहीं, वहीं दासी-पुत्र विदुर आर्य हैं। सभी कौरव अनार्य हैं। दुर्योधन तो दुष्ट है, राक्षस है और अनार्य होने को सच्चे अर्थों में परिभाषित करता है। पांडव आर्यपुत्र हैं तो श्रीकृष्ण यदुवंशी होते हुए भी आर्य हैं। मैं यह जान रहा हूँ कि इन उदाहरणों में से कोई भी वैदिककालीन आर्य नहीं है। लेकिन चूँकि ये त्रेता और द्वापर के चर्चित नाम हैं, अतः इनके माध्यम से आर्य होने को परिभाषित करना सार्थक और सरल है।'

'आर्य होना एक विचार है, भाव है, व्यक्तित्व है, जीवनशैली है, जीवन संस्कार है। यह धर्म का मार्ग है। मैं आधुनिक युग की दो घटनाएँ सुनाती हूँ। एक मंदिर के सामने बैठे एक बूढ़े भिखारी ने दान में गरम कपड़े यह कहते हुए लेने से मना कर दिया कि उसके पास पहले से ही दो हैं और फिर उसने निवेदन किया कि वे गरम कपड़े दूर बैठे एक अपाहिज को दिए जाएँ, जिसके पास नहीं हैं। यह भिखारी आर्य है, जबकि मंदिर के अंदर पूजा करनेवाले कई पुजारी आर्य नहीं भी हो सकते, जो कि पूजन से अधिक दान-दक्षिणा पर ध्यान रखते हैं। एक घर में काम कर रहे एक बढ़ई ने घर के स्वामी को जब कुछ पैसे वापस लौटा दिए, यह कहते हुए कि 'उसका इतना ही बनता है', यह बढ़ई आर्य है।'

'मैं फिर भी यही कहूँगा, कलियुग में आर्य कम मिलते हैं। हाँ, पृथ्वीराज चौहान आर्य थे, जिन्होंने मोहम्मद गौरी को अनेक बार पराजित करने के बाद भी माफ किया। यहाँ मोहम्मद गौरी अनार्य है, क्योंकि उसने धोखे से पृथ्वीराज चौहान को हराया और फिर धर्म-परिवर्तन का दबाव डालने लगा और न मानने पर अंधा तक कर दिया। एक तरफ जहाँ बाबर, अकबर से लेकर औरंगजेब अनार्य हैं, वहीं महाराणा प्रताप और शिवाजी आर्य हैं। आधुनिक युग के संदर्भ में ब्लैकमनी वाले अनार्य हैं, भ्रष्टाचारवाले अनार्य हैं। जो कोई भी व्यवस्था को नहीं मानते, अतिरिक्त धन संचय में लीन हैं, देशद्रोही हैं, समाज-विरोधी हैं, वे सब अनार्य हैं। हर युग में अनार्यों की अपनी शक्ति रही है और उनके तथा आर्यों के बीच संघर्ष चलता रहा है। लेकिन कलियुग में ये अधिक हावी हैं।'

'मैं फिर भी यही कहूँगा, कलियुग में आर्य कम मिलते हैं। हाँ, पृथ्वीराज चौहान आर्य थे, जिन्होंने मोहम्मद गौरी को अनेक बार पराजित करने के बाद भी माफ किया। यहाँ मोहम्मद गौरी अनार्य है, क्योंकि उसने धोखे से पृथ्वीराज चौहान को हराया और फिर धर्म-परिवर्तन का दबाव डालने लगा और न मानने पर अंधा तक कर दिया। एक तरफ जहाँ बाबर, अकबर से लेकर औरंगजेब अनार्य हैं, वहीं महाराणा प्रताप और शिवाजी आर्य हैं। आधुनिक युग के संदर्भ में ब्लैकमनी वाले अनार्य हैं, भ्रष्टाचारवाले अनार्य हैं। जो कोई भी व्यवस्था को नहीं मानते, अतिरिक्त धन संचय में लीन हैं, देशद्रोही हैं, समाज-विरोधी हैं, वे सब अनार्य हैं। हर युग में अनार्यों की अपनी शक्ति रही है और उनके तथा आर्यों के बीच संघर्ष चलता रहा है। लेकिन कलियुग में ये अधिक हावी हैं।'



जबकि हम आर्य इसी देवभूमि के धरतीपुत्र हैं, इसके समर्थन में अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, वैदिक काल में जिस तरह की पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक कर्मकांड और संस्कार के साथ-साथ जीवन-दर्शन और चिंतन था, वही परंपरा आज भी हिंदू समाज में जीवंत है। पाषाण युग से लेकर सरस्वती और फिर सिंधु घाटी से होते हुए आज तक, एक तरह से कह सकते हैं कि संस्कृति की निरंतरता है। यही कारण है कि इसे सनातन कहा गया। वैदिक ग्रंथ इस निरंतरता के साक्ष्य हैं।

वेदों में जिन वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं का उल्लेख है, वे सभी भारत में बहुलता से आज भी पाए जाते हैं। हम आर्य वृक्ष, वनस्पति, औषधियों की स्तुति करते थे। ऋषि भिषक् आथर्वण ऋ. १०.९७.५ में कहते हैं कि 'हे औषधियो, आप अश्वत्थ (पीपल) और पलाश वृक्ष पर निवास करती हो। आप रोगी के ऊपर कृपा करती हो, उसे ऊर्जा और शक्ति प्रदान करती हो।' वैदिक काल से ही पीपल को पवित्र वृक्ष के रूप में माना गया है और यह आस्था आज तक बनी हुई है। हम पलाश, शीशम, बबूल, खदिर और सेमल की लकड़ी से रथ, नाव व यज्ञपात्रों का निर्माण करते थे। खेती के काम के उपयोग में आनेवाले हल और अन्य उपकरण विशेष रूप से इन्हीं से बनाए जाते। ये सभी वृक्ष आज भी भारत के बहुत बड़े भूखंड में बहुतायत में मिलते हैं।

घास (तृण), कुश का उपयोग विभिन्न पूजन में किया जाता रहा है। कई स्थानों पर इसे 'दूब' (दूर्वा) भी कहा गया है (ऋ. १.३८.१, ऋ. १.१६२.८)। यह आज भी सनातन परंपरा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। शीपाल अर्थात् सिवार, जो कि एक जड़विहीन जलीय पौधा है, आज भी पूरे भारत में सर्वत्र उगता है। इसका वर्णन ऋ. १०.६८.५ में हुआ है।'

'आर्यपुत्र, भारत के अनेक नगर व ग्राम वैदिककालीन आर्य महापुरुषों के नाम पर हैं। जैसा कि आप बता चुके हैं, भरत के नाम पर भारतवर्ष पड़ा। उसी तरह ब्रह्मा के नाम पर ब्रह्मवर्त। मनु पौत्र आनर्त के नाम पर आनर्त देश (गुजरात का भाग), कुशांब के नाम पर कौशांबी, विदर्भ के नाम पर वैदर्भ देश, महाराज कुरु के नाम पर कुरु देश, महाराज हस्तिन के नाम पर हस्तिनापुर, वत्स के नाम पर वत्स देश, महाराज अवंत के नाम पर अवंति देश। ये सब नाम अति प्राचीन हैं। हम आर्यों के प्राचीन इतिहास के ये नाम एक साक्ष्य और प्रमाण हैं, अब ये तो गलत नहीं हो सकते। वेदों में उर्वशी का वर्णन है (ऋ. १०.९५ सूक्त)। यही उर्वशी भारतीय लोककथाओं में भी आती है। वेदों में मनु का संदर्भ है (ऋ. १.८०.१६) और 'मनुस्मृति' हिंदुस्तान का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। हम आर्यों के सभी तीर्थस्थान भी भारत में ही हैं।

गांधार, अंग, मगध, मूंजवान, (अ.वे.५.२२.१४), जिनका वर्णन आपने भी किया है, के साथ-साथ बाह्लीक (अ.वे.५.२२.५), कंबोज जनपद भारत की प्राचीन सीमा के अंदर ही थे। मूजवंत पर्वत (ऋ. १०.३४.१), रसा, सिंधु, वंक्षु (ऋ. ५.५३.९) आदि भी भारतीय परंपरागत क्षेत्र के अंदर ही माने जाते रहे हैं। इनका वेदों में वर्णन क्या प्रमाण नहीं है?

वैदिक राजा पुरुरवा के दो पुत्र हुए—आयु और अमावसु। आयु ने पूरब में जाकर कुरु, पांचाल और काशी विदेह राजशाही स्थापित की, जबकि अमावसु ने पश्चिम की ओर गांधार, पर्शु और अरट्ट में अपनी सत्ता स्थापित की। ये सरस्वती के तट से निकले थे। एक वैदिक राजा की वंशावली को क्या प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए? ऐसे अनेक राजवंशों के प्रमाण उपलब्ध हैं।

हे आर्य! कोई बाहरी आक्रमणकारी जब किसी अन्य देश में प्रवेश करता है तो बाहर से भीतर आता है या भीतर से बाहर जाता है?'

'यह कैसा प्रश्न हुआ, आर्या! स्वाभाविक रूप से बाहर से भीतर आता है।'

'और इसी स्वाभाविक तर्क के आधार पर ही मैं भी एक प्रश्न पूछना चाहूँगी। अगर यह मान लिया जाए कि हम आर्य बाहर से आए थे तो पश्चिम दिशा से प्रवेश करने पर सर्वप्रथम सिंधु के तट पर बसना चाहिए था और फिर पूरब दिशा की ओर बढ़ना चाहिए था। लेकिन वेद और पुरातत्त्व के प्रमाण कहते हैं कि हम आर्य पहले सरस्वती के तट पर बसे थे, फिर सिंधु की ओर बढ़े। यही नहीं, सरस्वती काल से भी पहले हम आर्यों का इतिहास विश्व की प्राचीनतम नगरी शिव की काशी और मनु की अयोध्या से संबंधित रहा है। और ये दोनों नगर भारत भूखंड के भीतर सरस्वती नदी

के पूरब दिशा में हैं। अर्थात् हम आर्य पूरब से पश्चिम दिशा की ओर बढ़े थे।...तो फिर ये कैसे बाहरी (?) आर्य थे जो भीतर से बाहर (!!) की ओर बढ़े थे।...झूठ के पाँव नहीं होते हैं आर्य, ये झूठे इतिहासकार आपके प्रामाणिक प्रश्नों के उत्तर क्या ही देंगे, जब ये मेरे इस सरल तर्क और सामान्य तथ्य पर बात नहीं कर सकते।'

'असाधारण तर्क आर्या! आपको याद होगा, कई बार मैंने आपको बताया है कि मैं स्थल मार्ग में नदियों को पार करता था। अनेक बार बाढ़ और उफान के कारण यह बहुत मुश्किल होता था। अनेक कठिनाइयों के बाद मैं प्रवास कर पाता था। इस संदर्भ में (ऋ. ५.५३.९) सरयू, सिंधु, कुंभा, रसा और अनितभा नदियों का वर्णन है। इन झूठों से पूछना चाहता हूँ कि क्या यह एक स्पष्ट प्रमाण नहीं है?

आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने आनुवंशिक आधारों के नए अध्ययन प्रस्तुत किए हैं, जिनके मतानुसार भारत के लोगों में किसी आनुवंशिक अर्थात् जेनेटिक परिवर्तन का पता नहीं चलता। उनके अनुसंधान में यह भी पता चला कि यूरोपीय और यूरेशियन जीन पूल भारतीय जीन पूल से पूर्णत: भिन्न है। साथ ही, उत्तर भारतीय जीन पूल भारतीय जीन पूल में कोई भी अंतर नहीं है। यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि मुझे बाहरी घोषित करनेवाली कल्पना और आर्य-द्रविड़ जातिभेद, दोनों ही निराधार हैं। लेकिन इस क्षेत्र में भी पश्चिम के कुछ वैज्ञानिक अपना एजेंडा चलाते रहते हैं और नए झूठ रचकर भ्रम फैलाते हैं।

चाहे जितने भी पुरातत्त्व और वैदिक प्रमाण उपस्थित हो जाएँ, फिर भी इन झूठों के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता, क्योंकि इन लोगों और संगठन की यह राजनीतिक जरूरत बन चुकी है। उनके विचारों में परिवर्तन लाना किसी भी हाल में संभव नहीं। लेकिन मैं यह सब उनके लिए लिख भी नहीं रहा, मैं तो उनके लिए लिख रहा हूँ, जो आमजन हैं, भारतीय हैं, जो अपने पूर्वजों को नहीं जान रहे और न ही मान रहे। मैं उन विद्वानों के लिए लिख रहा हूँ, जो निष्पक्ष हैं और सत्य व तथ्य को जानना चाहते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि बाद के कालों में भारत भूखंड पर सुनियोजित रूप से आक्रमण होते रहे हैं। इन सबके प्रभाव को भी सामने रखकर विचार करें तो यह कल्पना किसी भी तरह से व्यावहारिक प्रतीत नहीं होती कि उस युग में कोई भी आक्रमण इतने बड़े पैमाने पर हो कि सिंध से लेकर गंगा तक इतना विशाल भूखंड किसी और संस्कृति के द्वारा प्रभावशाली ढंग से आबाद कर दिया जाए।

वेदों में दो तरह के युद्धों का वर्णन है—एक मानवीय, दूसरा प्रतीकात्मक। जहाँ मानवीय युद्ध नहीं है, वहाँ इंद्र की विजय का संबंध वर्षा के लिए किए जाने वाली प्रार्थना और उसके काव्यात्मक विवरण से है। यहाँ काली चमड़ेवाले काले-काले बादल हैं, जिनको परास्त करके वर्षा होती थी। इंद्र के युद्ध संबंधित कथाओं को ध्यान से पढ़ें तो यह आसानी से समझ में आता है कि इन कथा-साहित्यों का विकास एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र में हुआ, जहाँ बादल घुमड़-घुमड़कर आते और धारासार वृष्टि होती। वर्षा के साथ बिजली की कौंध और बादलों की गर्जना भी जुड़ी होती। उड़ते हुए बादल एक बढ़ती हुई वाहिनी की तरह आकाश के चारों ओर छा जाते। जो फिर युद्ध सा दृश्य प्रस्तुत करते, परिणामस्वरूप जल की धाराएँ चारों ओर से फूटकर बहने लगतीं। ऐसा क्षेत्र न ईरान में है, न ही रूस में, न ही यूरोप में। वेदों का ऋतु वर्णन इस बात का प्रमाण है कि वैदिक ऋषि भारत भूखंड के ही थे।

मानवीय युद्धों में भी आर्य के बाहरी होने के प्रमाण नहीं मिलते। शंबर का वध करके इंद्र ने दिवोदास के लिए राज्य का विस्तार किया था (ऋ. ६.२६.५, ऋ. ६.४७.२२)। यहाँ हम सब दिवोदास को तो जानते ही हैं, वह भारत भूखंड के मध्य क्षेत्र का राजा था और पहला राजा नहीं था। इस स्थिति में यह स्वत: ही प्रमाणित हो जाता है कि यह युद्ध भारत में ही बसे राजा के पक्ष में लड़ा गया, जबकि दूसरी तरफ शंबर का संबंध पर्वत और दुर्गम स्थलों से है। यहाँ दिवोदास को वैदिक देवता इंद्र का उपासक दिखाया गया है और फिर युद्ध की शुरुआत शंबर की ओर से हुई थी। ऐसे में आक्रमणकारी शंबर सिद्ध होगा। परंपरागत विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवता जब असुरों के उपद्रवों से तंग आ जाते थे, तभी उनके हाहाकार से द्रवित होकर इंद्र या दैवीय अवतार प्रकट होते थे, जो असुरों का संहार करते थे।

ऋग्वेद में नगर की रक्षा का एक उल्लेख है। यह युद्ध यव्यावती नदी के तट पर हरियूपिया (हड़प्पा सभ्यता का वैदिक नाम) में लड़ा गया था। यहाँ पर भी भ्रम फैलानेवाले इसमें अनार्य नगर पर आर्यों का आक्रमण देखते हैं। मगर दिलचस्प बात यह है कि यह आक्रमण वैदिक राजा चायमान के पुत्र अभ्यावर्ती के ऊपर वरशिख नामक असुर के पुत्र वृचीवान ने किया था। इसमें वृचीवान के द्वारा नगर में आकर तोड़-फोड़ की जाती है। उसकी सेना की संख्या १३० बताई गई है। वे कवच और तीर-धनुष से लैस थे। वृचीवान के हारने के बाद उसके भयभीत हो जाने का उल्लेख है। अंत में, पृथु वंश के राजा 'अभ्यावर्ती' के दानवीर होने का वर्णन भी है (ऋ. ६.२७.४-८)।

एक और उल्लेख आयसीपुर की रक्षा का आया है। यहाँ भी आक्रमण वैदिक नगर पर होता है और सैनिक वेग से अपने पुर की रक्षा में तत्पर होकर बाहर निकलते हैं (ऋ. ४.२७.१)। इन उदाहरणों के बाद आर्यों को बाहरी/आक्रमणकारी दिखाने की थ्योरी क्या स्वत: ही समाप्त नहीं हो जानी चाहिए? और फिर मैं बार-बार कहता हूँ, यहाँ ये असुर भी बाहरी नहीं हैं। इस पर हम चर्चा पूर्व में कई बार कर चुके हैं। इसे इस तरह से भी समझ सकते हैं कि दो स्थानीय राजाओं के बीच संघर्ष हर युग में होते रहे हैं। इनमें से जो राजा असुर प्रवृत्ति का होता, उसे हम वैदिक काल में असुर ही पुकारते थे।'

'हे आर्य! आपके समर्थन में मैं एक प्रामाणिक तथ्य रखना चाहूँगी। ऋ. ६.२७.५ में ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं—हरियूपिया के पूर्वी भाग में इंद्र ने असुर पुत्र वृचीवान को हराकर उसके पुत्रों-सैनिकों का वध किया था। स्पष्ट है कि युद्ध हरियूपिया नगर के पूर्वी भाग में हुआ था। अर्थात् आक्रमण पूर्वी दिशा से हुआ था। ऐसे में आक्रमणकारी देश से बाहर का कैसे हो सकता है? क्योंकि भारत भूखंड की पश्चिमी सीमा में बाहर से आनेवाले के साथ लड़ाई पश्चिम भाग में होगी। अत: न तो आक्रमणकारी बाहरी हो सकते हैं और नगरवाला तो

बाहरी हो भी नहीं सकता। इस तरह से हम आर्यों के बाहरी होने की आधारहीन संभावना पूर्णतः समाप्त हो जाती है।'

'अर्थपूर्ण तथ्य, आर्या! अंत में मैं सिर्फ यही कहूँगा कि मेरे बारे में फैलाई गई एक गलत धारणा के कारण अंग्रेजों ने कितना लाभ लिया, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके कारण हिंदुस्तान में मेरे आर्यपुत्र बँट गए। वे आपस में लड़ रहे हैं।



'सतयुग हम आर्यों का युग था। त्रेता में श्रीराम बनकर आया, तो अनेक आर्य मेरे साथ थे। सीता देवी, वीर हनुमान, भाई लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न, यही क्यों, विभीषण और सुग्रीव भी थे और साथ थी पूरी वानर सेना व अयोध्या के निवासी, जो मुझसे प्रेम करते थे। द्वापर में श्रीकृष्ण बनकर आया, तो आर्यों की संख्या घटी थी। फिर भी युधिष्ठिर और अर्जुन के साथ भीम, नकुल, सहदेव भी थे, राधा और द्रौपदी भी थीं। लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या मैं कलियुग में आर्य हूँ? कलियुग में आर्यपुत्र तो हूँ, आर्य नहीं। क्योंकि अगर उनके पुत्र होने मात्र से मैं आर्य हो जाता, तो फिर यह जन्म आधारित व्यवस्था हुई। यह वंशवाद कहलाएगा, जबकि वे आर्य थे, तो सिर्फ कर्म के आधार पर।

आज मैं आर्यपुत्र तो हूँ, आर्यों का वंशज भी हूँ। लेकिन अगर कलियुग में आर्य नहीं हूँ तो सिर्फ इसलिए, क्योंकि मैं श्रेष्ठ नहीं हूँ। न ही कर्म से, न ही वचन से, न ही धर्म से, न ही संस्कारों से, न ही विचारों से, न ही भावों से, न ही आचरण से, न ही विवेक से। तो फिर मैं अपने आप को आर्य कैसे कह दूँ? मैं तो आर्यों की बौद्धिक संपत्ति का उत्तराधिकारी भी नहीं। मुझे कोई अधिकार नहीं, वेद और उपनिषदों पर बात करने का। जब वैदिक महान् ग्रंथों के पन्नों को पलटता हूँ तो विश्वास नहीं होता कि मेरे पूर्वज इतने महान् थे!

आज कलियुग में अगर मैं श्रेष्ठ नहीं हूँ तो उसके अनेक कारण होंगे, और हैं भी। कुछेक की चर्चा यहाँ होगी और अनेक कारणों की नहीं भी। हो सकता है, मैं इनसे बचना चाहूँ! मगर पतन हुआ है, इसे स्वीकार करने में कम-से-कम मुझे कोई भ्रम नहीं। शक नहीं। शंका नहीं।'

'कलियुग में आर्या तो मैं भी नहीं रही, आर्यपुत्र। पतन तो मेरा त्रेता से ही प्रारंभ हो चुका था, जब कैकेयी ने जन्म लिया। मेरे अधर्म के अंधकार के बीच से प्रकाश स्तंभ के रूप में उभरे थे, 'श्रीराम' और फिर धर्म व आदर्श के प्रतीक पुरुष बन गए। उस युग में भी वह अकेले नहीं थे। आपने अनेक नामों का उल्लेख किया, मैं मंदोदरी व जटायु आदि को भी याद कर लेती हूँ और भी अनेक धर्ममार्गी थे। जिनकी संख्या फिर कम होती चली गई और द्वापर आते-आते सीमित रह गई, इतनी कि इन्हें ढूँढ़ना पड़ता। सच कहें तो धर्म के मार्ग पर सिर्फ श्रीकृष्ण ही रह गए थे, क्योंकि अधर्म तो पांडवों ने भी किया था, द्युतक्रीड़ा में पत्नी को दाँव पर लगाकर। यही कारण है, जो द्वापर में श्रीकृष्ण धर्म के लिए अकेले संघर्ष करते नजर आते हैं, ऐसे में उनके पश्चात् कलियुग को आना ही था और वह आया। आज हम सब अधर्मी हैं तो आपने ठीक ही कहा, हम आर्य के वंशज तो हो सकते हैं, मगर आर्य नहीं।'

'आर्या, मुझे दुःख है और चिंता भी। दुःख इसलिए कि मेरी कर्मभूमि भारत भूखंड के कुछ एक हिस्से में से कई छोटे-छोटे नए देश बन चुके हैं, जो हमारे ही वंशज हैं, लेकिन हमारे बारे में अब बात तक नहीं करते। इनमें से दो तो सिंधुघाटी सभ्यता, जो कि वैदिक कालखंड में सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है, का ही भूभाग हैं। उन्होंने अपनी पूजा-पद्धति बदल ली, मजहब बदल लिया, मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है, मैं तो स्वयं हर काल में स्वतंत्रता का पक्षधर रहा हूँ, मेरी पीड़ा का कारण यह है कि ये अपने पूर्वजों को भी नकार रहे हैं और चिंता की बात यह है कि इस तरह की कट्टर मानसिकता वाले पंथ-संप्रदाय विश्व भर में तेजी से फैल रहे हैं। भारत भूखंड में भी अनेक क्षेत्रों में इनका प्रभाव बढ़ रहा है। मैं यह समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि नए-नए मजहब अपने पूर्वजों को ऐसे कैसे नकार देते हैं? उस संस्कृति को कैसे नकार सकते हैं, जिसने एक आदर्श तथा विकसित सभ्यता को जन्म दिया था? कहीं इसका कारण दुराग्रह तो नहीं? या फिर तुलनात्मक रूप से अपने को सिद्ध करने के लिए बेहतर व्यवस्था के अस्तित्व को नकारा तो नहीं जा रहा? मैं आनेवाली मानव पीढ़ी को लेकर चिंतित हूँ, क्योंकि मानव सभ्यता कभी भी इस तरह के सीमित, संकुचित, कट्टर और अल्पज्ञान से विकसित नहीं हो सकती।

आधुनिक युग चाहे जो कहे, मगर सत्य यही है कि वैदिक जीवन-दर्शन व मनु के उपदेश पर आचरण करने से ही हम आर्य धर्म के मार्ग पर चलते रहे। आज के कलियुग में अगर कोई दोष है तो यह 'मनुस्मृति' का नहीं, बल्कि उसकी गलत धारणा का है। आधी-अधूरी जानकारी का है। मनु की शिक्षा का अंश मात्र ही विश्व की अन्य सभ्यता और पंथ, मजहब व संप्रदाय ले पाए थे, इसलिए वे कभी श्रेष्ठ अर्थात् आर्य नहीं बन पाए। 'मनुस्मृति' के साथ छेड़छाड़ करके लाभ-प्राप्ति के उद्देश्य से जो भ्रम पैदा किया गया, कलियुग उसका भुगतान कर रहा है।

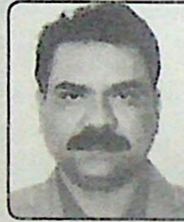
सा अ

'आर्या, मुझे दुःख है और चिंता भी। दुःख इसलिए कि मेरी कर्मभूमि भारत भूखंड के कुछ एक हिस्से में से कई छोटे-छोटे नए देश बन चुके हैं, जो हमारे ही वंशज हैं, लेकिन हमारे बारे में अब बात तक नहीं करते। इनमें से दो तो सिंधुघाटी सभ्यता, जो कि वैदिक कालखंड में सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है, का ही भूभाग हैं। उन्होंने अपनी पूजा-पद्धति बदल ली, मजहब बदल लिया, मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है, मैं तो स्वयं हर काल में स्वतंत्रता का पक्षधर रहा हूँ, मेरी पीड़ा का कारण यह है कि ये अपने पूर्वजों को भी नकार रहे हैं और चिंता की बात यह है कि इस तरह की कट्टर मानसिकता वाले पंथ-संप्रदाय विश्व भर में तेजी से फैल रहे हैं। भारत भूखंड में भी अनेक क्षेत्रों में इनका प्रभाव बढ़ रहा है। मैं यह समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि नए-नए मजहब अपने पूर्वजों को ऐसे कैसे नकार देते हैं? उस संस्कृति को कैसे नकार सकते हैं, जिसने एक आदर्श तथा विकसित सभ्यता को जन्म दिया था?

(प्रभात प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'मैं आर्यपुत्र हूँ' का अंश)

इतिहास की भूलों ने जटिल कर दिया भारत-चीन सीमा विवाद

• संजय सिंह



पॉलिटिकल एडिटर, न्यूज १, इंडिया टी.वी. चैनल। रक्षा संवाददाता के रूप में डेढ़ दशक से देशभर के सैन्य प्रतिष्ठानों के साथ-साथ अग्रिम मोरचों एल.ए.सी., एल.ओ.सी. सियाचिन, पोखरण और युद्धपोतों पर भ्रमण व यात्राएँ।

चीन और भारत के बीच सीमा-विवाद इतिहास की देन है। और इसे समझने के लिए हमें इतिहास के उस दौर में जाना होगा, जब देश विभिन्न रियासतों में बँटा हुआ था। प्राचीन काल में जम्मू; कश्मीर और लद्दाख पर अलग-अलग राजाओं का शासन था। सिख प्रांत (अब पंजाब) के महाराजा रणजीत सिंह ने १८०८ में जम्मू, १८१० में कश्मीर और १८३४ में लद्दाख पर अपना शासन स्थापित कर लिया था और लद्दाख को जम्मू में मिला लिया था। १८३९ में जब महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई और सिख प्रांत कमजोर पड़ गया, तब जम्मू के राजा डोगरा राजवंश के महाराजा गुलाब सिंह बने। ये राजा किशोर सिंह के पुत्र थे, जिनको १८०८ में पराजित कर महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू रियासत पर कब्जा किया था। गुलाब सिंह ने जम्मू रियासत पर अपना आधिपत्य किया, लेकिन कश्मीर और लद्दाख सिख प्रांत के अधीन ही रहे।

अब आते हैं १८४६ में। उस वक्त तक भारत में ब्रिटिश हुकूमत अपनी जड़ें जमा चुका था। तमाम रियासतों ने या तो घुटने टेक दिए थे, या फिर उन्हें युद्ध के मार्फत झुकाया जा रहा था। इस साल ब्रिटिश और सिखों के बीच युद्ध हुआ, जो इतिहास में प्रथम एंग्लो-सिख युद्ध के नाम से दर्ज हुआ। युद्ध में सिख प्रांत का कुछ हिस्सा अंग्रेजों ने जीत लिया। कश्मीर और लद्दाख पर भी उन्होंने अपना कब्जा जमा लिया। इस लड़ाई में जम्मू के राजा गुलाब सिंह ने अंग्रेजों की मदद की थी। इसलिए ब्रिटिशों ने गुलाब सिंह को अमृतसर की संधि के तहत ७५ लाख रुपए में कश्मीर पर फौरी तौर पर शासन करने की जिम्मेदारी दे दी। इसमें लद्दाख और गिलगिट का इलाका भी शामिल था। हालाँकि ये इलाके ब्रिटिश सरकार के अधीन ही रहे। (१९४७ तक राजा गुलाब सिंह के ही वंशज जम्मू-कश्मीर-लद्दाख के राजा रहे। अंतिम राजा हरिसिंह थे, जिन्होंने १९४७ में अपनी रियासत का विलय भारत में किया)।

सन् १८४६ में ही ब्रिटिश सरकार ने चीन से पूर्वी लद्दाख सीमा को लेकर बात करने की कोशिश की, ताकि बॉर्डर डिफाइन किया जा सके। लेकिन चीन ने कोई रुचि नहीं दिखाई। १८६५ में ब्रिटिश इंडिया के सिविल सर्वेंट डब्ल्यू.एच. जॉनसन ने चीन से लगी सीमा को डिफाइन करने के लिए 'जॉनसन लाइन' प्रपोज की, जिसके हिसाब से अक्साई चिन को लद्दाख क्षेत्र का हिस्सा बताया गया। भारत के मौजूद मानचित्र में भी लद्दाख क्षेत्र का जो सीमांकन दिखता है, वह 'जॉनसन लाइन' के तहत ही है। उस वक्त अक्साई चिन की सीमा सिनजियांग प्रांत से मिलती थी, जो चीन से स्वतंत्र था। 'जॉनसन लाइन' को लेकर न तो चीन से पूछा गया और न ही चीन ने कोई रुचि ही ली। १८७८ में चीन ने सिनजियांग पर कब्जा कर लिया। उसके बाद उसकी नजर अक्साई चिन पर पड़ी।

सन् १८९९ में ब्रिटिश काउंसिल जार्ज माकरटनी ने 'जॉनसन लाइन' को सुधार करते हुए अक्साई चिन में एक नई सीमा रेखा का प्रस्ताव दिया। नई सीमा रेखा के प्रस्ताव को चीन तक पहुँचाने का कार्य क्लाइड मैकडोनाल्ड ने किया। इसलिए इस लाइन का नाम 'माकरटनी मैकडोनाल्ड लाइन' पड़ा। यह लाइन यानी कि नई सीमा रेखा अक्साई चिन को बीच से विभाजित करती है। इसमें अक्साई चिन का आधा हिस्सा चीन में और आधा भारत में दिखाया गया है। इसको लेकर उस वक्त चीन ने कोई रिस्पांस नहीं दिया। लेकिन कई दशकों के बाद जब चीन में माओवाद का उदय हुआ और वहाँ कम्युनिस्ट सरकार ने सत्ता सँभाली तो उसकी साम्राज्यवादी और विस्तारवादी नीतियाँ भयानक तरीके से सामने आईं। चीन ने पड़ोसी देशों में जबरन घुसपैठ और कब्जा करना शुरू किया। देखते-ही-देखते उसने तिब्बत पर कब्जा कर लिया।

इधर १९४७ में भारत आजाद हुआ और ब्रिटिश शासन से उसे अनसुलझे और अरेखांकित सीमाएँ प्राप्त हुईं। आजादी के बाद से ही जवाहरलाल नेहरू ने शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का संदेश देना आरंभ कर दिया था। शीतयुद्ध के जवाब में नेहरू ने घोषित किया कि भारत गुटनिरपेक्ष रहेगा। चीन ने १९५० में तिब्बत पर कब्जा कर लिया और यह भारत के लिए एक बड़ा झटका था। इसके बावजूद नेहरू ने चीन के साथ 'पंचशील समझौते' पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके साथ ही तिब्बत

मामले पर भारत अपने सभी अधिकार खो बैठा। तिब्बत को चीन का अंग मान लिया। तिब्बत में यातुंग और ग्यांत्से में संरक्षक (एस्कॉर्ट) के रूप में तैनात भारतीय सेना वापस बुला ली गई और वहाँ मौजूद भारत सरकार की डाक-तार सेवा सुविधा बंद कर दी गई। उसके स्थान पर चीन की डाक-तार सेवा स्थापित हो गई।

चीन के राष्ट्रपति च्यांग काइ-शेक ने २४ अगस्त, १९४५ के एक भाषण में घोषणा की थी कि यदि तिब्बती लोग आजादी की माँग करते हैं तो वह तिब्बत को व्यापक स्वायत्तता का दर्जा देने में नहीं झिझकेंगे। बाद में माओ ने भी जब तक भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन जैसे देशों द्वारा पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना को मान्यता नहीं दे दी गई, तब तक तिब्बत पर हमला नहीं किया। चीन ने ७ अक्तूबर, १९५० को तिब्बत पर पूर्वी और पश्चिमी दिशाओं से हमला कर कब्जा कर लिया। तिब्बतियों के पास इस हमले का सामना करने की क्षमता नहीं थी। अंततः चीन और तिब्बत के बीच २३ मई, १९५१ को एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए, जिसके तहत चीन को तिब्बत का संरक्षक (सुजरेन) मान लिया गया और चीन ने बदले में तिब्बतियों को गारंटी दी कि उन्हें स्वायत्तता तथा धार्मिक आजादी मिलेगी।

अंतरराष्ट्रीयवादी होने के नाते नेहरू पर आरोप लगता रहा कि उन्होंने रक्षा तैयारियों की कीमत पर विदेशी मामलों को ज्यादा महत्त्व दिया। यह भी कि वह तिब्बत में चीनी कारगुजारियों के मामले में कुछ ज्यादा ही नरम रहे। जब संयुक्त राष्ट्र संघ में तिब्बत में मानवाधिकार उल्लंघन का मामला उठा तो भारत की ओर से वी.के. कृष्णमेनन ने तर्क दिया कि उस समय चीन संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं था, यह मामला संयुक्त राष्ट्र में नहीं उठाया जा सकता।

चीन ने १९५० और १९६२ के बीच अपने इरादों के संकेत कई बार दिए, लेकिन नेहरू ने उन्हें नजरअंदाज कर दिया। चीन ने १९५६ में ऐसे नक्शे जारी किए, जिनमें लद्दाख के कई भागों को चीन की सीमा में दर्शाया गया था। चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एनलाई ने १९५६ में भारत यात्रा के समय दुरंगी चाल चली। एक ओर चीनी नेता ने अरुणाचल और सिक्किम से लगी पूर्वी सीमा पर मैकमोहन लाइन को मानने की बात कही तो दूसरी ओर उसी समय लद्दाख के जिन भागों को चीन ने अपना हिस्सा बताया था, उन पर कब्जा करना भी शुरू कर लिया था। वास्तव में चीन ने १९५१ से पहले ही लद्दाख के इलाकों में सैनिक गश्त शुरू कर दी थी।

चीन ने १९५० और १९६२ के बीच अपने इरादों के संकेत कई बार दिए, लेकिन नेहरू ने उन्हें नजरअंदाज कर दिया। चीन ने १९५६ में ऐसे नक्शे जारी किए, जिनमें लद्दाख के कई भागों को चीन की सीमा में दरशाया गया था। चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एनलाई ने १९५६ में भारत यात्रा के समय दुरंगी चाल चली। एक ओर चीनी नेता ने अरुणाचल और सिक्किम से लगी पूर्वी सीमा पर 'मैकमोहन लाइन' को मानने की बात कही तो दूसरी ओर उसी समय लद्दाख के जिन भागों को चीन ने अपना हिस्सा बताया था, उन पर कब्जा करना भी शुरू कर लिया था। वास्तव में चीन ने १९५१ से पहले ही लद्दाख के इलाकों में सैनिक गश्त शुरू कर दी थी।

ए.जी. नूरानी की पुस्तक 'इंडिया-चाइना बाउंड्री प्रॉब्लम : १८४६-१९४७, हिस्टरी एंड डिप्लोमेसी' में इस मसले पर एक और दृष्टिकोण सामने रखा गया। नूरानी के मुताबिक, भारत ने १९५४ में अपने सरकारी नक्शों में इकतरफा बदलाव शुरू कर दिया और भारत द्वारा १९४७ और १९५० में प्रस्तुत नक्शों में जो क्षेत्र सीमांकित नहीं थे, उन्हें सीमांकित कर दिया। रिश्तों में जटिलता तब और गहरा गई, जब १९५९ में तिब्बत में चीन के खिलाफ विद्रोह शुरू हो गया और दलाई लामा भारत भाग आए। विद्रोह को कुचलने के लिए चीन ने अपनी सेना की ५४वीं कोर के सैनिकों को तिब्बत भेजा। इससे भी काफी पहले भारतीय सीमा में चीनी घुसपैठ की खबरें आती रही थीं, लेकिन १९५९ के बाद का भड़काऊ रवैया और साफ होता गया। चीन इस बात से वाकिफ था कि भारतीय सेना लद्दाख की सीमा पर तैनात होने लगी थी और पूर्वी सीमा पर कोई विवाद भी नहीं था। वहाँ 'मैकमोहन लाइन' ही वस्तुतः और कानूनी रूप से सीमा थी। अब चीन ने फैसला किया कि लद्दाख में भारतीय सेना के जमावड़े और साजो-सामान की व्यवस्था को रोकने के लिए पूर्वी सीमा पर विवाद खड़ा किया जाए और अपने सैनिक भेज हथियार और ताकत के बल पर भारतीय सेना को उलझाया जाए।

चीन ने १९५५ में भारत के अक्साई चिन में एक राजमार्ग बनाना शुरू कर दिया, ताकि सिंकियांग और तिब्बत को सामरिक तौर पर जोड़ा जा सके। सड़क के निर्माण का काम १९५७ में पूरा हो चुका था, लेकिन भारतीय खुफिया तंत्र की घोर विफलता के कारण भारत सरकार को इस सड़क के बनने की जानकारी काफी देर से पता चली। यह जानकारी भी सरकार को अखबारों में छपी खबरों से ही मिली थी। लद्दाख के प्रमुख लामा कुशक बकुला ने १९५७ में तिब्बत की यात्रा की थी। उन्होंने भी सिंकियांग और तिब्बत के बीच सड़कें बनाए जाने की कई जानकारियाँ दीं। जब चीन भारतीय सीमा में सड़कें बनाने में व्यस्त था, तब नेहरू भारत-चीन मैत्री की खाम-खयाली में मगन थे। नेहरू ने संसद् को आधिकारिक रूप से यह जानकारी अगस्त १९५९ में दी। इससे एक वर्ष पहले १९५८ में भारत ने टोही दल अक्साई चिन भेजे और इन टोही दलों को तब भारी झटका लगा, जब उन्होंने देखा कि चीन उस इलाके को अपने नियंत्रण में ले चुका है। तिब्बत के मसले ने आग में घी का काम किया और इसी के साथ खत्म हो गया 'हिंदी-चीनी, भाई-भाई' के नारे का ढकोसला।

चीनी नेता चाऊ एन लाई के १९५९ में नेहरू को लिखे खत में चीन ने ५० हजार वर्ग मील क्षेत्र पर अपना दावा ठोंक दिया। सीमा विवाद सुलझाने के लिए बातचीत की शुरुआत नेहरू और चाउ एन लाई के बीच नई दिल्ली में १९-२५ अप्रैल, १९६० को हुई मुलाकात में हुई।

चाऊ एन लाई ने प्रस्ताव रखा कि चीन पूर्वोत्तर में मौजूद मैकमोहन लाइन को स्वीकार कर सकता है, बशर्ते भारत अक्साई चिन समेत पश्चिमी सीमा पर पर चीनी दावे को स्वीकार कर ले। नेहरू ने अगले दिन इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, लेकिन इस प्रस्ताव पर ऐतिहासिक दस्तावेजों, जानकारियों, नक्शों और सीमा से संबद्ध अन्य सामग्री के आधार पर आगे बातचीत के लिए सहमत हो गए। यहाँ नेहरू से भारी भूल हो गई और सीमा विवाद सुलझाने का एक स्वर्णिम मौका हाथ से जाता रहा। चीनी प्रस्ताव ठुकराते समय भारत को यह समझ लेना चाहिए था कि अब अक्साई चिन को वापस हासिल नहीं किया जा सकता, लिहाजा चीनी प्रस्ताव मान लेना चाहिए था। प्रस्ताव ठुकराने का नतीजा यह निकला कि अक्साई चिन तो हाथ से गया ही, साथ ही पूर्वी मोरचे पर भी विवाद पैदा हो गया।

पचास के दशक में भारत और चीन के बीच मुख्यतः लद्दाख-तिब्बतवाली पश्चिमी सीमा पर असहमति थी और पूर्वी सीमा पर खास विवाद नहीं था। यह तो चीन के साथ युद्ध के बाद साठ के दशक में विवादों की सूची में अरुणाचल प्रदेश का नाम भी जुड़ गया। चीन की ओर से इस बारे में पेश सबूत काफी सतही थे। विशेषज्ञों ने चीन की 'प्रचलित पारंपरिक सीमा' के तर्क को यह कहते हुए नहीं माना कि सीमाओं का निर्धारण भारत पर अंग्रेजों के शासनकाल में भारत और तिब्बत के बीच हुई संधियों के आधार किया गया है। चीन इन संधियों को अवैध करार देता है। भौगोलिक परिस्थितियाँ भी भारत के पक्ष में रही हैं, क्योंकि सीमा-निर्धारण के जल विभाजक (वॉटरशेड) सिद्धांत को भी माना जाए तो इस सिद्धांत के मुताबिक, 'यदि पहाड़ प्राकृतिक सीमा बनाते हों तो यह तार्किक होगा कि दो देशों के बीच जल विभाजक बनानेवाली पर्वत-शृंखला का मध्य उस क्षेत्र की सीमा होना चाहिए।' चीन ने इस सिद्धांत को भी मानने से इनकार कर दिया और शुरुआती कुछ झड़पों के बाद १९६२ में भारत पर अपनी सभी सीमाओं से आक्रमण कर दिया। इस युद्ध को नतीजा क्या हुआ, सबको पता है।

लब्बोलुआब यह कि १९६२ युद्ध के बाद दोनों देशों की सेनाएँ जहाँ तैनात थीं, उसे वास्तविक नियंत्रण रेखा (एल.ए.सी.) मान लिया गया। पश्चिमी एल.ए.सी. जो लद्दाख क्षेत्र को अक्साई चिन से विभक्त करती है, वहाँ तीखे पहाड़ों, झरनों, झीलों के चलते एल.ए.सी. की कोई स्पष्ट लाइन मार्क नहीं की गई है। पैंगोंग झील और देपसांग सेक्टर में दोनों देशों की सेनाओं के अपने-अपने नियंत्रण के दावे हैं। देपसोंग में तो अभी भी दोनों देशों की सेनाएँ भारी संख्या में मौजूद हैं। कमांडर स्तर की बातचीत के कई दौर संपन्न हो चुके हैं। लेकिन सेनाओं में विश्वास बहाली नहीं हो पा रही है। इसलिए भारतीय सेना अब कोई चूक नहीं करना चाहती है।

हालाँकि युद्ध शुरू होने के एक सप्ताह पहले चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई ने भारत की यात्रा की और नेहरू को भरोसा दिया कि चीन किसी भी हालत में भारत पर हमला नहीं करेगा। यह भरोसा सिर्फ एक दिखावा था, क्योंकि हमले के लिए चीन ने महीनों पहले तैयारी कर ली होगी। लोग इस हकीकत को भूल जाते हैं कि इस जंग के लिए जिम्मेदार उस समय की भू-राजनीतिक और भू-सामरिक परिस्थितियाँ भी थीं। कहा जाता है कि चीनी नेता माओ भारत और अमेरिका के बीच बढ़ते आर्थिक संबंधों को लेकर काफी आशंकित था। माओ कहता था कि भारत 'अमेरिका की बोली बोलता है।' उस दौर में अमेरिका सेंट्रल ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन (सैंटो) और साउथ ईस्ट एशियन ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन (सीटो) का गठन कर चीन की घेराबंदी में जुटा हुआ था। माओ को जो दूसरी आशंका सता रही थी, वह यह थी कि कहीं तायवान अमेरिकी मदद से चीन पर हमला न कर दे। तायवान का सामना करने खड़ी चीनी फौज को माओ ने तभी तिब्बत की ओर रुखसत किया, जब अमेरिका ने यह भरोसा दे दिया कि अमेरिकी तायवान की ओर से चीन पर हमला नहीं करेगा। नेहरू की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता के कारण माओ पागलपन की हद तक उनसे नफरत करता था। नेहरू अफ्रीकी और एशियाई देशों में खास लोकप्रिय थे। यह बात इससे भी स्पष्ट होती है कि १९५५ में आयोजित बांडुंग सम्मेलन काफी सफल रहा था।

लब्बोलुआब यह कि १९६२ युद्ध के बाद दोनों देशों की सेनाएँ जहाँ तैनात थीं, उसे वास्तविक नियंत्रण रेखा (एल.ए.सी.) मान लिया गया। पश्चिमी एल.ए.सी., जो लद्दाख क्षेत्र को अक्साई चिन से विभक्त करती है, वहाँ तीखे पहाड़ों, झरनों, झीलों के चलते एल.ए.सी. की कोई स्पष्ट लाइन मार्क नहीं की गई है। पैंगोंग झील और देपसांग सेक्टर में दोनों देशों की सेनाओं के अपने-अपने नियंत्रण के दावे हैं। देपसोंग में तो अभी भी दोनों देशों की सेनाएँ भारी संख्या में मौजूद हैं। कमांडर स्तर की बातचीत के कई दौर संपन्न हो चुके हैं, लेकिन सेनाओं में विश्वास बहाली नहीं हो पा रही है। इसलिए भारतीय सेना अब कोई चूक नहीं करना चाहती है।

चीन बलपूर्वक एल.ए.सी. की पहले से चली आ रही लाइन को बदलने का प्रयास जब-तब करता रहता है। इसको लेकर कई बार खूनी झड़पें भी हुई हैं। ताजातरीन मामला गलवान घाटी का है, जिसमें २० भारतीय सैनिक शहीद हुए। ८० चीनी सैनिकों के भी मारे जाने की खबर मीडिया में सुर्खियों में रहीं। कटु सच्चाई यह है कि भारत और चीन के बीच जब तक पूरी तरह सीमा के विवाद का निपटारा नहीं हो जाता, सेनाओं के बीच तनाव तो रहेगा ही। इस आशंका से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आनेवाले दिनों में दोनों देशों के बीच बड़ा संघर्ष नहीं होगा।

सा अ

३१४-एफ, रेल विहार
सेक्टर-३, वसुंधरा
गाजियाबाद-२०१०१२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८७१३७५५२२

जग भर में हाहाकार मचा

• रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

उपचार करा, संक्रमण रोक

जग भर में हाहाकार मचा,
यह रोग अचानक क्यों आया?
जिस ओर सुनो 'कोरोना' है,
हर देश मृत्यु का भय छाया॥

हँस-खेल रहे थे जो बच्चे,
किसने उनके सुख को लूटा?
भाई से भाई बिछुड़ गया,
पति से पत्नी का संग छूटा॥

मरनेवालों की रोज वृद्धि,
बीमार नए होते जाते।
भर रहे शवों से रोगालय,
श्मशान तेज अगणित जाते॥

जिसने यह सृष्टि बसाई थी,
वह रचनाकार कहाँ सोया?
यह रोग-प्रलय भीषण आई,
वह स्वयं भाग्य पर क्यों रोया?

मानव! विज्ञान कहाँ तेरा?
तुझको तो बचना आता है।
उपचार समय पर कर बौने,
उठ, समय निकलता जाता है॥

क्यों भीड़ बनाकर भाग रहा,
दो गज अंतर पर रहना है।
एकाकी जीवन जीने की,
मन की बेचैनी सहना है॥

उपचार करा, संक्रमण रोक,
हर रोज स्वच्छता कर घर की।
जितनी चिंता अपनों की की,
उतनी ही चिंता कर 'पर' की॥

मत हो निराश, दिन दूर नहीं,
जब यह 'कोरोना' भागेगा।
तू होगा विजयी इस रण में,
सुख के प्रभात में जागेगा॥

भीड़ से रह दूर

अब जरूरी हो गया है,
मौसमों को यह बताना,
यह समय सपना नहीं है,
दुष्ट 'कोरोना' यहीं है।

बल जहाँ पद-तल धरा थी,
अब वहाँ आकाश है।
खुल गए सब पंख इतने,
पर न सुलझा पाश है।

इसलिए होगा समझना,
चाँद-तारे भी मिलाए,
दुष्ट को जितना भगाया,
किंतु वह उतना यहीं है।
यह समय सपना नहीं है।

हम करें विश्वास कल पर,
बात क्यों युग की करें?
जल रहीं अगणित चिताएँ
राख किस घट में भरें!

जूझना है सिंधु से ही,
क्यों करें ज्वालामुखी से?
प्यार मेघों की छिपाए
तरु-तले तपना नहीं है।
यह समय सपना नहीं है।

वायरस की यह प्रलय है,
नाश इसका लक्ष्य है।
दीखता दुश्मन नहीं, हर—
मनुज उसका भक्ष्य है।

भीड़ से रह दूर दो गज
राह हम अपनी बनाएँ।
श्वास की हर सावधानी
हम रखें, डरना नहीं है।
यह समय सपना नहीं है।



सुपरिचित लेखक। १२६ मौलिक ग्रंथ, जिनमें पाँच प्रबंध-काव्य, दस गीत-संग्रह, पाँच नई कविता, दस नाटक, चार कथा-साहित्य, पाँच निबंध-संग्रह, बारह शोध एवं आलोचना-ग्रंथ प्रकाशित। भारत सरकार से नाटक पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादमी से तीन बार काव्य-पुरस्कार तथा अन्य अनेक सम्मान। अनेक देशों की यात्रा। संप्रति : भीली भाषा पर शोध-कार्य एवं स्वतंत्र लेखन।

सी-७१२, गरिमा विहार
सेक्टर-३५, नोएडा-२०१३०७
दूरभाष : ९९१०५१३९९६

चाल और मात के बीच

• प्रज्ञा

"सरजी! टी.वी. की आवाज में वो मजा कहाँ, जो मल्टीप्लैक्स के साउंड में आता है।"

"डॉल्बी सिस्टम है, उस मजे का नाम।" शादाब की अनभिज्ञता को जताते हुए अरविंद ने कहा।

"सरजी! आपके जितना जानता होता, तो इस गारमेंट फैक्टरी में इतना जूनियर नहीं होता।"

शादाब अरविंद के सूचना-संसार से आतंकित होकर हमेशा ही चारों खाने चित्त हो जाया करता था।

"तो क्या सर, साउंड के लिए नए स्पीकर ले लूँ?"

"साउंड बार का नाम सुना है तूने?"

अरविंद ने कहा तो शादाब फिर बगलें झाँकने लगा। उसने हर बार की तरह कंधे उचकाए और अपनी हैरानी भरी आँखों के आदेश पर गरदन को नकार में तेजी से हिलाया। अरविंद के सामने तकनीकी ज्ञान बघारने का ढोंग भी फिजूल था।

"सोनी की नई साउंड बार ले आ, और ले-ले घर में सिनेमा हॉल के मजे।"

शादाब जानता था कि ऑफिस में अरविंद से ज्यादा नई टेक्नोलॉजी का ज्ञान किसी को भी नहीं है। हो भी कैसे? सुबह-शाम, रात-दिन जब भी समय मिले, अरविंद नए-से-नए गैजेट्स के रिव्यूज पढ़ता रहता है। फोन में नए अपडेट देखता रहता है। इस विषय में उसकी भूख जैसे कभी खत्म ही नहीं होती। अपने दोस्तों में, रिश्तेदारों में उसकी धाक जमी हुई है। साले, बहनोई, भतीजी, सलहज…जिसे भी नया फोन खरीदना हो तो सबसे पहले अरविंद को याद किया जाता है। जहाँ से हर किसी को तसल्लीबख्श जवाब मिलता है। अभी परसों की ही तो बात है, अरविंद का साला रोहन घर आया। साले-जीजा में पटती भी गहरी है।

"जीजू! हैडफोन खरीदने हैं। कौन सा लूँ? कुछ समझ नहीं आ रहा, आप तो एक्सपर्ट हो, बताओ न।" साले के सवाल पर अरविंद रीझ गया।

"देख भाई! हैडफोन ब्लू टूथ वाले लेना। बेस्ट रहेगा। नई टेक्नोलॉजी है। आगे यही चलेगी, फिर कंपनी तो देख…"

रोहन दो घड़ी को महँगी कंपनी का नाम सुनकर चुप-सा हुआ, तो अरविंद ने अपने चेहरे की भंगिमाओं से उसे झिंझोड़ते हुए कहा, "कुछ मत सोच भाई! नया मॉडल है। बारह घंटे का बैटरी बैकअप है और दाम सिर्फ दो हजार नौ सौ नियानवे। तेरी जगह मैं होता तो अभी खरीद लेता। आँख मूँदकर ले ले। ई.एम.आई. पर ले ले। अच्छी चीज घर आएगी और बोझ भी नहीं पड़ेगा…सुन क्रेडिट कार्ड से पेमेंट कर दे तो डिस्काउंट मिलेगा। अच्छा, मैं ही बुक करा देता हूँ। तू भी क्या याद रखेगा।"



सुपरिचित लेखिका। तक्सीम, मन्नत टेलर्स (कहानी-संग्रह), गूदड़ बस्ती, धर्मपुर लॉज (उपन्यास), 'नुक्कड़ नाटक : रचना और प्रस्तुति', 'जनता के बीच : जनता की बात', 'नाटक का संवाद', 'नाटक : पाठ और मंचन', 'बाल-साहित्य : तारा की अलवर यात्रा' प्रकाशित। 'भारतेंदु हरिचंद्र पुरस्कार', 'तक्सीम' कहानी को प्रथम पुरस्कार, उपन्यास 'गूदड़ बस्ती' को मीरा स्मृति पुरस्कार; कहानी 'पाप, पार्क और प्रायश्चित्त' को प्रथम पुरस्कार। संप्रति किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर।

अरविंद जिस तरह से हैडफोन की तारीफों के पुल बाँध रहा था, उसे न जाननेवाला कोई भी आदमी यह बातें सुनता, तो उसे पक्की तौर पर कंपनी का नंबर वन सेल्समैन मान लेता। रोहन संतुष्ट भाव से मुसकराया, आखिर उसकी समस्या का हल जो हो गया था।

"दीदी! सच कहता हूँ, अपने जीजू हीरा हैं। न जाने क्यों इस गारमेंट फैक्टरी के झमेले में पड़े हैं। इन्हें तो यू-ट्यूब पर होना चाहिए।"

रुचि ने आँखें तरेरकर अपने छोटे भाई को देखा। वह पति की नौकरी और आमदनी से अपने घर की खुशियों का पुल बनाए पूरी तरह संतुष्ट थी, पर अरविंद साले की बात से सोच में पड़ गया। एक ठंडी आह के साथ बोला, "छोटे! ये तेरा भाई कर तो बहुत कुछ सकता है। मन भी है, मेरा पर रिस्क उठाने के लिए तगड़ा बैकअप चाहिए यार। आखिर घर-परिवार भी देखना है।"

"सोच लो जीजू। हम सबकी नजर में तो आप टैकगुरु ही हो।"

रोहन की तारीफों के आसमान में अरविंद बिंदास उड़ रहा था। जमीन पर उतरा, तो छुट्टी के दिन का एक भरपूर हिस्सा खत्म हो चुका

था। रोहन के जाने के बाद अरविंद को याद आया कि बॉस ने एक जरूरी काम उसे आज शाम तक हर हालत में खत्म करने को कहा था। याद आते ही वह डेस्कटॉप पर जा जमा, पर ये क्या मॉनीटर पर एक बार रोशनी चमकी और गायब। अरविंद का दिल धक्क से रह गया। उसने सी.पी.यू. खोल लिया। सारे प्रयास करने के बाद वह बेतरह झल्लाया, "कंडम है, कंडम। कर लो काम कोई अब इस पर···बकवास है।"

अरविंद को इस तरह गुस्से में झल्लाया देखकर रुचि सहानुभूति का फाया लिये जख्म की दवा करने को हाजिर हो गई।

"अरे! इसे ठीक करा लो न।"

"वो तो करा ही लूँगा, पर इस समय क्या करूँ? अब काम क्या खाक करूँगा?" अरविंद की चिड़चिड़ाहट आपा खोने लगी।

"सारी दुनिया को सलाह देते फिरते हो, कुछ अपने लिए भी कर लिया करो।" रुचि ने ठेठ भारतीय पत्नियों की तरह एक वाक्य में पति के सारे ज्ञान की हवा निकाल दी। पंचर मन:स्थिति से भी अरविंद ने जवाब दिया, "मशीन तो नई लेनी पड़ेगी···एस.एस.डी. वाली।"

"कौन सी वाली?" रुचि की नासमझी ने सवाल उठाया।

"अरे! तुम नहीं समझोगी। देखो, एक होती है हार्डडिस्क···"

"क्या तुम ये हार्डडिस्क, सॉफ्टडिस्क की बात करते हो। घर भर रखा है, अटरम-शटरम चीजों से और मन है कि कभी भरता ही नहीं। हाँ, मुझे कोई जानकारी नहीं, पर मैं इतना जानती हूँ कि तुम्हारा काम ढंग से नहीं हो रहा तो तुम्हें कोई नया इंतजाम कर लेना चाहिए।"

"ले तो लूँ, पर मामला महँगा पड़ेगा। इधर खर्चे ज्यादा हो रहे हैं। शादियाँ सिर पर पड़ी हैं। बजट बिगड़ जाएगा।"

"जो तुम्हारे मन में आए, करो।" आखिरकार रुचि ने इस मामले से अपना पल्ला छुड़ाया।

कुछ महीने बीमार डेस्कटॉप का इलाज कराकर बीत गए। नया इंतजाम अभी नहीं हो पाया था।

एक दिन ऑफिस में फुरसत मिलते ही अरविंद आदतन फोन पर नए गैजेट्स तलाशने लगा। उसे अकसर ऑनलाइन चीजें खरीदते देखनेवाले ऑफिस अटेंडेंट मनोज ने पूछ ही लिया, "सर! आप इतना ऑनलाइन खरीदते हो, आपको डर नहीं लगता? कोई आपके पैसे-वैसे न ले उड़े?"

"बात तो तेरी सही है। सावधान तो रहना चाहिए। आजकल लोगों में ईमान-धर्म कहाँ रह गया है? पिछले महीने धीरज का नौ हजार का सामान ऑनलाइन मँगवाया था। बंदा इतना बेशर्म है कि रोज ऑफिस आता है, पर रुपया रीं-रीं करके चिंदी-चिंदी लौटा रहा है। नीयत लेते समय ही नहीं, देते समय भी साफ रखनी चाहिए। ईमानदारी तो कहीं रह नहीं गई है आज।" अरविंद का मन धीरज की बात सोचकर कसैला हुआ और उसकी आवाज ने उसके बढ़ते पारे की तस्दीक की; उसने आवाज को संयत किया और फिर से काम में जुट गया।

शाम को काम से लौटते समय दिन भर की थकान दूर करने के लिए रोज की तरह अरविंद ने आज भी गाड़ी का स्टीरियो चलाकर रोमांटिक गाने लगा लिये। गाड़ी घर की दिशा में बढ़ी और अरविंद का पारा गाने की गहराई में उतरने लगा। कुछ देर में अरविंद सामान्य हो गया। बहुत देर तक तनाव को बोझ की तरह लादे रखने का वह आदी नहीं था। दिलकश शब्दों और लय से गाना अरविंद के मन और गाड़ी के माहौल को गुलजार कर रहा था। उसके इशारे पर अरविंद स्टीयरिंग पर हाथ रखे भी हौले-हौले झूम रहा था। जैसे ही आगे की रेड लाइट उसने पार की, तो उसका ध्यान बगल से गुजर रही मोटरसाइकिल पर बैठे दो लड़कों की ओर गया। आगेवाला थुलथुल शरीर का था। हैलमेट की वजह से उसका चेहरा पूरा देख पाना मुश्किल था, पर पीछे बैठा दुबला-पतला लड़का मुसकराते हुए हाथ का इशारा करके अरविंद से गाड़ी रोकने का अनुरोध कर रहा था। चलती सड़क पर अरविंद का दिमाग उस लड़के को पहचानने की पूरी कोशिश करने लगा। अकसर उसके साथ यही होता है। लोग उससे मिलते हैं और वह उनको भूल जाता है। फिर पूरी शिद्दत से पहचानने की कोशिश करता है। लड़के की मुसकान चौड़ी होती जा रही थी और हाथ का इशारा भी गाड़ी रोकने की भीख सी माँग रहा था। अरविंद ने गाड़ी को आगे ले जाकर सर्विस लेन में खड़ा किया। लड़का अपने साथी को छोड़कर तुरंत गाड़ी की ड्राइवर सीट की ओर लपका।

"नमस्ते भैया!"

"नमस्ते।" अरविंद ने लड़के को पहचानने की पूरी कोशिश में नमस्ते का सचेत जवाब दिया।

"पहचाना नहीं न भैया आपने? आप रवि भैया हो न?"

"यार···रवि तो मेरा नाम नहीं है। तुम्हें जरूर कोई गलती हुई है।"

"ओह!···भैया मैं बता नहीं सकता कि आपकी शक्ल रवि भैया से हू-ब-हू मिलती है। इसीलिए तो आपको देखते ही मैंने हाथ दिया था। गाड़ी रुकते ही आपसे मिलने भागा चला आया।" लड़का बोला।

"कोई बात नहीं यार! हो जाती है ऐसी गलती।" उसे पहचानने की जद्दोजहद से निजात पाकर अरविंद इत्मीनान से बोला और उसने गाड़ी स्टार्ट की।

"भैया! आपसे एक काम है।" लड़का गाड़ी के शीशे के बिल्कुल करीब आ गया।

"मैं तो तुम्हें जानता नहीं···मुझसे कैसा काम?" अरविंद ने दो टूक कहा।

"थोड़ी देर की बात है भैया! पहले गाड़ी बंद कर लो।" लड़के के शब्दों में न जाने ऐसा क्या था कि अरविंद ने गाड़ी बंद कर ली और उसकी बात सुनने के लिए नजरें उसके चेहरे पर गड़ा दीं।

"भैया, मेरे पास एक फोन और एक लैपटॉप है···क्या कहते हैं उसे हाँ··· मैकबुक···आप ले लो।" लड़के का इतना कहना था कि अरविंद हिल गया, "क्या बात कर रहा है। सड़क पर कौन से फोन और लैपटॉप बेचे जाते हैं? पागल समझ रखा है क्या तूने मुझे?"

"क्या बताऊँ भैया! दोनों चीजें मेरे जाननेवाले की हैं। उसकी देनदारी निकलती थी और उसे बाहर जाना था। चलते हुए यह चीजें मुझे दे गया। मुझे पैसे की सख्त जरूरत है···आप ले लो।" लड़के ने बात साफ की।

"कहीं और बेच···मेरे पास नहीं हैं पैसे-वैसे। मैं क्या फोन-लैपटॉप

खरीदने निकला हूँ, जो पैसे जेब में रखकर घूमूँगा?" अरविंद झुँझलाया जरूर, पर गाड़ी बढ़ाकर आगे नहीं निकला। उसे खड़े देखकर लड़का दौड़कर अपने साथी से दोनों चीजें लेता आया। नई-नकोर पैकिंग देखकर अरविंद के मन में हलचल मच गई।

"है क्या ये चीज? कहाँ से है···क्या है?" जो भी सवाल जुबान पर आया, अरविंद ने जस-का-तस रख दिया।

"भैया! आप देख तो लो। आपको ठीक लगे तो ही रखना। कोई जबरदस्ती नहीं है। फोन तो देखो पहले। आईफोन सैवन है।" लड़के ने डिब्बा अरविंद की गोद में दे दिया। अरविंद ने डिब्बे को साँप-बिच्छू समझकर लड़के के हाथों में धकेला।

"अबे! नहीं चाहिए फोन। चोरी का है क्या?" अरविंद की जिज्ञासा अपने पूरे तेवर में झनझनाई।

"क्या बात कर रहे हो भैया···आपको बेचूँगा? चोरी का फोन?" लड़का बिल्कुल न डरा।

"सड़क पर तो ऐसा ही माल मिलता है।" अरविंद भी खामोश न रहा।

"नहीं भैया! साफ माल है। मजबूरी है, इसलिए बेचना पड़ रहा है। अच्छा हटाओ फोन, ये देखो··· मैकबुक है।" अबकी लड़के ने दूसरा डिब्बा दिखाया। अरविंद ने आँखें गड़ाकर देखा। डिब्बा एकदम नया था। एकबारगी अरविंद को लगा कि वह कोई सपना देख रहा है, पर उसे हकीकत का अहसास दिलाते हुए लड़के ने ताबड़तोड़ डिब्बे से आजाद करते हुए मैकबुक ऑन करके अरविंद के हाथ में थमा दिया। एक चमचमाता पतला सा मैकबुक अरविंद के हाथ में था। इस बार मैकबुक को अरविंद ने लेने से ना-नुकुर जरूर किया, पर उसे साँप-बिच्छू नहीं समझा। अरविंद ने आनाकानी करते हुए भी उसे पलटकर देखा और सीरियल नंबर देखकर आश्वस्त हुआ कि मशीन असली थी। उसके मन ने कहा कि चीज तो बिल्कुल खरी है, पर लड़के से उसने कहा, "देख भाई! अपनी चीज रख अपने पास। मेरे पास पैसे-वैसे नहीं हैं।"

"अरे भैया! आप कुछ भी दे दो। मुझे तो अपने पैसे चाहिए थे। दोस्त ने यह थमा दिया। आप कुछ भी दे दो। जो दोगे, मैं खुशी से ले लूँगा।" लड़के ने अरविंद पर अपना दबाव बनाया।

"देख! फोन तो बेकार की चीज है, मैं नहीं लूँगा।" अरविंद अड़ा रहा।

"भैया! दोनों चीजें आपकी ले लो। सही रेट मिल जाएगा आपको।"

"नहीं भाई! पैसे नहीं हैं मेरे पास।" अरविंद ने थोड़ा तिरछा होकर अपना पर्स निकालकर अपनी असमर्थता का प्रमाण दिया।

"कोई बात नहीं भैया, आप ए.टी.एम. से निकालकर दे दो। यहाँ पास ही तो है।" लड़के ने हार नहीं मानी।

"नहीं भाई, नहीं···।" अरविंद के शब्द तो लगातार लेने में आनाकानी कर रहे थे, पर उसकी उँगलियाँ लैपटॉप पर तेजी से फिर रही थीं। वह उसके फीचर्स देख रहा था। उसे चलाकर देख रहा था, जैसे खरीदने से पहले पूरी तसल्ली कर रहा हो। लड़का बराबर अपनी बात पर अड़ा रहा और अरविंद का अड़ियलपन पिघलने लगा।

"कितने में देगा इसे?···देख फोन नहीं लूँगा, इसके बड़े टंटे होते हैं। कल को तू ही आ जाएगा माँगने वापस तो?" अरविंद किसी समझदार वकील की तरह बोला।

"जो आपके पास हों, दे दो।"

"देख, मैं इसके दस हजार दूँगा···ठीक लगे तो बोल।"

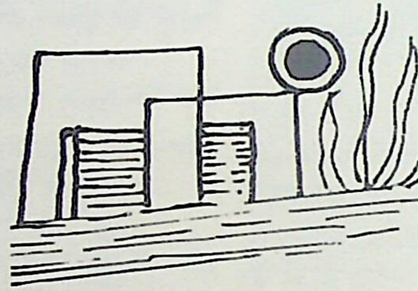
"दस तो बहुत कम हैं भैया···।" लड़का रिरियाया।

"देना हो तो बोल···।" अरविंद ने मशीन उसकी ओर ठेलते हुए कहा।

"अच्छा चलो, आप पंद्रह दे दो।"

"नहीं, दस से एक पैसा ज्यादा नहीं।" अरविंद जान गया था कि मामला इतने में जम जाएगा। लड़के ने हामी भर दी।

"पर मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं हैं।"



"कोई बात नहीं मोटरसाइकिल है···मैं आपके पीछे-पीछे चलता हूँ। घर से दे देना।"

अरविंद को अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ कि सत्तर हजार की चीज दस हजार में उसकी होनेवाली है। उसे यह भी अंदाजा हो चला था कि हो-न-हो कोई गड़बड़ तो इसमें जरूर है, पर लालच ने उसके मन को उलझा लिया। मन के चोर बड़े दुस्साहसी और तर्कशील होते हैं। वे लालच के लिए वकील सरीखे दाँव खेलने लगे। अरविंद कुछ देर पहले जिसे न लेने के लिए अड़ा हुआ था, अब सोचने लगा कि लोग तो देश के करोड़ों रुपए लूटकर भाग रहे हैं, उसके आगे यह चोरी भी भला कोई चोरी है? दस हजार में इतनी बढ़िया चीज को मना करना बेवकूफी होगी। इतने में तो सेकेंड हैंड भी नहीं मिलेगा। अरविंद मन को पक्का करके बोला, "चल, आगे ए.टी.एम. है, वहाँ से तुझे पैसे निकालकर देता हूँ।"

"ठीक है भैया! आगे मिलते हैं। ये दोनों चीजें आप अभी अपनी गाड़ी में ही रख लो।" लड़का बोला।

"और मैं तेरा माल लेकर भाग गया तो?" अरविंद ने सवाल लड़के की तरफ उछाला।

"क्या बात कर रहे भैया! आप कहाँ जाओगे? ऐसी बात थोड़े ही है। ए.टी.एम. तक आप रख लो।"

कहते हुए लड़का बाय करता हुआ अपने साथी की ओर चल दिया। अरविंद ने गाड़ी स्टार्ट की। दोनों चीजें गाड़ी में रखे हुए वह मेन सड़क पर आया और पुलिस बैरिकेडिंग से आगे बढ़ा। ए.टी.एम. तक पहुँचते ही मोटरसाइकिल से उतरकर लड़का अरविंद के साथ हो गया। दूसरा लड़का सड़के के किनारे ही ठहर गया। अरविंद ने देखा कि ए.टी.एम. के बाहर इक्का-दुक्का लोग खड़े थे। वह लाइन में लग गया। लड़का ठीक उसके पीछे खड़ा था। अरविंद सोचने लगा कि बेकार दस कह दिए, यह तो पाँच

में ही मान जाता, लेकिन अगले ही क्षण उसके मन ने कहा कि इससे कम में भला यह लड़का क्या मानता? अरविंद का नंबर आने पर जैसे ही वह दरवाजा धकेलकर अंदर बढ़ा, लड़का भी उसके साथ हो लिया।

"तू अंदर मत आ। बाहर रह। कह दिया न, मैं पैसे दे दूँगा।" अरविंद ने उसे डपटते हुए रोका।

अरविंद अंदर अकेला था। उसने मशीन में कार्ड डाला, पर उसका दिमाग ठिठक गया। सारे घटनाक्रम पर सोचकर उसे हैरत होने लगी। कितने ही सवाल उसके जेहन में कौंधकर उससे जवाब माँगने लगे। कौन है यह? कहाँ से लाया सामान? मुझे क्यों दे रहा है सस्ते में? प्लीज एंटर योअर पिन—मशीन की आवाज ने उसकी सोच में खलल डाला। अरविंद ने चौंककर पिन नंबर डाला, पर पिन एक्सेप्ट नहीं हुआ। बेध्यानी में उससे गलत नंबर दब गया था। इस बार अरविंद ने सही नंबर डाला। मशीन अपनी कारवाई में जुट गई। अचानक अरविंद की रूह काँपी। अगर यह माल चोरी का है तो यह लड़का घर भी तो आ सकता है। गाड़ी का नंबर इसने देख ही लिया है। पीछा कर सकता है। कल को मेरे ऑफिस ही चला आया तो···मेरी अब तक बनाई सारी इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी। अरविंद अचानक हिल गया। उसने खुद को कोसा—क्या कर रहा है तू? यह चोर तेरे पीछे लग गया तो? आगे रास्ते में यह तुझे ही न लूट ले? कहीं इसके पास कोई कट्टा-वट्टा···सवालों की जद्दोजहद अरविंद के माथे पर चिंता की बूँदों सरीखी चमकने लगी। उसके होंठ भिंच गए। साँसें तेज चलने लगीं। मशीन गिनकर दस हजार रुपए पेश कर चुकी थी। अरविंद खयालों में डूबा खड़ा था। 'कलैक्ट योअर मनी'—मशीन की बीप लगातार बज रही थी। बाहर खड़े लोगों के चूक रहे धैर्य और दरवाजे पर उनकी हथेलियों की थाप ने अरविंद को खयालों से आजाद किया। उसने एहतियात से रुपए पर्स के हवाले किए। रुमाल से माथा पोंछा। अपनी हद से बाहर आ गई कमीज को सलीके से पेंट के अंदर किया।

"हाँ भैया···" लड़के ने रुपए के लिए हाथ फैला दिए।

"एक मिनट···चल मेरे साथ।" कहते हुए अरविंद गाड़ी तक आया। लड़के के चेहरे पर हँसी फूट रही थी। अरविंद गाड़ी में बैठा। सामान उठाया और खिड़की से बाहर उस लड़के के हाथों पर रख दिया।

"क्या हुआ भैया? यह क्या कर रहे हो?" इस बार साँप-बिच्छू के डंक लड़के को लगे।

"कुछ नहीं। मुझे नहीं चाहिए तेरा सामान। इसे ले और कहीं और बेच।" अरविंद की आवाज में कोई कंपन नहीं था।

"ऐसे कैसे? अभी तो हमारी डील हुई थी···अब तू पलटी कैसे खा सकता है?"

भैया-भैया करते न थकती लड़के की जबान तू-तड़ाक पर उतर आई।

"अब तो तुझे यह लेना ही पड़ेगा और पैसे भी देने पड़ेंगे।" कहते हुए लड़के ने लैपटॉप और फोन दोनों अरविंद की गाड़ी में जबरन फेंक दिए। उसकी आवाज तेज हो गई थी। उसका साथी भी कुछ भाँप गया था। लड़के की गुंडई आगे बढ़ रही थी। अरविंद निपट अकेला था, पर उसके मन की खाइयों के अतल में बैठे जिंदा साहस ने उसे हौसला दिया। अरविंद ने गाड़ी का दरवाजा खोला और लड़के के दोनों सामान तेजी से नीचे सरकाकर दरवाजा बंद करते हुए सख्त मुद्रा में लड़के से कहा, "नजर मत आ जाना दोबारा। पुलिस में कंप्लेंट कर दूँगा तेरी।" कहते हुए अरविंद ने गाड़ी तेजी से आगे बढ़ा ली।

कुछ मिनट बाद अरविंद को रास्ते में एक बाजार दिखाई दिया। उसने गाड़ी मोड़कर किनारे लगाई और वहीं बाजार की सीढ़ियों पर बैठ गया। उसकी नजरों ने देखा, उसे मोटरसाइकिल और वो दोनों लड़के कहीं नहीं दिखे। अरविंद बैठा रहा। पाँच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट···उसने देखा आसपास लोगों की भीड़ थी। आवाजों का एक भरापूरा संसार था। अरविंद ने गहरी साँस भीतर खींची और खुद को सुरक्षित महसूस किया।

ई-११२, आस्थाकुंज अपार्टमेंट्स
सेक्टर-१८, रोहिणी, दिल्ली-८९
दूरभाष : ९८११५८५३९९

नींव का पत्थर

• दुलीचंद्र जैन 'साहित्यरत्न'

लालबहादुर शास्त्री बड़े ही हँसमुख स्वभाव के थे। लोग उनके भाषण और निस्स्वार्थ सेवाभावना जैसे गुणों से अनायास ही प्रभावित हो जाते थे। लेकिन जब वे लोकसेवा मंडल के सदस्य बने तो वे बहुत ज्यादा संकोची हो गए। वे नहीं चाहते थे कि उनका नाम अखबारों में छपे और लोग उनकी प्रशंसा और स्वागत करें।

एक दिन शास्त्रीजी के मित्र ने उनसे पूछा, "शास्त्रीजी! आपको अखबारों में नाम छपवाने से इतना परहेज क्यों?"

शास्त्रीजी कुछ देर सोचकर बोले, "लाला लाजपतरायजी ने मुझे लोक सेवा मंडल के कार्य की दीक्षा देते हुए कहा था, ''लाल बहादुर! ताजमहल में दो प्रकार के पत्थर लगे हैं। एक बढ़िया संगमरमर के पत्थर हैं, जिनको सारी दुनिया देखती है और प्रशंसा करती है। दूसरे ताजमहल की नींव में लगे हैं, जिनके जीवन में केवल अँधेरा-ही-अँधेरा है, लेकिन ताजमहल को वे ही खड़ा रखे हुए हैं।'' लालाजी के ये शब्द मुझे हर समय याद रहते हैं और मैं नींव का पत्थर ही बना रहना चाहता हूँ।

('रोचक बोधकथाएँ' पुस्तक से साभार)

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

साहित्य अमृत का मार्च २०२० अंक श्री लक्ष्मीशंकर वाजपेयीजी के संपादकत्व में बहुत ही अच्छा लगा। डॉ. हेमंत कुकरेती द्वारा श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदीजी का स्मरण तथा श्री श्यामसुंदरजी का स्मरण भी पाठकों को पुन: अवसाद से भर गया। प्रतिस्मृति में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'बंजारा' बहुत अच्छी गली। 'डुमरी के फुलवा' सरोज कुमार त्रिपाठी का ललित-निबंध; 'उड़त गुलाल लाल भए बदरा' शिवचरण चौहान का आलेख (लोकसाहित्य), 'चढ़ गया रंग फागुन का' सूर्य प्रकाश मिश्र का गीत हमें फागुन के फाग का अहसास करवा गए। क्या ही अच्छा होता, मार्च अंक फाग अंक गीत, व्यंग्य-लेख आदि से भरपूर होता, जैसे पहले धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान पत्रिकाओं में होता था। वैसे साहित्य के क्षेत्र में 'साहित्य अमृत' वास्तव में पाठकों के लिए आमृत सी है।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

सफेद पृष्ठभूमि पर बहुरंगी रंग-फूल लिये मार्च-२०२० का अंक प्राप्त हुआ। साहित्य अमृत परिवार का संपादक मंडल धैर्य में धनी, कर्म में कर्मठ और टूटते-बिखरते को भी क्रमवार प्रस्तुति देने में निर्विवाद कुशल है। यह अंक इस परिवार की भाव प्रवणता, संवेदनशीलता और कर्तव्यपरायणता का प्रमाण है। 'प्रबंध संपादकीय' एवं 'संपादकीय' में पूर्व संपादक श्री चतुर्वेदीजी के प्रथम संपादकीय एवं संस्थापक संपादक के प्रवेशांक संपादकीय में रेखांकित किए जानेवाले उद्धृत अंश अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इन अंशों के माध्यम से पत्रिका के अतीत, वर्तमान और भविष्य का जो स्वरूप सामने रखा गया है, वह पाठकों, रचनाकारों के लिए न केवल स्वागत योग्य है, बल्कि 'सार्थक संवाद' में झलकती सृजनात्मकता के साथ चुनौतीपूर्ण भी है। अनायास निर्मित कठिन परिस्थितयों के बीच रचनाओं का चयन और पत्रिका के अनुरूप प्रकाशन अपनी अभिव्यक्ति में जितनी सहजता से सामने आया है, उतना ही उसे हर पृष्ठ पर कितना भावनात्मक, वैचारिक, सृजनात्मक मूल्यों के लिए संघर्षरत रहना पड़ा होगा, यह अनुभूति का ही विषय है, जिसे संपादक मंडल ने सहा है और सहेजा भी।

'साहित्य अमृत' अपने संस्कार और संस्कृति के सधे हुए सुदृढ़ कदमों से जिस तरह आगे चल पड़ा है, उसमें कदम से कदम मिलाकर चलने की बलवती इच्छा आगे, आगे और आगे की राह चले। वैश्विक संकट के बीच साहित्य अमृत से निरंतर प्रवाहित प्राणदायिनी शक्ति संसार में संचरित रहे। जीवन अपने जीवट का परिचय देता हुआ कंधे से कंधा मिलाकर अपने संरक्षित, सुरक्षित, सुपथ पर चले और आनेवाला कल आज के साथ अपने वर्तमान और भविष्य पर गर्व कर सके।

—प्रमिला मजेजी, कोरबा (छत्तीसगढ़)

'साहित्य अमृत' के अमृतदायी शिखरपुरुषों के देहावसान के बाद भी पत्रिका का जीवन यथावत् चलता रहे, यात्रा बाधित होने पर भी स्थगित न हो सके, ऐसे प्रयासों के लिए आप सभी को साधुवाद। साहित्य अमृत के उद्भव में डॉ. शंकरदयाल शर्मा, अटलबिहारी वाजपेयी, श्यामसुंदरजी, पं. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की दूरदर्शी सोच के साथ ही लगभग २५ वर्षों की यात्रा अनवरत जारी रही। जहाँ विद्वज्जनों की इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति और कार्य के प्रति संपूर्ण निष्ठावाली समर्पित भावना रही है; उसी का सुपरिणाम आज साक्षी है इस बात का कि निस्स्वार्थपूर्ण किया गया कोई भी कृत्य मानवता को उसके चरममूल्यों तक ले जाने का सामर्थ्य रखता है। उन विभूतियों की स्मृति को आदरांजलि पूर्ण नमन, वे परोक्षत: आज भी हमारे पथ-प्रदर्शक की भूमिका में हैं व रहेंगे, क्योंकि उनका अतुलनीय योगदान सर्वोपरि है।

पुनश्च: साहित्य अमृत पत्रिका अपने पाठकों को अमृतरसपान कराती रहे और सफलता के क्षितिज पर नए आयामों को स्थापित करने में सक्षम हो।

—सुशील बुड़ाकोटी 'शैलांचली', मानसा (पंजाब)

आज सुबह कार्यालय पहुँचते ही 'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक पाँच माह के अंतराल के बाद हाथ में आया तो 'साहित्य अमृत' के साथ जुड़ाव के पच्चीस वर्षों की यादें सामने आ गईं। प्रथम अंक के विमोचन के साथ 'साहित्य अमृत' से जुड़ा संबंध आज तक बिना किसी व्यवधान के निरंतर चल रहा है। हर माह के अंत में ही 'साहित्य अमृत' का अंक मिलना कथा, कहानी, कविता, समीक्षा, यात्रा लेख और उच्च कोटि के संपादकीय के साथ प्रत्येक वर्ष अगस्त के विशेषांक ने मुझे साहित्य जगत् से जोड़ा रखा और धीरे-धीरे महीने वर्ष और दशक बीतते चले गए। जब विश्व महामारी कोरोना के प्रभाव ने 'साहित्य अमृत' की धारा को भी रोक दिया, मन में रिक्तता आ गई थी, जब 'साहित्य अमृत' को अप्रैल अंक अगस्त में मिला, तब आंतरिक अनुभूति हुई कि 'साहित्य अमृत' ने अपने नाम की सार्थकता को सिद्ध कर दिया है। समय को जीत लिया है, अब निश्चित ही संपूर्ण मानव जाति इस कोरोना महामारी को भी जीतेगी।

—दिनेश नंदिनी परिहार, रायपुर (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल २०२० अंक मिला। गेहूँ की बालियों की सोंधी गंध से सुवासित मुखपृष्ठ देख मेरा मन-मयूर नाच उठा। संपादकीय में बड़े ही संक्षेप में 'अपनी बात' कहकर संपादकजी ने गागर में सागर भर दिया है। रामधारी सिंह 'दिनकर' की अद्वितीय काव्य-रचना 'कुरुक्षेत्र' पढ़कर अच्छा लगा। कहानियों में अमिताभ शंकर राय चौधरी की 'काँच की जन्नत', अरुणा सभरबाल की 'परदेश में पतझड़' तथा क्षमा चतुर्वेदी की 'एक ही भूल' बेहद पसंद आईं। आलेखों में तरुण कुमार दाधीच का 'राम : करुणा का ओजस्वी रूप' तथा बालेंदु शर्मा दाधीच का 'मोबाइल और कंप्यूटर···' बहुत जानकारीपरक हैं। बालस्वरूप राही के गीत मन को छू गए। कोरोना पर गिरराजशरण अग्रवाल, श्रीधर द्विवेदी तथा कुँवर बेचैन की कविताएँ प्रासंगिक लगीं। संतोष माटा का संस्मरण 'अभिनंदनीय अभिनंदन' बहुत प्रेरक बन पड़ा है। श्रीराम परिहार का ललित-निबंध 'कालड़ी से कैलाश' आदिशंकराचार्य की खूबियों से परिचित कराता है। विनोद शंकर गुप्त का व्यंग्य 'डॉक्टर स्तुति' बड़ा ही सात्त्विक और विनोदपूर्ण लगा। इसके अलावा अन्य रचनाएँ भी पठनीय एवं मनोरंजक हैं। एक शानदार अंक के लिए समस्त संपादक मंडल को बधाई।

—आनंद शर्मा, दिल्ली

वर्ग पहेली (१७६)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।

२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।

३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २०२० तक हमें मिल जानी चाहिए।

४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।

५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जून २०२० अंक में छापे जाएँगे।

६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।

७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ के पते पर भेजें।**

वर्ग पहेली (१७४) का शुद्ध हल

१ ग	२ ग	न	३ चुं	बी	■	४ ता	ला	५ ब
६ र	द्दी	■	ब	■	■	जा	■	ड़ा
ज	■	■	७ क	म	८ ती	■	९ ग	प
१० ना	ट	११ की	य	■	१२ ज	१३ ल	ज	ला
■	■	च	■	■	■	द	■	■
झ	ग	ड़	१६ ना	■	१७ वि	ना	य	क
१९ ट	ल्ला	■	२० जु	लु	स	■	■	रा
प	■	२१ ना	■	■	जं	■	२२ द्रो	ह
२३ ट	ह	नी	■	२४ ज	न	ग	ण	ना

★ पुरस्कार विजेता ★

१. श्रीमती दयावंती शर्मा
अंगरा शिक्षण संस्थान
समीप फलोद्यान पाड़ला
पो. दाड़ला घाट (सोलन)-१७११०२
दूरभाष : ९८०५११३५७३

२. श्रीमती निधि कुमार
म.नं. २१३, द्वितीय एच मैन
ईस्ट ऑफ एन.जी.ई.एफ लेआउट
कस्तूरी नगर, बेंगलुरु-५६००४३
दूरभाष : ९९४५२४६७८३

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १७४ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद (महेंद्रगढ़), फकीरचंद ढुल (कैथल), प्रह्लाद गोस्वामी (कोटा), स्मृति वर्मा (रायपुर), लक्ष्मी देवी, शिवकांत (सेहलंग), रामप्रकाश राय (गोरखपुर), भूपत सिंह (हरिद्वार), श्रीराम सिंह (अजमेर), पुलिन चौरसिया (भोपाल), धनेश सिंह राघव (मेरठ), राधा मोहन (सीवान)।

बाएँ से दाएँ—

१. पराजय या विजय (२,२)
४. ग्रंथ या सामयिक पत्र जिसका क्रम, पाठ आदि ठीक करके संपादन किया गया हो (४)
७. कपड़े की लंबाई (२)
९. क्षमा किया हुआ (२)
१२. सच्चा, विश्वसनीय, धर्मनिष्ठ (५)
१३. विचार विमर्श, परामर्श (३)
१४. खोपड़ी, कपाल, मस्तक (२)
१५. गाड़ी, मोटर (२)
१६. कावय मर्मज्ञ, रस पार करनेवाला (३)
१८. अधकचरा ज्ञान रखनेवाला वैद्य (५)
१९. शीर्षक, सज्ञा, प्रतिष्ठा, कुल (२)
२१. बुरा (२)
२२. टटोलना, मालूम करने के लिए उँगलियों से छूना (५)
२४. हरा-भरा, जो मुरझाया न हो (२)
२५. सैनिक सिपाही (४)
२६. किसी शत्रु के सामने जाना (४)

ऊपर से नीचे—

१. लड़ाई-झगड़ा करना (४, ३)
२. दलदली भूमि (२)
३. पक्षपाती (५)
४. किसी दूसरे के साथ अच्छी तरह से लगा या जुड़ा हुआ (३)
५. पैर, पाँव (२)
६. जिसे अत्यधिक मानसिक कष्ट पहुँचा हो, अत्यंत दुःखी (४)
९. मन की कल्पना से उत्पन्न (४)
११. बहुत कष्ट में पड़ना, बरबाद होना (४, १, २)
१३. किसी देश, राज्य या भूखंड की सीमा (४)
१५. अपना प्रयोजन पूरा होना (२, ३)
१७. संकुचित होना, विस्तार छोड़कर एक जगह एकत्र होना (४)
२०. जिसे स्वादिष्ट चीज खाने का व्यसन हो (३)
२३. बाल, विशेषत: सिर के बाल (२)
२४. तांत, रस्सी (२)

वर्ग पहेली (१७६)

१	२		३	■	४	५	६	
७		■	८					■
	■	९		■		■	१०	११
१२					■	१३		
	■	१४		■	१५		■	
१६	१७		■	१८				
१९		■	२०	■	२१		■	
■	२२	२३				■	२४	
२५				■	२६			

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

दूरभाष : ....

वर्ग पहेली (१७५) का हल अगले अंक में।

साहित्यिक गतिविधियाँ

गोष्ठी संपन्न

१५ जून को विश्वंभरा की अंतरराष्ट्रीय लेखिका संघ की ऑनलाइन संगोष्ठी 'कॉफी विद कविता' बहुत उत्साह व आत्मीयता के साथ संपन्न हुई। इसका आयोजन डॉ. कविता वाचक्नवी द्वारा हुआ। सात देशों से जुड़ी लेखिकाओं सर्वश्री उषा वर्मा, दिव्या माथुर, उषाराजे सक्सेना, शैलजा सक्सेना, शैल अग्रवाल, शशि पाधा, वंदना शर्मा, जया वर्मा, आशा मोर, संध्या सिंह, शकुंतला बहादुर, शन्नो अग्रवाल, शिखा वार्ष्णेय, अरुण सभरवाल, ममता मिश्रा व अतिथि श्रीमती डॉली गोयल सभी ने अपने विचार प्रस्तुत किए। लेखिका श्रीमती वंदना शर्मा ने भी अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. कविता वाचक्नवी ने किया। ☐

लोकार्पण संपन्न

३ मार्च को कादीपुर सुलतानपुर (उ.प्र.) के डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय के विवेकानंद सभागार में शोध पत्रिका 'चेतनता' का लोकार्पण कोरिया गणराज्य के राजदूत माननीय जांग हो चोइ की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस अवसर पर समिति की ओर से कुलपति महोदय तथा कोरिया गणराज्य के राजदूत महोदय को अंगवस्त्र, स्मृति चिह्न, माला तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के चित्रकूट रामायण मेला घोषणा-पत्र १९६० तथा राष्ट्रीय रामायण मेला चित्रकूट की वार्षिक स्मारिका प्रदान कर सम्मानित किया गया। साथ ही सर्वश्री ओमप्रकाश सिंह, लोकभूषण आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप', कविराज मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु', देवनारायण शर्मा चक्रधर, अंकित कृष्ण पांडेय, हरीश मिश्र, महेश कुमार शरण, सलिल कुमार पांडेय, अनुराग मिश्र तथा रामकृष्ण जायसवाल आदि को भी सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री जितेंद्र कुमार तिवारी, केशवप्रसाद मिश्र, श्यामचंद्र श्रीवास्तव, रमाकांत बर्नवाल, विनोद कुमार श्रीवास्तव तथा ज्ञानेंद्र विक्रम सिंह रवि ने कार्यक्रम को सराहा। ☐

गोष्ठी संपन्न

२० मार्च को 'कोरोना भगाओ, जागरूकता लाओ' काव्य संध्या का आयोजन, पटना में कंकड़बाग स्थित गीतकार मधुरेश नारायण के आवास पर संपन्न हुआ। कार्यक्रम का संचालन कवि श्री सिद्धेश्वर ने तथा अध्यक्षता कवि श्री रास दादा राश ने की। सर्वश्री धनश्याम, मधुरेश नारायण, अभिलाषा कुमारी, सिंधु कुमारी ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। धन्यवाद ज्ञापन श्री मधुरेश नारायण ने किया। ☐

डॉ. अखिलेश निगम 'अखिल' सम्मानित

१५ मार्च को उ.प्र. हिंदी संस्थान के यशपाल सभागार में भारतीय पुलिस सेवा के ख्यातिलब्ध पुलिस अधिकारी डॉ. अखिलेश निगम 'अखिल' को राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान उ.प्र. द्वारा उनके बहुचर्चित कहानी-संग्रह 'गिरगिट' हेतु 'डॉ. विद्यानिवास मिश्र सम्मान' के अंतर्गत प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्र एवं एक लाख रुपए की धनराशि प्रदान की गई। ☐

सम्मान समारोह

१५ जुलाई को प्रयागराज के तारिका विचार मंच द्वारा छत्तीसगढ़ की प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमती तुलसी देवी तिवारी को उनके सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह 'आना मेरे घर' के लिए 'महादेवी वर्मा स्मृति' सम्मान से सम्मानित किया गया। सम्मान के लिए आमंत्रित ५२ पुस्तकों में 'आना मेरे घर' का चयन हुआ, कोरोना के कारण संपूर्ण आयोजन ऑनलाइन संपन्न हुआ। ☐

पुस्तक समीक्षा गोष्ठी संपन्न

१८ अगस्त को उज्जैन में श्री संतोष सुपेकर के तीसरे काव्य-संग्रह 'नक्कारखाने की उम्मीदें' पर सर्वश्री बी.एल. आच्छा, संजय जौहरी, पुष्पा चौरसिया, वंदना गुप्ता, ज्योति जैन, राजेंद्र देवधरे 'दर्पण', नितिन पोल, दिलीप जैन ने अपने विचार व्यक्त किए। अतिथि स्वागत श्री विजय सिंह गहलोत 'साकित उज्जैनी' एवं वीरेंद्र कुमार गुप्ता ने किया तथा आभार संजय नागर ने व्यक्त किया। ☐

कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों दिल्ली में हिंदी अकादमी द्वारा हिंदी कथाओं के जन-जन में विस्तार हेतु साहित्यिक नाट्य उत्सव का आयोजन किया गया। नई दिल्ली के एल.टी.जी. सभागार में इस दौरान हरिदास व्यास द्वारा लिखित कहानी 'बस एक बार' का भी मंचन श्रीमती सविता शर्मा के निर्देशन में संपन्न हुआ। कहानी का नाट्य रूपांतरण सर्वश्री संदीपन, विमल कांत नागर, प्रकाश सज्जा श्री राघव प्रकाश मिश्र, रूप सज्जा श्री संदीप दमानिया एवं संगीत श्री हबीब खान व रफीक खान द्वारा तैयार किया गया। कलाकारों के रूप में धुम्मा काका का सुधीर रिखारी, धुम्मी का कुमकुम जैन, मुखिया का अमरजीत अरोड़ा, लेखक बच्चा का ईशान शर्मा, लेखक किशोर का प्रखर जीत वर्मा एवं लेखक वयस्क का आशुतोष शुक्ला के रूप में प्रमुख योगदान रहा। इनके अतिरिक्त सहयोगी कलाकारों के रूप में सर्वश्री शिखा गर्ग, रुचि अरोड़ा, शैली शर्मा, ईशा शर्मा, करण शारदा, आदर्श पुष्पम, राहुल बेनीवाल व प्रखर जीत वर्मा भी उपस्थित रहे। ☐

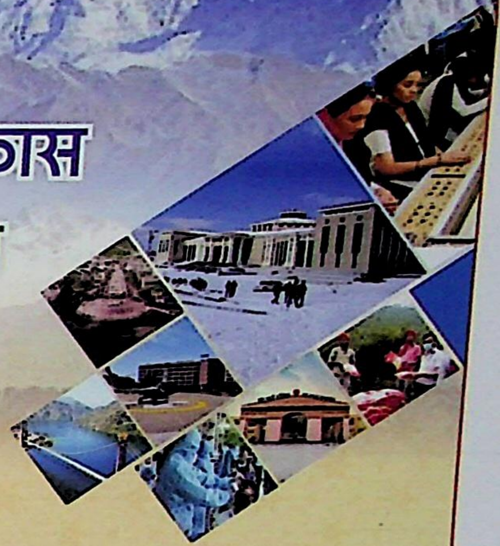
कार्यक्रम संपन्न

१९ अगस्त को फारबिसगंज (बिहार) के पंडित रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' कलब में श्री विनोद कुमार तिवारी के संयोजकत्व में सर्वश्री अरविंद ठाकुर, मनोज तिवारी ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर इंद्रधनुष साहित्य परिषद् के स्थानीय साहित्यकारों सर्वश्री मांगन मिश्र मार्तंड, हेमंत यादव 'शशि, हर्ष नारायण दास, सुरेश कंठ, केदारनाथ कर्ण ने भी अपने विचार व्यक्त किए। ☐

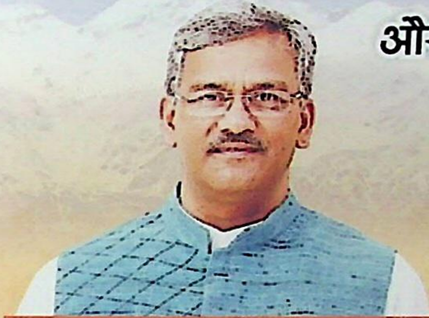
कार्यक्रम संपन्न

१ अगस्त को दीनदयाल शोध संस्थान में लेखकद्वय श्री अरुण आनंद व डॉ. विनय नलवा द्वारा लिखित पुस्तक 'Ramjanamabhoomi : Truth Faith Evidence' का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सर कार्यवाह मान. श्री दत्तात्रेय होसवाले के कर-कमलों से विश्व हिंदू परिषद के अंतरराष्ट्रीय कार्यवाहक अध्यक्ष मान. श्री आलोक कुमार की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। श्रीराम के जन्म से लेकर अयोध्या में रामजन्मभूमि पर मंदिर निर्माण के लिए सर्वोच्च न्यायालय के २०१९ के निर्णय तक के संपूर्ण इतिहास का वर्णन करनेवाली इस पुस्तक में १५२८ से लेकर २०१९ में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आने तक का इतिहास भी समाहित है। ☐

उत्तराखण्ड शासन



हमारा प्रयास
ईमानदारी, विकास और विश्वास



त्रिवेन्द्र सिंह रावत मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड सरकार की उपलब्धियां

ऐतिहासिक निर्णय
- भराड़ीसैंण (गैरसैंण) बनी उत्तराखण्ड की ग्रीष्मकालीन राजधानी।
- श्रद्धालुओं की सुविधाओं और चारधाम के विकास की दृष्टि से "चारधाम देवस्थानम् बोर्ड" का गठन।

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य कल्याण
- कोविड–19 संक्रमण के दृष्टिगत 400 से अधिक चिकित्सकों की नियुक्ति।
- देहरादून, श्रीनगर, अल्मोड़ा, हल्द्वानी, रुद्रपुर के बाद अब हरिद्वार और पिथौरागढ़ में भी होगा मेडिकल कॉलेज।
- आशा कार्यकत्रियों तथा आशा फेसिलिटेटर को 2–2 हजार रुपये की सम्मान राशि देने का निर्णय।
- अटल आयुष्मान योजना में राज्य के सभी परिवारों को 5 लाख रुपये वार्षिक की निःशुल्क चिकित्सा सुविधा।
- आयुष्मान योजना में 39 लाख लोगों के गोल्डन कार्ड बनाए गए। अभी तक 1 लाख 87 हजार मरीजों का निःशुल्क उपचार तथा 176 करोड़ रुपये इलाज पर व्यय।
- राज्य के सरकारी कार्मिकों और पेंशनरों को भी अटल आयुष्मान योजना में किया गया शामिल। देशभर के 22 हजार से अधिक अस्पताल इलाज हेतु सूचीबद्ध।

समाज कल्याण
- वृद्धावस्था, विधवा और दिव्यांगजन पेंशन की राशि तथा ग्राम प्रहरियों के मानदेय में की गई बढ़ोतरी।
- आंगनबाड़ी कार्यकत्री, आंगनबाड़ी सहायिका, मिनी आंगनबाड़ी कार्यकत्री के मानदेय में बढ़ोतरी।
- प्रदेश के लोक कलाकारों का मानदेय किया दोगुना।

किसान कल्याण
- किसानों को तीन लाख रुपये और महिला स्वयं सहायता समूह को पांच लाख रुपये तक का ऋण बिना ब्याज के उपलब्ध।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना की छठी किश्त की राशि जारी। प्रदेश के 8 लाख से अधिक किसान हुए लाभान्वित।
- जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए 3900 जैविक क्लस्टरों में काम शुरू।

खाद्य एवं आपूर्ति
- प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के अंतर्गत उत्तराखण्ड राज्य के लगभग 62 लाख व्यक्तियों को प्रतिमाह प्रति व्यक्ति 5 किलो चावल और प्रति परिवार 1 किलो दाल निःशुल्क।
- मुख्यमंत्री दाल पोषित योजना के अर्न्तगत 24 लाख राशन कार्डधारकों को 02 किलो दाल प्रति माह सस्ती दरों पर उपलब्ध कराई जा रही है।

रिवर्स पलायन, स्वरोजगार
- 6 लाख से अधिक लौटे प्रवासियों एवं प्रदेश के युवाओं के लिए मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना प्रारम्भ।
- इन्वेस्टर्स समिट के बाद अभी तक 24 हजार करोड़ रुपये से अधिक के निवेश की ग्राउंडिंग।

डबल इंजन की सौगात
- केंद्र सरकार के सहयोग से एक लाख करोड़ रुपये की विभिन्न परियोजनाएं प्रदेश के लिए स्वीकृत।
- ऋषिकेश–कर्णप्रयाग रेल परियोजना, चारधाम ऑल वेदर रोड परियोजना, भारतमाला परियोजना, केदारनाथ धाम पुनर्निर्माण, नमामि गंगे तथा देहरादून स्मार्ट सिटी परियोजना का कार्य निर्माणाधीन।
- जमरानी बांध बहुद्देशीय परियोजना एवं टिहरी झील परियोजना स्वीकृत।
- एनआईटी के लिए 910 करोड़ रुपये की स्वीकृति।

अन्य महत्वपूर्ण निर्णय
- घोषणा पत्र के 85 फीसदी वायदे पूरे।
- हर घर को नल से जल योजना में केवल 1 रुपये में पानी का कनेक्शन।
- 14 साल के लम्बे इंतजार के बाद टिहरी को प्रतापनगर से सीधे जोड़ने के लिए डोबराचांठी पुल बनकर तैयार।
- राज्य में 27 हेलीपोर्ट विकसित किये जाने का निर्णय।
- दुर्घटना राहत राशि को मृत्यु पर 50 हजार से बढ़ाकर 1 लाख, गम्भीर घायल होने पर 20 हजार से बढ़ाकर 40 हजार और साधारण घायल होने पर 5 हजार से बढ़ाकर 10 हजार रुपये।
- शहीद सैनिकों के परिवार के एक सदस्य को उसकी योग्यता के अनुसार सरकारी नौकरी तथा विशिष्ट सेवा पदक से अलंकृत सैनिकों को अनुमन्य राशि में कई गुना बढ़ोतरी।
- ग्रोथ सेन्टर एवं 13 डिस्ट्रिक्ट 13 न्यू डेस्टीनेशन का कार्य गतिमान।

सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग, उत्तराखण्ड द्वारा जनहित में जारी | www.uttarainformation.gov.in UttarakhandDIPR DIPR_UK
महिला हेल्पलाइन नं. 1090 | किसान कॉल सेंटर नं. 1551 | सी.एम.हेल्पलाइन नं. 1905 | चाइल्ड हेल्पलाइन नं. 1098 | आयुष्मान उत्तराखण्ड हेल्पलाइन नं. 104 | आपदा कॉल सेन्टर नं. 1070

प्रकाशन की तिथि—२०.८.२० • प्रेषण की तिथि—पूर्व माह की २५-२६ • पंजीयन संख्या ६२११२/९५
डाक पंजीकरण संख्या डी एल (सी)-०१/१२७३/२०१८-२० • यू. (सी) २२२/२०१८-२०
पी.एस.ओ. नई दिल्ली अग्रिम शुल्क के बिना प्रेषण की अनुमति